प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास

लेखक

रांगेय राघव

एम. ए., पी-एच. डी.

१९५३

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

कश्मीरी गेट

दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य
बारह रुपये

मुद्रक
नैशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

स्वर्गीय मौसी
डा० श्रीरंगम्मा की
पुण्य स्मृति में

●

हिरण्मयेन पात्रेण
सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्त्वं पूषन्नपावृणु
सत्य धर्माय दृष्टये

सोने के पात्र से सत्य का मुँह ढँका है।
सत्य धर्म देखने को, हे पूषन्!
उसे हटादे ॥

भूमिका

प्राचीन भारत का इतिहास बहुत विशद है। विद्वान् लोग इसका बहुत संक्षिप्त वर्णन कर देते हैं, कारण है प्रयत्न का अभाव। वास्तव में इस युग को अच्छी तरह से नहीं समझने के कारण ही अनेक गड़बड़ियाँ हो जाती हैं। लोग यह तो कहते हैं कि भारत का इतिहास ईसा से ५,००० या ६,००० वर्ष पुराना है। यह भी सत्य है कि इस समय का इतिहास सरलता से नहीं मिलता। परंतु प्रयत्न सब का फल देता है।

मैंने इसी युग का इतिहास अपनी पुस्तक में लिया है। प्रागैतिहासिक भारत और उसका भौगोलिक विवेचन मेरा प्रथम विषय है। इस समय धरती में से खुदी हुई वस्तुएँ मनुष्य की अनेक जातियों, उनके रहन-सहन के तरीके, उनके रीति-रिवाज और निवास-स्थानों पर प्रकाश डालती हैं। हमें यह भी ज्ञात होता है कि यह जातियाँ सभ्यता की किस सीमा पर थीं। उनका संसार की कौन-कौनसी जातियों से संबंध था। उत्तर, पूर्व और पश्चिम के अतिरिक्त दक्षिण का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब हम दक्षिण के संबंध में आते हैं तो अनेक प्रागैतिहासिक तथ्यों, जातियों और उनके धर्म तथा वर्ग जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक विवेचन इस सत्य को दुहराता है कि जो बहुत से लोग आर्य-भारत चिल्लाते हैं, उस समय आर्य कहीं थे भी नहीं। मैंने इसीलिये तिथियों को भी दिया है। यह तिथियाँ विकास-क्रम प्रगट करती हैं कि हमें अन्दाज से इतने पीछे तक तो हमारे ज्ञान के साधन हमें ले जा सकते हैं।

बहुत से लोग कहते हैं कि भारत के इतिहास में वर्गभेद और उत्पादन के साधनों में आने वाले परिवर्त्तनों का कुछ भी प्रभाव नहीं रहा है। मेरा मत इनसे भिन्न है। वर्ग-भेद के साथ जातिभेद भी समझना चाहिये।

जहाँ हब्शी और निषाद रहते थे वहाँ कोल, भील, संथाल, मुण्डा आदि आये। पहले लोग वनमानुष की भाँति रहते थे। नये लोगों ने आकर उन्नति की। वे जंगली (Savage) अवस्था में थे। उनके बाद द्रविड़ आये। जब हम द्रविड़ कहते हैं तो एक जाति करके नहीं समझना चाहिये। कुछ जाति समूह ऐसे होते हैं जिसमें बहुत सी बातों में समानता होती है जैसे यूरोपवासी अपने अनेक भेद लेकर भी हमें एक-से दिखाई देते हैं। यह जाति समूह अलग-अलग कबीलों में अलग-अलग समय आया। अब यह समझना कि यह सब कबीले आपस में लड़ते न थे, एक थे, इनमें जातीयता का विकास था, गलत होगा। भारत पर मुसलमानों का आक्रमण इसे स्पष्ट कर देगा। मुसलमान क्या एक थे, कोई तुर्क थे, कोई अरब, कोई पठान। पठान तो आर्य रक्त ही थे। पर जब वे मुसलमान

हो गये तो उनका रहन-सहन बदल गया और वे भी उसी झुण्ड के लोग दिखाई देने लगे। तो इसी तरह द्रविड़ आये और यहाँ के मूल निवासियों से मिल गये।

मूल निवासी से भ्रम न हो। अर्थ है जो यहाँ रहते थे, चाहे वे भी बाहर के ही हों या यहीं से बाहर फैल गये हों। इनमें यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर आदि जातियों का दर्शन होता है। यह जातियाँ अलग-अलग सामाजिक स्तरों पर रहती थीं।

बहुत सी टाटेम और टैबू जातियाँ भी मिलती हैं। टाटेम और टैबू का भेद समझ लेना ठीक होगा। मुसलमान सूअर से चिढ़ते हैं, उनके लिये सूअर टैबू है। **सिक्ख लोग सूअर की हड्डी से अपने भोजन को पवित्र करते हैं। इनके लिये सूअर एक पूज्य वस्तु का रूपान्तर है।** इसी तरह प्राचीन काल ही नहीं, दक्षिण भारत में अभी भी अनेक जातियाँ हैं जिनका नाम ही जन्तु विशेष का नाम है जिसकी वे उपासना करते हैं। गरुड़ और नाग ऐसी ही जातियाँ थीं। यदि पशु-पक्षी विशेष परस्पर शत्रु होते थे, जातियाँ भी एक दूसरे से शत्रुता निभाती थीं।

यह द्रविड़, यक्ष, गंधर्व तथा अन्य जातियाँ विभिन्न सामाजिक व्यवस्था के स्तरों में थीं। उस समय आर्य आये। जो मैंने द्रविड़ों के बारे में कहा है आर्य जाति के विषय में भी वही लागू होता है। इन आर्यों के सम्बन्ध में काफी मतभेद है।

मेरा विचार है कि प्रारम्भिक आर्य कबीलों में आदिम साम्यवाद था। वह बात कितनी अधिक प्राचीन थी, यह मैंने पुस्तक में बताया है। फिर आदिम साम्यवाद बदला। मातृसत्ता की जगह पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने ले ली। क्यों ली? क्योंकि प्रारंभिक जंगलियों (Savage) पर आर्येतर जातियों का प्रभाव पड़ा, और गणों पर अर्थात् गोत्र गणों में इनकी नई व्यवस्था बनने लगी।

यह समय देव युग का है। संस्कृत वाले आर्य जो वैदिक भाषा के प्रवर्त्तक थे उन्हीं को मैंने देव कहा है। देवों का असुरों से युद्ध हुआ। वे असुर हारे। पर उनकी परम्परा को भी पारसीकों ने याद रखा। जैसे हम असुरों को बुरा कहते हैं, अयरान (ईरान का पुराना नाम) में देव का अर्थ उतना ही बुरा माना जाता था।

देवों ने धीरे-धीरे खेती-बाड़ी सीखी और उनमें दास-प्रथा प्रारंभ हुई। यह ऋग्वेद से भी पुरानी बात है। यहाँ जो भारत में ग्राम थे उनमें अपनी ही दासप्रथा जाति-भेद के रूप में थी। देवों को वही मिली।

महाप्रलय ने देव जाति को नष्ट कर दिया। अर्थात् आर्यों के कबीलों में जो शेष रहे, अब सामाजिक व्यवस्था बदल गई और वे मनु की संतान, मनु के कबीले कहलाने लगे। यह मनु की संतान कैसे भारत में बढ़ी वह यहाँ हमारा वर्ण्य-विषय है। वह इतिहास का अगला पग है। ३५०० ई० पू० के बाद का इतिहास है जो महाभारत युद्ध के समीप अर्थात् लगभग १६०० ई० पू० तक जाकर समाप्त होता है।

आर्यों से पुराना समाज अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग समाज-व्यवस्था में

था। कहीं दासप्रथा थी, कहीं आदिम साम्यवाद था।

जातियाँ मिलीं। आदिम साम्यवाद ने धीरे-धीरे विकास किया। दासप्रथा आई या उसका प्रभाव पड़ा, समाज ने धीरे-धीरे आगे पग बढ़ाया, मनुष्य की उन्नति होती गई।

किसी प्राचीन काल में गंगा-सिंधु के बीच का मैदान समुद्र में डूबा हुआ था। जब हिमालय समुद्र तल से बहुत ऊँचा उठ गया यह जलमग्न भूभाग भी ऊपर उठ आया। उस समय कोई वह जाति नहीं थी जो आज हम इतिहास के माध्यम से जान सकते हों।

लगभग १,००,००० से १५,००,००० वर्ष पूर्व भारत में मनुष्य के चिह्न प्राप्त होते हैं। गोरखपुर, बयाना, स्यालकोट, बिलोचिस्तान में नाल तथा अदि चन्नल्लूर में कुछ-कुछ बहुत पुरानी खोपड़ियाँ खुदाई में मिली हैं।[1] नर्मदा घाटी में, विंध्य में पशुओं की अस्थि प्राप्त हुई हैं। भूत्रा में प्राप्त वस्तुओं का साम्य अफ्रीका और जावा में प्राप्त वस्तुओं से है। उस समय मनुष्य जलमार्ग से यात्रा करता था यह अब विद्वान् स्वीकृत करते हैं।

इस समय जिन जातियों का होना संभव माना गया है वे हब्शी और निषाद जातियाँ थीं। यह प्राचीन जातियाँ कालांतर में अन्य जातियों में घुल-मिलकर अपना अस्तित्व अलग नहीं रख सकीं क्योंकि जातियाँ कभी एक ही स्थान पर नहीं रहती थीं। वे अपने निवास-स्थान बदलती रहती थीं।

इन प्रागैतिहासिककालीन जातियों को आकर आग्नेय जातियों ने पराजित किया और इधर-उधर भगा दिया। इन जातियों का आर्यों पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। आग्नेय जातियों का सिलसिला दक्षिण-पूर्व मलाया द्वीप से मैलेनेशिया से पोलिनेशिया तक दिखाई देता है। निस्संदेह यह परिवार बहुत बड़ा था। मूलतः संभवतः ये मंगोल थे परंतु इनका काकेशियन्स और हब्शियों से संसर्ग हुआ था। इनके कुछ लोग खासी जाति के पूर्वज थे। कोल, भील, मुंडा आदि जातियाँ ही आग्नेय परिवार की हैं। ये पहले उत्तर भारत में तथा कहीं-कहीं दक्षिण भारत में भी रहते थे। आज जो अनेक आर्य नाम हमें प्राप्त हैं उनमें से प्राकृतिक नामों में बहुतों का मूल, आग्नेय भाषा के नाम हैं। इन्हें आर्यन एण्ड हिंदी पृ० ३४ में सुनीति कुमार चटर्जी ने इस पर विशेष प्रकाश डाला है। संभवतः गंगा का पुराना नाम भी कुछ 'खोंग' जैसा शब्द था।

इन जातियों का प्रसार ईसा से हजारों वर्ष पहले हुआ। यह जातियाँ पाषाणकाल के उत्तरकाल में से धातुकाल तक पहुँच गई थीं। छोटे-छोटे ग्राम बनाकर रहती थीं। कहीं-कहीं खेती करती थीं। इनमें कुछ लोग पशु और कुछ लोग वज्र धारण करते थे। गाँवों में अधिकांश पंचायत-प्रणाली थी। विकास की धारा के अनुसार यह लोग कबीलों में बँटे थे और भय के कारण अनेक प्रकार के जादू-टोने आदि की उपासना किया करते थे। इनके पास जो चपटे कुल्हाड़े थे, वैसे ही यूरोप में स्पेन तक प्राप्त हुए हैं। इस समय वैसे पत्थरों को औजार बनाकर काम में लाया जाता था, जैसे बहुत से लिंग बनाकर

१. पंचानन पृ० ११.

पूजे जाते हैं। मृतों को गाड़ना, आत्मा का मुर्दे से संबंध होना, और उससे भय होना इन में प्रचलित था। ओरांव आदि जाति में जलाने की प्रथा भी चलती थी। खासी, नागा, कुकी स्मारक भी बनाते थे। विद्वानों का मत है कि वृक्ष पूजने की प्रथा इन्हीं जातियों की देन है।

मोनख्मेर परिवार के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता। परंतु यह निस्संदेह एक सत्य है कि इनका अपने बाद आने वाले लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा था। इन लोगों में टाटेम उपासना विशेष थी। अर्थात् किसी वृक्ष, पशु की उपासना प्रचलित थी। यह जातियाँ समुद्र-यात्रा करती थीं।[1] इनकी छोड़ी हुई वस्तुओं का संबंध नील गिरि में ही नहीं, दजला फरात के पास तक मिलता है। आकृति में तो बहुत ही साम्य है।

इनको जिन्होंने आकर हराया वे द्रविड़ जाति समूह के लोग थे। आग्नेयों के समाज के कई स्तर थे अर्थात् सब जातियाँ एक ही-सी विकसित नहीं थीं। इनमें नाग जाति सबसे उन्नत अवस्था में थी। अधिकांश जातियाँ पितृसत्तात्मक अवस्था तक पहुँच चुकी थीं। नागों में दासप्रथा थी इसका भी आभास मिलता है।

द्रविड़ों से हमारे इतिहास का पूर्व प्राचीन काल प्रारंभ होता है। द्रविड़ों का आग्नेयों से काफी संबंध रहा और वे काफी एक दूसरे से घुलमिल गये। द्रविड़ भी जातियों का एक समूह था। यह लोग भारत के उत्तर-पश्चिम और समुद्र तट पर आ कर बसे। द्रविड़ परि-वार का समुद्र से अधिक संबंध था। पंचानन पृ० ३१८ में उल्लेख स्पष्ट है कि प्राचीन जातियाँ धातु के बिना भी जहाज बना लेती थीं और लंबी समुद्र-यात्रा कर लेती थीं।

द्रविड़ परिवार में से कोई जाति तमिल की माता-भाषा बोलती थी। अधिकांश विद्वानों का मत है कि इन जातियों के पास लोहा नहीं था, यद्यपि कुछ के पास लोहा होने का चिह्न भी मिलता है।

तमिलों का विस्तार मिस्र, एलाम तक में मिलता है। यह देवी और लिंग की, तथा सांप, सूर्य, पीपल आदि की उपासना करते थे। इनमें वर्गभेद प्रारंभ हो चुका था। ग्राम बसाते थे और धातु आदि का अच्छा प्रयोग कर लेते थे। इन्होंने सुसभ्य नगरों का भी निर्माण किया था ऐसा विद्वानों का मोअन-जो-दड़ो को देखकर विचार है। द्रविड़ परि-वार की मय जाति ही अमेरिका में बस जाने वाली मय जाति थी, ऐसा भी आभास मिलता है।

द्रविड़ों में मातृ-पूजा बहुत थी। नगरों में व्यापार और सभ्यता को देखकर यही प्रतीत होता है कि इनके समाज में दासप्रथा का प्रादुर्भाव हो गया था अर्थात् यह लोग विकास के काफी अगले स्तर पर पहुँच चुके थे।

असुर और फीनीशियन्स भी द्रविड़ परिवार की ही जातियाँ थीं। इस समय सिंधु प्रदेश का नाम पुन्त देश था। इन द्रविड़ों का आर्यों से भारत में आने के पहले अवश्य

१. न्यू इं. पृ० २८. १९३८-३९.

ही संबंध हो चुका था क्योंकि ऋग्वेद में प्राचीन गाथाओं को जहाँ वेद निर्माता ऋषि ने स्मरण किया है वहाँ इनके प्रभाव स्पष्ट हो जाते हैं।

द्रविड़ युग में भारत में उत्तर में अनेक जातियाँ रहती थीं जिन पर विद्वानों ने विचार नहीं किया। यह जातियाँ थीं---ऋक्ष, वानर, असुर, दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर इत्यादि। इन जातियों में वानर अपने वस्त्रों में वैसे ही पशु की खाल ओढ़ते थे जैसे पूर्व वांशिक मिस्र में एक प्रचलित रिवाज था।[१] यही वानरों की पूँछ थी। और यह जाति सूर्य को वानर के रूप में पूजती थी। ऋक्ष भी वानरों के समान टाटम जाति थी। अन्य उपयुक्त जातियों के समान यह जातियाँ भी चेहरे पर नकली चेहरा लगाती थीं। नकली चेहरा 'मास्क' लगाने की प्रथा तिब्बत से यूरोप तक मिली है। दक्षिण भारत के कथकलि नृत्य में अभी तक नकली चेहरे लगाये जाते हैं। चेहरे बदलने के कारण ही संभवतः इन्हें इच्छारूप और कामचारी कहा गया। इन जातियों में कबीले थे। कहीं दास-प्रथा थी, कहीं नहीं थी। वैसे वानर भी राजा चुनते थे, महलों में रहते थे।

यक्ष और रक्ष का धातु मूल एक है। राक्षस और कुबेर कहे भी भाई जाते हैं। इनके समाज में दासप्रथा थी। कुबेर नरवाहन था। सोना उसके पास अपार था। समाज में स्त्री विलास की वस्तु ही न थी। पहले नर-नारी संबंध स्वतंत्र रहे थे जो व्यक्तिगत संपत्ति बनने पर भी स्त्री को बच्चा पैदा करने वाली मशीन नहीं बना सकी। यही अप्सरा थी। राक्षसों ने स्त्री को दासी बनाया। वे उसका अपहरण करने लगे। यक्ष काम के उपासक थे, रक्ष शिव के। दोनों में युद्ध हुआ। काम पराजित हुआ। परंतु बाद में राक्षसों पर भी प्रभाव पड़ा।

इस समय देव जाति आई और ईरान में इसे असुर मिले। देव यज्ञ करते थे। तब उनमें मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी। शतपथ ब्राह्मण ७.४.२.४० में उल्लेख है कि देव सूर्य के, मनुष्य सोम तथा असुर अग्नि के उपासक थे। देव पृथ्वी के ही वासी थे (१४.३.२.४)। देवों में अंगिरा ने अग्नि को शमी वृक्ष में पाया। पुराना अग्निवंश भृगु का था। भृगु और भार्गव असुरों के मित्र थे। जब देव अयरान में आये वे वरुण असुर के शासन में रहे। उस समय उनमें पितृसत्तात्मक व्यवस्था आ गई थी। इंद्र ने स्वराज्य स्थापित किया। वरुण की मृत्यु के बाद बल वृसय के पुत्र वृत्र व्यंस को मारकर, जो खेती के लिये नदियों का पानी इन्हें नहीं देता था इन्द्र राजा हुआ। इन्द्र एक व्यक्ति नहीं पद था। प्रारंभिक इन्द्र अस्थि से लड़ा था, परवर्त्ती इंद्र अयस से। देवों का यक्षादि से संबंध हुआ। देव-असुर संबंध बढ़े। देवों ने छल से असुरों को हराया। उस समय नागों ने इन्हें सहायता दी। परिणामस्वरूप देवासुर संग्राम के बाद जब नागों और सुपर्णों का युद्ध हुआ। देव नागों की ओर से उठे। सुपर्णों ने हरा दिया। देवों ने सुपर्णों से संधि कर ली।

देवों में पहले यज्ञ आदिम साम्यवाद का प्रतीक था। मय की उपासना से बलि का

---

१. पंचानन २३५ पृ०।

प्रादुर्भाव हुआ था। उस समय सब कबीले गण गोत्री थे, मातृसत्तात्मक थे। वे जब पितृ-सत्तात्मक हुए यज्ञ धर्म बन गया और यहाँ पहले दान का अर्थ अग्नि के पुरोहित द्वारा सब को दिन की कमाई के बराबर बाँटना था, अब पुरोहित का आधिपत्य हो गया और दान का अर्थ 'दान' हो गया। यह देव विरस परिवार के लोग थे अर्थात् उस भाषा को बोलने वाले जिस में से कालांतर में अवेस्तन, फारसी, लैटिन, ग्रीक और वैदिक संस्कृत निकलीं। इन्द्र तक आते-आते अनेक वर्ष बीत गये। इनका एक दल पश्चिम चला गया और अपने साथ देवयुग की कहानियाँ ले गया जो ग्रीक्स में मिलती हैं।

देवों की व्यवस्था भी असुरों से प्रभावित हुई। असुरों ने जब इन्हें हराया नहीं था तब इनका यहाँ के राक्षस देवता शिव से विरोध हुआ। परंतु कुछ स्त्रियाँ लिंग-पूजा और योग की ओर आकर्षित हुईं। दक्ष-पुत्री सती आकर्षित हुई। देवों ने उसका अपमान किया। शैवों ने इन्हें हराया। तब शिव इतना व्यापक देवता न था, किसी कबीले समूह का देवता था अधिकांश राक्षसों का। राक्षसों ने कार्तिकेय के नेतृत्व में देवों की असुरों से रक्षा की। तब वे रक्ष अर्थात् रक्षा करने वाले कहलाये। इस समय दानव-दैत्य देवों के विरोध में रत थे। वे भी प्रह्लाद के समय में झुक गये। नृसिंह आदि की कथाएँ, सुमेरियन में भी मिलती हैं। हमारा आदि-प्राचीन काल यहाँ आकर समाप्त हो जाता है जब प्रलय हुआ, देवयुग का अंत एक भीषण प्रलय के साथ हुआ। जिससे मनु का कबीला बच गया। वानर, ऋक्ष, यक्ष, राक्षस भी दक्षिण की ओर चल पड़े। रावण एक पद था। रावण आकर पहले सरस्वती तीर पर बसा। फिर उसे हैहयों ने दक्षिण भगाया। फिर वानर वालि ने ऋष्यमूक से उसे नीचे ढकेला। उसने अंत में जाकर लंका बसाई और व्यापार बढ़ा और लंका को सोने की कर दिया। लंका का नर्मदा तीर की सभ्यता से संबंध था जहाँ माहिष्मती में कर्कोटक नाग बसे हुए थे जिन्हें बाद में हैहयों ने निकाला।

हाँ, तो मनु के समय से नया युग प्रारंभ हुआ। मनु ने सैन्य बनाई। वर्णों का उदय हुआ। यह वैवस्वत मनु था। नियमकार मनु स्वयंभू था। वह दूसरा परवर्ती व्यक्ति था। यहीं से हमारा मध्य-प्राचीन काल प्रारंभ हुआ।

मनु से कई कबीले चले। जो धीरे-धीरे उत्तर भारत पर फैल गये और दक्षिण में भी गये। दक्षिण में वे विदर्भ तक जा पहुँचे। इस समय ब्राह्मणों का सर्वत्र शासन था। आर्य और दास दो ही भेद मिलते हैं। ऋग्वेद के प्रारंभ से ही दासप्रथा की गाथा मिलती है। इस युग का अंत हैहय क्षत्रियों के प्रहार के साथ हुआ जिसका परशुराम-युद्ध में उल्लेख है। उच्च वर्णों में सत्ता के लिये युद्ध हुआ। अंततोगत्वा ब्राह्मणों को क्षत्रियों को अधिकार और सहूलियत देकर उन से समझौता करना पड़ा। इस परस्पर के युद्ध से दलितों अर्थात् आर्येतरों को लाभ हुआ। शूद्र उठकर त्रेता में समाज के अंग मानने योग्य हो गये। पहले सब आर्येतर दास बन जाते थे। यहाँ समझना चाहिये। आर्येतरों को दास बनाकर सब को आर्य खाना नहीं दे सकते थे। अतः वे जो खुद खेती करते थे

या धंधे करते थे, दासों से ऊँचे मान लिये गये। पर अभी उन्हें संपत्ति के अधिकार नहीं मिले थे। त्रेता में राम ने आर्येतर कबीलों को लेकर राक्षस रावण को हराया। इससे शूद्र और उठे, उन्हें द्वापर में संपत्ति के कुछ अधिकार मिले और दूसरी ओर आर्य-अनार्य भेद हटा। आर्यों के स्वयंवर में अनार्य आने लगे। दोनों ओर के दास प्रभु मोर्चा बनाने लगे। महाभारत में एक ओर गण नायक कृष्ण और पाण्डव थे जो आर्य सत्ता और कुछ सहूलियत दिये हुए स्वत्व के आधार पर निरंकुशता नष्ट करना चाहते थे, दूसरी ओर कौरव और आर्येतर राजा अपने अक्षण्ण अधिकार चाहते थे। पर विरोधाभास यों हुआ कि दोनों में ही दासप्रथा की होड़ थी। आंतरिक विरोधों के कारण महायुद्ध हुआ। और वही महाभारत था। इस युद्ध के बाद नागों ने सिर उठा दिया। जनमेजय ने नागों को कुचला। फिर जो हुआ वहीं से कलि का प्रारम्भ है। उसका विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है। पूर्व वैदिककाल से पुरानी दासप्रथा अब आकर लड़खड़ा गई, और हमारा उत्तर प्राचीन काल प्रारंभ हुआ।

प्राचीन काल के दो युगों का यहाँ हमने संक्षेप से वर्णन किया है, ऐसा जो शृंखला का स्पष्ट करके उपस्थित करता है। किंतु इस समय की अंधकारमय स्थिति में युग निर्भय सरल नहीं है।

प्रलय नूह काल में माना जाता है। मोअन-जो दडो की सभ्यता, आर्यो के आगमन का समय तथा प्रलय का समय प्राय: ३५०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। इससे पहले के युग का अनुसंधान भाषा के विकास के माध्यम से हो सकता है। जिस विरस भाषा से संस्कृत, लैटिन तथा अवेस्तव निकलीं वह काफी प्राचीन रही होगी। देवों का आदि बर्बर से मध्य बर्बर अवस्था पर आना, वर्ण-व्यवस्था का उदय, इसमें काफी समय लगा होगा। फिर यहाँ खेती की, अनेक इंद्र हुए। भाषा के अलग-अलग विकास का समय लगभग ४०० या ५०० वर्ष रखना होगा। उससे पहले अगली व्यवस्था से मध्य बर्बर अवस्था तक पहुँचने के लिये १,००० वर्ष तो कम से कम रखना आवश्यक है। भारत में उत्पादन के साधन धीरे-धीरे बदले हैं। इस प्रकार देवयुग का प्रारम्भ हुआ। ३५०० ई० पू० + १५०० ई० पू० = ५००० ई० पू० उस समय द्रविड़ तथा ताम्रयुगीन सभ्यता में मध्य बर्बर युग था। वे देवों से सभ्य थे, प्राचीन थे। वे ५००० ई० पू० से पहले थे। पुराने कब्रिस्तानों के आधार पर हम १४०० या १५०० ई० पू० वर्ष और जोड़ सकते हैं। अर्थात् ६५०० ई० पू०। उनके भी पहले आग्नेय युग था। उनका निर्णय करने का कोई साधन नहीं। अत: वे प्रागैतिहासिक काल में रखे गये हैं।

पार्जिटर ने सत्ययुग में राजाओं की ४० पीढ़ियाँ दी हैं। ४०×२० = ८००; ३५०० ई० पू० से ८०० घटाने पर लगभग २७०० ई० पू० आता है। भाषा के विकास के अनुसार भी यह ठीक प्रतीत होता है। इस प्रकार सत्ययुग का अन्त २७०० ई० पू० हुआ। त्रेता में पार्जिटर ने २५ पीढ़ियाँ दी हैं। अर्थात्

लगभग ५०० वर्ष। इस प्रकार २०० ई० पू० त्रेता का समय निकलता है। पौराणिक कथन है कि महाभारत से रामयुद्ध ५०० वर्ष पूर्व हुआ था। यह हुआ १७०० ई० पू० महाभारत काल। पार्जिटर ने ३० पीढ़ियाँ दी हैं। उसके अनुसार होगा १६०० ई० पू०। पी. वी काने ने महाभारत की तिथि पर गहरा विवेचन करके १९०० ई० पू० समय निकाला है। हमारा मत है कि १५०० ई० पू० से २००० ई० पू० के बीच किसी समय महाभारत युद्ध हुआ।

५० ई० पू० में युग, कल्प और मन्मत्त के प्रगट प्रचलित भेद थे।

इस प्रकार माध्यम प्राचीन काल ३५०० ई० पू० से १६०० ई० पू० के लगभग समाप्त हुआ!

तिथि-निर्णय एक आधार के लिये किया गया है। इसमें यह नहीं कि जो वर्ष विशेष हमने दिये हैं, वे पत्थर की लकीर हो गई। लगभग समय सामीप्य का अनुमान है। अधिक तथ्यों के उपस्थित होने पर इनमें विद्वान् अवश्य ही तरमीम करेंगे। जितनी गवेषणा हो वही इतिहास के लिये श्रेयस्कर है। हमारा आधार तो संस्कृति और समाज का विकास ही विशेष रूप से रहा है। अनेक भ्रमों का निवारण हमारा उद्देश्य है।

अब हम यहाँ इस समय की कुछ विशेष बातों पर प्रकाश डालते हैं जिनको विकास के दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है।

आर्यों का इतिहास मध्य एशिया से भी परे से प्रारम्भ होता है। धीरे-धीरे आर्य कबीले मध्य एशिया में आये। यहाँ उनका युद्ध असुरों से हुआ। इसके फलस्वरूप कुछ देव और असुर वृत्र के उपासक हुए, कुछ इंद्र के। प्रलय ने सबको बिखरा दिया। देव भारत की ओर उतर गये किंतु कुछ कुरु प्रदेश में रह गये। यह कुरु बाद में उत्तर कुरु कहा गया। इस उत्तर कुरु में आदिम साम्यवाद के चिन्ह महाभारत काल तक बचे रहे। संजय ने धृतराष्ट्र को महाभारत में उत्तर कुरु के वर्णन में वहाँ के समाज की वैमनस्यहीनता का रूप सुनाया है। यहाँ और भी कुछ कारण यह समझने के दिये जाते हैं कि पहले देवों में आदिम साम्यवाद की संभावना थी, यज्ञ सामूहिक अग्नि-पूजन था और दान सम्मिलित सामग्री का परस्पर वितरण था तथा ब्रह्म पहले अग्नि और उसके उपासकों का समाज था। कुछ लोगों का मत है कि यज्ञ भय के कारण पैदा हुआ। बलि देना इसी भय के कारण हुआ। उसमें समाज का क्रम खोजना भूल है। अतः यहाँ हम अथर्ववेद ८.१० (१) १२३ की ओर उनका ध्यान केन्द्रित करते हैं। पहले विराट था। उससे अनेक भेद उत्पन्न हुए।

विराड्वा इदमग्र असीत्तस्या जातायाः सर्वंय बिभेदियमेवेंद भविष्यतीति

विराट क्या है? विराट=वि+राज्+क्विप=विगत : राट् यस्याः— ऐसा समाज जिसमें राजा नहीं था। इससे विकास हुआ और कुटुंब बने (१२४)। फिर गृहपति बना (१२५)। फिर उनका कार्य-व्यापार बढ़ा। पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ (१२६)। एक दूसरे वक्त पर मिलने लगे (१२७)। फिर (दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत=

भूख थी, वह अब खाद्य-सामग्री प्राप्त करने लगी। शांतिपर्व के ७२ अध्याय में वायु तथा पुरुरवा का संलाप युधिष्ठिर को भीष्म ने सुनाया है (१०–२०) ब्राह्मण सब वर्णों से पहले पैदा हुए हैं। इसलिये पृथ्वी के सब पदार्थों पर उन्हीं का अधिकार है। ब्राह्मण अपना ही खाते, और अपनी ही वस्तुएँ दान करते हैं, क्योंकि सब कुछ उन्हीं का है। ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ तथा गुरु हैं। जैसे पति के न रहने पर स्त्री देव को पति बना लेती है, वैसे ही ब्राह्मण से सुरक्षित न होने पर पृथ्वी ने क्षत्रिय को अपना स्वामी बना लिया है।

फिर राजा का गुणगान है।

……यज्ञ है, राजा के ही अधीन है। अराजकता में यज्ञ की नौबत नहीं आती (यह यज्ञ परवर्त्ती यज्ञ है क्योंकि स्पष्ट है देखिये) ब्राह्मण को खेद था कि वह निर्बल हो गया था। क्षत्रिय भी क्षेत्र में आ गये। इसके अतिरिक्त शांतिपर्व में पांचराज वैष्णव, शैव प्रभाव तथा परवर्त्ती अहिंसा का मुखर प्रभाव बढ़ रहा था। ब्राह्मणों ने अहिंसा अपनाने की चेष्टा की। महाभारत-वनपर्व २०८ अ० ३०-४० में पूर्ण अहिंसा को असंभव बताया गया है। उपरिचर वसु कथा इसकी पुष्टि करती है तभी कहा है—सत्ययुग के यज्ञ में पशु-बध निषेध है (महाभारत शांतिपर्व २४१ अ. ८०-८२) त्रेता से मानस यज्ञ का प्रारम्भ

कथमग्निः पुररहं भवेयमिति चिन्त्य सः।
अपश्यदग्निवल्लोकांस्तापयन्तं महा मुनिम् ॥१२॥
सोऽपासर्प च्छनैर्भीतस्तमुवाल तदांगिराः।
शीघ्रमेव भवस्वाग्निस्त्वं पुनर्लोक भावनः ॥१३॥
विज्ञात श्चासि लोकेषु त्रिषु संस्थानचरिषु।
त्वमग्निः प्रथम सृष्टो ब्राह्मणा तिमिरापहः।
स्वस्थानं प्रतिपद्यस्व शीघ्रमेव तमोनुद ॥१४॥
नष्ट कीर्त्तिमहं लोके भवान् जातो हुताशनः।
भवन्तमेव नास्यन्ति पावक न तु मां जनाः ॥१५॥
निक्षिपाम्य हमग्नित्वं त्वग्नि प्रथमो भव।
भविष्यामि द्वितीयोऽहं प्राजापत्यक एव च ॥१६॥

अंगिरा उवाच—

कुरूपुराधं प्रजास्वर्ग्यं भवाग्निस्तिमिरा पहः।
मांच देव कुरूष्वाग्ने प्रथमं पुत्रमंजसा ॥१७॥
राजन् वृहस्पतिनाम् तस्यागिरसः सुत ॥१८॥
ज्ञात्सा प्रथमजं तन्तु वन्हेरांगिरसं सुतम्।
उपेत्य देवाः पप्रच्छः कारणं तत्र भारत ॥१९॥
स तु पृष्टस्तदा देवैस्ततः कारणमब्रवीत्।
प्रत्यगृस्तु देवाश्च तद्वचोऽगिरास्तदा ॥२०॥

बताया है (वही ६०वां. अ० ३०. ४०)। शूद्र यज्ञ का भी उल्लेख है, पैजवन एक लाख 'पूर्णपात्र' दान वाले यज्ञ का भी। अब (४१) श्रद्धायज्ञ सर्वश्रेष्ठ हो गया। आगे कहा गया है कि संसार भर में क्योंकि ब्राह्मणों से ही क्षत्रिय आदि तीनों वर्णों की उत्पत्ति हुई है, इसलिये तीनों वर्णों को यज्ञ करने का स्वाभाविक अधिकार है। अतः श्रद्धायज्ञ करो क्योंकि वह सब कर सकते हैं, वह सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु दान दिये जाओ; ब्राह्मण को दक्षिणा दो। और भी (वही २०७ अ० ४०–४९) भीष्म ने युधिष्ठर से कहा—गुह पुलिंद, शबर, चूचुक, मद्रक और उत्तर देश के निवासी यौन, काम्बोज, गांधार; किरात और बर्बर गण सदैव, पाप निरत हैं। वे लोग चांडाल, गिद्ध और कौए के-से आचरण करते हैं। उनकी उत्पत्ति सत्ययुग में नहीं हुई थी। त्रेतायुग से ही उनकी बढ़ती हो चली। उनकी संख्या अधिक हो जाने पर और उनके कारण पृथ्वी के पीड़ित होने पर, भगवान् भूत-भावन की इच्छा से, वे सब आपस में लड़ने लगे।

वेद को महाभारत युद्ध के बाद दैवी बनाने का यत्न हुआ।

देव जाति का प्रारम्भिक जीवन सत्र जीवन था। परवर्त्ती देवों में वस्तुओं का आदान-प्रदान प्रारम्भ हो गया था। मूजवन्त पर्वत से वे गंधर्वों से सामान देकर सोम लाते। परवर्त्ती सत्रकाल में ऊँच-नीच का भेद प्रारम्भ हो गया था। इंद्र ने अश्विद्वयों को सोम प्राप्ति के समय रोका था। ऋभुगण ने सविता के घर सोम की इच्छा की। ज्ञान अपरिपक्व होने पर भी उसने दिलाया। (ऋ. वे. १. १. ७. १६ ११० २-३) इन गणों का प्राचीन काल में ही ताम्रयुगीन सभ्यताओं से संसर्ग हुआ। आर्यों से पहले बसी जातियाँ कहीं जंगली थीं, कहीं बर्बर, कहीं दासप्रथा समाज था। आदिम देव सम-गण में रहे। परवर्त्ती देवों ने धातु-प्रयोग सीखा और उनमें अन्य जातियों के ऊँच-नीच का भेद गणों में भी पड़ा। यहीं से बर्बर युग प्रारम्भ हुआ। यह बर्बर युग धीरे-धीरे वर्ण और वर्गों की ओर विकसित हुआ और इन्हीं कारणों से इस बर्बर युग की अनेक मंजिलें हुईं। परिवर्त्तन धीरे-धीरे हुआ।

गण वर्णों में बदले आर्य अपने समाज में उत्पन्न होने वाले आंतरिक संघर्षों का कारण खोजने लगे।

भीष्म से युधिष्ठिर ने पूछा—'समान जन्म-मरण, सबके समान रहन-सहन, फिर एक कैसे सब पर राज करता है?' भीष्म ने कहा—'पहले राज्य-राजा दण्ड-दाण्डिक नहीं थे। प्रजा धर्म से रहती थी।' यहाँ भीष्म ने यह नहीं कहा कि सत्ययुग में ऐसा था। जाने कब था? फिर गणों में लालच बढ़ा। जाति-कुल में वे समान थे, मेरा तेरा नहीं था। फिर द्वेष क्यों पैदा हुआ? उन सभ्यताओं का प्रभाव पड़ा जिनमें वर्गभेद मौजूद था।

जब आर्य यहाँ आये थे तो जातिभेद मिला। उन्होंने वर्गभेद किया। परन्तु परवर्त्ती काल में सब जातियों का एक ही परिवार मानने का प्रयत्न किया गया। आंध्र, पुण्ड्र, शबर आदि तक कोआर्य परिवार में गिना दिया गया। कारण था समाज के वर्गस्तरों की रक्षा करके

एक 'शरीर' बनाना। विराट पुरुष के चरणों के रूप में जो शूद्र स्वीकार किये गये, वह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आर्यों में मातृसत्ता बहुत पहले ही समाप्त हो गई थी। गण अधिकांश पितृसत्तात्मक थे। परवर्त्ती देव काल में स्त्री स्वतन्त्र थी, पर उसका संपत्ति पर बराबर अधिकार नहीं रहा था। आर्यों के गणों के नाम पुरुष परम्परा पर हैं। मातृसत्ता का प्रभाव असुर तथा यक्षों की समाज-व्यवस्था का था जो निःसन्देह आर्यों से भिन्न थे।

भीष्म ने चार प्रकार के विवाह बताये हैं। कृत में संकल्प, त्रेता में संस्पर्श, द्वापर में मैथुन तथा कलियुग में द्वंद्व हुए बौद्ध तथा जैन स्रोतों में सीता राम की बहिन है और द्वापर में स्त्री का अपहरण होता था। अतः यह परम्परा स्पष्ट नहीं है। वैसे समाज के विकास में यह परम्परा ठीक है। आर्यों की विभिन्न बस्तियों में विभिन्न नियम थे। परवर्त्ती लिच्छवियों में भी भाई-बहिन की शादी होती थी। संस्पर्श पद्धति में सगे भाई-बहिन के विवाह की रोक प्रतीत होती है। संकल्प तो आदिम साम्यवादी स्वतन्त्र समाज की पद्धति है। मैथुन में गोत्र-भेद की अवस्था है। द्वंद्व तो कलि का विवाह है ही। यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि किस युग का विभाजन कैसे हुआ? कोई ऐसी विभाजन-रेखा नहीं खींची जा सकती। विभिन्न आर्य कबीले विभिन्न सामयिक विकास की अवस्था में विभिन्न स्थानों पर रहे और उनका विभिन्न आर्येतर जातियों से संबंध हुआ जिनकी विभिन्न सामाजिक व्यवस्था थी। पाण्डु के समय में भी उत्तर कुरू में स्त्री स्वतन्त्र थी यद्यपि वह कुरुक्षेत्र में ही रही थी। भाई-बहिन और माँ-बेटा का विवाह असुरों में होता था। ऋग्वेद में प्रजापति और उनकी पुत्री का संबंध था। परन्तु उसके प्रतिरोध एतरेय ब्राह्मण में मिलता है। मातृसत्ता आज की दक्षिण में अवशिष्ट है और हिमालय में बहुपति तथा रजवाड़ों में बहुपत्नी प्रथा है। यक्षों के समाज का यौन स्वातन्त्र्य तो वज्रयान में वाममार्ग के रूप में घुस गया था। मातृसत्ता का उल्लेख गणों में मिलता है। पितृसत्ता के बावजूद उसकी झलक मिलती है।

दैत्य, दानव कालकेय, काद्रवेय, मौनेय (गंधर्व) इत्यादि आर्य कबीले नहीं हैं। प्राचीन काल के यह मातृकुटुंब हैं। परन्तु यह सब प्रजापति की संतान हैं। प्रजापति गृहपति का प्रतीक है, पितृसत्ता का प्रतीक है। व्यास के समय तक मातृसत्ता के चिन्ह अवशिष्ट थे। परवर्त्ती काल में आर्य और अनार्य जातियों को एक ही परिवार प्रमाणित करने की चेष्टा की गई। इन मातृगणों से वैदिक पितृगणों को अलग करना चाहिये। जैसे आंगिरस, प्रजापत्य, रहूगण तथा यदु तुर्वश अनु दुह्यु, ऋभुगण आदि।

स्त्रियों का अपहरण राक्षस-प्रथा थी जो क्षत्रियों में बाद में मान्य हो गई। राम के समय जो पाप था, कृष्ण के समय वह क्षत्रिय धर्म बन गया। पिशाच, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, राक्षस, असुर इनमें भिन्न विवाह-पद्धतियाँ थीं जो भिन्न सामाजिक स्तरों पर पहुँची जातियों की भिन्न प्रणालियाँ थीं। रथ की दौड़ में स्त्री को जीत लेना ऋग्वेद में है।

अश्विद्वय ने सूर्य्य-पुत्री सरण्यू को जीता, यह कहें कि वे दौड़ में जीते उसने वरण किया ऋग्वेद १. १. ८. १८ ११९. ५.

युवोरश्विना वपु से युवा युजं रथ वाणी येमतुस्य शर्ध्मम्

आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती।

ऋग्वेद में स्त्री वेश्या भी थी—अभ्रातरा (भाई जिसके न हो), पुंश्चली, महानग्नी रामा, साधारणी, वेश्या को कहते थे। उस समय सभा में स्त्री को जाने का अधिकार न था। एक उत्सव होता था जिसे समन कहते थे। उसमें कुमारियाँ पति चुनती थीं और चंचल-स्त्रियाँ भोग करती थीं। यह परम्परा सेंटार पूजा में यूरोप में भी थी। ग्रीक बैंकस का ऐसा ही उत्सव करते थे। हमारे यहाँ परवर्त्ती काल में काम-पूजा हुई। चारवाक के लोकाम्पतों में बहुत बढ़ी। रूप बदलकर होली बनकर बच गई है। बंगाल में दोलोत्सव होते हैं। यह उसी मातृसत्तात्मक स्वतन्त्र समाज का स्मृतयावशेष था। विवाह-पद्धति बदलती चली गई। मनु (१३ ९. ९) ने कलि में प्रजा शुद्धि की बात पर जोर दिया। तब स्त्री-रक्षा में संपत्ति-रक्षा का भाव निहित था। नियोग की परम्परा में यह शुद्धि पितृसत्ता का पूर्ण परिचय है। जब स्त्री पुरुष की संपत्ति बनी तब विवाह द्वंद्व बना और उस समय वर्णसंकरता से बचने को वर्ण-व्यवस्था की दृढ़ता संपत्ति-रक्षा के साथ-साथ ही पल्लवित हुई।

प्रारम्भिक गण भूख के कारण चल पड़े थे। प्रलय के बाद वे भारत आने लगे। इन गणों की भाषा बदलती थी, भाषा में नई धातु का प्रयोग होता था और आर्येतर भाषाओं के संसर्ग से भी अनेक नये रूप भाषा में आते थे। यज्ञ में व्रात्यस्तोम के द्वारा बाहरी आदमी गण में शामिल कर लिये जाते थे। उनकी रक्षा की जाती थी और उनको समान अधिकार दिये जाते थे। आर्येतर भी स्वीकार कर लिये जाते थे। व्रात्य अदीक्षित आर्य थे, पर यह विवादास्पद है। आर्य भाषा बोलने के लिये आर्य होना ही आवश्यक हो यह नहीं कहा जा सकता। बहुत सी भिन्न जातियाँ नई भाषा अपना लेती हैं। आर्य-गण पहले बाहरी शत्रु को मार डालते थे। तब उनके समाज में दासप्रथा को स्थान नहीं था फिर पितृसत्तात्मक व्यवस्था से दासप्रथा का प्रारम्भ हुआ। असुरों के पास सेना थी आर्यों में मनु से सैन्य प्रारम्भ हुई असुरों में वृत्र के पास सेना थी —

न्यविध्यदिलीविशय दृढ़ा विश्रृंगिणयिनच्छुस्णामिन्द्र:

यावत्रतरो मघवन्यावदोजो वजेण शभुभवधी : पृतन्युम (ऋ. वेद १. १. ३७. ३३)

स्पष्ट ही वृत्र की भूमि पर सोई सेना का वर्णन है। असुर देवों से आगे बढ़ी सामाजिक व्यवस्था में थे। राक्षस, दैत्य, अहि तथा दास भी अग्नि-उपासक थे।

देवयुग के बाद पितृसत्तात्मक व्यवस्था हुई। वही चार युगों में ब्राह्मण परम्परा ने विभाजित की। इसी कालक्रम में ब्राह्मण एक-एक चरण खोता गया। इतिहास का ब्यौरा उसी ने तो हमारे लिये छोड़ा है। संगच्छध्वं संवदध्वं कहने वाला ब्राह्मण कृत में

चरन करता था, त्रेता में वह ठहर गया, द्वापर में बैठ गया और कलि में सो गया तभी ऐतरेय ब्राह्मण (७-१५) में कहा है —

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ।

देव गणों के समय में पुरदेव, मुरदेव, शिशनदेव, शूरदेव का उल्लेख है। यह शिशान देव अनार्य देव था। वेद की सरमाकुक्करी, ऋजिश्वान की वृकी तथा वर्त्तिका यह सब जातियाँ टाटेम जातियाँ थीं। पणि भी आर्येतर थे। पणि संभवतः पश्चिमी देशों तक फैले व्यापारी की निशियन थे। वे देव गणों की आदिम अवस्था में ही थे यह नहीं कहा जा सकता। गौ चुराना तो उस समय धन चुराना था। दुर्योधन तक ने विराट राजा की गौएँ ही थीं। देव असुरों से निकले भी माने जाते हैं। असुरों ने प्रारम्भ में उन्हें दबा लिया। इंद्र ने देवों को स्वतन्त्र कर दिया।

दास और दस्यु एक नहीं थे। दास गुलाम थे दस्यु गण से आर्य घबराते थे। परवर्त्ती काल में मांधाता ने इंद्र से पूछा (महाभारत शांतिपर्व ६५)—भवन, किरात, गांधार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कंक, पह्लव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिंद, रमठ, काम्बोज तथा ब्राह्मण और क्षत्रि से उत्पन्न वैश्य और शूद्र किस प्रकार के धर्माचारण करें और हम लोग किस तरह इन दस्यु आचरण करने वालों को उनके धर्म में लगावें ?

इंद्र ने कहा—दस्युओं को माता-पिता, गुरु तथा राजा की सेवा करनी चाहिये। ब्राह्मणों को दान देना चाहिये। दूसरों के लिये जो धर्म कहे गये हैं उन्हीं का पालन दस्यु लोगों को भी करना चाहिये।

मांधाता ने कहा—दस्यु चारों वर्णों और आश्रमों में कपट-वेश धारण करके रहते हैं।

इंद्र ने दण्ड-नीति आश्रम बताया। सत्ययुग बीतने पर मनुष्य भूखे मरते हैं तब ही इनका जोर पड़ता है।

दास और दस्यु का भेद स्पष्ट है।

वृत्र के लिये एकाध स्थल पर ऋग्वेद में 'देव' शब्द का प्रयोग हुआ है परन्तु 'असुर' का प्रयोग अनेक देवों के लिये हुआ है। ऋग्वेद प्रथम अष्टक में वरुण (२४ सूक्त. १४ ऋचा), सूर्य्य (३५.७), सविता (३५.१०), इंद्र (५४.३), मरुद्गण (६४.२), ऋतित्व-गण (१०८.६), त्वष्टा (११०.३) के लिये असुर प्रयोग हुआ है। सायण ने असुर का अर्थ बलवान, शत्रुहत्ता, वृष्टिदाता किया है। असुर तूरानी या द्रविड़ परिवार के लोग थे। आर्य उनके देश में आये, यों उनकी परम्पराएँ समान हुईं। इधर प्रलय के बाद मनु हुआ उधर वेन्दीदैड में अँग्रमन्यु के क्रोध के फलस्वरूप प्रलय हुआ तो अहुरमज्द ने नये देश बसाये और इस बसाने के प्रयत्न में वह भटकता फिरा।

ब्रह्म या आदिम गण का चुना हुआ युद्ध नेता ब्रह्मणस्पति बृहस्पति या गणपति

कहलाता था। परन्तु यही गणपति हाथी के सिर वाला देवता नहीं है जो विघ्नेश्वर है और ब्रह्मगायनी के सामने निर्वीर्य है। गणेश आर्येतर देवता है। वज्रयान में यह एक कामुक देवता था।

जनमेजय काल में सत्र परवर्त्ती यज्ञ था। जनमेजय अनेक हुए थे। जनमेजय का सर्प सत्र आर्य-अनार्य संघर्ष था। हेमचन्द्र राय चौधरी ने जनमेजयों को एक करके[1] भारी भूल की है।

गण के तीन रूप रहे।

(१) गण-सगोत्र

(२) गण अनेक गोत्र

(३) गण-राजकुलीन गण। चाणक्य के शब्दों में—'राजशब्दोपजीवित'।

वर्णों के प्रारम्भ में वर्ण-व्यवस्था कार्य-भेद के अनुसार थी। यह सत्ययुग में समाप्त हो गया। त्रेता में कुछ अवशेष बचे रहे।

दास और शूद्र में भेद है। शूद्र ने त्रेता के अन्त में विद्रोह प्रारम्भ कर दिया था (राम-शम्बूक-कथा)। सत्ययुग में जो व्यक्तिगत संपत्ति के भेदभाव का अंकुर फूट गया, वह त्रेता में वेद के विराट पुरुष के रूप में बढ़ गया। जो पहले दास था, वह जब कुछ स्वतन्त्रता पा सका तो शूद्र कहलाया। यहाँ की असंख्य जातियों को दास बनाकर रखना असंभव था। दास का अर्थ था उसकी रोटी पानी का भी प्रबंध करना। समाज के नियम की आवश्यकता थी।

प्रारम्भ में सब अनार्य दास थे। फिर दास रोटी-पानी पाने वाले रहे। खेती और मजदूरी करने वाले अनार्य शूद्र कहलाये। वे बहुत थे। आर्य ने उनकी अंदरूनी सामाजिक पंचायत-प्रणाली को नहीं छुआ, पर दर्जा नीचे दिया। वह जब चाहे जान से मारा जा सकता था। द्वापर में शूद्र के अधिकार बढ़े। संपत्ति के अधिकार भी मिलने लगे। उसके बाद दास भी उठने लगे। कलि में शूद्र काफी बढ़ गया। गण-नास्तिक-युग में दासप्रथा भी टूट गई। चाणक्य के बाद (Serf) भूमिबद्ध किसान दिखाई देते हैं।

संपत्ति के लिये आर्यों के उच्चवर्णों में ब्रह्मक्षत्र युद्ध हुए। त्रेता तक क्षत्रिय विजयी हुए। विष्णु के उदय से देव युग में संपत्ति का उदय हुआ था (तैत्तिरी आरण्यक) विष्णु ब्राह्मण का प्रतीक हो गया, तभी उपेन्द्र ने इंद्र की महत्ता घटा दी। पर जब क्षत्रिय जीते तो विष्णु भी क्षत्रियों के रूप में अवतार लेने लगा।

विष्णु ने जब यज्ञ को स्वायत्त करने की चेष्टा की थी, तब उसके तीन टुकड़े करके अग्नि, इंद्र और विश्व देव ने उन्हें बाँटा था। परन्तु कालांतर में विष्णु अर्थात् संपत्ति-शालियों की विजय हुई। दान लेने वाला ब्राह्मण था। उसने ही संपत्ति का पहला वर्ग कायम किया।

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ एन्शेन्ट इंडिया।

ब्राह्मण का विरोध यों हुआ —

१. इससे क्षत्रिय लड़े ।

२. अनार्य लड़े ।

३. जैन बौद्ध लड़े ।

४. वजूयानी, नाथ लड़े ,

५. संत लड़े ।

६. नयी जातियों ने इससे आ-आकर युद्ध किया ।

परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय का प्रयोग कर लड़ता रहा। उसी ने गण-गोत्र के अधिकारों पर शस्त्रबल से वर्ग संपत्ति अधिकार स्थापित किये ।

स्त्री इस नयी परिस्थिति में दासी हो गई। क्षेत्र और बीज के प्रश्न में संपत्ति का प्रश्न मूल था। ययाति पुत्री बिकती थी और महाभारत तक तो अपहरण होता था। सत्ययुग में श्वेतकेतु ने स्वतन्त्र यौन संबंध रोके थे। परन्तु गणों के असमान विकास से उत्तर कुरु में मातृसत्ता बहुत दिन तक चलती रही।

द्वापर में अनार्य नाश बढ़ा भी। खाण्डववन में नाग जलाये गये। त्रेता में वेद, यज्ञ, वर्ण, आश्रम थे, पर द्वापर में नाश प्रारम्भ हुआ (महाभारत शांतिपर्व २३८-१०१-४) त्रेताग्नि हटकर जब गृहमाग्नि घुसी तब दासप्रथा बहुत जम गई थी और यह विरोध त्रेता में ही मुखर हो चले थे।

पृथु वैन्य के समय में जो ब्राह्मण क्षत्रिय संधि हुई थी, वह टूट चली। शांतिपर्व (५९ अ० ३०-३५) में उल्लेख है कि विष्णु के मस्तक से एक स्वर्ण कमल उत्पन्न हुआ। उस कमल से धर्म की स्त्री श्री पैदा हुई। कार्य और श्री से अर्थ की उत्पत्ति हुई। इसके बाद धर्म, श्री और अर्थ ये सब पृथु के राज्य में स्थिर हुए। वह अब मिट चला। अब आर्यत्व धन और संपत्तिशाली का कार्य हो चला और 'आर्यवर्त्त' की संज्ञा बढ़ चली।

राम के साथ त्रेता का अन्त हुआ। दासप्रथा का राज्य प्रारम्भ हुआ जिसमें आमंत्रण की कुछ ताकतों के बावजूद राजपद पैतृक संपत्ति हो गया। परशुराम-राम के समय क्षत्रिय युद्ध बंद होगया और दोनों ने मिलकर यहाँ के प्राचीन वासियों से युद्ध किया। आर्य दंभ ने विश्वंकृणवन्तमार्यं कहा। आदिम जातियों की फूट का लाभ उठाने वाला राम वास्तव में बहुत सहिष्णु था। यह आदिम जातियाँ राज्य के पीछे लड़ती थीं। (सुग्रीव-वालि) वानरों में राज्य पैतृक संपत्ति थी। राक्षस आर्यों और वर्ण-व्यवस्था के शत्रु थे। वे समुद्र व्यापारी थे।

महाभारत युद्ध में दो दल थे। कृष्ण गण का था, और सहिष्णु था परन्तु अनार्य शत्रु था। अर्जुन भी ऐसा ही अनार्य शत्रु था। कौरव आर्य्य उच्च वर्ग दासप्रथा के निरंकुश राज्य प्रतीक थे। वे संपत्तिशाली दानवों और अनार्यों के मित्र थे। जब कि कृष्ण ने निषादराज एकलव्य का वध किया था (उद्योगपर्व ४८ अ० ७०-८० श्रीकृष्ण

नें कलिंगवासी दन्तवक्र शाल्व आदि को भी मारा था।

कृष्ण थे—आर्य उच्च वर्ग की शक्ति, पर निरंकुश नहीं + ब्राह्मण-व्यवस्था, पर शूद्र को सहूलियत + छोटे-छोटे राज्य मिलकर एक और आर्य शक्ति, पर साथ में दास-प्रथा + 'राज्य' सर्वोपरि।

पाण्डव पक्ष यही था। कौरव इसके विपरीत थे, पर ब्राह्मण इनके भी सर्वोपरि था। दासप्रथा और ब्राह्मण-शक्ति के ऊपर जो आंतरिक विरोध उठा वह पहले महाभारत युद्ध बना, फिर गण (यादव-कुल) का संहार। कृष्ण पक्ष था अभी लूट के लिये आपस में न लड़ो। जातीय युद्ध करो। परन्तु वर्गयुद्ध बढ़ गया। जनमेजय काल में ब्राह्मण उसे रोक सका। पहले विश् ने छोटे-छोटे युद्ध देखे थे जो कुल युद्ध थे। यह वर्गयुद्ध महाभारत युद्ध था। जयोत्पादक परिस्थिति थी। तभी कृष्ण ने 'लोकसंग्रह' की पुकार उठाई।

कलि आया। महाभारत अश्वमेधपर्व ९० अ० ११५-१२० पृ० में यज्ञ का भी विरोध होने लगा।

नया युग बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि अनेक बातें हुईं —

(१) सांख्य और दर्शनों की नींव पड़ी।

(२) 'राज्य सर्वोपरि' 'State super' का भाव बढ़ा।

(३) दासप्रथा को रखने को कुल गणों ने अन्तिम प्रयत्न किया। तीन बार के ऐसे गण स्थापित करने के व्यर्थ यत्न हुए। आर्य 'जातीय' आधार पर 'विश' को मिला कर 'दास' का शोषण रखने को पैतृक परम्परा के राज्य समाप्त किये गये।

(४) उत्पादन का साधन तो न बदला, पर व्यापार और नगर बढ़ने से व्यापार का संतुलन (Balance of trade) बदला।

(५) ब्राह्मण क्षत्रिय ने मिलने के यत्न किये, पर नहीं मिले। वर्ण-व्यवस्था को 'दिव्य' बनाने की चेष्टा हुई, रूढ़ियों का जोर बढ़ा।

(६) वैश्यों और शूद्रों ने उठने का यत्न किया। भागवत पांचराज ने नई समानता अहिंसा फैलाई।

(७) जैन धर्म ने ब्राह्मण विरोध किया। परन्तु जैन बौद्धों की भाँति आगे दासप्रथा के समर्थक नहीं बने। उन्होंने प्रश्न को छुआ ही नहीं। तभी वे बचे रह गये।

(८) अनार्य प्रभाव और शैव मत बढ़े।

(९) दासप्रथा लड़खड़ा गई। भूमिबद्ध किसान (Serf) उठने लगे।

(१०) अनार्थ और शूद्र राजा होने लगे।

(११) वैश्य बढ़े, नागरिक सभ्यता बढ़ी।

(१२) उत्पादन के वितरण में भेद हुआ।

(१३) आभीर आदि नयी जातियों के हमले हुए।

(१४) दासों को पैतृक संपत्ति का अधिकार मिला। निरंकुश राज्यों का समय उठा। सामंतवाद प्रारम्भ हुआ इत्यादि।

यह हमारे प्राचीन इतिहास का उत्तर प्राचीन काल है।

अब अनार्य समूह जो पहले अलग-अलग कबीले थे जातियों के रूप में ही अधिकांश करके शूद्रों में समा गई। जो उच्चस्तर की नाग आदि जातियाँ थीं वे ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णों में मिल गई।

इसी समय ब्राह्मण ने युगभेद का प्रचलन किया।

वैदिक काल पूर्व और उत्तर दोनों ही दासप्रथा में रहे और उनकी समाप्ति द्वापर के साथ हो गई। लौकिक संस्कृत ७०० ई० पू० पाणिनि के समय में खूब फलफूल रही थी। तब दासप्रथा खूब थी और भीतर ही भीतर घुल रही थी। चार सौ बरस में ही चाणक्य के समय तक वह नष्ट हो गई और फिर हमारा मध्यकाल प्रारंभ हो जाता है। यह याद रखना चाहिये कि दासप्रथा का अंत उत्पादन के साधन बदलने के कारण नहीं हुआ, व्यापार का संतुलन बदलने से हुआ। अब इस प्रकार की दासप्रथा का लाभ नहीं था। पैसे का मोल बढ़ चला था। 'आर्य' शब्द 'नागरिक' का पर्याय हो गया था।

यह है हमारे प्राचीन भारत का क्रमिक विकास। दासप्रथा का ही रूप इतने दिन रहा। केवल देव जाति के इतिहास से तमाम व्यस्थाओं का विकास हमें दिखाई दे सका है। आर्यों से अलग जो जातियाँ थीं उनके बारे में हम यों कुछ नहीं कह सकते क्योंकि वे बहुत पुरानी थीं और अब उनके अधिक प्रमाण नहीं मिलते।

अपने एकांग रूप में यदि हम सुनें तो जौन इर्विन ने ठीक कहा है कि हिंदू संस्कृति कितनी भी उलझी क्यों न हो, आधारभूत विकास क्रम सरल है। यदि यह याद रखा जाये कि आर्य तथा अनार्य संस्कृति ने एक दूसरे से अपने को समन्वित करने की चेष्टा की है (द क्लास स्ट्रगल इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर पृ० ७३; द माडर्न क्वार्टर्ली १. २. मार्च १९४६ लंदन)।

जब संसार के अन्य देशों में जंगली (Savage) बर्बर (Barbarian) दासप्रथा समाज (Slavery) से समाज-सभ्यता (Civilization) अवस्था तथा प्रजा सामंत (Ser-feudal) अवस्था को जल्दी-जल्दी पहुँचकर पूंजीवादी (Capitalist) समाज की स्थापना कर गया और आगे कहीं-कहीं समाजवाद (Communism) की भी स्थापना हो गई, भारत में एक-एक युग बहुत धीरे-धीरे बदला। इसके दो कारण थे—

(१) उत्पादन के साधन धीरे बदले।

(२) जातियों की जटिल समस्या से उत्पन्न जाति-समस्या और वर्ण-व्यवस्था।

जब-जब भारत में वर्ग संघर्ष अपने प्रगट या प्रच्छन्न रूप में तीव्र हुआ, उच्च वर्गों ने जातीय समस्या खड़ी की और जनता को भरमाया। इसका अंतिम उदाहरण हमारी

आँखों के सामने हिंदुस्तान और पाकिस्तान का विभाजन है ।

पशुपालन ने उत्पादन के साधन में परिवर्धन उपस्थित किया । यह देवयुग का प्रारंभ था । देव और ऋषि और बर्बरों से अलग हो गये, पहला सामाजिक श्रम-विभाजन हुआ । वे अधिक दूध और भोजन उपजाने लगे, ऊन भी । वस्तुओं का आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ । अब कबीले के अधिपति के माध्यम से नहीं व्यक्तियों के हाथ में यह काम गया । गोधन ही धन था । देवयुग के विकास में धरती पहले क्षण की थी, फिर व्यक्तियों की हो चली । करघे और धातु-प्रयोग दो औद्योगिक अवस्था थीं । लोहे ने नक्शा बदला । अधिक श्रम से पैदावार में बचत शुरू हुई । इससे आदान-प्रदान बढ़ा । दासप्रथा प्रारंभ हुई क्योंकि श्रम से लाभ होने लगा । यह देवयुग का अंत था । 'घोष' उत्पादन के नये साधन थे । गोधन, सामग्री और दासों का वितरण होने लगा । पुरुष का अधिकार बढ़ा । स्त्री घर में घुसी । कुटुंब के बाहर श्रम का संतुलन बदल जाना इसका कारण था । स्त्री के अधिकार बिलकुल छिन गये । यह ययाति की पुत्री का युग था । कुटुंब की बंदिश स्त्री पर छा गई । पितृसत्ता ने मातृसत्ता को फेंक दिया । यद्यपि सब कबीलों में यह नहीं हुआ । यह बर्बर युग था ।

अब उत्तर बर्बर युग आया । वीरता का युग । लोहा बढ़ा । खेती बढ़ी । उत्पादन के साधन में नया परिवर्तन आया । गढ़ बने । अनार्यों के तो पहले से थे । आर्यों ने उनसे सीखा । तेल और फल आदि तथा अन्न अधिक पैदा हुआ । श्रम का दूसरा सामाजिक मुख्य विभाजन हुआ । दास की महत्ता बढ़ी । यह सत्ययुग था । जनता बढ़ी । आबादी बढ़ी । गण मिलकर जाति बढ़ी । सैन्य पैदा हुई । धनी-दरिद्र बढ़े । पड़ोसियों का धन लोभ का कारण हुआ । आत्मरक्षा का साधन-लूट बन गया । यह त्रेता था । फिर सभ्यता उठी । उसमें आंतरिक विरोध स्पष्ट हो गये । इस समय क्या, इससे पहले ही धन का उदय हुआ, धातु धन था । धरती त्रेता के प्रारंभ में धन हो गई । धरती के धन होने से समाज शोषक और समुदाय शोषित में बट गया ।

'राज्य' के उदय से गण टूट चले । कर बढ़कर दृढ़ हो गये । 'राज्य' शोषक वर्ग हो गया ।

अब हम यहाँ कुछ आधुनिक टाटेम जातियों के नाम देना आवश्यक समझते हैं ।

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपनी 'भारतवर्ष में जातिभेद पृ० ११४ पर ई० थर्स्टन की कास्ट्स एण्ड ट्राइब्स ऑफ़ सदर्न इंडिया पुस्तक से टाटेम जातियों की सूची दी है हम उसी में से कुछ उद्धृत करते हैं ।

दक्षिण भारत की जन्तु टाटेम वाली जातियाँ

जाति या टाटेम	उनका हिन्दी रूपान्तर
आनै	हाथी
अरने	छिपकली
अबु	साँप

जाति या टाटेम	उनका हिन्दी रूपान्तर
अबुल	गौ
बल्लि	सरीसृप
बारेलु	भैंस
एलुगु	भालू
गोल्लरी	बंदर
गुर्रम	घोड़ा
हनुमान्	हनुमान्
जाम्बुवर	जाम्बवन्त
जलकुप्पा	मछली
करडि } खिबुडि	भालू
मेकल	बकरी
वट्टे	ऊंट
नाग	नाग
कूर्म	कूर्म

इस प्रकार की इस अल्पसूची से ही पशुसंबंधी नामों के बारे में जो इतिहास में भ्रम हो सकते हैं, वे दूर हो जाते हैं। कवियों के हाथ से जो वर्णन आये हैं उनमें हमें ऊहा का ध्यान रखना चाहिये, जैसे अगस्त्य का समुद्र पीना और दैत्य-असुर अन्वेषण। अर्थात् असुरों का समुद्र में रहना, अगस्त्य का उनका पीछा करना। यही काफी है। इससे आगे इतिहास का क्षेत्र नहीं, श्रद्धा का है।

फिर यह भी याद रखना चाहिये कि हरएक वर्णन एक ही साथ मिलकर नहीं लिखे गये। अलग-अलग आदमियों ने अलग-अलग समय लिखे और क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं लिखे परम्परा में भी भेद पड़ गया।

भारत का प्राचीन इतिहास अत्यन्त जटिल है। उसे किसी वाद के आधार पर सिद्ध नहीं करना चाहिये, पहले तथ्यों को एकत्र करके फिर उन पर दृष्टिपात करना चाहिये। वही नये-नये तथ्यों पर प्रकाश डाल सकता है, वही आगे बढ़ा सकता है।

आर्येतर जातियाँ—आग्नेय और द्रविड़ आज भी हैं और आज वे कहीं-कहीं भिन्न सामाजिक स्तरों पर हैं। दक्षिण में अनेक जातियाँ पहाड़ियों में रहती हैं।

एक समय गंगा-सिंधु के प्रदेश में नाग रहते थे। वे हारे और बहुत से शूद्र बन गये। कुछ भागकर नर्मदा-तीर पहुँचे, फिर नागपुर, छोटा नागपुर आदि उन्हीं ने बसाये।

भारशिव भी नाग ही थे जो ब्राह्मण व्यवस्था में समा गये। आर्यों की भाषा मुख्य हो गई। उसने सब पर प्रभाव डाला। उस पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। परंतु वही विकास करती-करती हमारी हिंदी बंगाली आदि बनी है।

दक्षिण की तमिल आदि द्रविड़ परिवार की भाषाएँ हैं। उनकी भी भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार एक ही उद्गम रूप था जो लुप्त हो गया, अपने विकसित रूपों में खो गया। इन दक्षिण भारतीयों का इतिहास भी बहुत प्राचीन है। बुद्ध और चाणक्य के बाद तो इनका बहुत उल्लेख हुआ है। परंतु पहले भी इनका उत्तर से संबंध है।

यह नहीं समझना चाहिये कि उत्तर और दक्षिण से आर्य ही गये थे। राक्षस, वानर, ऋक्ष आदि अनेक जातियाँ अपना निवासस्थान बदलती रहती थीं। जातियाँ बहुत-बहुत दिन तक जीवित रहती थीं। मद्र वैदिक काल में थे। मद्र बंगाल के ९वीं शती के राजा धर्मपाल के सहायक थे (स्मिथ हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया चतुर्थ सं० पृ० ४१३)। कितने हजारों वर्ष बीत गये थे। मालव पहले पंजाब में थे, फिर राजपूताना, मध्य भारत में फैल गये। आज भी मालविक या मालवीय जीवित हैं। जातियों के रूप इतने बदल गये हैं कि उन्हें देखकर ही हठात् पहिचानना कठिन है।

निषाद बहुत पुरानी जाति थी और बहुत समय तक सशक्त थी। अब भी निषादों के वंशज हैं।

आर्य अपने अनार्य शत्रुओं में सबल लोगों को यदि हरा नहीं पाते थे तो संधि कर लेते थे, यदि हरा देते थे तो उन्हें शूद्रों में बहुत नीचा दर्जा देते थे जैसे 'पासी' और 'चंडालों' की हालत हुई। बिहार की 'भर' जाति का भी यही बुरा परिणाम हुआ।

मैंने यज्ञ के आदिरूप को आदिम साम्यवाद का प्रतीक माना है। यह इसलिये कि यज्ञ का बाह्यरूप यही इंगित करता है। घटना यह है अत्यंत प्राचीन। वेद से बहुत पुरानी। यज्ञ बदलता गया। यज्ञ अंत में धनिकों के हाथ में चला गया। अब प्रश्न है कि यज्ञ में अग्नि की उपासना होती थी। क्या इस प्रकार बलि देने की प्रथा में मनुष्य के भय का निवास नहीं मिलता जो आदिम मनुष्य का इतिहास प्रगट करता है। इस विषय पर विद्वानों ने प्रकाश डाला है। परंतु मैं यहाँ यह स्पष्ट करदूँ कि आदिम मनुष्य का भय ही उसे एक जगह लाया था, उसे सामाजिक प्राणी बनाया था। आग की प्राप्ति भी सामूहिक मनुष्य का यत्न था। धीरे-धीरे भय ने मनुष्य को जो धर्म दिया उसने भेद खड़े किये, भय ही वर्ग निर्माण करने लगा अर्थात् आर्थिक भेदों को जनसमूह ने अज्ञान, भय और उच्च वर्ग के बल के कारण सह लिया। परंतु यह सब विकास की सीढ़ियाँ थीं। प्रत्येक नई व्यवस्था मनुष्य को अपनी पहली अवस्था से आगे बढ़ा रही थी। इतिहास की प्रगति हो रही थी।

प्रारंभिक गणों का जो ऋग्वेद के प्रारंभ में अतीत के रूप में वर्णन है उनमें सामूहिक

कार्य की ध्वनि है और यह और भी प्रमाणित करता है कि यज्ञ आदिम साम्यवाद के रूप में था। यज्ञ बदल गया, जैसे गण का अर्थ परवर्त्ती काल में दूसरा बनता चला गया।

तप अनेक जातियाँ करती थीं अर्थात् वे अग्नि-पूजा करती थीं। असुर भी अग्नि-पूजक थे जिनमें दासप्रथा थी। आदिम साम्यवाद के यज्ञ का इन्हीं ने विध्वंस किया। परवर्त्ती आर्यों के यज्ञ राज्य बढ़ाने वाले मिशनरी यज्ञ थे जिनका ध्वंस आर्यों की राज्य-लिप्सा का ध्वंस था। अस्तु—

रांगेय राघव

आगरा
कार्तिक पूर्णिमा, संवत् २०१०

विषय-सूची

प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास

१

प्रागैतिहासिक काल

आचार्य्यों और विशेषज्ञों द्वारा प्राय: ऐसा कहा जाता है कि पैलियोज़ोइक काल में गोंडवाना, आस्ट्रेलिया, दक्षिण भारत, दक्षिण अफ़्रीका तथा दक्षिण अमेरिका परस्पर भूमिभाग से मिले हुए थे। उसके उपरांत चैसोज़ोइक काल में केवल भारत और अफ़्रीका लेमूरिया नामक भूखंड द्वारा मिले रहे। आनेवाले युग में भारतीय भूखंड संकुचित हो गया और बंगाल की खाड़ी का जन्म हुआ। इसके बाद जब हिमयुग की बर्फ़ पिघलने लगी तब एक भीषण प्रलय आया, जिसमें अनेक देश डूब गये। विद्वानों का विचार है कि इसी प्रलय का वर्णन संसार के प्राचीन साहित्यों में बिखरा पड़ा है। किंतु मेरे विचार में यह एक अत्युक्ति है।

अविनाशचंद्र दास उस मत के प्रचारक हैं, जो आर्य्यों को सप्तसिंधु का वासी मानता है। उनके अनुसार पहले गंगा यमुना का मैदान समुद्र में डूबा हुआ था। उस समय भी आर्य्य सप्तसिन्धु प्रदेश में रहते थे। यही आर्य्य दुनिया भर में फैल गये। मिस्री, पणि, सुमेरु तथा एलाम के वासी उनके मतानुसार सब ही आर्य्य थे, क्योंकि गंगा यमुना का प्रदेश तब जल में डूबा हुआ था; इसीलिये ऋग्वेद के प्रारंभ में इन प्रदेशों का वर्णन नहीं मिलता। लेकिन हमें उनके तथ्यों की पृष्ठभूमि में काम करनेवाले उस गर्व को पहचानना चाहिये जो अंगरेज़ी शासन में अपने को अत्यंत सभ्य और प्राचीन प्रमाणित करने में लगा हुआ था। अविनाशचंद्र दास हज़ारों की तो बात ही क्या, लाखों वर्ष पहले भी आर्य्यों को पूर्ण सभ्य मान लेते हैं। प्रलय के बाद तो उनके आर्य्य सब ओर चल पड़े।

उन्होंने संसार के प्राचीन भूगोल और मनुष्य की प्राचीनता प्रमाणित करने को सर सिड्नी बरार्ड, ओल्डहम, रेगोजिन, कोगिन ब्राउन, मेड्लीकोट इत्यादि के उद्धरण दिये हैं। परंतु वे भूगर्भवेत्ताओं के कालविभाजन की विस्तृति देखने में नितांत असमर्थ रहे हैं। कुछ तथ्य देकर जब उन्होंने उनसे सारांश निकाला है तब उन दोनों में कोई संबंध नहीं रहा है।

अनेक स्थानों पर भारतीय गाथा साहित्य में पुराने नाम नये स्थलों पर रख दिये जाते हैं। वृत्र का सरस्वती तीर पर होना, इंद्र और प्रजापतियों का कुरुक्षेत्र, बदरिकाश्रम तक में वर्णन भ्रमोत्पादक तथ्य हैं। सायण ने वृत्र का अर्थ आम तौर पर 'आर्य्यों के दुश्मन' के लिये किया। परवर्त्ती काल में बहुत से स्थानों को तीर्थ बनाने की लिप्सा ने भी यह गड़बड़ पैदा की है। अतिरिक्त इसके आर्य्यों में यह भी प्रवृत्ति थी कि अपने रखे हुए पुराने नामों को ही दुहराकर वे नई जगह के लिये उपयुक्त करते थे। स्याम जाने वाले आर्य्यों ने वहां जाकर अयोध्या बसाई, जो 'अयु-तिया' कहलाती है। यह प्रवृत्ति प्राय: ही विजेताओं में पाई जाती रही है।

मायोसीन काल में, प्रोफ़ैसर हक्सले के अनुसार, भारत और अबीसीनिया में भूमि-मार्ग का संबंध था।[१] कुछ लोगों का विचार है कि प्राचीन काल में दक्षिण भारत, दक्षिण अफ़्रीका तथा आस्ट्रेलिया एक दूसरे से भूमिमार्ग से जुड़े हुए थे। भारत, अफ़्रीका और आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त बीच की भूमि समुद्र में डूब गई। उस पुराने बड़े महाद्वीप का नाम वैज्ञानिकों ने लैमूरिया नामक भूखंड रख लिया है।[२] संभवत: इसी भूखंड में पहले पहल वनमानुष पैदा हुए। इस भूखंड के बारे में कुछ विद्वान् पूर्ण दृढ़ हैं।[३] डूबे हुए भूभाग समुद्र की समतल सतह बनाते हैं। भारत, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अफ्रीका की जलवायु और वनस्पति बहुत मिलती हैं। यहां एक गोंडवाना महादेश था। संभवत: यह भूखंड दक्षिण अमेरिका तक फैला हुआ था क्योंकि एन्डीज़ में भी मिलती जुलती वनस्पति तथा पशु-पक्षियों में समानता पाई गई है।

इसके उत्तर में जल फैला हुआ था। गहरा समुद्र था। कालांतर में इसके भीतर से धरती निकलने लगी और दक्षिण का भूखंड टूटने लगा।

Tertiary टरशियरी युग—विशेषकर मायोसीन—और प्लायोसीन—युगों में—जब स्तनधारी प्राणी बढ़ने लगे—५०,००,००० या एक करोड़ वर्ष पुराना माना जाता है।[४]

जिस काल को हमने अभी देखा वह निस्संदेह अत्यंत प्राचीन था। सर्वसम्मति से विद्वान् दक्षिण भारत की प्राचीनता को स्वीकार करते हैं।

अरावली पर्वत अत्यंत प्राचीन है। उसके दक्षिण में जो भूभाग है वह पैलियोज़ोइक काल में भी था। उस भूभाग के उत्तर-पश्चिम में समुद्र टर्शियरी युग तक बहता रहा। दक्षिण भारत का वर्त्तमान रूप पहले बहुत विस्तृत था और अब जो रूप है, वह काफ़ी धरती डूबने और सिंधु गंगा के मैदान के उठ आने के बाद की बात है। अरावली के समान ही पूर्वीय घाट (दक्षिण) भी बहुत प्राचीन है। यह पूर्वी प्रतिरोध इतना प्राचीन है कि पैलियोज़ोइक काल के बाद से बंगाल की खाड़ी का जल कभी पश्चिमी भूभाग को

१. ऋग्वेदिक इंडिया १. पृ. ६४.
२. वही. पृ. ६७.
३. पंचानन पृ. ८७-८८.
४. वही. पृ. ८६.

नहीं धो सका, और भारत से पहले के महादेश के पूर्वीय तट पर मदरास था। वह महादेश घट कर ही भारत बना। जब कि यह प्रगट है कि उस प्रागैतिहासिक महादेश की उत्तर-पश्चिमीय सीमा अरावली पर्वत से बद्ध थी, यह साफ़ पता नहीं चलता कि उत्तर-पूर्व में उस महादेश की सीमा क्या थी ? उन दिनों गंगा-सिंधु का मैदान नहीं था। सम्भवतः राजमहल पर्वत तथा आसाम के पहाड़ पूर्वी हिमालय (सिक्किम के पूर्व) तक फैले थे। यह निश्चित है कि पश्चिमी हिमालय से पूर्वी हिमालय पुराना है और बर्मा के पहाड़ और भी कम उम्र के हैं। इस युग के बाद बहुत दिन तक शांति छा गई और नदियां अपना काम ख़ामोशी से कर सकने का वक़्त पा सकीं और उनके द्वारा बहा कर लाई गई रेत से गोण्डवाना प्रांत बनने लगा। इस समय हमें बर्फ़ से घिसे पत्थर मिलते हैं और यह प्रमाणित होता है कि राजपूताने में पहले बर्फ़ीले पहाड़ (ग्लेशियर) थे। और यहां यह निर्विवाद सत्य सामने आता है कि अरावली और राजमहल पहाड़ियों का भारत, दक्षिण अफ्रीका से बढ़ा हुआ भूभाग ही था।[1]

कुछ लोगों का मत है कि इस काल में संसार में मनुष्य आ गया था। वह कौन था, किस अवस्था में, क्या खाता था, कैसे रहता था, हम कल्पना के अतिरिक्त इस विषय में और कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। ऐतिहासिक जब अपनी प्राचीनता सिद्ध करने बैठते हैं तब वे भूगर्भवेत्ताओं द्वारा निर्धारित कुछ तथ्य एकत्र कर लेते हैं और फिर अपने निर्णयों को उनसे मिला कर उपस्थित कर देते हैं।

इस गोण्डवाना प्रांत के वासी तामिल ही थे, यह श्री वी. आर. रामचंद्र दीक्षित ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। आधार क्या है ? पुराने बर्त्तन मिलना। परंतु क्या नितांत वर्बर अवस्था के रहने वालों के परस्पर के भेद आज पूरे प्रमाण न मिलने पर इतनी दूर बैठ कर हम छांट सकते हैं ? इन बहुत दूर की घटनाओं को छोड़कर आज से चार पांच हज़ार वर्ष पूर्व की मिली वस्तुओं को भी देख कर यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि अमुक वस्तु अमुक विशेष जाति की है। अब, प्राचीन जातियों में परस्पर घना संबंध था, यह भी प्रमाणित होता जा रहा है। परंतु घटना-क्रम का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। निस्संदेह तब भूगोल चित्र दूसरा था। अत्यंत प्राचीन काल में मध्य एशिया में एक समुद्र था। वह बहुत बड़ा था और उत्तर में उत्तरी ध्रुव के समीप के समुद्र तक फैला हुआ था। बाद में वह समुद्र चारों ओर से धरती से घिर गया परंतु काले सागर तक फैला रहा। ज्वालामुखियों के फूटने से कालांतर में जो हलचल हुई, बौसफ़ोरस के जोड़ खुलने से यह समुद्र पश्चिम के यूरोपीय भूमध्य सागर से मिल गया और इस मध्य एशियाई समुद्र की अपार जलराशि उधर बह चली। मध्य एशियाई समुद्र पहले छिछला हुआ फिर सूख गया। केवल जो हिस्से नीचे और गहरे थे उन्हीं में जल भरा रह गया और वहां झीलें बन गईं।[2]

---

१. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ. ५४–५.

२. ऋग्वेदिक इंडिया १. पृ. २७-२८.

अब हिमालय के इतिहास पर भी दृष्टिपात करना उचित है। प्लायोसीन युग में हिमालय बाहर निकल आया। कुछ विद्वानों का मत है कि इसके निकलने के बाद ही इसकी तराई में मनुष्य प्रारम्भ हुआ और हिमालय और अरावली के बीच के उस मैदान में फैल गया, जो लगभग २०० मील औसतन चौड़ा और २००० मील लंबा है।

इतने बड़े पर्वत के निकलने में काफ़ी बड़ा भूचाल आया होगा। इस समय जीव-जन्तुओं के पृथ्वी पर वास के प्रमाण मिलते हैं।

प्लाइस्टोसीन युग में यूरोप और चीन में प्राप्त शिवालिक के बंदर, चीते, तेंदुए, जंगली बिल्ली, जरख, जो अब अफ्रीका में मिलते हैं, संभवतः भारत से ही निकले और प्लाइस्टोसीन युग के प्रारंभ में अथवा प्लायोसीन युग के अंत में यहाँ से पश्चिम की ओर चले गये।

मनुष्यों के पहले पशुओं का भी आवागमन रहा। इसका मुख्य कारण जलवायु का बदलना था।

क्वाटर्नरी युग में संसार में तापक्रम कम हो गया। इस युग के बारे में अन्दाज़ लगाया जाता है कि यह समय लगभग १,००,००० से १५,००,००० वर्ष पूर्व हुआ होगा। भारतवर्ष में मनुष्य के चिन्ह इस युग में भी मिलते हैं।[१]

इस प्राचीन मनुष्य के विषय में निम्नलिखित तथ्य मिले हैं। मनुष्याकृति और उसके साम्य का जहाँ तक संबंध है, भारत में उनका काल बहुत पीछे तक मिलता है। गोरखपुर, बयाना, स्यालकोट, बिलोचिस्तान में नाल तथा अदिचन्नल्लूर में कुछ पुरानी खोपड़ियाँ मिली हैं। उन्होंने इस बात के प्रमाण उपस्थित किये हैं। ये खोपड़ियाँ काफ़ी पुरानी हैं।[२]

इन हड्डियों को आर्य्य या द्रविड़ कह कर पहचानने का प्रयत्न हुआ है, किंतु विद्वानों का मत है कि ये और भी पुरानी हैं।

अब यह सर्वमान्य है कि संसार में अलग अलग स्थानों पर अलग अलग समय में मनुष्य की अलग अलग उत्पत्ति हुई है। इस विषय की जांच से खैंचातानी की गुंजाइश काफ़ी कम हो गई है। भारतवर्ष की पुरानी जगहों की खुदाई में कुछ एसी चीजें मिली हैं जो स्पष्ट ही प्रि-चिलियन इओलिथिक कल्चर की हैं। नर्मदा घाटी में नरसिंहपुर में भूत्रा में विंध्य के लाल पत्थर मिले हैं। वहीं कुछ पशुओं की हड्डियां भी मिली हैं।

फिर प्रि-चिलियन गोदावरी के पत्थर के औज़ार दक्षिण हैदराबाद में पैठन के मुंगी नामक स्थान में कुछ जानवरों की हड्डियों के साथ मिले हैं। भूत्रा में जो चीजें मिली हैं, उनका साम्य अफ्रीका, और यूरोप, बर्मा, लंका, जावा तथा अंडमान में प्राप्त हुई चीजों

१. पंचानन पृ. ११. २. वही पृ. २१.

से है। इससे प्रगट होता है कि उस समय के प्राचीन संसार में एक ही समान 'इयोलिथिक संस्कृति' व्याप्त थी।[1]

इतनी दूर दूर तक एकता कैसे थी ? कुछ आलोचक इस तथ्य पर विश्वास करने को तत्पर नहीं हैं। परंतु रहन सहन और भाषा का साम्य यह स्वीकार करने को विवश करता है। प्रशांत महासागर के छोटे छोटे द्वीपों के वासियों के रहन सहन, भाषा में इतना साम्य क्यों है ? क्या वे सभी एक दूसरे से भूमिमार्ग से जुड़े हुए थे ? नहीं। यह अब प्रायः स्वीकृत है कि मनुष्य जलमार्ग का बहुत प्राचीन काल से ही प्रयोग जानता था।

हिंदुस्तान में जो हड्डियां पाई गई हैं, उनके विषय में विद्वानों के मत इस प्रकार हैं :

बयाना की खोपड़ी, वेड्डा किस्म की नहीं है। संभवतः यह 'भर' जाति की है। यह एक द्रविड़ जाति मानी जाती है, जो पूर्वी संयुक्तप्रांत में रहती थी। कुछ लोगों का मत है कि भारत नाम इसी भर जाति के कारण पड़ा।[2] राहुल सांकृत्यायन ने अपनी इस भावना को 'सतमी के बच्चे' नामक कहानी संग्रह की एक कहानी में व्यक्त किया है। यह बयाना के पास गंभीर नदी के पास मिली; धरती से ३५ फीट नीचे थी। यह खोपड़ी बनावट में उस खोपड़ी की आकृति से मिलती है, जो लंदन में टेम्स में मिली है।

नाल, बलूचिस्तान की खोपड़ी ताम्रयुगीन, ५००० वर्ष पुरानी मालूम देती है। इसकी बनावट आधुनिक सीमाप्रांत के निवासी की खोपड़ी से मिलती है। उसमें और दक्षिण भारतीयों में साम्य नहीं है। खाना खाने के कारण दांत घिस गये हैं। शरीर के नीचे के भाग की हड्डियों से प्रकट होता है कि यह शरीर जम कर बैठना जानता था।

बयाना और सियालकोट की खोपड़ियों में कोहकाफ़ की खोपड़ियों से साम्य मिलता है।

हैदराबाद में मैगालिथिक युग से नियोलिथिक युग की खोपड़ियां प्राप्त हुई हैं।

अदिचन्नल्लूर में प्राप्त खोपड़ी प्राचीन मिस्री किस्म की है।[3]

किंतु ये साम्य इतने कच्चे हैं कि इनके ऊपर ही कोई दृढ़ धारणा नहीं बनाई जा सकती। भाषा भी ऐसा ही कच्चा सूत्र है। भाषा के साम्य से जाति की समानता भी अब प्रमाणित नहीं मानी जाती। एक ही भाषाभाषी अनेक जातियों के भी हो सकते हैं।

भारत का दक्षिण भाग प्रायः बहुत पुराना माना जाता है। भूगर्भवेत्ताओं ने प्रमाणित किया है कि दक्षिण की चट्टानें अत्यंत प्राचीन हैं। नीलगिरि, पाली, तथा अन्नामलय पर्वत आदिम पर्वत हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि दक्षिण भारत का पैलियोलिथिक मनुष्य जंगलों में नहीं रहता था वरन् पहाड़ी मैदानों में उसका निवास था। वह अन्य देशों के पैलियोलिथिक मनुष्यों की भांति नितांत बर्बर नहीं था। इससे प्रगट होता है कि दक्षिण

---

१. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० ५५–६.

२. पंचानन—पृ० ३७३. ३. वही—पृ० ४५४.

भारत में पूर्व-पैलियोलिथिक युग में भी मनुष्य रहता था।[1]

दक्षिण भारत में ये प्राप्त चिन्ह निस्संदेह लाखों वर्ष पुराने नहीं हैं, यह देखा जा चुका है। यह समस्त इतिहास बहुत उधर का न होकर केवल हज़ारों वर्ष पुराना ही प्रमाणित होता है। ऐसा अभी तक कोई चिन्ह नहीं मिला है जिससे इन मनुष्यों को आर्य्य या द्रविड़ प्रमाणित किया जा सके। प्राचीनकाल में जब एक जाति दूसरी जाति से मिलती थी तब उसे अपने और दूसरे के बीच में रेखा खींचने की आदत नहीं थी; न अब है। एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ना आवश्यक है।

हिन्दुस्तान में कुछ गुफा मिली हैं, जिनमें मनुष्य के रहने के चिन्ह मिलते हैं।

बिल्लसरगम गुफा पूर्व-नियोलिथिक युग की हैं। उनमें जादू के रिवाजों के प्रचलन के चिन्ह मिलते हैं। शायद यहां के निवासी आदमियों की खोपड़ी का शिकार करते थे। हड्डियों के ढेर में न जानवर, न आदमी,—खोपड़ी नहीं मिली। दो तीन चमगादड़ों की खोपड़ी बची हैं। २०० हड्डी के हथियार मिले हैं। जंगल में काटने, खाना तराशने के सब तरह के औज़ार हैं। कई तरह के तीर, छोटे छुरे, खुरचने वाले, छैनी, परशु के फलक इत्यादि उनमें हैं। यहां शायद मांस पकाया जाता था। एक बड़े जानवर की हड्डी का बड़ा छुरा भी मिला है। शायद यह लोग वेड्डा ही थे। जादू का रिवाज था। आधुनिक वेड्डा भी भूतों (यक्कू) से डरते हैं।

इस अस्थि युग के साथ ही उस काल के चित्र—तत्कालीन संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं।

सिंगनपुर की गुफाओं के चित्रों का स्पेन के गुफा चित्रों से साम्य है। आस्ट्रेलियन साम्य की कुछ जातियां—हो, संताल इत्यादि भारत में अब भी हैं। इनकी मुखाकृति सँकरी, सिर लंबे, और चेहरे चपटे होते हैं। यह लोग अपने झोपड़ों और घरों की दीवारों पर चित्र बनाते हैं। उनमें यूरोप की गुफा चित्रकला से साम्य दिखता है।

आस्ट्रेलिया, भारत, और स्पेन, ये तीनों देश बहुत दूर दूर हैं। उस समय मनुष्य के पास यातायात के अच्छे साधन नहीं थे; न वह यात्रा के उद्देश्य से चलता था। सारा संसार उसका घर था, क्योंकि वह खेती करना नहीं जानता था और जब तक कृषि नहीं होती तब तक मनुष्य को पृथ्वी से अपनत्व का भाव उदय नहीं होता। जहां उसे खाना मिलता है, वह उसी स्थान को अपने रहने योग्य समझता है। उसका खाना मांस तथा फल फूल है। वह है, जो उसे तैयार मिल जावे। अस्त्र इसलिये बनाये जाते हैं कि मनुष्य अपनी रक्षा कर सके और साथ ही शिकार भी कर सके। गुफा से इसलिये संबंध है कि बहुत समय तक प्रकृति की मार खा खा कर आखिर में उसकी समझ में आ गया है कि वह गुफा में रह कर बर्फ़, आंधी, तूफ़ान और वर्षा से बच सकता है। आग ने उसे पशु से ऊंची अवस्था में पहुँचाया और वह मांस पकाकर खाने लगा। इस प्रकार मनुष्य का आवागमन

१. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० २–३.

भोजन की खोज में इधर से उधर, और उधर से इधर होता रहता है। जहां भी गुफा में वह निवास बनाता है वहीं अपने चिन्ह छोड़ देता है।

मनुष्य में प्रकृति के प्रति जो भय और नासमझी की भावना थी, उसी ने उसे जादू के विश्वास का प्रदान किया। क्योंकि वह प्रकृति के कार्य्य व्यापार को बिल्कुल नहीं समझता था, वह उससे डरता था।

हिंदुस्तान में इनका वास अनेक स्थानों पर रहा। अब गुफा कला---बिल्लसरगम, वायनाड के एडकल, उत्तर पश्चिम प्रांत की कैमूर श्रेणियां, मिर्ज़ापुर, बेलारी, बघेलखंड, बुंदेलखंड, लंका, तिब्बत, रायगढ़, जिला सिंघनपुर, इत्यादि में मिली हैं। रायगढ़ चित्रों में शिकार के दृश्य स्पेन गुफा कला जैसे हैं। उनके बर्त्तन प्रागैतिहासिक मिस्र के से हैं। सिंघनपुर के मंदिर संभवतः उन दिनों उत्तर भारत से दक्षिण जाते लोगों के रास्तों पर पड़ते थे। टॉटेम तथा जादू का विश्वास था। कंगारू या कंगारूमुद्रा मिलती है। यह चित्र मुद्रा यूरोप में मिलती है। आस्ट्रेलिया तथा स्पेन के बैल और सांभर शिकार के से चित्र हैं। बेलारी की एक गुफा में शिकार दृश्य है और ६ नोकों का एक सितारा भी बना है। एडकल---वायनाड में चित्रों के मनुष्य सिर पर भी कुछ पहने हैं। वहाँ स्वस्तिका तथा सूर्य्य के चिन्ह हैं। जादू के प्रतीक चौखूंटे खाने हैं। सब नियोलिथिक युग के लगते हैं। घटशिला में एक परवर्त्ती कैस्पियन चाकू मिला है। कैमूर श्रेणियां बीच में श्रृंखला जोड़ती होंगी, क्योंकि वे कैस्पियन और विंध्य के बीच में आती हैं। घोरम नगर गुफा, पैरगन्नाह-बुरलूर, हरिनहरन में गैंडे के शिकार के दृश्य हैं। अब यह गैंडे की किस्म भारत में मिलती ही नहीं। विंध्य के कुछ गुफा-चित्र गेरू के बने हैं। घोड़ों से मिलते पशु, तीर-तरकशधारी, शिकार, ये चित्र बने हैं। ये चित्र किसी धार्मिक विश्वास को प्रगट करते हैं। इनमें पालतू पशुओं का शिकार नहीं है, न उनके चित्र ही हैं। आज भी भूमिज (संताल जाति से साम्य रखने वाली) स्त्रियां घरों के भीत-चित्र बनाती हैं और उनमें पूर्वी स्पेन तथा आस्ट्रेलिया चित्रों से अद्‌भुत समानता दिखाई देती है। संभवतः माता की पूजा का प्रारंभ उनमें हो चुका था।

माता की पूजा संसार में प्रायः ही सब से प्राचीन उपासना मानी जाती है।

मदरास और चेंगलपेट ज़िलों में कुछ पैलियोलिथिक मनुष्य के चिन्ह मिले हैं। अब दक्षिण, मध्य तथा पश्चिमी भारत में उनके निवासों के अवशेष नहीं मिलते। कुछ औज़ार मिले हैं। वे जंगली थे, पर नितांत बर्बर नहीं थे। उनके बनाये पत्थर के औजार तस्मानिया और आस्ट्रेलियावासियों के औजारों के मुकाबले में बेहतर बने हैं।[1]

भारत में अनेक जातियों के मिलन से कुछ ऐसे मेल मिलते हैं, जिन पर एक दूसरे का प्रभाव मिलता है। कोई जाति विशेष जल्दी उन्नति करती थी, किसी को उतनी ही उन्नति करने में अधिक समय लगता था। इंग्लैंड में पाषाण युग का अंत लगभग १८००

१. ओरिजिन एण्ड स्प्रेड आफ़ द तमिल्स पृ० ५७.

ई० पूर्व हुआ, किन्तु न्यूज़ीलैंड में लगभग १८०० ईसवी सन् में।[1] प्रायः ३६०० वर्ष का भेद हो गया।

उत्पादन की ये प्रणालियां सामाजिक विकास की विभिन्न मंज़िलों को प्रगट करती हैं। आदमी के औज़ार उसकी सामाजिक सभ्यता पर प्रकाश डालते हैं।

प्राचीन पैलियोलिथिक काल में भारत में जो जातियां थीं, वे हब्शी थीं। इन जातियों के लोग यहां के सब से पुराने निवासी थे। ये लोग कंदमूल एकत्र करके खाने पीने का काम चलाते थे।[2] इनसे पहले के वासियों का अभी तक पता नहीं चला है।

गोदावरी और नर्मदा के तीरों पर कुछ वस्तुएं मिली हैं। उनकी प्राचीनता को देख कर प्रतीत होता है कि भारत में यूरोप से भी पहले मनुष्य का प्रारंभ हो चुका था। आदिम मानव जावा का पिथीकैन्थ्रोपस* माना जाता है। संभव है गोदावरी और नर्मदा में उस के बाद की स्टेज का ही मानव रहता था।

नियोलिथिक काल की अनेक वस्तु आज भी बची हुई हैं। बहुत जगह हिंदू शिव लिंग को पेड़ों के नीचे जल चढ़ा कर पूजते हैं, वह उन्हीं नियोलिथिक युग के मानवों की बनाई चीजें हैं।[3]

एक युग विशेष के समाप्त हो जाने पर यह आवश्यक नहीं है कि उसके औज़ार फिर काम में नहीं आयें।

दक्षिण भारत की जातियों में हब्शी तत्त्व है। यह विश्वास किया जाता है कि हब्शी-तत्त्व अफ्रीकन या आस्ट्रेलियन प्रभाव नहीं था, वह मेलेशिया से आया था। थर्स्टन का मत है कि मलय द्वीप समूह के शकाइस से साम्य है।[4]

हब्शी इतनी दूर से यहाँ आये या यहाँ से जाकर वहां फैल गये यह नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष के ये सबसे पुराने निवासी आदिम पाषाण युग के वासी थे। अनेक जातियां भारत में आई और उन्होंने हब्शियों को यहां देखा। ये लोग बहुत सी जातियों में घुलमिल गये। दक्षिण भारत तथा पूर्वीय भारत में इनका आकृतिसाम्य अधिक मिलता है। अलग से ये लोग अब हिन्दुस्तान की सीमा में नहीं मिलते। हिंद महासागर में जो नीकोबार नामक द्वीप है, वहां इनके अवशेष अधिक मुखर हैं। अजन्ता कालीन चित्रों में कुछ आकृतियां ऐसी हैं, जिनमें हब्शी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। संभव है हब्शी तत्त्व तब तक कुछ अधिक रहा, जो इन दो हज़ार वर्षों में बिल्कुल ही खो गया। अब हब्शी तत्त्व को अलग नहीं किया जा सकता।

---

१. द मौडर्न क्वार्टरली, मार्च १९४६, पृ० १८.
२. इन्डो आर्यन एण्ड हिंदी पृ० २.
३. पंचानन पृ० २७९. *आदिम मनुष्य.
४. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० ९.

प्रारंभिक मनुष्य की संस्कृति तथा सभ्यता की कुछ मंज़िलें मानी गई हैं, जो इस प्रकार हैं :

(१) तस्मानिया—भद्दी पैलियोलिथिक संस्कृति। बर्त्तन, खेती, कपड़े, झोंपड़े कुछ नहीं। सिर्फ़ कुछ खुरदुरे पत्थर, चाकू और खुरचने के औज़ार। लकड़ी और पत्थर के औज़ार। डंडेनुमा एक भाला। एक खोदने की लकड़ी। बंधे हुए तख़्ते, जिनसे पानी में तैरा जा सके। चमड़े की थैलियां या बोतलें। पत्तों के आश्रय (घर); अंडमन में इनके चिन्ह अवशिष्ट हैं।

(२) दूसरी मंज़िल में बूमैरंग का प्रयोग। बूमैरंग का अर्थ है वह तीर, जो मारने वाले के पास लौट आये। यह तीर ऐसे बीच में एक झुकाव देकर बनाया जाता है कि एक विशेष ढंग से फेंकने पर फेंकने वाले के पास लौट आता है। दक्षिण आस्ट्रेलिया में पाया गया है। यह नियोलिथिक युग की वस्तु है। इस समय मछली पकड़ने का कांटा, बुनी हुई टोकरियां, ढाल के स्थान पर हमला झेलने को एक डंडा, ऊपर से नुकीली आकृति के घर; छत, दीवाल अलग अलग नहीं किये जा सकते। घर की बनावट में गोलाई का अधिक प्रयोग। इसके अवशेष भारत के दक्षिणी जंगलों में छूट गये हैं।

(३) तीसरी मंज़िल टॉटम की है। टॉटम धर्म विश्वास का रूप है; पशु, पक्षी, वृक्ष इत्यादि की उपासना, अपने को उस उपास्य से जोड़ लेना। उत्तर आस्ट्रेलिया, पश्चिमी न्यूगिनी, दक्षिण अफ़्रीका, दक्षिण अमेरिका, में टॉटेम जातियां मिलती हैं। अपने देश में छोटा नागपुर के आस पास। घर नीचे गोल, ऊपर नुकीले। छोटी लकड़ी की ढालें। आदिम बांसुरियां और तुरही।

(४) चौथी मंज़िल में मनुष्य मुँह पर तरह तरह के चेहरे चढ़ा लेता था। उत्तर पूर्व आस्ट्रेलिया, पूर्वी मैलेनेशिया, पूर्वी न्यूगिनी, सिंहाली, बंगाली, इन देशों और जातियों में यह प्रथा प्रचलित थी, और है। दक्षिण के नृत्यों में 'चेहरा' चढ़ा लेते हैं।[1] आस्ट्रेलिया के मावरी अपने चेहरों को ही रंग लेते थे।

(५) पांचवीं मंज़िल में युद्ध का धनुष है। यह मैलेनेशिया, अफ़्रीका, अमरीका, उत्तर भारत की आदिम जातियों में पाई गई प्रथा है।[2]

ये मंज़िलें हमारे सामने मानव सभ्यता की विभिन्न मंज़िलों को काफ़ी साफ़ कर देती हैं और जातियों के विभिन्न समय में हुए विकास पर प्रकाश डालती हैं।

समुद्र की बाधा रहते हुए भी दूर दूर तक महाद्वीपों और द्वीपों में एक से रीति

---

१. चेहरा लगाने वाली जाति का विकास हमारे इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। दक्षिण की कुई जाति में यह प्रथा आज तक है। संभव है इन चेहरा लगाने वालों को ही आर्य्य "इच्छारूपधर" कहते थे। प्रकरण राक्षस जाति तथा कुई के संबंध में प्रगट होगा।

२. पंचानन पृ० ४३१–३२.

रिवाज मिलते हैं। ये प्रगट करते हैं कि परस्पर जातियों में संबंध था। आदिम मंज़िल में ही मनुष्य के पास तैरने का प्रबंध था, यह हमने अभी देखा। जहाज़ या नाव के लिये धातु आवश्यक हो, यह गलत है। अब भी पैसिफ़िक की कुछ पुरानी जातियों में ये तख़्ते जोड़ कर फंदों में कस दिये जाते हैं और फिर द्वीपवासी उन पर काफ़ी दूर दूर तक समुद्र में निर्भय घूमते हैं।

पंचानन ने पृष्ठ २२९ पर यूरोप तथा भारत के युग विशेषों की तालिका दी है। यहाँ भारत विषयक तालिका उद्धृत की जाती है :

४०,००० से २४,००० ई० पूर्व	पूर्वी भारत में मैसोलिथिक युग।
२४,००० से १६,००० ई० पू०	सिंघनपुर तथा मिर्ज़ापुर गुफाकाल।
१०,००० ई० पू०	क्रीट, सूसा, अनाउ के समकालीन—(सिंधु सभ्यता का प्रारंभ ?)।
६००० ई० पू०	बाँदा।
४००० ई० पू०	पूर्व वांशिक मिस्र, ताम्र युग (पश्चिम एशिया, अफ्रीका में)। (पूर्वी भारत में लौह युग ?)।
२५००—१९०० ई० पू०	मिस्री ११–१३वीं पीढ़ी। (मोअन—जो—दड़ो)।

भिन्न जातियों के भिन्न समयों में आदान-प्रदान से कहीं ताम्र के बाद लौह युग आया है, कहीं पाषाण युग के बाद ही लौह युग आ गया है। इस प्रकार नई नई जातियों का संबंध होता था। लौह आर्य्य देन या पहले से भारत में था, इस विषय पर विद्वानों में काफ़ी मतभेद है।

इन जातियों का आवागमन एक दूसरे के काफ़ी बाद हुआ है। कोई कोई जाति समसामयिक भी रही।

हब्शी के अतिरिक्त निषाद जाति को भी भारत में बहुत प्राचीन माना जाता है। निषादों का एक समय अच्छा ज़ोर था। बहुत परवर्ती काल तक निषादों का उल्लेख मिलता है। निषादों का आर्य्यों से सम्बन्ध हुआ था। आर्य्यों के तीन वर्णों से जब यहाँ के आदिम निवासी मिले और आर्य्यों ने उन्हें हराया तब आर्य्य व्यवस्था में शूद्र वर्ण का उदय हुआ। परंतु निषाद इन चारों वर्णों से अलग माने जाते थे, इसका उल्लेख हुआ है।[१] महाभारत में इसे एक पहाड़ी म्लेच्छ जाति कहा गया है। रामायण काल म निषाद मध्य-भारत में भी वर्णित हैं।[२] आर्य्यों ने इनका बहुत प्राचीन काल में उल्लेख किया है।[३]

१. वेदिक इन्डैक्स भाग १. पृ० ४५३.

२. आदि काण्ड, सर्ग १, अयोध्या काण्ड—५१

३. ऐतरेय ब्राह्मण ८. २.

भिन्न जातियों का क्रम से विकास इस प्रकार हुआ बताया जाता है ।
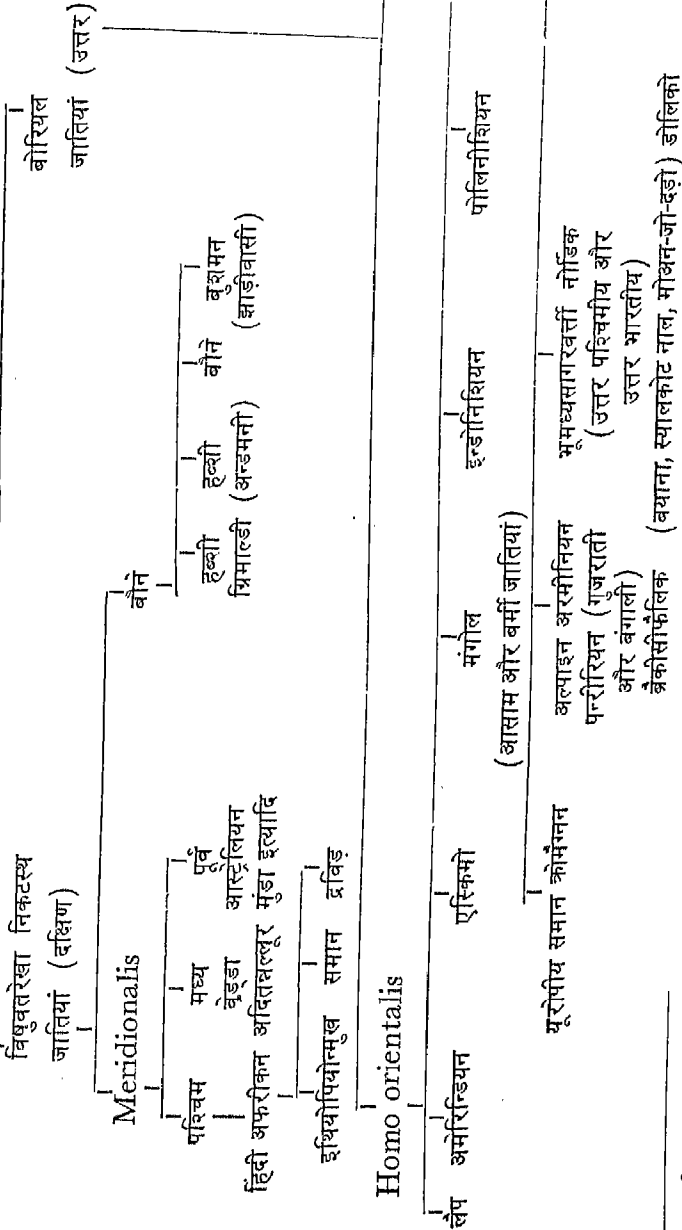
१. पञ्चानन पृ० ३६२.

महीधर ने निषादों को भील या भिल्ल कहा है। जब परवर्ती काल में उस जाति के विषय ये वर्णन मिलते हैं तब और भी बहुत प्राचीन काल में इनकी सामाजिक व्यवस्था को समझना कठिन नहीं है। यह जाति आर्य्यों के आने तक मध्य बर्बर युग से आगे नहीं पहुंची थी।

निषाद भी एक समय गंगा यमुना के मैदान के ही वासी थे, ऐसा इंगित मिलता है।

अनेक जातियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप खुदाइयों में भारत में निम्नलिखित क्रम विकास से प्राचीन हड्डियां प्राप्त हुई हैं, जिनसे यह प्रगट होता है कि अमुक जाति के बाद यहाँ अमुक जाति का प्रसार हुआ :

(१) हब्शी (२) द्रविड़ पूर्व (ऑस्ट्रेलियावाले तथा वेड्डा) (३) द्रविड़ (४) लंबे डोलिको सिफैलिक (५) डोलिको सिफैलिक आर्य्य (६) ब्रैकीसीफैलिक हिंदी यूरोपीय

यह समस्त बर्बर युग का चित्र है। किंतु यह बर्बर युग भी बहुत लंबा है। अतः इसका जातियों के साथ संबंध देखना भी आवश्यक है। रेखाचित्र इस प्रकार है :
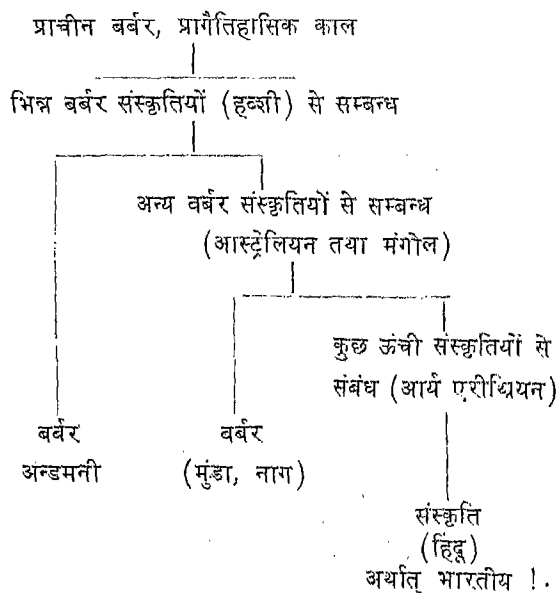
काल क्रम से यहाँ आर्य्य ऊँचे स्तर पर माने गये हैं। भारत में जब आर्य्य आये तब वे पहले से अधिक सभ्य हो गये थे।

प्रागैतिहासिक काल की इन हब्शी, निषाद जातियों के बाद हमें नई जातियों के दर्शन होते हैं। ये नई जातियाँ आस्ट्रिक जातियां कहलाती हैं। आस्ट्रिक को हिंदी में आग्नेय कहते हैं।

२

आग्नेय युग—द्रविड़ों से पहले

आस्ट्रिक जातियों ने भारत में गहरा प्रभाव छोड़ा।

भारत में, भले ही आर्य्य भाषाओं ने सब पर अधिकार कर लिया, परन्तु आर्य्यों के होम के स्थान पर कर्म और योग तथा पूजाविधि ने अपना प्रभाव डाला। विवाह पद्धति, धोती और साड़ी का पहनना, मांग में स्त्रियों का सिंदूर डालना—यह सब आर्य्यों से पहले के निवासियों की देन है।[1]

दक्षिण बिलोचिस्तान, दक्षिण भारत में—(इरूल, कादिर, कुरुम्बर, पणियन इत्यादि अनेक जातियां हैं जिन में) प्राचीन हब्शी प्रभाव मिलता है। आसाम की नागा जाति में, तिब्बती बर्मी कबीला जातियों में भी हब्शी प्रभाव है। उनमें प्राचीन हब्शी घुलमिल गये। भारत में अंडमान, मलय में यह कुछ जीवित रहा, लेकिन क्रम से आग्नय द्राविड़ तथा आर्य्यों से प्रभावित हुआ। मूल हब्शी भाषा अंडमनी भाषा में मिलती है।[2]

इन हब्शियों के बाद आस्ट्रिक (आग्नेय) आये, दक्षिण तथा पूर्व—मलाया, इंडोनीशिया (सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो, सेलीबीज तथा फ़िलिपाइन) तक, और वहाँ से माइक्रोनीशिया, तथा मैलेनेशिया (कैरोलीन द्वीप समूह, मारशल द्वीप इत्यादि) और बिस्मार्क द्वीपसमूह, सोलोमन द्वीप, सैन्टाक्रूज द्वीप, न्यू हैबीडीज, न्यू कैलेडोनिया, फ़िजी इत्यादि) तक, और फिर पोलिनेशिया (समोआ, टोंगा, कुक द्वीप, सोसायटी द्वीप, ताहिती, तुओमातू द्वीप समूह, मार्केसस, न्यूजीलेंड, हवाई, रपन्युई, अथवा पूर्वी द्वीपसमूहों) तक उनका प्रसार हुआ। ये सब भाषाएं, जो इन्डोनीशिया, माइक्रोनेशिया, तथा मैलेनोशिया और पोलिनोशिया के द्वीपों में बोली जाती हैं, वे आस्ट्रिक (आग्नेय) परिवार की आस्ट्रोनेशियन शाखा कहलाती हैं।

मूल आस्ट्रिक संभवतः मंगोल से निकट था संबंधित थे। उनका माइक्रोनेशिया में हब्शियों तथा पोलिनेशिया में काकेशियन जातियों से संसर्ग हुआ। इन्डोचीनियों के वंशज—मोन, ख्मेर या कम्बोडियन, चम, स्टीङग, बहनार, पलौंग, तथा ऐसे ही अन्य बने। एक दूसरा दल समुद्र पथ से नीकोबार की ओर गया और कुछ लोग (खासी जाति के पूर्वज) आसाम में घुसे।[3]

भारत में अनेक आस्ट्रिक कबीला जातियाँ हैं : कोल, खासी, मोन ख्मेर। नियो-

---

१. इंडो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० ३१ २. वही पृ० ३३.

३. इन्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० ३४,

लिथिक युग। लोहे और ताँबे का भी प्रयोग प्रचलित था। आदिम रूप की खेती-बाड़ी करते थे। बीस बीस करके गिनते थे। हिंदी में कोड़ी, बंगाली में कुड़ी इसी गिनती का रूपांतर है। (संस्कृत कोटि भी इससे बना लगता है) तिथि (चन्द्रमानुसार) से दिन गिनने की हिंदू रीति का भी आग्नेय स्रोत है।[१]

भारत के आस्ट्रिक--खासी (आसाम), कोल (मुण्डा), लोगों का (संताल, मुण्डरी, हो, कोरवा, भूमिजी, कुर्कू, सोर या शबर, गदब इत्यादि के समान) निस्संदेह मंगोल, द्राविड़, और संभवतः हब्शियों से भी रक्त सम्मिश्रण हुआ था।[२]

भारत में आस्ट्रिक उत्तर भारत, पंजाब, मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में रहते थे। गंगा, जो संस्कृत शब्द है यह भी किसी खोंग,* कियाग जैसे आस्ट्रिक शब्द का संस्कृत रूपांतर है। आस्ट्रिक आज भी उत्तर भारत के हिंदू मुस्लिम घरों, ग्रामगीतों, ग्राम विश्वासों और मतों में जीवित हैं। अब उनके रिवाज हिंदू हैं, भाषा आर्य्य है, घुलमिल गये हैं; फिर भी ढूंढने पर उनका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।[३]

आस्ट्रिक भाषाओं ने भारत में आर्य्य भाषा के प्रसार में सहायता दी। संभव है आस्ट्रिक भाषा का एक रूप उत्तर में काश्मीर के भी परे हुंज़ानगेर तक पहुंचा था, जहां अब बुरुशास्की बोली जाती है; जिसका न अपने पास की किसी बोली से संबंध है न किसी दूर की से ही। लेकिन उसमें दो एक बातें ऐसी हैं जो आस्ट्रिक से मिलती हैं। हो सकता है कि प्राचीन काल से ही आस्ट्रिक का यह रूप अलग हो गया और अपना विकास करता रहा। भारत के उत्तर पश्चिम, पश्चिम में भी यह भाषा गई होगी। इसमें हिन्दी-यूरोपीय भाषा परिवार से आधाररूप भेद है।[४]

यह आस्ट्रिक भाषा प्रसार ईसा से हज़ारों वर्ष पूर्व हुआ।[५]

पैसिफ़िक महासागर में भारतीयों की समुद्र यात्रा तथा अमेरिका तक जाना कोलम्बस से बहुत पूर्व आर्य्य-द्रविड़-पूर्व जातियों में प्रचलित था। बाद में ये जातियां मिल गईं। जब प्रशांत महासागर के द्वीपों में यूरोपवासी पहले पहल गये तब वहां के निवासियों ने उन्हें बताया था कि वे सदियों पहले मलाया द्वीपसमूह तथा एशिया की ओर से आये थे।[६]

कुरुम्बार, इरुलार, तोड़, लंका की वेड्डा--इत्यादि जंगलवासी तथा पहाड़ी जातियां--द्रविड़-पूर्व जातियों में से कुछ अवशिष्ट जातियां हैं।[७]

बहुत प्राचीन काल में मेलेशिया तथा पोलिनेशिया से दक्षिण भारत का संबंध रहा होगा। मेलेशिया की भाषा में अनेक दक्षिण भारतीय शब्द मिलते हैं। दक्षिण भारतीय

---

१. वही पृ० ३५.
२. इन्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० ३४
३. वही पृ० ३४.
४. इंडो आर्यन एण्ड हिंदी पृ० ३७.
५. वही पृ० ३६.
६. असुर इंडिया पृ० १२४.
७. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० ६.
*खोंग शब्द का मणिपुरी भाषा में अर्थ है: नाला. (कोंगाइ लालपम्)

में मेलेशियन शब्द तुलनात्मक रूप में कम हैं। यह प्रगट करता है कि प्राचीन तमिल वहां जा कर बसे होंगे।[1]

तमिलों की यात्रा इस युग विशेष के बाद की प्रतीत होती है। एक जाति विशेष की बनाई राह पर कालांतर में दूसरी जाति का आवागमन संसार में होता रहा है। नई आने वाली जाति ही अब भाषा और संस्कृति को काफ़ी हद तक लादने में समर्थ होती है। इससे एक बात और प्रगट होती है। मेलेशिया वासी कम आये, दक्षिण भारत के व्यक्ति अधिक गये। पथ था, नई आई जाति ने उसका प्रयोग किया और वहीं मेलेशिया में जाकर घुल मिल गई।

इससे यह भी प्रगट होता है कि मेलेशिया का हब्शी तत्त्व दक्षिण भारत पर अपना उतना प्रभाव नहीं छोड़ सका, जितना दक्षिण भारतीयों ने मेलेशिया में जाकर छोड़ा। आर्य्य भाषाओं के इतिहास से यही प्रगट होता है।

मेलेशिया का हब्शी तत्त्व पुराना था; उसके मुकाबले में दक्षिण भारतीय तत्त्व परवर्त्ती था। इससे यह स्पष्ट है कि द्रविड़ों से पहले भी इन दूर दूर फैली हुई जातियों में परस्पर संबंध था। कालांतर में अरब व्यापारी भी इसी प्रकार अपने से पहले विद्यमान जातियों के बनाये पथों के ज्ञान लेकर दक्षिण भारत आये थे और जावा सुमात्रा तक जा पहुंचे थे। अरबी भाषा के अधिक प्रभाव इन देशों पर प्रगट हैं, परंतु इन देशों की भाषाओं के उतने प्रभाव अरबी पर नहीं मिलते।

आग्नेयों में से सोर–शबर थे।[2] वे मुंडा परिवार में आये हैं।[3] उनमें हब्शी तत्त्व नहीं है।[4] कालांतर के वर्णनों में उनको दो दो दुर्गम कहा गया है।[5]

गदब कबीला जाति मुंडा भाषा का प्रयोग करती है (इंक ३ जुलाई १९३६ अप्रैल १९३७. संख्या—१-४ पृ० ६१८).

भाषा वैज्ञानिकों ने इनका भाषा पर गहरा प्रभाव स्वीकृत किया है। कम्, कर, कल, तम्, तर, तल, पम्, पर, पल—ये जिन नामों के प्रारंभ में हैं, वे शब्द अपने आस्ट्रो-एशियाटिक स्रोत की ओर इंगित करते हैं।[6]

जेम्स हर्नल ने दक्षिण समुद्र तीरवर्त्ती द्रविड़पूर्व जातियों पर पोलिनीशियन प्रभाव बड़ा गहरा माना है। जब द्रविड़ दृश्य में आये तब ही एक मलय जाति की धारा आई और उसी ने को-को वृक्ष लगाना प्रारंभ किया। ए. वेबैर ने इन्डोनीशिया के प्रभाव को भी भारत में ढूंढा है। आस्ट्रो-पोलिनीशियन ताबौं तथा ता-बुवम (अथर्ववेद पृ० १३) का साम्य उन्हें इसका आधार प्रतीत हुआ।

वैदिक काल के अंत में यास्क ने काम शब्द का अर्थ बताने में अपनी कठिनाई को

---

१. वही पृ० ९. २. जआहिरिसो १२. जुलाई-अप्रैल १९३८-३९ पृ० ५९.
३. वही पृ० ६१. ४. वही पृ० ६९.
५. वही पृ० ७१. ६. प्रि आर्य्यन एण्ड प्रि द्रविडियन पृ० ९९.

स्वीकार किया है। उसने काम[1] भोज कहा है। यह भी आस्ट्रिक शब्द है, जिसे यास्क नहीं जानता था।

इन जातियों के काल के विषय में कोई सर्वसम्मत मत अभी स्थिर नहीं हो सका। भाषा वैज्ञानिकों का अंदाज़ है कि हिंद-आस्ट्रेलियन संस्कृति का समय १४००० से ६००० ईसवी पूर्व माना जा सकता है। इनका मैसोलिथिक स्रोत माना जाता है।

भारत की गुफा कला तथा अन्य औज़ार जिनमें मेसोलिथिक प्रभाव है और लंबे सिर तथा चपटी मुखाकृति के छोटा नागपुर के निवासी, जिनके झोंपड़ों की बनावट आज तक पूर्वी स्पेन की निर्माणकला से साम्य रखती है, यह प्रगट करता है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया का मैसोलिथिक-युगीन संस्कृति को फैलाने में काफ़ी हाथ रहा है। घुमक्कड़ जातियों के झाड़ीवासी रूप का अब कोई चिन्ह शेष नहीं है। फिर भी भारत की कोलारी (मुण्डरी, संताली, भूमिज, हो, बिरहोर, कोड, तुरी, असुरी, कूर्कू), खरिया, जुआङ, शबर तथा गदब भाषाएं, मलय द्वीप समूह की सकई तथा सेमाङ, खासी सहित अनामी, बैंरिसी तथा मोन-ख्मेर भाषाएं, मलुस्का द्वीपों के आदिम निवासियों की बोलियां, आस्ट्रेलियन कबीला जातियों की दिप्पिल, तुरुबुल, कमिलराय, वोडी वोडो, किङ्मकी वेलवुन, टौङ्गू, रोङ तथा अन्य बोलियां और नीकोबारी भाषा की कार-नीकोबार, चउरा टेरैसा तथा शोङ्पोन बोलियां, अपने शब्द तथा व्याकरण साम्य के कारण, एक ही स्रोत से नहीं निकल कर भी, उस घने संबंध को प्रगट करती हैं, जो जातियों के परस्पर मेल-जोल के कारण ही हो सकता है। संभवतः प्रशांत महासागर के द्वीपों में जातियों का बराबर आवागमन हुआ करता था।[2]

मुण्डा जाति की उत्पत्ति-विषयक कथा प्रचलित है कि आदिसमुद्र से अजमगढ़ नामक स्थान सबसे पहले निकला और वहां सिङ बोङगा ने मुंडा जाति के आदि माता-पिता का सृजन किया। यह प्रगट करता है कि मुण्डा जाति का पहले समुद्र तीर से संबंध था। अब यह जाति भीतरी भागों में पाई जाती है। खासी जाति में परंपरा है कि पहले खासी शिक्षित थे, परंतु एक महाप्रलय में उनके अक्षर खो गये। मुण्डा जाति में यह भी एक परंपरा है कि उन्होंने असुर जाति को भगाकर उनका स्थान ले लिया था। वे असुर लोहा पिघलाना जानते थे।[3]

हिंदी एरिथ्रियन संस्कृति की पृष्ठ भूमि में पूर्वी हिंदी-आस्ट्रेलियन संस्कृति प्रतीत होती है जो मैसोलिथिक-युगीन थी, संभव है उसके भी पहले की संस्कृति पूर्व पैलियो-लिथिक-युगीन थी।[4]

आस्ट्रिक भाषा का संस्कृत पर प्रभाव पड़ा है। मलय भाषाओं के क-ली और त-

---

१. वही पृ० १२३-२५.
२. पंचानन पृ० ४४४-४५.
३. वही पृ० ४४६-४७.
४. वही पृ० ४०४

ली में द और न्द जुड़कर संस्कृत का कदली, कंदली शब्द बना है।[१] बाल और ऊन का धर्म तथा जादू में महत्त्व है। बाल-वाल—मलय बुलु के रूपांतर हैं।[२] अथर्ववेद से पहले ही विदेशी शब्द कंबल संस्कृत में मिल गया।[३] आस्ट्रिक शब्द का प्रभाव—'लांगलम्' ऋग्वेद में मिलता है।[४] लिंग, लांगल, लंगल, लांगूल, लाङ्गूल सब इसी शब्द के रूपांतर हैं, जो पूर्व-आस्ट्रो-एशियाटिक भाषाओं का संस्कृत तथा हिंद आर्य्य भाषा पर प्रभाव है।[५] लिंग के निम्नलिखित भाषाओं में यह रूप हैं:

मलय : लक, ला, लो
स्टींग : क्लाङ
बहनार : क्—लाओ
खासी : त्—लोह्
संताली : लोक
हो : लोक्
मुण्डरी : लोक्[६]

लिङ्ग शब्द हल से निकला है।[७] धरती स्त्री है। हल पुरुष है। इससे प्रगट होता है कि यह लोग खेतिहर थे और गांव बसा कर रहते थे।

ताम्बूल आग्नेय शब्द है।[८] ताम्बूल नाग जाति के कारण नाग वल्ली कहलाता है। बाण शब्द आग्नेय है।[९] यह शब्द बहुत प्राचीन काल में ही आर्य्यों में आ गया। ऋग्वेद ६.७५. १७. में मिलता है। बाण बांस से बनता था। कर्पास, कर्पट, पट भी आग्नेय प्रभाव हैं।[१०] कुड़ी शब्द का अर्थ बीस है। गिनती का वाचक यह शब्द संस्कृत में कोटि बना। यह शब्द कोल भाषा से लिया गया।[११] अधिक सभ्य जाति की कल्पना ने बीस के लिये कोड़ी को अपनी सर्वोच्च संख्या मान लिया।

मातंग संस्कृत में हाथी के लिए प्रयुक्त शब्द है। इस नाम की एक जाति भी यहां थी।[१२] संस्कृत का मयूर शब्द भी ऐसे ही इन जातियों से ही आया है। विभिन्न भाषाओं में मोर के निम्नलिखित नाम हैं:

संस्कृत : मयूर—मयूक—मरुक

संताली : मरक; शबर : मर; कम : अमरक; मलय : मेर; काउ : ब्रक; स्टींग : ब्रक्; मौन : म्रा।

---

१. प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविडियन पृ० ४-५.
२. वही पृ० १२-१३.
३. वही पृ० ७.
४. वही पृ० ११.
५. वही पृ० २२.
६. वही पृ० २५.
७. वही पृ० ६
८. प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविडियन पृ० १७.
९. वही पृ० १०.
१०. वही पृ० ११.
११. वही पृ० २३-२४.
१२. वही पृ० १३०.

ये सब शब्द रक् से बने लगते हैं।[1]

जीन प्रिजुल्स्की का मत है कि 'मौर्य्य' शब्द को भी मातंग जैसे शब्दों के साथ रखना चाहिये। संभवतः यह भी कोई जाति थी।[2] आग्नेय एशियाई, इन्डोचीनी, जावा की भाषा, सुमेरियन, संस्कृत तथा मलय भाषाओं में कुछ शब्द मिलते जुलते हैं।[3]

संस्कृत की बहुत सी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का अर्थ तब तक स्पष्ट नहीं होता, जब तक उनमें आग्नेय देन नहीं ढूंढी जाती। संस्कृत का मुकुट, मकुट भी इसी प्रकार की देन है।

पुर, कूर, ऊर, शब्दों से पुर शब्द मिला है।[4]

दांत शब्द के लिये ये रूप हैं—

तेलगू, मलयालम, तमिल	पल्लु
कइकाड़ि	पेल्ल
कोर्वी	पेल्ल्
कन्नड	हल्लु
कुन्डख	पल्ल्
गोण्डी	पल[5]

यह शब्द आग्नेय स्रोत का ही है, जो द्रविड़ भाषा में मिल गया है।

संस्कृत का कूट (किला) कुड्य (दीवाल) हिंद-आर्य्य शब्द नहीं। इन्डोनीशियन में ग्राम को कूट कहते हैं।[6]

आग्नेय एशियाई धातु-मूल कर, कूर, सुमेरियन में मिलते हैं। सुमेरियन में भी नगर, निवासस्थान के लिये ऊर शब्द का प्रयोग होता है। इसका मूल 'उरू' है।[7]

छर, गूर, ऊर, उर्, कर, गर, या तो आग्नेय-एशियाई देन है, या सुमेरियन।

सुमेरियन में मछली का नाम है ग'अ; आग्नेय एशियाई में क-(यह प्रायः समस्त भाषाओं में मिलता जुलता शब्द है।)

ऐसे ही और भी उदाहरण बताये जाते हैं। इससे सुमेरियन से आग्नेय भाषाओं का संबंध प्रगट होता है। तब इस भाषा परिवार का विस्तार हमारे इतिहास के लिये महत्त्व-पूर्ण साबित होता है।[8] कोदुम्बर, ओदुम्बर शब्द आग्नेय हैं। तुम्बुम या तुम्बुरु, महाभारत में जातियों के नाम हैं।

अनेक आग्नेय जातियां अपने को तरबूज़ के बीजों से निकला हुआ समझती हैं। यह परंपरा सगर, सुमति कथा (रामायण १.३८. महाभारत ३. १०६. भागवतपुराण

---

१. वही पृ० १३१.
२. वही पृ० १४५.
३. प्रि आर्य्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन पृ० १५५.
४. वही पृ० १४०.
५. वही पृ० १३३.
६. वही पृ० १३८
७. प्रि आर्य्यन प्रि द्रविड़ियन पृ० १४७.
८. आगे इस पर विचार होगा। आग्नेय जाति का विस्तार और उसका प्रभाव।

९.८.८) में भी मिलती है। सगर के ६०,००० पुत्र भी फल से जन्मे थे। इक्ष्वाकु शब्द भी फल के लिये है। संभव है यह दंतकथा आग्नेय ही थी, जो आर्य्य भाषा में उतर आई।[१]

द्रविड़ों की कथाएं भी आर्य्य भाषाओं में उतर आई हैं। अतः उन्हें अलग करना कठिन काम है।

संस्कृत में डोम्ब शब्द एक निम्न जाति के लिये प्रयुक्त होता है, जो जादू मंतर करती है तथा गा बजा कर पेट पालती है। यही इसका धंधा है। वेबर ने जैन ग्रंथों में म्लेच्छों में इसका नाम पाया है—डोम्ब (डोव)। आधुनिक भारत की भाषाओं में, डोम, ढोम्बे, डोम्बर, डोम्बरी, डंबर, डंबरु, इत्यादि अनेक नाम से यह प्राचीन जाति पहचानी जाती है।[२] यह जाति भारत में आर्य तथा द्रविड़ दोनों जातियों से पुरानी है। उत्तर प्रदेश में गोंडवाना प्रदेश 'गोंड' जाति के नाम पर पड़ा है।[३]

आर्य तथा द्रविड़ इन दोनों से पुरानी जातियां या तो जंगलों, पहाड़ों में इन लोगों से अलग रहती हैं, या निकट रहती हैं तो उनका सम्मान नहीं है। उन्हें बहुत ही निम्न कोटि का माना जाता है। कुछ ऐसी जातियां हैं जो आग्नेयों से भी प्राचीन हैं; कुछ उनसे घुल-मिल गई हैं और अपना असली रूप उन्हें याद नहीं है।

द्रविड़-पूर्व जातियों की प्राचीनता का अंदाज़ करने के लिये आज भी उन प्राचीन जातियों का अध्ययन आवश्यक है। श्री पी० सी० विश्वास के एक लेख में संतालों आदि पर प्रकाश डाला गया है।[४] इन जातियों में मृत आत्मा को वापिस बुलाया जाता है। 'मन' का इनमें प्रचलन है। भगवान को निम्नलिखित जातियों में इस प्रकार कहा गया है:

जाति	भगवान का नाम
खरिया	बेरो
हो	ओते बोरम अथवा सिंग बोंगा
गोंड	दुला देव या फरसी पेन
खोंड	बुरा पेतु या बेला पेनु
अबोर (आसाम)	सालगोंग
कूकी	पा-थियन
मिकिर	अरनम केथे
संताल	सिंग बोंगा अथवा ठाकुर या छंदो या छंदो बोंगा

१. प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन पृ० १५४
२. प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन पृ० १६०
३. ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेंट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ० ४०.
४. जर्नल २६, १९३५, कलकत्ता पृ० १—६१.

द्रविड़पूर्व जातियों में छोटा नागपुर के हो अथवा मुंडा से भी संताल का अधिक स्थान है। इनमें ईश्वर को कंदो भी कहते हैं। सूर्य को सिन, चंद्र को निंद कहा जाता है। इनमें मंदिर बना कर पूजा नहीं की जाती। इनकी १२ उपजातियों में ९ टॉटेम जातियां हैं। ७४ उप-जातियों में २२ टॉटेम उपासक हैं। कुछ सर्प इनके पूर्वज माने जाते हैं। धामन सांप को खाया जाता है। ये जादू में विश्वास करते हैं। संतालों के ओझा के घर तुलसी का थांवला होता है। अविवाहित ही उसका चौतरा बनाते हैं। विवाहिता स्त्रियां मांग में सिंदूर लगाती हैं। विवाह से पहले भी संभोग हो सकता है। यदि स्त्री गर्भवती हो जाती है तो पुरुष उस स्त्री से विवाह करने को विवश किया जाता है।

स्त्रियों को समाज में काफी स्वतन्त्रता थी, यह इन तथ्यों से प्रगट होता है। संताल आज भी बाहरी जातियों से विवाह आदि नहीं करते।

भारत में जो काली जातियां प्रारम्भ में रहती थीं, उनकी स्पष्ट धारा आज नहीं दिखाई देती। किन्तु वे काली जातियां किसी-न-किसी रूप में घुल-मिलकर यहां बनी रहीं।

निषाद, भारत में द्रविड़ों से भी पहले रहने वाली जाति है। उसका भी इनमें मिलने का इंगित होता है।

नाट्यशास्त्र २१. ८९ के अनुसार पुलिंद जाति का आदमी काले रंग का दिखाना चाहिये। उसके लिये नाटा होना भी आवश्यक है। थर्स्टन ने 'दी मदरास प्रेसीडेंसी', पृ० १२४, में लिखा है कि द्रविड़पूर्व अपने नाटे कद के कारण अपने को द्रविड़ों से भिन्न कर लेते हैं। पुलिंद जाति के राजा (मुखिया) के पुत्रों के नाम शंबर तथा सारंग नामक पशुओं के नाम बताये गये हैं। (बृहत्कथा श्लोक संग्रह ७, ३१) दक्षिण की पथरीली भूमि पर रहने वाली जंगली जातियां टाटेम मानती हैं। तीर तरकस से छूटकर लौट आते थे, ये कथाएं मुंडा और संताल लोक गीतों में पाई जाती हैं। पुलिंद कहीं अरावली और विंध्य पर्वतों में रहते थे।[1] कांगड़ा घाटी में ब्राह्मी खरोष्टी के लेख मिले हैं।[2] वहां तक संभव है कुलिंद अथवा कुनिंद फैले हुए थे अथवा वह स्थान उनके निकट की सीमा है।

पुलिंद, कुलिंद, मेकल, उत्कल (उड्र, पुण्ड्र, मुण्ड) के साथ कोसल-तोसल, अंगबंग, कलिंग तिलिंग--इन जोड़ों की एक लंबी श्रृंखला थी जो कश्मीर के पूर्व से दक्षिण तक फैली हुई थी। पश्चिम में सिंधु तथा दक्षिण में कावेरी इनके दायरे के बाहर हैं। क, त, क, प, मात्र का नाम में भेद प्रारंभ में पड़ता है। भाषा का यह रूप हिन्द-आर्य तथा द्रविड़ दोनों में नहीं है। आग्नेय एशियाई है।[3]

डा० स्टेनकोनो का मत है कि जो मुण्डा भाषाएं आज केवल छोटा नागपुर, मदरास

१. प्रि आर्यन एण्ड प्रिद्रविड़ियन पृ० ९०-९१.

२. इपीग्राफ़िका इन्डिका ७. पृ० ११६.

३. प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन पृ० ९५.

के कुछ ज़िले, महादेव पहाड़ियों और मध्य प्रांत में मिलती हैं, और अब जंगलों में दिखती हैं, पहले गंगा की घाटियों और मैदानों तक बोली जाती थीं । अब गंगा प्रदेश में आर्य भाषा-भाषी रहते हैं। मध्य प्रान्त में तो मुण्डा परिवार की भाषाएं निश्चय ही प्राचीन काल में बोली जाती थीं ।[1]

आस्ट्रिक परिवार को मंगोल परिवार तथा उससे पुराने वासी किरात परिवार से अलग समझना चाहिये। किरात परिवार का उल्लेख देव परिवार के साथ किया जायेगा। उनके कुछ संबंध द्रविड़ों से भी मिलते हैं ।

नियोलिथिक युग की बनी वस्तुओं में—यूरोप, एशिया, उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका अथवा पोलिनीशिया—सब जगह साम्य दिखाई देता है। मोहन-जो-दड़ो में भी एक चाकू मिला है,जिसे चिकनाया नहीं गया। हो सकता है यह पुरानी रीतियों की रूढ़ि तथा प्रचलन रहा हो, जैसे आज भी मंदिरों के भीतर बिजली न जलाकर हम दीपक ही जलाते हैं।

इस युग में—परशु, हथौड़ा, बटन, छैनी, दांय करने के औज़ार, सिलिंडर, मनुष्य तथा पशु आकृतियां, खिलौने (गोलियां), चमकाने के औज़ार, पत्थर के बर्त्तन, तथा 'लिंग' ये वस्तुएं मिलती हैं। पत्थर के परशु के बारे में आज भी विश्वास बहुत जगह ऐसा है कि यही वज्र है ।

चपटे कुल्हाड़े समस्त भूमध्यसागर प्रांतों में पाये गये हैं। मिस्र, साइप्रस, एजियन समुद्रतीर, फ़िलिस्तीन, इतालवी हिस्सारलिक, सारडीनिया, स्पेन, पुर्तगाल, कोह काफ, फ्रांस, बाल्कान रियासतें, स्विट्ज़रलैंड तथा जर्मनी इन स्थानों में गिनाये जा सकते हैं। इंगलैंड, बाल्टिक समुद्रतीर, तथा भारत में भी ये पाये गये हैं ।

बंगाल, आसाम में जो कुल्हाड़ी, खांचे के हथौड़े मिले हैं, वे खसिया जाति के संबंध से प्राप्त समझे जाते हैं। रोहरी में प्राप्त औज़ार अनाउ, मिस्र, स्विस झील तथा डेनमार्क की आदिम बस्तियों में प्रयुक्त औज़ारों से मिलते हैं।

पश्चिमी बंगाल भूभाग में संताली (साओताली) भाषा है। कोल, मुंडा आग्नेय परिवार की आग्नेय–एशियाटिक शाखा है। हो तथा मुण्डरी भी अपना महत्व रखती हैं। माल्टो, कुरुख अथवा उरांव द्रविड़ भाषा हैं।

बंगाल के उत्तर और पूर्व में तिब्बती बर्मन हैं। यह तिब्बत-चीनी परिवार की हैं।

उत्तर में लेपिया अथवा रोंग भाषा हैं, जो तिब्बत हिमालय भाषा में से हैं। ये हैं धीमाल, लिम्बू खंभू, दांजोंग-क (सिक्किमी) ल्हो-के (भूटानी) ।

उत्तर पूर्व और पूर्वी भूभाग में बो डो अथवा कचारी अथवा (कोंच, मेच, रागा) हैं ।

गारो, दीमा-सा, म्रुंग या तिपुरा भाषा प्रचलित हैं। नागा ग्रुप भी है। कूकीचित और

१. वही पृ० ६५.

बर्मा ग्रुप है। मई थी, लूशाई, अराकानी इसी में हैं। पूर्वी सीमा पर खासी, मोन ख्मेर ग्रुप हैं।[१]

बंगाल के चारों ओर की भाषा दिखाने का विशेष प्रयोजन है। बंगाल में बहुत-सी जातियां विभिन्न कालों में आई हैं। यहां मंगोल, तिब्बती, मोनख्मेर, द्रविड़, आर्य, सभी एक दूसरे के बाद आकर बसे हैं और अभी तक उनके चिन्ह मौजूद हैं।

जैसे पुराने पत्थर आज तक लिंग बन कर पुजते हैं, आस्ट्रिकों के भी अनेक चिन्ह बताये जाते हैं।

प्राचीन धातुओं के विषय में बंगाल में अभी तक रूढ़ि प्रचलित है उसे 'यकेरधन' कहते हैं--अर्थात् यक का धन। वेड्डाह् यक्कु से बहुत डरते हैं। मृत आत्मा--'नाइ यक्कु' से ही उनका तात्पर्य समझा जाता है।[२] यह यक, यक्ष का भी बिगड़ा हुआ रूप हो सकता है।[३] मृत के साथ धातु के बर्त्तन इत्यादि प्राचीन काल में गाड़े जाते थे।

गाड़ने की प्रथा बहुत प्राचीन है। बिहार में लौरियानंदनगढ़ में बहुत पुराने कब्रिस्तान मिले हैं। कब्रों पर ढँका पत्थर, मुंडा जाति में भी प्रयुक्त होता है। यह प्रथा कहां से चली, यह बहुत पुरानी बात हो गई है। पहले पत्थर के स्मारक बनते थे। दक्षिण तथा पश्चिम में ऐसे बहुत से चिन्ह मिलते हैं। लौरियानंदनगढ़ में एक सोने की पत्ती, जो श्मशानों के टीलों में मिली है, उसमें भूमध्यसागर की जातियों से साम्य दिखाई देता है। साइबीरिया और मध्य एशिया में भी इसी प्रथा का अनुसरण मिलता है।

भील[४], कोल, अब भी अपने ही पुराने रिवाजों को मानते हैं। उनपर इस विषय में बाहरी प्रभाव नहीं पड़ा। खासी, कुरुम्बर तथा मलई अरियन आदि जातियां अब भी वही गाड़ने की प्रथा मानती हैं। नीलगिरि की इरुलर जाति में प्रथा है कि शव पर पत्थर रखकर प्रार्थना की जाती है। गोदावरी और उड़ीसा की गोंड ट्राइब छोटी-छोटी कब्र बनाती हैं। कोल एक पात्र में भस्म रखकर गाड़ देते हैं और उस पर पत्थर रख देते हैं। ये जातियां द्रविड़ों से भी पहले की हैं। दक्षिण के तोड़, कडर इत्यादि इन्हीं से मिलते-जुलते हैं। उरांव जाति की भाषा द्रविड़ भाषा से साम्य रखती है पर उरांवों की देहगठन मुंडागठन से मिलती है। मुंडा आग्नेय परिवार की जाति है। ओरांव मरों को एक ही दिन मसान जाकर जलाते हैं। उस दिन वे फसल काट कर जाते हैं। जला कर हड्डियां लाते हैं। औरतें गाती हुई उन्हें तेल लगा-लगाकर जल के निकट स्थित पत्थर की कुंडी में डालती हैं। खासी, नागा,

---

१. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ द बंगाली लेंग्वेज पृ० २,३।

२. पञ्चानन पृ० २७९।

३. यक्ष जाति के विषय में आगे विचार किया जायेगा। यक्ष जाति का धन से बहुत पुराना संबंध माना गया है। फीनीशीयन तथा यक्ष, दोनों ही धन के विषय में हृदयहीन समझे गये हैं।

४. पञ्चानन पृ० ३२७ तथा आगे।

तथा कुकी जाति में प्रथा है कि गाड़कर ऊपर स्मारक बना देते हैं। इस प्रकार प्रगट होता है कि द्रविड़-पूर्व, द्रविड़ोन्मुख, आग्नेय (आट्रेलियन—वेड्डा) तथा मंगोल—इन सभी जातियों में मिलती-जुलती प्रथाएं हैं और प्राचीन काल में भी प्रचलित थीं।

पाली साहित्य में 'चैत्यपूजा' का उल्लेख है। बुद्ध के पूर्व यह प्रथा उन लोगों में बताई जाती थी, जो छत्राकारशिर तथा तुंगनास थे।

प्राचीन जातियों के जो केन्द्र मिले हैं—जैसे आसाम, छोटा नागपुर, दक्षिण भारत तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत—इन्हीं में पत्थरों के स्मारक बनाने की प्रथा मिली है। उनमें आपस में भेद है और अब भी इन पुरानी जातियों में मृत के संस्कार के विषय में परस्पर भेद है।

खासी लोग शव जलाते हैं; पर वर्षा अत्यधिक होने के कारण शव को शहद लगाकर ३ मास के लिये किसी पेड़ की खोखल में रख देते हैं और उसके बाद मृतक का संस्कार करते हैं।

अनंतपुर जिले में कल्याणद्रुग के तीन मील पूर्व में एक मुडिगल्लु नामक छोटा-सा ग्राम है, वहां सैकड़ों कब्रें मिली हैं। उनके विभिन्न आकार हैं। वे एक छोटी चट्टान के उत्तर और पूर्व में बिखरी हुई हैं, जिसका नाम रामप्पाकोण्ड है। उसके आसपास के खेतों में भी कब्रें हैं। प्रायः हर कब्र की बगल वाली शिलाएं तथा ऊपर ढंकने के पत्थर गायब हैं; सिर्फ एक ठीक हालत में मिली है। ज्यादातर कब्रों के चारों ओर पत्थरों का एक गोल बना है और इसमें संदेह नहीं कि इन डिब्बेनुमा कब्रों पर वास्तव में ये गोल बनाये जाते थे।

कुछ कब्रों में गोल दरार या छेद छोड़ दिया जाता था। ऐसा ख़याल था कि आत्मा धरती पर लौट आती है और कुछ वर्षों के चक्कर के बाद फिर शरीर में घुसकर मनुष्य रूप में रहती है। ऐसी कब्रें दक्षिण और पश्चिम भारत में ही पाई जाती हैं, जो पश्चिमी प्रभाव का प्रगट करने वाली बात है।[1]

द्रविड़ आक्रमणकारी संख्या में अधिक नहीं थे। उनकी भाषा प्रचलित हुई, किंतु हर जगह नहीं। मुंडा, कोल-प्रांत की और भी पुरानी भाषाएं जीवित हैं। जब भाषा शेष है तब जातियां भी शेष रहीं। इसलिये इन्हें द्रविड़ परिवार नहीं मान कर, आस्ट्रेलियन अथवा वेड्डा परिवार मानना अधिक न्यायसंगत है। उत्तर के मुंडा कोल तथा दक्षिण के वेड्डा—इनके बीच में पणियन आदि जातियां हैं जो स्वयं द्रविड़-पूर्व प्रतीत होती हैं। यही एक समय समस्त भारत में फैली हुई जातियां थीं। और इन पर विदेशी अर्थात् द्रविड़ और आर्य्य जातियों का नहीं के बराबर प्रभाव पड़ा।[2]

भारत पर द्रविड़-पूर्व संस्कृति का प्रभाव पड़ा था। यह लहर बहुत जबर्दस्त थी। इसे मोनख्मेर कह सकते हैं।[3]

---

१. पञ्चानन पृ० ३४३-५० ।

२. ३. पञ्चानन पृ० ३३६-३७ ।

मिस्र के प्राचीनतम ढंग के जहाजों के रूप बर्मा और सुदूरपूर्व में अभी तक जीवित हैं। २००० वर्ष ईसा पूर्व ही मिस्र ने उन पुराने रूपों को छोड़ कर नये ढंग के जहाज़ बनाना शुरू कर दिया था। इससे प्रगट ही है कि इस तिथि से पूर्व ही मिस्री जहाज़ भारतीय महासागर में आ गये थे। एलाम के चित्रित बर्त्तन बनाने की कला की नकल तुर्किस्तान और बिलोचिस्तान में २००० ईसा पूर्व ही की जाती थी। एलाम में चित्रित पात्र बनाने की कला पूर्व-वांशिक मिस्र का प्रभाव था। हो सकता है कि फ़ारस की खाड़ी के ज़रिये तांबे के ज्ञान के साथ मिस्री इस कला को एलाम ले गये हों। और उनके जहाज लालसागर और फ़ारस की खाड़ी में घूमते हों।[1]

भारत के उत्तर में तिब्बत-बर्मी भाषाएं हैं और पूर्व में थाई, मोनख्मेर तथा मुण्डा हैं। तिब्बत-बर्मी परिवार चीनी तथा थाई भाषाओं से संबंधित हैं। मुण्डा (अथवा कोल) भाषाएं, खासी के माध्यम से, मोनख्मेर तथा मलय द्वीपसमूह की भाषाओं से संबंधित हैं। फादर श्मिट् की परिभाषा के अनुसार मुण्डा, खासी, मोनख्मेर तथा अनामी भाषाएं, आग्नेय-एशियाई परिवार की हैं।[2] आग्नेय एशियाई परिवार को ही आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार कहा जाता है। इसका प्रसार पृथ्वी के एक बड़े भाग पर फैला हुआ है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इन भाषाओं को बोलने वालों में परस्पर कितना गहरा संबंध था, यह नहीं कहा जा सकता। टॉटेम उपासना ही अधिकांश होने के कारण इसमें आर्य्यों का-सा घनिष्ठ संबंध नहीं था।

मैडागास्कर की भाषा मलयोपोलिनिशयन ग्रुप में आती है। जावा की प्राचीन भाषा 'कावी' से उसका निकट का संबंध है।[3]

बूमैरंग धारा इन्डोनीशिया से प्रारंभ हुई लगती है। उसकी गति का पथ गुजरात, सुमेर, अरब, सिनाई, मिश्र, पैलस्टाईन तथा मिश्र, फिर अफ्रीका था। मिश्र में इसका समय लगभग ३५०० ईसवी पूर्व था। अफ्रीका में बूमेरंग के अनुसरण पर फेंकने वाले चाकू की ईजाद हुई।

वायनाड—कुर्ग (दक्षिण भारत) के मलाबार घाट के पणियन अभी तक उसी ढंग से आग जलाते थे जैसे इन्डोनीशिया में जलाई जाती थी।

प्राचीनकाल में सुमात्रा द्वीप के वासी सिंधु देश में आकर बस गये थे।[4]

कुछ बीड्स जो ऊर के खंडहरों में मिले हैं, वे नीलगिरिमलय (दक्षिण भारत) के लगते हैं।[5]

---

१. पञ्चानन पृ० ३३८।
२. प्रि आर्य्यन एण्ड प्रि द्रविडियन पृ० ४।
३. न्यू इं ए १. १९३८–३९ पृ० २७।
४. वही पृ० २८।
५. वही पृ० २६।

आस्ट्रिकों का द्रविड़ों से युद्ध हुआ, क्योंकि उन्होंने आकर इन्हें कुछ भागों से बाहर धकेल दिया।

अंडमन के मिनकोपिस तथा मलय के सेमांग जैसे घुंघराले बालों के नाटे काले हब्शी सबसे पुराने भारतवासी थे। उनके बाद लंबे सिर के द्रविड़पूर्व और प्रोटो-आस्ट्रोलायड उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम से या (अब धरती में डूबे) लेमूरिया महादेश से घुसे।

इनके बाद एक भूमध्यसागरीय जातिसमूह आया। उसे खेती का कुछ ज्ञान था। बर्त्तनों में दफ़नाना, समाधि बनाना, नावें चलाना आता था तथा एक अलग भाषा थी। ये लोग आकर विन्ध्य के दक्षिणी भूभाग में बसे, जहां द्रविड़पूर्व बचे-खुचे पुराने हब्शी रहते थे।

भूमध्यसागरीय जातिसमूह के कुछ लोग उत्तर भारत के असंख्य द्रविड़पूर्वों में घुल-मिल गये। उन सब के संसर्ग के बाद जो संस्कृति विकसित हुई, वही द्रविड़ संस्कृति हुई। इन्हीं ने संभवत: प्रारम्भिक ग्राम बसाये, जिनमें ग्रामसंस्थाओं, ग्राम अफसरों और ग्राम देवताओं तथा उपवनों का प्रारंभ हुआ।[1]

जातियों के इस आवागमन और पारस्परिक संबंध का काल बहुत प्राचीन है, अत: निश्चय से इनकी तिथि बताना कठिन है।

मुंडा भाषाएं संताल परगना, मध्यप्रांत, उत्तर मदरास तथा आसाम में प्रचलित हैं। मुण्डा से मिलती मोनख्मेर भाषाएं बर्मा, मलय द्वीपसमूह, अनाम, कम्बोडिया तथा नीकोबार द्वीपसमूह में बोली जाती हैं। स्टेनकोनो का मत ठीक लगता है कि द्रविड़ भाषा परिवार एक अलग परिवार है, जिसकी अपनी ही अनेक अलग विशेषताएं हैं।[2]

भारत की जातियों का विशेष ज्ञान आर्य्यों के माध्यम से मिलता है। अत: इन तथ्यों के अतिरिक्त बहुत कम जाना जा सकता है। आर्य्यों के साथ संबंध से आस्ट्रिक जातियों पर आगे विशेष प्रकाश पड़ेगा। इनमें नाग जाति सबसे उन्नत अवस्था में थी जिसका वर्णन समयानुसार किया जायेगा। यद्यपि हमें ये तथ्य बताते हैं कि आग्नेय जातिसमूह द्रविड़पूर्व था, तथापि कल्पना इतिहास नहीं है। अत: केवल इतनी ऊहा स्वीकार्य्य है कि ये जातियां कबीलों में बंटी थीं और सब के विकास का एक ही स्तर नहीं था। नाग आगे की मंज़िल में पहुंच चुके थे, यह आगे प्रगट होगा। कोल, भील, मुंडा आदि की आज की अवस्था से अनुमान किया जा सकता है कि ये जातियां सभ्य नहीं थीं। धातु का प्रयोग इन्हें ज्ञात था। अधिकांश जातिसमूह के कबीले गण रूप में रहते थे और आपस में मिल बांट कर खाते थे। किसी किसी कबीले में व्यक्तिगत संपत्ति का होना भी मिलता है। यह जाति-समूह पितृसत्तात्मक व्यवस्था की अवस्था को पहुंच चुका था। नाग जाति तो दास बना कर रखती थी। आगे इस पर प्रकाश डाला जायेगा।

---

१. ज बि ओरि सो. २४, १९३८. पृ० ३७—३८।

२. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका १४वां संस्करण. १५. पृ० ९५७—८।

भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि आस्ट्रिक भाषा परिवार के भाषी उत्तर-पश्चिम भारत के भी परे निकल गये और फिर उनके लौटने के चिन्ह मिलते हैं।

हब्शियों को जीत कर ये लोग बसे और बढ़ते गये। हब्शी इनमें मिल गये। फिर द्रविड़ आये और वे भी मिल गये। आर्य्यों ने ही इन्हें पीछे धकेला। इनकी सामाजिक व्यवस्था का विभिन्न समय में क्या रूप रहा, यह आर्य्यों के इतिहास के साथ-साथ प्रगट होगा, जिन्होंने आर्य्यों की विवाह पद्धति, जाति प्रथा तथा धर्म विश्वासों और समाज की वर्ग-व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला।

मोटे तौर पर इनके आवागमन का नक्शा इस तरह बनता है--

३
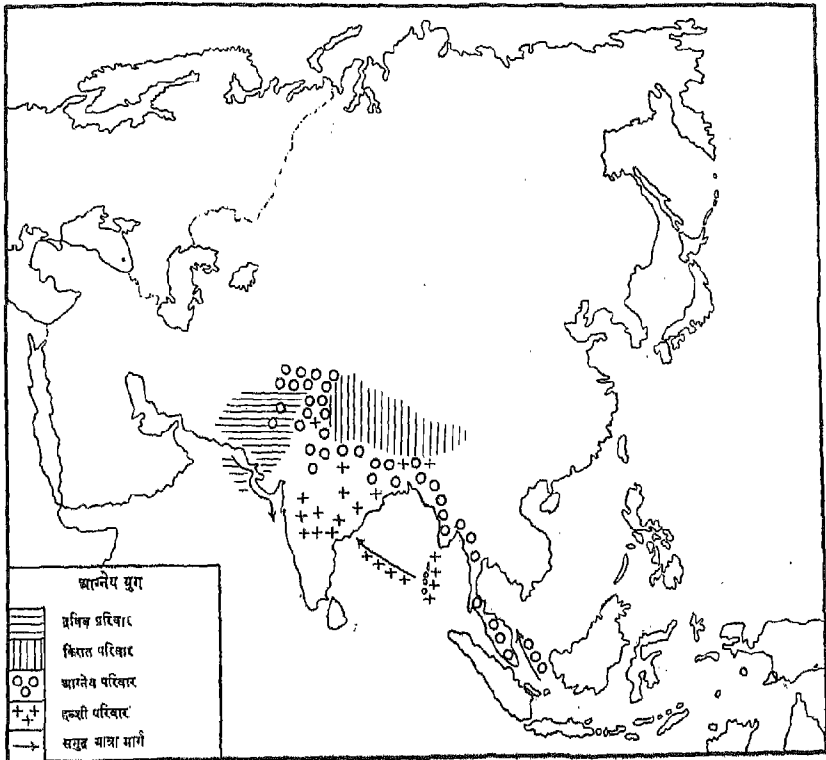
पूर्व प्राचीन काल—द्रविड़-युग

प्राय: द्रविड़ से तमिल जाति का तात्पर्य लिया जाता है। श्री सूर्यनारायण शास्त्रियार ने तमिल भाषा के इतिहास में आज से लगभग १०,००० वर्ष पहिले की पुरानी तमिल लिपि के साधन मिलने का उल्लेख किया है। निस्संदेह तमिल जनता में ईसा से ८००० वर्ष पूर्व ही सभ्यता फैल चुकी थी। आधुनिक समय में हमारे पास इतने साधन नहीं हैं कि हम उस काल पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाल सकें; किंतु कुछ तथ्य अवश्य हैं, जो यह प्रगट करते हैं कि द्रविड़ जाति अवश्य बहुत प्राचीन थी।

द्रविड़ का अर्थ तमिल ही नहीं समझना चाहिये। जिस तरह आग्नेय तथा आर्य्य किसी विशेष जाति का नाम नहीं, वरन् एक जातिसमूह का नाम है वैसे ही द्रविड़ को भी समझना चाहिये। द्रविड़ों में भी अनेक शाखा, उप-शाखा थीं, जिनमें परस्पर काफ़ी समानता और भेद थे।

मेयर के अनुसार पौराणिक कथाओं के इतिहास की तीन मंज़िलें हैं:

(१) मृत्यु के बाद आत्मा कुछ समय तक पौधे, वृक्ष, पशु इत्यादि में रहती है। हानि पहुंचा सकती है, लाभ भी। आत्मा भोजन चाहती है। इसी से सबसे प्राचीन बलि मृतोपासना है। यह शिकारी युग है।

(२) भूत-प्रेत (गंधर्व इत्यादि, सेन्टॉर)
(चरागाहों का जीवन)

(३) देवी-देवता—राक्षस—इत्यादि का व्यक्तीकरण तथा उपासना।[१]

द्रविड़ों के विषय में निश्चय से इन तीनों अवस्थाओं के अस्तित्व का चिन्ह स्पष्ट रूप से नहीं मिलता, परंतु सबसे पहली बात का काफी इंगित मिलता, है। आग्नेय जातियों में भी ऐसा विश्वास मिलता है। आग्नेय और द्रविड़ जातियों में परस्पर काफ़ी संबंध रहा था, यह अधिकांश ऐतिहासिक स्वीकार करते हैं। अत: हमें इन दोनों के बीच में कोई ऐसी रेखा खींचने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये कि इसके इधर-इधर का द्रविड़ तथा उधर-उधर का आग्नेय है।

द्रविड़ संस्कृति का गढ़ दक्षिण में था, संभवत: कावेरी के पास। द्रविड़ परिवार में अनेक जातियां थीं और संभवत: वे सब सभ्यता के एक ही स्तर पर नहीं थीं। कन्नड़, तमिल, मलयालयम बोलने वालों के सभ्य पूर्वजों से लेकर उनमें गोंड, खोंड, उरांव तथा

१. प्रि हिस्टॉरिक एन्क्विटीज़ आफ़ द आर्य्यन पीपुल्स पृ० ४०६-१०।

ब्राहुई जातियों के जंगली पूर्वज भी थे। [1] संभव है ये बाद में वर्णित जातियां कोल जाति की भांति थीं तो द्रविड़-पूर्व, परन्तु इन्होंने द्रविड़ भाषा अपना ली और यह असल में (जैसे अब हैं) सभ्य द्रविड़ों से बिल्कुल ही भिन्न थीं। [2] यह एक निश्चित धारणा हो गई है कि एक समय द्रविड़ भाषा-भाषी समस्त उत्तरी भारत में फैले हुए थे—बिलोचिस्तान से बंगाल तक। [3]

द्रविड़ों के अतिरिक्त यहां कोल थे, जिनकी भाषा आग्नेय परिवार की भाषा है। आग्नेय परिवार में हिंदचीनी, मलय पेनिनसुला की भाषा, इन्डोनेशिया, मैलेनेशिया तथा पौलिनेशिया की भाषा आती हैं। अब कोल भाषा-भाषी, गंगा, ताप्ती, गोदावरी (पश्चिमी बंगाल, छोटा नागपुर, उत्तर-पूर्वी-मदरास प्रेसीडन्सी, मध्यप्रांत), इत्यादि में रहते हैं। उनकी भाषा की जांच तथा शारीरिक बनावट इत्यादि से यह लगता है कि प्राचीन काल में वे गंगा के मैदान में रहते थे और हिमालय की तराई तक फैले हुए थे। [4]

इस विषय में एक और मत है कि भारत के उत्तर-पूर्वी हिमालय के दर्रों और घाटियों से कोलारी जातियां भारत में आईं। यही जातियां मुंडा, संताल इत्यादि जातियों की पूर्वज जातियां हैं। अब ये दक्षिण देश के उत्तर-पूर्व में विशेष रूप से मिलती हैं। इन जातियों के लोग पशु-पालन नहीं जानते थे, पर उन लोगों ने लोहे का प्रयोग जान लिया था। ये भूमि को जोतते थे और अपने लिये जंगल काटकर साफ कर लिया करते थे। [5]

द्रविड़ पूर्व सभ्यता के साथ उत्तर-पूर्व से आई जातियों का उल्लेख आवश्यक है।

तिब्बत-बर्मन मध्यएशिया से आई हुई जातियां मानी जाती हैं। वे उसी परिवार की थीं, जिनमें से मंगोल और चीनी निकले। अब उनमें कूकी, नागा, लेप्चा, भूतिया तथा अन्य जातियां मानी जाती हैं, जो हिमालय में रहती हैं। [6]

इन जातियों का आग्नेयों से भेद था।

बर्मा-इन्डोचीन में खासी, मोन और ख्मेर जातियां फैली हुई थीं। आसाम तक इनका प्रसार था। कालांतर में इन्हें तिब्बत-चीनी कबीला जातियों ने दबा लिया, जिनमें बर्मन और ताई इत्यादि आते हैं। खासी, मोन तथा ख्मेर, अत्यंत प्राचीनकाल में—कोलमोनख्मेर जाति—मध्यभारत, गंगा प्रदेश से कम्बोडिया तक फैली हुई थीं।

कोल और द्रविड़ दोनों पर ही आर्य्यों का प्रभाव पड़ा। संताल, मुंडा, हो, कूर्कू, शबर,

---

१. पञ्चानन का मत इससे भिन्न है।

२. पञ्चानन इसे स्वीकार करते हैं।

३. ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट आफ़ बंगाली लेंग्वेज। पृ० २८

४. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ० २८-२९।

५. ए शॉर्ट हिस्ट्री आफ़ द इंडियन पीपुल-ए०सी० मुकर्जी, पृ० ५।

६. ए शॉर्ट हिस्ट्री आफ़ इंडियन पीपुल—ए. सी. मुकर्जी पृ० ५

गदब इत्यादि जातियों पर आर्यों का प्रभाव नहीं पड़ा। कोल अब भी मध्यभारत के भीतरी भागों में रहते हैं। भील यद्यपि आर्य भाषा-भाषी हैं, तथापि वे भी इसी परिवार के लोग हैं।

तिब्बत-चीनी जातियों में तिब्बती जातियों की तुलना में चीनी अधिक संस्कृत तथा सभ्य थे। किंतु इन लोगों से संभवतः उस समय अधिक संबंध नहीं हुआ। फिर भी बिल्कुल ही अलग नहीं किया जा सकता।

तिब्बती भाषा न मुण्डा परिवार की है न आग्नेय-एशियाई परिवार की, लेकिन इसमें इन भाषाओं से मिलती-जुलती अनेक बातें हैं, जिनके कारण इसे इन भाषाओं से बिल्कुल अलग करके नहीं रखा जा सकता। इसमें 'गिलन्–का'––एक छोटे नदी द्वीप को या नीची भूमि कहते हैं। क्या 'गिलन्का' का संस्कृत लंका से कोई संबंध है ?[२]

मेरा विचार है, इसका संबंध है। यह आगे रक्ष जाति के विषय में विचार करते समय प्रगट होगा। इस भाषा साम्य के कारण किरात परिवार पर भी प्रकाश पड़ता है।

उत्तर-पूर्व में सभ्यताओं का काफी संबंध होता रहता था। कामरूप के गौहाटी नामक स्थान में कामाख्या का मंदिर है। यह ऐसा पहाड़ी प्रदेश है, जहां आर्य्य, मुंडा, तिब्बत-बर्मन, तथा मोनख्मेर परिवार की भाषाएं मिलती हैं।[3]

यह याद रखना चाहिये कि भारत एक समुद्री यात्रा करने वाला देश था। बहुत समय तक दक्षिण समुद्र भूमध्यसागर की भांति दक्षिण से भी घिरा हुआ माना जाता था। दक्षिण भारतीय भूमध्यसागर खूब फैला हुआ था।[४]

अब प्रश्न है कि प्राचीनकाल में समुद्र यात्रा कैसे होती थी ? हीलियोलिथिक काल में भारतीय नाविक सुदूरपूर्व तक जाया करते थे।[५] लंबी समुद्र यात्रा करने योग्य जहाज़ विना धातु के भी बनाया जा सकता है[६], यह तथ्य बहुत ध्यान देने योग्य है जिससे अनेक दुरूहताएं मिटती हैं।

दक्षिणी और पश्चिमी आस्ट्रेलिया की आदिम जातियों में 'मैं' 'वह', 'तू' 'हम' 'तुम' इत्यादि के लिये प्रायः वही शब्द प्रयुक्त होते हैं, जो मदरास के समुद्रतट पर रहने वाले मछुए प्रयोग करते हैं। उनमें और मदरास की पहाड़ी जातियों में अनेक साम्य हैं। दोनों बूमेरंग नामक हथियार रखते हैं, जो फेंकने पर लौट कर फेंकने वाले के पास चला आता है। सुदूर प्रशांत महासागर के कुछ द्वीपों में द्राविड़ से भाषा साम्य है।[७]

यह साम्य समुद्र यात्रा का स्पष्ट लक्षण है। एक मत है कि प्राचीन तमिल परंपरा में कहा जाता है कि दक्षिण में बहुत-सी भूमि समुद्र में डूब गई थी। और संगम के प्राचीन

---

१. ओरिजन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ० २९–३०.
२. प्रि आर्य्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन पृ० १००–१
३. वही पृ० ११३
४. वही पृ० १२५
५. पञ्चानन पृ० ४२
६. पञ्चानन पृ० ३१८
७. ऋग्वेदिक इण्डिया १. पृ० १०३

युग में अनेक जातियों के आवागमन हुए, सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुए। संगमयुग के बारे में एक किंवदंती है कि कलियुग के प्रारंभ में कुछ विद्या समितियां, संस्थाएं थीं। कुछ लोगों का मत है कि यह समय लगभग ८००० वर्ष ईसा पूर्व है।[1] परंतु हम पहले देख चुके हैं कि भूमि डूबने वाली घटनाएं इतने प्राचीन काल की हैं कि उस समय इन जातियों को मानना असंगत प्रतीत होता है। भूतत्व-वेत्ताओं और भाषा वैज्ञानिकों का इस विषय पर काफी मतभेद है। भूमि निस्सरण, या भूमि का डूबना इतनी प्राचीन घटनाएं हो चुकी हैं कि प्राचीनतम जातियों में भी उनकी एक अत्यंत प्राचीन सी स्मृति है। अब यह भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि जिस बड़े पैमाने पर यह घटनाएं हुईं, उनका ही किंवदंतियों में उल्लेख है। विद्वानों का मत है कि अनेक वार ऐसी घटनाएं छोटे-छोटे पैमानों पर हो चुकी हैं और उन्हीं का वर्णन इन जातियों में अवशिष्ट है। ज़ेनोफन का कथन है कि प्राचीन ग्रीस में ५ प्रलय हुए थे। अंतिम १५०३ ईसवी पूर्व हुआ था।[2]

प्रलय के विषय में आगे विचार किया जायेगा। यहां लौह ही सब से बड़ी समस्या है। एक ओर मोहन-जो-दड़ो में लोहा नहीं मिलता। मिस्र में भी ताम्रयुग ही माना जाता है, परंतु पूर्वी भारत में लोहा बहुत प्राचीनकाल में ही दिखाई देता है। यदि लोहा इतने पूर्वकाल में ही था तो आर्य्यों को अभी तक दिया हुआ श्रेय अस्वीकार करना पड़ेगा।

श्री वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार का मत है कि दक्षिण भारत में क्रीट, ग्रीस तथा अनेक पश्चिमी देशों की भांति नियोलिथिक युग के बाद एकदम लौहयुग आ गया।[3] ···लौहयुग ४००० ई. पूर्व हुआ।[4] वे लौह तमिल सभ्यता की देन समझते हैं। तमिलों का ही देशविदेश में प्रसार हुआ। रामचंद्र दीक्षितार का मत है कि एलाम शब्द तमिल का शब्द है। लंका के लिये प्राचीन तमिल में ईलम शब्द का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा समस्त थी और सुमेर भाषा की भांति आलोडियन परिवार की नहीं थी। ये लोग सेमेटिक नहीं थे। केरिया नाम भी चेर जैसा है। सोमाली और तमिल में बहुत साम्य है।[5]

दक्षिण भारत की अनेक विशेषताएं, सिंधु प्रदेश, सुमेर, मिश्र और क्रीट में मिलती हैं। मछली मारने की कला में साम्य है। दो तीन लकड़ी के गुट्टे रस्सियों से बांधते थे। बांस बीच में खेने के लिये काम में लाते थे। मलाबारी नाव, सर्प-नौका, कोडिकरई की कल्लटोणी इत्यादि प्राचीन नौ-निर्माण के उदाहरण हैं। हाथी, घोड़े और शेर जैसी आकृति का उल्लेख तमिल साहित्य में मिलता है। कल्लटोणी पर आंख बनी रहती है। देवी तथा तमिल ऊ या अश्व का चिन्ह रहता था। यह बुरी नज़र से बचाव था। प्राचीन मिश्री, यूनानी, तथा रोमनों न इसकी नकल की। चीन और इन्डोचीन के छोटे जहाजों पर अब भी इसके

१. पञ्चानन पृ० ८६
२. ऋग्वेदिक इण्डिया १. पृ० ३९
३. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० १६.
४. वही पृष्ठ १९.
५. वही पृ० ३९.

अवशेष मिलते हैं। कावेरी पर चलन वाली चमड़ चढ़ी नावों जैसी नावें दजला और फ़रात पर चलती थीं।

दक्षिण भारत में सिंचाई शुरू हुई। दक्षिण चीन और इन्डोनीशिया से यहां की चावल की खेती तुलनीय है। सिंधु प्रदेश गेहूं का केन्द्र था, जहां से वह नीलघाटी तथा मेसोपोटामिया गया। संभवत: मध्य अमेरिका मक्का का केन्द्र था, जहां से मक्का हिंदुस्तान आया।[1]

सिंधुप्रदेश में सोना कोलार की खदानों तथा कीमती हीरे नीलगिरि से आते थे। मोअन-जो-दड़ो में एक खूबसूरत हरे पत्थर का प्याला मिला है, जो मैसूर का हो सकता है।

ऊर (३५०० ई. पू.) तथा रामगिर की कब्रों में साम्य है। क्रीट के एक १६०० ई.पू. के सिलिंडर में ऊर के ३५०० ई.पू. की कब्र के छ:-पहलू-लंबे-पात्र से समानता है।[2]

मातृपूजा, देवदासी, सिर के बाल देवता को चढ़ाना, मत्स्यावतार की कथा का प्रचार, नाग पूजा, अग्नि के फेरे, पीपल, नीम.पूजा, चंद्र पूजा, वृषभ पूजा, स्तंभ पूजा, स्तूप निर्माण, मातृसत्तात्मक व्यवस्था, वेषभूषा, केशसज्जा, मुर्गों की लड़ाई,—यह सब मोअन-जो-दड़ो, सुमेरु, बैबीलॉनिया, एलाम, मिस्र, दक्षिण भारत, दक्षिण यूरोप, क्रीट में इतने समान दिखाई देते हैं कि एक-दूसरे का परस्पर गहरा संबंध प्रगट होता है, जिसके बिना ऐसा होना असंभव था।

दक्षिण भारत —मातृ पूजा। 'अम्मा'
मिश्र — 'अम्मौन'
क्रीट
मोअन -जो-दड़ो } की 'माता' की मूर्त्तियां समान हैं। अब 'अय्यायी' माता की, दक्षिण भारतीय कबीलों की उपासना। अब यह केरल में काली, भद्रकाली या भगवती कहलाती है। इसके मंदिर में प्राचीन काल में लड़कियां भेंट चढ़ा दी जाती थीं। ये लड़कियां 'देवरड़ियाल' कहलाती हैं। संगम साहित्य में नाचने वाली लड़कियों का उल्लेख है, पर इनका नहीं। उत्तरी अफ्रीका तटवर्ती फीनीशियन बस्ती सिक्का में, सीरिया के हेलियोपीलिस में, तथा अर्मीनिया, लीडिया, कोरिंथ तथा एशिया माइनर में देवदासी प्रथा थी।

फीनिशिया में बिब्लस के मंदिर में स्त्रियां सिर के बाल एक ऐसी देवी को चढ़ाती थीं, जिसका कमर के नीचे मछली का-सा रूप था।

क्रीट, मिस्र तथा दक्षिण भारत में कमर के नीचे ही वस्त्र पहनने की प्रथा थी। बाल लंबे रखे जाते थे।[3]

ये समानताएं निश्चय ही गहरे संबंध का प्रतीक हैं। यहां फीनीशियन जाति का

१. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० ४१-४२. २. वही पृ० ४३.
३. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स—पृ० ४१-५३. श्री वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया है।

उल्लेख हुआ है। फीनिशियन किस जाति के अंतर्गत आते हैं, यह भी अभी विवादास्पद ही समझा जाता है।

फीनीशियन मूल रूप में अफ़गानिस्तान या भारत के किसी भाग के वासी थे, जहां से वे पश्चिम की ओर शनैः शनैः गये। भारत के निकट रहकर भी वे अरब, और लाल तथा भूमध्यसागर के निकटस्थ देशों से व्यापार करते रहे।[१]

असुरों की जातियां इलिबिस, अहि, बल इत्यादि थीं। वे पणियों के मित्र थे और अंगिराओं के शत्रु थे। अग्नि, वायु तथा मरुतों के विरोधी थे। देवों का असुर[२] तथा पणियों से युद्ध हुआ।[३]

ऋगवेद ६.४५. ३१–३३ में ब्रिबू का उल्लेख है। वह पणि था। (ब्रिबू ब्राहुई भाषा वाले थे!) ऋभुओं ने उनसे लकड़ी (बढ़ई)* का काम सीखा था।[४]

पणियों से देवों का युद्ध संभवतः ४००० ई. पू, में हुआ[५]। पणि देवता को बलि नहीं देता, न दक्षिणा (ऋग्वेद)।[६] अग्नि बल का पुत्र था (ऋग्वेद४.१८)। पणि ब्रिबू के अनुयायी थे। ऋभुओं के वे मित्र थे। फीनिशियनों का देवता रेशफ़ था।[७]. फीनिशियन सुंदर ग्रीकों को पूर्व में दास बना कर बेचते थे। वे समुद्री डाकू थे और मिस्र पैलस्टाइन में दास बेचते थे।[८] ग्रीकों को सामान महंगा बेचते थे।[९] कार्थेज फीनिशियनों का केन्द्र था।[१०] बाबुल में सिमाइट्स के पहले तूरानी रहते थे। (वे कौन थे? पणि?)[११]. उन्होंने चित्र लिपि का आविष्कार किया था। ईसवी पूर्व चौथे सहस्राब्द में वे हिमाइट्स से हार गये थे। (हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ द वर्ल्ड. १. पृ. ३३७–४२)

फीनिशियन मेरे मतानुसार इस द्रविड़ परिवार की एक शाखा थे। इन्हें आर्यों ने लोहे के बल पर हराया था, कुछ लोगों का ऐसा मत है। परंतु व्हिट्ने ने कहा है कि आर्यों के पास लोहा था ही, यह पूर्ण निश्चय से नहीं कहा जा सकता। लौह का वर्णन ऐसा मिलता है। सेमेटिक भाषाओं में लौह के लिये ये शब्द उल्लिखित हैं। हिब्रु, बर (ए) जल; सीरियन, पर्ज़ल; तथा असीरियन, परजिल्लु; अरब, फ़िर्ज़िल (लोहे की नोंक)।

---

१. द ऋग्वेदिक हिस्ट्री शोइंग हाउ द फीनिशियन्स हैड देयर अर्लीयस्ट होम इन इंडिया। पृ० ४।

२. वही पृ० २३ ३. वही पृ० २४। ४. वही पृ० १५।

*तक्षण कार्य्य। वह साहस्रदानम् है। पणियों का अधिपति। शांखायन श्रौतसूत्र में भरद्वाज को तक्षण ब्रिबू ने दान दिया। वेदिक इन्डैक्स २। पृ० ६९।

५. वही पृ० ३१। ६. वेदिक इन्डैक्स १। पृ० ४७१।

७. ऋग्वेदिक इंडिया १। पृ० १९२।

८. हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ द वर्ल्ड २। पृ० ३४४-४५।

९. ऋग्वेदिक इंडिया १। पृ० १९३।

१०. वही पृ० १९५। ११. वही पृ० २०२।

प्राचीन बाइबिल में लोहे के बर्त्तन, कील, हथियार, दरवाजे के तवे होने का वर्णन हैं। पर अधिकांश वे कांसे के बताये गये हैं [१]। चित्रलिपियों में पर्श देश अर्थात् फ़ारस लोह के निर्यात के लिये वर्णित है। [२] भारतीय लौह का प्राचीन ग्रीक भी मूल्य लगाते थे। [३]. पोन्तस (पुन्त) देश लोहे के केन्द्र के रूप में प्राचीन ग्रीस और बाइबिल में उल्लिखित है। जेरेमियाह १५.१२. में उत्तर के लौह का वर्णन है। [४] पुन्त सिंधु प्रदेश कहलाता था। बाइबिल प्रदेश का उत्तर तो मध्य एशियाई भू-भाग होता है। बाबुल में महीन कपड़े को सिंधु कहते थे। [५] वैदिक आर्य गाय खाते थे और गो चर्म के पात्र बनाते थे। [६] बाबुल के लोग भारत से बड़े बड़े कुत्ते मंगाते थे। [२] मिस्री वृष बलि देते थे। भारत में बाद में बकरे की बलि आ गई, पर वे बैलों को ही श्रेष्ठ मानते थे। [२]. मिस्र में गाय का बहुत सम्मान था। [९] शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है: यज्ञ पहले गाय बैल में था, फिर घोड़े में गया, उससे बकरे में, जिससे पृथ्वी में उतरा और उसे धरती से उगते अन्न में स्थान मिला। [१०] मिस्री पुन्त को चीते, कुत्ते के से सिरों वाले बंदर, गंधवृक्ष, नारियल, ताड़ का देश समझते थे। [११] प्रोफेसर फ्लिडर्स पेत्री का मत है कि मिस्री और पणि एक ही थे, वे पुन्त देश से लालसागर पार करके आये थे और नील नदी के प्रदेश में बसे। [१२] (द्रविड़ थे ?)

फ्लिडर्स पेत्री को गेरेज, मेड्डम नामक स्थान में एक कब्रिस्तान मिला था, जिसमें लोहा भी था। उसका मत है कि इस कब्रिस्तान का समय ईसा से ६००० या ७००० वर्ष पुराना होना चाहिये। [१३]

कब्रिस्तानों पर विद्वानों ने काफ़ी विचार किया है। 'एक सुथी' शब्द कब्रों पर लिखे पाये गये हैं। तूरानी कब्रों पर 'सुथी' शब्द पाया गया है, जिसका अर्थ है दफ़नाना, जलाना। 'एक' संभव है तेलगु के इक्कड़ तथा अक्कड़ से मिलता है, जिनका अर्थ है यहां और वहां। यह एँट्रस्कन शब्द से मिलता है। दक्षिण भारत तथा एरूट्रिया की कब्रों तथा समाधियों में बहुत साम्य दिखाई देता है। [१४]

कब्रिस्तान मोअन-जो-दडो में भी मिले हैं, परन्तु उनमें लोहा नहीं मिला है। पेत्री के मत पर विद्वानों में एकमत नहीं हैं। कोई उसे काफ़ी परवर्ती मानते हैं। एक कब्रिस्तान में ही लोहा क्यों मिला? मिश्र की अन्य खुदाइयों में वह इतना परवर्ती क्यों मिलता है?

हमने नाल का वर्णन प्रागैतिहासिक काल में किया था। कुछ का मत है कि नाल में

---

१. प्रिहिस्टॉरिक एन्टिक्विटीज़ आफ़ द आर्यन पीपुल्स पृ० २०२।
२. वही पृ० २०३। ३. वही पृ० २०४। ४. वही पृ० २०५-०७।
५. ऋग्वेदिक इंडिया १. पृ० ६६ ६. वही पृ० ७५।
७. वही पृ० ८०. ८. वही पृ० २६२। ९. वही पृ० २६४।
१०. वही पृ० २६४। ११. हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ द वर्ल्ड पृ० १०८।
१२. वही पृ० ७७। १३. ए स्टडी इन हिंदू सोशल पोलिटी पृ० ६६।
१४. जहैआसो १९१७ पृ० ६२।

प्राप्त खोपड़ी तथा मोहन-जो-दड़ो में प्राप्त वस्तुएं संभवतः ताम्रयुग की हैं, जो एक हिंद सुमेर शृंखला को जाहिर करती है। समय २००० और ३००० वर्ष ईसा पूर्व है। डाक्टर कुमारस्वामी ने इसे दक्षिण समुद्री जातियों का युग माना है, जो औरों से अलग था। वे इसे माइसीनियन युग से पूर्व का मानते हैं।

हाल का विचार है कि सुमेरु-एलाम संस्कृति से भी द्रविड़ संस्कृति प्राचीन है। भारत उस समय के संसार में पूर्व और पश्चिम के यात्रियों का रास्ता था। मिस्री सभ्यता बनी और मिट गई। अब भी उसके थोड़े चिन्ह, विश्वास, रिवाज दक्षिण भारत और पूर्वी अफ्रीका में मिलते हैं। संभव है, यह भी संस्कृति की एक शृंखला थी।

ताम्रयुग का वैदिक सभ्यता से भी संसर्ग मिलता है। पवित्र शृंग, परशु, सूर्य्य चिन्हों की शृंखला तो यूरोप से भारत तक के प्राचीन विश्वासों में विद्यमान ही है। और नीलगिरि के बर्त्तनों पर बनी तस्वीरें, अर्मीनोइड आकृतियों से मिलती हैं। घुड़सवारों के चित्र, लंबी नाकें, भरी दाढ़ियां देखकर एशिया माइनर का ध्यान हो आता है।

पैलियोलिथिक कार्य व्यापार की शृंखला उत्तरी अमरीका से, भारत, आस्ट्रेलिया तक मिलती है। दक्षिण अफरीका और पश्चिमी यूरोप में भी है। भारत में इस युग में दक्षिण और पूर्व में अधिक आबादी दिखाई देती है; उतनी उत्तर और पश्चिम में नहीं लगती। कुद्दप्पाह, गुण्टूर तथा नैल्लूर ज़िलों और मदरास के आसपास के भूभाग में ऐसा लगता है। उससे भी प्राचीनकाल में उड़ीसा समुद्र तीर से, दक्षिण आर्कट तथा कुर्नूल तक आबादी थी। इस अवस्था से आगे बढ़ी हुई आबादी तन्जोर और मदुरा में मिलती है। इसी की एक शाखा तुंगभद्रा में निकली और मराठा देश का दक्षिण प्रांत इसने जा बसाया। इस समय संभवतः रंगों के प्रति मनुष्य में रुचि बढ़ी; हाथ की कारीगरी भी। अत्रम्पक्कम, करदिपूत्तूर, मनजकरमसी, हीर, चिक्कमुलुंगी पुत्तेरर, अरंबेड से कटे हुए पत्थर के औज़ार निकले हैं। यहां दक्षिण में पत्थर के औज़ार उत्तर के बुंदेलखंड और जयपुर की आबादियों के मुकाबले में अच्छे बनते थे। दक्षिण के पैलियोलिथिक स्थान ये हैं:

गोदावरी भूभाग : पलोंचा, चांदा, चिन्नूर। दक्षिण पूर्वी बरार, मलेदी, सिरपूर।

कृष्णा नदी भूभाग : कलधी, तोलम्मत्ति, कैर, बेणिहल्लनुल्लाह। हीर, चिक्कमलुंगी, धारवार, बीजापुर, बेलगाम, इत्यादि।

दक्षिण कृष्णा : मदरास क्षेत्र।

मध्य भारत; नर्मदा के उत्तर में—बुंदेलखंड, छोटा नागपुर।

इस काल में गुफावासी भी थे, जिनके चिन्ह कुरनूल, बिल्लसरगम गुफाओं में मिले हैं। गुफाओं में बर्फ़ युग ने आदमी को घुसने को मजबूर किया।[१] कुरनूल की वनस्पति

१. मध्य एशिया में तीन बार बर्फ़युग हुआ। बर्फ़युग के प्राचीनतम चिन्ह २०,००० वर्ष पुराने समझे जाते हैं। परवर्ती बर्फ़युग के काल के विषय में अनुमान है कि यह संभवतः २००० या ३००० वर्ष पहले हुआ।

पशु पक्षी देखकर उस मंजिल का ज्ञान होता है, जिसमें आधुनिक स्तनधारी प्राणियों के पहले के जीवजन्तु थे। अब वे नहीं मिलते। कुछ हैं तो भारत के बाहर, या उत्तर भारत में।

परवर्ती पैलियोलिथिक युग के चिन्ह भारत में निम्नलिखित स्थानों में मिलते हैं: चक्रधरपुर, सिन्जई, बिन्जई घाटी, रान्ची, सिनि तथा सराइकेला, घटशिला, मोरहन पहाड़, पर्वतगंज, जबलपुर इत्यादि।

दक्षिणी पैलियोलिथिक मनुष्य धातु का प्रयोग करते थे। राजवास रुरकेत, छोटा नागपुर, फरसबल यशपुर (मध्यप्रांत) मानभूमि, आसाम तक इनके चिन्ह मिलते हैं।

बलूचिस्तान, मोअन-जो-दड़ो, सुदूर यांग-शाओ में बर्त्तनों पर बनी चित्र-रेखायें बहुत समान हैं। दक्षिण यूनान और एजियन भूभाग में भी ऐसी ही समानताएं हैं। भारत, पूर्वी अफ्रीका में संस्कृति की एक शृंखला सी दिखाई देती है। धातु के चिन्हों ने भी इस विषय पर प्रकाश डाला है। दक्षिण भारत में तिन्नेवेली नामक स्थान में अनेक प्रागैतिहासिक स्थानों में बहुत गहराई पर स्वर्ण मिला है। पूर्व पैलियोलिथिक युग में अनंतपुर, बेलारी, कुड्प्पाह, कुर्नूल, कृष्णा और गोदावरी में हीरे मिले हैं। उत्तर भारत में तांबा और लोहा दोनों मिलते हैं। द्रविड़पूर्व जातियों के प्राचीन निवास-स्थानों में खानें मिली हैं। सिंहभूमि, छोटा नागपुर में तांबा प्राप्त हुआ है। इन्दौर, नैल्लूर, शान रियासतें, कृष्णा जिला, काठियावाड़ में रूपवती, उत्तर गुजरात में अम्बमाता और कुम्बरिया, नेपाल, कांगड़ा, सिंहभूमि, सिक्किम तथा कुमाऊं में तांबा मिला है। दक्षिण भारत में तांबे के बाद सीधे ही लौह मिलता है। बीच में कांसे का युग नहीं मिलता। लेकिन निम्न जातियों में पीतल और कांसे का अत्यधिक प्रयोग देखकर लगता है कि यह भी यहां बहुत प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। मोअन-जो-दड़ो में लौह नहीं मिलता, और दाढ़ीवाले आदमियों के चित्र देखने पर उनमें और नीलगिरि के चित्रों में साम्य दिखाई देता है। खासी और कोल बहुत आदिम लोग हैं पर वे फ़ौलाद बनाते हैं। अदिचन्नल्लूर में लोहे की तलवारें मिली हैं। नीलगिरि में कांसे के प्याले मिले हैं। प्राचीन भट्टियों को देखकर प्रतीत होता है कि नियोलिथिक युग में ही भारत में लोहे का प्रयोग होता था। धौंकनी से लोहा पिघलाना कोल जाति में चलता रहा है। यही मिश्र में भी मिलता है। संभव है लोहा वहीं से दुनिया में फैला है। कुछ लोग भारत को ही केन्द्र मानते हैं।

आर्यों को ही अभी तक लोहा लाने वाला समझा जाता है। परंतु विकास की परीक्षा प्रगट करती है कि दक्षिण में कहीं कहीं ताम्रयुग के चिन्ह ही नहीं मिलते। पाषाणयुग के बाद एकदम लौहयुग आ गया है। भारत में जिन स्थानों पर ताम्रयुग के केन्द्र मिले हैं, वे निम्नलिखित हैं: राजपुर, मथुरा, मैनपुरी, फतहगढ़, बिठूर, इलाहाबाद, बिहार में हजारीबाग, करांची, बिलोचिस्तान, मध्यप्रांत में बालाघाट।[1]

रांची के जंगलों में एक जाति रहती है, जो अपने को असुर कहती है। मुंडा और उरांव

१. पञ्चानन पृ० २७७–७८

जातियां भारत में प्राचीन जातियां हैं। इन दोनों जातियों में इस असुर जाति के बारे में जो किंवदंतियां और परंपराएं चलती हैं, उनसे यही प्रगट होता है कि असुर इन लोगों से भी बहुत पुराने हैं। यह असुर जाति लोहा पिघलाना जानती है। क्या इससे यह ही समझना चाहिये कि उस प्राचीनकाल में भी लोहा पिघलाना जानती थीं ?

अदिचन्नल्लूर में कांसे के सामान मिले हैं। वे कम हैं, पर लोहे की वस्तुओं से अच्छे हैं। वे शायद गहनों के रूप में प्रयुक्त होते थे। कांसे की बनी हुई निम्नलिखित चित्रों की चीजें मिली हैं : भैंस, गाय, भेड़, मुर्ग, चीता, बघेर, हाथी, उड़ती चिड़ियां, छलनियां (छाननेवाली)[1]। ये बर्त्तन प्रगट करते हैं कि इनके निर्माता कम-से-कम खेतिहर रहे होंगे।

बेगमपेट, सिकंदराबाद तथा कम्पिल्ली नामक रायगिर के स्थानों में कब्रों के नीचे खुला मुंह मिला है। एक में तो एक बार बीस आदमियों के घुस जाने लायक गुंजाइश मिली।[2] रायगिर के पात्रों पर अद्भुत गोले और चिन्ह हैं। वहां सोना, चांदी और लोहा मिला है। त्रिशूल मिले हैं। ये चिन्ह किसी चीज़ के प्रतीक थे। लोहे का प्रयोग उम्दा नहीं है। कुछ अनगढ़पन है।[3] त्रिशूल स्पष्ट ही शैवों की वस्तु है।

नीलगिरि में जो पात्र मिले हैं, उन पर आर्य पूर्व संस्कृति की द्योतक चित्रशैली है। उनमें शिकारी, योद्धा, मुर्ग तथा चीता बने हैं। सलेम के चित्रों में अंकित मनुष्यों के सिर की भूषा विचित्र है। उनमें बड़े कंघे लगे हुए हैं। यह पश्चिम के मानाओन वेश से मिलती चीज़ है जिसका क्रीट के हेगिया त्रायडा में चित्रण हुआ है।

मौर्यों के खंडहरों के नीचे खुदाई होने पर भीटा में जो प्राचीन वस्तुओं के नमूने प्राप्त हुए हैं, वे मिस्र या ग्रीस की वस्तुओं से तुलनीय हैं।[4]

बिलोचिस्तान में कुछ ऐसी वस्तु मिली हैं, जिनका रूप प्राचीन एलाम में प्राप्त वस्तुओं से बहुत निकट बैठता है। काफ़ी साम्य है।[5]

हैदराबाद में पांवदार बर्त्तन मिले हैं, जिनका ट्राय की शैली से साम्य है।[6]

प्राचीन पाषाण युग दक्षिण भारत में अधिक फैला, पर नियोलिथिक युग के चिन्ह उत्तर भारत में अधिक मिलते हैं। दक्षिण में भी सलेम, मदुरा, बेलारी ज़िले, इसके केन्द्र थे, जैसे मध्य-पैलियोलिथिक संस्कृति का केन्द्र कुद्दुपाह था।

इसी युग के बाद पशु की खाल ऐसे ओढ़ी जाने लगी कि उसकी पूंछ पीछे लटकती रहती थी। यह पूर्ववांशिक-मिस्र में भी एक प्रचलित रिवाज था।[7] नियोलिथिक केन्द्र मध्यभारत और उत्तरप्रदेश में काफ़ी हैं। बंगाल, आसाम और सिंधु देश में भी ऐसे चिन्ह मिलते हैं। अब भी दक्षिण भारत में यह एक प्रचलित परंपरा है कि प्राचीन कब्रिस्तान एक नाटी और छोटी जाति की विरासत है। एक समय वह नाटी जाति ही

१. पञ्चानन पृ० ३६०
२. वही पृ० ३६१
३. वही पृ० ३६४
४. पञ्चानन पृ० ४१३–१४
५. वही पृ० ४१७
६. वही पृ० ४१२
७. पञ्चानन पृ० २३४

दक्षिण में रहती थी। उनके नाम विभिन्न बताये जाते हैं :—मोरियर-मणे, पांडुकुज्ही, माण्डु अथामाण्डुवर कुज्ही। संभव है, यही रामायण के बानर थे। पूर्ववांशिक मिस्र में भी स्त्रियां गहने पहनती थीं; पर दिन में बहुत सी तो बिल्कुल ही कपड़े या कुछ नहीं पहनती थीं, और रात को जानवरों की खाल ऐसे ओढ़ लेती थीं कि उनकी पूंछ पीछे लटकती रहे। सिर के बाल छोटे होते थे। पुरुषों की दाढ़ियां लंबी और नुकीली होती थीं, पर बिल्कुल नोंक पर आकर उसे ऊपर उठा दिया जाता था। चेहरे कुछ लंबे होते थे, और प्रायः एकसी गठन होती थी।

नियोलिथिक युग भारत में, एशिया माइनर क्रीट, पूर्वी देशों, चैलिया और मिस्र, संभवतः इन सब से १४००० ईसा पूर्व ही प्रारंभ हुआ।

प्रागैतिहासिक कब्रिस्तानों में साम्य दिखता है। ये कब्रिस्तान नीलगिरि, तिरवांकूर, मलाबार, कोचीन, तिन्नैवैली, मदरास, पल्नीमलय, कोइमत्तूर, सलेम, उत्तर तथा दक्षिण आर्काट, चिंगलपेट, बंगलोर, कुर्ग, अनंतपुर, बेलारी और कुरनूल में मिले हैं। इनमें लम्बे जार मिले हैं, जिनकी बनावट सिलिंडर सी है और नीचे संकरे हो गये हैं। इनके ढक्कनों पर मनुष्य, पशु अथवा अन्य बेजान वस्तुओं की मूर्त्ति बनी हैं। मनुष्यों के सिर पर नुकीली टोपी है, जिसकी नोंक आगे की ओर झुकी है। इन सिलिंडरों में अनेक माप हैं। मूर्त्ति-पुरुषों की दाढ़ियां छोटी पर घनी हैं।[२]

भारतीय कब्रों को देखकर उनकी बनावट से यही समझना पड़ता है कि इनके निर्माता 'मृत्यु के बाद जीवन' का सिद्धांत मानते हैं, जैसा कि प्राचीन मिस्रियों में चलता था। मिस्री मरे की देह इसीलिये रख छोड़ते थे। उनका विश्वास था, आत्मा लौट आती है और फिर इसी देह में निवास करती है। तभी वे देह की सुरक्षा के लिये पिरैमिड बनाते थे।

दक्षिण की कब्रों को ऊपर से बंद करने वाले पत्थर में एक छेद छोड़ दिया जाता था, ताकि आत्मा उसमें से कब्र में घुसकर देह के पास पहुंच जाये। प्राचीन मिस्री तूरानी जाति के लोग थे और संभव है यह कब्र बनाने की परंपरा उनमें बहुत प्राचीन थी।[३] किंतु मिस्रियों का तूरानी होना अभी सर्वसम्मत नहीं है। जहां तक समाधि बनाने का प्रश्न है, मध्य एशिया में भी मृत पर टीला बनाने की प्रथा थी। मध्य एशिया से जाति के गमन से वह प्रथा मिस्र में चली और संभवतः भारत में भी! फिर बोरियल जातियों के आक्रमण से जातियां घुलीं-मिलीं, संस्कृतियां मिलीं और एक हिंदी-एरीथ्रियन संस्कृति का जन्म हुआ, जिसमें ये समाधियां मिस्र और भारत में खूब बनीं। दक्षिण समुद्र तट पर भारत में ऐसी असंख्य तथा भिन्न भिन्न रूपों की समाधियां फैली हुई हैं। उत्तर-पश्चिम भारत में नहीं हैं। उनकी कमजोर किस्म की नक्ल उत्तर-पूर्व भारत में है। इससे अनुमान किया जाता है कि इस जाति के कुछ लोग अपना गहरा प्रभाव छोड़कर उत्तर-पूर्व से गुज़रे और इन्डोनीशिया तक चले गये। संस्कृति का प्रभाव दिया तो इसने लिया भी। यह वह समय था जब भारत का

१. पञ्चानन पृ० ३२२ २. वही पृ० ३२०–२१ ३. वही पृ० ३२४–२५

सुमेर, मिस्र तथा संभवतः मध्य एशिया से गहरा संबंध था। यह काल २५००-८०० ई. पूर्व हो सकता है, पर इसका प्रारंभ कब हुआ होगा, यह अभी तक प्राप्त तथ्यों के आधार पर नहीं कहा जा सकता। संभवतः और बहुत पहले हुआ होगा।[1]

यहां पश्चिम के देशों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। चेल्डियन (सुमेर,—सिमाइट), पश्चिमी एशियाटिक, एजियन तत्व——भारतीय आर्य द्रविड़ सभ्यता के प्राचीनतम स्तर में हैं। ये पश्चिमी तत्व संभवतः आर्यपूर्व थे, जो प्रोटो-द्रविड़ियनों में मौजूद थे, भारत में आर्यों के आने के काफ़ी पूर्व। या हो सकता है कि पूर्व की ओर आते समय आर्यों ने पश्चिमी जातियों के संसर्ग में आकर पथ पर अनेक बातें ग्रहण करलीं और अपनी संस्कृति में मिला लिया। पूर्वीय यूरोप से भारत आते समय ऐसा होना संभव है।[2]

बैबीलोनिया में सर्प पवित्र चिन्ह था——पृथ्वीमाता का प्रतीक। ऐरिडु में अक्काड सर्प देवता इआ की उपासना सर्वश्रेष्ठ मंदिर में होती थी——ऐरिडु से चैल्डिया की सभ्यता का प्रसार हुआ था। अतः सर्प स्वीकृत हुआ। तूरानी-प्रोटो-मीडीज, सर्प के उपासक थे। बाद में आर्य ज़रथुष्ट्र के उपासकों ने जीता। ईरानी मज्दयस्न के उपासकों ने सर्प को अँग्रमैन्युश, दैत्य कहा है। यह सर्प कालांतर में आर्य स्वीकृत हुआ।[3]

निनेवे और बाबुल में अर्द्धपशु, अर्द्धपक्षी, अर्द्धमत्स्य तथा अर्द्धमनुष्य मूर्त्तियां मिली हैं।[4] हिताइतों को मिस्री खेट कहते थे। असीरियन 'खत्ती' (क्षत्रिय थे?)[5] हिताइत 'मां' अत्ति, तथा मिथ्र की पूजा करते थे।[6] उन्होंने शमसुदितन के राज्यकाल में बैबिलोनिया को १७५० ई. पू. में जीता और उनका राज्य ११०० ई. पू. तक रहा।[7]

ईसवी पूर्व दूसरे सहस्राब्द में भूमध्यसागरीय जातियों में से एक मध्य एशिया में अनाऊ में रहती थी। ८ अत्यन्त प्राचीन काल में ग्रीकों ने पेलसगोई जाति का 'समुद्री' जाति के रूप में उल्लेख किया है। यह हिंद-यूरोपीय लोग नहीं थे। लौह युग के ग्रीकों से पुराने थे। हिरण्यहस्त असुरों का ऋग्वेद में उल्लेख है। वे शुभ्र थे। लाल फीनिशियन तथा हिताइतों के हल्के पीले रंग में मिस्त्रियों ने भेद माना है।[9] बाबुल की दंत कथा है कि मत्स्य देवता ओनीज़ ने आकर सभ्यता सिखाई। यह एरीथ्रियन समुद्र से आया था।[10] जो लोग बाबुल के दक्षिण तीर पर सभ्यता लाये, संभवतः एलाम में भी, और व्यापारी थे, उन्हें ही हीब्रु यहूदियों ने 'कुश के पुत्र' कहा है।[11] चैल्डिया के तेलोह में प्राप्त खंडित मूर्त्तियों के

१. पंचानन पृ० ३३७-३९।
२. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर पृ० २७.
३. वेदिक इंडिया—रेगोजिन पृ० ३०९-१०
४. ऋग्वेदिक इंडिया १ पृ० २२५.
५. वही पृ० २९३
६. वही पृ० २९५
७. वही पृ० २९८
८. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १ पृ० ९ भूमिका।
९. असुर इंडिया पृ० ९
१०. ऋग्वेदिक इंडिया पृ० १८९।
११. वही पृ० ११९०

सिरों में दक्षिण भारतीयों की मुखाकृति से साम्य है। सुमेरियन भाषा द्रविड़ की भांति समस्त भाषा थी। सुमेर भी खेतिहर, नहर निर्माता, समुद्री यात्री थे (जैसे चोल)।[१] रेगोजिन को मुंगेर के खंडहरों में चैल्डिया के, उर-इआ अथवा ऊर-बगश (संयुक्त बैबीलोनिया के प्रथम राजा) द्वारा बनाये प्राचीन ऊर में, लगभग ३००० ई. पू. की लकड़ी मिली थी, जो भारतीय है। यह लकड़ी सिर्फ़ मलाबार तीर पर होती है। महिष-ऊर (मैसूर) में राजवंश के कुछ लोगों के नामों के साथ ऊर लगाने की अभी तक प्रथा है।[२] सोलोमन के यहां हाथीदांत, बंदर, मोर, चंदन, इत्यादि दक्षिण भारत से जाते थे। इन वस्तुओं का नाम यहूदी भाषा का नहीं मिलता।[३]

इसके अतिरिक्त प्राचीन जातियों के मुर्दे जलाने और दफ़नाने की प्रथा को भी अलग-अलग करना कठिन है। ब्यूरियतों (मंगोल-जाति) में बैकाल झील के पास जो मृतक संस्कार थे वे घोड़े की बलि इत्यादि में वैदिक परंपरा से मिलते-जुलते थे।[४] फिलिस्तीन में कुछ मनुष्यकृत गुफा मिली हैं। उसमें ३००० ईसा पूर्व दफ़नाने के बर्त्तन (पात्र) मिले हैं। उस समय क्रीट में दफ़नाने की ऐसी प्रथा नहीं थी। वहां परवर्त्ती मिनाओन तृतीय के काल (१४५०–१२०० ई. पू.) में यह प्रथा चली थी। प्राचीन ग्रीक तथा सिमाइट्स में भी समानता मिलती है। एक उत्सव में विलास और रति का स्वेच्छाचार मिस्र में 'सिस' के उत्सव पर होता था। यह ग्रीस तथा भारत के कुछ उत्सवों में भी मिलता है। मिस्री और ग्रीक तो पुनर्जन्म में भी विश्वास करते थे।[५]

मिश्र का फ़राऊन सिर पर जो ताज पहनता था उसमें सूर्य का चिन्ह होता था।[६] पूर्वी तथा दक्षिणी बंगाल और मलाबार तीर पर सूर्यपूजा का प्रचार है। आकाश, मित्रावरुण (परवर्ती काल में द्यावा पृथ्वी)[७] सूर्य, सोम, अग्नि[८] यूप, स्तूप[९], कराल शक्तियां (काली पृथ्वी तत्त्वधारिणी) शक्ति (आकाश तत्त्वधारिणी)[१०] इनका बहुत प्रारंभ में ही उल्लेख मिलता है। सुरतरु, सूर्य, आकाश, लिंग, इत्यादि अनेक तत्त्व मिल कर ही संभवत: कालांतर में कुंडलिनी ज्ञान प्रारंभ हुआ, जो आगे चलकर योग में विकसित हुआ।[११]

द्रविड़ सभ्यता का सुमेरु में काफी प्रभाव मिलता है। सुमेरु में जातियों का बहुत आवागमन हुआ है। सिमाइट्स ने अक्काड विजय किया किंतु सुमेरु में युद्ध चलता रहा। सरगन ने ३८०० ई. पू. में एलाम जीत लिया। २२८० ई. पू. में सुमेरु और एलाम स्वतंत्र हो गये। एलाम के राजा कुतुर-नखखुत्ते एरेख से नना देवी की मूर्त्ति उठा लाया। ६४० ई.

---

१. वही पृ० २०७ ।
२. वही पृ० २१२।
३. वही पृ० २१४।
४. इंडियन मिथ एण्ड लीजेण्ड पृ० ३३ (भूमिका)
५. वही पृ० ३७ (भूमिका) तथा आगे ।
६. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इन्डस २. पृ० २०
७. वही पृ० ४१
८. वही पृ० ६३
९. वही पृ० ११९
१०. वही पृ० १०८
११. वही पृ० १४३

पू. में अशुर-बनि-पाल ने असीरिया को तबाह कर दिया।[1]

तूरानी (कैसाइट्स) ने बाबिलन पर ५७६ वर्ष ९ मास तक १७८० ई.पू. तक राज्य किया। इनकी किंवदंतियों, पौराणिक गाथाओं में द्रविड़ों से बहुत साम्य है।[2] ज्योतिष, सर्प, लिंग, देवदासी स्थापत्य, ज़िकारत और गोपुर, बहिन के पुत्र को 'बेटा' कहने का रिवाज (जो अभी तक दक्षिण भारतीय नायरों की रीति है) इन सबका साम्य यही इंगित करता है।[3]

यहूदी जाति ने ही गुलामों के बाज़ार शुरू किये। ये व्यापारी थे। इनका एकेश्वर-जिहोवा, बेनी-इज़रायल, बैबीलोनिया का वज्र देवता अदाद का ही रूप था, जो परवर्त्ती काल में बल-लिंग देवता से मिल गया।[4]

कदिश्तु देवी पवित्र वेश्या थी। ई. पू. ३०० में बैबिलॉन में मंदिरों में वेश्या (पवित्र) रखी जाती थीं।[5] जरमशितु बाज़ारू वेश्या थीं, वे इनसे अलग थीं।[6]

शिव बाल नाथ हैं। यह बाल तूरानी देवता बल से साम्य प्रगट करता है। आर्यों पर महादेव का प्रभाव बहुत धीरे-धीरे पड़ा। शतपथ ब्राह्मण में रुद्र और अम्बिका भाई बहिन हैं। एक दक्ष-पार्वती का भी उल्लेख है। केन उपनिषद् में उमा हैमवती इन्द्र को शिक्षा देती है। अथर्ववेद के मुण्डक उपनिषद में काली, कराली, मनोजवा, सुलोहित, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरूपी, अग्नि-रुद्र की सात जिह्वा हैं। पुराणों में ये सब शिव पत्नी हैं जो स्पष्ट ही रुद्र हो गया है।[7]

लिंग, त्रिशूल, दुर्गा योद्धा पत्नी, दुर्गा का सिंह वाहन, वृषभ वाहन, भी बल और शिव के साम्य हैं।[8]

अक्काड सभ्यता मिस्र की भांति ७००० ई. पू. वर्ष तक पहुंचती है।[9]

परवर्त्ती काल में बैबीलोनिया में तीन जातियां थीं। 'अमेलु'—कुलीन, पुजारी, तथा सेना के अफ़सर वर्ग। 'मुस्किनू'—खेतिहर। 'अरडु'—अमेलु तथा मस्किनू के दास—गुलाम।[10]

दास प्रथा तक पहुंची हुई यह सभ्यता प्रगट करती है कि यहां का मनुष्य खेती करते हुए काफी समय बिता चुका था, क्योंकि दास पाले जाते थे। इससे यह प्रकट होता है कि इस सभ्यता का प्रारंभ काल जानने के लिये काफी पीछे हटना पड़ेगा।

एरिडु नामक सुमेरु नगर में, किंवदंती है कि पुरुषमत्स्य, फ़ारस खाड़ी में तैर कर पहुंचा। उसे ओनीज़ कहा जाता है। यह कथा द्रविड़ (सिंधु) और सुमेरु में संबंध प्रगट करती है।[11]

---

१. ए स्टडी इन हिन्दू सोशल पौलिटी पृ० ३१
२. वही पृ० ३३
३. वही पृ० ३४
४. वही पृ० ३८
५. वही पृ० ११५
६. वही पृ० ११९
७. ए स्टडी इन हिंदू सोशल पोलिटी पृ० १२०-१२१
८. वही पृ० १२१
९. वही पृ० १८७
१०. वही पृ० २१९
११. ओरिजन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० ७

द्रविड़ों का प्रागैतिहासिक काल में ही (वर्त्तमान काल में प्राप्त बिल्ली और संताल भाषा से इंगित) मध्यभारतीय जातियों से संबंध हुआ होगा। खरियां और हुरियां भाषा, जो फ़रात के मोड़ पर मितन्नी में बोली जाती थीं, उनका द्रविड़ भाषाओं से साम्य था।

तमिल द्रविड़ में सब से प्राचीन भाषा है।[२] मैसोपोटामिया की प्रलय कथा में मीन (मछली) तथा नीर (पानी) शब्द तमिल के शब्द हैं।[३]

दक्षिण भारत और मेसोपोटामिया का समुद्र और पृथ्वी दोनों ही मार्गों से संबंध था। उस काल की सब यात्राएं तीरवर्ती प्रदेश या समुद्र से की जाती थीं। [४]एक पथ अरब सागर से मिश्र था, भूमध्यसागर और एशिया माइनर पहुंचने का पथ था। दूसरा फ़ारस की खाड़ी से प्राचीन सुमेरु था। ओनीज़ की कथा इस तथ्य को सहायता देती है।[५]

पश्चिम के अतिरिक्त अन्यों में परस्पर दक्षिण भारत तथा मेलेशिया में भी आवागमन का संबंध था। प्रशांत महासागर के नारियल बोना, पान खाना इसी संसर्ग का परिणाम है। प्राचीन संगम ग्रंथों में नीरा (रस) पीना प्रचलित है। यह भी इसी संबंध के परिणाम हैं। पोलिनेशिया में जो शव को बिठा कर दफ़न किया जाता था, वही रिवाज दक्षिण भारत के देवगंगा जुलाहों, विश्वकर्मा ब्राह्मणों, कोयम्बटूर के ओक्कियनों, तिरवांकूर के पिशरोदियों तथा नीलगिरि के इरूलों में पाया जाता है।

आस्ट्रेलिया का बूमेरंग प्राचीन नाविकों द्वारा दक्षिण भारत लाया गया था। चंद्राकृति का नोंकदार बूमेरंग मदुरा ज़िले के मारावर काम में लाते हैं, जबकि मध्यभारत के भील ऐसे ही टेढ़े शस्त्रों का प्रयोग करते हैं। बूमेरंग का नील नदी की घाटी में भी प्रयोग होता था।[६]

बाइबिल में जूडाह, एलाम, इज़राईल, मिस्र, बैबिलोन, इत्यादि देशों का उल्लेख है।[७] खुदा ने अब्रम को अब्राहम नाम देकर मिस्र से फ़रात तक, केनाइट, केनिज़ाइट, कैडमोनाइट, हिताइत, परीजाइट, रिफ़ेस, अमोराइट, तथा कैनेनाइट, गिरगैशाइट, और जेपुसाइट सबका स्वामी बनाया था। जेकब से खुदा ने कहा था : [८] मैं बेथ-एल का स्वामी हूं, जहां तू स्तंभ पूजा करता रहा है·····

इसमें स्तंभ पूजा का उल्लेख है। द्रविड़ परिवार की समस्त जातियों में ही प्रायः दिव्य वृक्ष, स्तंभ, शृंग, सर्प, इत्यादि प्रतीकों की उपासना बहुत प्राचीन है। आर्यों में भी अथर्ववेद के सुरतरु में ऊपर दो शृंग बनाये जाते हैं। उन पर राक्षसों का स्थान है। यातुधान

---

१. वही पृ० ११
२. वही पृ० १५
३. वही पृ० २
४. वही पृ० ३१
५. वही पृ० ३१
६. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० ३४।
७. जिनेसस : १७-१७-५ पृ० १९ तथा १७-१५, १८-२१ पृ० १६
८. वही : ३१. ३१. १३.

मूल में हैं और मध्य में यक्ष है।[1] एकशृंगी विष्णु का नाम है।[2] सर्प सूर्य का प्रतीक है।[3] सूर्योपासना करते समय अमेरिका के रेड इन्डियन भी स्तंभ के ऊपर बारहसिंघे का सिर बांध कर बलि देते हैं।[4] गरुड़, श्येन, कपि तथा वृष भी सूर्य चिन्ह हैं।[5] पक्षी तथा स्तंभ पूजा भी सूर्य का ही प्रतीक हैं। भारत के गरुड़ध्वज, कपिध्वज तथा वृषभध्वज सूर्य के ही चिन्ह थे। कालांतर में इनका रूप बदल गया। मिस्र में भी सूर्य की बंदर के रूप में पूजा होती थी।* सूर्य वृक्ष के फल के समान है। वह बंदर की तरह कूदता है। उसकी किरण शृंग की भांति फूटती है। वह श्येन की भांति गगन को पार करता है। पृथ्वी से आकाश के एकत्व की कल्पना सुरतरु में है। लिंगपुराण के अनुसार लिंग ही सुरतरु का प्रतीक है। ऊपर चोटी पर रुद्र पशुपति, मध्य में विष्णु तथा मूल में ब्रह्मा है।[6] पक्षी तथा स्तंभ की सूर्योपासना प्राचीन मिस्री, फीनिशियन, हिंदू, असीरियन, बेबिलोनियन, ग्रीक तथा लैटिनों में चलती थी।[7]

चीन में भी दो रूपक माने जाते थे। 'रीछ के कान, और 'अजदहे के द्वार' से रुद्रों की धरती के ग्यारह राजाओं की उत्पत्ति स्जुमा चेंग ने बताई है। रीछ के कान को 'ऋक्ष कर्ण' (संस्कृत) कहा जा सकता है। परंतु कर्ण यहां आग्नेय एशियाई शब्द 'कोणी' का संस्कृत रूप है, जिसका अर्थ 'पुत्र' है। सैन्टॉर अथवा गंधर्व यवनों द्वारा फेरेस या देरेंस भी कहलाते थे। जापान की आइनो जाति का टाटेम रीछ ही था। कुछ विद्वानों का मत है कि आइनो जाति हिंद-ईरानी-भूमध्यसागरीय परिवार में थी और तिब्बत से वह प्रागैतिहासिक काल में जापान तक चली गई थी। तोड़ जाति की कथाओं और परंपराओं से इंगित होता है कि यह जाति सिमाइट थी (संभवत: द्रविड़ों की पूर्वज जाति) और प्रागैतिहासिक काल में अरब से दक्षिण भारत में समुद्र से आई थी।[8]

द्रविड़ों के विस्तार को कुछ लोग अमेरिका तक पहुंचाते हैं, क्योंकि संस्कृतियों में बहुत प्रखर साम्य मिलता है। ये लोग समुद्र पथ से ही अमेरिका पहुंचे थे। बहुत से लोग कोलम्बस को ही अमेरिका को ढूंढने वाला कहते हैं। पर इन लोगों का तर्क ऐसा होता है कि 'ताम्रयुग में यदि जहाज चलते थे, तो तांबे की बड़ी उपज होती होगी।'[9]. यह तर्क उनके घोर अज्ञान को प्रगट करता है। धातु के जहाज़ वाष्प युग की देन हैं। स्वयं कोलम्बस भी लोहे के जहाज़ में अमेरिका नहीं गया था। जातियों के आवागमन के पथ पर दूसरी

---

१. ऋग्वैदिक कलचर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इंडस १. पृ० ९८।

२. वही पृ० १०३। ३. वही पृ० १११। ४. वही पृ० ११३।

५. वही पृ० ११५। * रामायण के वानरराज भी सूर्यवंशी ही कहे गये हैं।

६. वही पृ० १२७। ७. वही पृ० ११८।

८. द सइनो इंडियन जर्नल, १ जुलाई १९४७, भाग १, प्राचीन चीन में कल्प गणना, ए. बालकृष्ण पिल्लई। पृ० १३५-३६।

९. हंस, १९४९ मई पृ० ४३९।

जातियां छा जाती हैं और पुरानों के संबंध टूट जाते हैं। भाषा विज्ञान का थोड़ा-सा ज्ञान ऐसे आलोचकों को बता सकता है कि प्रशांत महासागरीय द्वीपों में परस्पर संबंध था। चिचिन इत्सा (अमेरिका) में मय सभ्यता की चित्रलिपि, तथा पिरैमिड जैसे मंदिर, बैबीलोनिया तथा मिस्र से मिलते हैं; अपना संबंध प्रगट करते हैं। मय लोग बड़े शिल्पी और स्थापत्य कला-प्रवीण थे। संभव है यही लोग फारस, चीन, कम्बोदिया होते हुए अमेरिका गये थे।[१]

मय का अनेक स्थान पर वर्णन है। एक मय ने अपनी पुत्री मन्दोदरी का रावण, लंकाधिपति से विवाह कर दिया था। एक और मय ने खांडव दहन के समय अर्जुन से प्रार्थना की थी कि वह विदेशी है; उसकी रक्षा की जाय। मय पाताल में रहते थे।[२] इनका राजा बलि असुर था। इस बलि की वामन के साथ कथा मिलती है, किंतु मिश्र, बैबीलोनिया, फीनीशियन सब में ही यह मिलता है। मिस्र में सूर्य को बोलपियोरा कहते थे।[३] मयों में सर्पपूजा तथा नरबलि चलती थी।[४]

मय सभ्यता पर प्रकाशित साहित्य ने और भी तथ्य प्रगट किये हैं। मय तथा हिंदू विवाहों में साम्य है। कृत्तिका नक्षत्रमान तथा कलियुग के विषय में एक से विचार हैं।[५] किंवदंती है कि मय ने असुरों के त्रिपुर बनाये थे। जब नमुचि का भाई अग्नि ने छोड़ दिया था, तब देवों के मित्रों के लिये उसने धरती पर प्रासाद बनाये थे। इन्द्र ने उसे मार डाला। इन्द्र को विष्णु ने सहायता दी, क्योंकि मय ने अप्सरा हेमा के साथ बलात्कार कर दिया था।[६] तारकासुर ने मय से त्रिपुर बनवाये थे, जिन्हें शिव ने नष्ट कर दिया था। पाताल का हिरण्यपुर विश्वकर्मा ने बनाया था, यद्यपि मय ही उसका आरंभक था।

इन्हीं बहुत परवर्ती आर्यस्रोतों के अनुसार शिल्पी मय के बनाये हिरण्यपुर में कालकेय, कालकञ्ज तथा पौलोम रहते थे। यह निवातकवचों के नगर की भांति ही समुद्र पार वर्णित है।[७] पुष्पक को विश्वकर्मा ने बनाया था।[८] कालकञ्जों का वर्णन अथर्ववेद में है। अथर्व में कालकञ्ज आकाशवासी हैं। इन्द्र ने इन्हें मारा था। तैत्तिरीय ब्राह्मण, मैत्रायणी संहिता तथा कौशीतकि उपनिषद् में इसका वर्णन है।[९]

अथर्व में ही कालकञ्जों का आकाश-वासियों में मान लिया जाना यह प्रगट करता है कि वे अथर्व से काफी पूर्वकाल में हुए होंगे। आर्यों में पितर पूजा थी। पितरों को देवताओं की बराबरी का दर्जा तभी मिल सकता है जब बात पुरानी पड़ जाये।

यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि ये मय ही अमेरिका के मय थे। परंतु इतना असंदिग्ध है कि इनके अवशेषों में गहरी समानता है। मंदिरों की बनावट तो बहुत

---

१. इंहिक्वा ३, १९२७. पृ० ३७।
२. वही पृ० ३७।
३. वही पृ० ३८।
४. वही पृ० ३८।
५. इंक. २. अप्रैल १९३६, संख्या ४, पृ० ६८५।
६. एपिक मायथॉलॉजी पृ० ४९।
७. एपिक मायथॉलॉजी पृ० ५०।
८. वही पृ० १४५।
९. वेदिक इंडैक्स १. पृ० १५२।

स्पष्ट है। चिचिनइत्सा की बड़े स्तंभों पर निर्मित छतें तथा भवन दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त भी उत्तरी अमेरिका और प्राचीन मिस्र के वासियों में यह परंपरागत किंवदंती थी कि वे कहीं विदेश से जाकर वहां बसे थे । कुछ लोगों का इससे मत है कि यह लोग भारत से गये थे । आधार दिया है कि मिस्री खोपड़ी की बनावट दक्षिण भारतीय खोपड़ी की बनावट से बहुत मिलती-जुलती है।[१] इससे अमेरिका के विषय में कुछ स्पष्ट नहीं होता। जो हो, जब तक और तथ्य नहीं मिलते तब तक इतना ही सत्य हमारे सामने है कि इन दोनों संस्कृतियों में गहरा साम्य है। यदि कहा जाय कि कोई संबंध था ही नहीं तो प्रश्न उठता है कि इतना साम्य क्यों है ?

मातृपूजा का महत्त्व इन्हीं द्रविड़ों में हमें अधिक मिलता है। पृथ्वी या शक्ति, इनका मूल आधार स्त्री का गर्भ धारण करना था, जिसे ये लोग प्रारंभ में रहस्य समझते थे। महामाई की उपासना प्राचीन सुमेरु में भी होती थी। वे उसे पर्वत-सुंदरी के रूप में पूजते थे और ऊर के चंद्र देवता से उसका हर वर्ष विवाह रचाते थे, जैसे दक्षिण भारत के शैव मंदिरों में पार्वती का तिरुक् कल्याणं (दिव्य विवाह) रचा जाता है। प्राचीन सुमेरु में उपासना पद्धति भी दक्षिण भारत के मंदिरों की उपासना पद्धति से बहुत मिलती-जुलती थी।[२]

इन तथ्यों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि आर्यों से पहले द्रविड़ भारत में आये थे। आर्यों से उनका संबंध कब हुआ यह आर्यों के साथ देखना ठीक होगा। द्रविड़ संस्कृति का समृद्ध रूप आर्यों के आगमन से पूर्व ही मिलता है।

भूमध्यसागर के पास रहने वाले द्रविड़ कुछ काल मैसोपोटामिया में रहे और अके-डियन तथा सिमाइट्स के दबाव से बिलोचिस्तान पहुंचे। वहां की ब्राहुई भाषा, जो द्रविड़ भाषा से मिलती है, इसका प्रमाण है। बिलोचिस्तान से द्रविड़ गंगा सिंधु देश में आये। यहां उनकी आदिम हब्शी जाति तथा पोलिनेशियोन्मुख आबादी से मुठभेड़ हुई। और अंततोगत्वा परस्पर वे एक दूसरे से मिल गये या संबंध स्थापित कर रहने लगे।

२००० वर्ष ईसा पूर्व का, मध्य भारत में, एक बैबीलान का सिलिंडर मिला है। यह प्राचीन आवागमन को सूचित करता है। हड़प्पा की मुहरों पर क्रीट के बैल का चिन्ह है। हिंद-आर्य अथवा द्रविड़ और पश्चिम के निवासियों के परस्पर संबंध के अन्य प्रमाण भी मिले हैं।[३]

मितन्नी की बोगज़कोई की ईंटों पर खुदे हुए लेखों ने प्रगट किया है कि मितन्नी में आर्य रहते थे। मितन्नी का उल्लेख आर्यों के संबंध में करना ठीक होगा। परंतु उनका परवर्ती द्रविड़ काल में द्रविड़ों से भी संबंध हुआ था। वस्तुओं के साम्य के अतिरिक्त वर्ग विकास

१. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स पृ० ३
२. न्यू इंए. १९३८-३९. पृ० २५-२६
३. इन्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० २७-२८

पर प्रकाश डालने के लिये उनके संबंध को यहीं प्रगट कर देना ठीक लगता है। मदरास जिले के पल्लवरम नामक स्थान में पके मिट्टी के बर्तनों में तथा बग़दाद में प्राप्त बर्त्तनों में साम्य है। बग़दाद के बर्त्तन बड़े हैं, कफ़न बक्सों का काम देने वाले हैं। ये नियोलिथिक काल के समझे जाते हैं। इस साम्य ने बैबीलान, असीरियन तथा भारतीय सभ्यताओं को एक दूसरे से संबंधित प्रगट किया है।[1] दक्षिण भारत के पुजारी वर्ग की भांति बावुल में पटेसी वर्ग का राज्य चलता था। चैल्डिया में महा पुरोहित पटेसी कहलाते थे[2]। बावुल और दक्षिण भारत में मंदिरों में देवदासी प्रथा थी।[3] मिस्र में राजा भगवान होता था।[4] उनमें जातियां थीं।[5] प्रथम वंश का शासन मिश्र में ४४०० ई. पू. था।[6] दजलाफ़रात के बीच जो असीरियन राज्य था उसे मिस्री में नहरैन और बाइबिल में अरम-नहरैन कहते थे। १५८० ई. पू. मिस्री तेहुतिमस ने इस मितन्नी राज्य को हराया और धन से लदा हुआ थीबीज लौट गया। १५२२ ई० पू० में तेहुतिमस ३ ने मितन्नी को करद राज्य बनाया[7]। असीरिया की राजधानी निनैवे ३००० ई. पू. थी जहां बावुल के पुजारी राजा राज्य करते थे। १४०० ई. पू. में मित्तन्नियों ने हिताइत तथा कोसियनों से मिस्रियों के विरुद्ध मित्रता की थी। हिताइत मजबूत हुए। सीरिया में मिस्री शासन को भय हो गया और मितन्नी सहयोग से मिस्री अमोराइट्स को पृथ्वी से निकाल दिये गये। जब मिस्री राज्य था तब मितन्नी राज्य कन्याएं मिस्री १७वें राजवंश के राजाओं को ब्याही गई। तेहुतिमस चतुर्थ ने मितन्नी राजकुमारी से विवाह किया। उसके उत्तराधिकारी अमेनहोतेप तृतीय न 'थी' नामक विदेशी रक्त और धर्मवाली स्त्री से विवाह किया। उसने गिलुखिया नामक मितन्नी राजकुमारी को ग्रहण किया। संभवतः यह तेहुतिमस ४ ही था जिसने मितन्नी पत्नी के प्रभाव में आ महान स्फिक्स की पूजा बंद कर दी और होरेमखू (दो क्षितिजों पर सूर्य) देवता का पुराना मत चलाया। फिर उसके उत्तराधिकारी अमेनहोतेप तृतीय ने भी एक मितन्नी राजकुमारी से विवाह किया। और अतेन (सूर्य) का धर्म थीबीज में प्रचलित किया और कर्नक में इस नये धर्म के लिये अपने राज्यकाल के १०वें वर्ष में उत्सव चलाया। उसके उत्तराधिकारी अमेनहोतेप चतुर्थ ने अपने को थीबीज़ के महापुरोहित से मुक्त करने के लिये एक नई राजधानी बनाने का निश्चय किया, जहां उसने निश्चय किया कि अतेन महादेवता की उपासना की जायेगी। संभवतः अतेन का धर्म ही 'रा' की उपासना का बहुत प्राचीन रूप था। इस धर्म को चलान के कारण इस वंश के अंतिम राजा नास्तिक कहलाए, क्योंकि यह मितन्नी राजकुमारियों का प्रभाव समझा गया। १८०० ई. पू. में बैबीलोनिया का अंतिम सुमेरु राजा कैसाइट्स या कोशियन्स ने जीत लिया।

१. पंचानन पृ० ४००-०१
२. ऋग्वेदिक इंडिया पृ० २३३
३. वही पृ० २३४.
४. वही पृ० २५५.
५. वही पृ० २५७.
६. वही पृ २८४.
७. वही पृ० २८८-८९
८. ऋग्वेदिक इंडिया पृ० २९०-९१

अब दक्षिण भारत में प्राप्त द्रविड़ जातियों का उल्लेख भी आवश्यक है, यद्यपि जिस अवस्था में उन्हें भारतीय इतिहास में पाया जाता है, वह उनके आगमन के काफी बाद की है। इसका कारण है कि आर्य संबंधों का स्पष्ट विवरण उनसे काफी बाद होता है। भूतत्त्व-वेत्ता तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं के प्रस्तुत किये आधार ही उनकी प्राचीनता के द्योतक हैं। दक्षिण भारत की तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलगु, कुई, कुवी, कुलुख, ब्राहुई, गोंडी, इरूल, कुरुम्ब, कसव, बड़ग, तोड़, कोड़ग आदि भाषाओं में साम्य है।[१] यद्यपि इनके एक मूल की खोज में विद्वान लोग अभी सफल नहीं हो सके हैं, परंतु इनकी समानता उन्हें आकर्षित करती है।[२]

द्राविड़ पहले उत्तर भारत की भाषा थी। एक बहुत पुराना घोड़ा—फ़ासिल सपादलक्ष (सिवालिक) पहाड़ में मिला है। वेद में भी सिंधु तथा सरस्वती के अश्वों का वर्णन है।[३] (क्या घोड़ा द्रविड़ों के साथ था ?) ऐसे ही बिल्ली के यह शब्द हैं। तमिल—पूनै, कन्नड़-प्यूइयू; तेलगु—पूयू, (संस्कृत-मार्जार) मुंडा-पू.सी; तिब्बती-पी-सी, अफ़गान—पी सो; फारसी-पूसेक्; उत्तर पश्चिम भारत पुसी, बुसी, ब्राह्मी-पिसी; यूरोप-पुस इत्यादि यद्यपि समान हैं पर संभवतः यह ध्वन्यात्मक साम्य स्वतंत्र रूप से हुआ।[४] इसी प्रकार घोड़े के विषय में भी प्रतीत होता है। मोअन-जो-दड़ो, जो उस समय की सभ्यता का एक मुख्य केन्द्र था, उसमें घोड़े का कोई चिन्ह नहीं मिला है।

एक मत के अनुसार द्रविड़-आर्य-भारत-प्रवेश में बहुत समय का अंतर नहीं है। अधिक से अधिक वे यह मानते हैं कि द्रविड़ आर्यों से कुछ काल पहले आ गये थे। दूसरा मत द्रविड़ तथा आग्नेयों का भारत-प्रवेश काल इसी प्रकार का मानते हैं।

द्रविड़ भाषाएं : तमिल, मलयालम, कन्नड़, तोड़, कोडगु, तुलु, तेलगु, कुई, गोण्ड कुरूख, माल्टो, ब्राहुई इत्यादि हैं। द्रविड़ बाद में आये, या आस्ट्रिकों के साथ (यद्यपि द्रविड़ पथ उत्तर पश्चिम भारत है और आस्ट्रिक का दक्षिण पूर्व) और दोनों में परस्पर सम्मिश्रण हुआ।

द्रविड़ का पुराना नाम द्रमिष, द्रमिल, जिसका रूपांतर हुआ, द्रमिड़, द्रविड़, दमिल, तमिल (तमिष)।

एशिया माइनर के प्राचीन लाइसीयन का नाम था त्रिमिली। हैलेनिक क्रीट्वासी-तरमिलाई।[५]

सिंध, पंजाब, एलाम, क्रीट तथा साइप्रस की लिपियां फीनीशियन लिपि से प्राचीन हैं। सिंध, पंजाब लिपि का ब्राह्मी मौर्य लिपि से साम्य (आकृति) दिखाई देता है।[६]

---

१. इंहिक्वा ४. १९२८. पृ० ५९७-९८
२. वही पृ० ५९५
३. प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन पृ० ४९
४. वही पृ० ५१
५. इंडो आर्यन एण्ड हिंदी पृ० ४२.
६. वही पृ० ४२

द्रविड़ मोअन-जो-दड़ो के वासी हो सकते हैं। निकट ही ब्राहुई प्रदेश है तथा भूमध्य-सागर सभ्यता से साम्य है। सिंध पंजाब—नाल (बिलोचिस्तान) उत्तर पूर्वी ईरान (अनाऊ) तथा पश्चिम ईरान (एलाम), सुमेरिया-चैल्डिया में एक ही सी संस्कृति थी[१]

द्रविड़ संस्कृति का विराट् प्रसार उस सामाजिक अवस्था तक पहुंच चुका था, जिसमें दास प्रथा थी और बाजार का विकास हो चुका था।

द्रविड़ों के आगमन का रेखाचित्र ऐसा प्रतीत होता है :—

१. इंडो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० ४३

४
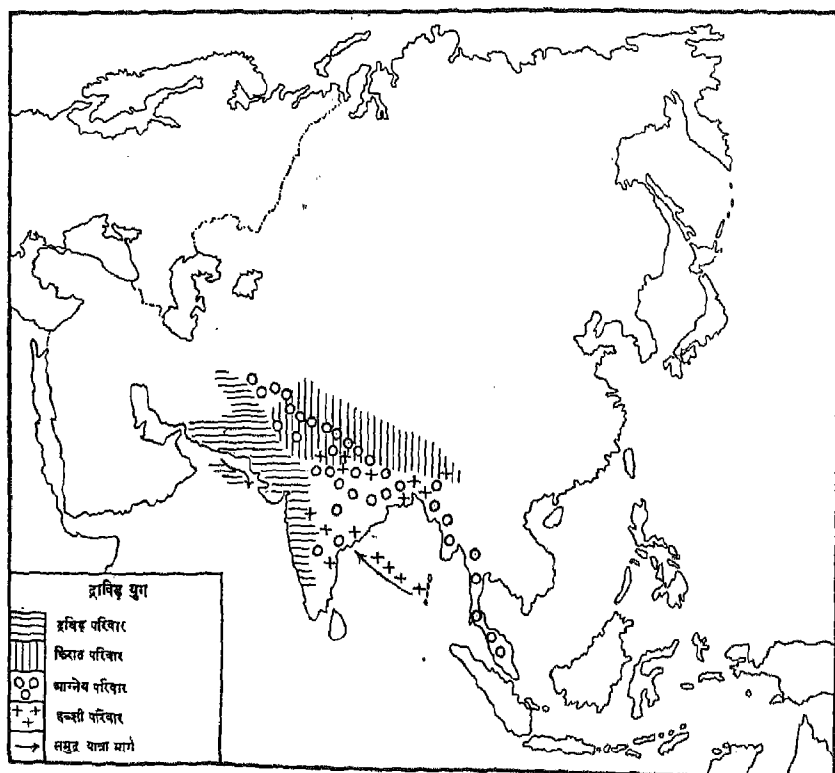
किरात—देव—असुर युग

इस समय जिस नये जाति-समूह के दर्शन होते हैं वह देव जाति-समूह है। देवों के माध्यम से ही असुर तथा यक्ष और समान जाति समूह पर प्रकाश पड़ता है इसलिये इनको, अलग-अलग नहीं करके, एक साथ देखा गया है। ऊपर आग्नेय तथा द्रविड़ परिवारों के विषय में एकत्र किये गए तथ्यों का कुछ अध्ययन किया गया था। देवयुग के विवेचन से उनके तथा उनके सामाजिक विकास पर प्रकाश पड़ेगा।

आग्नेय और द्रविड़ परिवारों के अतिरिक्त जो यह तीन ये परिवार हमारे सामने आते हैं, उनके विषय में विद्वानों में भारी मतभेद है। असुरों पर काफी लोगों ने लिखा है। फिर भी वे निश्चित नहीं कर सके हैं कि असुर कौन थे। यक्षों पर बहुत कम लोगों ने लिखा है, पर एक भी व्यक्ति उन्हें ऐतिहासिक स्थान नहीं दे सका है। देव-जाति का इस भूमि पर अस्तित्व श्री स्वामी शंकरानंद ने उल्लिखित किया है। उनके अनुसार राक्षस, मनुष्य, देव तीन भिन्न-भिन्न जातियाँ थीं। इधर किसी ने भी देव जाति के ऐतिहासिक विकास पर ध्यान नहीं दिया।

आर्य्य ! आर्य्य ! बस यही सब के सामने रहता है। आर्य्य कौन थे ? कहां से प्रारंभ हुए ? भारतीय युग परम्परा का आधार क्या है ? इत्यादि अनेक प्रश्नों का 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' के आधार पर उत्तर देने का प्रयत्न हुआ है। परंतु देव जाति की सामाजिक व्यवस्था पर किसी ने प्रकाश नहीं डाला।

उत्तर के इन तीन परिवारों को समझना भारत के इतिहास का रहस्य समझ लेने के समान है। इन तीन जातियों को जातिमात्र न लिखकर परिवार की संज्ञा देने का भी एक विशेष कारण है। इससे पहले कि हम इस समस्त युग पर अपनी व्याख्या दें, आवश्यक है कि उन तमाम आधारों, स्रोतों को एकत्र किया जाये, जिनके द्वारा हमारे सारांश प्राप्त होते हैं।

देव जाति के विषय में प्रारंभ करते समय सब से पहले आवश्यक है कि उनकी सत्ता को प्रमाणित किया जाये।

अथर्ववेद में स्पष्ट कहा गया है कि देव इसी पृथ्वी के वासी थे (११-५-१९ तथा ४-११-६)। इसके अतिरिक्त भी अन्य स्थानों पर यही प्रमाणित होता है।

देव सूर्य्य के, मनुष्य सोम तथा राक्षस या असुर अग्नि के उपासक थे। जो पहले पैदा हुए, वे देव थे और जो बाद में हुए, वे मनुष्य थे (शतपथ ब्राह्मण ७.४.२.४०.)। देव और मनुष्य एक ही समय जन्मे (श. प. २.३.४.४.)। देव पृथ्वी के ही वासी थे (श. प.

१४.३.२.४.)। मनष्यों को ही प्राचीन काल में देव कहते थे (श. प. ११.१.२.१२)। देवों का सर्वश्रेष्ठ भोजन नीवार (चावल) था (तैत्तरीय १.३.६.८)। देव सोम पीते थे, मनुष्य सुरा (तैत्त. १.३.३.३३.)। ऋभु (ऋ वे. १.११०. २.३) और मरुत् (ऋ. वे. १०.७७.२.) पहले मनुष्य थे, बाद में देव हो गये।

देव और मनुष्य का यह भेद कालक्रम से किया गया होगा। आर्य्य परिवार का विकास इन लोगों के इतिहास पर प्रकाश डालता है।

आर्य्य कबीले बहुत प्राचीन काल में ही अग्नि के उपासक थे। अग्नि की उपासना क्यों करते थे? क्योंकि वे जंगली अवस्था में थे। अग्नि मनुष्य की सब से बड़ी खोज थी। महाभारत में कथा है कि देवों ने सबसे पहले अग्नि को शमी वृक्ष में पाया और उसी से अग्नि को सुरक्षित रखने लगे।

भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि प्रारंभ में वह मूल जाति, जो प्राचीन हिंदी-यूरोपीय (वैदिक, अवेस्ता, ग्रीक, इतालिक, कैल्टिक, स्लाविक, जर्मनिक की माता चरागाहों में रहने वाली और घुमक्कड़ पेशा जाति की भाषा थी) बोलती थी, कुछ कृषि का ज्ञान रखती थी। उसके मूल स्थान तथा जाति किस्म को निश्चयात्मक ढंग से नहीं कहा जा सकता। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि यह जाति पश्चिम-दक्षिण रूस (संभवत: पूर्व जर्मनी या पोलेंड) से अल्ताई और थीन शान पर्वत (मध्य एशिया) तक एक संस्कृति की शृंखला फैलाये बसती थी। यहां अब मध्य और पूर्व में तातार रहते, हैं जो तुर्की और मंगोल बोलियां बोलते हैं, रूसी भी। इसके उत्तर में फ़िनो-उग्रियन लोग थे, जिनके अवशेष अब भी हैं। संभवत: इन घास के मैदानों में हिंदी-यूरोपीय तथा यूराल-अल्ताई भाषाएं थीं और उनमें परस्पर सम्मिश्रण भी था। संभव है इन दोनों की पूर्वज ही एक भाषा थी, जब यह मूल जाति यूरेशिया के मैदानों में रहती थीं। हिन्दी-यूरोपीय दो हुईं। पुरानी से कैल्टिक, इतालिक, जर्मनिक, ग्रीक निकलीं; नई से हिंद-ईरानी, अर्मनिक, अल्बानिया, बाल्टिक, स्लाविक। तुषारी भाषा से ज्ञात होता है कि पश्चिमी (पुरानी) भाषा के लोग न जान कभी पूर्व में आ गये होंगे। शायद वे ट्रांस्ज़ोनिया होकर आये थे।[1]

भाषा वैज्ञानिकों ने इस प्रारंभिक काल के समस्त-भाषा बोलने वालों का नाम 'विरस' रखा है। 'विरस' भाषा-भाषी लोगों का इतिहास परवर्त्ती इतिहास की उलझनों को काफी दूर करता है।

विरस लोगों के पास लिपि नहीं थी। वे मिस्री, सुमेरियन, अक्काडियन, असीरियन, एलामाईट, एशिया माइनर, एजियन लोगों (ग्रीक तथा पूर्वीय भूमध्यसागर, हरप्पा, मोहन-जो-दड़ो, चीनी) के बहुत दिन बाद हुए।[2]

मध्य तथा पूर्वीय यूरोप से, अर्द्धघुमक्कड़, अर्द्धस्थायी विरस लोग दलों में,

---

१. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट ऑफ़ द बंगाली लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर, पृ० २३-२४.

२. इंडो आर्य्यन एण्ड हिंदी पृ० ८.

दक्षिण और पश्चिम, दक्षिण-पूर्व तथा उत्तर-पश्चिम में चल पड़े और प्राचीन काल की ग्रीक, थ्रेशियन, फ्रीगियन, आर्मीनियन, आर्य्य (हिन्दी-ईरानी), जर्मन, कैल्ट, इतालवी संस्कृति स्थापित की ।[1]

प्राचीन हिन्दी-यूरोपीय के दो काल थे । एक, जब हिंदी-यूरोपीय लोगों में बोलियों के भेद का विकास नहीं हुआ था । दो, हिंदी-यूरोपीय लोगों से हिंदी-ईरानी दल अलग हो गया और एक भिन्न जलवायु वाले देश की ओर चल पड़ा ।[2]

मूल रूप में हिंदी-यूरोपीय लोग किसी खुश्क पथरीली धरती के वासी थे । जहां बड़े वन नहीं थे, केवल पेड़ों के झुरमुट थे; जिनमें ओक, चीड़, देवदार, गोंदवाले तरु थे। लचकदार पेड़ थे। फल वाले नहीं थे। वे चूहा तथा कुछ अन्य जंगली जंतुओं को जानते थे। घरेलू पशुओं में गाय उन्हें सुमेरियनों से मिली थी (सुमेरियन में गुड-उच्चारण गु. समय २७०० ई. पू. हिंदी-ईरानी में ग्वौस बन कर आया) । भेड़, बकरी, अश्व, कुत्ता, सूहर से परिचय था । चिड़िया जानते थे, मछली नहीं । फिर वे एक नम स्थान में आये, जहां पानी अधिक बरसता था, दलदल सी थी । और पशु-पक्षी, वनस्पति और ही प्रकार की थी । प्राचीन हिंदी-यूरोपियन का स्थान संभवतः उत्तरी खिरगीज मैदान थे, जो यूराल पर्वत के दक्षिण-पूर्व में थे । नया स्थान यूरोप के कार्पेथिन्स से बाल्टिक तक फैला मैदान था । यहां पश्चिमी एशिया, मिस्र, एजियन ग्रीस, सुमेर अक्काड़, मैसोपोटामिया, से हिंदी-यूरोपीय ने संस्कृति संसर्ग प्राप्त किया ।[3]

खास प्राचीन हिन्दी-ईरानी लोग यूराल में रहे तथा कुछ विरस लोग पोलेंड की ओर यूरोप में चले गये । या हो सकता है कि हिंदी-आर्य्यों तथा हिताइतों के कुछ पूर्वजों ने अपना मूल स्थान (उत्तर मध्य एशियाई मैदान) पहले छोड़ा और कोहकाफ होते हुए एशिया माइनर और मैसोपोटामिया और ईरान की ओर बढ़े, जबकि यूरोपीय दल पश्चिम की ओर बढ़ा । यूरेशिया का मैदान घोड़े का स्थान था । उन्होंने इसे पालतू बनाया । तेज दौड़ने वाले घोड़े ने सभ्यता में एक नई चीज पैदा की । अंतर्राष्ट्रीय संबंध बढ़ गये ।[4]

हो सकता है कि हिताइत विरस लोगों में से निकला पहला दल था, जो मूलस्थान से अलग हुआ और दक्षिण की ओर गया और यद्यपि यह दल एशिया माइनर में सशस्त्र, सशक्त हो गया, जिसने हिन्दी-यूरोपीय लोगों से पूर्व के लोगों पर शासन किया, मूल बंधुओं से कट जाने के कारण उनकी भाषाओं में भेद आ गया । उनके पीछे हिंदी-ईरानी या आर्य्य उनके बाद मैसोपोटामिया में आ गये । कुछ समय बाद इनके पश्चिम की हिंदी-यूरोपीय लोगों की एक दूसरी शाखा—हेलिनीड़ा, जो पूर्वीय यूरोप, पोलैंड तथा कार्पेथियन भू-प्रदेश वासी थे, बाल्कन होकर आये—रूमानिया, यूगोस्लाविया, बल्गेरिया

---

१. इन्डो आर्यन एण्ड हिंदी पृ० ९.
२. वही पृ० १०.
३. वही पृ० ११.
४. वही पृ० १२.

तथा अल्बानिया से ग्रीस और पश्चिमी एशिया माइनर उनका पथ रहा। और वहां उन की हिंदी-यूरोपीयनों से पहले के लोगों से पहचान हुई, संसर्ग बढ़ा और कालांतर में ग्रीस, एशिया माइनर तथा द्वीपों के अपने से पहले की जातियों को अपनी भाषा दी, हिंदी-यूरोपीय भाषा लदी और इस प्रकार १००० ई. पू. की ग्रीक संस्कृति का निर्माण हुआ।[१]

वही जाति, जो पूर्व में आई, भृगु थी, पश्चिम गई तो फ्रिगेस या फ्रूगैस हुई।[२] आर्य्यों का भारत में आगमन इतना धीरे रहा, कि अनेक पीढ़ियां गुज़र गईं। इसलिये वे मूलस्थान भूल गये। वैदिक तथा अवेस्तन के छंद, ईरान में ही शुरू हुए, बहुत संभव है मैसोपोटामिया में ही।[२]

श्री सुनीतिकुमार ने अपने इस विवेचन के साथ आर्य्यों की गतिविधि का काल निर्णय भी किया है। वे १२०० ई. पू. ही आर्य्यों का भारत आगमन काल मानते हैं। परंतु इसके सिवाय कि उन्हें इसका दृढ़ विश्वास है, उन्होंने इसके लिये कोई अच्छे आधार नहीं दिये हैं, जो मान्य हों। एक कारण है कि बोगज़-कोई की संधि का समय १४०० ई. पू. है और वह काल भाषा के आधार पर उन्हें वैदिक संस्कृत से प्राचीन लगता है।

बोगज़-कोई के लेखों में इन्-द-र (इंद्र) अ-रुन या उ-रु-व्-न (वरुण), मि-इति-र (मित्र), न-स-अत्-ति-इआ (नासत्य) का वर्णन है। मितन्नी के अधिपति इनकी उपासना करते थे, जो उत्तर-पश्चिम मैसोपोटामिया में राज करते थे। समय १५०० ई. पू. है। इन मितन्नियों के आर्य्य नाम थे; जैसे अर्तंतम्, अर्त्तमन्य, सौस्सतर, सुतर्ण, सुबन्धु, दुस्रत्त, सुवर्दत्, यस्दत्। कुछ विद्वानों का मत है कि मैसोपोटामिया होकर ही आर्य्य आये। पूर्वीय यूरोप, कोहकाफ, बाल्कन प्रदेश, एशिया माइनर, यह पूर्व की ओर आते समय पथ रहा। (संस्कृत : सूर्य्य) सूरियास् (सं० मरुत) मरुत्त, (संस्कृत-भग) (अवेस्ता-बग़) (स्लाव-बोगु)। बुगास की कैसाइट्स में भी उपासना थी, जिन्होंने १८०० ई. पू. बैबीलोनिया जीता था। उनके नामों में भी आर्य्य झलक है : इन्दुबुगास्। मंद अथवा मद जाति, जिसका प्राचीन बैबिलोनियन और हिताइत लेखों में उल्लेख है, जो आर्य्य भाषा बोलती थी, जो संभव है ईरान के परवर्त्ती मीडीज़ की पूर्वज जाति थी, भारत (पूर्व) की ओर आते समय मैसोपोटामिया, कुर्दिस्तान, पश्चिमी ईरान में रुक-रुक कर आ रही थी।

जो हो; ये हिंदी-यूरोपीय भाषी कुछ काल पूर्वीय ईरान में भारत में आने के पहले रहे, और इस समय के बहुत पूर्व उनकी भाषा का विकास उस मंज़िल की ओर हो चला जिसे हिंद-ईरानी या आर्य्य कहते हैं। हिंद-यूरोपीय का हिंद-ईरानी रूप, भारत में आने वाले आर्य्यों की भाषा का पूर्ववर्त्ती रूप है।[३]

१. इण्डो आर्यन एण्ड हिंदी पृ० १३. २. वही पृ० १६.
३. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ द बंगाली लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर पृ० २५.

बोगज-कोई की संधि में राजवंशों का उल्लेख है। ये राजा निरंकुश थे। ये लोग दास प्रथा को कायम रखने वाले थे।

"जब सूर्य्य[1] शुब्बिलियूमा, महान राजा, वीर, हट्टी के शासक, तेशुब[2] अर्ततम के प्रिय, हरी के राजा से संधि की और फिर, तुषरथ, मितन्नी के राजा ने, अपने को हट्टी के राजा के सामने ऊंचा उठाया, तब महान, हट्टी के राजा, मैंने, अपने को तुषरथ मितन्नी के राजा के विरुद्ध, उठाया और फ़रात के इस ओर की भूमि को मैंने लूटा और निब्लानी पर्वत को अपने राज्य में मिला लिया। दूसरी बार भी तुषरथ ने अपना सिर उठाया। उसने कहा : तुषरथ, राजा की भूमि ही फ़रात के उस तीर पर है; तू उसे क्यों लूटता है? अगर तू फ़रात के इस ओर लूटेगा तो मुझे उस ओर लूटना होगा। तुषरथ, राजा, अपनी उस धरती को कायम रखना चाहता है। पर अगर तू लूटता रहेगा तो वह आखिर क्या करेगा? और मैं नदी पार करूंगा, चाहे बालक हो या भेड़ का बच्चा। तब मैंने, महान राजा ने उसे अपनी शक्ति दिखाई। अब हट्टी के राजा के पिता के विरुद्ध इशुवा ने विद्रोह कर दिया था।

"...... मैंने फ़रात पार की, और इशुवा की समस्त धरती को उजाड़ दिया। दूसरी बार मैंने उन्हें पराजित किया। वह प्रजा और भूमि, जो मेरे पिता के काल में इशुवा के आधीन हो गये थे---जैसे---कुरतलेश, अर-व-न-, जज्जेश, ज़ेगराम, तुइमिन, पर्वत हलिन, पर्वत कर्ण, दुर्मित, अल्ह, हुर्म, पर्वत हरण, तेगराम, तेबुर्ज़िया, हज़गा, अर्मतन, इत्यादि के लोग---इन्हें मैंने जीता और हट्टी में मिला दिया। जीते हुए भूप्रांतों को मैंने आज़ाद कर दिया।

"...... मत्ति उआज़ा मितन्नी का राजा हो; हट्टी की राजकुमारी इसे ब्याहे, और हे मत्ति उआजा, तुझे केवल दस स्त्रियां रखने का अधिकार होगा। पर उनमें से कोई मेरी कन्या के अतिरिक्त पत्नी नहीं होगी। मत्ति उआज़ा और मेरी बेटी के पुत्र, उनके पुत्र, उनके भी पुत्र मितन्नी पर भविष्य में शासन करेंगे।

"हट्टी के हिताइत, और मितन्नी परस्पर शत्रुता छोड़ दें.....

"संधि की नकल अरिन्न (आर्य्यन?) के (देवता) शमश और कप्प के कुरिन्नी के देवता तेशुब के सामने रखी गई........।"

निस्संदेह जिस काल की यह संधि है वह बहुत परवर्त्ती है। यहां मैंने कुछ अंश दिये हैं। इन्द्र आदि का नाम इसी में आता है। अनेक नाम स्पष्ट ही संस्कृत के से प्रतीत होते हैं। १४०० ई. पू. की इस घटना से हमारा युग विशेष कहीं अधिक प्राचीन है, जब आर्य्य स्थिर नहीं थे। प्रश्न उठता है, आर्य्य क्यों घूमते थे?

भूमि की तृष्णा, या चरागाहों की खोज, या अर्द्ध-घुमक्कड़ जाति की भूख, या मतों का विभेद, भाषा में भेद, इनमें से क्या था, जो आर्य्यों को उठा चला, यह निश्चय

---

१. हट्टी के राजाओं की कुलोपाधि। २. हट्टी का सब से बड़ा देवता।

से नहीं कहा जा सकता। पूर्वीय ईरान-वासी आर्य्यों से ये निकले---(१) हिन्दू (२) ईरानीभाषी सीथियन (३) मग धर्म तथा सभ्यता, जो सुमेरु--सेमेटिक संस्कृति, बैबीलोनियन भाषा, तथा असीरियनों और एलाम वासियों से मिले और फ़ारस की सभ्यता पनपी (४) बलोच अफ़गान तथा अन्य ईरानी लोग (५) दरद या पिशाच बोलियां (काश्मीर)।[1]

आर्य्यों के चल पड़ने के ये कारण अवश्य ही महत्त्वपूर्ण हैं। परंतु मेरे मत से भारत की ओर उनके आने का कारण प्रलय की दुर्घटना थी।

यहां आर्य्य परिवार की भाषाओं के विकास की तालिका प्रस्तुत की जाती है, जो प्रगट करती है कि संस्कृत कितनी परवर्त्ती थी :
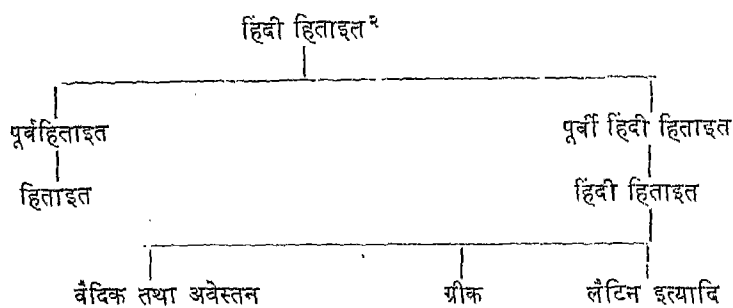
एक मतानुसार आर्य्य उस साइथिक कबीला जाति समूह में से एक कबीला जाति थी, जो आर्य्य भाषा बोलती थी। उसका समूह की भाषा की उत्पत्ति पर कोई प्रभाव नहीं। संस्कृत और अवेस्ता की भाषा से भी पुरानी भाषा के चिन्ह मिले हैं।[3] संस्कृत (द्रु), गोथ (त्रियु), इंगलिश (ट्री)[4] ही नहीं, समस्त हिंदी-जर्मन भाषाओं अर्थात् संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, ट्यूटानिक इत्यादि में, कुत्ते, गाय, घोड़े, सूअर, रीछ, भेड़िये, चूहे औटर इत्यादि के नाम मिलते-जुलते हैं।[5]

अनेक बार आर्य्य और द्रविड़ों के प्राचीन संबंध देखकर विद्वान यह भ्रम करते हैं कि ये दोनों एक ही थे। यह फिर पक्षपातपूर्ण विवेचन होता है कि एक ने दूसरे को सिखाया। सत्य यह है कि भारत में आने के पहले ही दोनों परिवारों का परस्पर संबंध हुआ था, क्योंकि जिन प्रान्तों में इनका वास था, वे दोनों के ही क्षेत्र थे।

भाषाओं को देखने पर यह प्रमाणित होता है कि संस्कृत और द्राविड़ बोलने वाली जातियों का बहुत पुराना संबंध था।[6]

---

१. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ द बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर, पृ० २६.
२. इंडो आर्य्यन एण्ड हिंदी पृ० २४६. ५. वही पृ० २७.
३. जरा एसो १६१६, पृ० ४६७. ६. प्रि आर्य्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन पृ० ५८.
४. प्रिहिस्टॉरिक एन्टिक्विटीज आफ़ द आर्य्यन पीपुल्स पृ० १७.

वैदिक में टवर्ग तथा अवेस्तन में ज़कार की ध्वनियां संभवतः इन द्राविड़ भाषाओं का ही प्रभाव है। ज़कार के विषय में विद्वानों का मत है कि यह उस मूल भाषा में था, जिसमें से वैदिक निकली। ज़कार अवेस्तन में रह गया; वैदिक में नहीं रहा।

भाषा-वैज्ञानिक संसार की मुख्य भाषाओं को निम्नलिखित परिवारों में विभाजित करते हैं:

१. सेमेटिकः असीरियो बैबीलोनियन + हिब्रू + फीनिशियन + सीरियक + अरबी + सैबियन + इथियोपियन + अबीसीनियन।

२. हेमेटिकः प्राचीन मिस्री + कोप्टिक + तुआरेज़, कब्बाल तथा अन्य बर्बर भाषाएं—सोमाली फुलानी इत्यादि।

३. चीनी तिब्बती या तिब्बती चीनी :चीनी, दाई या थाई आई स्यामी, मून-मा या बर्मी, बोड या तिब्बती, हिंदी-बर्मन इत्यादि।

४. यूराली : मगयार, फ़िन, एस्थ, लैप, वागुल, ओस्त्याक इत्यादि।

५. अल्ताई : तुर्की बोलियां—मंगोल, मांचू। द्राविड़ : तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलगू, गोण्डी, ब्राहुई इत्यादि।

६. ऑस्ट्रिक (आग्नेय)—कोल, मुण्डा, खासी, मानख्मेर, निकोबारी तथा अन्य। आग्नेय एशियाई (आस्ट्रो-एशियाटिक) भाषाएं।

आस्ट्रोनेशियन—इन्डोनीशियन, मलय, सूडानी, बालिनीज़, जावानीज़, सेलिबीज़ विसय, तगलोग इत्यादि।

मेलेनेशियन—फिजियन इत्यादि।

पोलिनेशियन—समोअन, ताहितियन, माओरी, मार्कुएसन, हवाईयन इत्यादि।

७. बान्तू—(मध्य तथा दक्षिण अफ्रीका) स्वाहिली, लुगन्दा, कोंगो भाषाएं इत्यादि।

८. सूडानी—पश्चिमी अफ़रीकी।

९. हिंदी-यूरोपीय।[1]

१. इंडो आर्यन एण्ड हिंदी. पृ० ५-६.

विरस भाषा में से प्राचीन हिंदी-यूरोपीय भाषा का विकास हुआ। उसमें से वैदिक, अवेस्तन, तथा अन्य भाषाएं निकलीं। हिताइत आर्य्य भाषा ही है। भाषा का यह विकास देव युग पर विशेष प्रकाश डालता है।

तोखारी भाषा लैटिन से मिलती है। यह मध्य एशिया में बोली जाती थी।[1] श्रेडर का मत है कि इन्डो-यूरोपियनों का मूलस्थान कहीं वोलगा के पास था।[2] कुछ का मत है कि आर्य्यों का आदि-स्थान कोहकाफ के पास था। अहुरमज्द ने जेंदावस्ता में कहा है: मैंने—अहुरमज्द ने, दैत्य नदी के तीर पर सर्वप्रथम, श्रेष्ठतम देश आर्य्यनबीजो बनाया।

दैत्य नदी आरस नदी मानी गई है, जो सैसेनियन काल में अरजीज कहलाती थी। अरारत पर्वत से निकलकर यह कैस्पियन समुद्र में गिरती थी।[3]

आर्य्यन वीजो—आर्य बीज है; अर्थात् वह स्थान, जहां सर्वप्रथम आर्य बसे। अहुरमज्द अपने अनुयायियों के साथ १६ देशों में घूमा था, ऐसा उल्लेख है। अन्त में वह ईरान में आकर रुका। अँग्रमन्युश ने संसार में प्रलय कर दिया था। अहुरमज्द अपने साथियों को बचाकर ले गया। स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि यह घटना प्रलय के बाद की है।

प्रलय वास्तव में देवयुग के अन्तिम समय में हुआ, यह हम आगे देखेंगे। मनु से ही मनुष्य प्रारंभ हुए।

हमें उन प्राचीन गाथाओं और दंतकथाओं को देखना चाहिये, जो देवों के विषय में हमें मिलती हैं। दंतकथाओं और गाथाओं का सुदूर अतीत में होना संभाव्य है, यदि उन्हें बार-बार दुहराया जाये। यहां ऋग्वेद के प्रथम अष्टक को ही लिया गया है। यही इस तथ्य को प्रमाणित करने को काफी है। गाथाएं इस प्रकार हैं:

मैं पवित्र बल, मित्र और हिंसक रिपु विनाशक वरुण को यज्ञ में बुलाता हूं।
(ऋग्वेद संहिता : १.१.१.१.२.७.)

इन्द्र ! विकट स्थान को भी भेदने वाले, प्रवहमान मरुद्गण के साथ तुमने गुफा में छिपी हुई गायों को खोजकर उनका उद्धार किया था। (१.१.१.२.६.५.)

वज्रयुक्त इन्द्र ! तुमने जो हरणकर्त्ता बल नाम के असुर की गुहा उद्घाटित की थी, उस समय बलासुर के निपीडित होने पर देव लोगों ने निर्भय होकर तुम्हें प्राप्त किया था। (१.१.१.४.११.५.)

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरवआवृणे। मैं सम्राट इन्द्र और वरुण से, अपनी रक्षा के लिये याचना करता हूँ। (१.१.१.४.१७.१.)

---

१. इंडिक्वा ५. १९२९. पृ० २५०.
२. प्रिहिस्टॉरिक एन्टिक्विटीज आफ़ द आर्यन पीपुल्स पृ० ४३८.
३. ए स्टडी इन हिंद सोशलपोलिटी पृ० ६०.

आर्य्य भाषाओं का विकास-क्रम इस प्रकार बताया जाता है।

जिन उग्र और अजेय बलशाली मरुतों ने जल-वृष्टि की थी, हे अग्निदेव ! तुम उन्हीं के साथ आओ। (१.१.१.५.१६.४.)
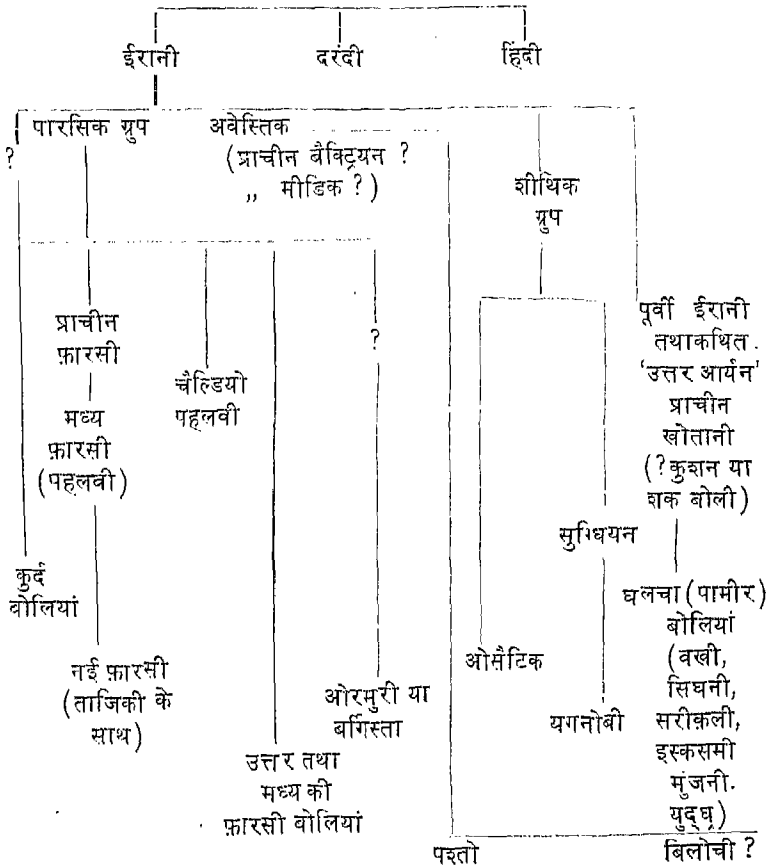
हे विश्वेदेवगण ! तुम रक्षक हो और मनुष्य के पालक हो; तुम एक दाता यजमान के प्रस्तुत सोमरस के लिये आओ। तुम यज्ञफल दाता हो। (१.१.१.२.३.७.)

जिन ऋभुओं ने जन्म ग्रहण किया था, उन्हीं के उद्देश्य से मेधावी ऋत्विकों ने, अपने मुख से, यह प्रभूत, धनप्रद स्तोत्र स्मरण किया था। (१.१.२.५.२०.१.)

---

१. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ द बंगाली लेंग्वेज, पृ० ४.

जिन्होंने इन्द्र के उन हरि नामक घोड़ों की मानसिक बल से सृष्टि की है, जो घोड़े आज्ञा पाते ही रथ में संयुक्त हो जाते हैं, वे ही ऋभु लोग, हमारे यज्ञ में व्याप्त हैं। (२)

ऋभुओं ने नासत्यों (अश्विद्वय) के लिये सुखवाही रथ बनाया; दूध देने वाली एक गाय पैदा की। (३)

जिस भू-प्रदेश से, अपने सातों छन्दों द्वारा विष्णु ने विविध पादक्रम किया था, उसी भू-प्रदेश से देवता लोग हमारी रक्षा करें। वामनावतारधारी विष्णु ने इस जगत् की परिक्रमा की थी। उन्होंने तीन प्रकार से अपने पैर रखे थे और उनके धूलि-युक्त पैर से जगत् छिप सा गया था। (१.१.२.५.२२.—१६ तथा १७)

धृतव्रत और शोभनकर्मा वरुण दैवी सन्तानों के बीच साम्राज्य संसिद्धि के लिये आकर बैठे थे। (१.१.२.६.२५.१०.)

वरुण अदिति पुत्र हैं (१२)

हे अग्नि! शत्रुंजय मित्र, वरुण और अर्यमा, जिस तरह मनु के यज्ञ में बैठे थे, उसी तरह तुम भी हमारे यज्ञ के कुश पर बैठो। (२६.४.)

(१.१.२.६.३०.६.)

इन्द्र बहुतों के पास जाते हैं। पुरातन निवास या स्वर्ग से मैं उस पुरुष का आह्वान करता हूं, जिसे पहले पिता बुला चुके हैं।

> त्वमग्न प्रथमो अङ्गिरा ऋषिदेवो देवानामभयः शिवः सखा।
> तव व्रते कवयो विघ्नापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टय :।
> (१.१.२.७.३१.१.)

अर्थात् तुम अग्नि! अङ्गिरा ऋषियों के आदि ऋषि थे। देवों के मंगलमय सखा! तुम्हारे व्रत से कवि, ज्ञात कार्य्य, शुभ्रशस्त्र मरुदगण ने जन्म लिया था।

तथा (१.१.२.७.३२)

वज्रधारक इन्द्र ने पहले जो पराक्रम का कार्य किया था; उसी का हम वर्णन करते हैं। इन्द्र ने मेघ का वध किया था। अनंतर उन्होंने वृष्टि की थी। प्रवहमाना पार्वत्य नदियों का मार्ग भिन्न किया था। (१)

इन्द्र ने पर्वत पर आश्रित मेघ का वध किया था। त्वष्टा ने इन्द्र के लिये दूरवेधी वज्र का निर्माण किया था। अनंतर जैसे गाय वेगवती हो बछड़े की ओर जाती है, वैसे ही धारावाही सवेग जल समुद्र की ओर गया था। (२)

बैल की तरह वेग के साथ इन्द्र ने सोम ग्रहण किया था। त्रिकद्रुक यज्ञों में चुवाये सोम का इन्द्र ने पान किया था। धनवान् इन्द्र ने वज्र सायक ले कर अहियों के अग्रज को मारा था। (३)

जिस समय तुमने मेघों के अग्रज को मारा था, उस समय तुमने मायावियों की

माया का विनाश किया था। अनंतर सूर्य, ऊषा और आकाश का प्रकाश किया। अन्त को तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहा। (४)

संसार में आवरण करने वाले वृत्र को महाध्वंसकारी वज्र द्वारा, छिन्न-बाहु करके विनष्ट किया था। कुठार काटे वृक्ष-स्कंध की भांति वह वृत्र पृथ्वी पर गिर पड़ा। (५)

दर्पांध वृत्र ने पृथ्वी पर अपने को अयोग्य समझ कर महावीर, बहुध्वंसक, शत्रुंजय इन्द्र का युद्ध में आह्वान किया था। इन्द्र के विनाश कार्य से वृत्र भाग नहीं पा सका। इन्द्रशत्रु वृत्र ने नदी में गिरकर नदियों को भी पीस दिया। (६)

हाथ-पांवहीन वृत्र ने युद्ध में इन्द्र को बुलाया था। इन्द्र ने गिरिसानु तुल्य प्रौढ़ स्कंध में वज्र मारा था। जिस प्रकार वीर्यहीन मनुष्य पौरुषशाली मनुष्य की समानता करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है, उसी प्रकार वृत्र ने भी वृथा यत्न किया। अनेक स्थानों में क्षत विक्षत हो वृत्र पृथ्वी पर गिर पड़ा। (७)

जिस तरह भग्न तटों को लांघ कर जल बहता है, उसी तरह मनोहर जल, पतित वृत्र की देह को अतिक्रम करके जा रहा है। जीवितावस्था में अपनी महिमा द्वारा वृत्र ने जिस जल को बद्ध कर रखा था, इस समय वृत्र उसी जल के पद-देश के नीचे सो गया। (८)

वृत्र की माता वृत्र की रक्षा के लिये उसकी देह पर टेढ़ी गिरी थी। परंतु उस समय इन्द्र ने उसके नीचे के भाग पर अस्त्र प्रहार किया। तब माता ऊपर और पुत्र नीचे हो रहा। अनंतर बछड़े के साथ गाय की तरह वृत्र की माता (दनु) अनंत निद्रा में सो गई।

पणि द्वारा जैसे गायें गुप्त थीं, उसी तरह वृत्र की स्त्रियां भी मेघ द्वारा रहित होकर विरुद्ध थीं। जल का वाहक द्वार भी बंद था। वृत्रवध कर इन्द्र ने उस द्वार को खोला था (११)। आगे वत्र को भी देव कहा गया है :

इन्द्र ! जब उस एक देव वृत्र ने तुम्हारे वज्र के ऊपर आघात किया था, तब तुमने घोड़े की पूंछ की तरह होकर उसका निवारण कर दिया था। तुमने पणि की छिपाई गाय को भी जीत लिया था; त्वष्टा के सोम रस को जीता था और सप्त सिंधु के प्रवाह को अप्रतिहत किया था। (१२)

निर्भीक श्येन पक्षी की भांति तुम निन्यानवे नदियां और जल पार गये थे। (१४)

नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि। १.१.२.७.३२.१४.१.१.३.७. इन्द्र ! शक्तिशाली मरुतों से संयुक्त रहकर भी तुमने अकेले ही धनवान् और चोर वृत्र का कठिन वज्र द्वारा वध किया था। यज्ञ-शत्रु वृत्रानुचरों ने तुम्हारे धनुष से विनाश का उद्देश्य करके पहुंच कर मृत्यु प्राप्त की। (४)

उन्होंने निर्दोष इन्द्र की सेना के साथ युद्ध करने की इच्छा की थी। (६)

उन वृत्रानुचरों ने पृथ्वी को आच्छादन कर डाला था और सुवर्ण और मणियों से भी वे संपन्न हुए थे। (७)

जबकि दिव्य लोक से जल पृथ्वी पर नहीं प्राप्त हुआ और धनप्रद भूमि को उपकारी द्रव्य द्वारा पूर्ण नहीं किया, तब वर्षाकारी इन्द्र ने अपने हाथों में वज्र उठाया और द्युतिमान वज्र द्वारा अंधकार रूप मेघ से पतनशील जल का पूर्ण रूप से दोहन कर लिया। (१०)

प्रकृति के अनुसार जल बहने लगा, किन्तु वृत्र नौकागम्य नदियों के बीच में बढ़ा। तब इन्द्र ने महाबलशाली और प्राणसंहारी आयुध द्वारा कुछ ही दिनों में स्थिरमना वृत्र का वध किया था। (११)

भूमि पर सोये हुए वृत्र की सेना का इन्द्र ने वध किया था और शृंगी और जगत् शोषक वृत्र को विविध प्रकार से ताड़ना दी थी। (१२).

इन्द्र ने तीक्ष्ण और श्रेष्ठ आयुध द्वारा वृत्र के नगरों को विविध प्रकार से भिन्न किया था। अन्त को इन्द्र ने वृत्र को वज्र द्वारा आघात किया था और उसे मारकर अपना उत्साह बढ़ाया था। (१३)

तुमने युद्धरत, श्रेष्ठ और दसों दिशाओं में दीप्तिमान दशद्यु की रक्षा की थी। शत्रु-भय से जल में मग्न होकर भी श्वैत्रेय ऋषि, मनुष्यों में अग्रणी होने की अभिलाषा से, आपके अनुग्रह से बाहर निकल आये थे। (१४)

१.१.३.७. ३४ में अश्विद्वय देवता हैं।

हे अश्विद्वय! तुम्हारे मधुर खाद्य वाहक रथ में तीन दृढ़ चक्र हैं। उन्हें सभी देवों ने चन्द्रमा की रमणीय पत्नी वेना के साथ विवाह यात्रा के समय जाना। (२)

वरुण आदि राजन्य वैसे मनुष्यों के लिये शत्रुओं का किला विनष्ट करते हैं, साथ ही शत्रुओं का भी विनाश करते हैं। (१.१.३.८.४१.३.)

तथा—१.१.४.१०.५१.

इन्द्र ने अंगिरा ऋषि के लिये मेघों से वर्षा कराई थी। जब असुरों ने अत्रि के ऊपर शतद्वार नामक यन्त्र फेंका था, तब इन्द्र ने अत्रि को भाग निकलने का रास्ता बताया था। इन्द्र ने विमद ऋषि को अन्न युक्त धन दिया था। संग्राम में विद्यमान स्तोता को वज्र चलाकर तुमने बचाया था। (३)

जिन असुरों ने यज्ञ के अन्न को अपने शोभन मुख में डाल दिया था, इन्द्र ने उन मायावियों को माया द्वारा परास्त किया था। इन्द्र ने पिप्रु असुर का निवासस्थान ध्वस्त किया था, ऋजिश्वान् नामक स्तोता को, चोरों के हाथ से, मरने से, सरलता से, बचा लिया था। (५)

शुष्ण से जब युद्ध हुआ तब इन्द्र ने कुत्स की रक्षा की थी और अतिथि वत्सल दिवोदास की रक्षा के लिये शम्बर का वध किया था (६) इन्द्र ने अर्बुद को हराया था।

इन्द्र ने दस्युवध के ही लिये जन्म लिया था। (६)

वम्र ऋषि इन्द्र की स्तुति करते करते संचित द्रव्य समूह ले गये थे। (६)

इन्द्र का बल उशना के बल के द्वारा तीक्ष्ण हुआ था (१०) शुष्ण के विस्तीर्ण नगर को ध्वस्त किया था। (११)

१.१.४.१०.५२.

इन्द्र ने आवरणकारी शत्रुओं को जीता (३) जिस प्रकार त्रित ने परिधि समुदाय का भेद किया था, उसी प्रकार इन्द्र ने यज्ञान्न से उत्साहित हो बल का भेद किया था। (५)

वृत्र की लड़ाई में मरुतों ने इन्द्र की अर्चना की थी। जिस समय इन्द्र ने तीक्ष्णघातक वज्र द्वारा वृत्र के मुंह पर आघात किया, उस समय समस्त देवगण संग्राम में उसे प्रसन्न देखकर आह्लादित हुए। (१५)

इन्द्र ने नमी की सहायता से मायावी नमुचि को दूर देश में मार डाला। (१.१.४.१०.५३.७.)

अतिथिग्व के लिये करंज और पर्णय का वध किया। ऋजिश्वान् ने वंगद के पुरों को घेरा था, इन्द्र ने उन शतसंख्यक नगरों को नष्ट किया। (१.१.४.१०.५३.८.) असहाय सुश्रुवा से युद्ध करने बीस राजा और उनके साठ हजार निन्यानवे अनुचर आये थे। इन्द्र ने पराजित किया था (८)। इन्द्र ने तूर्वयान को बचाया था। इन्द्र ने कुत्स, अतिथिग्व और आयु नामक राजाओं को महान युवक सुश्रुवा राजा के आधीन किया था। (१०)

इन्द्र असुर था (१.१.४.१०.५४.३) इन्द्र ने शम्बरवध किया था (४) शत्रुमर्दक और लौहकवचदेही इन्द्र ने सोमपान द्वारा हृष्ट होकर बल द्वारा, मायावी शुष्ण को हथकड़ी डाल कर कारागृह में बन्द कर रखा था। (१.१.४.१०.५६.३.)

इन्द्र ने विशाल पाषाण से वृत्र को ध्वस्त किया था (६)।

अग्नि हव्य का वहन करते थे और रुद्रों और वसुओं के सम्मुख स्थान पाये हुए थे (१.१.४.११.५८.३.)। वैश्वानर अग्नि ने वृत्रवध, जलवर्षण तथा शंबर विनाश में इन्द्र को सहायता दी थी (५६.६) इन्द्र ने जब अहि हनन किया था, तब देवपत्नियों ने इन्द्र-स्तुति की थी (१.१.४.११.६१.८.)। स्वश्वपुत्र सूर्य्य के साथ युद्ध के समय सोमाभिषवकारी एतश को इन्द्र ने बचाया था। (५)

इन्द्र की सहायता से पूर्व पुरुष अंगिरा लोगों ने, पदचिन्ह देखते हुए, अर्चनापूर्वक, पणि द्वारा अपहृत गौ का उद्धार किया था (१.१.५.११.६२.२.) इन्द्र और अंगिरा के गौ खोजते समय सरमा ने तनय के हित दुग्ध प्राप्त किया था। उस समय इन्द्र ने असुर वध कर गौ-उद्धार किया था। देवों ने भी गायों के साथ आह्लादकर शब्द किया था (३) इस काल में अग्नि के जाकर छिप जाने की कथा का भी उल्लेख है, १.१.५.१२.६५.१, और २ में अग्नि गुफा में छिप गया है। देवों ने पगचिह्नों का अनुसरण करके खोज निकाला। अग्नि (भृगु का अग्निवंश) संभवतः कहीं जल के समीप जा छिपा था।

अंगिरा नामक पितरों ने मंत्र द्वारा अग्नि की स्तुति करके बलि तथा दृढांग पणि को नष्ट किया था। (७१.२.) पहले अंगिरा लोगों ने इन्द्र के लिये अन्न संपादित किया था। अनंतर उन्होंने अग्नि जलाकर सुन्दर याग द्वारा इन्द्र की पूजा की थी (१.१.६.१३.८३.४.)। अथर्वा नामक ऋषि ने, पहले, यज्ञ द्वारा चुराई हुई गायों का रास्ता प्रदर्शित किया था। अनंतर व्रतपालक कांति विशिष्ट सूर्य्य रूप इन्द्र आविर्भूत हुए थे। गायें अथर्वा को मिलीं। कविपुत्र उशना या भृगु ने इन्द्र की सहायता की थी (८३.५)। इन्द्र ने दधीचि की हड्डी लेकर वृत्र को ८१० बार मारा था (८४.१३.)। पर्वत में छिपे दधीचि के अश्वमस्तक को पाने की इच्छा से इन्द्र ने उसे शर्यणावत्ति सरोवर में प्राप्त किया (८४.१४) शोभनकर्मा त्वष्टा ने जो सुनिर्मित सुवर्णमय और अनेक धारासंपन्न वज्र इन्द्र को दिया था, उसी से इन्द्र ने वृत्र वध किया था, और जलधारा गिराई थी। (१.१.६.१४.८५.९)। मरुतों ने अपने बल पर कूप को ऊपर उठाकर पथ-निरोधक पर्वत को भिन्न किया था। शोभन-दानशील मरुतों ने वीणा बजाकर सोमपान से प्रसन्न हो, रमणीय धन दिया था (८५. १०)। मरुतों ने उन गौतम की ओर कूप टेढ़ा किया और ऋषि को जल दिया (८५. ११.)।

वृत्र के पिता का नाम वृसय था (१. १.६. १४. ९३. ४)। देवों ने धनद अग्नि को दूत नियुक्त किया (९६. ३.)। अग्नि ने अमु या मनु के प्राचीन और स्तुति-गर्भ मंत्र से तुष्ट होकर मानवी प्रजा की सृष्टि की थी। (९६. २.)।

इन्द्र, सोम रस की तरह, बल द्वारा पञ्च श्रेणी (?) के रक्षक हैं (१. १. ७. १५. १००. १२.)। इन्द्र ने शिम्युओं को मारा था (१८) इन्द्र ने कृष्ण की गर्भवती स्त्रियों की हत्या की थी (१०१. १.) इन्द्र अश्वों का अधिपति तथा गोपों का ईश है (१०१. ४.) इन्द्र ने रौहिणवध किया (१. १. ७. १५. १०३. २.) कुवय दूसरे के धन का अपहरण करता था। जल में रहकर फेनयुक्त जल चुराता था। कुवय की स्त्रियां उसी में स्नान करती थीं। वे स्त्रियां शिफा के गंभीर जल में विनष्ट हों (१०४. ३.) अमु अर्थात् उपद्रव के लिए इधर उधर जाता कुवय जल के बीच रहता है। उसका निवास-स्थान गुप्त था। अन्जसी, कुलिशी और वीरपत्नी नदियां उसी की हैं (१०४. ४.) हमने उस असुर के घर का रास्ता देखा है। इन्द्र ! हमें बचाओ। (१०४. ५.) इन्द्र ने कुवय का वध किया (१. १. ७. १५. १०३. ८) कुएं में गिरे त्रित का आह्वान बृहस्पति ने सुना; उद्धार किया (१०५. १७.) अरुणवर्ण वृक ने उसे देखा। रात भर बैठा रहा। पर मार न सका। चला गया (१०५.१८.) इन्द्र शची का पति था (१०६. ६) जब ऋभुगण का ज्ञान अपरिपक्व था उन्होंने सोम की इच्छा की थी और वे अपने कर्म के महत्व द्वारा हविर्दानशील सविता के घर पहुंचे थे (१. १. ७. १६. २.) वे सुधन्वा पुत्र थे (११०. ४.) अश्विद्वय ने असुरों द्वारा कूप में फेंके हुए, पाशबद्ध रेभ ऋषि को जल से बचाया, ऐसे ही बन्दन ऋषि की रक्षा की तथा अंधकार में फेंके हुए कण्व को उजाले में लाये (१. १. ७. १६. ५.) अन्तक को बचाया, समुद्रमग्न

त्रुग पुत्र भुज्यु की रक्षा की। पीड़ित कर्कंधु तथा वय्य को बचाया (६) शुचन्ति को धन दिया। दह्यमान अत्रि को शतद्वार घर से निकाला, पृश्निगु तथा पुरुकुत्स की रक्षा की (७) पंगु परावृज ऋषि को चलने लायक बनाया, भग्नजानु श्रोण का पांव ठीक किया, अंधे ऋजाश्व के नेत्र ठीक किये। वृक गृहीत वर्त्तिका को छुड़ाया (८) मधुमयी नदी प्रवाहित की, वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य, नर्य नामक ऋषियों को बचाया (९) धनवती अगस्त्य-पुरोहित खेल ऋषि की पत्नी विश्पला की जांघ ठीक करके उसे युद्धभूमि में जाने योग्य कर दिया; अश्वपुत्र वश की रक्षा कीं (१०) दीर्घतमा की उशिज् नामक स्त्री के पुत्र वणिकवृत्ति दीर्घश्रवा को जल दिया; उशिज् पुत्र कक्षीवान् की रक्षा की (११) कण्वपुत्र त्रिशोक ऋषि को अपहृत गौ का उद्धार करने का उपाय बताया (१२) तथा राजर्षि मांधाता की रक्षा की। अन्न देकर भारद्वाज की रक्षा की (१३) शंबरवध के समय, जल में छिपे दिवोदास को बचाया;. पुरुकुत्स पुत्र त्रसदस्यु की रक्षा की (१४) पानरत विखन: पुत्र वम्र की रक्षा की; स्त्री पा जाने पर कलि नामक ऋषि को बचाया; अश्वशून्य पृथि नाम के वैन राजर्षि को बचाया (१५) शंयु, अग्नि, तथा पहले मनु को राह दिखाई तथा स्यूमरश्मि नामक ऋषि के शत्रुओं पर तीर चलाये (१६) राजर्षि पठर्वा को युद्ध में शक्ति दी, युद्ध में शर्याति राजा को बचाया (१७) देवों से पहले पणिद्वारा अपहृत गायों को ढूंढ निकाला। अन्न देकर मनु की रक्षा की, (१८) विमद ऋषि को भार्या दी; गायें दीं, पिजवन-पुत्र राजा सुदास को धन दिया (१९) देवों के शमिता अध्रिगु की रक्षा की, ऋतुस्तुभ ऋषि को अन्न दिया (२०) सोमपाल कृशानु की युद्ध में रक्षा की (२१) अर्जुन अर्थात् इन्द्र पुत्र कुत्स, तुर्वीति तथा दधीति की रक्षा की; ध्वसन्ति तथा पुरुषन्ति नामक ऋषियों को बचाया (२२) उन्होंने भज्यु को सौ डांड वाली नौका में तुग्र के पास पहुंचाया (१. १. ८. १७. ११६. ५, पुत्राभिलाषिणी नपुंसकपतिका वध्रिमती को हिरण्यहस्त नामक पुत्र दिया था (१३) ऋजाश्व ने वृकी के लिये १०० भेड़ काटीं थीं तो पिता वृषागिर ने उन्हें नेत्रहीन कर दिया था; अश्विद्वय ने उन्हें ठीक किया (१६) सारे देवों में अश्विद्वय के शीघ्रगामी घोड़ों के होने से सूर्यपुत्री सूर्या इनके द्वारा विजित हो गई और उसने इन के रथ पर आरोहण किया (१७) जिस समय जाहुष राजा शत्रुओं द्वारा घिर गये थे, अश्विद्वय अपने रथ पर उन्हें बाहर निकाल लाये थे और शत्रुओं द्वारा दुरारोह पर्वतों पर गये थे (२०) वश ऋषि को धन देकर रक्षा की थी। इन्द्र से मिलकर पृथुश्रवा राजा के शत्रु नष्ट किये थे (२१) ऋचत्क के पुत्र शर नामक स्तोता के पाने के लिये कूप का जल निकाला था; श्रांत शयु ऋषि की प्रसवशून्या गौ को दुग्धवती बनाया था (२२) कृष्णपुत्र और ऋजुता-तत्पर विश्वकाय नामक ऋषि की रक्षा की, तथा उनके मरे पुत्र विष्णापु को उन्हें दिखा दिया था (२३) रेभ को, दस रात और नौ दिन कूप में पड़े सुनकर, बाहर निकाला था (२४) बुढ़ापे तक पितृगृह में रहने वाली घोषा का कोढ़ दूर किया तथा पति दिया (१. १. ८. १७. ११७. ७) कुष्ठग्रस्त श्याव को दीप्तिमती स्त्री दी। कवि को नयन दिये, चलने योग्य बनाया

बहरे नृषद को कान दिये (८) राजर्षि पेदु को अश्व दिये (९) कुम्भपुत्र अगस्त्य की स्तुति सुनी थी (११) वृद्धच्यवन को युवा किया था (१३) असुर विष्वाङ् के पुत्र को विषैले तीरों से मार डाला था (१६) पुरुमित्र राजा की कुमारी को विमद की स्त्री बनाया था (२०) अथर्वा के पुत्र दधीचि के स्कन्ध पर अश्व मस्तक जोड़ा था और उससे मधुविद्या सीखी थी (२२) बन्दन को युवा किया था, वामदेव को मेधावी बनाया था (१. १. ८. १७. ११९. ७)।

एतानि वायश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्वारायायवोऽवोचन्। तुम्हारे इन प्राचीन कार्यों को पूर्वज कह गये हैं। (१ . १. ८. १७. ११७. २५.)

ये वे कथाएं हैं, जो ऋग्वेद में भी इतनी प्राचीन हैं कि इनका देवों से संबंध जोड़ा गया है। प्राचीनकाल में पितर पूजा होती थी। पितरों को देव हो जाने में काफी समय लगना आवश्यक है। अब इन तथ्यों का विवेचन करने के पहले आवश्यक है कि अन्य स्रोतों से भी जो इन जाति परिवारों, व्यक्तियों के विषय में इन्हें प्राचीन समझकर वर्णित किया गया है, उस पर एक बार दृष्टिपात किया जाये। अस्तु।

इन्द्र ने त्वष्टा-पुत्र विश्वरूप की हत्या की और यतियों को मारकर कुत्तों को खिला दिया।[1] अरूरमघस को मार डाला। बृहस्पति ने इसका विरोध किया तो इन्द्र ने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया। इस पर क्रुद्ध होकर देवों ने इन्द्र को सोम देने से इंकार किया। परंतु इन्द्र आगे बढ़ा और बलपूर्वक त्वष्टा के हाथ से सोम छीन कर इन्द्र पी गया। उस समय उसकी डांट सुनकर सब देव उसकी स्तुति करने लगे।[2]

इन्द्र का विश्वरूप का वध करना भागवत में भी वर्णित है। महाभारत में भी इसकी कथा है। परंतु परवर्ती साहित्य में इन्द्र को स्पष्ट ही बुरा कहा गया है। वैदिक साहित्य का साक्ष्य भी इसे बुरा ही कहता है क्योंकि इन्द्र इसमें सोम को जबर्दस्ती छीन कर पीता है और उसके बल और अधिकार से बाकी लोग डर कर चुप हो जाते हैं।

इन्द्र अनेक हुए थे। इन्द्रपद योग्यतानुसार मिलता था। यह पैतृक पद नहीं था। योग्यता के कारण ही, महाभारत में, इन्द्र का पद कार्त्तिकेय को दिया गया था। यदि यह स्थान पैतृक पद होता तो नहुष को भी अवसर नहीं दिया जाता।

इन्द्र का अनाचार देखकर बलि ने इन्द्र को प्राचीन इन्द्रों की परंपरा याद दिलाई थी। उस समय उसने पुराने नाम याद दिलाये थे, विश्वभुज, भूतधामन, शिबि, शांति, तेजस्वी, देवराज।[3]

इन्द्र ने राक्षस का रूप धर कर सगर का घोड़ा भगाया था।[4]

नाग नामक नगर (गोमती) पर इन्द्र को मांधाता ने हराया था।[5]

---

१. ऋग्वेदिक इंडिया १. पृ. १५९ तथा वेदिक इन्डैक्स २. पृ. १८५.

२. ऋ. इं. २. पृ. १५९.

३. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १३६.

४. वही पृ. १३७.

५. वही पृ. १३९

पश्चिम में मेघवत् गिरि पर इन्द्र का अभिषेक हुआ था।[1] इन्द्र की पत्नी शची पौलोमी थी।

इन्द्र ने अपने पिता द्यौस की हत्या की थी (ऋग्वेद ४. १८)।[2]

इन्द्र स्पष्ट ही उस नीति तथा आचार-व्यवहार का प्रतीक माना जाता हुआ दिखाया गया है, जिसका अनुसरण बाद में छोड़ दिया गया था। देवासुर संग्राम में देव पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर सब जगह हार गये, परंतु सप्तसिंधु के उत्तर-पूर्व में जीत गये (एतरेय ब्राह्मण)।[3]

देवासुर संग्राम का अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। यहां यह स्पष्ट होता है कि असुर विजेता देव सप्तसिंधु के उत्तर-पूर्व की सीमा पर पहुंच चुके थे।

इन्द्र के समय में ही गोत्र अलग-अलग हो गये थे।[4] गोत्रों का आविर्भाव पितृ स्रोत की ओर इंगित करता है। समाज के विकास की एक विशेष मंजिल में पिता का स्थान समाज में माता के स्थान से ऊंचा हो जाता है।

वेद में आकाश के लिए वरुण तथा पृथ्वी के लिए अदिति आया है। पुराणों में आकाश के लिये कश्यप हो गया है।[5] कश्यप ऋग्वेद में बहुत प्राचीन ऋषि है।[6] गयप्लात-असित, कश्यप, एक भूला हुआ सा अतीत का मायावी है।[7] अश्व (ऋग्वेद १. १६३. १) त्रित इन्द्र को यम ने दिया था। कुछ लोग यहां इन्द्र का अर्थ सूर्य लगाते हैं। यह अमान्य है। इस अश्व का वर्णन यह भी मिलता है कि इस पर प्रथम गंधर्व विश्राम करता है।[8]

इन पुराने नामों के अतिरिक्त यह जानना भी आवश्यक है कि तत्कालीन आर्यों (देवों) के मुख्य कबीले ये थे: अथर्वण, आंगिरस, भृगु, जामदग्नि, अत्रि, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, काश्यप, अगस्त्य, काण्व, आङ्गिरा इत्यादि।

गोत्रों का तथ्य यहां स्पष्ट हो जाता है।

देवयुग का इतिहास इतना प्राचीन है कि इसको एक सिलसिले से लिख देना अत्यंत कठिन कार्य है। वैदिक साहित्य में अनेक नामों का उल्लेख हुआ है। उनमें अङ्गिरा का विशेष स्थान है।

अङ्गिरा गोत्र के केवलांगिरस, हारीत, मौग्दलाय तथा विष्णु वृद्ध, गार्ग्य इत्यादि का उल्लेख मिलता है।[9] ऋग्वेद में वामदेव और भारद्वाज आंगिरस थे।[10] प्रागैतिहासिक काल के आंगिरस और भी प्राचीन किसी अंगिरा के वंशज थे। ऋग्वेद (१०. १४) में तभी उनका वर्णन स्वर्गवासी के रूप में नाभाग, अथर्वण, भृगु तथा अन्य ऋषियों के साथ

---

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ० १४१
२. विल्सन, भाग ३. पृ. १५३.
३. ऋग्वेदिक इंडिया १ पृ. १५६.
४. वदिक इन्डैक्स २ पृ. २३५
५ ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ दि प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १ पृ. ८२.
६. वेदिक इन्डैक्स १. पृ. १४५
७. वही पृ. २१९.
८. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ दि प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १, पृ. ८५
९. ज बिओरिसो २५. १९३९. पृ. १२५
१०. वही पृ. १२६

किया गया है।[1] आंगिरसों ने अग्नि पूजा का प्रारंभ किया—वलि का (ऋग्वेद १०.६७.२.१) और इस प्रकार वे देवों और इन्द्र के मित्र हो गये (ऋ वे. १०.६२.१.)। इन्द्र को आंगिरस्तम कहा गया है (ऋ. वे. १. १००, ४; १, १३०. ३)। ऋषियों ने इन्द्र को सोम दिया।[2] पणि देवता बल का मंदिर नष्ट करके अङ्गिरा के नेतृत्व में देव सरमा के साथ गायें लाये थे (ऋ. वे. २१५. ८; १०. ६७. ६.)।[3] अङ्गिरा पहले इन्द्र के पूजक थे, फिर बराबर हुए और फिर देवों के गुरु हो गये।[4] सप्तर्षियों में अथर्व में अथर्वाङ्गिरस तथा भृगाङ्गिरस का उल्लेख आता है।[5]

ब्रह्मा के मनु से मानव हुए, किंतु नद्वला आग्नेयी तथा चाक्षुष मनु से उरू हुए, जिनसे अङ्गिरा उत्पन्न हुए, यह कथा है।[6] यादव अङ्गिरा के शिष्य थे। दुर्वासा भृगुवंशीय थे, जिन्होंने शाप दिया था। देवकीपुत्र कृष्ण ने छांदोग्य उपनिषद् में घोर आंगिरस से मधुविद्या सीखी थी।[7] अङ्गिरा से ही भारद्वाजगण तथा गौतमगण हुए।[8]

वैदिक काल में कुछ पात्र ऐसे हैं, जिनकी उलझन बड़ी है। दिवोदास के विषय में भ्रम होते हैं। वास्तव में दिवोदास एक नहीं था। वेलंकर ने इस विषय पर प्रकाश डाला है :

एक दिवोदास अतिथिग्व था, वह भरत वंश में उत्पन्न हुआ था। उसके पिता का नाम वध्र्यश्व था। उसके पुजारी सुमित्र थे। देवता अग्नि वैश्रवण था। शत्रु वृसय था।[9]

दूसरा गंगु अतिथिग्व था। उसकी सहायता से इन्द्र ने पर्णय, करन्ज का वध किया था।[10]

तीसरा इन्द्रोत का पिता अतिथिग्व था। यह तूर्वयान का सहायक था।[11]

इनके अतिरिक्त एक चौथे का भी उल्लेख मिलता है। हर्यश्व वाराणसी का राजा था। उसे हैहयों ने मार डाला था। हर्यश्व का पुत्र सुदेव था, सुदेव का पुत्र दिवोदास था। दिवोदास सौदेव पुत्र प्रतर्दन ने हैहय वीतहव्य हराया।[12]

इन सब के भिन्न-भिन्न समय थे। अतिथिग्व ने करन्ज तथा पर्णय के वध में इन्द्र की सहायता की थी। अतिथिग्व तुर्वश तथा यदु का शत्रु था। अतिथिग्व का आयु तथा कुत्स के साथ संबंध है। उसे तूर्वयान ने हराया था। अतिथिग्व तीनों ही बहुत प्राचीन लगते हैं।[13]

इसी प्रकार अगस्त्य भी है।

अगस्त्य : मान का पुत्र था अतः मान्य कहलाया। अन्यथा वह मित्र और वरुण का पुत्र कहा गया है। अगस्त्य ने इन्द्र और मरुतों का समझौता कराया था। ऋग्वेद में अगस्त्य और लोपामुद्रा की बातचीत है। अगस्त्य वासना से पराजित हो गये। अथर्व में अगस्त्य

---

१. जबिओरिसो पृ. १४१
२. वही पृ. १४२
३. वही पृ. १४४
४. वही पृ. १४५
५. वही पृ. १४७
६. वही पृ. १५०
७. वही पृ. १५६
८. वही पृ. १५७
९. अभांरिइ, सिल्वर जुबिली नंबर २३, १९४२ पृ. ६६१
१०. वही पृ. ६६४
११. वही पृ. ६६५-६६
१२. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १३८
१३. वैदिक इन्डैक्स १, पृ. १५,

का जादू-माया से संबंध है।[1] अगस्त्य ने १०० उक्षन (बैल) बलि दिये।[2]

कालेय असुरों को नष्ट करने अगस्त्य समुद्र पी गया था। अगस्त्य की पत्नी का नाम लोपामुद्रा था।[3]

इसी देवासुर संग्राम के बाद असुर गति उत्तर की ओर हुई 'द्याम आरोहन्ताम्'।[4]

कलि भी भ्रामक नाम है। कलि का वर्णन अथर्ववेद में गंधर्वों के साथ है। ऋग्वेद में दो बार एकवचन में नाम आया है। यह आश्विनों का कृपापात्र है। एक बार बहुवचन में भी प्रयुक्त हुआ है। कलि का जूए से संबंध है। गंधर्वों की स्त्रियां द्यूत और अक्ष-क्रीड़ा की शौकीन हैं।[5] पीला अप्सरा (अथर्व)[6] तथा इन्द्र की कृपापात्री अप्सराओं का वर्णन (ऋग्वेद) काफी प्राचीन है।[7]

परवर्तीकाल की ओर न आकर उन कथाओं और घटनाओं पर दृष्टिपात करना ठीक होगा, जिन्हें वेद में प्राचीन मनुष्य की घटनाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन कथाओं में अनेक स्थानों में मनुष्यों और देवों का साथ-साथ वर्णन है। कहीं-कहीं देव मनुष्य के दैवी रक्षकों के रूप में भी वर्णित हुए हैं। इन कथाओं में तत्कालीन अन्य जातियों का भी परिचय प्राप्त होता है :

श्यावाश्व वन में मरुतों से मिलकर ऋषि हो गया था।[8] संवर्त्त आंगिरस ने मरुतों का अभिषेक किया (एतरेय ब्राह्मण)[9] स्वर्ण सदैव देवताओं से संबंधित है[10] श्रविन्द अनार्य्य था। इन्द्र का शत्रु था (ऋग्वेद).।[11]

सोम गंधर्वों से खरीदा जाता था। बाद में शूद्र के रूप में गंधर्वों का वर्णन किया जाता था। सोम पर्वत पर पाया जाता था। वह साधारण मनुष्यों के लिये अप्राप्य था। सौत्रामणि उत्सव में सोम वमन किया जाता था। और कहा जाता था कि 'जैसे पहले इन्द्र ने किया था।'[12] सुरा का इन्द्र शौकीन था। नमुचि वध के बाद इन्द्र इतनी सुरा पी गया था कि वह बीमार पड़ गया था।[13] इन्द्र ने सूर्य को हरा कर उसके पहिये को चुरा लिया।[14] स्रक इन्द्र का आयुध था।[15] इन्द्र प्रतिधा में भर कर तीस सराम्षि पी गया था (ऋग्वेद)।[16] इन्द्र मदिरा का घोर पायी रहा होगा।

सुपर्णों का ऋग्वेद में वर्णन है[17]। ऐतरेय ब्राह्मण में आख्यानविदों का वर्णन है जो 'सौपर्णकथाएं' सुनाते थे। (वेदिक इन्डैक्स १. पृ. ५२.)

विश्वकर्मन् भौवन का कश्यप ने अभिषेक किया था और विश्वकर्मन् ने उसे धरती

---

१. वेदिक इंडेक्स पृ. ६-७
२. वही २ पृ. १४६
३. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १८५
४. असुर इण्डिया पृ. ६
५. वेदिक इण्डैक्स १ पृ. १४२
६. वही पृ. ३४
७. वही पृष्ठ ४६५
८. वेदिक इन्डैक्स २, पृ. ४००
९. वही पृ. ४१४
१०. वही पृ. ५०४
११. वही पृ. ४७१
१२. वही पृ. ४७५
१३. वही पृ. ४५६
१४. वही पृ. ४६५
१५. वही पृ. ४६८
१६. वही पृ. ३०
१७. वही पृ. ४५५

दान दे दी थी। ऋषि विश्वमनस् इन्द्र का मित्र था।[१] शंयु बृहस्पति का पुत्र था (बाद में यजुर्वेद में वह एक गुरु है)।[२] शिवि की इन्द्र ने विदेशी आक्रमण से रक्षा की थी।[३] शिवि उशीनर पुत्र था।

युधाम श्रौष्ठि औग्रसैन्य उग्रसेन का वंशज था (एतरेय. ब्रा.)। पर्वत और नारद ने उस राजा का अभिषेक किया था।[४] रजि दानव का पिठीनसि के लिये इन्द्र ने वध किया था।[५] रेभ आश्विनों की दया का पात्र था। उसे उन्होंने कैद और जल से बचाया था[६] रौहिण (ऋग्वेद और अथर्ववेद) इन्द्र का असुरशत्रु था।[७] लूषा के विरुद्ध इन्द्र और कुत्स लड़े।[८] वध्रिमती को आश्विनों ने हिरण्यहस्त नामक पुत्र दिया था।[९] वर्चिन (ऋग्वेद) दास है। शंबर के साथ उल्लिखित है। उसे इन्द्र का शत्रु तथा असुर भी कहा गया है। संभवतः वह वृचीवन्तों में था।[१०] वशिष्ठ वरुणोर्वशिपुत्र था। वशिष्ठ को त्रत्सु भी कहा है।[११] ऋग्वेद में भी वातरशन तथा नंगे मुनियों का उल्लेख है।[१२] विमद को आश्विनों ने कमद्यु नामक पत्नी दी।[१३] ऋग्वेद में कृष्णपुत्र विष्वक आश्विनों का मित्र था।[१४] बृसय इन्द्र शत्रु था। उसका वर्णन पणि तथा पारावतों के साथ आया है।[१५] बेकनाटों को इन्द्र ने पणियों के साथ हराया था (ऋग्वेद)।[१६] भृगु ऋग्वेद में प्राचीन था। वारुणि वरुण का पुत्र था।[१७] इन्द्र मुनियों का मित्र था। अथर्व में देवमुनियों का वर्णन है। वे अध्ययन, बलि, तप, व्रत, श्रद्धारत थे।[१८]

ऋग्वेद में देवौशित् जादूगर थे।[१९] नववास्त्व, उशनसपुत्र, अग्नि का कृपापात्र, इन्द्र का प्रिय था, परंतु बाद में इन्द्र ने इसकी हत्या कर दी थी।[२०] नवग्व आंगिरस प्राचीनकाल का व्यक्ति था, उसका दाश्वों से संबंध था।[२१] पिप्रु (ऋग्वेद) इन्द्रशत्रु था, ऋजिश्वान हित इन्द्र ने मारा था। वह दास, असुर तथा काला था। उसके पास किले थे।[२२] पुरंधी को ही आश्विनों ने हिरण्यहस्त नामक पुत्र दिया था।[२३] पुरमाय्य (ऋग्वेद) अतिथिग्व, ऋक्ष तथा अश्वमेध से संबंधित था और इन्द्र का कृपापात्र था।[२४] पुरुमिल्ह (ऋ. वे.) प्राचीन ऋषि था।[२५] दृभीक असुर या राक्षस था, इन्द्र ने उसका वध किया था।[२६] वृत्र पाश्य (पत्थर की चारदीवारियां) में रहता था। पिठीनसि इन्द्र का मित्र,

१. वेदिक इन्डेक्स पृ. ३०६
२. वही पृ. ३४५
३. वही पृ. ३८०।
४. वही २, पृ. १६४
५. वही पृ. १६६
६. वही पृ. २२६
७. वही पृ. २२६
८. वही पृ. २३२
९. वही पृ. २४०
१०. वही पृ. २४६
११. वही पृ. २७६
१२. वही पृ. २८४
१३. वही पृ. ३०४
१४. वही पृ. ३०६
१५. वही पृ. ७०
१६. वही पृ. ७३ बेकनाट बीकानेर के पास का कोई स्थान था ?
१७. वही पृ. १०६
१८. वही पृ. १६७।
१९. वही २, पृ. १६७
२०. वही पृ. ४३८
२१. वही पृ. ४३७
२२. वही पृ. ५३२
२३. वही पृ. ५४०
२४. वही पृ. ५४३
२५. वही पृ. ५४३
२६. वही पृ. ३७३

मनुष्य था[1] पर्णय असुर का इन्द्र ने वध किया था।[2]

दभीति के लिये इन्द्र ने चुमुरि और धुनि को हराया। दभीति ने इन्द्र के लिये सोम मांगा और ज़ोर दिया कि उसे पिलाया ही जाये। तब इन्द्र ने उसे इनाम दिया। दभीति ने दासों को हराया। तुर्वीति के साथ उसका नाम आश्विनों के कृपापात्रों में उल्लिखित हुआ है।[3] दशोणि पणिविरुद्ध इन्द्र का मित्र था।[4] अर्कमन् अदेवयु, अब्रह्मन्, अयज्वन्, अव्रत, अन्यव्रत, देवपीयु, यह दस्यु वर्णन है। वे अनास थे। इन्द्र ने उन्हें मारा था। ईरानी में दस्यु से मिलता शब्द है—दन्हु।[5] दक्यु देववन्त, वध्र्यश्व, दिवोदास, अतिथिग्व, पिजवन, सुदास, यह वंशक्रम है। दिवोदास को इन्द्र ने हराया।[6]

दिवोदास, पणि, पारावत तथा वृसय से लड़ा।[7] कुत्स ऋग्वेद में बहुत प्राचीन है। उसे आर्जुनेय कहा गया है। इन्द्र का मित्र है, एक बार इन्द्र ने उसे हराया भी। उसने शुष्ण को हराया।[8] कुयवाच असुर को इन्द्र ने मारा।[9] सामन् बनाने वाला गर इन्द्र का मित्र था।[10] भृगु, आंगिरस—च्यवन ऋषि (दोनों का ही वंशज बताया गया है) को शर्यात् कन्या सुकन्या ब्याही गई। उसे आश्विनों ने युवक बनाया था। वह पक्थ राजा, तूर्वयान की इन्द्रोपासना का विरोधी था।[11] तूर्वयान—अतिथिग्व—आयु कुत्स का शत्रु था। पक्थ था। वह च्यवन और मारुतों के विरुद्ध था। इन्द्र ने उसे सहायता दी थी।[12] बाद में इन्द्र च्यवन मित्र हो गये।[13]

भृगु अप्नवान् प्राचीन ऋषि था (ऋ. वे.)।[14] उशनस काव्य (ऋ. वे.) अतीत का ऋषि था; कुत्स इन्द्र से संबंधित था। उसका दूसरा नाम कवि उशनस था। वह असुरों का पुरोहित बन गया था। ब्राह्मणों में वह गुरु के रूप में विद्यमान है।[15] ऋग्वेद में बहुत प्राचीन ऋजिश्वान् है, इन्द्र का मित्र था।[16] रुशम इन्द्र का कृपापात्र था।[17] रुशमा कुरुक्षेत्र के चारों ओर भागी और दौड़ में उसन इन्द्र को हरा दिया (पंचविंश ब्राह्मण)।[18]

वेद में गान्धार की गन्धारि का भी उल्लेख है।[19]

सप्तवध्रि पेड़ों में फंस गया था। उसकी रक्षा आश्विनों ने की थी।[20] आश्विनों की गाड़ी गधे खींचते थे[21]।

---

१. वेदिक इन्डैक्स पृ. ५२४
२. वही पृ. ५०१
३. वही १. पृ. ३३९।
४. वही पृ. ३४६
५. वही पृ. ३४७
६. वही पृ. ३६३
७. वही १, पृ० ३६३.
८. वही पृ० १६१
९. वही पृ० १६४
१०. वही पृ० २२०
११. वही पृ० २६४-६५
१२. वही पृ० ३१९.
१३. वही पृ० २६४-६५
१४. वही पृ० २६
१५. वही पृ० १०३
१६. वही पृ० १०८
१७. वही २, पृ० २२५.
१८. वही पृ० २२५
१९. वही १, पृ० २१८.
२०. वही २, पृ० ४२५.
२१. प्रिहिस्टॉरिक एन्टिक्विटीज आफ़ द आर्यन् पीपुल्स, पृ० २६६.

अब पौराणिक तथा इस परवर्त्ती युग में देव युग के विषय में जो कथाएं वर्णित मिलती हैं, उनपर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है।

उशना असुरों के देवर्षि थे।[१] महर्षियों में भृगु, अत्रि, अंगिरा, सिद्ध, काश्यप, गौतम, वशिष्ठ, अगस्त्य, नारद, पर्वत, मारीचिप, अकृष्ट, हंस, अग्नियोनि, वानप्रस्थ तथा प्रष्णि गिनाये गये हैं।[२] भृगु का शास्त्र मनु के शास्त्र से भिन्न था।[३] उशना भार्गव पुत्री अरजा से मनुपुत्र दण्ड ने बलात्कार कर दिया।[४] विष्णु ने उशना की स्त्री का सिर काट डाला था।[५] आंगरिस बृहस्पति ने भाभी ममता से बलात्कार किया था। वह भाई उतथ्य की पत्नी थी। बृहस्पति बड़ा विद्वान था।[६] बार्हस्पति भारती तथा बार्हस्तम् ज्ञानम् अथवा शास्त्रं में भेद माना जाता था।[७]

देवों की इन कथाओं को जैसे-जैसे गहराई से देखा जाता है, अनेक जातियों के नाम अधिकाधिक मिलते जाते हैं, जो असुर नहीं हैं, वरन् गंधर्व, यक्ष इत्यादि हैं। यही उपरोक्त तीसरा परिवार है। इन तथ्यों का अभी विवेचन नहीं किया गया है, केवल इन्हें प्रदर्शित करना आवश्यक है। इतिहासज्ञ तथ्यों को ऐसे उपस्थित करे कि पहले प्रत्येक व्यक्ति उन पर स्वयं विचार करे। अपने परिणामों को थोपना ठीक नहीं होता, क्योंकि उसमें इतिहास में अधिक गलतियां रहने की संभावना रहती है। इस प्रकार अनेक ऐसी घटनाएं भी दिखती हैं, जो आधुनिक समाज में अग्राह्य समझी जाती हैं। इनका कारण विभिन्न प्रकार के समाजों की सत्ता है। तैत्तरीय संहिता में मर्क असुर पुरोहित है। उसका शण्ड के साथ वर्णन है। देवताओं का गुरु बृहस्पति हैं। मर्क में ईरानी संबंध प्रगट होता है।[८]

मूजवन्त उस सुदूर रहती जाति का नाम है, जिनमें रुद्र से सधनुष जाने की प्रार्थना की गई है। (यजुर्वेद)

पिशाच (अथर्ववेद) असुरों तथा राक्षसों के साथ वर्णित हैं। (तैत्तरीय) देवों, मनुष्यों, पितरों के शत्रु हैं। कच्चा मांस खाते हैं। पिशाच वेद या विद्या का उल्लेख है (परवर्त्ती वेदिक साहित्य)।

नारद अथर्ववेद में एक प्राचीन ऋषि है। एतरेय ब्राह्मण में हरिश्चंद्र का पुरोहित है। पर्वत के साथ भी उल्लिखित है। वह सोमक साहदेव्य को शिक्षा देता है। आम्बष्ठ्य तथा युधांश्रंति का अभिषेक करता है। संविधान ब्राह्मण में बृहस्पति का शिष्य है। छांदोग्य उपनिषद् में सनत्कुमारों के साथ वर्णित है।[११]

पर्वत—दक्ष के वंशज की पुत्री पार्वती है। शतपथ तथा कौशीतकि ब्राह्मणों में वर्णन है।[१२]

---

१. एपिक मायथॉलॉजी, पृ० १७८
२. वही पृ० १७६-७७
३. वही पृ० १७९.
४. वही पृ० १७९.
५. वही पृ० १८०
६. वही पृ० १८१
७. वही पृ० १८१
८. वैदिक इन्डैक्स २, पृ० १३६.
९. वही पृ० १६९.
१०. वही १, पृ० ५३३.
११. वही पृ० ४४५.
१२. वही पृ० ५२२.

पार्वती का विकास विद्वान् काफी परवर्त्ती भी मानते हैं।

देव योनि में अनेक जातियों का वर्णन है :

विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्व्व किन्नराः ।
पिशाचो गुह्चक : सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

कुमारस्वामी ने यक्षों पर अच्छा प्रकाश डाला है।

वैदिक साहित्य में हिन्दू धर्म के अनेक वर्तमान आधार बिल्कुल नहीं हैं। ब्राह्मण, उपनिषद् इत्यादि में संसार, कर्म, योग, तप तथा भक्ति का प्रभाव मिलता है। यही हाल यक्ष, शिव, कृष्ण, नाग, इत्यादि असंख्य देव पूजा के विषय में भी है।[१] पुसिन का मत है कि यक्ष से संबंधित सभी जातियों पर ब्राह्मण प्रभाव नहीं है; कुछ अनार्य्य भी हैं।[२] बुद्ध को भी काव्यमय वर्णन में यक्ष कहा गया है। यक्ष परवर्त्ती काल में (जातक युग) लाल आंख के मनुष्यभक्षी राक्षसों की गणना में आ गये।[३] अंगुत्तर निकाय में (२. ३७) बुद्ध ने कहा है : मैं न देव हूं, न गंधव्ब, न यक्ख।[४] अनेक गांवों में पेड़ के नीचे एक खुरदुरा पत्थर ही वेदी समझ ली जाती है।[५] यह चैत्य पूजा का चिन्ह है। जैसे कालांतर में देवों के विरुद्ध अवेस्ता में प्रचार है, वही संभवतः यक्षों के विरुद्ध भारत में हुआ ?[६]

यक्ष शब्द ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में आया है। उसका अर्थ कुछ भयानक या अद्भुत है, या जादूगर या अदृश्य दैविक बर्बर शत्रु।[७] ऋग्वेद ४.३.१३: अग्नि ! यक्ष से संबंध न रखो . . . . ५. ७०.४। हे सर्वशक्तिमान देवता ! कहीं हमें यक्ष न मिल जायें ७.५६.१६. यक्षदृषो; यक्ष को देख पाना, क्योंकि यक्ष अदृश्य है; ऐसे उल्लेख हैं। ७.६५.२ तथा ८८.६. और दीर्घ निकाय २.२०४. में यक्षों का उल्लेख है। वरुण यक्ष कहा गया है। अथर्ववेद ११.२.२४. में भी यक्ष का उल्लेख है।[८] १०.७.३८ अथर्ववेद में वरुण, ब्रह्म, अथवा प्रजापति के संबंध में कहा गया है : एक महान यक्ष, सृष्टि मध्य में, जलतीर पर तपसनिरत, उसी में समस्त देवता निहित, जैसे तने में पेड़ की शाखा. . . . . . ।

यक्ष वनस्पति का स्वामी है।[९] गोपथ १.१ तैत्तिरीय ३.१२.३.१. ब्राह्मणों में उल्लेख है—मैं तप करके यक्ष बन गया।[१०] बृहदारण्यक उपनिषद् ५,४ में कहा है—जो महान यक्ष को आदिजन्मा जानता है कि ब्रह्म सत्य है—वह विजय प्राप्त करता है। केनोपनिषद् ३, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४.२०, में भी यक्ष का उल्लेख है।[११] गृह्य सूत्र में कुबेर यक्षराज है। उन्हें अन्य अनेक देवताओं के साथ आमंत्रित किया गया है और 'भूत' नाम से उनको संबोधित किया है। यह वैदिक काल के अंत में दिखाई देता है। बाद में यक्षों को रोगों का देवता कहा गया है ? परवर्त्ती रामायण में कथा है कि ब्रह्मा ने जल

---

१. यक्ष १, पृ० २.
२. वही पृ० २
३. वही पृ० ४
४. वही पृ० ४.
५. वही पृ० ४.
६. वही पृ० ४.
७. वही २, पृ० १
८. वही पृ० २.
९. यक्ष २, पृ० २.
१०. वही पृ० ३.
११. वही पृ० २.

के रक्षक बनाये और कुछ चिल्लाये—रक्षामः—हम रक्षा करें—वे राक्षस हुए। कुछ चिल्लाये—यक्षामः—हम भक्षण करें—वे यक्ष हुए। यक्ष का पेट बड़ा दिखाया जाता है। शिव भूतेश्वर हैं। भूत का अर्थ है 'हो गया'। यक्ख भूत भी इसी प्रकार यक्ष हो गया। शतपथ ब्राह्मण में कुबेर राक्षस है, पापियों और डाकुओं का राजा है। सूत्रों में उसे ईशान के साथ विवाह में पति के लिये बुलाया गया है; उसके गण बच्चों में महामारी फैलाते हैं। भरहुत के यक्ष तथा देवताओं के नाम हैं: सुपवसु यक्ख, विरुधको य०, गंगित य०, सुचिलोम य०, कुपिरो य० (कुबर), अजकालको य०, सुदसन य०, चदा (चंदा) यक्खी, सिरिमा देवता, चुलकोक देवता, महकोक दे० इत्यादि।[१]

यक्ष देवों से नीचे और भूतों से ऊंचे हैं, ऐसा रामायण और महाभारत में प्रगट होता है। (इसको हम विस्तार से देखेंगे) यक्ष तथा भूत को देव तथा देवता से स्पष्ट रूप से अलग-अलग करके नहीं देखा जाता। यक्ष कभी वृक्ष देवता हैं, कभी मधुर वन देवता। कुबेर, कुवेर, (वैश्रवण, वैश्रमण, बौद्ध साहित्य में वेस्सवन, पांचिक, जंभल, इत्यादि) चार महाराजाओं में है। आठ मुख्य देवता लोकपालों में से एक है; उत्तर का राजा है। कभी इन्द्र, पूर्व का राजा, उसके साथ उल्लिखित होता है। कुबेर, धनद, वसुद है; संतानद है। वह अलक नगर में रहता है, जो कैलाश पर्वत पर स्थित है, प्राचीरों से घिरा है, वहां किन्नर, मुनि, गंधर्व, राक्षस भी रहते हैं।[२]

यक्ष इच्छारूपधर हैं; दयालु तथा महायोद्धा हैं। बाद में द्वारपाल (पुण्यजन) कहे गये हैं। वे व्यापारियों के रक्षक हैं। गुप्त कला ४०० ईसवी में बहुतायत से वर्णित गणेश भी यक्षों की किस्म का देवता है।[३]

कुबेर, गुह्यपति है। कुछ यक्ष स्कंद के अनुचर हैं, जिसे कहीं-कहीं गुह कहा गया है।[४]

कुबेर सोने को सबसे पहले पिघलाने वाला था। मदुरा की दक्षिणी मीनाक्षी पहले कुबेर की पुत्री थी; यक्षिणी हुई। मातृका, जोगिनी, डाकिनी इत्यादि स्त्री देवता यक्षों से संबंधित है ?[५]

यक्षिणी अस्समुखी, अर्थात् अश्वमुखी कही गई है।[६] बौद्ध साहित्य में इन्द्र भी यक्ख कहा गया है।[७] बौद्ध महावंश में लंका के आदिवासी यक्ख कहे गये हैं।[८] संतालों का विश्वास है कि अच्छे आदमी मरकर वृक्ष बनते हैं।[९] (ऊपर वृक्ष से यक्ष का संबंध बताया गया है)। यक्ष वेदी. आयतन—चैत्य, पेड़ के नीचे पत्थर रखकर ही बन जाता है। संभव है महाभारत १२.१२१. में वर्णित चाण्डाल मंदिर, जिसमें मूर्त्तियों तथा घंटों का वर्णन है यक्षायतन ही था। न्यग्रोध इन चैत्यों का पवित्र वृक्ष है।[१०]

---

१. वही १, पृ० ५
२. यक्ष, १ पृ० ६
३. वही पृ० ७.
४. वही पृ० ८.
५. वही पृ० ९
६. वही पृ० १०.
७. वही पृ० ११.
८. वही पृ० १३.
९. वही पृ० १४.
१०. वही पृ० १७.

यक्ष वृक्ष देवता कहे गये हैं। द्रविड़ तथा सुमेर में भी वृक्ष से संतान कामना की जाती थी।[१]

चैत्यों पर यक्ष, गंधर्व, नाग का पुष्पार्चन किया जाता था।[२] यक्षों तथा राक्षसों की बलि मदिरा और मांस है। यही मनु ने भी कहा है।[३] (यक्षवाद भक्तिवाद है[४]) कुबेर भागवत कहा गया है (महाभारत)। उसे बुद्ध भी कहा गया है। यक्ष[५] मूर्त्ति, मंदिरों को देखकर गंध, फूल, वस्त्र चढ़ाया जाता था। घंटानाद, लीला नाटक, तीव्र मदिरा, पशु-बलि का भी उल्लेख है।[६] शिव शंकर, कार्त्तिकेय इत्यादि महामायूरी सूची में यक्ष कहे गये हैं।[७] यक्ष भी बुद्ध की भांति पद्मपाणि कहा गया है। बौद्ध वज्रपाणि, जब इन्द्र से भिन्न मिलता है, तब वह यक्ष का ही वर्णन है।[८] वज्रपाणि यक्ष है, ऐसा गांधार चित्रों में मथुरा में मिला है। परंतु तब वज्रपाणि कमर तक नग्न है; इससे प्रगट होता है वह राजा नहीं माना गया है।[९] इससे बिल्कुल निश्चित होता है कि यक्ष वज्रपाणि इन्द्र से अलग था, किंतु बौद्ध-पूर्व चलने वाला कोई उपासना मत था। यह यक्ष आगे बुद्ध का रक्षक देवदूत बन गया, अनुचर भी हुआ और परवर्त्ती काल में बोधिसत्व वज्रपाणि कहलाया।[१०]

रामायण में ताड़का यक्षिणी से राक्षसी हो गई ऐसा वर्णन है।[११]

मातृकाएं कौबेर्य्यः कहलाती थीं। उनका कुबेर से प्रगट संबंध है। उन्होंने स्कंद को पाला था। उसकी रक्षिकाएं थीं।[१२] श्वेत पर्वत तथा शरवन जो स्कंद का जन्मस्थान था, उसे वायु और अग्नि ने बनाया था। इस अग्नि को कृष्ण, विष्णु तथा शिव से मिला दिया गया है। अग्नि वृषाकपि कहा गया है।[१३] अग्नि ने वेद के लिये जन्म लिया था। अग्नि इन्द्र की भांति ही व्यभिचारी-जार था। इन्द्र बकरा, वरुण मेढा तथा सूर्य्य घोड़ा—इन रूपों में वर्णित हैं। अग्नि ने ओघावती से विवाह किया था। धर्म ने अतिथि के रूप में ओघावती से बलात्कार किया था। अग्नि ने अतिथि सत्कार कहकर धर्म का पक्ष लिया था।[१४]

कुछ अन्य देवों का वर्णन इस प्रकार है: ऋभु दैवी प्राणी हैं। उन्हें सुख-दुख की भावना नहीं है। वे देवदेव सनातन हैं।[१५]

एक वसु चोर था। कृष्ण ने वसुओं में श्रेष्ठ पावक को ही माना था; रुद्रों में शंकर को। रुद्र ग्यारह हैं; मृगव्याध, सर्प, निर्ऋति, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु तथा भग। रामायण के अनुसार रुद्रों की माता अदिति है। रुद्र

---

१. यक्ष १, पृ० ३२
२. वही पृ० २४.
३. वही पृ० २५.
४. वही पृ० २७.
५. वही पृ० २७.
६. वही पृ० २७.
७. वही पृ० २९.
८. वही पृ० ३०.
९. वही पृ० ३१.
१०. वही पृ० ३१.
११. यक्ष २, पृ० ५
१२. एपिक मायथॉलॉजी पृ० १४५ तथा २२८.
१३. वही पृ० १०४–५.
१४. वही पृ० १०२–३.
१५. वही पृ० ३६.

इन्द्र के साथी, शिव तथा शिवपुत्र के सेवक और यम के मित्र थे। वे स्थाणु की प्रजा तथा मरुतों के पिता थे।[१] मरुत अजिन पहनते थे।[२] रुद्र गण थे। उनका वसिष्ठ तथा भृगु इत्यादि से संबंध जोड़ा जाता है। कामदेव रुद्र से पुराना है। काम की स्त्री रति थी। काम एक प्रकार की अग्नि भी है। प्रेम का चिन्ह मकर है। काम तभी मकरकेतन कहा गया है।[३]

नासत्य और दस्र, मार्त्तंड के पुत्र थे। इन्हीं को अश्विनीकुमार कहा जाता था। मार्त्तण्ड आठवां आदित्य था। मार्त्तण्ड गुह्यक थे और शूद्र भी।[४] गुह्यक यक्ष को कहा जाता था।

विवस्वत (सवितृ), त्वष्ट्री (त्वष्ट्रपुत्री) का पति था।

सवितृ और वरुण दोनों ही सम्राट् कहे गये हैं। सवितृ ने ऋभुओं को अमर कर दिया था।[५] सवितृ जादूगर, महान् देवता था।[६] उसके चित्रों में उसके लंबे-लंबे हाथ बनाये गये हैं। ऐसे चित्र बका (ब्रस्तय) किन्ने कुले, कोहकाफ में मिले हैं।

ऋग्वेद में आदित्य के ६ या ७ नाम ही मिलते हैं। मित्र, वरुण, भग, सवितृ, विष्णु, इन्द्र।[७] डाक्टर विन्डिशमान का मत है कि मिथ् प्राचीन आर्य्यों में था, उस समय जब कि ईरानी और भारतीय आर्य्य अलग नहीं हुए थे। कालांतर में जोरोस्ट्रियन सूर्य्य के विषय की भावना में कुछ परिवर्तन आ गया। वेद में मित्र अदिति का पुत्र है और सदैव ही प्रायः वरुण के साथ उसका उल्लेख होता है। अवेस्ता में मिथ् का स्थान द्वितीय है लेकिन मज्दा मत से बहुत पहले मध्य एशिया में सूर्य्य (मिथ्) उपासना थी, इसमें संदेह नहीं किया जा सकता। बहुत प्राचीन काल से ही मिथ् के पुजारी मगी या मग कहलाते थे। मीडिया की जनसंख्या की ६ कबीला जातियों में से एक थे।[८] यदि बेरोसस पर विश्वास किया जाये, जो बैबिलोनिया का प्रसिद्ध इतिहासकार था, तो जरथुष्ट्र वंश का राज्यकाल २२००–२००० ई० पू० था। स्पितन जरथुष्ट्र, मज़्दा मत का प्रतिष्ठाता, उससे पहले ही हुआ था। मग भारत में तो बुद्ध से बहुत पहले आ गये थे, क्योंकि बुद्ध ने मग ब्राह्मणों को अच्छा नहीं बताया।[९] बृहत्संहिता में भी सूर्य्य को उत्तरी वेशभूषा का माना है, उसे कक्ष से चरण तक वस्त्राच्छादित रहना चाहिये।[१०] सूर्य्य रजु को सर्प रज्जु कहा गया है।[११]

माया तथा मायाविन् मग और मगी के पर्य्याय लगते हैं। मग शाकद्वीपी ब्राह्मण

---

१. एपिक मायथॉलॉजी, पृ० ७७, १७३, १६८, १७२, १६५, १६८.

२. वेदिक इन्डैक्स १, पृ० १४.

३. एपिक मायथॉलॉजी, पृ० १६५–१७३.

४. वही पृ० ८३, पृ० १६८.

५. अभांओरिइ २०. १९३८–३९ पृ० ३११

६. वही पृ० ३१५.

७. सूर्य्य पृ० ४.

८. सूर्य्य पृ० १३–१४.

९. वही पृ० १६.

१०. वही पृ० २४.

११. वही पृ० २५.

थे जिन्हें शीथिया से साम्ब मृग नामक स्थान से लाया था। मृग मेर्व के निकटस्थित मार्गि-आना प्रदेश था।[1]

महातल बुखारा प्रदेश तथा सुतल (सुजाति का स्थान, जहां बलि राजा बंदी किया गया था) बलख प्रदेश था। इस प्रकार अतल में बैबीलोनिया था। वितल में पामीर के पास फान-तान था। नितल में सेग्दिमाशा के असुर थे। तलातल में मर्गिआना था। महातल में बुखारा, सुतल में बलख. तथा रसातल में खीवा प्रदेश था। जो साइथियन तथा हूण यहां रहते थे, वे तूरानी थे।[2]

सुबाहु, श्रीवह, सुरस तथा सुबल साइथियन्स की सु-जाति के थे।[3] हिरण्यकश्यप तथा हिरण्याक्ष का नगर ही हिरण्यपुर था। ये दोनों ही दिति के कश्यप से पुत्र थे। दनु के पुत्र दानव थे। यह हाइर केनिया नगर कैस्पियन समुद्र के पास था। मीडिया (मद्र) के उत्तर का देश कैस्पी या कास्पियस था। अरियाना के उत्तर पूर्व में दानवों का हिरण्यपुर था।[4] सरमा कुक्कुरी कैस्पियन के उत्तर में रहने वाली थी, सरमेशियन थी।[5] शब्दों में भी साम्य है। कथाएं : गज, कच्छप, सुपर्ण, आर्य्य, कश्यप, गरुड़। कैस्पियन—क्षीरसागर—शीरवान सागर। अर्मीनिया—रमणियक द्वीप। अल्बानिया—अलम्ब। इस सब वस्तु दृश्य का स्थान अत्रोपेशियन, मीडिया, कैस्पियाना, अर्मीनिया, अल्बानिया है अर्थात् ट्रान्सकाकेशियन रियासतें।[6] गरुड़ असल में शाल्मली द्वीप (चैल्डिया) वासी था। उसका पिता कश्यप लोहित्य अथवा एरिथ्रियन समुद्र के उत्तर में तप करता था।[7] कद्रू और कुर्द जाति में समानता है। क्या कश्यप की यह स्त्री इसी जाति की थी? भविष्य-पुराण में जिस मित्रावण का उल्लेख है, संभवतः वह मितन्नी ही है। तूरानी तथा हूण जातियों की कबीला जातियों के नामों से ही नागों के संस्कृत के नाम निकले लगते हैं: नाग—ह्यिङ्नू; सर्प—सर्तस्प या सर्वय; उरग—उइगुर (उज्बेगों के पूर्वज); पन्नग—पणि (पेणि) तथा नोगाइ जाति का मिलन; अहि—अजि (चैल्डिया का राजा)। क्या वृत्र—दनुपुत्र, तूरानी था?[8] वसानदी के तीर पर पणि (फणि) रहते थ।[9] कुछ ऐसा भूगोल प्रतीत होता है—

उत्तर अर्ज़ीज़ नदी अथवा अर्रस

पश्चिम शाल्मल द्वीप चैल्डिया, बैबिलॉन, असीरिया, असुर (सिमाइट्स)

एर्यानो बीजो

पूर्व—तूरानी—कैस्पियन, हैरकेनिया, दानव, कश्यप के वंशज सहित नागों का शक द्वीप[10]

दक्षिण

---

१. इंहिक्वा—१. १९२५, कलकत्ता पृ० १३५–३६.
२. वही पृ० ४५६–५७.
३. इंहिक्वा २. १९२६. पृ० २७.
४. वही पृ० २७-२८.
५. वही पृ० २९.
६. वही पृ० ३५
७. वही पृ० ३६.
८. इंहिक्वा २. १९२६. पृ० ३६-३७.
९. वही पृ० २३२.
१०. वही पृ० २३८.

ऋग्वेद ७.१.७; ७.६.६; १०.८०.३. में असुर ऋषि जरथुस् का उल्लेख है।[१] वायु पुराण अ० ६८. ५.१२ में भी उल्लेख है :

शरभोशलभाश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ उभौ
असुराणाम् सुरौ एतौ सुराणामसांप्रता इमे।

शक सूर्य्योपासक थे। रुद्र के पास सर्प शिरोभूषा है, जैसी प्राचीन मिस्र में रा (उरैकस) देवता की थी। उसके वैभव का प्रतीक हाथ में रा जैसा त्रिशूल है। रा के पास अपिस वृषभ था। रुद्र के पास नन्दी था।[१] रुद्र असुर देवता था।

कश्यप देव, दैत्य, दानव, नाग, पशु, पक्षी, यक्ष, राक्षस, तथा अन्यों का पिता कहा गया है। भिन्न स्त्रियों से उसकी भिन्न संतान थी : विनता, ताम्रा पक्षियों की माता थीं। सुरभिक्रोधवसा—पशु; दिति, दनु—दैत्य, दानव, इरा—वृक्ष; खसा—यक्ष, राक्षस, अरिष्टा—किन्नर, गंधर्व; मुनि—मुनि अपसरस; अदिति—देव।[२]

ताम्रा:—थमरा नामक प्राचीन नगर है टाइग्रिस, मैसोपोटामिया में, जहां तीव्र धावमान घोड़े मिलते थे।[३] किन्नर—किम्मरजी—पहले कोहकाफ वासी थे।[४] कैस्पियन के पश्चिम से पूर्व की ओर—मध्यएशिया की ओर—अन्न भोजन के लिये, तूरानी जाति का गमन हुआ था। गरुड़ अरुण को अतल से सुतल, वितल लाया था।[५] दनु तूरानी थे—दनूनाम तुराणाम् उल्लेख है।[६]

मुग़ेर के टीले में चंद्रमा का संसार का सब से पुराना मंदिर निकला है (बाइबिल में वर्णित चैल्डिया के ऊर नामक स्थान) उसमें २६३० ईसवी पूर्व का लेख है और द्वितीय राजवंश, पूर्व सुमेरुकाल (३६०० ई० पू०) की दीवार निकली है। सुमेरियन तूरानी जाति की शाखा थे। असीरिया और बैबीलोनिया के असली निवासी तूरानी थे।[७] १८२० ई० पू० में असुर असीरियन्स की राजधानी थी।[८] गदर (गंधर्व) नामक स्थान में ५१६ ई० पू० का लेख है। उसमें उल्लेख है कि दारा ने उस स्थान को जीता था।[९] तुर्किस्तान (तोषरिस्तान) में बैकुण्ड (वैकुण्ठ) नामक नगर के प्राचीन खंडहर मिले हैं।[१०] बाकू—बड्कू—बडवा सागर है, क्योंकि उसमें महाज्वालामुखी है।[११] बौद्धों का बावेरु, अवेस्ता का बावरी, ऋग्वेद का बामरी-बब्रिरु अथवा बपिलु ही पुराना बैबिलोनिया है।[१२] बुखारा—भष्कर—पुष्कर है। तूरानी असुर असल में ओरुश्ना, पुष्कर द्वीप में रहते थे।[१३]

---

१. वही पृ० २४०–४१.
२. वही पृ० २४३.
३. इंडिक वा २.१९२६. पृ० २४३-४४
४. वही पृ० २४५
५. वही पृ० २४६
६. वही पृ० २४७
७. वही पृ० २४२.
८. वही पृ० २४८.
९. वही पृ० ५१७.
१०. वही पृ० ५२८
११. वही पृ० ५३३-३४.
१२. वही पृ० ५२८.
१३. वही पृ० ५३६.

नाम साम्य मिलता है :

शीरवान—क्षीरसागर ।
सरायन—सुरा ।
एरिथ्राज—घृत ।
दहि—दधि ।
आक्सस (अक्षु)—इक्षु
त्वा-दुन्—स्वादुजल ।

ऐसे साम्यों का ऊपर भी उल्लेख किया गया है।[1] कुछ और नाम हैं :

रसातल—मध्य एशिया ।
भोगवती—बाल्धी ।
अश्म—अक्षु ।
बलि-आलय—बल्ख ।
मणिमयी—मैमेनी ।
बिभावरी—बावेरु-बैबिलॉन ।
रामणीयक—अर्मीनिया ।
अलम्ब—अल्बानिया ।
इक्षु—आक्सस ।
रसा—अराजीज़ ।
वारुण—वेहर्कान ।
मेरु—मेरोज़ इत्यादि ।[2]

एरावत नाग धृतराष्ट्र का वंशज था।[3] अथर्ववेद में तैमात सर्प का वर्णन है।[4]

सुरसा नागिन के पुत्र भोगवती के वासी थे। वे महाबली हैं। स्वभाव से भयानकपराक्रमी हैं। उनके शरीरों में मणि, स्वस्तिक, चक्र और कमण्डलु आदि के चिन्ह बने हुए हैं।[5]

उपर्युक्त विवेचना पूर्ण रूप से मान्य हो, ऐसा निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता; पर यह विचारों को सुलझाती है, अतः इसका महत्व है। वे तक रसातल का प्रश्न है, उसे स्वीकार करना अनुचित नहीं है। इस युग विशेष में सुमेर सभ्यता का केन्द्र था। इसका भारत के नर्मदा प्रदेश से सम्बन्ध था, इस पर भी कुछ विचार मननीय है।

श्री विष्णु करण्डीकर ने नर्मदा सभ्यता पर प्रकाश डाला है :

---

१. वही पृ० ७२४
२. इंडिक्वा २.१९२६ पृ० ७३५.
३. वेदिक इन्डैक्स १ पृ० १२२.
४. वही पृ० ३२४
५. महाभारत, उद्योगपर्व, १०३वां अध्याय, १—१०.

नर्मदा घाटी ही सुमेरियन जाति का आदिस्थान थी, जहां से वे सुमेर गये। किंवदंती है कि ओनीज देवता ने सुमेर देश को सभ्यता दी। नर्मदा महाप्रलय से पुराना स्थान है। पुराणों में भी नर्मदा प्रदेश अत्यंत प्राचीन कहा गया है। वरुण का पाताल भी सुमेर में ही था। बैबीलोनिया की एक मुहर नर्मदा में मिली है, जिसका समय २००० ई. पू. है। ओनीज पृथु वैन्य था? असुरों के त्रिपुर नर्मदा पर ही थे। नर्मदा में प्रलय नहीं हुआ था। कुबेर का पुत्र ऋषि विश्रवस नर्मदा तीर पर रहता था। रसातल के नागों पर जब मैनेय गंधर्वों ने हमला किया था तब पुरुकुत्स उनको बचाने नर्मदा घाटी से ही गया था। पुरुकुत्स नाम से मिलता नाम सुमेर में मिलता है। १२०० ईसा पूर्व मिथियों ने दजला फ़रात के उत्तरी भागों में पुरुकजी नामक जिले को जीता था। अन्य भी अनेक नामों में साम्य है:

सुमेर	नर्मदा
उरु-निन्ना	वरुण
मेस्सनिपाद	महाशनि
ऐतन तथा श्येन की कथा	गरुड़ तथा नाग कथा
ऐतन-जीवन वृक्ष खोज	अमृत की खोज
एलुलु, तथा बेलुलु, ऊर के राजा	अगस्त्य के इल्वलबिल्वल
निपुर	हिरण्यपुर
ऊर-वऊ	और्व (ऋषि)
एरेख (नगर)	ऋचीक (ऋषि)
प्रलय से पुराना नगर	
शुरिपाक	शूर्पारक
बेल	बलि, वाली
मुही	महिष
मारी-क (नगर)	मारीच
नरम-सिन्	नृसिंह
निन्-गिरि-सू (देवता)	अंगिरस
सिन्	सिनीवाली

नर्मदा के तीर पर माहिष्मती का वर्णन आता है। माहिष्मती के साथ हैहय प्रसिद्ध हैं। उन्होंने माहिष्मती को जीता था। पहली माहिष्मती को परशुराम ने नष्ट कर दिया था। माहिष्मती मुचकुन्द ने दूसरी बार बसाई।[१]

सुमेरु ही नहीं, यहां आर्य्य द्रविड़ तथा ऐसी ही अन्य संस्कृतियों में जो समानता है।

१. प्रो. औको ७ बड़ौदा १९३३ पृ० २६३–७८.

उस पर भी दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

पिप्पल की उपासना बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख है।[१] न्यग्रोध वृक्ष, गंधर्व अप्सरस तथा प्रजापति का वृक्ष माना गया है।[२] वृक्ष देवताओं को नाग भी कहते हैं।[३] अथर्ववेद में पीपल पुरुष-संतानदाता है।[४] पीपल के प्रति श्रद्धा अफ्रीका, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया, सुमात्रा, जावा इत्यादि में पाई जाती है।[५] पुराण काल में भारत में अंजीर के वृक्ष का महत्व अधिक बढ़ गया था। परंतु अंजीर के वृक्ष का भूमध्यसागर के आसपास के देशों में अधिक महत्व था। यह भी संतानदाता समझा जाता था। अंजीर की लकड़ी के नकली लिङ्ग बनाये जाते थे।[६]

रसातल में नाग राज्य था। राजा बलि ब्राह्मणों के प्रति अत्यंत श्रद्धावान था। दैत्य राजधानी हिरण्यपुर अत्यंत सुन्दर बनी थी।[७] रसातल में सुपर्ण अथवा गरुड़ और सुरभि का वर्णन मिलता है। रसातल तब की स्मृति है, जब हिंद-आर्य तथा ईरानी अपने मध्य एशिया के पुराने निवासस्थान में रहते थे, जिसे स्ट्रैबोने एरियाना कहा है, और अवेस्ता में एरियन-वीज। यह एरियन वीज संभवतः अब अजरबैजान है, जो प्राचीन मीडिया अथवा 'मद' (पुराणों का उत्तर मद्र) प्रांत था, बाद में फ़ारस का प्रांत बन गया। दैत्य नदी ही अरस नदी है, जो अरमीनिया और मीडिया को अलग करती थी। हिरोडोटस ने मीडिज का पुराना नाम अरियन बताया है।[८]

रसा ऋग्वेद में एक नदी है, संभवतः वह जजार्तीज नदी है।[९]

तल शब्द तेले का संस्कृत रूप है, जो हूणों का दूसरा नाम है। प्राचीनकाल में हूण ते-ले या तिल-ले कहलाते थे।[१०] इस प्रकार रसातल हूणों का देश था; मध्य एशिया था सुमेरू पर्वत के पास। रावण ने नाग तथा दानवों को पराजित करके निकट ही सुमेरु पर विश्राम किया था। सुमेरु शक द्वीप में था, जिसके पास ही गंधमादन तथा हिमालय थे।[११] रसातल हिंदूकुश के उत्तर पश्चिम में वक्षु और जर्जार्तीज की घाटियों में स्थित था[१२] सात तलों का उल्लेख है: अतल, नितल, जितल, तलातल, महातल, सुतल, रसातल। अतल में असुर बल का राज्य था (बैबीलोनिया का बेले?)। वितल वक्षु तीर पर था। वितल पाताल था। तलातल मयासुर का निवासस्थान था।

अहुरमज्द, असुरमय का ईरानी रूप है।[१३] पारसीक महल की नकल पटना में मिली है।[१४] अर्जुन के प्रासाद में उसके मध्यभवन की रक्षा राक्षस करते थे। ईरान में परसीपोलिस

---

१. इंहिक्वा १६.१९४३ पृ० ३२०.
२. वही पृ० ३२१
३. वही पृ० ३२७
४. वही पृ० ३२९
५. वही पृ० ३२८
६. वही पृ० ३२९।
७. वही १-१९२५, कलकत्ता पृ. १३०
८. वही पृ. १३१
९. वही पृ. १३३
१०. वही पृ. १३३
११. वही पृ. १३४
१२. वही पृ. १३५-३६
१३. ज हैं आसो १९१६ पृ. १५५
१४. वही पृ. १५४

में दारा का महल था। उसमें एक वेदी पर लकड़ी के दैत्याकार मनुष्य उसके सिंहासन को संभालते थे; उठाये हुए थे।[१]

भारत में देवताओं का राजा इन्द्र था। कैसाइट्स में भी हथौड़ा रखने वाला देवों का राजा था। चीन में प' अन्कु, मिस्र में प्ताह, रोम में जूपिटर, ग्रीस में जियस, हितायत में तर्कु, उत्तर यूरोप में थोर, असीरिया में रमोन, देवों के राजा थे। इन सब में साम्य स्पष्ट दिखाई देता है। इन्द्र के वज्र निर्माता त्वष्टा तथा ऋभु थे। इनमें परस्पर द्वेष था। थोर के हथौड़े के निर्माता सिन्द्रे थे।[२]

बैबिलोनिया में तियावाथ या तिमाअत नामक सर्पिणी को देवताओं के राजा बेल-मुरदुख ने मारा था। भारत में अहिवृत्र को इंद्र ने।[३]

अब किरात परिवार पर फिर दृष्टिपात आवश्यक है।

क्रीत शब्द चीनी शब्द 'कि-लि-तो' से बना है। सैम्युअल बील ने क्रीतिया कहा है। संभव है यह किरात से बना शब्द है।[४]

दीघनिकाय के आटानाटिय और महासमय सुत्त में से आटानाटिय सुत्त में वैश्रवण ने आटानाटिय रक्षा की है। पूर्व दिशा का पालक महाराज धृतराष्ट्र है। वह गंधर्वों का राजा है। दक्षिण-विरूढ-कुंभण्डों; पश्चिम-विरूपाक्ष-नागों; उत्तर-कुबेर-यक्षों का भी उल्लेख है।[५]

बौद्धों का यह आधार बहुत परवर्ती है परंतु बौद्धकाल तक यह परंपरा थी, इस तथ्य को प्रगट करता है।

इन यक्षों के साथ राक्षसों का गहरा संबंध प्रगट हो चुका है।

रावण पुलस्त्य संतान था। वह कन्या तथा स्त्रियां चुरा लेता था।[६] रावण दशानन था। उसके बीस हाथ थे। परंतु उसके एक सिर तथा दो हाथ का भी वर्णन आता है। वह कहीं सुन्दर बताया गया है, कहीं कुरूप। हनुमान ने कहा था कि यदि रावण अन्यायी न होता तो वह रक्षित् होता। राम ने रावण को वेदपारंगत तथा पवित्र भी कहा है। रंभा वेदवती (सीता), उमा या पुन्जिकस्थला ने रावण को सतीत्व नष्ट होने पर शाप दिया था। रावण ने भोगवती जीती। मधु दानव से बहिन का जबर्दस्ती ब्याह कराया था। मय की लड़की ले ली थी। उसने सोम चुराया था। देवता जीते थे। सीता हरी थी। जटायु मारा था। जब राक्षसों में भेद हुआ तब पिशाच, नरभक्षक दशानन रावण की ओर हुए। गंधर्व किंपुरुष, रक्षांसि विभीषण तथा कुबेर की ओर हो गये। इसमें नरभक्षक जीते और विरोधियों को दबा दिया गया। मारीच भी राक्षस बनाया गया था। उसकी मां ताड़का, जो बाद में राक्षसी थी, पहले यक्षिणी थी। एक ताड़का स्कंद की सेना में भी थी।[७]

---

१. वही पृ. १५६
२. इंडियन मिथ एण्ड लिजेण्ड पृ. २
३. वही पृ. ६
४. वही पृ. ७०
५. भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ. ७६
६. एपिक मायथॉलॉजी पृ. ४१
७. वही पृ. ४२-४३

ब्रह्मराक्षस सरस्वती का रक्त पीते थे।[१] प्रमथ राक्षस शिवगण थे। एक अप्सरा का नाम प्रमाथिन् था। इसके तथापिशाच राक्षसों से प्रमथ हुए। यदु के पुत्र यातुधान थे। ये राक्षस नहीं थे। पर रावण यातुधान दौहित्र कहा गया है। यातुधान और राक्षस कुबेर के कोष के रक्षक थे।[२] वे यदु के पुत्र थे।[३]

रावण का नाना सुमालिन था। वह असुर था। उसने अपनी पुत्री वृषपर्वा असुर को ब्याही थी, जिससे रावण का जन्म हुआ। उसने दक्षिण समुद्र पथ से जीता था। संभवतः वह तमिल था।[४]

पुलिह या पुलह, ऋतु-पिलेस्गियन्स का ध्यान दिलाते हैं। ग्रीस में यह समुद्री जाति थी। पुराण भी खारी समुद्र से ही असुरों का आगमन बताते हैं। (भृगु फ्रीगियन शब्द का रूपान्तर सा लगता है)[५] क्रीट में असीरियन का आधिपत्य था (असीरियन असुर थे ?)।[६] महाभारत में असुर समुद्री लोग हैं।[७]

अप्सरा गंधर्व इत्यादि की पूजा ईसा से सदियों पुरानी थी। द्वार पर गंधर्व मिथुन चित्रित किये जाते थे। सिद्ध, यक्ष, अप्सराओं की मूर्त्तियां मंदिरों में आवश्यक थीं।[८]

काश्मीर की प्रचलित नागपूजा को कुशाणों ने बंद करवाके बौद्ध मत लाद दिया था।[९] नागों का प्रभाव इससे स्पष्ट है।

तक्षक की पत्नी को रावण ले गया था। तक्ष भरत का पुत्र था, जिसने सिंधु की दूसरी ओर गांधार बसाया था।[१०] रावण का ऐरावत से युद्ध हुआ था।[११] रावण विद्याधरियों को छीन ले गया था।[१२]

वृक्षका यक्षिणी का नाम महाभारत ३. २६५., १३ ए में मिलता है। पूछा गया है हे सुंदरी तू देवता, यक्षी, दानवी, अप्सरा, दैत्या, नागकन्या, राक्षसी इनमें से क्या है ?[१३] यक्ख अंगुलिमाल (बौद्धकाल) पहले एक वृक्षवासी नरभक्षक था, परवर्ती रूप में द्वारपाल हो गया।[१४] यक्षवाद इससे प्रगट होता है मगध में भी था (जातक ३०७)[१५] कुबेर, यक्ष कमल, जल, तथा मकर से भी संबंधित है।[१६] स्त्री की संतानद शक्ति और समृद्धि की भावना प्रागैतिहासिक है, जिसे नग्नदेवी या अदिति तक देखा जा सकता है, जिनका जल से निकट संबंध है।[१७] यक्ष तथा मिथुन का बहुत संबंध है।[१८] मिलिंदपञ्ह में

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ. ४४
२. वही पृ. ४४
३. वही पृ. १८७।
४. इंहिक्वा ३. १९२७ पृ. ४०
५. असुर इंडिया पृ. १७
६. वही पृ. १८
७. वही पृ. २०
८. जबिउरिसो १९. १९३३. भाग १-२. पटना पृ. ४४-५
९. वही पृ. ४३
१०. एपिक मायथॉलॉजी पृ. २९
११. वही पृ. १२७
१२. वही पृ. १७६
१३. यक्ष २ पृ. ११
१४. यक्ष २ पृ. ८
१५. वही पृ. ९
१६. वही प. १३
१७. वही पृ. १६
१८. व[illegible] पृ. २३

देव संप्रदायों की सूची दी गई है, जो इस प्रकार है : मणिभद्द, पुराणभद्द, चंदिम, सूर्य, सिरि (श्री) देवता, कलि-देवता (५. १. काली), शिव, तथा वासुदेव, और ये समस्त संप्रदाय गुप्त हैं। इनके रहस्य संप्रदाय के लोगों को ही बताये जाते हैं, तथा बाहर वालों से छिपाये जाते हैं। सब को नहीं बताये जाते। सिहाली टीकाकारों ने इन देवताओं के उपासकों को भक्तों की श्रेणी में बताया है। मैत्री उपनिषद् में भी (१. ४, ७, ६ तथा ८) यक्ष देव सूची में गिनाये गये हैं।[१] कुबेर का लक्ष्मी से भी संबंध बताया गया है। (महाभारत, ३. १६८. १३.)।[२] कुबेर की पत्नी भद्रा (महाभारत १. १९९. ६) तथा ऋद्धि (म. १३, १४६. ४) भी कही गई है।[३]

अजमुखस्कंद संतानद माना गया है।[४] ऋग्वेद ७. ६५. २ में वरुण और मित्र को असुरा आर्या तथा अथर्व १, १० में असुर कहा गया है।[५] समुद्र मंथन, ऋग्वेद १०, ७२, सुपर्ण ऋषि ऋ. वे. १०. ८२. ६, यजुर्वेद ४.६.२. का उल्लेख है।[६] शतपथ ब्राह्मण में वरुण के गंधर्वों का उल्लेख है। गंधर्व सोम के रक्षक कहे गये हैं (शतपथ ब्रा ३. ३. ३. ११. काण्व शाखा) इंद्र गंधर्वों का विरोधी बताया गया है (ऋ. वे. ८. १. ११. तथा ६६. ५)। गंधर्वकृषानु सोमपाल है (एत. ब्रा. ३. २६. ३. २)। अवेस्ता में गंदरेवकेरेशानि तथा हओमा जैसे शब्दों का प्रयोग है। न्यग्रोध, उदुंबर, अश्वत्थ, प्लक्ष आदि वृक्ष गंधर्वों तथा अप्सराओं के घर कहे गये हैं (यजुर्वेद ३. ४. ८)। यक्ष और नागों को अमृत-सोम का रक्षक कहा गया है।[७] वरुण का वाहन मकर है। कामकेतन, गंगावाहन, यक्ष यक्षी वाहन का उल्लेख है।[८] यक्षों का मकर से विशेष संबंध है। अमरावती के एक चित्र के दृश्य में एक यक्ष ने मकर को दबा लिया है। दूसरा और तीसरा यक्ष मकर को कमल खाने से रोक रहे हैं। चित्र के दाहिने हाथ पर एक आकृति है। यह विचित्र पशु है। उसका मुख गरुड़ जैसा है। मोटी चोंच तथा शरीर सिंह जैसा है। इसका समय लगभग २०० ईसवी माना गया है। गरुड़ का संबंध भी इन्हीं जातियों के संबंध में आता है। सुपर्ण, श्येन अनेक नाम से गरुड़ को संबोधित किया गया है।[९]

हंस मेरु की मानसरोवर झील में रहता है। वरुण उसका रूप धरता है। हंस विष्णु का भी वाहन है, कुबेर का भी। केवल उसकी गति गरुड़ से कम है।[१०] गरुड़ ने विवस्वत (सूर्यपुत्र) को मार डाला था। गरुड़ ने युद्ध में वसु तथा रुद्रों को दक्षिण, आश्विनों को उत्तर तथा साध्य गंधर्वों को पूर्व की ओर भगा दिया था।[११] श्येन देवताओं का दूत है; वह अपराजेय है।[१२] सुपर्ण सोम लाया था[१३]। असुर देवता का चिन्ह गरुड़ जैसा था, वह

१. यक्ष २ पृ. ६
२. वही पृ. ४
३. वही पृ. ४
४. वही पृ. ७
५. वही पृ. २६
६. यक्ष २. पृ. ३१
७. वही पृ. ३५
८. वही प. ३५
९. यक्ष २. चत्र ३७. २ अमरावती
१०. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १९
११. एपिक मायथॉलॉजी पृ. ५६
१२. प्रो ओ को ९. १९३७. पृ. २५०
१३. ऋग्वेदिक इंडिया १. पृ. ६०

मायावी था। उसका औषधि से संबंध था। स्थापत्य, सैन्य शक्ति तथा बल उसके गुण थे।[1] महाभारत में कहा है कि गरुड़ नागों को ले गया था। एक सुंदर द्वीप में वे जाकर बस गये, गरुड़ ने देवों से युद्ध, विष्णु ने बीच बचाव किया। गरुड़ देवों के सामने झुक गया, परंतु विष्णु के रथ पर जा बैठा। विष्णु उपेन्द्र है, इन्द्र का छोटा भाई है। विष्णु ने तीन डग में संसार नापा था। विष्णु ने बलि को पाताल में ढकेल दिया था। विष्णु ने देवसत्र में कुरुक्षेत्र की वेदी पर गृहपति रूप में देवों से शत्रुता की। देव निःशस्त्र थे। विष्णु का यज्ञ तेज विजय के मद में खो गया। तब देवों ने विष्णु को मार डाला। और यज्ञपुरुष को तीन हिस्सों में बांटा और इन्द्र, अग्नि, तथा विश्वेदेव को दिया। परंतु यज्ञ पूरा नहीं हुआ। तब आश्विनों ने विष्णु का सिर जोड़ दिया। (तैत्तरीय आरण्यक ५. १.) आंगिरसों में श्राद्ध में पुरोडाश इन्द्र को न देकर पितरों को देते हैं।

मिस्री देवता रा--सूर्य भी गरुड़ मुख है। होरस देवता भी गृद्धमुख है।[2]

गरुड़ वेद में विष्णु के साथ नहीं हैं।[3] विष्णु का एक नाम श्रृंगी भी है। वृषभ भी इसी से सूर्य्य का प्रतीक माना जाता था।[4] विष्णु अदिति और कश्यप का कनिष्ठतम पुत्र था।[5] विष्णु के कई नाम शिवोपाधियों से निस्सृत हैं।[6] आर्यों का विष्णु द्रविड़ों का आकाश देवता है। द्राविड़ में 'विभ्' शब्द आकाश के लिये प्रयुक्त होता था। वृषाकपि द्रविड़ था।[7] वृषाकपि कुत्तों का शत्रु था। ऋग्वेद में उसके सामने इंद्र ने इंद्राणी से बातचीत की है।[8] विनता पुत्र गरुड़ अंडे से पैदा हुआ था। वह अरुण का कनिष्ठ भ्राता था। बालखिल्यों ने इन्द्र से बदला लेने के लिये उसे शक्ति दी थी। गरुड़ काश्यप है। आदित्य है। वह नागध्वंसक है, नागभक्षक है। उसे तार्क्ष्य भी कहा है। तार्क्ष्य विष्णु का वाहन है। वेद में अरिष्टनेमि को तार्क्ष्य कहा गया है। यह गरुड़ का पर्याय लगता है। गरुड़ इन्द्र का मित्र भी बनता है। उसके वज्र का सम्मान करता है। रामायण में इन्द्रजित् के सर्पबाणों को डराकर उसने राम लक्ष्मण को पाश से छुड़ा दिया था। वैनतेय ने सगर के पुत्रों को पुनर्जीवित करने की विधि बताई थी। वह स्वयं सगर की दूसरी पत्नी सुमति का भाई था। गारुड़ी सुपर्णी स्वाहा प्रसिद्ध है। वैनतेय छठे आकाश के वासी बताये गये हैं। लाल समुद्र पर विश्वकर्मन् ने वैनतेय के लिये एक रुचिर गृह निर्माण किया था। गरुड़ के भतीजे अरुण के श्येनी से दो पुत्र हुए थे—जटायु तथा संपाति, जिसका पुत्र सुपार्श्व था। संपाति जल कर विंध्य या मलय पर गिरा था। यह वृत्र की मृत्यु के बाद की घटना बताई गई है। कश्यप की पत्नी का नाम ताम्रा था। उसकी पुत्री शुकी थी। उसकी पुत्री नटा थी। नटा की पुत्री विनता थी। विनता की

---

१. असुर इंडिया पृ. ७
२. ऋग्वेदिक इंडिया १. पृ० २८०
३. अभांओरिइं २३. १९४२ पृ. १९०
४. एपिक मायथॉलॉजी पृ. २०६
५. वही पृ. २१२
६. एपिक मायथॉलॉजी पृ. २०३
७. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ. ४१
८. वैदिक इन्डैक्स १. पृ. १३६

सुरसा थी। कद्रू के सर्प हुए, विनता के नाग।[१]

उशीरबीज नामक एक झील उत्तर दिशा में है, जहां से सोना निकलता है। हिमालय में वहां दो जीमूत (सोने की खानें) हैं। सर्प वहां चोरी करते थे। किम्पुरुष भूमि के द्रुम नामक अधिपति के शासन क्षेत्र के उत्तर में, जहां से सोना निकलता था, गुह्यक हाटक की रक्षा किया करते थे। गुह्यक पृथ्वी और पर्वतों पर रहते थे।[२]

यक्षिणी अत्यंत सुंदरी थीं। यक्ष पुलस्त्य पुलह संतान थे। यक्ष नागों के साथ भी गिनाये गये हैं। नागों से गंधर्व भी मिले हुए हैं। वैदिक युग में २७ गंधर्वों का उल्लेख है। गंधर्वों का राजा भी कुबेर ही है। गंधर्वों में हाहा हूहू विकट योद्धा है। गंधर्व कश्यप के दक्षकन्या मुनि, प्राधा, कपिला, अरिष्टा, से उत्पन्न पुत्र थे। सरस्वती पर गंधर्वों का तीर्थ था। विश्वावसु गंधर्व राजा, सात्त्विक था और नृत्य अच्छा करता था।[३]

गोलभ गंधर्व से बाली का युद्ध हुआ था; गोलभ मारा गया। गंधर्वी सौंदर्य में अप्सरा जैसी होती थी। कान्ता, कामिन् जैसे अनेक नाम थे। वे यक्षी से भिन्न बताई गई हैं। गंधर्व फूलों तथा रेशम के बड़े प्रेमी थे। जंगल तथा गुफाओं में रहते थे।[४]

ग्रीक सेन्टॉर भी गंधर्वों की भांति बहुत कामी तथा संगीतमय होते थे।[५]

स्वर्ण खोदने वाली चीटियों की किंवदंती एक रहस्मय जंतु की ओर इंगित करती है। यह असल में तिब्बती नस्ल की कोई जाति थी। अब भी बहुत से तिब्बती परिवार मिले हैं, जो समूहों में रहते हैं; सोना खोदते हैं, और भयानक सर्दी में चमड़े से कानों तक अपने को ढंक लेते हैं। उनके रक्षक उनके भयानक, और बलिष्ठ बड़े कुत्ते होते हैं। वे लंबी लोहे की कुदालों से खुदाई करते हैं क्योंकि सोना उस स्थान पर बहुतायत से पाया जाता है।[६]

सेमेटिक लोगों में स्वर्ण का ज्ञान एशिया माइनर में, प्राग्-ऐतिहासिक सा लगता है। कम से कम हिंद-युरोपीय जाति की हिंदू-पारसी शाखाओं से तो सेमेटिक सोने को बहुत पहले से जानते थे।[७]

यूरोपीय आर्यों की सभ्यता में स्वर्ण ताम्र के कहीं बाद मिलता है। पहले यह दक्षिण पूर्वी भागों में वर्णित होता है—संभवतः एशियाई तथा सेमेटिक संस्कृति की देन था।[८]

मेरा मत है स्वर्ण किरात परिवार की देन था। कुबेर के बाद स्वर्ण इन्द्र से अधिक संबंधित है।

देवताओं का प्रारंभ ब्रह्मा से होता है और पिशाचों पर अंत।[९] पवित्रतम आत्मा

---

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ. २१-२३
२. वही पृ. १४५
३. वही पृ. १४८-५३
४. वही पृ. १५६-१५७
५. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १५७
६. प्रिहिस्टॉरिक एन्टिक्विटीज आफ़ द आर्यन पीपुल्स—डा. श्रेडर। पृ. १७३।
७. वही पृ. १७६
८. वही पृ. १७३
९. एपिक मायथॉलॉजी पृ. ३

देवपूजा करती हैं। मध्यम आत्मा यक्ष, राक्षसों की, तथा नीच भूत, प्रेत, पिशाचों की। इनमें असुर नहीं गिने जाते। युद्ध में वीरगति प्राप्त होने पर मनुष्यों की गति देवों में होती है, गंधर्वों में भी; परंतु कायर हो तो मरने पर आत्मा गुह्यकों या उत्तर कुरु पहुंचती है। (यह प्राचीन जातियों के शौर्य को प्रगट करने वाली बात है।) पितृपूजा मनुष्य ही नहीं देव, राक्षस, पिशाच, किन्नर, गंधर्व तथा नाग इत्यादि में भी थी।[१] भूत, पिशाच और पिशिताशन के बीच के लोग हैं।[२] सत्त्व तथा भूतग्राम सेना रक्तपिपासु होती हैं। यात्री को कष्ट देती हैं।[३] पिशाच दस्यु देवता थे; बर्बर, हृदयहीन। वे ब्रह्मा की सन्तान नहीं थे, वे महाअंड से जन्मे थे। स्कंद की सेना के श्वेत पर्वत रक्षक पिशाच अच्छे थे वे कच्चा मांस नहीं खाते थे। वे महाशंख फल, द्रुम इत्यादि खाते थे।[४] यक्ष तथा राक्षसों को मदिरा तथा मांस की बलि दिये जाने का नियम है।[५] चैत्य वृक्षों में यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, सर्प, गंधर्व, अप्सरा तथा भूत का निवास समझा जाता था।[६] पहले भग देवता सूर्य का पर्याय था, बाद में भग का प्रजनन शक्ति से तात्पर्य लिया गया।[७]

१२ आदित्य, ८ वसु तथा ११ रुद्र और २ अश्विनीकुमार अथवा कभी-कभी २ प्रजापति तथा वषट्कार मिला कर कुल ३३ देवता प्राचीन काल में उपास्य थे।[८] बहुधा जोड़ों का वर्णन है—शक्र, विवस्वत्; पावक, मरुत्; कुबेर, वरुण।[९] देवों के साथ मित्र रूप में यक्षों का वर्णन है। वे बहुधा प्रिय हैं। कभी कभी अप्रिय हो जाते हैं। वन देवता और यक्ष एक लगते हैं। गंधर्व देवों के मित्र भी हैं। राम ने सुभूमिक, सरस्वती में देव गंधर्वों की छाया देखी थी।[१०] देवों का स्वर्ग त्रिविष्टप कहलाता था।[११] देवों की क्रीडा-भूमि मेरु, कैलास, मैनाक थी। वहां के रक्षक राक्षस थे। कैलास भी दानवों का निवास स्थान है।[१२] देवों की जातियां हैं। अश्विनीकुमार शूद्र थे।[१३] १२ आदित्यों में विष्णु अमर है[१४] सोम ने बृहस्पति-पत्नी तारा से बलात्कार किया था, जिससे बुध का जन्म हुआ। इससे तारकामय युद्ध हुआ। बुध का इला से पुरूवर्स नामक पुत्र हुआ।[१५] सोमपुत्री भद्रा को अत्रि ने उतथ्य को दे दिया, परंतु वरुण ने वह स्त्री चुरा ली। वरुण पुत्र पुष्कर से सोमपुत्री ज्योत्स्ना काली का विवाह हुआ था।[१६] प्राचीन वरुण के हाथ में अशनि था। वरुण अम्बुपति, अम्बुप, इन्द्रमित्र था। उसने तारकायुद्ध में इन्द्र का साथ दिया था। उस समय वह इन्द्र के आधीन था।[१७] वरुण वैडूर्यवर्ण था।[१८] वरुण की पुत्री वारुणी अथवा सुरा थी। वरुण का पुत्र सुषेण था। वह तारा का पिता था।[१९] वरुण के वंशजों में भृगु, नाग, तथा सुषेण

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ. ३०
२. वही पृ. ३६
३. वही पृ. ३७
४. वही पृ. ४५
५. वही पृ. ६८
६. वही पृ. ७२
७. एपिक मायथॉलॉजी पृ. ८४
८. वही पृ. ५५
९. वही पृ. ५६
१०. वही पृ. ५७
११. वही पृ. ५८
१२. वही पृ. ५९
१३. वही पृ. ६३
१४. वही पृ. ८४
१५. वही पृ. ९०—९१
१६. वही पृ. ९१
१७. वही पृ. ११६
१८. वही पृ. ११७
१९. वही पृ. ११९

वानर भी हैं। हनुमान की मां पुञ्जिकस्थला अप्सरा अरुणकन्यका थी।[१] वरुण सुसमृद्ध हैं। त्रिशिर सर्प उस की गाड़ी खींचते हैं।[२]

अग्नि और वायु भी एक समय गंधर्व थे। नारद पहले गंधर्व था। बाद में पर्वत से उसका संबंध जुड़ा; नारद = जलद। पर्वत मेघ है।[३] गंधर्वों की एक किस्म में किन्नर हैं। वे नर नहीं हैं। किन्नर, किम्पुरुष नारायण के उपासक हैं। कुबेर के दर्बार में रहते हैं। शिव की प्रजा हैं। वे रौद्रदर्शिन् हैं। द्रुम उनका अधिपति है। गंगाद्वार उनका निवासस्थान है। वे यक्षों के मित्र हैं। वनचारी हैं। वानरों के साथ ही वनचरण करते हैं। रावण ने उनके विषय में कहा था कि वे तपोवन के समीप नहीं रह सकते। किंतु वे रहते थे। वे जोड़ों में घूमते हैं—स्त्री-पुरुष। किन्नर और किम्पुरुष अलग अलग हैं।[४] गंधर्व अनेक अग्नि रखते थे। तीन को तो पुरूर्वस ने चुरा लिया था।[५]

समकालीन ही ऋक्ष जाति भी प्रतीत होती है। उल्लेख है, ब्रह्मा की जंभाई से जाम्बुवान के पिता गद्गद् का जन्म हुआ। इन्द्र को जाम्बुवान ने सहायता दी। उसकी इकट्ठी की हुई औषधि से अमृत बना था। उसे विद्याधर भी कहा गया है। उसका भाई पर्जन्यवत् 'धूम्र' था। उसकी पुत्री जाम्बवती कहीं नरेन्द्रपुत्री भी कही गई है, कहीं कपीन्द्र पुत्री भी। कपीन्द्र विष्णु को भी कहा गया है।[६]

अलंबुषा अप्सरा थी, इक्ष्वाकु की पत्नी थी। विशाल की मां थी।[७] अप्सराएं क्रीडा नारी थीं, सुरयोषिता भी; उनकी बिल्ली की सी आंखें थीं। देवों की पत्नियां अलग हैं। वे बहुत श्रेष्ठ हैं, अस्पृष्ट हैं। उन्हें देखना कठिन है। पति-पत्नी यों हैं: ब्रह्मा—सावित्री, इन्द्र (कौशिक)—शची, मार्कण्डेय—धूमोर्णा, कुबेर (वैश्रवण)—ऋद्धि, वरुण—गौरी, सूर्य—सुवर्चला, शशि (सोम)—रोहिणी, अग्नि (विभावसु)—स्वाहा, कश्यप—अदिति। ये स्त्रियां पति देवता हैं क्योंकि वे अपने पतियों पर अंकुश रखती हैं।[८] सोमा अप्सरा थी। सोमदा—गंधर्वी थी।[९] दक्षकन्याओं की पुत्रियों से अप्सरस ब्रह्म संकल्प जात हैं। वैदिकी हैं—सम्मानित हैं—मेनका, सहजन्या, पर्णिनी, पुञ्जिकस्थला, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची, ऊर्वशि, अनुम्लोचा, प्रम्लोचा, मनोवती। प्रधा अप्सराओं की माता है। उत्तर की अप्सरा विद्युत्प्रभा कहलाती थीं। कुबेर की प्रिया वर्गा अप्सरा थी। मलयपर्वत पर नृत्यगानरता ऊवर्शी और पूर्वचित्ति रहती थी। अप्सरा पञ्चचूड़ा हैं। वे नंगी नहाती हैं। रावण ने कहा था कि वे पतिहीन हैं, स्वतंत्र हैं। रंभा कुबेर की प्रिया थी, और उसके पुत्र की पत्नी थी। उन्हें रति का शोक है। उनका प्रधान नृत्य हल्लीशक कहलाता था। गीत का नाम चालिक्य था। मेनका ऊर्णायु की पत्नी थी। पर गंधर्व विश्वावसु से प्रमद्वरा की मां हुई और बच्ची को

---

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १२०
२. वही पृ. १२१
३. वही प. १५७
४. वही पृ. १५८
५. वही पृ. १५७
६. वही पृ. १३
७. वही पृ. ४०
८. वही पृ. ६३
९. वही पृ. ६१

छोड़ गई। अप्सरा घृताची और च्यवन से प्रमति जन्मा। उससे प्रमद्वरा ने बड़ी होकर विवाह किया और शुनक को जन्म दिया।[1]

उत्तर का पर्वत गंधर्वों का है।[2] गंधमादन, औषधियों का घर है। मेरु और गंधमादन के पूर्व में कुबेर यक्षों का गृह मंदार पर्वत है। गंधमादन में कुबेर और इन्द्र रहते हैं। कैलाश शिव, तथा मेरु ब्रह्मा का है। राक्षस हिमवत् पर, गुह्यक कैलाश पर, नाग निषध पर, देव और असुर श्वेत पर्वत पर, गंधर्व निषद पर, ब्रह्मर्षि नील पर्वत पर रहते हैं। गरुण हिरण्मय पर, गंधर्व मंदार, मेरु पर शिव उमा मेरु के कर्णिकार कुंज में रहते हैं।[3] मेरु के चारों ओर चार भूमियां हैं; भद्राश्व, केतुमाल, जम्बू द्वीप तथा उत्तर कुरु (Hypesboreans); मेरु के उत्तर पश्चिम में नीलश्वेत तथा शृंगवत् पर्वत हैं। सुदूर पश्चिम में कश्यप नागद्वीप है। शृंगवत् समुद्र तीर पर है। दक्षिण में निषध, हेमकूट (कैलास) तथा हिमवत् हैं।[4]

नाग गंगा ही नहीं, पंजाब, गंधमादन, उत्तर में अन्य सर्पों के साथ भी वर्णित हैं।[5]

राक्षस मणिमत् कुबेर का मित्र था (महाभारत)। मणिमत् नाम का एक यक्ष भी है, एक नाग भी। मणिमती एक दैत्य नगरी थी। मणिवत् एक पर्वत भी था। इन जातियों में परस्पर विवाह संबंध चलते थे।[6]

शंबर तिमिरध्वज की पत्नी मायादेवी थी। शंबर ने पहले शची को पत्नी बना लिया था। अनेक असुरराज तथा असुराधिपों का वर्णन है। शुक्र की पुत्री देवी तथा वरुण की पुत्री का नाम सुरा था; उसका भाई बल था।[7] मणिमती इल्वल दैत्य की नगरी थी। एक ऋषि तथा एक असुर का नाम वृषपर्वन् मिलता है।[8] वृषपर्वा शर्मिष्ठा का पिता था।

हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, विरोचन, बलि, बाण — ये असुरों की पांच पीढ़ियां मिलती हैं। ये पराक्रमी थे। तिलोत्तमा अप्सरा ने सुन्द उपसुन्द को मारा था।

असुरों ने नागों को बन्दी बना कर दास बना लिया था।[9]

शंख, जटी नागों को रावण ने जीता था; नाग सुंदरियों को बन्दी बना लिया था। नागाह्वय नगर में धर्म चक्र का प्रवर्त्तन हुआ था। परवर्ती काल में नागाह्वय हस्तिनापुर को कहते थे। नागाह्वय का वर्णन है, वह गोमती तीर पर था।[10]

रावण अदिति के पास जा छिपा था।[11]

सुषेण ने बताया था कि रावण ने रसातल पर आक्रमण किया, जो वरुण से रक्षित था। वासुकि को हरा कर रावण ने वरुण के कुटुम्ब— गो तथा पुष्कर नामक पुत्रों— को—मार डाला था। क्योंकि वरुण उस समय वहां नहीं था, इसलिये मौत से बच गया।

---

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १५९-१६१
२. वही पृ. ८
३. वही पृ. १०
४. वही पृ. ११
५. वही पृ. २७
६. वही पृ. ३८
७. वही पृ. ५०
८. वही पृ० ५१
९. वही पृ० ५१
१०. वही पृ० २८
११. वही पृ० ८१
१२. वही पृ० ११९

पर्वत में कुबेर के स्वर्ण तथा धन की रक्षा करने में नाग भी नियत थे।[1] वाल्मीकि—नाग—देवरूप हैं। यक्षों के महेन्द्र पर्वत पर नाग मित्र हैं।[2] वरुण के दर्बार में नाग, दैत्य; कुबेर के राक्षस, यक्ष, गुह्यक, गंधर्व, अप्सरा, शिव; यम के ब्राह्मण, महात्मा तथा ऋषि; और इन्द्र के गंधर्व तथा ऋषि एकत्र होते थे।[3] पृथ्वी के नीचे ७ तल हैं, सुन्दर रसातल। वहां दक्षिणी समुद्र में राक्षस भोगवती की रक्षा करते हैं, जहां का राजा वासुकि है।[4] कर्दम नाग भी है।[5] कर्दम वरुण के पिता का भी नाम है।[6] सार्वभौम कुबेर का हाथी है। श्वेतनाग का भी नाम मिलता है, राक्षस का भी; श्वेत इन्द्र का भी हाथी है। उत्तर पश्चिम का दिग्गज पुष्पदंत हाथी है। यह शिव का भी नाम है। शिव भी हस्तिकर्ण हैं। पुष्पदंत और पुण्डरीक नाग नाम हैं। जो ४ दांत के दैवी हाथी हैं, वे या तो लंका में रहते हैं या पौराणिक, उत्तर दिशा में।[7]

राक्षस पहले देवों के सहायक थे, बाद में शत्रु हो गये। उनके वर्णनों में वे सुन्दर हैं। बाद में कुरूप हैं। पहले हारते हैं, फिर हराते हैं। वे यक्षों से अलग हैं। फिर उन्हीं में घुलेमिले मिलते हैं। उनमें यक्ष गुण विद्यमान हैं। दक्षपुत्री खसा के पुत्र ही यक्ष और रक्ष थे। यक्षों के लाल नेत्र, काले शरीर हैं; वे कुबेर के रक्षक हैं। ऐसे ही राक्षस हैं। राक्षस का अर्थ रक्षक है। राक्षस पौलस्त्य और यातुधान है।[8] ब्रह्मा का चौथा बेटा पुलस्त्य था। राक्षस पौलस्त्य भी थे, नैर्ऋत भी। अधर्म की पत्नी से नैऋत हुए।[9]

कुबेर नैर्ऋतराज था। नैर्ऋत राक्षस रावण भी स्वयं नैर्ऋतराज हो गया था। किंकर राक्षस-दास थे। कहा गया है कि यदि मनुष्य समृद्ध होते हैं, तो राक्षस भी समृद्ध होते हैं।[10]

विश्रवस मुनि था। उसकी स्त्री देववर्णिनी भरद्वाज-पुत्री थी। विश्रवसपुत्र वैश्रवण कुबेर उत्तर का महाराजा था। वह नर-वाहन था। किन्नर, गुह्यक, गंधर्व भी इसके साथ थे। भूतेश शिव के समान वह भी संसार का महाराजा है। उसका नगर अलका—विटपा है। पद्म और शंख उसके सलाहकार थे, जो साक्षात् खज़ाने थे।[11] नैऋत राक्षस उसके पुष्पक विमान को खींचते थे। पुलस्त्य पुत्र विश्रवस (मुनि), वैश्रवण कुबेर को नापसंद करता था। कुबेर राक्षसाधिपति था, लंका का राजाधिराज था। कुबेर भी पुलस्त्य का पुत्र था। उसने विश्रवस को प्रसन्न करने को तीन स्त्रियां दीं। उनमें पुष्पोत्कटा से रावण, कुंभकर्ण, मालिनी से विभीषण, तथा राका से खर और शूर्पणखा हुए। ये गंधर्व गंधमादन पर रहे। फिर इन्होंने कुबेर को हराया। रावण ने पुष्पक छीन लिया। विभीषण कुबेर की ओर हुआ। वह यक्ष रक्ष का नेता था, पर पिशाच रावण की ओर थे। इल्विला कुबेर की माता थी। कुबेर के अनुचर भयानक यक्ष थे। वह यक्ष, राक्षस तथा गंधर्वों

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ० २७
२. वही पृ० २८
३. वही पृ० ६१
४. वही पृ० ६१
५. वही पृ० १३
६. वही पृ० २६
७. वही पृ० १७-१८
८. वही पृ० ३८-३९
९. वही पृ० ४१
१०. वही पृ० ४५.
११. वही पृ० १४२.

का महाराज था; स्त्रियों से घिरा बैठता था। उसके दर्बार में शिव, उमा, विद्याधर रहते थे। चक्रधर्मविद्याधर, किन्नर द्रुम (किंपुरुष) महेन्द्र इत्यादि बैठते थे। वह यक्षों का रणनेता था, राक्षसों का शरणदाता था।[1] उसका नगर ऊंची प्राचीरों से घिरा था। वह गुह्याधिप था।[2]

सुमालिन की पुत्री कैकसी थी। उसका पति विश्रवस था। सुमालिन देववती का पुत्र था। देववती गंधर्व ग्रामणी की सुकेश से पुत्री थी। सुकेश भया का पौत्र था। भया कालयम की पुत्री थी। उसकी माता कालयम की बहिन थी। प्रहेति राक्षस रूप में वर्णित है। राक्षस, यक्ष, गंधर्वों का निकट संबंध दिखाई देता है। कुंभकर्ण शिवभक्त था। महाभारत में रावण तथा कुभकर्ण की मां पुष्पोत्कटा थी, और विभीषण की मां मालिनी थी। गंधर्व पौत्र ने केतुमती गंधर्वी से विवाह किया था और उसके भाई मालिन तथा माल्यवत् ने वसुधा तथा सुन्दरी से। विश्रवस की दूसरी पत्नी देववर्णिनी से पुत्र कुबेर जन्मा। रावण की पत्नी मय पुत्री थी। कुंभकर्ण की विरोचन तथा विभीषण की गंधर्व शैलूष तथा सरमा की पुत्री थी।[3] राक्षस असुरों से श्रेष्ठ थे। पर उनका पिशाचों से भी संबंध था। एक राक्षस का नाम पिशाच था। नाग खजानों की रक्षा करते थे। सम्मान करते थे। राक्षस स्त्री का। दस्यु, असुर भी इसी गुण से भूषित हैं।[4] (संभव है यह पुरानी बात थी, जो परंपरा में बची रह गई थी)।

असुर वे थे, जो सुरत्व से दूर थे। दिति के पुत्र दैत्य तथा दनु के दानव थे। वे आदितेयों के शत्रु थे। दैत्य कालेय, कालकेय तथा कालकंज कहे गये हैं। खालिन्, कीचक (चीनी शब्द कि—चौक से साम्य ?) निवात कवच दानव थे। पिशाच, यक्ष, नाग, इत्यादि खसों से संबंधित लगते हैं। इन सब का पिता कश्यप था। माताएं दश पुत्रियां थीं। पुलोमा से पौलोम हुए थे। असुर राक्षस, पिशाच सब मिले हुए हैं। नाग अलग हैं, पर मिले हुए हैं। असुर रक्त नहीं पीते थे, न मांस खाते थे। वे देवों के अग्रज कहे गये हैं।[5]

भोगवती का राजा शेष था।[6] कुरुओं का प्रारंभ क्या नाग जाति से जोड़ा जा सकता है ? क्रिवि=क्रिमि, और यह नाग का नाम है। पांचाल संभवत: पांच नाग जातियां हैं। धृतराष्ट्र, ऐरावत, धनंजय, वैदिक नाग हैं। नाग बात तथा विवाद करते हैं। वासुकि उत्तर देता है। मुख्य नाग ये हैं : कर्कोटक सर्प, वासुकि (भुजंगम), कच्छप, कुण्ड, तक्षक (महोरग)। एक भोगवती सर्पी का देवी असुरी इत्यादि से संबंध है। असुरी सुन्दरी है। भोगवती स्कंद सेना की एक राक्षसी थी।[7] भोगवती के राजा शेष का तीर्थ प्रयाग था।[8]

असुर और नाग वरुणोपासक थे। उनका देवों से संबंध है। दैत्य, दानव भी सुन्दर कहे गये हैं। कहीं कहीं उनके नाम सुमति और सुमन जैसे भी मिलते हैं। असुर मधु

---

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ० १४२.
२. वही पृ० १४४.
३. वही पृ० ४१–४२.
४. वही पृ० ४६.
५. वही पृ० ४६.
६. वही पृ० २३.
७. वही पृ० २४–२५.
८. वही पृ० २७.

कैटभ ने तो कभी भी जीवन में झूठ ही नहीं बोला।[१] सब दानव असुर नहीं थे। वे जाति भेद के विरुद्ध थे (वर्णाश्रम के)। राक्षस, गंधर्व, पन्नग, दानव, देवों के विरोधी थे। असुरों के सूर्य्य, चंद्र, देवों के सूर्य्य चंद्र से निस्संदेह अलग थे। (ये देवता दोनों में विरोधी रूप में भी आते हैं)।[२] घटोदर राक्षस वरुण का सेवक था। राक्षस, असुर, नाग जातियों में मूक, हरि, हर जैसे नाम हैं। कुंभाण्ड दैत्य बाणासुर का मंत्री था। कूष्माण्डी शिवपत्नी का नाम है। कूष्माण्डक एक नाग भी है।[३]

इन्द्र का मित्र गृत्समद महादेव का उपासक था।[४]

शिव में राक्षसों की कुछ विशेषताएं मिलती हैं। उनके नाम हैं—कुंभकर्ण, शंकु कर्ण, तथा गोकर्ण।[५]

शिश्नदेव का ऋग्वेद में वर्णन है।[६] शुनासीर दो खेती के देवता हैं।[७] शुनः शेप का भाई शुनोलांगूल था।[८] ब्रह्मचर्य का वर्णन ऋग्वेद के अंतिम मंडल में है।[९] नाई को वप्ता कहते थे (ऋग्वेद)[१०] उस काल में स्त्रियों का अपहरण होता था। विमद पुरुमित्र की स्त्री को हर ले गया था।[११] 'वरुणप्रघासा' उस रीति को कहते थे, जिसमें पति अपनी पत्नी से उसके प्रेमियों के बारे में पूछता था।[१२] विधवा विवाह होता था[१३]। पाण्डुव बिना रंग के ऊनी वस्त्र को कहते थे।[१४] टीन को त्रपु कहते थे (अ. वे.)[१५]। शिश्नदेव के साथ दासों का उल्लेख है। दासों के पास पुर थे। उनके नेताओं के नाम हैं—इलीविशा, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन्, शम्बर।[१६] शिश्नपूजक दस्यु को इच्छा पर वध किया जा सकता था; दास बनाया जा सकता था।[१७]

पांचों नदियां सतलज, व्यास, रावी, चिनाव तथा झेलम इन्द्र की उपासना करती हैं, परन्तु शिव को देखकर डरकर चुप हो जाती हैं।[१८] इन्द्र की पीली दाढ़ी, पीली आंख तथा पीले वस्त्र कहे गये हैं; अर्थात् हिरण्य। उसका देश पूर्व में है।[१९] वह ग्रामीण है। मातलि उसका सारथि है। मातलिपत्नी सुधर्मा है, जिसका पुत्र गोमुख तथा पुत्री गुणकेशी है। जामाता सुमुख एक नाग है।[२०] इन्द्र असुरशत्रु है। विष्णु भी प्राचीन काल में ही असुर शत्रु है। विश्वरूप छिपे तौर पर असुरों से मिलता था, पर खुलेआम देवों के साथ था। हिरण्यकशिपु विश्वरूप त्रिशिरस् की मां के पास गया और उसने उससे कहा कि त्रिशिरा देवों से मिल गया है, जिससे वे निर्बल हो गये हैं। मां ने पुत्र को समझाया। विश्वरूप मान

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ० ४६.
२. वही पृ० ४८.
३. वही पृ० ५२.
४. वही पृ. १७६
५. वही पृ. २२०
६. वेदिक इन्डैक्स २ पृ, ३८२
७. वही पृ. ३८६
८. वही पृ. ३८६
९. वही पृ. ७५
१०. वही पृ. ४४१
११. वही पृ ४८.
१२. वही पृ. ४८०
१३. वही पृ. ४८६
१४. वही पृ. ५१५
१५. वही पृ. ३२६
१६. वही पृ. ३५८
१७. असुर इंडिया पृ. १६
१८. वही पृ. ४-५
१९. वही पृ. १२२
२०. वही पृ. १२५

गया। तब हिरण्यकशिपु ने वसिष्ठ को निकाल कर विश्वरूप को रख लिया। त्रिशिरा एक मुख से सोम, दूसरे से बलि तथा तीसरे से देवों की शक्ति को ग्रहण करने लगा। इन्द्र ने विश्वरूप की हत्या कर दी। वह ब्रह्महत्या कही गई।[१] इन्द्र का वैरोचन से युद्ध हुआ।[२] इंद्र का विद्याधर विप्रचित्ति से युद्ध हुआ।[३] इन्द्र परस्त्रीकामचारी था। इन्द्र ने रुचि से भोग की चेष्टा की। देवशर्मन गुरु की पत्नी को गुरुपत्नी समझ कर उसके शिष्य विपुल ने स्त्री के ऊपर जादू सा कर दिया। उस अवस्था में वह संस्कृत बोलने लगी। और इन्द्र उसे बिगाड़ नहीं सका।[४] ऋग्वेद में भी इन्द्र सहस्राक्ष है। सहस्राक्ष अग्नि का भी नाम है।[५]

दूसरी ओर स्त्री का सम्मान अधिक दिखता है। मातृपूजा तथा परशु पूजा और नाग पूजा का भी बहुत प्राचीन उल्लेख है। कुरुक्षेत्र के भार्गव, जो अपने को परशुराम के वंशज कहते हैं, परशु पूजा करते हैं।[६] शिव भी एक ध्यान में परशु धारण करते हैं। लिंडिया, केरिया, इटली, मिस्र, यूनान तथा मगों में परशुपूजा प्रचलित थी।[७] पृथ्वी माता का उल्लेख अदिति के साथ है। अदिति और सोम, ब्राह्मणों में गौरी का उल्लेख है। अदिति प्रारंभ में क्वांरी थी, अक्षतयोनि। बाद में वह कश्यप की पत्नी; इन्द्र, मरुत तथा वामन की माता कही गई है। अदिति विनता भी कही गई है। रात में वह दिति अथवा कद्रू हो जाती है। विनता के रूप में वह सुपर्ण तथा अरुण की माता है। कद्रू के रूप में वह सर्पों की माता है। सर्प इस स्थान पर सूर्य के शत्रु का प्रतीक है। सूर्य पक्षी है, जिसे अंधकार के समान वह निगल जाता है।[८] यम का दूत कौआ है; वह पितरों, सूर्य अथवा विष्णु के पास बलि पहुंचा देता है।[९]

बाइबिल में सर्प शैतान माना गया है। सूर्य के एक प्रतीक के ये दो रूप निस्संदेह सर्प के संबंध में दो जातियों के विश्वासों को प्रगट करते हैं, जो परस्पर टकरा गये हैं। नाग बहुत प्राचीनकाल में भी अर्द्धमनुष्य, अर्द्धनाग माने जाते थे।[१०] नाग और जल का घना संबंध है। मिस्र में भी नाग पूजा थी। वे सर्प को नाक, साबू, अपाप कहते थे। देवता से सर्प का युद्ध हुआ था, जिसमें सर्प मारा गया।[११] वेद में सर्प देवता को बलि दी जाती थी। सर्प पवित्र व्यक्ति थे। सर्प पवित्र पूर्वज थे।[१२] मूसा से खुदा ने कहा था--सर्प बना और स्तंभ पर रख।[१३]

जल, संतान तथा न्याय देवता के रूप में, एक महान राजा के रूप में, वरुण :प्राय

---

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ. १३० ८. वही पृ. १३८
२. वही पृ. १३३ ९. वही पृ. १२३
३. वही पृ. १३४ १०. सर जॉन मार्शल चित्र K १६.२९. चित्र C २७.११.
४. वही पृ. १३५ ११. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १, पृ. १४१
५. वही पृ. १३५
६. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १, पृ. १३३
७. वही पृ. १३५ १२. वही पृ. १४३ १३. वही पृ. १४७

एक सुशांत व्यवस्था का व्यक्ति प्रतीत होता है, जिसके समय में नगर-राज्य तथा अत्यंत प्राचीन कृषि सभ्यता का आभास मिलता है। ऋतुउत्सव, वासनामय उपासना-पद्धति, संभवतः मनुष्य बलि का आभास प्रत्यक्ष होता है। वरुण, अदिति, गंधर्व, यक्ष संबंधी इन बातों से प्रगट होता है कि अत्यंत प्राचीनकाल में, कृषि के प्रारंभ युग में एक विराट संस्कृति भूमध्यसागर से सिंधु तक फलफूल रही थी। भारतीय आर्य तथा पारसी लोगों के योद्धा देवता पुजारी इनके बाद के लगते हैं। वरुण और अदिति बहुत अंश तक तम्मुज और इश्तर का ध्यान दिलाते हैं।[1]

अदिति खेती के रूप में रोगदायिनी है। विष्णु की माता के रूप में महादेवी है। अदिति दाक्षायणी कश्यप प्रजापति मारीच की पत्नी है। ये सृष्टि के माता पिता हैं।[2]

वेद में मां के लिये नना, पिता के लिये तता शब्दों का प्रयोग है।[3] निघंटु में नना का प्रयोग है। ऋग्वेद (९. ११२. ३) में नना का अर्थ माता है (उपल प्रक्षिणी नना)। सीरिया तथा एशिया माइनर में माता देवता को ननाइ तथा नना कहते थे। बैबीलोनिया में स्त्रीदेवता के साथ पुरुष देवता का संबंध मिलता है। परंतु एरेख में एक सुमेरियन माता-देवता की पूजा होती थी, जिसके नाम नना, इन्नन्ना, निना और अनुनित इत्यादि थे।[4]

हेरोडोटस ने थ्रेशियन तथा सीथियनों में सती प्रथा का उल्लेख किया है।[5] असुर मातृसत्तात्मक थे।[6] मिस्र में भाई बहिन का विवाह होता था। आइसिस ओसिरिस की बहिन तथा पत्नी थी।[7] अवेस्ता के यिम. यिमे तथा ऋग्वेद के यम यमी इस प्रथा की प्राचीनता के द्योतक हैं।[8] अथर्ववेद में——बाप-बेटी के विवाह की असुरों में प्रथा थी——उल्लिखित हुआ है।[9] असुरों में संतान मां पर मानी जाती थी। दक्ष की १३ लड़कियों के नाम पर पुत्र माने जाते थे।[10] द्रविड़ अपने को अदिति से संबंधित मानते हैं।[11] दक्षक तथा नियोग असुर प्रभाव थे।[12] आर्य्य पितृसत्तात्मक थे।[13] सुमेरु, मिस्र, बाबुल, असीरिया से माता देवी की पूजा भारत में आई।[14]

भाषा वैज्ञानिक इस सम्बन्ध को यों प्रगट करते हैं। ई. ए. स्पीसर ने हुर्रियन भाषा के व्याकरण पर मत प्रगट किया है कि कुछ कोहकाफ की भाषाओं में क्रिया संबंधी वे ही नियम हैं, जिनका प्रवेश हिंदी ईरानी क्षेत्र में भी पाया जाता है।[15]

---

१. यक्ष २, पृ. २७
२. एपिक मायथॉलॉजी पृ. ८१
३. वेदिक इंन्डैक्स १, पृ. ४३४
४. इक ४. १९३७-३८ पृ. ४०९
५. असुर इंडिया पृ० १०७.
६. वही पृ० १२०.
७. वही पृ० १२६.
८. वही पृ० १२९.
९. वही पृ० १३०.
१०. वही पृ० १३१.
११. वही पृ० १३३.
१२. वही पृ० १३४.
१३. वही पृ० १३१.
१४. वही पृ० १३७.
१५. ज अ ओसो. ५९. १९३९ पृ० ३१९.

भाषा और कबीले परस्पर काफ़ी मिलते थे। नहुष संभवतः देव जाति का नहीं था।

नहुष की सदैव विषदृष्टि कही गई है। महाबली नहुष ने इंद्र को झुकाया था।[१] नहुष के समान नहुस भी एक जाति थी।[२] नहुसों का राजा मशरशार था (ऋग्वेद)।[३] सांपों के नाम गिनाते समय महाभारत आदिपर्व, ३५वें अध्याय में (१—१०) एरावत, कर्कोटक, कंबल के साथ नहुस का भी नाम गिनाया गया है। उद्योग पर्व में १०३वें अध्याय में निम्नलिखित नाम हैं, जिनमें नहुस भी है : वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, कालिय, नहुस, काबल, अश्वतर, बाह्यकुण्ड, मणि, आपूरण, खग, वामन, एलापत्र, कुकुर, कुकुण, आर्यक, मन्दक, कलश, पोत, कैलास, पिंजरक, ऐरावत, सुमना, सुमुख, दधिमुख, शंख, नंद, उपनंद, आप्त. कोटरक, शिखी, निष्ठुरक, तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद, माल्यपिण्डक, दोपद्म, पुण्डीरक, पुष्प, मुद्गरपर्णक, करवी, पीठरव, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, मूषिदाक, शिरीषक, दिलीप, शंख, शीर्षा, ज्योतिष्क, कोरव्य, धृतराष्ट्र, कुहुर, इत्यादि।

यातुधान होना अच्छा नहीं समझा जाता था।

महाभारत में कथा है कि भीम पर एक स्त्री मोहित हुई। वह हिडिम्बा थी। उसने कहा था—मैं यातुधानी नहीं हूँ।[४] उत्तर में क्रोधवश नामक राक्षस थे। भीम ने उन्हें मारा था; पर वे यक्ष भी कहलाते थे। क्रोधवसा तो दक्ष की पुत्री कही गई है।[५]

उससे भी प्राचीनकाल में वेद में उल्लेख है। वसिष्ठ ने कहा है :

अद्यामुरीय यदि यातुधानो
अस्मि यदि वायु ततप पूरुषस्य।
अधा सवीरैर्दशभिर्वियूया
यो मा मोघ यातुधानें त्याह।

ऋ. वे. ७. १०४. १५.

अर्थात् यदि मैं यातुधान हूं तो आज ही मर जाऊं। यदि मैंने राक्षस होकर हिंसा की हो तो भी आज ही मर जाऊं। यदि ऐसा नहीं हूं तो जो दुर्जन मुझे यातुधान कहता है, उसके दस पुत्रों का नाश हो।

देवों को भी मत्स्यों ने बुरा कहा है। उन्होंने प्रार्थना की है : 'देवों से बचाओ; वे हमें मारना चाहते हैं।' (८.६८.१,—२: ३: ४: ५: ६: ७: ८)[६] मत्स्य राज्य परवर्ती काल में मिलता है। इससे इंगित होता है, मत्स्य कबीला था। मत्स्य ने ही मनु को प्रलय की सूचना दी थी (क्या वह मनुष्य था ?)

बहुधा नामों का साम्य मिलता है, परंतु एक दम ही उनका साम्य देख कर धारणा बना लेना अधिक ठीक नहीं हुआ करता।

---

१. एपिक मायथॉलॉजी पृ० २६.
२. वेदिक इन्डैक्स १. पृ० ४४८.
३. वही २. पृ० १३९
४. एपिक मायथॉलॉजी पृ० ४४
५. वही पृ० ४५
६. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इंडस १ पृ० १५०—५१

एक मत है कि प्राचीन काल में 'शिक्षित' आर्य्य कहलाते थे और जंगली या आदिम वासी या अशिक्षित दस्यु कहलाते थे।[१] बहुधा अवेस्ता में ईरानी आबादी के किसी स्थानीय अनार्य्य जाति (अनारियाओ दंहावो) से संघर्ष के वर्णन हैं। मज़्दा के उपासकों के घरों में अविश्वासी (अन्धविश्वासों को मानने वाली) जातियों की लड़कियां, नौकरानी, दासियां और वेश्या बन कर रहती हैं।[२] इन्द्र का केशी घोड़ा संभवत: कैसाइट्स का ही था। शुषन् एलाम की राजधानी थी। मितशु का ऋग्वेद में चार बार उल्लेख है। संभव है यह आर्य्यों के मित्र, एलाम के वायव्य में रहने वाले मितन्नी लोगों का उल्लेख है।[३] सुमेरु देवता का नाम य था। सुमेरियन में "अस्" का अर्थ मनुष्य था, अत: ऊर्वशि संभवत: ऊर+अस-ऊर्वशि—ऊर नगर की रहने वाली थी।[४] सुमेर में मेस देवता था। वेद में मेष का उल्लेख है। अराति—अल्लातु पाताल का देवता था।[५] बैबिलोनिया में मदुक, एल और पर्शियन में मित्र, सिंधु में विष्णु नाम से सूर्य्योपासना होती थी।[६] इश्तर तथा तम्मूज (दम्मूज) बैबिलोनियन में हैं, वैदिक में उष: तथा दयून् का उल्लेख है।[७]

२४०० ई. पू. के लगभग दक्षिणी बैबिलोनिया का नाम सुमेर पड़ चुका था, जो गि-र-सु का अपभ्रंश है। यह ल-ग-श प्रदेश के एक प्रांत का नाम था। प्राचीनतम लेखों में सु-गिर या सुन-गिर नाम बहुधा मिलता है, जिससे बदल कर सुमेर हो जाना कठिन नहीं है। ज अ ओ सो ६९—७० १९२९-३० पृ० २६३।

सिन, सिनि, निना, भू, लीला, इला, इसर, इत्यादि नाम सुमेरु देवी देवताओं से साम्य रखते हैं। शिव तथा 'माता देवता' की उपासना बहुत प्राचीन है। मैके का मत है कि जिस अर्द्ध-नग्न देवी के चित्र मोअन-जो-दड़ो में मिले हैं, वह 'देवी माता' थी। फाख्ता या पिण्डुकिया की उपासना का व्यापक प्रभाव भी बहुत प्राचीन है।[८] भागलपुर में 'गुनुर देवी' की पूजा होती है।[९] दक्षिण में मल्ल अम्मा या एल्लअम्मा की, कन्नड़ देश में डोम्बरी, गोल, गंथीकोट जातियां, तथा अब्राह्मण तमिल और कन्नड़ तेलगू ब्राह्मण पूजा करते हैं। शूद्र पुजारी होता है और पशु बलि देकर वह पूर्ण नग्नावस्था में पूजा करता है। रक्त और चावल मिलाकर प्रसाद दिया जाता है।[१०] दक्षिण में मारी अम्मा की भी पूजा होती है।

ऊशा तथा आइसिस में समानता है।[११] वशिनी ग्राम देवी थी। वह शिवपत्नी समझी जाती थी। वैदिक लोग उसके विरुद्ध थे। अब उसकी पूजा पूर्वी तथा दक्षिणी भारत

---

१. इं ए ६०. १९३१ पृ० ५२. यह मुझे अमान्य है।
२. प्रिहिस्टॉरिक एन्टिक्विटीज़ आफ़ द आर्य्यन पीपुल्स, पृ० ११२.
३. भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ० ५–६.
४. वही पृ० ८
५. वही पृ० ९.
६. वही पृ० ४
७. वही पृ० ९
८. इंडिका दिसंबर १९३१. संख्या ४. भाग ७. सप्लीमेंट। पृ० २५–२६.
९. वही पृ० ४२.
१०. वही पृ० ४६–४७.
११. असुर इण्डिया पृ० ११३.

में होती है। वह आर्य्यपूर्वा थी, खेती बाड़ी से संबंधित थी।[1] नृतु—नृत्य की देवी थी। वेद में भी भ्रातृहीन स्त्री, पुंश्चली, उपपति, जार, भ्रूणहत्या, रहसू, हस्रा, साधारणी, महानग्नी, कुमारीपुत्र, अग्रू वेश्या का होना बताते हैं। नृतु भी वेश्या देवी थी।[2] पृथ्वी माता 'नर्थस' देवी की सात जर्मन कबीला जातियां भी उपासना करती थीं।[3]

वेद में पणियों से संग्राम हुआ है। इन पणियों के विषय में एक मत यह है: वेद के पणियों से कार्थेजियन पियोनी मिलता है। हेरोडोटस ने एक परंपरा का उल्लेख किया है कि टायर का मंदिर उन्होंने २७३० ई. पू. बनाया था।[4] पुराणों में कुरु राजा को पूण्य कहा गया है। पूण्यजन एक असुर था, जिसने कुशस्थली नष्ट की थी। पूण्येय, ययाति वंश का एक राजा था। पूण्यक विष्णु का एक नाम है। ऋग्वेद में इन्द्र को पव्य कहा है:

पव्य इदुप गायत, पव्य उक्थानि शंशत्।
ब्रल्या कृणोत् पव्य त्
८. ३२. १७.

पव्यया दर्दि रच्छता सहस्रा वाज्यव्रतः।
इन्द्रो यो यज्वनो वृधः।
८. ३२. १८.

संभवतः पव्य माने प्रशंसनीय था। ग्रीक में पैन नामक देवता था। मिस्र में फेन्क नाम का उल्लेख है। पूणय एक नगर भी था। तमिल का 'पगम' अर्थात् धन भी पणि का ही रूपांतर है।[5] (पणि व्यापारी थे, धन का उनसे संबंध हो सकता है।)

आर्य्यों को सप्तसिंधु में दस्यु, ईरानी लोगों को तूरानी, ग्रीकों को पेलस्गियन, रोमनों को एट्रस्कनों से युद्ध करना पड़ा। संभवतः ये सब जातियाँ तूरानी थीं। जो अक्काड और सुमेरु के लोगों की वंशज थीं। एट्रस्कन लोग पेलस्गियन लोगों की पश्चिमी नस्ल थी, जो लिग्युरियन, आईबीरियन, लिबियन इत्यादि से संबंधित थी। ये भूमध्य-सागर के पास रहने वाली जातियां थीं। सर्जी के अनुसार ये भमध्यसागर की जातियों के परिवार में से ही थीं।

ऊपर थोड़े से तथ्य एकत्र किये गये हैं।

महाभारत के आधार पर यहां सृष्टि विकास तथा अग्नि वंश का वंशवृक्ष उपस्थित किया जाता है:

---

१. असुर इंडिया पृ० ११५.
२. वही पृ० ११७ तथा ११०.
३. वही पृ० ११८.
४. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १, पृ० २१–६१ तथा २३–६३.
५. ए स्टडी इन हिंदू सोशल पौलिटी पृ० ६३.

५

देव—असुर—किरात युग

भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार वैदिक संस्कृत, लैटिन तथा फ़ारसी एक ही भाषा निकली हुई भाषाएं हैं। राहुल ने इस समस्त भाषा के बोलने वालों का नाम ही शकार्य्य रखा है। उनके कथनानुसार कहीं बोल्गा के पास एक जनसमूह था, जिसके दो विभाग हो गये। एक शक, जो पश्चिम को मुड़ गया; दूसरा आर्य्य, जो भारत की ओर आ गया। आर्य्य-जाति के विषय में यदि हम मैक्समूलर और स्वामी दयानंद के दृष्टिकोण से न देखें तो हमें कहीं अधिक रोचक तथ्यों का आभास मिलता है। जिस समय द्रविड़ सभ्यता अपने समृद्ध रूप में थी, उस समय पहाड़ों में गाते हुए, झुंड के झुंड चरागाहों की खोज करते हुए, जो जाति दक्षिण की ओर बढ़ी चली आ रही थी, उसे एक दिन ईरान की उस श्रेष्ठ जाति के दर्शन हुए, जिन्हें उसने असुर कहा। यहां से हमारा इतिहास अपना महत्त्व इस नई जाति की ओर केन्द्रित करता है जो (संभवतः) अपने साथ लोहा ले आई थी। अवश्य ही घोड़ा इसके पास था। यह जाति देव जाति समूह था। ये लोग अग्नि के उपासक थे। अग्नि की रक्षा करना इन्होंने सीख लिया था। अग्नि इन्हें शमी वृक्ष में दिखाई दी थी। (८५. अनुशासन पर्व महाभारत ४०. ५०) उसी से अग्नि की रक्षा करना ये लोग सीख गये थे। उस समय इनका समाज जंगली था। खाने पीने के सामानों की बहुत कमी थी। अग्नि विश्पति था। ये अपनी बस्ती को विश् कहते थे और उनके भीतर इनके झोपड़े दम और पूः कहलाते थे। इनके समाज में पत्थर के घेरेदार कुछ मकान भी संभवतः बनाये जाते थे। । यज्ञ सार्वजनिक जीवन का प्रतीक था। सामूहिक रूप से सब अग्नि के चारों ओर बैठ कर मिल बांट कर खाते थे। यह आदिम साम्यवाद का युग था, जिसमें कोई किसी का शोषण कर सकने में असमर्थ था। यज्ञ को ही सत्र या क्रतु कहा गया है। इस समय यज्ञ में सब ही यज्ञकर्त्ता थे, अतः सभी ऋत्विज और यजमान थे। पुरुष स्त्री और अग्नि ही आदिम ब्रह्म था। यज्ञफल सब में यथावश्यकता बांटा जाता था; उसी को दान कहते थे। सब मिल कर आनंद से सोम पीते थे और एक होकर काम करने की तिज्ञा के रूप में एक स्थान पर हाथ रखते थे। वे सब एक ही गोत्र के लोग थे। उस समाज में प्रत्येक स्त्री और प्रत्येक पुरुष एक दूसरे के पति पत्नी थे। इस युग में पशुपालन भी था। यज्ञ में स्त्रियां भी काम करती थीं, क्योंकि तब यज्ञ धार्मिक रूढ़ि नहीं थी। धर्म नित्य प्रति के जीवन के आचार-व्यवहार के रूप में बहुत दिन से माना जाता रहा है। आर्य्येतर परंपरा न धर्म को दूसरा अर्थ दिया था। उनके अनुसार जीवन की दार्शनिकता महान के दुःख और भय से आक्रांत थी। यह भय की

भावना प्रायः समस्त द्रविड़ परिवार में एक सी पाई जाती है। भूगर्भवेत्ता तथा वैज्ञानिक इस भय को होमोसैपियन्स में ही नहीं, विकास की पुरानी मंजिल नीन्डरथैलियन्स तक ले जाते हैं।

इन देवों के पास हड्डी और पत्थर के औजार थे। उस समय धातु का प्रयोग इन्हें अज्ञात था। समाज में मातृसत्ता थी। इसके बाद गौ तथा अश्व पालन इनमें चल पड़ा। यह घटना भी देवों के ईरान में आने से पुरानी है। गौ संख्या बढ़ाना इनके लिये अत्यंत आवश्यक था। उसी को खाते थे, दूध पीते थे। पहाड़ी इलाकों की सर्दियां झेलने के लिये इन्होंने भेड़ और मेष पालन भी किया था।

यह समय इतना प्राचीन है कि भाषा के अनुसार इसे विरस युग में रखना ठीक होगा।

गाय आदि पशुओं की संख्या इन सगोत्र परिवार अर्थात् गणों में बढ़ने पर उनके लिये नये-नये चरागाह खोजना इनके लिये आवश्यक हो गया। इसलिये ये चलते-फिरते रहे। क्योंकि धरती से इनका कोई रहने का लगाव नहीं था, इसलिये आर्य्यों में कहीं यह नहीं मिलता कि किसी ने अपने मूल स्थान के लिये खेद किया हो, या उसकी याद ही की हो। अहुरमज़्दा ने वैन्डीडेड में अपने मूल स्थान की याद की है। मूल स्थान की याद सभ्यता के विकास की एक अगली मंजिल प्रदर्शित करने वाली चीज है। वह (भारतीय) आर्य्यों में नहीं थी, तभी हमें उसकी ध्वनि नहीं मिलती। जो भी भूमि अच्छी है, जहां ठहरने को स्थान मिलता है, वही अपनी है, क्योंकि पशुपालन तथा अपनी संख्या बढ़ाना इनका मुख्य काम था।

जिस युग के दृश्य हमारे सामने आते हैं, वह वास्तव में इन्द्र का युग है। ऋग्वेद में इन्द्र की ही स्तुति गाई गई है। इन्द्र युग को देखने पर ज्ञात होता है कि उसका समाज कुछ इस प्रकार का था : गण माताओं के नाम पर मिलते हैं। अवश्य ही यह मातृसत्तात्मक समाज की ओर इंगित करता है। इन्द्र बर्बर युग का प्राणी है। लेकिन एक दुरूह उलझन है। मातृसत्ता पर पितृसत्ता लादी हुई दिखाई देती है। एक प्रजापति है। उसकी अनेक दिति, अदिति आदि पुत्रियां हैं। परंतु उनको एक ही पति मिला है। वास्तविक मातृ-सत्तात्मक समाज में पति का नाम याद नहीं रखा जाता था। माता के नाम पर ही गोत्र और गण स्थापित थे। इन्द्र के हाथ में अस्थि का वज्र है। यहीं के परवर्त्ती युग में इन्द्र सुवर्ण मंडित है। यह ऊपर देखा जा चुका है कि इन्द्र एक नहीं था। इन्द्र एक पद था। इन्द्र बदलते रहे, समाज बदलता रहा। पशुपालन से विकास में वृद्धि होती रही और प्रारंभिक इन्द्र की तुलना में परवर्त्ती इन्द्र समाज की अधिक विकसित अवस्था में थे। इस समाज के भीतर धीरे-धीरे विकास हुआ। किंतु यह विकास एकांगी नहीं था। जंगली अवस्था से देव बर्बर अवस्था में आगये। यही नहीं इन्द्र के समय में जहां एक ओर मातृ-सत्तात्मक समाज के चिन्ह मिलते हैं, परवर्त्ती काल में पितृसत्तात्मक समाज के भी। वेद

में इन्द्र के साथ अनेक गणों का उल्लेख हुआ है, जिनमें पिता के नाम पर ही नाम चलता था जैसे रुद्रगण इत्यादि। अतः इस समस्या को सुलझाना आवश्यक है। एक और परेशानी है। मातृसत्तात्मक समाज में भी यहाँ दास प्रथा का उल्लेख मिलता है। कद्रू के पुत्रों ने गरुड़ों तथा उनकी माता विनता को अपना दास बना रखा था। नाग आग्नेय परिवार के लोग थे और इनका समाज देवों से भिन्न था। पहले हमें उन घटनाओं को देखना उचित है, जो क्रम से हुईं और कौन-कौन सी जातियों का क्या प्रभाव रहा। उसके अनंतर उन जातियों की सामाजिक परिस्थिति पर विचार करना ठीक होगा।

ऐतरेय ब्राह्मण १।१४ में कथा है कि एक बार देवों और असुरों में लड़ाई हुई। असुरों ने देवों को पराजित कर दिया। देवों ने कारण सोचा तो वे इस नतीजे पर पहुंचे कि हमें राजा चाहिये (राजानम् करवामहै), क्योंकि हम 'अराजतया' अर्थात् राजा न होने के कारण हार गये हैं।

इस के साथ ही तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।९ की कथा भी उल्लेखनीय है। देवासुर संग्राम में प्रजापति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र को छिपा दिया कि असुर सशक्त हैं। वे कहीं उसे मार न डालें। कयधु के पुत्र प्रह्लाद ने अपने पुत्र विरोचन को भी छिपा दिया। उसे डर था कि कहीं देव न मार डालें। देव प्रजापति के पास गये। कहा: 'बिना राजा के युद्ध कर सकना असंभव है।' यज्ञ करके उन्होंने इन्द्र से अपना अगुआ (राजा) होने की प्रार्थना की।

इससे स्पष्ट होता है कि देवों में पहले वैराज्य था। असुरों में राजा होता था। राजा यहां नेता का अर्थ द्योतन करने वाला शब्द है। वैराज्य के समाज से राजा वाला समाज एक आगे की मन्जिल है, यह इतिहासकार सर्वसम्मति से स्वीकार करते हैं। अर्थात् वैराज्य में आदिम साम्यवादी युग है। जब मनुष्य प्रायः जंगली है। राजा वाले समाज में व्यक्तिगत संपत्ति का प्रारंभ होने लगता है। राजा के प्रारंभ होने का एक कारण विदेशियों से भी युद्ध है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि असुर देवों से आगे बढ़ी हुई अवस्था में थे। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। इतिहासज्ञ इन कहानियों को समझे नहीं, क्योंकि उन्होंने देव युग को अलग नहीं किया। यज्ञ (अर्थात् सामूहिक उत्पादन वितरण की बैठक) में इन्द्र चुना गया। असुरगण देवताओं के बड़े भाई और बहुत बली थे। देवताओं ने फूट डाल कर (छल से) उन्हें हरा दिया।

(महाभारत वनपर्व ३३।६०।)

देव असुरों के देश में आ कर बसे। ये असुर द्रविड़ परिवार के व्यक्ति थे। यदि ये द्राविड़ न होकर तूरानी ही थे, तब भी जहां तक संस्कृति का संबंध है, इनकी संस्कृति द्रविड़ ही थी। ये लोग खेती करना जानते थे और नदियों से पानी भी देना जान गये थे। नदियों से पानी काट कर देना कोई बहुत बड़ी चीज़ नहीं समझना

चाहिये। प्रारंभिक मनुष्य ने इन नदियों के तीर पर ही खेती करना सीखा था। नील नदी मिस्र की प्रसिद्ध नदी है। वह हर साल बाढ़ लाती थी, जिससे नई मिट्टी किनारों पर छा जाती थी। उसी में बीज डाल देने से फसल उगती थी। पहले मनुष्य इस फसल को पशुओं को खिलाता था, फिर स्वयं खाने लगा। इन असुरों से देवों ने खेती बाड़ी करना सीखा। इस समय हिंदी-ईरानी भाषा परिवार विरस भाषा के अंतिम रूप को छोड़कर अपना विकास प्रारंभ कर चुका था। असुर किस अवस्था में थे, यहां यह जानना आवश्यक है।

द्रविड़ों का प्रसार ऊपर देखा जा चुका है। उनमें मातृपूजा का प्रचलन था। उस प्राचीन काल में उनमें परस्पर संबंध था, जो मिस्र से ईरान तक दिखाई देता है। उस समय द्रविड़ सिंधु प्रदेश में अपना पैर रख चुके थे और भारतीय हब्शी तथा आग्नेय परिवारों से उनका संबंध हो चुका था। हब्शी तो नितांत जंगली अवस्था में थे, परंतु आग्नेय जातियों के भिन्न स्तर थे। इन द्रविड़ों में मातृसत्तात्मक समाज था। परंतु बर्बर अवस्था के अंतिम युग में अब इनमें दास प्रथा प्रारंभ हो चुकी थी। ३५०० ई० पू० के लगभग मिस्र में गिजा की पिरैमिड बनी थी, जिसमें गुलामों की संख्या में से लगभग ६।१० गुलाम उन बड़े-बड़े पत्थर के ढोंकों को उठाने बनाने में तबाह होकर मर गये थे। उस समय मिस्र में फराऊन जैसे सम्राट् के दर्शन होते हैं, जो ईश्वर समझा जाता था। यह सुदृढ़ दास प्रथा इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि समाज काफी विकसित हो चुका था। एक ओर इन्द्र को शत्रु का वध करते हुए देखते हैं। केवल शुष्ण को इन्द्र ने बंदी किया था। अतिरिक्त इस उदाहरण के, इन्द्र वध ही करता था। पराजित का वध ही आवश्यक था, क्योंकि तब तक के देव समाज में दासों के लिये कोई स्थान नहीं था। देवों में तब संपत्ति सब की ही होती थी। समाज में बर्बर युग के चिन्ह आ गये थे, परंतु व्यक्तिगत संपत्ति का उदय नहीं हुआ था। व्यक्तिगत संपत्ति का उदय प्रगट करने वाली विष्णु की कथा है, जिसने यज्ञफल को अपना बना लेना चाहा था। वह जो पहले समस्त समाज का था, उसे अपना बना लेना चाहा। परंतु यह घटना कुरुक्षेत्र की कही गई है। संभवतः यह भारत भूमि में पहुंच जाने के बाद की घटना है। परंतु मेरा मत इससे भिन्न है। देव काल का कुरुक्षेत्र परवर्त्ती काल का उत्तर कुरु है, जिसकी प्राचीन सत्ता प्रमाणित होती है। परंतु विद्वानों का मत है कि भभसुभरत तथा पुरुओं के मिलने पर कुरुओं का जन्म हुआ, जिन्होंने कुरु प्रदेश बसाया। समस्त परंपरा मनु से वर्ण व्यवस्था का प्रारंभ मानती है। दूसरे बर्बर युग के अंतिम समय में ही व्यक्तिगत संपत्ति का प्रारंभ आवश्यक है, क्योंकि जहां वर्णों के रूप में समाज में काम बंटता है वहां सगोत्रों के व्यक्तिगत संबंध धीरे-धीरे टूटने लगते हैं और समाज बिखरने लगता है। पहले जैसी कबीले वाली बात नहीं रहती।

इस प्रकार गिजा की पिरैमिड इस बात का प्रमाण है कि द्राविड़ बहुत प्राचीनकाल

में ही दास प्रथा का समृद्ध रूप पहुंचा चुके थे। दूसरे, मोअन-जो-दड़ो का सुसभ्य नगर इसका प्रमाण है। बहुधा विद्वानों में मुठभेड़ होती है और वे कहते हैं कि मोअन-जो-दड़ो आर्य्य था, कोई कहता है कि यह द्राविड़ सभ्यता थी। आपस में इन दोनों संस्कृतियों में बहुत सी बातें मिलती जुलती थीं, क्योंकि और भी प्राचीनकाल में परस्पर संबंध हुआ था; यह दिखाया जा चुका है।

असुर अग्निपूजा करते थे। देव भी अग्निपूजक थे। अग्निपूजा अन्य जातियां भी करती थीं। अग्नि मनुष्य की प्रारंभिक सभ्यता का चिह्न था। असुरों में उसकी पूजा देखकर आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। परंतु यहां यह भेद समझना चाहिये कि अन्य सब जातियां प्रायः तप करती थीं। देव ही यज्ञ करते थे। ये सब जातियां देवों के यज्ञों में बाधा डालती थीं। यज्ञ देवों का तथा उनकी संपत्ति का एकत्रीकरण तथा वितरण था। यज्ञ ध्वंस का अर्थ यहां स्पष्ट होता है।

देव अग्नि के अतिरिक्त पितर पूजा करते थे। अग्निष्वात्ता नाम से देवों के पितरों का उल्लेख हुआ है। आत्मा की उपासना भय का प्रतीक थी। यह द्राविड़ों में भी थी। मिस्री पिरैमिड भी इसीलिये बनते थे कि आत्मा के पुनः शरीर में बसने के विश्वास को माना जाता था। ऊपर हमने, आग्नेय तथा द्राविड़ों में यह विश्वास बहुत प्राचीन था, इसके उदाहरण दिये हैं।

विभिन्न देवताओं की भीड़ में न जाकर यहां यह कहना काफी होगा कि जब देव और असुर साथ-साथ रहे तब उनमें परस्पर निम्नलिखित देवताओं की उपासना संग-संग रही। शंनो मित्रः शं वरुणः शंनो भवत्वर्यमा शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शंनो विष्णु रुरुक्रमः (ऋ. वे. १. १. ५६. ४. ६० .६.)।

यहां मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति तथा विष्णु का उल्लेख है। इससे भी प्राचीन रूप यह प्रतीत होता है :

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

प्रथम अष्टक के सप्तम अध्याय के प्रत्येक सूक्त के अंत में प्रायः ही यह प्रार्थना दुहराई गई है। यहां मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथ्वी, आकाश का उल्लेख है।

परवर्त्ती साहित्य से प्रगट होता है कि इन्द्र से पहले अदिति, वरुण और मित्र हैं। वरुण को ही पहला सम्राट् कहा गया है। सम्राट् का अर्थ वही यहां नहीं लेना चाहिये, जो परवर्त्ती काल में लिया जाने लगा था। सम्राट् तब उतनी बड़ी चीज नहीं थी।

देव और ऋषि के भेद हमें देव जाति में मिलते हैं। इसके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं।

वरुण के शासन की प्रशंसा ऋग्वेद में मिलती है। वरुण की मृत्यु के बाद ही इन्द्र का उत्थान होता है। महाभारत से इस काल के विषय में अधिक ज्ञान होता है।

वरुण की मृत्यु के उपरांत हमें आनंदवादी इन्द्र के दर्शन होते हैं। वरुण न्याय का

देवता है। इन्द्र उच्छृंखल सोमपायी है। इसी से इसको आनंदवादी कहा गया है। भृगु के अग्निवंश में देव-असुर में संधि रखने की प्रवृत्ति है। भृगु के स्थान पर अंगिरा का वंश आ गया।

ऋग्वेद के प्रारंभ से इन्द्र, अश्विद्वय, तथा मरुतों के गौरव की दन्तकथाओं को संगृहीत करने से उस प्राचीन गौरव (आर्य संतान के मस्तिष्क की तत्कालीन अनुभूति) की एक कड़ी प्राप्त होती है, जो हिंदूकुश पार करके दक्षिण में घुसने वाले आर्यों के मस्तिष्क में अपनी बात बन कर समा गई; अपने पितरों की देवगाथा बन गई। यह एक महत्व-पूर्ण विषय है कि कालांतर में संस्कृत साहित्य में पुलह, शम्बर, मय, इत्यादि असुरों के वही नाम भागवत पुराण तक में मिलते हैं, जो ऋग्वेद के प्रारंभिक मंडल में वर्णित हैं।[1]

गायों का चुराना, एक दूसरे की खेतीबाड़ी नष्ट करना, पानी बांध लेना, उस समय के विद्वेष के मुख्य कारण रहे हैं। झगड़े स्त्रियों के पीछे भी होते हैं। स्त्रियों का अपहरण भी होता था। बलवृसय के पुत्र वृत्र व्यंस तथा कुवय का नाम जल रोकने वालों में उल्लेख-नीय है।

इस समय प्रगट होता है कि देवों का पथ पहले काश्मीर, तिब्बत, नेपाल, भूटान की ओर हुआ, क्योंकि यक्ष, गंधर्व, सिद्ध इत्यादि से संबंध वर्णित है। इस किरात परिवार के विषय में ऊपर कहा जा चुका है।

देवों की शक्ति बढ़ने लगी। अंगिरा देव सहायक थे। पहले के अग्निपूजक भृगु का अग्निवंश निर्बल हो चला। भृगु अग्नि पूजक थे। मनुष्यों में भृगु लोगों ने अग्नि धारण किया था (१. १. ४. ११. ५८. ६.)। (वनपर्व २१७ अ०) सह अग्नि जल में जा छिपा (२२२)। (यह कथा वेद में है)।

जिन जातियों से इन्द्र की मित्रता हो गई, वे यक्ष, गंधर्व, किन्नर विद्याधर आदि थीं। कुबेर अपार संपत्तिशाली था। वह नरवाहन था। नर मनुष्य या किन्नर थे। यह प्रथा दास प्रथा की प्रतीक है। इनके समाज में स्त्री स्वतंत्र थी। निस्संदेह इनका समाज पैनैलुअन था।

अंगिरा का अग्निवंश बृहस्पति के समय में अपना पूर्ण प्रभाव जमा चुका था। भृगु का प्राचीन अग्निवंश असुरों से मित्रता रखवाने का कायल था।

संक्षेप में कह सकते हैं कि देवों में इन्द्रपद की स्थापना अंत में विजय के साथ हुई। पितृसत्तात्मक समाज स्थापित हुआ, किंतु मातृसत्तात्मक व्यवस्था एकदम ही लोप नहीं हुई। (देखिये तिरवांकूर की समाज व्यवस्था।)

---

१. भागवत : ६ स्कंध.

पुलोमा वृषपर्वाच एकचक्रोऽनुतापन, विप्रचित्तिश्दुर्जयः। इत्यादि।

मय, शंबर, पुलह इत्यादि का उल्लेख ही बहुतायत से देवासुर संग्राम के समय हुआ। जब वृत्र को सब छोड़ कर भागते हैं, तब वृत्र नाम ले-लेकर उन्ह बुलाता है।

वरुण के बाद इन्द्र ने अपनी शक्ति स्थापित की; अपना स्वराज्य स्थापित किया। यह घटना वृत्र की मृत्यु के बाद की है।[१] इसमें श्येन ने इंद्र को सोम पिलाया था। श्येन गरुड़ के लिये भी प्रयुक्त हुआ था। संभव है सुपर्णों ने इंद्र को सहायता दी थी। अधिकांश मत श्येन को पक्षी ही मानते हैं। सायण का मत है कि श्येन रूपी गायत्री स्वर्ग से सोम लाई थी। ऐतरेय ब्राह्मण के एक उपाख्यान के आधार पर सायण ने ऐसा अर्थ किया है।

श्येन के सोम रस लाने का उल्लेख ऋग्वेद के ३ मंडल, ४३ सूक्त, ४, २६, ८, ७१ ८४, ८६, में हुआ है।

इन्द्र ने वृत्र के कपोल पर आघात किया। इन्द्र ने स्तोताओं के लिये अन्न जुटाने की इच्छा की।

एक साथ हजार मनुष्यों ने इन्द्र की पूजा की थी। २० मनुष्यों ने की थी। १६ ऋत्विक, सस्त्रीक यजमान, सदस्य और शमिता=२०) सौ ऋषियों ने इन्द्र की बार-बार स्तुति की थी। लोहे के वज्र से इन्द्र ने वृत्र को मारा था (१.१.५.१३.८०.६.तथा १२)।

इससे प्रगट होता है कि इन्द्र काल में देव भूखे थे, दबे हुए थे। वृत्र ने उनका पानी छीन लिया था। इन्द्र ने जिता दिया।

स्वराज्यम् का अर्थ देखना आवश्यक है। अपना राज्य। अपने राज्य की उस युग में आवश्यकता का क्या अर्थ हो सकता था? वृत्र का शासन, वह जो देवों को खेती बाड़ी के लिये नदी का पानी लेने से रोकता था।

स्वराज्य का अर्थ यह भी हो सकता है कि उसने अपना बल प्रगट किया। किंतु यह अर्थ गंभीर नहीं लगता। सगोत्र समाज स्वतंत्र रहने की चेष्टा में रत था और अंत में वह इन्द्र काल में स्वतंत्र हो गया।

कार्त्तिकेय को देवताओं ने इन्द्र बनाया, यह कथा महाभारत, शल्यपर्व, ४६ अध्याय में समाप्त होती है। अंत में कहा गया है कि तैजस तीर्थ में पहले देवताओं ने इसी स्थान पर लोकपाल वरुण का राज्याभिषेक किया था।

४७ वें अध्याय में बलराम ने अपनी तीर्थयात्रा सुनाते हुए आगे बताया : सत्ययुग

---

१. ऋ. वे. १. १. ५. १३. ८०.

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्द्धनम् शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् १।। स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ—

वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ।।२।। प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रोनियंसते इन्द्र नृम्णं हिते शवो हनो वृत्रं

जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ।।३।। अधि सानौ निजिघ्नतो वज्रेण शतपर्वणा मन्दा न इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो

गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ।।६।।

के प्रारंभ में देवताओं ने वरुण के पास जाकर कहा : हे देव ! जैसे इन्द्र हमारे राजा होकर सदा भय से हमारी रक्षा करते हैं वैसे ही आप भी सब नदियों और जलाशयों के अधिपति बनें। आपका निवास सदा सागर में होगा और वह आपके वश में होगा।

वरुण ने स्वीकार कर लिया।

इससे इन्द्र की पुरानी स्थापना प्रगट होती है। इन्द्र ने जब देवों में अपना स्थान ग्रहण कर लिया, तब भी देव अपने पहले शासक को भूले नहीं, उसे अपनी स्मृति में सहेजे रहे।

असुर वरुण को मानते थे। वे दूर दूर तक समुद्र में जाते थे। समुद्र से असुर संबंध बहुत आता है, इसको सब जानते हैं। अपने आप ही इस प्रकार वरुण जल का देवता हो गया।

ब्रह्मयोनि तीर्थ (शल्यपर्व, महाभारत, में ४७ अध्याय) में बलराम पहुंचे। देवगण सहित ब्रह्मा ने उस तीर्थ में स्नान करके देवताओं और मनुष्यों के लिये **विविध अन्नों की सृष्टि की थी (खेती)।**

तथा कुबेर धनाधीश हुए थे। उन्हें सब निधियां मिली थीं। उनके नल-कूबर नामक पुत्र हुआ था। **कौबेर तीर्थ में देवताओं ने कुबेर का राज्याभिषेक किया था। उन्हें अमर और लोकपाल बनाया था। वहीं देव शंकर ने उन्हें अपना मित्र बनाया था।**

इस कथा से स्पष्ट है कि कुबेर की महत्ता को भी देवों ने स्वीकार कर लिया था। शंकर उनके शत्रु थे (?) फिर मित्र बन गये ? सती कथा पर आगे देखना आवश्यक है। कुबेर यक्ष था; शंकर राक्षसों तथा अन्य कुछ जातियों का देवता था।

जंगली के स्थान पर समाज बर्बर व्यवस्था पर आ गया, जिसमें अभी लेन देन सामानों से होता था। द्रव्य नहीं आया था। स्वर्ण का प्रयोग होने लगा था। दास प्रथा के एक आध बिखरे उदाहरण मिलते हैं; अन्यथा अभी तो दास न बना कर शत्रु की हत्या की जाती थी। अभी व्यक्तिगत संपत्ति का प्रारंभ देवों में नहीं हुआ था।

इस समय पणि, असुर, दैत्य इत्यादि एक ओर देवों के विरुद्ध जातियां थीं, तो दूसरी ओर यक्ष, गंधर्व इत्यादि इनके सहायक थे।

कुक्कुर, वृक, सुपर्ण, नाग जातियां टाटेम उपासक थीं। यह नाग आग्नेय थे। इन का प्रसार उत्तर पश्चिम से, खोतान, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल से आसाम तक था।

इस प्रकार तीनों परिवारों की निम्नलिखित सामाजिक व्यवस्था थी :

	सत्ता	पूजा	प्रथा	उत्पादन-वितरण
देव	पितृसत्ता	पुरुष	आदिबर्बर	सामूहिक
किरात	,,	स्त्री	मध्य बर्बर	वर्गवाद
द्रविड़ (असुर)	मातृसत्ता	स्त्री	उत्तर बर्बर (दासप्रथा का प्रारंभ)	वर्गवाद

अब जातियों की हलचल दर्शनीय है।

नागराज ने मन्दराचल जीत लिया। देवों और नागों ने समुद्र तक अपना अधिकार कर लिया। कच्छप टाटेम के लोग उनके सहायक हुए। असुर, दैत्य, दानव दूसरी ओर थे। (आदि पर्व, अ० १८ वां)।

समुद्र मंथन होने लगा। यह समुद्र मंथन क्या था? विद्वानों के भिन्न २ विचार हैं। एक मत है कि समुद्रीय पथों के लिये लड़ाई हो रही थी। दूसरा मत है कि जल के लिये युद्ध हो रहा था। केवल इतना स्पष्ट होता है कि संघर्ष हो रहा था, जिसमें देव असुरों से धोखे से सब छीनते चले जा रहे थे। देवासुर संग्राम में विष्णु का जो रूप मिलता है, वह निस्सन्देह परवर्त्ती है। परन्तु ऋग्वेद ही नहीं, ऐतरेय (ब्राह्मण ६/१४) में कथा है कि विष्णु जितनी भूमि अपने शरीर से ढंक लें, वही असुर देवों को दे देंगे। विष्णु ने तीनों लोक ढंक लिये।[1]

देवों में जाति-गर्व के बीज थे। इन्द्र काल में ब्राह्मण क्षत्रिय का भी भेद नहीं हुआ था। यह भी परवर्ती प्रतीत होता है। परवर्त्ती काल में ही इन्द्र को क्षत्रिय बल का प्रतीक माना गया है। इस टक्कर में असुर ब्राह्मण कहे गये हैं। भागवत में तो वृत्र आप जान कर भी अपनी हत्या करवा लेता है। ऋग्वेद में ऐसा भाव नहीं दिखता। उस समय के आर्य्य को इन्द्र पर गर्व था।

समुद्र मंथन में शिव का भी उल्लेख होता है। शिव देवता पुराना है, क्योंकि शिव का ऋग्वेद के प्रथम अष्टक में ही कपर्दी के रूप में उल्लेख हुआ है। शिव का इतिहास एक नये दृश्य पर प्रकाश डालता है।

यक्ष काम की उपासना करते थे। शिव को भी काम कहा गया है (शांति पर्व २८५वां अध्याय)। शिव और काम पहले एक देवता था। यहां यक्ष जाति में दो विभेद हुए। जो नीरस जीवन और भय के पक्षपाती हुए, वही रक्ष (राक्षस) हुए। शिव और काम के युद्ध की कथा अत्यंत प्रसिद्ध है। शिव विजयी हुआ; अर्थात् रक्ष विजयी हुए। ऊपर इस विषय का तथ्य संग्रह इस तथ्य से मिलाना चाहिये। रक्ष स्त्री को दासी बनाते थे। यक्षों में स्त्री स्वतंत्र थी।

राक्षस असुरों से अलग थे। मय दानव के त्रिपुरों का नाश शिव ने किया था। त्रिपुर दहन भी एक प्रसिद्ध कथा है। त्रिपुर-दहन सती और दक्ष कथा की पूर्ववर्त्ती कथा परंपरा में स्वीकार की गई है।

राक्षस प्रारंभ से ही अग्नि के उपासक होकर भी यज्ञ विरोधी थे। परवर्त्ती काल में भी रावण का उल्लेख मिलता है। रावण एक नहीं था। एक रावण ने इन्द्र को हराया था, पाताल जीता था। एक रावण को सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यार्जुन ने मार कर दक्षिण भगा दिया था। एक रावण को बाली ने दक्षिण से और भी दक्षिण की ओर भगा दिया

१. शतपथ ब्राह्मण १।२।५ में भी इस कथा का वर्णन है।

था। परंपरा कहती है कि सहस्रबाहु सत्ययुग में और बाली त्रेता में हुआ था। राक्षस जाति के विषय में आगे देखना ही ठीक होगा। यहां केवल इतना कहना आवश्यक है कि राक्षस सदैव ही शिव के भक्त दिखाये गये हैं। द्रविड़ों में भी लिंगोपासना प्रचलित थी। इससे इंगित होता है कि किरात परिवार तथा द्रविड़ परिवार में परस्पर साम्य था। वे संस्कृति और विश्वासों में एक दूसरे से बहुत दूर नहीं थे।

राक्षस असहिष्णु थे। ऋग्वेद के प्रारंभ में ही आर्य्यों ने इन्द्र से प्रार्थना की है कि राक्षसों से हमारी रक्षा करो, अर्थात् वे राक्षसों से डरते थे।

इन राक्षसों से देवों की प्रारंभ में बिल्कुल नहीं बनी। यद्यपि देवों की राक्षसों ने सहायता की।

कर्णपर्व के ३३ वें अध्याय में शिव का त्रिपुरासुर उपाख्यान वर्णित है। इस प्रकार है: पूर्व समय में देवताओं और दैत्यों ने परस्पर विजय पाने की इच्छा से घोरयुद्ध किया था। वह तारकामय संग्राम कहलाया। दैत्य हार कर पाताल में घुस गये। तारकासुर के तीन पुत्र थे ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली। वे सोने, चांदी और लोहे के ३ पुर बनाकर अगम हो गये और सबको डराने लगे। दानवों ने देवताओं, ऋषियों और पितरों के स्थान तथा अधिकार छीन लिये। तब देव शिव की सहायता लेने गये।

३४ वां अध्याय। शिव ने स्वीकार कर लिया। और फिर शिव ने त्रिपुर को भस्म कर दिया।

शिव का देवगण पर प्रभाव पड़ा। दक्ष कन्या सती शिव की ओर आकृष्ट हुई। निस्संदेह सती का शिव के साथ वास अन्य देवों को प्रिय नहीं था। उस मध्य बर्बर युग की ओर उन्मुख समाज में यह जातिगत द्वेष प्रगट होता है। महादेव के अनुयायी सदैव ही घृणित वर्णित किये गये हैं। इनमें से कुछ तो नरमांस भक्षक बताये गये हैं। ये कबीला जातियां स्पष्ट ही अत्यन्त जंगली अवस्था में रहती थीं।

भारत में मनुष्य मांसभक्षी जातियां परवर्ती काल में आर्य परिवार के बाहर की मानी गई थीं। सिकन्दर के विषय में कहा जाता है कि उसे भी नरमांस भक्षी मिले थे। यक्ष गंधर्वों और राक्षसों तथा पिशाचों को भी परवर्त्ती काल में नरभक्षक माना गया है। दूसरी ओर असुर ऐसे नहीं माने गये। वातापि इल्वल कथा में भी वहां चालाकी से मांस पका कर ही अगस्त्य को खिलाया जाता है। यह उनकी सभ्यता को प्रगट करता है। असुर खाते नहीं थे, परन्तु मार डालते थे।

देवों ने शिव का अपमान किया था। उन्हें समानता का दर्जा नहीं दिया।

शिव के विषय में यह कथा है:

सौप्तिक पर्व १७ अ. सृष्टि के पहले सबके पितामह ब्रह्मा ने सृष्टि करने की इच्छा से भूतपति शंकर से कहा तुम शीघ्र ही प्राणियों की सृष्टि करो। महादेव ने यह सुनकर 'तथास्तु' कह दिया। अब महादेव, यह सोचकर कि सबसे पहले प्रजा की सृष्टि करना उचित

नहीं, जल में प्रवेश करके बहुत दिन तक तपस्या करते रहे। ब्रह्मा ने बहुत दिन तक उनकी राह देखकर अंत को, सृष्टि के लिये, मन से और एक देव को उत्पन्न किया। उसने महादेव को पानी के भीतर समाधि लगाये देखकर ब्रह्मा से कहा—हे भगवन्, अगर मेरा कोई और बड़ा भाई न हो तो मैं सृष्टि कर सकता हूं। ब्रह्मा ने कहा : पुत्र, इस समय तुम्हारा अग्रज कोई नहीं है; महादेव जल में डूबे हुए हैं। तुम बेखटके काम करो। तब उस देव ने, ब्रह्मा की आज्ञा से, सब प्राणियों को और दक्ष आदि सात प्रजापतियों को उत्पन्न किया। उन प्रजापतियों ने स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिद्, आदि की सृष्टि की। **अब सब प्रजा बहुत भूखी होकर सृष्टि करने वाले को ही खाने के लिये दौड़ी।** (प्रारंभ में उत्पादन न होने से भूख) तब डर कर देव ब्रह्मा के पास गया और बोला मुझे आहार दें, ताकि मेरी रक्षा हो। ब्रह्मा ने प्रजा के आहार के लिये अन्न-औषधि आदि पदार्थ बता दिये। उन्हीं विधाता के नियम के अनुसार दुर्बल प्राणी को प्रबल प्राणी खा जाते हैं। तब सब प्रजागण आहार पाकर, संतुष्ट होकर, अपनी इच्छा के अनुसार जाकर बसने लगे। सभी लोग अपनी अपनी जाति पर अनुराग करके प्राणियों की संख्या बढ़ाने लगे।

प्राणियों की वृद्धि देख ब्रह्मा प्रसन्न हुआ। उसी समय शिव ने जल के भीतर से निकल कर, तेज से बढ़ी हुई, उस असंख्य प्रजा को देखकर क्रुद्ध हो अपने लिंग **को पृथ्वी में प्रविष्ट कर दिया** (लिंग पूजा का केन्द्र)। तब महादेव नई प्रजा को देख कर कुपित हुए और तप करने चले गये।

१८ अध्याय। इसके बाद देवयुग बीत जाने पर देवताओं ने वेद-विहित विधि के अनुसार यज्ञ करने की इच्छा से घी आदि सब सामग्री इकट्ठी की। **उस यज्ञ में देवताओं के भागों की कल्पना करते समय,** रुद्र के भाग की कल्पना नहीं की, केवल अपने ही भागों की कल्पना कर ली।

कृत्तिवासा, स्थाणु आदि नामों से पुकारे जाने वाले शंकर ने जब अपना भाग न देखा, तब पहले यज्ञ को भी मिटाने वाले धनुष को बनाना चाहा। लोक यज्ञ, क्रिया यज्ञ, गृह-यज्ञ, पंचभूतयज्ञ, **नरयज्ञ**, इन्हीं पांच यज्ञों से सारे जगत् की सृष्टि हुई है। महादेव ने लोक यज्ञ और नर-यज्ञ के द्वारा पांच हाथ का विकट धनुष बनाया। ब्रह्मचारी का वेष धारण किये क्रोधित महादेव ने यज्ञ के बाण मारा। बाण लगते ही, मृग का रूप धारण करके, यज्ञ अग्नि के साथ वहां से निकल कर देवलोक को भागा। रुद्र पीछे दौड़े।

देवता अचेत हो गये। उस समय शिव ने धनुष की नोंक से सूर्य की बाहुओं को, भग देवता की दोनों आंखों को और पूषा के दांतों को नष्ट कर दिया। तब देवता और यज्ञ के सब अंग भागने लगे। महादेव हंसे। फिर उन्होंने धनुष के द्वारा सब देवताओं की गति को रोका। उस समय सब देवताओं के वाक्य से सहसा उस धनुष की डोरी टूट गई। धनुष बेकाम हो गया, तब देवता शिव की शरण में आये। देवता फिर स्वस्थ हो गये। देवताओं ने उसी समय यज्ञ की सामग्री में **रुद्र के भाग की कल्पना कर दी।**

इससे स्पष्ट हो जाता है कि महादेव को देवों ने बाद में स्वीकार किया। वे यज्ञ नष्ट करने वाले थे। लिंग का महत्त्व उनके साथ तब भी था। अन्य स्रोत भी यही कहते हैं।

सूर्य्य और पूषा संभवतः उस समय के कुछ कबीलों के नेता थे। भग तो प्रसिद्ध ही है। उसका प्रारम्भिक वेद में वरुण, अदिति और अर्यमा के साथ नाम आता है। आगे चलकर अर्यमा का नाम भुला दिया गया।

महादेव के उपासकों ने इस कथा को संभवतः बाद में बढ़ा चढ़ा कर जोड़ा है। तभी इसमें शिव के प्रति आर्य्यों (देवों) की प्रारम्भिक घृणा का उल्लेख नहीं है। परन्तु वह भी छिपी बात नहीं है। सती कथा में स्पष्ट है। वहां भी मृग बनकर यज्ञ भाग गया था। शिव का यह रूप कलियुग में देखेंगे। तब उसका महत्व बहुत बढ़ गया था। दक्ष की कथा स्पष्ट है कि एक बार मिलकर देवों ने यज्ञ किया। देवों ने महादेव को नहीं बुलाया। महादेव के गणों ने देव यज्ञ नष्ट कर दिया। यज्ञ हिरन होकर भागा। यज्ञ भस्म कर दिया गया (शांतिपर्व २८३ वाँ अ०)।

दक्ष ने शिव की स्तुति की। यह प्रगट करता है कि बहुत प्राचीन काल में ही देवों को महादेव के उपासकों से पाला पड़ चुका था।

वृत्रासुर के वध में शिव ने भी इन्द्र की सहायता की थी। शिव के गण, भूत, पिशाच, राक्षस आदि थे (शांति पर्व २८२ वां अ०)। शिव की दक्ष स्तुति में देवों का शिव से युद्ध होना स्पष्ट है। शिव ने सूर्य के दांत और भग देवता की आंखें नष्ट कर दी थीं (शांति पर्व २८५ वां अध्याय)। इसी अध्याय में शिव वेष वर्णित है। उसे आगे देखना ठीक होगा। शिव को यही काम कहा गया है।

अब देवासुर संग्राम देखना उचित है।

प्रजापति त्वष्टा ने इन्द्र के द्रोह से क्रुद्ध हो त्रिशिरा को जन्म दिया। इन्द्र ने धोखे से त्रिशिरा को मार डाला (योगपर्व, ९ वां अ०)। तब त्वष्टा ने वृत्रासुर को भेजा। (९) इन्द्र तथा देवों ने वृत्र से संधि कर ली (१०)। परन्तु इन्द्र ने वृत्र का धोखे से वध किया (१०)। इन्द्र पद उथल पुथल में खतरे में पड़ गया। इन्द्र भाग गया। ऋषियों की सहायता से नहुष (नाग?) इन्द्र बन बैठा (११)। उसने इन्द्राणी का भोग चाहा। इन्द्राणी अंगिरावंश की रक्षा में चली गई (११)। अंगिरा में खुल्लमखुल्ला विद्रोह करने की हिम्मत नहीं थी। इसलिये चाल खेली गई (१२)।

इन्द्र ने यज्ञ किया और देवों को एकत्र करके शक्ति ग्रहण की (१३)। ऋषियों ने नहुष के विरुद्ध चालें सोचीं (१४)। इन्द्र प्रकट हुआ (१६)। कुबेर यक्ष रुद्रोपासक इन्द्र के सहायक हुए (१६)। ऋषियों ने नहुष को नागों में भगा दिया (१७)। इन्द्र राजा हुआ (१७)।

नहुषपरवर्त्ती काल की किसी घटना का प्रतीक भी हो सकता है। अब यहां एक दूसरी परम्परा पर दृष्टिपात करना उचित है।

दैत्य दानव, असुर, शक्ति बढ़ गई; इन्द्र सहायक की खोज में मानस पर्वत पर गया। यहां उसने केशी को भगाया, जो असुर था (२२३)। यहां देवसेना मिली, जो इन्द्र की मौसी की लड़की थी। इस इन्द्र की माता भी दक्ष कन्या की बेटी थी। (२२४)

दक्ष कन्या स्वाहा ने प्राचीन अग्निवंशी एक व्यक्ति से गर्भ धारण किया; फिर देवों के डर से उसे वन में छोड़ दिया। देव प्राचीन अग्निवंश के विरोधी हो गये थे। वहां से स्वाहा सुपर्णी जाति की स्त्री के वेष में छिप कर भाग आई। स्कंद का जन्म हुआ। (२२५) मातृकाओं को इन्द्र ने स्कंदवध करने भेजा, परन्तु वे न मार सकीं। (२२६) ऊपर मातृकाओं को कौबेर्य्यः कहा गया था। कुबेर इन्द्र का साथी है।

स्कंद जिस वन में पला, वहां नाग, राक्षस, पिशाच, भूत इत्यादि जातियां थीं। उन्होंने उसकी रक्षा की (२२५)। इनका देवता महादेव था। इनकी स्कंद—कार्तिकेय के नेतृत्व में शक्ति बढ़ी।

देवों और स्कंद का युद्ध हुआ। देव हार गये (२२७)। स्कंद के पारिषदगण घोर कहे गये हैं। ये सब शिवोपासक थे। (२२८) कार्त्तिकेय को इन्द्र बनाया गया। अग्नि रुद्र कहलाता था, महादेव और रुद्र की संतान माना गया, यह कार्त्तिकेय देवों का अधिपति हुआ। अप्सरा पिशाच, देव, सब उसके साथ थे (२२९)। बच्चों को खा जाने वाली देवियों की पूजा करने वाले भी स्कंद के साथ थे। वृक्षों की माता करंजनिलया, सरमा कुक्करी इत्यादि भी साथ थीं (२३०)।

अब देवासुर संग्राम प्रारम्भ हुआ। त्रिपुरदाहक शिव भद्रवट पर था। स्कंद श्वेत* पर्वत पर। स्कंद के साथी यक्ष गुह्यक, राक्षस, जृम्भकगण, वसुगण, रुद्रगण, भृगु, अंगिरावंश देवगण, इत्यादि थे।

देव दानव युद्ध होने लगा। महिषासुर मारा गया। देवनिवास उत्तर कुरु प्रदेश अगम्य हो गया।

स्कंद के पार्षद नरमांस भक्षक भी थे। शिव युद्ध के बाद रुद्रवट चले गये।

महाभारत, शल्य पर्व, ४५ अ. में सेनापति कुमार के निम्नलिखित पार्षद गिनाये गये हैं :

शंकुकर्ण, निकुम्भ, पद्म, कुमुद, अनंत, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण, घ्राणश्रवा, कपिस्कन्ध, कांचनाक्ष, जलन्धम, अक्ष, सन्तर्जन, कुनदीक, तमोन्तकृत्, एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजट प्रभु, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, पुण्यनामा, सुनामा, सुवक्त्र, प्रियदर्शन, परिश्रुत, कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन, अजोदर, गजशिरा, स्कंधाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व,

*श्वेत पर्वत स्मरण रखने योग्य है। परवर्त्ती पांचरात्र मत श्वेत द्वीप से आया था। इंगित श्वेत पर्वत सुपर्णस्थान होना यहां प्रगट है। गरुड़ वाहन विष्णु है। विष्णुनारायण पांचरात्र का उपास्य है। क्या यह सुपर्णों के देवता का परवर्त्ती नारायण में मिल जाना इंगित करता है।

करालाक्ष, शितिकेश, जटी, **हरि** (?) कृष्णकेश, **जटाधर**, चतुर्दंष्ट्र,अष्टजिव्ह, मेघनाद, पृथुश्रवा, विद्युताक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन, उदाराक्ष, रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग, शैलकम्पी, वृष, मेष, प्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्र, श्वेत, कलिंग, सिद्धार्थ, वरद, प्रियक, नन्द, गोनन्द, आनन्द, प्रमोद, **स्वस्तिक**, ध्रुवक, क्षेमवाह, सुवाह, सिद्धपात्र, गोव्रज, कनकापीड, गायन, हसन, बाण, खंग, **वैताली**, गतिताली, कथक, वातिक, हंसज, पंकदिग्धांग, समुद्रोन्मादन, रणोत्कट,प्रहास, श्वेतसिद्ध, नन्दन, कालकण्ठ, प्रभास, कुंभांडकोदर, कालकाक्ष, सित, भूतमथन, **यज्ञवाह**, देवयाजी, सोमप, यज्जान, महातेजा, क्रथ, क्राथ, तुहर, तुहार, चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, किरीटी, महाबल, वत्सल, मधुवर्ण, कलशोदर, धर्मद, मन्मथकर, सूचीवक्त्र, कुम्भक, स्वर्णग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, चंद्रभ, पाणिकूर्चा, **शम्बुक**, पंचवक्त्र, शिक्षक, चाषवक्त्र, जम्बूक, शाकवक्त्र, बालवृद्ध, युवापार्षद।

कच्छप, कुक्कुट, खरगोश, उलूक, गर्दभ, ऊंट, बभ्रुक, मूस, मोर, मछली, भेड़, बकरी भैंस, भेड़िये, भालू, शार्दूल, हाथी, सिंह, नक्र, **गरुड़**, कंक, गिद्ध, बैल, खच्चर, डांस, कबूतर, कोयल, बाज, तीतर, गिरगिट, सांप, और शूल, जैसे मुंह वाले गण भी आये।

ये लोग संभवत: विभिन्न मास्क जातियां या टाटेम जातियां थीं। पशु के नाम पर जाति का नाम पड़ता था। परवर्त्ती काल में उन्हें गरुड़ के पक्षित्व की भांति ही ऐसी संज्ञा दी गई।

कुछ सफेद वस्त्र कुछ गजचर्म, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म, पहने थे। बहुत से दिगम्बर थे। अर्थात् अनार्य्य जंगली थे। इनमें मुकुट, उष्णीश पहनने वाले सभ्य थे। वे अनेक प्रकार **वामा**, **चत्वरवासिनी**, सुमंगला, स्वस्तिमती, बुद्धिकामा, जयप्रिया, धनदा, सुप्रसादा, भवदा, **जलेश्वरी**,[1] एडी,[2] भेडी समेडी, **वेतालजननी**,[3] कण्डूति, **कालिका**, देवमित्रा, वसुश्री, कोटरा, चित्रसेना, अचल, कुक्कुटिका,[4] शंखलिका, शकुनिका, कुण्डारिका, कौकुलिका, कुम्भका, शतोदरी, उत्क्राथिनी, जलेला, महावेगा, कंकणा, मनोजवा, कण्टकिनी, प्रघसा, **पूतना**, केशयन्त्री, त्रुटि, वामा, क्रोशना, तडित्प्रभा, **मन्दोदरी**, मुण्डी, कोटरा (?), मेघवाहिनी, सुभगा, लम्बिनी, लम्बा, ताम्रचूडा, विकाशिनी, ऊर्ध्ववेणीधरा, पिंगाक्षी, लोहमेखला, पृथुवस्त्रा, मधुलिका, मधुकुम्भा, पक्षालिका, मत्कुलिका, जरायु, जर्जरानना, दहदहा, धमधमा, खण्डखण्डा, पूषणा, मणिकुट्टिका, अमोघा, लम्बपयोधरा, वेणुवीणाधरा, शशोलूकमुखी, खरजंघा, कृष्णा, महाजवी, शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, की खालें ओढ़े हुए परस्पर भिन्न-भिन्न देशों की भाषाओं में बातें कर रहे थे। अर्थात् वे मनुष्य थे।

---

१ वरुण सम्बन्धी ?

२ एडी, हैरुसैम, ग्वाल्ल, छुरमल्ल, कलविष्ट अब भी पार्वत्य जातियों के उत्तर में ग्राम देवता है (कुमायूं का इतिहास बदरीदत्त पांडे अल्मोड़ा १९३७)

३ वेताल भारत में उपदेवता प्रसिद्ध है।

४ यक्ष, कुक्कट संबंधद्योतिका ?

इनके अतिरिक्त अनार्य्य जातियों की उपास्य अनेक मातृदेवियों का भी मातृकाओं के नाम से उल्लेख है :४६ अ.

प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता, गोस्तनी, श्रीमती, बहुला, **बहुपुत्रिका**, अप्सुजाता, **गोपाली**, बृहत अम्बालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, भयंकरी, वसुदामा, दामा, विशोका, नन्दिनी, एकचूड़ा, महाचूड़ा, चक्रनेमि , उत्तेजनी, जयत्सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुन्जया, क्रोधना, शलभी, **खरी**, माधवी, शुभवक्त्रा, तीर्थसेनी, गीतप्रिया, कल्याणी, रुद्ररोमा, अमिताशना, मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलताक्षी, **वीर्यवती**, विद्युज्जिह्वा, पद्मावती, सुनक्षत्रा, कन्दरा, बहुयोजना, **सन्तानिका**, **कमला**, महाबाला, सुदामा, बहुदामा, सुप्रभा, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, शतोलूखलमेखला,[1] शतघण्टा, शतानन्दा **भगनन्दा**, भाविनी, वपुष्मती, चन्द्रशीता, **भद्रकाली**, **ऋक्षा**, **अम्बिका**, निष्कुटिका, विभीषणा, जटालिका, **कामचरी**, दीर्घजिव्हा, बलोत्कटा, कालेहिका, वामनिका, मुकुटा, महाकाया, हरिपिण्डा, एकत्वचा, सुकुसुमा, कृष्णकर्णी, क्षुरकर्णी, चतुष्कर्णी, **कर्णप्रावरणा**,[2] **चतुष्पथनिकेता**[3] गोकर्णी, महिषानना, खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वनमहास्वना, शंखकुम्भश्रवा, **भगदा**, महाबला, गणा, सुगणा, भीति, कामदा, **चतुष्पथरता**, भूतितीर्था, अन्यगोचरी, **पशुदा**, **वित्तदा**, सुखदा, महायशा, पयोदा, गोमहिषदा, सुविशाला, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, रोचमाना, सरोचना, नौकर्णी, मुखकर्णी, विशिरा मन्थिनी, एकचन्द्रा, मेघकर्णा, मेघमाला तथा विरोचना इत्यादि ।

ये सब इच्छारूप कर सकतीं थीं । प्रायः सभी **युवती**, बलवती, सुन्दरी, सुअलंकृता तथा कामचारिणी थीं । **कामचारिणी** आदिम स्त्री स्वतन्त्रता का तथा मातृसत्तात्मक समाज को प्रगट करने वाला शब्द है ।

परवर्ती काल में इन्हें आर्य्य देवता मण्डल से मिला दिया गया—उनमें से कोई यम से, कोई रुद्र से, सोम कुबेर, वरुण, महेन्द्र, अग्नि, वायु, कुमार, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य्य और वराह भगवान् से उत्पन्न हुई थी । उनका रूप अप्सराओं का सा मनोहर था । इनमें से कोई भी इन्द्र से सम्बन्धित नहीं है ।

वे **वृक्ष**, **चबूतरे**, **चौराहे**, कन्दरा, **मसान**, पहाड़, झरने आदि में रहती थीं ।

कार्त्तिकेय को वरुण ने नाग दिया ।

नागजाति, दानपुर, नाकुरी-पाताल भुवनेश्वर पर रहती थी । उत्तर में त्रिषिसरोवर है । किंवदंती है कि उसे अत्रि, पुलस्त्य और पुलह ने खोदा ।

[पुलस्त्य और पुलह का राक्षसों से सम्बन्ध है] शेष पर्वत कौशिकी के बांई ओर गंधर्व रहते हैं । कत्यूरी कार्त्तिकेयपुरी है ।[4]

---

१. राक्षसी भी कही गई है । आगे कर्णशल्य संवाद में आयेगी ।

२. कर्णप्रावरण एक कबीला जाति थी । ३. चौराहे पर रहने वाली ।

४. कुमायूं का इतिहास, बदरीदत्त पाण्डे, शक्ति कार्य्यालय, अल्मोड़ा १९३७.

देवासुर संग्राम के बाद सुपर्णों के युद्धों का उल्लेख है।

वरुण के यज्ञ में अग्नि द्वारा भगवान् स्वयंभू ब्रह्मा से भृगु हुए।

ब्रह्मा
|
भृगु (प्रलोमा)
|
च्यवन
|
प्रमति (पत्नी घृताची)
|
रुरु (पत्नी प्रमद्वरा)
|
शुनक

इस भृगु की पत्नी को एक असुर ने छीन लेने का प्रयत्न किया था। उस समय च्यवन का जन्म हुआ।[1] च्यवन परवर्त्ती काल में इन्द्र के सहायक हुए। संभवतः इसका कारण यही रहा हो। रुरु का नागों से झगड़ा हुआ था।[2]

नागों ने वैनतेय (गरुड़ों) को दास बना लिया था।[3]

वैनतेय गरुड़ों ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा ली, जिससे देव भी डर गये (आदि पर्व २३ वां अध्याय)।

असुरों के उपद्रव से सूर्यदेव व्याकुल हो गया। तब वैनतेयों का सगोत्र अरुण देवों की ओर हो गया (आदि पर्व २४)।

गरुड़ दास थे। आज्ञा पाकर वे नागों को समुद्र रचित द्वीप में ले गये जो, नागों का देश था (आ. प. २५.)। इस द्वीप का नाम रमणक द्वीप था (आ.प.२६.)। गरुड़ ने समुद्र के बीच वासी १००० मल्लाहों का नाश किया। ये मल्लाह निषाद थे। गरुड़ जाति ने निषाद जाति का नाश किया (आ. प. २८)। गज और कच्छप टाटेम की जातियों के द्वेष से गरुड़ों ने लाभ उठाया और उनको नष्ट कर दिया (आ. प. २९)? गरुड़, सुमेरु शिखर पर अलम्ब तीर्थ में देववृक्षों तक पहुंच गये (आ. प. २९)। यहां इन्द्र से अपमानित बालखिल्य मिले, जिन्हें गरुड़ ने सहायता दी और उन्होंने उसे इन्द्र के विरुद्धभड़काया। देव भयभीत हुए। देवासुर संग्राम जब हुआ था, तब भी ऐसी अद्भुत भयानक बातें नहीं हुई थीं।[4] देव घबराकर बोले : कैसा उत्पात है! ऐसा तो कोई शत्रु नहीं, जो हमें जीत सके।[5] देव सन्नद्ध हो गये (आ. प. ३०)।

इस घटना से पहले की कथा इस प्रकार है। प्रजापति कश्यप के यज्ञ में देव, गंधर्व, ऋषि तथा बालखिल्य सहायता कर रहे थे : अनेक गण सम्मिलित थे। यहां देवों और बालखिल्यों में झगड़ा हो गया। बालखिल्यों ने दूसरा इन्द्र बनाने की चेष्टा की। देव पक्ष

---

१. महाभारत, आदिपर्व पांचवां अध्याय। २. वही अ० ८वां तथा नवां।
३. वही १६वां अध्याय। ४. अभूतपूर्व संग्रामे तदा देवासुरेऽपि च।
५. न च शत्रुं प्रपश्यामि युधि यो नः प्रधर्षयेत्।

झुक गया। परन्तु बालखिल्यों का प्रयत्न कुछ दिन थम कर भी रुका नहीं (आ. प. ३१.)।

अब देवों और सुपर्णों का युद्ध हुआ। विश्वकर्मा मुखिया थे। गरुड़ों ने उन्हें पराजित कर दिया। फिर गरुड़ प्रहार से साध्य, देवता और गंधर्वगण पूर्व दिशा को भागे। वसुगण तथा रुद्र दक्षिण दिशा, आदित्यगण पश्चिम और अश्विनीकुमार उत्तर दिशा को भागे। अश्वकन्द्र, रेणुक, क्रथन, तपन, उलूक, श्वसन, निमेष, प्ररुज, पुलिन से गरुड़ युद्ध हुआ। गरुड़ ने उन्हें पराजित किया।[1] ये सब संभवतः टाटेम जातियाँ थीं या अन्य गण थे। इसके बाद गरुड़ों ने नागों को पराजित किया और विजयी हुए।

यहां विष्णु और गरुड़ में संधि हुई। गरुड़ विष्णु के रथ पर चढ़ा। विष्णु ने गरुड़ को वाहन बनाया। (सहायक—अपने आधीन)।

इन्द्र ने पीछे से आक्रमण किया। परन्तु गरुड़ नहीं मरा; देवों ने झुक कर गरुड़ों से संधि की (आ. प. ३३)।

संधि में देवों ने नागों का साथ छोड़ दिया। गरुड़ नागों की दासता से मुक्त हो गये। गरुड़ ने जो नागों को 'अमृत' दासता से मुक्त होने को मूल्य चुकाया था, इन्द्र उसे छल से चुरा ले गया। नाग परस्पर लड़ने लगे (आ. प. ३४)। शेष के बाद वासुकि नागराज हुए (३७) नाग यज्ञ विरोधी थे (३७. २०-३० तक)।

नाग और सुपर्ण दो टाटेम थे। इनका परस्पर युद्ध बहुत ही स्वाभाविक है। ये लोग कबीलों के रूप में ही बंटे हुए थे। परन्तु वर्णन में इनके साथ सुन्दर नगरों अथवा पुरों का उल्लेख है। सुपर्णों तथा यक्ष इत्यादि में वरुण उपासना की एकता दिखाई देती है। यही नागों के साथ भी लगता है। संभवतः आग्नेय नाग सांस्कृतिक पक्ष में इस भू-प्रदेश में किरात संस्कृति से प्रभावित हो चुके थे।

यहां हम विस्तार से प्राचीन कथाओं में नहीं जा रहे हैं। केवल रेखा-चित्र देखने मात्र का प्रयास है।

नागों और सुपर्णों की कुछ और कथाएं हैं।

वरुण पाताल में थे। मातलि इन्द्र का सारथी अपनी पुत्री के लिये वर खोजन नारद के साथ नागलोक गया। जल के राजा वरुण मिले।[2] नागलोक में महादेव ने तप किया था (९९) पाताल में गज वंश के लोग भी थे। (९९) मातलि फिर हिरण्यपुर में गया। यह असुर विश्वकर्मा मय ने पाताल में नगर बनाया था। यहां कालखंज असुर और निवातकवच दानव रहते थे। वे इन्द्र को हरा चुके थे (१००)। फिर मातलि गरुड़ लोक में गया। यहां स्पष्ट उल्लेख है कि कश्यप की स्त्री विनता के गर्भ से प्रमुख, सुनामा, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरुक् और सुपर्ण नामक छः पुत्र हुए थे। गरुड़ वंशों के नाम हैं: सुवर्णचूड़, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्ड, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कण्डली, पंकाजित्, वज्रविष्कम्भ, वैनतेय, वामन, वातवेग, दिशाचक्षु, निमिष, अनिमिष, त्रिराव, सप्तराव, वल्मीकि, दीपक, दैत्यद्वीप, सरित्द्वीप,

---

१ आदिपर्व ३२वां अध्याय।

२. उद्योगपर्व ९८ अ०।

सारस, पद्मकेतन, सुमुख, चित्रकेतु, चित्रबर्ह, अनघ, मेषहृत्, कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सोम-भोजन, गुरुभार, कपोल, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्मा* कुमार, परिबर्ह, हरि* सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्गा, मालय, मातरिश्वा, निशाकर, दिवाकर इत्यादि गरुड़ यहां रहते थे। (उ. प. १०१)

फिर वे सातवें पाताल रसातल में गये। यह गोमाता सुरभि का स्थान था। यहां फेन पीकर जीने वाले ऋषि फेनप थे। सुरभि की कन्या सुरूपा पूर्व में, हंसिका दक्षिण, सुभद्रा पश्चिम, तथा कामधेनु एलविला उत्तर दिशा में रहती थीं। पहले रसातल के निवासी एक गाथा कहते थे, जिसमें समुद्रमंथन का वर्णन था। (१०२)

वहां से नारद तथा मातलि भोगवती पुरी गये। यह वासुकि की राजधानी थी। यहां नाग वंशों का वर्णन है। वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, कालिय, नहुष, कम्बल, अश्वतर, वाह्यकुण्ड, मणि, आपूरण, खग, वामन, एलापत्र, कुकुर, कुकुण, आर्यक, नन्दक, कलश, पोत, कैलाश, पिजंरक, एरावत, सुमना, सुमुख, दधिमुख, शंख, मद, उपनंद, आप्त, कोटरक, शिखी, निष्ठुरक, तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद, माल्यपिण्डक, दोपद्म, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गरपर्णक, करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, मूषिकाद, शिरीषक, दिलीप, शंखशीर्षा, ज्योतिष्क, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुहुर, कृशक, विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, वधिर, अन्ध, विशुण्डि, विरस और सुरस आदि अनेक कश्यप के पुत्र नाग थे। मातलि ने सुमुख नाग को चुना। यह तेजस्वी, दर्शनीय नाग कौरव्य था। एरावत नागकुल में उत्पन्न हुआ था; इसका पितामह आर्यक था; नाना वामन। पिता चिकुर को गरुड़ों ने मार डाला था। मातलि ने उसे पसंद किया। (१०३)

नारद ने आर्यक नाग से कहा: मातलि हर एक देवासुर संग्राम में इन्द्र का रथ हांकते हैं। देवासुर संग्राम अनेक हुए थे, इससे प्रगट होता है।

आर्यक ने गरुड़ शक्ति का भय प्रगट किया। नारद मातलि ने इंद्र की नागों को सहायता दिलाने का वचन देकर सुमुख से मातलि कन्या का विवाह किया (१०४)।

गरुड़ ने इन्द्र को नागों का पक्षपाती जान कर स्वर्ग प्रयाण करके कहा: इन्द्र! तुम सबके शासक हो। मेरे काम में बाधा क्यों डालते हो? मैंने दानवों से हुए संग्राम में देवों को सहायता दी है। श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचनामुख, प्रस्तुत और कालकाक्ष नामक दानवों को मारा है। मैं उपेन्द्र (विष्णु) के रथध्वज पर रहता हूं। अदिति पुत्रों में तुम सर्वश्रेष्ठ हो।

विष्णु ने गरुड़ को तब दबाया। गरुड़ अचेत हो गये।

"विष्णु ने सुमुख नाग को पैर के अंगूठे से गरुड़ की छाती पर फेंक दिया। तभी से वह नाग गरुड़ के साथ रहता है। (उ. प. १०५)

नागों और सुपर्णों के सम्मिश्रण में विष्णु के जिस पूर्णज्ञ स्वरूप का उदय हुआ, वह

---

*नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

देवों के सूर्य के समान तीन डगों से पृथ्वी-आकाश को नाप कर बलि राजा को दक्षिण की ओर धकेल चला।

यक्ष, किन्नर, गंधर्व, साध्यगण, राक्षस, असुर, दैत्य, दानव, देव इत्यादि का संक्षिप्त रेखाचित्र ऊपर उपस्थित किया गया है। इनमें से अनेक जातियों का बहुत परवर्त्ती काल में भी उल्लेख हुआ है। यहां यह समझ लेना आवश्यक है कि भारतभूमि में केवल देव जाति समूह के वंशज ही नहीं अन्य भी अनेक जातियां आई थीं।

कालांतर में असुर, दैत्य, दानव देव-शत्रुओं के लिये प्रयुक्त होने वाले शब्द बन गये, जैसे मुसलमानों को भी हिंदू यवन कहते थे, यद्यपि यूनान से मुसलमानों का कोई संबंध नहीं था। भारतीय इतिहासकार अवतारवाद को मानता था। महाभारत के आदि पर्व में अंशावतार गिनाये गये हैं। उस समय असुरों के भी नाम हैं कि जो प्राचीनकाल में 'अमुक' असुर था, वह परवर्त्ती काल में 'अमुक' हुआ। इस प्रकार वे प्राचीन लोग शक्ति के साथ लगे गुण-अवगुणों को स्मृति में ताजा करते रहते थे।

वृत्रासुर अहियों का अग्रज कहा गया है। अहि नागों की किसी उपशाखा का नाम प्रतीत होता है।

सामूहिक उत्पादन वितरण का स्थान व्यक्तिगत संपत्ति ने देवों में भी ले लिया। यह घटना सशस्त्र युद्ध के बाद हुई। ऊपर विष्णु कथा का उल्लेख किया गया है। विष्णु ने यज्ञ फल अपने लिये लेना चाहा था। विष्णु ब्राह्मण बल का प्रतीक है। प्राचीन सामूहिक सत्र में ब्रह्म के सबसे निकट वही थे, जो ब्रह्म संबंधी क्रिया करते थे। यही ब्राह्मण थे। देवों में सर्वप्रथम सर्वोच्च पद पर ब्राह्मण आये और उन्होंने संपत्ति को हथिया लिया। इन ब्राह्मणों को ऋषि कहा गया है। वस्तुतः ये ऋषि ही थे, जो देवों में इस समय सर्वमान्य हो गये।

इस समय चमड़े के प्याले इत्यादि थे, इन विषयों पर प्रायः लिखा जा चुका है; अतः हम इन्हें छोड़कर अब यह देखना आवश्यक समझते हैं कि देवयुग को आदि बर्बर युग से मध्य बर्बर युग तक आने में कितना समय लगा होगा? इसका एक स्पष्ट आधार है। पहले जो पिता पुत्री में विवाह जायज था, जैसे ब्रह्मा सरस्वती में, वह रुक गया और उसके बाद भाई, बहिन का जैसे यम-यमी का विवाह भी समाज में बंद हो गया। विकास के दृष्टिकोण से यह एक लंबा समय है।

द्राविड़ परिवार की साधना में रहस्य और भय की उपासना है, जिसका सामंजस्य प्राचीन यहूदी साहित्य में भी मिलता है। इस युग के ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम नहीं दिये जा सकते। यत्र-तत्र किवदंतियों में एक आध नाम मिल जाता है। आज की पहाड़ी जातियों के पूर्वज इसी समय के आदिम निवासी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ताम्रयुगीन सभ्यता में कुलीन वंशस्थ पुरुषों के हाथों में कहीं-कहीं गण व्यवस्था थी, जिसमें दास प्रथा थी। ये लोग ही विदेशी आर्यों (अर्थात् देवों) को मिले थे। द्राविड़ जातिसमूह में सभी

जातियों की सामाजिक व्यवस्था एक सी न होने के कारण सभी का मानसिक और सांस्कृतिक स्तर एक नहीं था। प्रतीत होता है कि आग्नेय परिवार की खेतिहर जनता में पंचायत प्रणाली थी। आज भी निम्न जातियों में पंचायत है। यहां सगोत्र जातियां थीं, जिनमें विभिन्न धंधे बंटे हुए थे; जैसे कोई मछेरे थे, तो कोई शिकारी थे। परवर्ती काल में प्राचीन भारत की जातियों को देखते समय अधिक स्पष्ट होगा। आग्नेय तथा द्राविड़ और किरात परिवार में यद्यपि कहीं-कहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था आ गई थी, बहुत करके मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था थी। द्राविड़ तथा किरात परिवार में स्त्री-पूजा, भूमि-पूजा, मातृ-पूजा का अधिक महत्व था। टाटेम जातियां बहुत थीं।

उत्तर से आने वाले विदेशियों के साथ चलने पर अनेक अन्य जातियों के दर्शन होते हैं और उस यक्ष समाज पर प्रकाश पड़ता है, जहां धनी और दरिद्र का वर्गभेद मुखर होता है। यह किरात परिवार कल्पना नहीं है। राम-युग तथा पांडव-युग तक तो इसका गहरा संबंध मिलता है। बुद्धकाल में भी इनका उल्लेख है। एक बात ध्यान देने योग्य है कि देवयुग में जैसे समस्त किरात परिवार देवों के बहुत निकट दिखाई देता है, परवर्त्ती आर्य इस परिवार को अलग योनि मानते रहे हैं। एक कारण तो इनकी सामाजिक व्यवस्था बदलने के कारण संस्कृति और धर्म में अति भेद है। दूसरा कारण यह है कि परवर्ती युग में जैसे समस्त देवयुग पितर युग मान लिया गया, वैसे ही देवों के साथ होने के कारण इन्हें भी पितर युगी मान लिया गया। यह सामूहिक उत्पादन वितरण का आदिम साम्यवादी युग आर्यों की कल्पना में मधुर बन कर समा गया। आगे के युगों में समाज की बढ़ती हुई विषमता में यह बहुत ही मनोहर लगने लगा।

परवर्त्ती युग में इन्हें देवयोनि मान लेने के कारण इनके प्रति श्रद्धा और भय की भावना भी बनी रही। इनसे यदि एक ओर भय के कारण घृणा थी, तो दूसरी ओर यक्षों को अत्यंत धार्मिक भी माना गया और इनसे भय किया गया।

यक्ष और देवों के इतिहास में जातियों के प्रति श्रद्धा और घृणा का आभास मिलता है। तत्कालीन जातियों के कबीलों में फूट थी और वे अपने-अपने छोटे-छोटे भेदों के प्रति काफी जागरूक भी थे। असुर देवों के प्रति वैसे ही सहिष्णु नहीं थे, जैसे यक्ष मिलते हैं। असुर योद्धा थे और देवों को अपने से नीचा समझते थे। देवों के व्यवहार श्रेष्ठ नहीं दिखाई देते। उस समय भारत की वर्त्तमान निर्धारित सीमा नहीं थी, अतएव देवों के सामने यह प्रश्न नहीं था कि वे किसी विदेश में जा रहे हैं। देवों के भिन्न-भिन्न कबीले भिन्न-भिन्न समय में भारत में आये थे। हिमालय प्रांतस्थ जातियां तथा ईरान और अफगानिस्तान से उतरती जातियों को इसीलिये हमने भारतीय इतिहास में ही देखा है।

ऊपर देखा जा चुका है कि देवासुर संग्राम में जब देव जीते, तब वे सप्तसिंधु के उत्तर पश्चिम में आ चुके थे। कुछ विद्वानों का अनुसंधान है कि ईरान में ही पहले सात नदियां थीं, जिन्हें सप्तसिंधु कहा गया है।

भीष्मपर्व में सञ्जय और धृतराष्ट्र का संवाद है। (६ठा अध्याय)। सञ्जय ने जब जम्बूद्वीप का वर्णन कर दिया, तब धृतराष्ट्र ने विस्तार से कहने की आज्ञा दी।

यह परंपरा बहुत परवर्त्ती है। फिर भी हम उत्तर प्रांतों का वर्णन इसमें से चुन कर देखना आवश्यक समझते हैं।

हिमालय, हेमकूट, निषध, वैदूर्य्य, नीलपर्वत, श्वेतपर्वत, श्रृंगवान—ये छः सीमापर्वत पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं। इन पर सिद्धगण तथा चारण रहते हैं। इनके बीच-बीच में जगह है, जहां अनेक जातियां रहती हैं। यह भरतखण्ड है। इसके बाद हैमवत खण्ड है। हेमकूट पर्वत के बाद हरिवर्ष नाम का खण्ड है। नील पर्वत के दक्षिण ओर और निषध पर्वत के उत्तर ओर माल्यवान नाम का पहाड़ है। यह पहाड़ पूर्व सागर तक फैला है। गंधमादन समुद्र पश्चिम समुद्र तक फैला है। माल्यवान के बाद ही गंधमादन पर्वत है। नील और निषध के बीच में सुवर्णमय मण्डलाकार सुमेरु पर्वत है। सुमेरु के चारों ओर भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप (अर्थात् भरतखण्ड) और उत्तर कुरु ये चार द्वीप हैं। उत्तर कुरु में पुण्यात्मा लोग रहते हैं।

पक्षिराज सुमुख सुमेरु को छोड़ कर उत्तर कुरु को चले गये थे। वे गरुड़ थे।

देव, गंधर्व, असुर, अप्सरा, राक्षस आदि देवयोनियाँ सुमेरु पर रहती हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, हाहाहूहू आदि गंधर्व वहां रहते हैं। प्रजापति कश्यप तथा सप्तऋषि गण, वहाँ हर पर्वत पर जाते हैं। शुक्राचार्य्य तथा दैत्य वहीं रहते हैं। वे सब रत्न, और रत्नों की खान, पहाड़ उन्हीं के अधिकार में हैं। यक्षराज कुबेर उन्हीं शुक्र से धन का चौथाई हिस्सा पाते हैं और उसका सोलहवां हिस्सा मनुष्यों को देते हैं। यह बात स्वर्ण के व्यापार पर प्रकाश डालती है।

सुमेरु के उत्तर भाग में कर्णिकार वन है, जहां शिव पार्वती हैं। उनके साथ भूतगण रहते हैं।

शिव के साथ पार्वती का उल्लेख विद्वान् प्रारंभ में नहीं मानते। गौरी वरुण पत्नी भी कही गई है। वह काम की भी स्त्री थी। उमा हैमवती का केन उपनिषद् में उल्लेख है। उमा शिव की बहिन भी कही गई है। पार्वती गंधर्वों की किसी निकटस्थ जाति की कन्या थी, जो कालांतर में शिव से मिल गई। अतः यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि शिव के साथ स्त्री कब जुड़ी। परंतु यह परंपरा से प्रगट होता है कि शिवकामयुद्ध के बाद के युग में उमा शिव से जुड़ी; कब और कैसे, यह नहीं कहा जा सकता। परंतु यह घटना काफी प्राचीन रही होगी, ऐसा मेरा अनुमान है।

'केतुमाल सुमेरु के पश्चिम में है।' वहां स्त्रियां अप्सराओं जैसी सुंदरी हैं। निकट ही गंधमादन पर कुबेर राक्षसों और अप्सराओं के साथ विहार करते हैं। गंधमादन के उत्तर भाग में असंख्य छोटे-छोटे पहाड़ हैं। वहां के पुरुष सांवले तथा स्त्रियां नील कमल के रंग की हैं। नील पर्वत के उत्तर में श्वेत खंड है। उसके उत्तर में हिरण्यक खंड है। उसके उत्तर

में अनेक जनपदों से शोभित ऐरावत खंड है। इन खण्डों के दक्षिण भाग में भरत खंड है। इन खण्डों का आकार धनुष का-सा है। श्वेत खण्ड, हिरण्यक खंड, इलावृत खण्ड, हरिखण्ड और हैमवत खण्ड, ये पांच खण्ड बीच में हैं। दक्षिण ओर भरतखण्ड और उत्तर ओर ऐरावत खण्ड है। इलावृत खण्ड सबके बीच में है। इन खण्डों के निवासी परस्पर झगड़ा नहीं करते।

हेमकूट अथवा कैलाश पर यक्षराज कुबेर यक्षों के साथ रहता है। कैलास के उत्तर ओर मैनाक पर्वत के समीप एक हिरण्यशृंग नामक मणिमय पर्वत है। उसके पास सुवर्ण की बालू से परिपूर्ण परमरमणीय बिन्दुसर नाम का दिव्य सरोवर है। वहां भगीरथ ने तप किया था। वहां यूथ तथा चैत्य भवन हैं। इन्द्र ने वहां यज्ञ किया था (देव पहुंच गये थे ?)।

हिमालय पर राक्षस, हेमकूट पर यक्ष, निषध पर नाग, तपोवन गोकर्ण पर्वत पर तपस्वी तथा नील पर्वत पर ब्रह्मर्षि रहते हैं। श्रृंगवान् देवताओं का स्थान है।

शशस्थान के दक्षिण और उत्तर ओर दो खण्ड हैं। उसके आसपास नाग द्वीप और काश्यपद्वीप कानों की तरह स्थित हैं। ताम्रपर्णी नदी और मलयपर्वत उसके सिर के समान जान पड़ते हैं। यह शश (खरगोश) के आकार का द्वीप जम्बूद्वीप के दूसरे द्वीप के समान है।

(सातवां अध्याय) संजय ने कहा : सुमेरु के उत्तर ओर और नीलगिरि के दक्षिण ओर सिद्ध सेवित उत्तर कुरु है। संजय ने यहां का स्वर्ग का सा वर्णन किया है। यहां स्त्री पुरुषजोड़ों में रहते हैं। और किसी की मृत्यु होने पर तीक्ष्ण तुण्ड वाले भयंकर भारुण्ड पक्षी लाश ले जाकर पर्वत की कन्दराओं में डाल देते हैं।

इसके बाद भद्राश्व और सुदर्शन तथा माल्यवान पर्वत का कवित्वमय वर्णन है।

आठवें अध्याय में खंड पर्वत और पर्वत निवासी लोगों के नाम इस प्रकार बताये गये हैं : श्वेत पर्वत के दक्षिण और नीलपर्वत के उत्तर में रमणक खण्ड है। इसका दूसरा नाम श्वेत खंड है। नील के दक्षिण और निषध के उत्तर में हिरण्यमयखंड है। वहां हैरण्वती नदी है। वहां गरुड़ रहते हैं। वहां यक्षों की उपासना होती है।

शृंगवान पर्वत के तीन विचित्र शिखर हैं। मणिमय, सुवर्णमय, रत्नमय। रत्नमय पर स्वयंप्रभा शाण्डिली देवी का निवास है। शृङ्गवान के उत्तर ओर समुद्र के किनारे ऐरावत खण्ड है।

भरतखण्ड का वर्णन यहां न देकर महाभारत के परवर्त्ती प्रकरण में देना उचित रहेगा। अब कुछ अन्य द्वीपों का वर्णन देखना ठीक है।

ग्यारहवें अध्याय में शाकद्वीप, कुशद्वीप, शाल्मलिद्वीप, क्रौंचद्वीप आदि का उल्लेख है। शाकद्वीप में महादेव की पूजा होती है। वहां लोकसम्मत चार जनपद हैं, जिनके नाम मंग, मशक, मानस और मन्दग हैं। मंग में ब्राह्मण, मशक में क्षत्रिय, मानस में वैश्य और

मन्दग में शूद्र रहते हैं। सब बड़े धार्मिक हैं। इन प्रदेशों में न तो राजा है, न राजदण्ड है; न दण्ड के योग्य काम करने वाले लोग हैं। वहां के रहने वाले धर्मज्ञ लोग अपने अपने धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे की रक्षा करते हैं।

यह वर्णन स्पष्ट ही ऐसी व्यवस्था का है, जिसमें समाज में वर्ग नहीं थे। राजदण्ड नहीं था, न दण्ड योग्य कराने वाली वस्तु—संपत्ति ही व्यक्तिगत थी। इस वर्णन में वर्ण व्यवस्था क्यों मिलती है? इसलिये कि परवर्त्ती ब्राह्मण की कल्पना में वर्णव्यवस्था स्वर्ग थी। वह उस प्राचीन युग को चाहता तो था, जहां समाज में संपत्तिकृत विषमता नहीं थी, परन्तु अपने सर्वाधिकार छोड़ देने के लिये तत्पर नहीं था।

संजय ने कहा : महाराज! उज्ज्वल प्रभासंपन्न शाकद्वीप का इतना ही हाल कहा जा सकता है और इतना ही सुनने का विषय है। (अर्थात् इससे अधिक था तो ज्ञात न था, या सुनने में कोई हानि थी)।

क्रौंचद्वीप (१२वां अध्याय) में पर्वत पूजा होती थी। यहां क्रौंच, हेमगिरि, कुमुद, पुष्पवान् कुशेशय, हरिगिरि ये छः पर्वत थे। यहां सात वर्ष अर्थात् खण्ड हैं: उद्भिद्, वेणुमण्डल, सुरथाकार, कम्बल, धृतिमान्, प्रभाकर तथा कापिल। इन वर्षों में दस्यु या म्लेच्छ लोग नहीं रहते। इन वर्षों के लोग गोरे रंग के और सुकुमार हैं। देव, गंधर्व और मनुष्य यहां रहते हैं।

क्रौंच के बाद वामनपर्वत है। फिर अंधकार, फिर मैनाक, फिर गोविन्द, फिर निविड़ पर्वत है। क्रौंच के पास कुशल देश है। वामन के पास मनोनुग देश है। इसके बाद उष्ण देश है। उष्ण के बाद प्रावरक देश है। फिर अंधकारक देश है। फिर मुनिदेश है। फिर दुंदुभिस्वर देश है। इसके बाद सिद्ध चारण भूमि गौरप्राय देश हैं। इन देशों में देवता और गंधर्व रहते हैं।

पुष्कर द्वीप में प्रजापति रहते हैं।

इन द्वीपों में एक ही जनपद, एक ही कार्यक्रम और एक ही धर्म है। प्रजापति इन की रक्षा करते हैं।

श्वेत द्वीप के बाद समा नाम की, चौकोर और तेतीस मण्डल वाली बस्ती देख पड़ती है। यहां वामन, ऐरावत, सुप्रतीक और प्रभिन्न करटामुख नामक दिग्गज हैं।

इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि परंपरा में उत्तर के प्रांतों में किरात परिवार का होना प्रसिद्ध था। देवी पूजा, वृक्ष, पर्वत, यक्ष, शिव पूजा प्रचलित थी। यह परवर्त्ती काल का रूप है। आदिम काल में इन उपासनाओं के आदिम रूप रहे होंगे। सामाजिक व्यवस्था आदिम साम्यवादी युग की ओर इंगित करती है।

भीष्मपर्व, २७,६-२० तक यज्ञफल खाना ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। एक प्राचीन कथा का उल्लेख है। प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञसहित सब प्रजा को उत्पन्न करके कहा कि तुम इसी यज्ञ के द्वारा फूलो, फलो।

परंतु यह नियम उत्पादन के साधन बदलने के साथ बदल गया। अलग-अलग रसोई पकने लगी। बाद में भी इसे बुरा समझा जाता रहा।

इनके अतिरिक्त अनेक कथाएं हैं, जो समस्त पुराणों की खोज करने पर नया प्रकाश डालेंगी।

दैत्यों, असुरों में कितनी कहानियां तो सुमेरु और बाबुल की पौराणिक गाथाओं की तुलना ही से स्पष्ट हो सकती हैं। ऊपर नृसिंह का उल्लेख किया गया है। निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि नृसिंह मनुष्य राजा नहीं था। जो कथा जितनी स्पष्ट है, उतनी ही लेना सब से अच्छा है। इनमें कल्पना नहीं दौड़ानी चाहिये। यह भी याद रखना चाहिये कि कथाओं में परवर्त्ती युग में कितना मिलान अधिक हो गया। और लेखक ने अपने मत प्रचार के लिये क्या साधन बनाया था।

आदिपर्व के २१२वें अध्याय में कथा है कि असुरराज हिरण्यकशिपु का पुत्र निकुम्भ था। उसके सुन्द, और उपसुन्द नामक दो बेटे थे। उन्होंने सर्वकालीन अकाल—कौमुदी महोत्सव किया। भोजन करो, दान दो, मदिरा पियो, प्रमोद करो यह पुकार मस्ती से गूंज उठी।

यहां यज्ञ का उल्लेख नहीं है। अतः यह दान अमीरों की दरियादिली मालूम होता है। इसके बाद (२१३ अ०) उन्होंने देवताओं को जीता। देवता भाग गये। फिर उन्होंने यक्ष, राक्षस आदि को जीता। फिर पाताल जाकर नाग लोक जीता और इसके उपरान्त समुद्र तट के देशों में रहने वाले म्लेच्छों को भी जीत लिया। म्लेच्छ संभवतः निषाद थे। उन्होंने ब्राह्मणों का नाश किया। अग्निहोत्र उठा कर फेंक दिये। उन्होंने कुरुक्षेत्र में अपनी सेना का अड्डा बनाया। अन्त में (२१४ अ०) देवों ने चाल से तिलोत्तमा भेज कर उन्हें मरवा दिया।

इस कथा में विष्णु का गौरव है। अतः वह बहुत ही कम ऐतिहासिक है। अंत में कुरुक्षेत्र का वर्णन है। कुरुक्षेत्र के विषय में इन्द्र के साथ अनेक कथाएं हैं। वे सब परवर्त्ती हैं।

देव युग का अंत एक भयानक प्रलय के साथ हुआ। विद्वान् इसी को बाइबिल के नूह के युग में आया प्रलय मानते हैं। इसका समय ३५०० ई० पू० से ३००० ई० पू० के बीच में माना जाता है। यही समय मोअन-जो-दड़ो की सभ्यता का भी समय है। इसी समय को आर्य्यों का भारत में आगमन काल समझा जाता है; यद्यपि इस विषय पर काफी मतभेद है। कुछ लोगों का विचार है कि यह प्रलय कम से कम १०,००० ई० पू० हुआ। तभी हिमालय निकला। यह असंगत है। आर्य्य साहित्य से हिमालय का अखंड संबंध है।

३५००-३००० ई० पू० जिस युग का अंत है, उसका प्रारंभ खोजना काफ़ी कठिन है। इस युग को भाषा के विकास की सहायता से देखा जा सकता है। एक समस्त भाषा थी। वह संस्कृत, लैटिन, तथा फारसी में व्यस्त हुई। इतने विराट भूखंड में जातियों का एक

दूसरे से संबंध हुआ। एक दूसरे के साथ रहे। देव आदि बर्बर से मध्य बर्बर व्यवस्था पर आ पहुंचे। तब उनमें जंगली अवस्था के अंतिम चिन्ह मौजूद थे। यहां वर्णव्यवस्था का उदय हो चला। सामूहिक उत्पादन वितरण से वे व्यक्तिगत संपत्ति की ओर उन्मुख हो चले थे। इसमें भी काफी समय लगा होगा। यहां उन्होंने खेती बाड़ी करना सीखा। अनेक इन्द्र हुए। संस्कृत, लैटिन, फारसी में एक सी दंतकथाएं हैं। ऊपर इन्द्र का देवत्व साम्य अन्य देश की पौराणिक कथाओं में भी है, यह दिखाया जा चुका है। भाषा के अलग अलग रूप में विकास होने का समय लगभग ४०० या ५०० वर्ष रखना आवश्यक है। उससे पहले जंगली व्यवस्था से मध्य बर्बर तक पहुंचने का समय भी कम से कम १००० वर्ष रखना आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य उत्पादन के साधन नहीं होने के कारण उन्नति जल्दी नहीं कर पाता। दूसरे भारत का प्रत्येक युग, यहां की गाड़ी धीरे चलती है, इसका प्रमाण है। इस प्रकार देव युग का प्रारंभ ३५०० ई० पू०—१५०० ई० पू० हुआ, अर्थात् ५००० ई० पू० उस समय ताम्रयुगीन सभ्यता में संभवतः मध्यबर्बर युग था। देवों, गंधर्वों तथा अन्यों में हम आदिम साम्यवाद के चिन्ह देख चुके हैं। अभी हम निश्चय से नहीं कह सकते कि द्रविड़ों में भी यह था ही। सिद्धान्तरूप से एसा होता हुआ देखा जाता है। परंतु जब तक इतिहास में इंगित नहीं मिले, सिद्धान्त थोपना नितांत अनुचित है। अतः एक ही तरीका है। वे देवों से अधिक सभ्य थे, यह देखा जा चुका है। इससे प्रकट होता है, प्राचीन थे। कितने प्राचीन थे ? कुछ विद्वानों का मत है कि ८००० या १०००० ई० पू० तक उनके चिन्ह हैं। उतनी दूर जाने के लिये पूरे प्रमाण नहीं मिले हैं। वे पांच हजार ईसवी पूर्व से पहले थे। प्राचीन कब्रिस्तानों के आधार पर १००० या १५०० ई० पू० वर्ष हमारे इतिहास में और जुड़ सकते हैं। उनके भी पहले आग्नेय युग था। उनका काल निर्धारण बहुत कठिन है; तभी उन्हें मैंने प्रागैतिहासिक काल में रखा है। इस प्रकार आदि प्राचीन काल के दो युग होते हैं।

१. ताम्रयुग—६५००–५००० ई० पू० तक। यद्यपि भारत में यह युग ३५०० ई० पू० तक अखंड रूप से चलता है, परंतु ५००० ई० पू० के लगभग देवों के आगमन से उसकी समाप्ति मानना उचित है।

२. देव-असुर-यक्ष युग, ५०००–३५०० ई० पू० तक।

संक्षेप में तत्कालीन नक्शे का रूप कुछ इस प्रकार का प्रतीत होता है। नक्शा अगले पृष्ठ पर देखिये।

इस प्रकार महाप्रलय तक हमारा पूर्व प्राचीनकाल समाप्त होता है। प्राचीन भारत की अनेक ऐसी कथाएं हैं, जिनके विषय में हमें कुछ स्पष्टीकरण दिखाई देता है। हम यूरोपीय विद्वानों के पीछे दौड़ते हैं। केवल समाज की विशेष अवस्थाओं को देखने से तो काम नहीं चलता। यह भी देखना आवश्यक है कि यदि मनुष्य था तो किन-किन अवस्थाओं में किन कारणों से पहुंचा ?
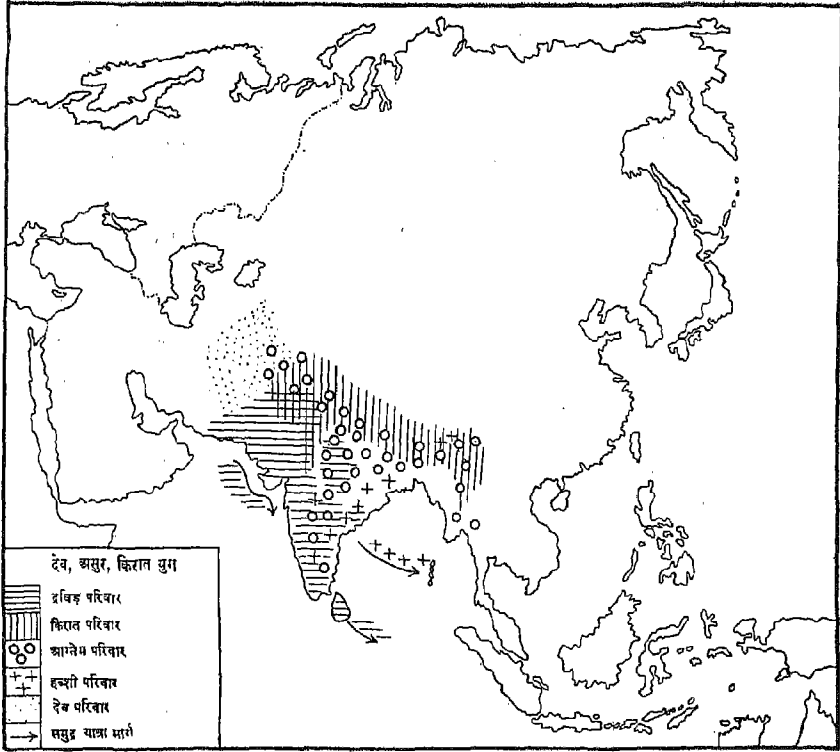
अब सारांश में हम कह सकते हैं कि हम आदिम साम्यवादी आर्य्यों के प्रारंभिक रूप को दास प्रथा वाले समाज में घुस कर अपना रूप परिवर्तित करते हुए देख चुके हैं। आर्य्यों को इसीलिये हमने विशेष रूप से लक्ष्य करके कहा, क्योंकि आर्य्यों के विषय में प्रचलित रूप से अनेक भ्रम उपस्थित हैं।

भारत का यह युग अभी तक ऐतिहासिकों के सामने नहीं है। आशा है यह संक्षिप्त वर्णन अनुसंधानकर्त्ताओं के सामने एक नये क्षेत्र का जन्मदाता होगा। जो लोग देव-जाति के अस्तित्व पर संदेह करेंगे, या प्रारंभिक जातियों की समुद्र यात्रा पर संशय करेंगे वे इस वर्णन को पढ़ कर अपना संदेह और संशय मिटा सकेंगे। देव जाति गण-गोत्र-कबीलों का ऐसा ही एक समूह था, जैसे परवर्त्ती काल में इबेर (गुर्जर) या श्वेत हूण थे, या जैसे शक थे।

आर्य्य विदेशी थे। आर्य्य अर्थात् एक जाति नहीं, अनेक कबीले या छोटी-छोटी जातियां, जो परस्पर भी लड़ती थीं। ये लोग प्रारंभ में ईरान में आकर बसे और यहीं द्रविड़ जाति समूह, तथा किरात परिवार—यक्ष गंधर्व, किन्नर, आदि से इनका संबंध हुआ। महाप्रलय के बाद इनका दक्षिण की ओर गमन हुआ। इनके साथ ही अन्य जातियां

भी दक्षिण की ओर स्वतन्त्ररूप से भिन्न-भिन्न समय पर चलीं। इनमें वानर, राक्षस, गंधर्व, नाग आदि मुख्य थीं। ये जातियां एक दूसरे से काफी भेद रखती थीं और इनकी अपनी अपनी सामाजिक व्यवस्था में भेद था। जातियां भारत में इधर से उधर घूमती रही हैं। यह घूमना तो हमने भी पाकिस्तान बनते समय देखा है। ऐसे ही या अन्य कारणों से जातियां प्राचीन काल में भी घूमा करती थीं।

आर्य्य जिस देश में आये, उसमें दास प्रथा थी, जो अधिकांश ग्रामों में जाति प्रथा के रूप में भी उपस्थित थी।

आदिम साम्यवादी आर्य्य अपने समाज की अनेक व्यवस्थाएं पार करके जब स्वयं गण गोत्रों के विकास के साथ आगे बढ़े, तब उनमें वर्ण भेद बढ़ चले। यह हुआ इसलिये कि समाज के उत्पादन के साधनों से परिवर्तन आ गया था। समाज विकास कर गया था; प्रगति हुई थी।

जिस काल का इतिहास मैंने यहां प्रस्तुत किया है, वह दास प्रथा का समाज था। यह नहीं कि इस समय स्वतन्त्र व्यवस्था कहीं नहीं थी या दास प्रथा सब जगह एक सी लागू थी। नहीं, भिन्न-भिन्न रूप से भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर विकास हुआ।

नई-नई जातियां जब तक एक दूसरे से मिलीं तो उनके परस्पर संबंध हुए। समाज किस प्रकार बढ़ा, राजन्य वर्ग कैसे उत्पन्न हुआ, यह इस पुस्तक का विषय है। दास प्रथा के समाज के पारस्परिक विरोधों के कारण किस प्रकार उसका नाश होने लगा और किस प्रकार ब्राह्मण ने तीन युगों में अपना ह्रास देख कर अपने अधिकारों को बनाये रखने के लिये प्रयत्न किये? युग विभाजन का आधार मैंने ब्राह्मण सत्ता के अधिकार को लिया है।

आर्य्यों के गण अपने भीतरी ऐक्य को प्रारंभ में रक्षित रखते थे। यह बात बहुत प्राचीन थी। परंतु जब आर्य्यों से मिले तो उनका प्रभाव पड़ा। आर्थिक ढांचे से आर्य्य गण भी टूटने लगे। कोई धनी, कोई दरिद्र होने लगा। लेकिन जैसे अंगरेज साम्राज्यवादी भारत की लूट के माल से अपनी दरिद्र जनता को कुछ संतोष देते थे, ऐसे ही ब्राह्मण और क्षत्रिय भी करते थे। दास प्रथा इस युग के बाद टूटती चली गई, परंतु एक भेद के कारण यह युग और भी अगले युग से अलग हो गया। वह यही था कि इस युग में आर्य्य रक्त की भावना का बंधन टूट गया। अगले युग में जब आर्य्येतर उठने लगे तो एक व्यक्ति के राज्य की जगह राजकुलों के गण उठे। वे भी दास प्रथा रखते थे। उनका अगले युग में नाश हुआ। उस विषय को हमने इस पुस्तक में नहीं, लिया क्योंकि आर्य्यों का विकास हमारा विषय है। मेरे मतानुसार यह भारत के प्राचीन काल का बीच का युग है। तभी इसे मैं मध्यप्राचीन काल कहता हूं। मनु के कबीलों की शक्ति का कैसे महाभारत तक ह्रास हो गया, यही इस पुस्तक का वर्ण्य विषय है।

युग विभाजन का आधार यदि श्री डांगे के मार्क्सवादी ढंग से करें तो वह हास्यास्पद होगा, क्योंकि वह मार्क्सवाद को ठूंसना है। तथ्यों को देखना चाहिये। यही हमारा

लक्ष्य है। डांगे जी कल्पना से बहुत काम लेते हैं।

दास प्रथा वेद काल में अखंड रही। बाद में ही टूटी।

वैदिक संस्कृत के अधःपतन और लौकिक संस्कृत के उदय तक, बल्कि उत्थान तक बनी रही। बाद के लौकिक संस्कृत के युग में वह टूटती चली गई। केवल भाषा के माध्यम से समाज की व्यवस्था का वर्गीकरण करना भूल होगी।

ब्राह्मणों ने आर्य्येतरों की दास प्रथा वाली ग्राम व्यवस्था को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। अब यहां यह नहीं समझना चाहिये कि ग्राम व्यवस्था में पुराने कबीलों का कोई ऐसा तत्त्व नहीं मिलता था, जो गणों अर्थात् सगोत्र कबीलों की स्वतंत्रता का चिन्ह प्रगट नहीं करता था। वह था; और वह पंचायत थी, जो बहुत दिन तक चलती रही। वैदिक ब्राह्मणों से लेकर अंगरेजी युग तक चली, पर दास प्रथा के दूसरे रूप जाति प्रथा ने उस पर एक अजीब ढंग के बंधन लगा रखे थे।

ब्राह्मण क्षत्रियों के पारस्परिक युद्ध क्या समाज पर बिना अपना प्रभाव डाले ही चले गये? नहीं। उच्चवर्गों का पारस्परिक संघर्ष ही दलितों को सिर उठाने का अवसर देता है। उसने ऐसा ही किया। अतः ब्रह्म क्षत्र संघर्ष को देखना अत्यंत आवश्यक है। जैसे मुसलमानों के आने से भारत की आर्थिक व्यवस्था में तो कोई भेद नहीं आया, परंतु भक्ति आंदोलन से दलितों ने सिर उठाया, वैसे ही शूद्र उठे। हमारे इस युग में शूद्र उठ गये और दास उठने का प्रयत्न करने लगे। दलितों के दो भेद हुए; दास और शूद्र। इस विषय को मैंने सविस्तार बताया है।

यज्ञ इस समय अपना रूप बदलता चला गया।

इस युग के बाद यज्ञ का घोर विरोध प्रारंभ हो गया, क्योंकि अगले युग में व्यापार बढ़ा और महानगर बनने लगे, जिनसे दूर दूर तक व्यापार होने लगा।

आर्य्यत्व का भाव इस युग के अंतिम समय में एक ओर ब्रह्म क्षत्र मिल कर पाण्डव और कृष्ण दल के लोग बढ़ा रहे थे। दूसरी ओर कौरव आदि दास प्रथा वाले राज्य अनार्य दास प्रथा वाले धनिकों से मेल कर रहे थे। पाण्डव भी दास प्रथा वाले थे। यादवगण में भी फूट पड़ी। इनमें विरोध हुआ, क्योंकि एक पक्ष गण चाहता था, या निरंकुश सत्ता नहीं चाहता था; दूसरा चाहता था। कुछ ब्राह्मण इस समय किसी भी शर्त्त पर ऐक्य चाहते थे। सबका अंततोगत्वा मंत्र था कि उच्च अधिकार लुप्त न हों; दास प्रथा बनी रहे। कुछ आर्य्य गण के रक्तवाद को चलाते थे, दूसरे 'राज्य सब के ऊपर' यह कहते थे।

ऊपर अभी अंगरेजों वाली बात कही जा चुकी है। उन्हीं की भांति वे भी दलितों को कुछ सहूलियतें देना चाहते थे। परंतु उनके विरोधी बढ़ गये थे। वे अपनी रक्षा नहीं कर सके और लड़े, जिसका परिणाम हुआ दलितों का उठने का प्रयत्न।

पुस्तक में मैंने आर्य्य स्रोत से प्राप्त विकास की श्रेणियों को बताया है। आर्य्य विदेशी थे, इसकी कथा कैसे किंवदंती में बची थी, यह भी बताया है। पार्जिटर की राजवंश तालिकाओं से मैंने सहायता ली है। राजवंश तालिका राजन्यवर्ग के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालती है। राजन्य वर्ग की लूट और यज्ञ, ब्राह्मण तथा वैश्य और अन्य जातियों से उसका संबंध समाज की आर्थिक व्यवस्था पर प्रगट प्रकाश डालता है।

६

सत्ययुग

(पूर्व वैदिक काल)

इस समय आर्य्यों का काल भारत में प्रारंभ होता है, जिसका दौरदौरा अनेक शताब्दियों तक अखंडरूप से चला। इसमें एक अपनापन है, जो दूसरों की विशेषताओं, अच्छाइयों और बुराइयों को आत्मसात् करता चला गया। विद्वानों ने आर्य्यों के आगमन का समय प्राय: ३५०० ई० पू० कहा है। इस ओर छोड़ कर दूसरी ओर वे गौतम बुद्ध के समय से अपना इतिहास प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार ३५००ई०पू०—६००ई० पू० = २९००वर्ष का समय उनके दृष्टिपथ पर नहीं उतरता। वास्तव में यही समय आर्य्यों का इस विराट् देश में बसने के प्रयत्न का समय है। बहुधा विद्वान् इस समय को देखने में इसलिये झिझकते हैं कि कोई शिलालेख या ऐतिहासिक तथ्य उन्हें नहीं मिलते। परंतु पार्जिटर ने ३० वर्ष के अनथक परिश्रम के फलस्वरूप वह कर दिखाया, जिस पर किसी का ध्यान ही नहीं गया था। यह सत्य है कि पार्जिटर का प्रत्येक प्रयत्न, प्रत्येक तथ्य पूर्णतया ठीक नहीं है। किंतु उससे एक बात की ओर ध्यान जाता है। पार्जिटर ने इस युग को पुराणों के आधार पर खोज निकाला है। श्री० सीताराम प्रधान ने अपनी 'क्रोनोलाजी आफ़ एन्शेन्ट इंडिया' में वैदिक युग से महाभारत युग तक लगभग ११या१२पीढ़ी का समय लगाया है। ११या १२ पीढ़ी का समय उनके अनुसार २८ वर्ष प्रति पीढ़ी के अनुसार ३०८ वर्ष के लगभग है। डा० प्रधान ने बहुत श्रम से अनेक तथ्यों का निरूपण किया है किन्तु उनमें समय को छोटा करने की प्रवृत्ति है। उनकी राय में दिवोदास एक ही हुआ है। ऊपर चार दिवोदासों का उल्लेख किया जा चुका है। जनमेजय के विषय में भी वही भ्रम है। डा० प्रधान की पुस्तक इसीलिये महत्त्वपूर्ण नहीं है। पार्जिटर की पुस्तक अधिक महत्त्वपूर्ण है। बहुधा पुराणों में ऐसा है कि चार राजाओं के नाम हैं। अब यह समझना कि पितामह, पिता, पुत्र, पौत्र का ही उल्लेख है, यह गलत है। कभी-कभी भाइयों का ही उल्लेख होता है। उससे हम यह मतलब नहीं लगा सकते कि पीढ़ी ही बदल गई। परंतु ऐसे उदाहरण सब नहीं हैं। पार्जिटर ने वेद काल से महाभारत तक करीब ९५ पीढ़ी दी हैं। हो सकता है सब ठीक नहीं है, क्योंकि राजवंशों के बारे में निश्चय से नहीं कहा जा सकता परंतु पार्जिटर ने युग भेद का आधार ठीक माना है, यह आगे प्रमाणित होगा। इसके अतिरिक्त पार्जिटर ने समय को छोटा करने का भी प्रयत्न नहीं किया। मेरा स्वयं पार्जिटर से अनेक स्थानों पर मतभेद है।

राजवंशों की तालिका पर विवाद अधिक दूर नहीं ले जा सकता। मेरा मत है कि पार्जिटर की सब तालिकाओं में जो पिता पुत्र, फिर पौत्र का क्रम है, यही नियम नहीं था। प्रारंभ में राजगद्दी पैतृक सम्पत्ति नहीं थी, ऐसा भी उल्लेख मिलता है। दूसरे, यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक राजवंश का समय एक साथ प्रारंभ हुआ था। अयोध्या का प्राचीन है, विदेह का परवर्त्ती है। आर्य्यों के दूसरे दल से अनेक वंश प्रारंभ हुए। जब तथ्य की कमी के कारण यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि ठीक किसके बाद कौन राजा हुआ, उस ओर व्यर्थ विवाद समय नष्ट करने के समान है। पार्जिटर के द्वारा इतना प्रगट होता है यह समय नितांत अंधकारमय नहीं है। इस समय आर्य्यों के राज्य काल का समय है। पार्जिटर ने रघुवंश के विषय में कहा है कि वह आर्य वंश नहीं था; यह भी ठीक नहीं प्रतीत होता। हमारा मुख्य ध्येय यहां तत्कालीन सामाजिक आचार व्यवहार तथा विकास देखना है। साथ साथ जहां वंश की आवश्यकता अनिवार्य होगी, वहां उस पर विवेचन किया जायेगा। जहां तक तिथियों का प्रश्न है वे भी पूर्ण रूप से निश्चित ही हैं, यह नहीं कहा जा सकता। अतः अंदाज़ से, तथा परंपरा के आधार पर रखी हुई इन तिथियों को ऐसा नहीं समझना चाहिये जैसे कि अकबर इसी साल पैदा हुआ था, पानीपत का युद्ध इसी वर्ष हुआ। कुछ वर्षों का इधर उधर हेरफेर पड़ सकता है। परंतु 'लगभग' कहा जा सकता है। तत्कालीन मुख्य घटनाएं, जातियों का आवागमन, वर्गों का संघर्ष और विकास, विवाह तथा अन्य ऐसे ही विषयों का क्रम बहुत कम टूटता हुआ दिखाई देता है। इसको ही मैंने मुख्य आधार बनाया है।

बहुधा विद्वानों में इसलिये भूल पड़ती है कि वे क्रम नहीं देख पाते। जहां तक परंपरा ने सहायता दी है, क्रम को मैंने नहीं छोड़ा है। क्रम के दो रूप प्रगट होते हैं। एक पूर्ववर्त्ती है, जो उचित आधार हैं। दूसरा क्रम सांप्रदायिक है और परवर्त्ती है। उसमें से तथ्यों को फटक कर निकालना आवश्यक है।

क्रम में सामाजिक विकास काफी सहायता देता है। खेद है इस पर विवेचकों ने धैर्य्य से दृष्टिपात नहीं किया। वे नामों की भूल में पड़ जाते हैं। एक ही व्यक्ति स्थान तथा विषय के अनेक नाम मिलते हैं, परंतु कभी-कभी एक ही नाम मिलता है। एक ही वंश के लोगों का एक ही नाम मिलता है। जैसे भृगु वंश के सब ही लोग भार्गव हैं। जनक पद है। उसके विषय में भी भ्रम हैं। यहां कुछ ऐसे ही नाम उदाहरण के लिये दिये जाते हैं, जिनमें साम्य है। इनका महाभारत में उल्लेख हुआ है।

अंशुमान द्रौपदी स्वयंवर में आया हुआ एक राजा था (४१५) अंशुमान सूर्य्यवंशी राजा सगर के पौत्र तथा असमंजस के पुत्र थे (९२२) अंशुमान एक विश्वेदेवा थे (४१२४)

अंग—देश था (२०८, २३६, १८९०)—चंद्रवंशी बलि राजा की भार्या सुदेष्णा में दीर्घतमा ऋषि द्वारा उत्पन्न वंग, कलिंग, पौण्ड्र और सुह्म का भाई था (६२३)—एक राजा था (५२९)—एक पुरुवंशी राजा था, इसके बृहद्रथ और पौरव, ये दो नाम

और भी थे (२२६४)––मनु का पुत्र, अन्तर्धामा का पिता था (२२६, ४२४४)।

अंगारपर्ण––गंधर्वराज था, इसकी पत्नी कुम्भीनसी थी। (३८१)––एक बन था (३८१)।

अज––एक असुर दक्षकन्या दनु का पुत्र था (१३५)––दशरथ का पिता, एक इक्ष्वाकु वंश का राजा था (१२६५)––श्रीकृष्ण का एक नाम था (१६५०)––पाण्डव पक्ष का एक राजा था। (१८२८)––जन्हु पुत्र, बलाकाश्व का पिता एक राजा था––(३३५७),––रुद्र का एक नाम था (४२३८)––ब्रह्मा का एक नाम था (४२४४)।

उलूक––द्रौपदी के स्वयंवर में आया हुआ एक राजा था। (४१५)––एक देश था (५७२)––शकुनि का पुत्र था (१६०६)––विश्वामित्र का एक पुत्र था (३९४७)।

क्राथ––राहु का अंशावतार एक राजा था (१४१, ४१६, ७१६, १४९३)––धृतराष्ट्र का एक पुत्र था (२०७)––एक वानर यूथपति था (१२८८)––कौरव पक्ष का एक योद्धा था (२६६१)––एक नाग था (४४५३)।

क्रोधवश––असुरों का एक गण था (१४१)––रावण के पक्ष का एक राक्षस था (१२६२)––एक प्रकार के देवगण थे। (४४६५)।

गांधारी––गांधार नरेश सुबल की बेटी, धृतराष्ट्र की रानी तथा दुर्योधन आदि की माता थी। भाई शकुनि तथा पुत्री दुश्शला थी।––चंद्रवंशी विकुण्ठन पुत्र अजमीढी की रानी थी (२०९)––एक देवी थी (११८३)––श्रीकृष्ण की रानी थी (४४५८)

गालव––विश्वामित्र का शिष्य। एक ऋषि था, जिसने गरुड़ के साथ ययाति से श्यामकर्ण घोड़े मांगे थे (१७२१)––बाभ्रव्य गोत्र में उत्पन्न एक ऋषि था (३९०६)––विश्वामित्र का एक पुत्र था (३९४७)––एक देश था (५८५)।

गौतम––शरद्वान के पिता, तथा कृपाचार्य के पितामह ऋषि थे। (१३१), २८८, १८२१)––दीर्घतमा ऋषि के, प्रद्वेषी नाम की ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र, उत्तंक के गुरु, और श्वसुर थे (२३४, ४३४६),––एक कृतघ्न, मित्रघाती ब्राह्मण था (३५७२)––एक ऋषि थे चिरकारी के पिता थे (३७३३)––उतथ्य के पुत्र दीर्घतमा ऋषि थे (३८९८)–– उत्तर दिशा के निवासी एक महर्षि थे (३६३९)।

गौरी––महादेवी पार्वती थी (८८५)––पार्वती की अनुगामिनी एक देवी (११८३),––गौरी वरुण की पत्नी थी (१७२४, ४२२७, ४२६४),––गौरी एक नदी थी, पंचकोरा की सहायक (१८८९)।

दक्ष––ब्रह्मापुत्र, दाक्षायणी के पिता थे (३,१३५, ३१३२, ३६३८, ३९१९, ४२२९)।––एक गरुड़ था (१७०४)––एक विश्वेदेवा थे (४१२४)।

दृढायु––पुरूर्वा के ऊर्वशि से उत्पन्न पुत्र, आयु, धीमान्, अमावसु, वनायु और शतायु

महाभारत, इंडियन प्रेस प्रयाग की पृष्ठ संख्याएं दी गई हैं।

का भाई था (१४६) —एक राजा था, जिसके पास दूत भेजने को द्रुपद ने युधिष्ठिर से कहा था (१४६३)।

पिंगल—एक सांप था (८४),—एक ऋषि, जो जनमेजय के सर्पयज्ञ का अध्वर्यु था (१०६)—एक यक्ष था (५३२, ११८३)।

पुलोमा—च्यवन माता, भृगु पत्नी थी (४६,—१७२४)—एक राक्षस था, जिसने च्यवन माता का अपहरण करना चाहा था (४६, ४७)—दक्षकन्या दनु का पुत्र था (१३५)—दक्षकन्या दिति की पुत्री थी, पौलोम दानवों की माता (१०४४)।

पुष्कर—राजा नल का भाई था (८०२)—तीर्थ था (८६६)—एक द्वीप था (१८६४), —वरुण का पुत्र सोमपुत्री ज्योत्स्नाकाली का पति था (१७०१)—एक पुष्कर द्वीप का पर्वत था (१८६४)।

बल—इन्द्र निहत, दक्षकन्या दनायु पुत्र था (१३५,५६४,८०५,१०३८,१५१६) ३४४५)— वरुण पुत्र था (१३६)— वायुदत्त कुमार कार्त्तिकेय का पार्षद (३१३३)— अंगिरा पुत्र एक पूर्व दिशावासी ऋषि, (३६३६, ४२३६)—एक विश्वेदेवा (४१२४), —सूर्यवंशी परीक्षित पुत्र, माता सुशोभना भाई शल, दल (१०६६)।

बलि—प्रल्हादवंशी असुर, विरोचन पुत्र, बाणासुर का पिता था (१३५, १०४५, १५०५,१५५१, ३५६१, ३७५०)— एक राजा, पत्नी सुदेष्णा जिसमें दीर्घतमा ने पुत्र उत्पन्न किये (२३५, २३६)—एक ऋषि था (५१७)

बृहद्बल—एक प्राचीन राजा (१६)—गान्धारराज सुबल का पुत्र, भाई शकुनि और वृषक थे (४१५)—कोशलराज कौरव पक्षी (५७५, १४६३, १८०६, १८२१.)।

बृहद्भानु—एक दिवपुत्र देवता (३) —अग्नि (११६२)—

भग—दक्षकन्या अदिति पुत्रों में से एक आदित्य (१३५, ५२८, ३६३८, ४२३८)-एक रुद्र, ब्रह्मा का पौत्र तथा स्थाणु का पुत्र था (१३६, ३१३२)।

मनु—दिवपुत्र, देवता, देवभ्राट, सुभ्राट् के पिता, नामान्तर मह्य (३)—दक्ष कन्या प्राधा की पुत्री थी (१३६)—ब्रह्मा का पुत्र, आदिपुरुष, प्रथम मनु, धर्म शास्त्र प्रणेता (१३७, ३१३२)—विवस्वान पुत्र सातवें मनु (१४५, १८८८, ३६१६, ४०१६, ४२२६, ४२७४)—एक अग्नि, तप के पुत्र (११६२)—सरस्वती (?) (*इड़ा ?)के पति। (१८२४)।

वरुण—पश्चिमाधिपति देवता (४५, ११२, ६३७)—दक्ष कन्या अदिति पुत्र एक आदित्य (१३५, ३६३८, ४२३८)—दक्ष कन्या मुनिपुत्र—एक गंधर्व (१३६)।

वृषाकपि—एक ऋषि (४०८०)—विष्णु का नाम (३६०६)—ग्यारह रुद्रों में से एक (४२३८)।

इन नामों के साम्य से स्पष्ट हो जाता है कि बार बार एक ही नाम रखा जाता था।

*मेरा अनुमान है कि सरस्वती इड़ा एक हैं। शतपथ ब्राह्मण में मनु इड़ा की कथा है।

यह सूची पूर्ण नहीं है। अनेक ऐसे साम्य ढूंढे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त एक युग-विशेष में एक नाम से जो तात्पर्य लिया जाता था, वही दूसरे युग में भी लिया जाता हो, ऐसा नहीं है। नल सत्ययुग में कहे जाते हैं। उन्हें कलि मिला था। स्पष्ट ही कलियुग की भावना बहुत परवर्ती है। नल से कलि के मिलन की कथा एक काव्यमय रूपक ही है। उसे ऐतिहासिक कहना उचित नहीं है। इस नाम साम्य ने ही प्राचीन पुराणकारों को गड़बड़ा दिया था और वे असली पुराणों के न होने पर, जब स्मृति से उन परंपराओं को लिखने लगे, तब उनसे भूल पड़ गई और इस नाम साम्य के कारण उन्होंने कभी विषय की वास्तविकता को जांचने का प्रयत्न नहीं किया। बहुत से पद ही नाम बन कर रह गये और काल के व्यवधान के प्रति उनका कोई अनुमान ठीक नहीं रहा।

राजवंशों की तालिका देते हुए पार्जिटर ने यादव, हैहय, द्रुह्यु, तुर्वशस, कान्यकुब्ज, पौरव, काशी, आणव—उत्तर पश्चिमीय, आणव—पूर्वीय, अयोध्या, विदेह, वैशाली, उत्तर, तथा दक्षिणी पञ्चाल को गिनाया है। इसके साथ ही उन्होंने वैदिक गुरुओं की भी तालिका दी है।

राजवंशों की सूची में सत्ययुग का अंत उन्होंने हैहयों के प्रहार के साथ माना है। इस विषय में हम आगे विवेचन करना उचित समझते हैं। प्रायः सब राजवंश मनु से ही प्रारंभ होते हैं। इनका संस्कृत साहित्य में अनेक जगह उल्लेख हुआ है। निस्संदेह यह धर्म वर्ण व्यवस्था को स्थापित करने वाले मनु नहीं थे। इनका नाम वैवस्वत मनु था, जब कि नियमकार मनु स्वयंभू नाम से प्रसिद्ध हैं। कुछ स्रोतों में अन्य नाम भी मिलते हैं। अतः निश्चय से केवल इतना कहा जा सकता है कि मनु कई हुए थे। प्रथम मनु जिसको हम इन राजवंशों का प्रथम पुरुष देख रहे हैं, इसके समय में वर्ण व्यवस्था का पूरा उदय नहीं हुआ था, यह वैदिक साहित्य का अध्ययन प्रगट करता है। वैदिक साहित्य में विराट् पुरुष की व्याख्या करते समय यह स्पष्ट हो जायेगा। ऋग्वेद के प्रारंभ में आर्य्य दास के अतिरिक्त और कोई भेद प्रतीत नहीं होता।

	यादव,	हैहय,	द्रुह्यु,	तुर्वशस,	कान्यकुब्ज,	पौरव
१.	मनु	...	मनु	मनु	मनु	मनु
२.	इला	..	इला	इला	इला	इला
३.	पुरूर्वस	..	पुरूर्वस	पुरूर्वस	पुरूर्वस	पुरूर्वस
४.	आयु	..	आयु	आयु	आयु	आयु
५.	नहुष	..	नहुष	नहुष	..	नहुष
६.	ययाति	..	ययाति	ययाति	..	ययाति
७.	यदु	..	द्रुह्यु	तुर्वसु	...	पुरू
८.	क्रोष्टु	सहस्रजित	..	...	..	जनमेजय प्रथम

पूर्व वैदिक काल
द्रविड़ परिवार
किरात परिवार
आग्नेय परिवार
हब्शी परिवार
देव परिवार
समुद्र यात्रा मार्ग
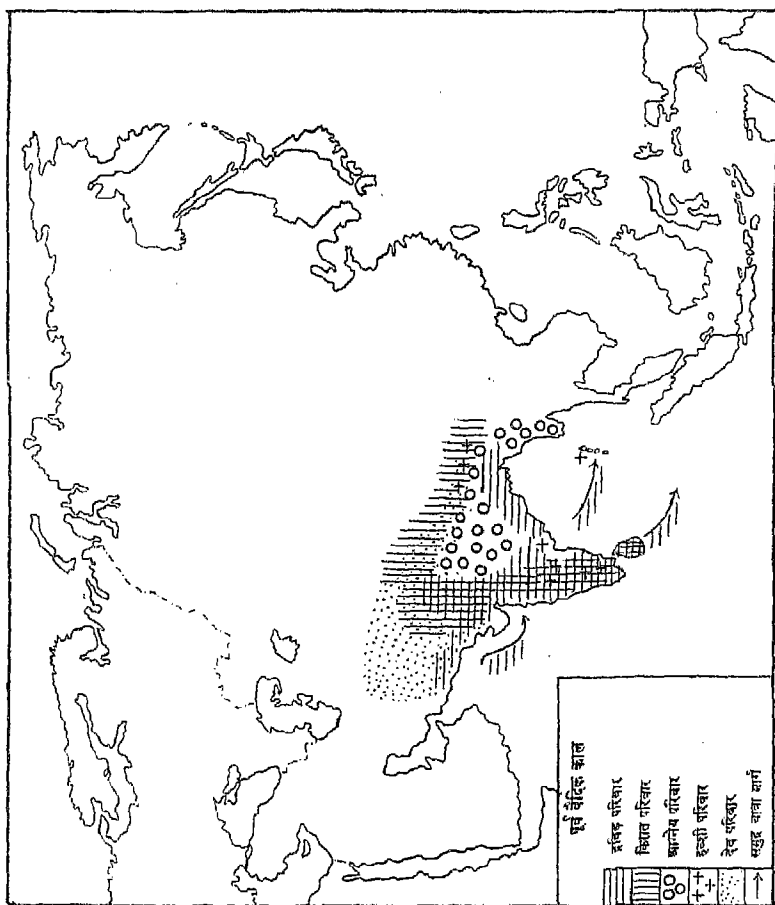
	काशी	उत्तरपश्चिम आणव	पूर्वी आणव	अयोध्या	विदेह	वैशाली
१.	मनु	मनु	..	मनु	..	मनु
२.	इला	इला	..	इक्ष्वाकु	..	नाभानेदिष्ठ
३.	पुरूर्वस	पुरूर्वस	..	विकुक्षि	निमि	..
			..	शशाद	..	..
४.	आयु	आयु	ककुस्थ	..	मिथि-जनक	...
५.	नहुश	नहुष	अनेनस	..	..	..
६.	क्षत्रवृद्ध	ययाति	पृथु	..	..	भालन्दन
७.	..	अनु	विश्वगष्व	...	..	..
८.	...	...	अद्रि	..	उदावसु	वत्सप्री

इन प्रारंभिक नामों का अध्ययन एक विशेष प्रकार चलता है। संख्या ६ तक प्रायः एक ही व्यक्ति का नाम भिन्न-भिन्न वंशावलियों में प्रयुक्त है। ऋग्वेद के प्रारंभ में ही इन राजाओं अथवा शासकों का नाम कहीं कहीं गीतों तथा मंत्रों में आता है। हमें यहां एक विभाजन की आवश्यकता है। ऋग्वेद किसी पिछली अवस्था में गाया गया। उसके पहले कोई इतिहास है। वह देवताओं की गाथाओं के रूप में है या फिर प्राचीन काल के मनुष्यों का इतिहास है। इनको अलग-अलग एकत्र करने से दो तथ्य निकलते हैं। एक तो यह कि देवता संबंधी गाथाएं अत्यंत प्राचीन हैं। कई पीढ़ियां निकल चुकी हैं। जो पृथ्वी के वासी थे, वे आकाश के वासी हो चुके हैं। उन देवताओं के विशेष स्वरूप भी नियत हो चुके हैं। इससे स्पष्ट होता है कि देवता इन ऋचाओं के गाने वालों के पितर बनकर, देवता बने, तो इसमें कई पीढ़ियां बीच में व्यतीत हो गईं। दूसरे, जिन मनुष्यों का वर्णन है, वे भी देवों से दूर नहीं हैं। उनका स्वर्ग के देवताओं के समीप सहज ही आवागमन है। आगे के मनुष्यों को देवताओं के समीप होने के लिये काफ़ी प्रार्थनाएं करनी पड़ती हैं। इला, पुरूर्वस, आयु, नहुष, तक के मनुष्य स्वर्ग और पृथ्वी में अखंड गति रखते हैं। स्वर्ग का आवागमन ययाति के समय से रुकना प्रारंभ होता है, किंतु अभी वह असंभव नहीं है। पुराणों की पहेली का यहीं अंत मिलता है। इस युग में प्रलय के बाद मनु की संतान का दृष्टिकोण काफी बदल चका था। आधार हैं :

हे स्तवनीय इन्द्र ! तुम सामर्थ्यवान् हो। ऐसा करना कि विरोधी हमारे शरीर पर आघात न कर सकें। हमारा वध नहीं होने देना। (१.१.१.२.५.१०)

इन्द्र, तुम्हारी सहायता से हम हथियारबन्द लड़ाकों की सजी धजी सेना वाले शत्रु को भी जीत सकेंगे (१.१.१.३.८.४)।

इन्द्र ! शीघ्र हमारे पास आओ ! हे कुशिक ऋषि के पुत्र ! प्रसन्न होकर सोमरस पान करो। कार्य्यकारी शक्ति बढ़ाओ। इस ऋषि को सहस्र-धन संपन्न करो। (१.१.१. ३.१०.११.)।

उत्तम और नाना रूपधारी त्वष्टा (अग्नि) को इस यज्ञ में बुलाते हैं। त्वष्टा केवल हमारे पक्ष में ही रहें।[१] (१.१.१.४.३.१०.)।

हे मेधावी अग्नि ! कण्व पुत्र तुम्हें बुला रहे हैं, साथ ही तुम्हारे कर्मों की प्रशंसा भी कर रहे हैं। देवों के साथ आओ। (१.१.१.४.१४.२.)।

इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गण को यज्ञ-भाग दान करो। (१.१.१.४.३.)।

बृहस्पति का दूसरा नाम ब्राह्मणस्पति है। अत्युग्र तेजहीन सूर्य्य पूषा है। आदित्य अदिति संतान है। ऋग्वेद के २ मंडल २७ सूक्त में ६ आदित्य हैं: मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश। नवें मंडल के ११४ सूक्त में ७ आदित्य हैं। १०वें मंडल के ७६ सूक्त में ८ हैं, जिनमें मार्तण्ड को त्याग कर बाकी ७ आदित्यों को अदिति देवों के पास ले गई थीं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में आठ आदित्यों का उल्लेख है: धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्। शतपथ ब्राह्मण में बारह महीनों के बारह आदित्य (सूर्य्य) हैं। महाभारत, (आदिपर्व १२१ अ०) में बारह आदित्यों के ये बारह नाम हैं: धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। अदिति देवमाता है।[२]

पत्नीयुक्त नेष्टा या त्वष्टा ! देवों के पास हमारे यज्ञ की प्रशंसा करो ! ऋतु के साथ सोमरस पान करो। क्योंकि तुम रत्नदाता हो (१.१.१.४.१५.३.)।

हे द्रविणोदा ! चूंकि ऋतुओं के साथ तुम्हें चौथी बार पूजता हूं, इसलिये अवश्य ही तुम हमें धनवान करो (१०)।

मैं सम्राट् इन्द्र और वरुण से अपनी रक्षा के लिये याचना करता हूं। ऐसी याचना करने पर ये दोनों हमें सुखी करेंगे। (१.१.१.४.१७.१.)।

सखा लोग ! चारों ओर बैठ जाओ। हमें शीघ्र ही सूर्य्य की स्तुति करनी होगी। धन प्रदाता सूर्य्य सुशोभित हो रहे हैं। (१.१.१.५.२२.८.)।

देव आकाशवासी हो गये हैं:

अपने कर्म के बल से द्यु और पृथ्वी के बीच में, मेधावी लोग गंधर्वों के निवास-स्थान अंतरिक्ष में, घी की तरह, जल पीते हैं (१४) पृथ्वी ! तुम विस्तृत कण्टक रहित और निवासभूता बनो। हमें यथेष्ट सुख दो। (१५) जिस भू-प्रदेश से, अपने सातों छंदों द्वारा विष्णु ने विविध पाद-क्रम किया था, उसी भू-प्रदेश से देवता लोग हमारी रक्षा करें (१६) वामनावतारधारी विष्णु ने इस जगत् की परिक्रमा की थी, उन्होंने तीन प्रकार

---

१. इससे इंगित होता है कि अग्नि अन्यों का भी उपास्य था।

२. ऋग्वेद संहिता, रामगोविन्द त्रिवेदी, भागलपुर वि० १९८८।

से अपने पैर रखे थे, और उनके धूलियुक्त पैर से जगत् छिप सा गया था (१७) विष्णु के कर्मों के बल ही यजमान अपने व्रतों का अनुष्ठान करते हैं। वे इन्द्र के उपयुक्त सखा हैं। (१६)। (१.१.२.५.२२.)।

जिस प्रकार किसान गौओं से यव का खेत बार बार जोतता है, उसी प्रकार पूषा भी मेरे लिये सोम के साथ क्रमशः, ६ ऋतु बार बार लाये थे। (१.१.२.५.२३.१५.)।

देवों में किस श्रेणी के किस देवता का सुंदर नाम पहले उच्चारण करूं? कौन मुझे फिर इस पृथ्वी पर रहने देगा, जिससे मैं माता पिता के दर्शन कर सकूं (१.१.२.६.१.)। इस प्रकार के सूक्तों के रचयिता शुनःशेप हैं, जो परवर्ती हैं।

पवित्र बलशाली वरुण आदिरहित अंतरिक्ष में रहकर श्रेष्ठ तेजःपुंज को ऊपर ही धारण करते हैं। तेजःपुंज का मुख नीचे और मूल ऊपर है। उसी के द्वारा हमारे प्राण स्थिर रहते हैं।[1] (७) देवराज वरुण ने सूर्य्य के उदय और अस्त के गमन के लिये सूर्य्य के पथ का विस्तार किया है। पाद-रहित अंतरिक्ष प्रदेश में सूर्य्य के पाद-विक्षेप के लिये वरुण ने मार्ग दिया है। वह वरुण देव मेरे हृदय का वेध करने वाले शत्रु का निराकरण करे। (८) वरुणराज! तुम्हारी सैकड़ों हजारों औषधियां हैं। तुम्हारी सुमति विस्तीर्ण और गंभीर हो। निमंत्रित देवता को विमुख करके दूर करो। हमारे पाप से हमें मुक्त करो (६)। ये जो सप्तऋषि नक्षत्र हैं, जो ऊपर आकाश में संस्थापित हैं और रात्रि आने पर दिखाई देते हैं दिन में कहां चले जाते हैं? वरुण देव की शक्ति अप्रतिहत है। उनकी आज्ञा से रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान होते हैं। (१०) मैं स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति कर तुम्हारे पास वही परमायु मांगता हूँ। हव्य द्वारा यजमान भी उसे ही पाने की प्रार्थना करता है। वरुण! तुम इस विषय में उदासीन न होकर ध्यान दो (तुम अनंत जीवों के प्रार्थना पात्र हो। मेरी आयु मत लो। (११) १२वीं और १३वीं ऋचा से प्रतीत होता है कि इन ऋचाओं में शुनःशेप को अतीत का व्यक्ति समझ कर याद किया गया है——

दिन और रात, सदा लोभ में, मुझ से ऐसा ही कहा गया है। मेरा हृदयस्थ ज्ञान भी यही गवाही देता है कि आबद्ध होकर शुनःशेप ने, जिस वरुण का आह्वान किया था, वही वरुणराज हम लोगों को मुक्ति प्रदान करें। तथा शुनःशेप ने घृत और तीन काठों में आबद्ध होकर अदिति पुत्र वरुण का आह्वान किया था। इसीलिये विद्वान् और दयालु वरुण ने शुनःशेप को मुक्त किया था। उनका बंधन छुड़ा दिया था।

वरुण! नमस्कार करके हम तेरे क्रोध को दूर करते हैं। और यज्ञ में हव्य देकर

१. ऊपर मूल नीचे मुख वृक्ष का उल्लेख गंधर्व, यक्ष अथवा असुर प्रभाव है। यह उपनिषद् में भी वर्णित है; गीता में भी। फिर कुण्डली के साथ रूप बदल कर उपस्थित होता है। नाथ युग के बाद कबीर युग में भी है। यक्ष, राक्षस, असुर, गंधर्व का इसमें वास है, ऐसा उल्लेख पहले के अध्यायों में आ चुका है।

भी तुम्हारा क्रोध दूर करते हैं। हे असुर ! हे प्रचेत: ! राजन् ! हमारे लिये इस यज्ञ में निवास करके हमारे किये पाप को शिथिल करो। (१४)

वरुण ! मेरा ऊपरी पाश ऊपर से और नीचे का नीचे से, तथा बीच का बीच से खोल दो। अदितिपुत्र ! अनंतर हम तुम्हारे व्रत का उल्लंघन न करके पापरहित हो जायेंगे (१.१.२.६.२४.) ।

जो वरुण अन्तरिक्षचारी चिड़ियों का मार्ग और समुद्र की नौकाओं का मार्ग जानते हैं (७) जो व्रतावलम्बन करके अपने अपने फलोत्पादक बारह महीनों को जानते हैं और उत्पन्न होने वाले तेरहवें मास को भी जानते हैं* (८) जो वरुण देव, विस्तृत, शोभन और महान् वायु का भी पथ जानते हैं, और जो ऊपर, आकाश में, निवास करते हैं, उन देवों को भी जानते हैं (९)। धृतव्रत और शोभनकर्मा वरुण दैवी सन्तानों के बीच साम्राज्य संसिद्धि के लिये आकर बैठे थे+ (१०)। वे हमारी आयु बढ़ावें (१२) बहुतों ने वरुण को देखा हैं (१६) मैंने वरुण को भूमि पर देखा है (१८) स्पष्ट ही रूपक के से प्रयोग हैं। (१.१.२.६.२५.) ।

प्राचीन मनुष्यों का उल्लेख है : शत्रुंजय मित्र, वरुण, अर्यमा जिस तरह मनु के यज्ञ में बैठे थे, उसी तरह तुम भी हमारे यज्ञ के कुश पर बैठो। (१.१.२.६.२६.४.) । मनु के यज्ञ में प्राचीनदेव बैठे थे। मनु यहां देवों से दूर नहीं है। फिर ऋचा है—बड़े, बालक, युवक और वृद्ध देवों को हम नमस्कार करते हैं। हो सकेगा, तो हम देवों की पूजा करेंगे। देवगण ! हम वृद्ध देवों की स्तुति न छोड़ दें (१.१.२.६.२७.१३) यह महत्त्वपूर्ण है । देव सब युवक ही रहते हैं यह गलत है। देवों की पूजा छूटने का भी डर था।

और भी —

अग्नि ! तुमने मनु को स्वर्गलोक की कथा सुनाई थी। तुम परिचर्य्या करने वाले पुरुरवा को अनुग्रहीत करने के लिये अत्यंत शुभ फलदायक हुए थे। जिस समय अपने पितृ रूप दो काष्ठों के घर्षण से तुम उत्पन्न होते हो, उस समय तुम्हें ऋत्विक लोग वेदी के पूर्व की ओर ले जाते हैं। अनंतर तुम्हें पश्चिम की तरफ ले जाया जाता है (४)

अग्नि ! देवों ने पहले पुरुरवा के पौत्र नहुष को सेनापति (विश्पति) बनाया। इडा को मनु का शासन करने वाली बनाया। (११)

पवित्र अग्नि देव ! हे अंगिरा ! मनु, अंगिरा, ययाति और अन्यान्य पूर्व पुरुषों की भांति तुम सम्मुखवर्ती होकर यज्ञ देश में गमन करो; देवों को ले आओ; उन्हें कुश पर बिठाओ और अभीष्ट हव्य दान करो। (१७) (१.१.२.७.३१).

सुवर्णहस्त, प्राणदाता, सुनेता, हर्षदाता और धनदाता सविनय अभिमुख होकर आवें। वह देव राक्षसों और यातुधानों का निराकरण करके प्रतिरात्रि स्तुति प्राप्त कर अवस्थित है। (१.१.३.८.३५.१०.)

---

*अर्थात् मलमास, मलिम्लुच। +वरुण सम्राट् थे। ऊपर उल्लेख हो चुका है।

चोरों का दमन करने वाले अग्नि के साथ तुर्वश, यदु और उग्रादेव को दूर देश से हम बुलाते हैं। वह अग्नि नववास्त्व, बृहद्रथ और तुर्वीति को इस स्थान पर बुलावे। (१८)

अग्नि तुम ज्योतिस्वरूप हो। मनु ने विविध जातियों के मनुष्यों के लिये तुम्हें स्थापित किया था (१९) (१.१.३.८.३६.)

अग्नि ! तुम इस यज्ञ में वसुओं, रुद्रों और आदित्यों को अर्चित करो। शोभनीय यज्ञ-युक्त और अन्यदाता मनु पुत्र देवों को भी पूजित करो (१.१.३.९.४५.१.)।

मनु पुत्र देव भी कहे गये हैं। इससे प्रगट होता है कि मनु देव युग से दूर नहीं थे। हे अग्नि ! जैसे तुम ने प्रियमेधा, अग्नि, विरूप और अंगिरा ऋषि का आह्वान सुना, वैसे ही प्रस्कण्व का आव्हान सुनो (१.१.३.९.४५.३.)।

हे यज्ञवर्द्धनकारी अश्विद्वय ! यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये, अभिषुत हुआ है। यह कल ही तैयार हुआ है। इसे पान करो और हव्यदाता यजमान को रमणीय धनदान करो। (१) अश्विद्वय। तुमने दानशील राजा सुदास के लिये लड़ाई में धन को धारण और अन्न को वहन किया था। (६) (१.१.४.९.४७.)

पूज्य उषा ! पहले के ऋषियों ने, रक्षण और अन्न के लिये, तुम्हें बुलाया था। (१.१.४.९.४८.१४.)।

टीकाकार श्री रामगोविन्द त्रिवेदी ने यहां लिखा : मूल में जो 'अर्जुनि' शब्द है, उसका सायणाचार्य्य ने शुभ्र वर्ण अर्थ किया है। राजेंद्रलाल मित्र ने 'इंडो आर्यन्स' में लिखा है कि ऋग्वेद में उषा के जो अर्जुनि, बिसया, दहना, उषा, सरमा, और सरण्यू नाम हैं वे सब आर्गिनोरिस, ब्रिसिस, डैफ्ने, इओस, हेर्ब्न, और एरिनिस नाम से ग्रीकों में भी हैं। ग्रीक कथा है कि अपोलो (सूर्य्य) ने डेफ्ने (दहना) का अनुधावन किया था। उषा का एक वैदिक नाम अहनामी है, जिसे ग्रीक एथेना कहते थे। लैटिन भाषा भाषी इसे मिनर्वा कहते हैं। मॉयथॉलॉजी आफ़ आर्य्यन नेशन्स में काक्स ने लिखा है कि अर्जुनि नाम से ही अर्गोस और अरकेडिया नाम उत्पन्न हैं। (ऋग्वेद संहिता पृ० ७५)।

ऋग्वेद के प्रारंभ में ही ऐसे नाम हैं, जिनका ग्रीक तथा लैटिन भाषा में साम्य है। यह तथ्य ऊपर कहा जा चुका है। इससे यह धारणा दृढ़तर होती है कि कुछ घटनायें इन भाषाओं के व्यस्त होने के पूर्व ही हो चुकी थीं। वही देव युग कहा गया है। पृ० ८० पर फिर उल्लेख है : तैत्तिरीय संहिता के अनुसार सायण ने लिखा है कि त्रित अग्नि पुत्र थे। त्रित ने असुरों से युद्ध किया था। वे कुएं में गिर पड़े थे। ईरानी थ्रेतन की पूजा करते हैं। यह उनके प्राचीन देवता हैं। फारसी में तीन मस्तक वाले जोहक राजा का नाम आता है। उन्हें फिरुद्दीन ने जीता था। जोहक अवेस्ता का थ्रेतन है। इटली और जर्मनी में त्रेतन की कथा है। ग्रीकों में त्रितन एक जल देवता है।

जिस प्रकार धनाभिलाषी वणिक् घूम घूम कर समुद्र को चारों ओर व्याप्त किये रहते हैं, उसी प्रकार हव्य-वाहक स्तोता लोग चारों ओर से इन्द्र को घेरे हुए हैं। जिस

प्रकार ललनाएं फूल चुनने के लिये पर्वत पर चढ़ती हैं, उसी प्रकार, हे स्तोता ! एक तेज:पूर्ण स्तोत्र के द्वारा प्रवृद्ध, यज्ञ के रक्षक, बलवान इन्द्र के पास शीघ्र पहुंचो (१.१.४.१०.५६.२.) ।

सारे संसार में इन्द्र व्यापक हैं (१.१.४.११.६१.७.) ।

हे अग्नि ! तुम मनु के पुत्रों में देवों के आह्वानकारी रूप से अवस्थान करते हो (१.१.५.१२.६८.४.) ।

अग्नि ! तुमने मेधावियों में मेधावी बन कर जैसे मनु के यज्ञ में हव्य द्वारा देवों की पूजा की थी, वैसे ही, हे होम-निष्पादक अग्नि ! इस यज्ञ में देवों की आनंददायक जुहू और स्रुक् से पूजा करो । (१.१.५.१३.७६.५.) ।

अग्नि मेधावी गोतम आदि ऋषियों से स्तुत हुए थे । (१.१.५.१३.७७.५.) ।

अथर्वा नामक ऋषि, समस्त प्रजा के पितृभूत मनु और अथर्वा पुत्र दध्यंङ ऋषि ने जितने यज्ञ किये, सब में प्रयुक्त हव्य, अन्न और स्तोत्र, प्राचीन यज्ञों की तरह, इन्द्र को ही प्राप्त हुए थे । (१.१.५.१३.८०.१६) ।

अग्नि ने अयु या मनु के प्राचीन तथा स्तुतिगर्भ मंत्र से तुष्ट हो कर मानवी प्रजा की सृष्टि की थी । (१.१.७.१५.९६.२.) ।

अभीष्टदाता इन्द्र, वृषागिर के पुत्र ऋजाश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान, और सुराधा तुम्हारी प्रीति के लिये तुम्हारा यह स्तोत्र उच्चारण करते हैं । (१.१.७.१५.१००.१७.) ।

देवगण ! हमारे स्वर्गस्थ पूर्व पुरुष स्वर्ग से च्युत न हों ; हम कहीं सोमपायी पितरों के सुख के लिये पुत्र से निराश न हों । हे द्यावापृथ्वी ! मेरा यह विषय जानो । (३) देवों में सर्वप्रथम यज्ञार्ह अग्नि की मैं याचना करता हूं । वह दूत रूप से मेरी याचना देवों को बतावें । अग्नि ! तुम्हारी पहले की वदान्यता कहां गई ? इस समय कौन नूतन पुरुष उसे धारण करते हैं ? (४) सूर्य्य द्वारा प्रकाशित इन तीनों लोकों में ये देववृन्द रहते हैं । हे देवगण ! तुम्हारा सत्य कहां है और तुम्हारा असत्य कहां है—? तुम्हारी प्राचीन आहुति कहां है ? (५) अग्नि ! मनु के यज्ञ की तरह हमारे यज्ञ में बैठ कर देवों का यज्ञ करो (१३) ।

इस सूक्त की रचना त्रित ने की, ऐसा कहा जाता है । किंतु इसकी अन्तिम ऋचा है : हम समर में शत्रु परास्त करेंगे (१६), जिससे प्रगट होता है कि परवर्त्ती पुरुषों ने त्रित की गाथा गाई । (१.१.७.१६.१०५.) ।

इन्द्र और अग्नि ! यदि तुम लोग तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरुगण के बीच में रहते हो तो हे अभीष्ट दातृद्वय, उन सब स्थानों से आकर अभिशुत सोम पान करो (१.१.७.१६.१०८.८.). ।

इन्द्राग्नी ! तुम यदि निम्न पृथ्वी, अन्तरीक्ष अथवा आकाश में रहते हो, तो . . . (यथापूर्व) (१०) ।

इन्द्राग्नी ! यदि तुम आकाश, पृथ्वी, पर्वत, शस्य अथवा जल में अवस्थान करते हो तो . . . . .(यथापूर्व) (११) ।

नेता नासत्यद्वय ! अंगिरावंशीय कक्षीवान् मैं मनोऽनुकूल द्रव्य की प्राप्ति की तरह तुम्हारा अनुष्ठान उद्घोषित करूंगा। क्योंकि तुमने शीघ्रगामी घोड़ों के खुरों से निकाले हुए मधु से संसार में सैकड़ों घड़े पूरे कर दिये थे। (१.१.८.१७.११७.६.) ।

ऊपर के तथ्य हमारी धारणा के स्पष्ट आधार हैं। ये बहुत थोड़े से चुने हुए तथ्य हैं। अधिक विस्तार से देखने पर और भी ऐसे तथ्य मिल सकते हैं। इस प्रकार प्रतीत होता है कि ऋग्वेद की ऋचाएं प्रारंभ की छः अथवा और भी बाद की पीढ़ियों के कुछ बाद प्रारंभ हुई। हो सकता है इसमें कुछ ऋचाएं ऐसी हैं, जो बहुत प्राचीन हैं। डा० सुनीति-कुमार का ऐसा मत है।

वेद के कुछ मंत्र विदेश में ही बन चुके थे। वे भारत में बाद में आये। ऋग्वेद और आवेस्ता में कुछ छंद मिलते हैं।[1]

आर्य्य परस्पर भी लड़ते थे। कुछ आर्य्य अवैदिक भी थे। पूर्वीय आर्य्येतर जातियों को आर्य्यों के दोनों ही रूपों से लड़ना पड़ा।[2] चित्ररथ और अर्ण से परस्पर आर्य्य लड़े थे।[3] आर्य्यों की पर्शवों (पारसी ?) से शत्रुता थी (ऋ. वे. १।१०५।८)।[4] अवेस्ता (१२यज्न) में देवों को पापी, दुराचारी, ध्वंसक बताया गया है। अहुरमज़्द देवों का शत्रु है।[5].

असुर और पर्शिया के बीच सशक्त मितन्नी के लोग थे तथा पैलस्टाइन का रेगिस्तानी पूर्वी भाग था।[6] पार्जिटर का विचार है कि वेद पूर्वी भूभागों में (पश्चिम हिमालय के; अर्थात् देर से—उत्तर पश्चिम भारत में) बने, क्योंकि उनमें अनार्य्यों का वर्णन प्रारंभ में ही है।[6]

हर्नेल का मत था कि आर्य्य पहले पूर्व भारत की ओर हिमालय की तराई की ओर बढ़े। मेरा मत है कि वे नागों के सम्बन्ध में आये, जो पूर्व तक फैले थे और पूर्वीय हिमालय प्रांतस्थ जातियों से मिले, जिससे उनमें पूर्व का कुछ ज्ञान है।

वैदिक मंत्र बने पहले, परंतु लिखे बहुत बाद में गये। मुंहजबानी याद रखे जाने के कारण वे अनजाने ही भाषा में आते हुए परिवर्त्तनों के साथ अपना रूप भी बदलते गये,

---

१. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ० ३९।

२. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ० ४०

३. भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ० १५

४. वही पृ० ७

५. ऋग्वेदिक इंडिया १.पृ० १७१.

६. असुर इंडिया पृ० ४

७. असुर इंडिया पृ० ९८

जिसके विषय में ज्ञान नहीं रह सका। सुनीतिकुमारजी का मत है कि वेद की प्राचीन भाषा कुछ इस प्रकार की रही होगी।[१]

वेद

वर्त्तमान रूप	प्राचीन रूप
अग्निम् ईले (ईडे) पुरोहितम् यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम् होतारम् रत्न धातमम्	अग्निम् इज़्दइ पुरज्-धितम् यज़्नस्य दैवम् ऋत्विजम् ज़्हौतारम् रत्न-धातमम्

गायत्री

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्	तत् सवितज़् वरैनियम् भर्गज़ दैवस्य धीमधि धियज़् नस प्र'कौदयात्

परवर्त्ती काल में मुख परंपरा से याद रखी गई चीज भाषा के बदलते हुए अपना भी रूप बदलती गई।

विद्वानों का आर्य्यों के भारत में आगमन पर भिन्न मत है। एक है, अनेक दलों में आर्य्य भारत में आये। हिंद-आर्य्य भाषा में ३००० ई. पू. भी बोलियों में प्रगट भेद थे।[२] यही मत उचित प्रतीत होता है।

ऋग्वेद में ट, ठ, ड, ढ हैं। अवेस्ता में नहीं हैं। क्या यह प्रगट करता है कि ऋग्वेद यहां के निवासियों के संबंध में आने के बाद प्रारंभ किया गया? संताल, हीब्रू और सुमेर जैसे अपने निवास स्थानों की याद करते हैं, वैसा कहीं ऋग्वेद में नहीं मिलता।[३] ऋग्वेदिक संस्कृत तथा सुमेरियन में भी कुछ समता है।

नारद का आर्य्येतर पाशुपत तथा पांचरात्र से संबंध प्रतीत होता है। सुमेरियन में नर–ऋषि, तथा अद–पिता है। सुमेरियन में नर माने गायक भी है। इसी प्रकार किन्नर में भी नर है। सुमेरियन 'गुर' शब्द ही वैदिक में गुरु बन गया लगता है।[४]

कुछ ट्यूटानिक भाषाओं में ट,ड प्रयुक्त हैं, जैसे जर्मन और अंगरेजी में।[५] वैदिक प्रयोग कालांतर में बदल गये हैं। पहले जो मधु माधव थे, वे बाद में ब्राह्मण युग में लगभग २५००–२००० ई. पू. मार्गशीर्ष, पौष कहे जाने लगे।[६]

'सुरा' के लिये एक ही मूल प्रतीत होता है।

संस्कृत (सुरा), फारसी (हुरा); तातारी तथा पूर्वी फिनिश् (सर, सुर, स्र, स्रँ,) रूप मिलते हैं।[७]

---

१. इंडोआर्यन एण्ड हिन्दी पृ० ५४

२. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ० २०

३. इंहिक्वा ४. १९२८. पृ० ६७९ ५. इंहिक्वा ५. १९२९. पृ० २५९.

४. वही पृ० ६८८–८९. ६. वही पृ० २५९. ७. प्रिहिस्टॉरिक एंटिक्विटीज आफ़ द आर्यन् पीपुल्स पृ० ३२६.

संस्कृत के शब्दों से अनेक भाषाओं में साम्य है; इस विषय पर काफी लोगों न प्रकाश डाला है। यहां ऐसे ही कुछ शब्दों को उद्धृत किया जाता है जिनमें देवताओं के नाम हैं और उनमें बहुत ही स्पष्ट साम्य है :

संस्कृत : द्यौस पितर
ग्रीकः जियस पेटर
लेटिन : जु-पिटर
ऐंग्लो सैक्सन : ति-व.

संस्कृत : उषस
ग्रीक : इओस
लेटिन : ऑरोरा
एंग्लो सैक्सन : ईस्ट[1]

तब यह कहना ठीक है कि प्रलय के उपरांत ही आर्य्यों का एक दल, जो इन्द्र की परंपरा, में था भारत में आया। यह मनु का कबीला था और इसमें कई गोत्र-गण सम्मिलित थे। ऊपर हमने देखा कि परवर्त्ती देव युग में ब्राह्मण ने शक्ति ग्रहण कर ली थी। ऋत्विज होने का उसने लाभ उठाया था। ब्रह्मा यज्ञ में सलाह देता था। वही स्थान ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणस्पति ने ले लिया।

देवयुग और बाद के युग में कोई ऐसा भेद नहीं किया जा सकता कि इस रेखा के इधर-इधर देव युग है, और उधर-उधर दूसरा युग है। देव सप्तसिंधु के उत्तर पश्चिम में आ गये थे। एक और परंपरा है कि दैत्य, दानव, राक्षसों को देवों ने कृत युग के अंत में स्वर्ग से निकाल दिया और ये सब समुद्र के पास बनों में, पहाड़ों में जा छिपे।[2] इस प्रकार के कृतयुग का वर्णन केवल इतना प्रगट होता है कि एक अत्यंत प्राचीन युग विशेष के अंत में देव विजयी हुए। मेरा मत इससे भिन्न है। यह परंपरा स्पष्ट प्रगट करती है सत्ययुग तक मनु के कबीले और उत्तर वासी देवों में संबंध रहा आया। बल्कि कहना चाहिये कि ऋग्वेद काल के अंत या मध्य तक असुर, दैत्य, दानव इत्यादि उत्तर पश्चिम से दक्षिण की ओर चल पड़े और कुछ पूर्व की ओर भी बढ़े। राक्षस प्रकरण में यह बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा।

मनु के कबीले में वर्णव्यवस्था के आदिम चिन्ह प्रगट होते हैं। विद्वानों का भी मत है कि प्राचीन देवासुर संग्राम समाप्त होने पर परवर्त्ती आर्य्य दिखाई देते हैं।[3] यह ठीक

---

१. एन्शेन्ट इंडिया रेप्सन पृ० ४३
२. एपिक मायथॉलॉजी पृ० ४८
३. असुर इंडिया पृ० ६६

हैं। वर्णों का उदय पहले काम के बंटाव के अनुसार हुआ। इस समय वर्ण जाति के बाधक नहीं होकर केवल पेशे का इंगित करते थे।

सबसे पहले हमें प्रलय और उसके बाद के काल पर दृष्टिपात करना चाहिये। प्रलय के बाद मनु की परंपरा चलती है। ऋग्वेद प्रमाण है कि इन्द्र भारत में नहीं आया था। प्रलय की घटना देवासुर संग्राम के बाद की है।

प्रलय का उल्लेख अन्य जातियों में भी हुआ है।

विवनहृत् का पुत्र यिम था। (मनु?)

मनु के पिता का नाम भी विवस्वत है।

यिम जमशेद था! जमशेद ने नियम बनाये थे। प्रजा को चार भागों में इस प्रकार विभाजित किया : आथर्वण, रथेष्तर, वास्त्र्योष, तथा हुतोख।[१]

चैल्डिया—असीरियन—गाथा इस प्रकार है : प्रलय से पहले ही राजा जिसुथ्रोस को मत्स्य देवता ओनीज ने चैतन्य कर दिया था कि विपत्ति आने वाली है, अतः जादू की किताबें वह सूर्य्य के नगर सिप्पारा में छिपा दे।[२]

अनुहुआक (मैक्सिको) के लोगों में यह विश्वास है कि वोडन के काल में प्रलय हुआ था।[3]

प्रलय, विष्णु, तथा मत्स्यावतार की कथा का अथर्ववेद १६.२६.६. में उल्लेख हुआ है।[४]

यह प्रलय काफ़ी व्यापक रहा था, ऐसा प्रायः सर्वसम्मत है।

प्रलय के बाद भारत और मिस्र के वंशों में समानता लगती है।

मिस्र	भारत।
मेनेस	मनु।
अत्थिॉस	इक्ष्वाकु।
केनेकेनीज	कुकच।[५]

प्रलय का वर्णन अथर्ववेद तथा शतपथ ब्राह्मण में है। प्रलय का वर्णन निम्नलिखित कथाओं में है—

(१) बैबिलोनिया की गिलगैमिश कथा।

(२) बैबिलोनियन बेरोसस कृत वर्णन।

(३) मिस्र की प्रलय कथा, जिससे तेम—मनुष्यों के पिता का संबंध है।

(४) ग्रीक्स के क्लासिकल वर्णन

(५) नूह के बाइबिल के वर्णन।[२]

१. जेके आरई. ३५. १९४२. पृ० ६१
२. वही पृ० ६२-६३.
३. वही पृ० ६४.
४. यक्ष २. पृ० ५३.
५. इंहिक्वा ३. १९२७ पृ० ३८.
६. ऋग्वेदिक इंडिया १. पृ० ३७.

भारतीय प्रलय वर्षा का फल नहीं था, जैसा अन्य स्थानों पर वर्णन है।[1] जेनोफन (यूनानी) का कथन है कि प्राचीन ग्रीस में ५ प्रलय हुए थे। अंतिम १५०३ ईसवी पूर्व हुआ था।[2] चालीस दिन और चालीस रात जल वर्षा हुई, ऐसा बाइबिल में उल्लेख है।[3]

प्रलय का समय प्रायः ३५०० ई. पू. और ३००० ई. पू. के बीच में लगाया जाता है।

प्रलय के बाद मनु ने सृष्टि की। मनु देव युग के अंतिम काल में हुआ। यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि देव इसमें बिल्कुल नष्ट हो गये। मनु को मत्स्य ने आकर देवों के कहने से प्रलय की सूचना दी थी।

पुराणों में उल्लेख है कि वैवस्वत मनु से पहले, अर्थात् प्रलय के पहले ६ मनु हो चुके थे: स्वायंभुव, स्वारोचिष, औत्तमी, तामस, रैवत, तथा चाक्षुष।[4] मनु की पत्नी मानवी थी (काठक संहिता)।[5] नाभानेदिष्ट मनु पुत्र था।[6] पर्शु मानवी पुत्री थी।[7] मैत्रायणी संहिता में मनु के दस स्त्रियां थीं।

मनु स्वयं एक पहेली है। फिर ययाति तक देवों से सीधा संपर्क दिखाई देता है। अतः इससे केवल प्रगट इतना ही होता है कि मनु के काल से कुछ नये प्रकार का समाज प्रगट हुआ। वास्तव में यह वर्णों का उदय था। समस्त परंपरा इसे स्वीकार करती है। बर्बर युग के मध्यकाल के अंत में मनु हुआ। उत्तर बर्बर युग में वर्ण व्यवस्था प्रारंभ हुई। मध्य बर्बर तक समाज में व्यक्तिगत संपत्ति नहीं थी। मनु के समय से वह प्रारंभ हुई, परंतु एक दम ही व्यक्तिगत संपत्ति सर्वस्व नहीं हो गई।

मनु में प्राचीनता के चिह्न हैं। मनु ने गंधर्व कन्या के सहयोग से हिमवन्त पर सृष्टि की, जहां नौका टकराई। मनु ने यज्ञ किया अर्थात् सामूहिक उत्पादन वितरण करके शक्ति ग्रहण की। मनु ने इस यज्ञ से उत्पन्न इडा को भोगना चाहा। शतपथ ब्राह्मण की यह कथा प्रसिद्ध है। यज्ञ दुहिता के प्रति प्राचीन रीति नहीं चल सकी। इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि मनु प्राचीन समाज को रखना चाहता था, किंतु गण गोत्र के नियमों में फर्क आ चुका था। विवाह के वे प्राचीन नियम अब नहीं रहे थे। जोड़ों के विवाह की पद्धति अब पुरानी पड़ चली थी। और पितृसत्तात्मक समाज अपनी जड़ें अधिक जमाता चला जा रहा था।

ऋषि मनुष्य के साथ बने रहे। ऋषि ब्राह्मण थे। किंतु देवताओं की संतान अपनी सीमाओं का ज्ञान होने के कारण मनुष्य बन गई अर्थात् समाज में विषमता के प्रादुर्भाव ने

---

१. ऋग्वेदिक इंडिया पृ० ३८.
२. वही पृ० ३६.
३. बाइबिल, जिनेसस ७. अ. ७. १२. पृ० २१.
४. इंडिक्वा ३. १६२७. पृ० २८.
५. वेदिक इंडैक्स २. पृ० १२६.
६. वही १. पृ० ४४१.
७. वही पृ० ५०४.

उससे प्रारंभिक सरलता और मस्ती छीन ली और देव सभ्यता उसकी याद में केवल कल्पना बनकर समा गई—वह सामूहिक जीवन जो अब लौट नहीं सकता था।

ईरानी प्राचीनकाल में १६ देशों को जानते थे।

(१) एरयानो वीजो
(२) सुग्ध (सुग्धियाना-समरकन्द)
(३) मोरो (मर्गियाना-मेटो)
(४) बक्दिद (बैक्ट्रिया : बल्ख़)
(५) निसय (निसिया)
(६) हर (सरयू: अर्किया: हेरात)
(७) वैकरेता (कावुल)
(८) ऊर्व (कावुल, इस्फहान के पास)
(९) ख्नेनता (कंदहार)
(१०) हरह्वैती (सरस्वती, ईरावतीया अर्कोशिया, हारूत)
(११) हेतुमन्त (हेल्मंद)
(१२) रघ (राय)
(१३) छख्र।
(१४) वरेन्
(१५) हप्तहिन्दु (सप्तसिंधु)
(१६) रंघ।[1]

वैन्डीडेड में उल्लेख है कि अहुरमज़्द ने सोलह देश बनाये। अंग्रमन्यु ने इन सब को पानी में डुबा दिया। प्रलय में असुर लोग उत्तर की ओर निकल पड़े। देव पार्वत्य प्रदेशों पर चढ़ गये और मनु का कबीला भारत में आ निकला। मनु के कबीले में देव परंपरा जीवित रही। एक मत है कि यह हिंदी-यूरोपीय आर्य्य चैलकोलिथिक युग में दिखाई देते हैं।[2]

वेदकाल में जातीयता (Nationality) का विकास नहीं हुआ था।[3] इन के पास पत्थर के धनुष थे। (ऋ. वे. ९. ११२. २) लकड़ी और पत्थर के पात्रों में पानी पीते थे (९.६५.६; १०.७५.३; १०.१०१.१०) तैत्तरीय ब्राह्मण में तांबे के उस्तरे का उल्लेख है (१०.५) जिस से ब्राह्मण का सिर मूंडा जा सकता था।[4] जैकोबी ने वेद का समय ४५०० ई. पू. माना है। मॉस्कोन्यूज (सोवियत् रूस) फर्वरी १९४४ के एक लेख में प्रमाणित किया गया है कि अवेस्ता का समय, जो अब माना जाता

१. ऋग्वेदिक इंडिया पृ० १६८.
२. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रि हिस्टॉरिक इन्डस १. पृ० १८ भूमिका
३. वही पृ० १४ ४. वही पृ० १८.

है, उससे कहीं अधिक प्राचीन था। विंटरनिट्ज ने ईसवी पूर्व तीसरा सहस्राब्द ही वेद का समय माना है।[1]

उपर्युक्त मत हमारी धारणा को और भी पुष्ट करता है क्योंकि हमारा तिथि संधान इसके अनुसार प्रायः ठीक बैठता है। ये आर्य्य यज्ञाग्नि को लेकर बढ़ते थे और गण रूप में अपने पशुओं की रक्षा करते थे। इन गणों में परस्पर भेद भी हो गये। इनमें यदु, तुर्वश आदि में परस्पर भेद माने गये हैं।

समस्त तथ्य इंगित करते हैं कि प्रारंभ की पांच छः पीढ़ियों तक आर्य्य अधिक पूर्व की ओर नहीं बढ़ सके और वे देवों के निकट ही थे। उनसे संपर्क में भी थे। ऋग्वेद में लगभग २५ नदियों का उल्लेख है, वे सब सिंधु तक ही रहती हैं।[2]

नहुष का ऊपर उल्लेख हो चुका है। संभवतः वह नाग ही था। मनु के पुत्रों के विषय में काफ़ी उलझन है। मेरा मत है कि मनु पुत्र परंपरा के रूप में, पैतृक संपत्ति भोगने वालों के रूप में, प्रारंभ में शासक नहीं थे। इनमें जो योग्य व्यक्ति चुन लिया जाता था, वही राज्य किया करता था। इतना तो निश्चित है कि स्त्रियां प्रत्येक जाति की आती थीं। मनु की गंधर्वी, पुर्वस की अप्सरा थी। नहुष से इन्द्राणी ने भोग क्यों अस्वीकार कर दिया, यह प्रश्न है। देव समाज स्वतंत्र था। दक्ष, मरीचि प्रकरण में महाभारत में भाई बहिन के विवाह तक का उल्लेख है। मेरा मत है कि नहुष जाति नाग जाति की एक उपशाखा थी और देव उस समय यद्यपि मनुष्यों से जीत नहीं सकते थे, परंतु वे अपनी यज्ञ-समूह-कृति को त्यागना नहीं चाहते थे और स्त्री का ऐसा अपमान उन्हें स्वीकृत नहीं था।

स्त्री और पुरुष दोनों ही ऋग्वेद काल में उष्णीष पहनते थे।[3] कद्रू सोम पात्र को कहते थे।[4] गंधर्व 'अवका' का पौधा खाते थे।[5] सोम की छलनी मेष के ऊन की बनती थी। उसका नाम था अवि, मेषी, अव्य, अव्यय।[6] मेष को अख्ता किया जाता था—पेत्व या वध्रि मेष।[7] असुरविद्या माया कहलाती थी।[8] आघाति नृत्य वाद्य था।[9] ढोल को आडम्बर[10] तथा धर्मशाला को आवसथ[11] कहते थे। जुए का शौक था।[12] मुर्दे और जीवित के बीच पत्थर रखा जाता था।[13] अमा-जुर उस अविवाहित स्त्री को कहते थे, जो पिता के घर पर ही बड़ी और बूढ़ी होने लगती थी।[14] अमा—घर, कृषि—खेत, अरण्य-ग्राम से परे, तथा अग्रोगू—वेश्या, कहते थे।[15] मृत के शरीर पर गोमांस लगाया

---

१. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रि हिस्टॉरिक इंडस पृ० २०.
२. एन्शेन्ट इंडिया, रैप्सन पृ० ३६.
३. वैदिक इन्डैक्स १ पृ० १०४
४. वही पृ० १३४.
५. वही पृ० ३६.
६. वही पृ० ४१
७. वही पृ० ४१
८. वही पृ० ४८.
९. वही पृ० ५३.
१०. वही पृ० ५३.
११. वही पृ० ६६
१२. वही पृ० ३
१३. वही पृ० ८.
१४. वही पृ० ३०.
१५. वही पृ० ३३.

जाता था। (ऋ. वे. १०. १६. ७.)।[1]

निस्संदेह यह पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के बदलते हुए अधिकारों को प्रगट करने वाले तथ्य हैं। इनको विस्तार से आगे देखना उचित होगा। क्योंकि इस युग में स्त्री का समाज में स्थान काफी बदल गया था।

वैदिक युग में अनेक जातियों के नाम आते हैं। श्विक्न (शतपथ ब्रा.),[2] निषाध,[3] पश्चिम के स्पर्शु (बौधायन श्रौत सूत्र)[4] वरशिख के नेतृत्व में एक जाति विशेष (नाम ?),[5] वश (एतरेय ब्र. मध्यदेशीय, कुरु, पंचाल, उशीनरों तथा मत्स्यों के साथ उल्लिखित)[6] मारगार (शिकारी), कैवर्त्त, केवंत, पौंजिष्ट, दाश तथा मैनाल (वाजसनेयि संहिता)[7] कीकट (प्रमंगद राजा) नैचाशाख (नीच जाति)[8] पुण्ड्र (अछूत-एतरेय ब्रा.)[9] निषाद,[10] किरात, चाण्डाल, पर्णक, शिम्यु[11] आंध्र, शबर, पुलिंद, मूतिब, (एत. ब्रा.)।[12].

ये जातियां आर्य्यों को भारत में आने पर एक साथ ही नहीं मिल गईं। धीरे-धीरे ही इनसे संपर्क हुआ। जैसे जैसे आर्य्यों को नई नई, जातियां मिलती गईं उनमें वर्ण व्यवस्था की नींव सुदृढ़ होती गई। यहां इतना कहना काफी है कि इनमें से अधिकांश से आर्य्यों को यहां युद्ध करना पड़ा।

आर्य्यों की आदिम बस्तियां ये थीं---सोम, आर्जीक, अस्त्यावन्त, शर्षणावन्त, सुषोमा पंचजना, आदि प्रांतों में पिया जाता था।[13]इन प्रांतों में सोम या तो सुपर्ण लाता था, या गंधर्व। गंधर्व को शूद्र माना जाता था, इसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। सुपर्ण भी इनसे अलग ही जाति थी। आर्य्य सोम पान के अत्यधिक शौकीन थे, यह उनकी अनेक ऋचाओं से स्पष्ट प्रतीत होता है।

देवयुग में भी सोम का बहुत महत्त्व था, यह देखा जा चुका है। परवर्त्ती आर्य्य द्रव्य देकर गंधर्व से सोम लाते थे। उसे हर कोई नहीं ला सकता था। सोम पर्वत पर पाया जाता था, जहां हर किसी की पहुंच नहीं थी। सोम आर्य्य संबंधों का प्रतीक था। यज्ञ के बाद सोम, पान की विशेष रीति थी और परस्पर उसे प्राप्त करने की होड़ रहा करती थी। कभी-कभी आपस में झगड़े भी हो जाते थे।

वेद काफी बाद में प्रारंभ हुआ। यह वैदिक काल काफी समय तक चला, इसे भाषा वैज्ञानिकों ने स्वयं स्वीकार किया है। परवर्त्ती वेद की भाषा में पुरानी वेद की भाषा से वही फर्क है, जो गोरखनाथ की हिंदी और आधुनिक हिंदी में है। जैसे गोरखनाथ के युग

१. वैदिक इन्डैक्स २. पृ० १४६.
२. वही २. पृ० ४०८.
३. वही १. पृ० ४५३.
४. वही पृ० ४९८.
५. वही पृ० २४५.
६. वही पृ० २७३.
७. वही २. पृ० १७२.
८. वही पृ० ३८
९. वही २ पृ० ५३६.
१०. वही १ पृ० ४५३.
११. वही १ पृ० ३५८
१२. वही पृ० २३.
१३. वही २. पृ० ४७५

में : खेलिबा, हंसिबा, गायबा गीत है, तो आजकल खेलना, हंसना, गाना गीत। भाषा वैज्ञानिक इस समय को लगभग १००० वर्ष मानते हैं। इस प्रकार ३५००–१००० –लगभग २५०० ई. पू.। हमें यहां आर्य्यों के रहन सहन, वेशभूषा और गृह निर्माण तथा खेती करने के तरीकों पर अधिक विवेचना करने की आवश्यकता नहीं है। इन विषयों पर काफी लिखा जा चुका है। हम यहां उन विषयों को देखेंगे, जिन पर विद्वानों की दृष्टि नहीं गई है।

ऊपर समाज के विकास पर थोड़ा प्रकाश डाला गया है। वर्ण तथा वर्गभेद का विस्तृत विवेचन महाभारत युग तथा कलियुग वाले अध्ययन में एक साथ करना ठीक होगा, अतः उसे हम यहां नहीं ले रहे। उसकी झलक अवश्य दे दी गई है।

यहां असंख्य जातियां रहती थीं। उनसे आर्य्यों का युद्ध होता था। धीरे-धीरे आर्य्यों का प्रसार होने लगा। इस प्रारंभिक सत्ययुग में अगस्त्य दक्षिण तक पहुंच गये। अगस्त्य का उल्लेख ऊपर हुआ है। अगस्त्य का त्रेता युग में भी उल्लेख आयेगा। निस्संदेह यह एक ही व्यक्ति नहीं था। एक ही परंपरा के अनेक व्यक्ति थे। उन्होंने विंध्य को पार किया और राह के समस्त बंधनों को कुचलते हुए आर्य्य धर्म फैलाने लगे अर्थात् आर्य्य शासन की नींव डालने लगे। पूर्व में अयोध्या में आर्य्यों का सुदृढ़ शासन जम गया। आर्य्यों का चतुर्दिक प्रसार होने लगा, जिसे देखकर सब विस्मय करते हैं।

इन सब प्रांतों में एक ही व्यवस्था नहीं थी। कहीं गण थे, कहीं राज्य थे। चाणक्य के युग तक यही देखने को मिलता है। कहीं साम्राज्य थे, तो कहीं गण थे। गण भी अनेक प्रकार के थे। उनके समाज की व्यवस्था भी भिन्न थी।

देवदेश धीरे-धीरे दूर होता जा रहा था। उत्तर कुरु 'परेण हिमवन्तम्—' हिमालय परे था। वशिष्ठ सात्यहव्य ने उसे 'देवक्षेत्र' कहा है। एक बार जानंतपि अत्यराति ने उसे जीतने की इच्छा की थी।[1]

परवर्त्ती साहित्य में कवि—अर्थात् ऋषि—जिनको संहिताओं में एक पवित्र अतीत का नियमदाता बताया गया है, पवित्र जाने जाते थे। उनके कामों का ऐसा वर्णन किया गया है जैसे वे देवता या असुर थे।[2]

गोतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, को ऋषि कहा गया है। ऋग्वेद में कुत्स, अत्रि, रेभ, अगस्त्य, कुशिक, वशिष्ठ, व्यास का वर्णन है। अथर्व में अंगिरा, अगस्ति, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप, वसिष्ठ, भरद्वाज, गविष्ठिर, विश्व.मित्र, कुत्स, कक्षीवान्, कण्व, मेधातिथि, त्रिशोक, उशना काव्य, गोतम तथा मुद्गल का वर्णन किया गया है।[3]

इन ऋषियों का तत्कालीन समाज पर विशेष प्रभाव रहा है। यही लोग गोत्रों के स्रोत थे। असुर भी पुरोहित होते थे। असुर पुरोहित आकुलि का किलात (किरात)

१. वेदिक इन्डैक्स १. पृ० ८४ २. वही पृ० ११६ ३. वही पृ० ११६

के साथ उल्लेख है।[1] यह किरात या तो असुर था, या हमारे ऊपर वर्णित किरात परिवार का था। किरात परिवार से अनेक स्थानों पर संबंध है। पुरुर्वस और ऊर्वशि के हुए : आयु, वनायु, शतायु, दृढ़ायु, धीमत् तथा अमावसु।[2] अप्सरा इन्द्र कन्या हैं। गंधर्व इनके भाई हैं। हेमा, स्वयंप्रभा, प्रसिद्ध अप्सराएं हैं। अप्सराओं की माताएं बच्चों को चुराती थीं।

अप्सरा शकुंतला ने भरत को नाडपित नामक स्थान में जन्म दिया था (शतपथ ब्राह्मण)।[3]

यहां कुछ तथ्य एकत्र किये जाते हैं: वेन ऋग्वेद में दयावान् राजा था।[4] ऋग्वेद में पुरुर्वस तथा ऊर्वशि की बातचीत है। पुरुर्वस ऐल था।[5] पृथि, पृथी, पृथु, ऋग्वेद में प्राचीन है। बाद में ऋषि है। वह खेतीबाड़ी का जनक है। वैन्य है।[6] प्रतर्दन दैवोदासि युद्ध में मृत्यु के बाद इन्द्र के स्वर्ग में चला गया था (कौशीतकि उपनिषद)।[7] गोपवन ऋग्वेद में एक कवि है।[8] चरक घूमते फिरते विद्यार्थी को कहते थे।[9] कच्छप पहले भरतों का टाटेम था, बाद में वह हरि का अवतार हो गया।[10]

इन तथ्यों से क्रम का आभास होता है; पुरुर्वस पुराना था; वेन परवर्त्ती। पृथु और भी परवर्त्ती। प्रतर्दन और भी बाद में हुआ, क्योंकि तब तक इन्द्र के पास सशरीर जाना बन्द हो चुका था। इन्द्र स्वर्ग का राजा हो गया था।

आर्य्य पहले पश्चिमोत्तर में आये।

एम. एस. वत्स के अनुसार हरप्पा (एक्सकेवेशन एट हरप्पा भाग १. पृ० ४–५) तथा मोअन-जो-दड़ो की आबोहवा पहले बहुत ही और किस्म की रही होगी। खूब पानी बरसता होगा। वहां जंगल रहे होंगे; क्योंकि सब प्रायः जंगल के ही पशु हैं जैसे नम जंगलों में पाये जाते हैं।

सप्तसिंधु प्रदेश के जो आर्य्यों ने गुण गाये हैं, वे यही प्रगट करते हैं कि उस समय सिंध के इलाके की जलवायु बहुत अच्छी थी। आजकल जैसा सूखा नहीं था। विद्वानों का मत है कि सिंधु के अतिरिक्त भी उस समय एक नदी सिंध प्रांत में बहती थी, जिसकी धारा का तला देख कर अनुमान किया गया है कि वह बहुत तेज बहती थी। वेद में अर्जीकीया नदी का सिंधु के पास बहने का उल्लेख है। संभवतः वह नदी अर्जीकीया ही थी। परंतु इसको निश्चय से नहीं कहा जा सकता।

इतना निश्चित है कि आर्य्यों को बहुत प्रारंभ में ही ऐसे लोगों से पाला पड़ा था, जो नगर बना कर रहते थे और आर्य्यों को मार कर भगा दिया करते थे। इसके उदा-

---

१. वेदिक इन्डैक्स १. पृ० ५१
२. एपिक मायथॉलॉजी पृ० १६२.
३. वेदिक इन्डैक्स २. पृ० ३४८
४. वही पृ० ३२५
५. वही पृ० ३
६. वही पृ० १६
७. वही पृ० ३०
८. वही १ पृ० २३८.
९. वही पृ० २५६.
१०. एपिक मायथॉलॉजी पृ० २६

हरण देने की आवश्यकता नहीं है। वेद के प्रारंभ में ही आर्य्यों की भरपूर प्रार्थना है कि हे इन्द्र, अग्नि इत्यादि देवताओ! हमारे शत्रुओं से हमें बचाओ, और उनका धन हमें प्राप्त कराओ। धन की बेहद माँग की गई है।

कुछ लोगों का मत है कि हरप्पा और मोहन-जो-दड़ो में आर्य्य ही रहते थे। मोहन-जो-दड़ो के उत्तर-पश्चिम में लगभग ४०० मील दूर रावी की रेत में हरप्पा है।[१] मोहन-जो-दड़ो में बड़े मंदिर नहीं हैं। वेदिक लोग भी घर पर ही वेदी बना लेते थे। उनके भी मंदिर नहीं होते थे।[२] उत्तरी अमेरिका के रेड इंडियनों की एक कबीला जाति लोसियाना, अखंड ज्योति रखती है।[३] यहां रेड इंडियन साम्य भी दिखाना आवश्यक इसलिये प्रतीत हुआ कि जो यह साबित करते हैं कि जातियां एक दूसरे की संस्कृति से लकीरें खींच कर अलग रहती थीं यह ग़लत है। हरप्पा के चित्रों में स्वस्तिका बनी है। वही गणेश के रूप में परवर्त्ती काल में उतर आई है। इसलिये ऐसे विभाजन करना असंगत प्रतीत होता है। यह बातें अधिक-से-अधिक संबंध प्रगट करती हैं।

मोहन-जो-दड़ो में तीन सिर के पशु मिले हैं। त्रिशिरा असुर था, रावण का एक पुत्र भी त्रिशिरस् था।[४] तीन सिर के देवता पश्चिमी जातियों में भी माने जाते हैं। यह भी पारस्परिक संबंध प्रगट करने वाले तथ्य हैं। हमने देखा है कि (ऊपर) आर्य्य तथा द्रविड़ परिवारों में बहुत पहले ही संबंध हुए थे। उनमें किरात तथा नाग और सुपर्ण संबंध भी थे।

ऐसे साम्य और भी हैं।

नाल तथा शाही-तुंप (दक्षिण-पश्चिम बिलोचिस्तान) में मृत को पूरा दफ़नाया जाता था।[५] आधा दफ़नांना भी चलता था। जलाते भी थे।[६] आर्य्य भी गाय का चमड़ा उढ़ाकर जलाते थे। यह अर्द्ध दाह था। ऋग्वेद १०.१६.७ में—

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व
सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च,
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो
दधृग्विधक्ष्यन् पर्यङ्‌क्ष्यते।

आता है। अर्थात्—'हे मृत! आग की लपटों को इस गोचर्म का कवच मान कर सह, अपनी चर्बी से घिरा रह, ताकि यह भयानक आग जो तुझे दर्प से जलाने को उद्यत

१. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १, पृ० ३/३४.
२. वही पृ० ५/४५.
३. वही पृ० ७२.
४. अभांओरिइं २३. १९४२ पृ० १६४–६५.
५. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इन्डस १. भूमिका. पृ० २१.
६. वही पृ० २२.

है, तुझे चारों ओर से नहीं घेर सके।[१] कालांतर में बुद्ध का भी अर्द्धदाह हुआ था।[२] वैदिक युग में अगली दुनिया का रास्ता दिखाने के लिये, एक बकरा भी साथ ही जला दिया जाता था। एक बैल भी अगली दुनिया में मृत के चढ़ने के लिये संग जला दिया जाता था। (अथर्ववेद)[३]

परवर्त्ती वेद-काल में याज्ञवल्क्य ने शाकल से बृहदारण्य उपनिषद में कहा है : हे अहल्लिक ! जब मन हमारे शरीर से कहीं और चला जाता है, ध्यान रख, तब शरीर को कुत्ते खाते हैं, चिड़िया, पक्षी फाड़ते हैं। (अध्याय ३. ब्राह्मण १०.२५.) इससे प्रकट होता है पशु-पक्षी को खाने के लिये शरीर छोड़ते भी थे।[४] हॉडी में, हरप्पा में, अनाऊ में दफ़नाते थे।[५] ऋग्वेद के काल में लोग तब अट्टालिकाओं तक से परिचित थे। (ऋ. वे. ६.८६.४१)[६]

भारत के उत्तर-पश्चिम में द्रविड़ तथा उत्तर से पूर्व तक गंगा प्रदेश, हिमालय आदि में आस्ट्रिक जातियां रहती थीं। द्रविड़ दास या दस्यु थे। नगर-निर्माता थे। योग चलता था। पशु पालते थे। उनमें जाति भेद का तत्त्व भी था। शिव, उमा, पशुपति; तेसुप—हेपित या मा—अथीस; एशिया-माइनर की मातृपूजा; मिना ओन, हेलेनिक-पूर्व-ग्रीस मोहन-जो-दड़ो; यह देवता, मत तथा स्थान और संस्कृति परस्पर मिलते-जुलते थे। मोहन-जो-दड़ो के विशाल चहारदीवारी थी और आर्य्यों को डराये रखते थे। इनका समाज मातृसत्तात्मक था।

आर्य्यों का समाज पितृसत्तात्मक था।

आस्ट्रिक राजगढ़ (बिहार, राजगिर), मध्यभारत में रहते थे। उनके नगर नहीं थे। प्रधानतः ग्राम-सभ्यता थी।

आर्य्यों का प्रसार उत्तर-पश्चिम पंजाब से पहले सिंधु के पथ से नहीं हुआ। उन्होंने दक्षिण पंजाब और सिंधु प्रदेश को छोड़ दिया और पहले पंचनद पार करके वे गंगा के मैदान की ओर बढ़े क्योंकि आस्ट्रिकों को जीतना तुलनात्मक रूप में आसान था।[७]

तत्कालीन समाज-व्यवस्था में राजा को रखना और हटाना प्रजा के हाथ में न रह कर संभवतः ब्राह्मणों के हाथ में चला गया था। कुछ आर्य्य कबीले ब्राह्मणों के भी द्वेषी थे।

सृंजयों ने दुष्टन्तु पौम्समान नामक राजा को, १० पीढ़ियों के वंशानुक्रम शासन के बाद भगा दिया। रेवोत्तर पाटव चाक्रस्थपति नाम का मंत्री भी भगा दिया गया। मंत्री ने ग्यारहवीं पीढ़ी के इस राजा को किसी प्रकार फिर सिंहासन पर बिठाया।

---

१. ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टॉरिक इन्डस पृ० २३.
२. वही पृ० २४.
३. वही पृ० २५.
४. वही पृ० २६.
५. वही पृ० ३२.
६. वही पृ० ३८.
७. इन्डो आर्यन हिंदी पृ० ४४–४५.

उसके विरोधी बाल्हीक प्रतीपीय, कुरुराजन्य थे।[१] सृंजय ब्राह्मणों का नाश करते थे। बाद में ब्राह्मणों ने उनको नष्ट कर दिया।[२]

भृगु ब्राह्मण थे। वे ऋग्वेद में द्रुह्यु पुरोहित के रूप में वर्णित हैं। द्रुह्यु का असुर पुरु से संबंध उल्लिखित है।[३] भृगु ब्राह्मण हो गया था परंतु उसके असुर संबंध नहीं छूटे थे।[४] शुक्राचार्य जो असुरों का पुरोहित था वह भी भृगु वंश में ही उत्पन्न हुआ।

ऊपर भृगु का वर्णन किया जा चुका है जिसमें भृगु को, देवों और असुरों में परस्पर संबंध रखने की प्रवृत्ति का समर्थक बताया गया था। यहाँ वही तथ्य प्रगट होता है। भृगु से भी अधिक जो देवों के विरोधी थे वे ही अहुरमज़्द के अनुयायी बन गये।

वैदिक काल के विषय में कुछ तथ्य एकत्र किये जाते हैं। वेदकाल में 'वृ' सेना के एक गुल्म को कहते थे।[५] शामूल का अर्थ ऊनी कमीज़ जैसा वस्त्र था। (जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण)[६] सलितवात्[७] का ज्ञान संभवतः यह प्रगट करता है कि ये लोग मौनसून से परिचित थे। साधारणी वेश्या होती थी।[८] सोने का सिक्का वेदकाल में चलता था।[९] मृत्यु के बाद, वेदिक आर्य्य समझते थे, कि संपूर्ण शरीर सहित मनुष्य दूसरे लोक में जाता है ---'सर्वतनु: सांग:'। ऋग्वेद में दुष्ट को बुरा परिणाम तथा अथर्व में ब्राह्मण का नरक---इनका उल्लेख है।[१०] रामा वेश्या होती थी (तैत्तरीय सं०)।[११] विभिन्न जातियों में मुर्दों को अलग-अलग किस्म के ढूहों में दफ़नाया जाता था। चारों वर्णों के अलग-अलग रूप होते थे। एहि ब्राह्मण के लिये, आगच्छ क्षत्रिय, आद्रव वैश्य तथा आधाव शूद्र के लिये संबोधन थे।[१२] असली राज्य-शक्ति राजा और क्षत्रिय में निहित होती थी।[१३] ब्राह्मण आदायी, आपायी और आवसायी होता था---अर्थात् सब कुछ पाने वाला। शूद्र 'यथाकाम वध्या:' जब चाहे वध किया जा सकता था, दास होता था।[१४] लेकिन कहीं ऐसा नहीं मिलता कि नीची जाति के व्यक्ति के हाथ से खाना वर्जित था।[१५] मुनि लंबे बाल रखते थे, गंदे होते थे (अथर्ववेद)[१६] ऋग्वेद काल में कुछ लोग 'महाकुल' के कहलाते थे।[१७]

वृषगण ऋग्वेद में गायक थे।[१८] सदय-घुड़दौड़ या रथों की दौड़ का मैदान था। सभा होती थी। एक बड़ा कमरा होता था। उसमें जुआ या अन्य कार्यवाही होती थी।

---

१. वेदिक इन्डैक्स २, पृ० ४७०.
२. वही पृ० २४९.
३. असुर इंडिया पृ० ६०.
४. वही पृ० ६३.
५. वही पृ० ३३९.
६. वही पृ० ३७३.
७. वही पृ० ४३९.
८. वही पृ० ४४४.
९. वही पृ० ५०५.
१०. वही पृ० १७६.
११. वही पृ० २२२.
१२. वही पृ० २५३.
१३. वही पृ० २५४.
१४. वही पृ० २५५.
१५. वही पृ० २५६.
१६. वही पृ० १३७.
१७. वही पृ० १४०.
१८. वही पृ० ३२२.

वहां स्त्रियां नहीं जाती थीं।[१] समन, उत्सव, होते थे, जहां स्त्रियां, कुमारियां पति चुनती थीं और चंचल स्त्रियां अपने आनंद खोजती थीं।[२] पृत या पृतन रथ-दौड़ को कहते थे।[३] पेशस् नर्तकी के वस्त्र का नाम था।[४] प्रदिव तीसरा और सर्वोच्च स्वर्ग था (अथर्व वेद) पितृलोक था। कौषीतकि में सात स्वर्गों में से वह पांचवां लोक रह गया[५] (बृहदारण्यक उपनिषद)। पुलिस अफ़सर को प्रत्येनस कहते थे। उसका उग्र तथा सूत ग्रामणी के साथ उल्लेख हुआ है।[६] प्र-पा नखलिस्तान को कहते थे (ऋग्वेद)।[७] शतपथ ब्राह्मण में प्रेत का उल्लेख है।[८] पुनर्भू वह स्त्री थी जो दूसरा विवाह करती थी।[९] ऋग्वेद काल में किला जीतने को अग्नि फेंकते थे।[१०] ऋग्वेद काल में वेश्या थीं। वे पुंश्चली तथा महानग्नी कहलाती थीं।[११]

निम्नलिखित व्यक्ति तथा विषय महत्त्वपूर्ण थे:—

विश्वामित्र कुशिक[१२] (ऋग्वेद), मायावी शतयातु[१३], श्यावाश्व, विददांश्व पुत्र तरंत, पुरूमिल्ह, रथवीति, अर्चनानस् (श्यावाश्वपुत्र) रथवीति दाल्भ्य[१४], आत्रेय[१५] विभिण्डुकीय, सनकतथा नवक, काप्य[१६], सप्तसूर्य (आरोग, भ्राज, पटन, पतंग, स्वर्णाक, ज्योतिष्मान् तथा विभास[१७], पुरूपुत्र पौरु (इन्द्र का मित्र)[१८], उशिज, पजिय, दासीपुत्र कक्षीवन्त (परूआटणार, वीतहव्य श्रायस, त्रसदस्यु पौरूकुत्स्य के साथ वर्णित)[१९], कण्व (ऋ. वे.)[२०] दीर्घतमस् (मामतेय, औचथ्य, भरतों का पुरोहित, अंधा, त्रैतन आदि सेवकों ने नदी में फेंक दिया। दीर्घतमस ने त्रैतन को मार डाला। बहता हुआ अंगदेश पहुंचा)[२१]। तुरश्रवस (यमुना पर पारावतों को हराया)[२२], सहदेव (शिंपु तथादस्यु विजेता),[२३], रथवीतिदार्भ्य (दूर गायों से भरे गांव में पहाड़ों में रहता था)[२४], रहूगण, गौतम[२५], राहु (राक्षस असुर) (आ. वे.)[२६], रूशम, श्यावक, कृप[२७], कौरम, ऋणंचय, रूशम[२८], लौहित्य वंश[२९], वासः पलपूली (पुरुषमेध की बलि, यजुर्वेद)[३०], प्लति,[३१], मानु[३२], मायव[३३], पृथुश्रवस[३४], प्रजावन्त प्राजापत्य[३५] का नाम मिलता है।

---

१. वेदिक इन्डैक्स २, पृ. ४२६.
२. वही पृ. ४२६.
३. वही पृ. १५.
४. वही पृ. २२.
५. वही पृ. ३५.
६. वही पृ. ३४.
७. वही पृ. ३७.
८. वही पृ. ५३.
९. वही पृ. ५३७.
१०. वही पृ. ५३९.
११. वही १. पृ. ३९५.
१२. वही पृ. ३११.
१३. वही पृ. ३५२.
१४. वही पृ. ४००.
१५. वही पृ. ४०१.
१६. वही पृ. ४२२.
१७. वही पृ. ४२५.
१८. वही पृ. २६.
१९. वही १. पृ. १३१.
२०. वही पृ. १३४.
२१. वही पृ. ३६६.
२२. वही पृ. ३१४.
२३. वही पृ. ४४१.
२४. वही २. पृ. २०६.
२५. वही पृ. २०७.
२६. वही पृ. २२३.
२७. वही पृ. २२४.
२८. वही पृ. २२५.
२९. वही पृ. २३५.
३०. वही पृ. २९१.
३१. वही पृ. ५५.
३२. वही पृ. १५४.
३३. वही पृ. १५[illegible]
३४. वही पृ. १७.
३५. वही पृ. २९.

आर्य्येतर देवताओं का भी प्रभाव पड़ने लगा था। रुद्र देवता का वेद में वर्णन है। ऋग्वेद में १. १. ८. १६. ११४ सूक्त हैं। वह कपर्दी और जटाधारी हैं। उससे प्रार्थना की गई है कि लोग, पशु रोगशून्य रहें। यजुर्वेद में शतरुद्रीय है। रुद्र कुत्तों का स्वामी है।[१] पिनाक अथर्ववेद में रुद्र शिव का धनुष है।[२] रुद्र 'जलाश भेषज' है (ऋ.वे. तथा अ. वे)।[३] असुर का रुद्र शिव से संबंध था।[४] व्रात्यों तथा रुद्र शिवोपासकों में भेद माना जाता था।[५]

विद्वानों का मत है कि व्रात्य आर्य्य ही थे जो ब्राह्मणों की व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते थे। तभी उन्हें 'दीक्षिताः' और अदीक्षिताः कहा है। अथर्ववेद में व्रात्य का बहुत महत्त्व बढ़ गया है। वहां वह प्रजापति का सहयोगी हो गया है। प्रजापति उसकी बात मानता है। मेरा मत है कि व्रात्य शिव के उस रूप के उपासक थे जिसको आर्य्यों ने स्वीकार नहीं किया था। यह प्रकरण भारतीय इतिहास में अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। रुद्र शिवोपासकों से ज्ञात होता है कि शिव और रुद्र मिल कर एक हो चले थे।

हर्नल, स्टार्क तथा ग्रियर्सन का मत है कि आर्य लोग भारत में दो दफे में आये। इसी कारण बहिरंग तथा अंतरंग भाषा के दो रूप पाये जाते हैं। बहिरंग में दरदी मागधी, अवैदिक, सिंहाली तथा जिप्सी हैं। एभाप्रसाद चंदा ने इसके नेतृत्व तथा जातितत्त्व संबंधी आधार दिये गये हैं।[६]

आर्य्य आगमन पथ कुर्भा-स्वात-क्रुमु (कुर्रन) तथा गोमती (गोमल) था। आर्य हिमवन्त को जानते थे। मुजवन्त से सोम एकत्र करते थे।[७]

वरुण 'क्षत्र' तथा 'सम्राट्' था। उसको मास, दिवस, माया का ज्ञान था।[८] असुर का रुद्र शिव से संबंध था।[९] बोगजकोई में वरुण का सम्मान था।[१०]

आर्य्य दलों में आये और प्रत्येक दल में भाषा के भेद थे, जो पहले कम थे और बाद में अधिक हो चले। पंजाब से पश्चिम फ़ारस तक भाषा का एक प्रसार था। पश्चिमी बोलियां (हिंद-आर्य) कुछ विषयों में ईरानी से मिलती थीं। प्राचीन हिंद-आर्य्य भाषा में र था, ल नहीं था। क्लासिक तथा पाली में र और ल दोनों आ गये। हिन्दी आर्य्य में पूर्वी भागों में र मिट गया, ल रह गया।[११] आर्य्यों के अनेक ग्राम जब युद्ध के लिये इकट्ठे होते थे तब संग्राम कहलाता था।[१२]

आर्य्यों के युद्धों का उल्लेख भी हुआ है।

---

१. वेदिक इन्डैक्स २, पृ. ४०६.
२. वही १, पृ. ५३०.
३. वही पृ. २७९.
४. असुर इंडिया, पृ. ११.
५. एपिक मॉयथालॉजी, पृ. २३१.
६. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज, पृ. ३०-३१.
७. असुर इंडिया, पृ. १६.
८. वही पृ. १४.
९. वही पृ. ११.
१०. वही पृ. १२.
११. इन्डो आर्य्यन एंड हिंदी, पृ. ४६.
१२. वही पृ. ४७

पुरु पहले आये। फिर त्रसदस्यु भरत।[1] छोटी जातियां शृंजय तथा भत्सु थीं। भरतों के बाद पुरु शासक हुए।[2] भस्तु तथा सुदास ने शिग्रु और यक्षु नामक अनार्य्य जातियां हराई थीं।[3] दक्षिण के सत्वन्तों को भरतों ने हराया था (ऐतरेय ब्रा.)[4]। तुवर्शस, यदु ने सरयू नदी पार करके इसके तीर पर चित्ररथ और अर्ण को हराया था।[5] ऋग्वेद में पुरु का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण में इसे असुर राक्षस कहा गया है। परवर्ती काव्य-साहित्य में वह ययाति तथा शर्मिष्ठा का पुत्र है।[6]

पुरु पिता था, माता पुरुकुत्सानी थी। संतान पुरुकुत्स, त्रसदस्यु। त्रसदस्यु तृक्षि के पूर्वज थे। गिरिक्षित के भी। पुरुकुत्स के वंशज दुर्गाह। दुर्गा:, गिरिक्षित, पुरुकुत्स तथा त्रसदस्यु थे, सुदास के समसामयिक थे।[7] कुरु+क्रिवि=वैकर्ण। दोनों अस्क्नी तथा सिंधु के वासी थे। ऋग्वेद में कुरु भासदस्यव हैं, त्रसदस्यु पुरु था। संभवत: पुरु+भत्सु भरत=कुरु।[8]

एक मत है कि यदु समुद्र से गुजरात पहुंच गये।[9] वे उत्तर के मैदानों में से नहीं गये। इसी मत का विचार है कि पुरुकुत्स, त्रसदस्यु कृष्णवर्ण थे (ऋ. वे. ७.१६.३७.)।[10] परंपरा कहती है कि यदु उत्तर वेदिक युग में दक्षिण पहुंचे।[11]

प्राचीन जातियों का विस्तृत अध्ययन इस पक्ष पर विशेष प्रकाश डालता है। विमल चरण लॉ की 'ट्राइब्स इन ऐन्शेन्ट इंडिया' पठनीय है।

कुछ विद्वानों का मतभेद है। वे मानते हैं कि भरतों पर सुदास ने हमला नहीं किया था।[12] सुदास ने वैकर्णों के २१ जनों को हराया। वह भत्सु राजा था। उसने १० राजाओं को जीता था। विपश, शतुद्री पर विश्वामित्र उसका पुरोहित था। आश्विनों ने उसे सुदेवी नामक रानी दी थी। त्रसदस्यु के पिता पुरुकुत्स ने इसे हराया था। बाद में वशिष्ठ इसका पुरोहित हुआ।[13] त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य के ५० पत्नियाँ थीं। दिवोदास का पिता वध्रयाश्व अग्नि का उपासक था।[14] सुदास के शत्रु मत्स्य लोग थे। शतपथ ब्राह्मण में ध्वसन द्वैतवन मत्स्य राजा था।[15] भत्सु सुदास के साथ थे और शिचु, तुर्वश, द्रुह्यु, कवष, पुरु, अनु, भेद, शंबर, दोनों वैकर्ण, यदु के विरुद्ध थे (ऋ. वे.)। भत्सुओं के विरुद्ध मत्स्य, पक्थ, भालान, अलिन, विशानिन्, शिव, अजस, शिग्रु, यक्षु इत्यादि थे। यह सब हारे। यह महायुद्ध परुष्णी पर हुआ। यमुना पर भेद, अजस, शिग्रु तथा यक्षुओं से युद्ध

---

१. जराएसो १९१६, पृ० ५१२.
२. वही पृ० ५१४.
३. वेदिक इन्डैक्स २, पृ० ३७८.
४. वही पृ० ४२१.
५. वही पृ० ४३३.
६. वही पृ० १३.
७. वही १, पृ० ३२७.
८. वही १, पृ० १६६.
९. ऋग्वेदिक इंडिया १, पृ० १३४.
१०. वही पृ० १३५.
११. असुर इंडिया पृ० ८५.
१२. जडिले. १७. १९२८. पृ० १–७४
१३. वेदिक इन्डैक्स २, पृ० ४५४.
१४. वही पृ० २४०.
१५. वही पृ० १२१.

हुआ। त्रित्सु-भरत-सुदास जीते। विपाश और शतुद्री पर बढ़े। भरत विश्वामित्र के उपदेश पाते थे[1]। त्रित्सु शृंजयों के मित्र थे।[2] देवक मान्यमान भत्सु-शत्रु था।[3] तुर्वश और यदु ने इन्द्र से प्रार्थना की। द्रुह्यु और अनु डूब गये। तुर्वश बाद में पांचालों में मिल गया।[4]

उस समय की भारतीय सभ्यता का प्राचीनतम केन्द्र मोहन-जो-दड़ो ही था।

सिंधु प्रदेश का लेखन, चीनी एलामी, सुमेरियन, हिताइत, मिस्री तथा क्रीट—इन सभी लिपि-लेखों से भिन्न प्रकार का है और स्वतन्त्र लगता है।[5] विद्वान इस पर बहुत आशा लगाये बैठे हैं। अभी तक मोहन-जो-दड़ो की भाषा पढ़ी नहीं गई हैं। वेद की ॐ ध्वनि पकड़ कर श्री प्राणनाथ तथा तमिल के सहारे फादर हेरास उसे पढ़ तो गये हैं, परंतु भाषा वैज्ञानिक उनके प्रयत्नों को विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं समझते। काफ़ी आश्चर्य का विषय है कि एक ही लिपि को तमिल और प्राचीन ब्राह्मी जैसी अलग-अलग लिपियों के सहारे पढ़ लिया गया। समय उस पर प्रकाश डालेगा। अभी मोहन-जो-दड़ो मुंह से नहीं बोला है।

अन्य कुछ भाषाएं तथा पश्चिम के देश भी आर्य्यों के इतिहास पर अपना प्रकाश डालते हैं। परंतु इन पर विद्वान् एकमत नहीं हैं। जो हो, संबंध अवश्य प्रकट होता है।

कैसाइट्स ने हम्मूरब्बी का बैबीलोन २०००–१७०० ई० पू० जीता था।[6] दसवीं शती से ६१४ ई० पू० तक मिश्र, बैबीलोन, चैल्डिया, फ़ारस, एलाम में असुर पूजा रही। बैबीलोनियनों ने असीरिया नष्ट कर दिया। सीथियन्स मीडीज़, हिंदी-यूरोपीय-ईरानी भी हारे। समय ६१२ ई० पू०।[7] ईरान में पहले असुर मित्र बन कर आया, फिर विजेता बन कर। उत्तर में प्राचीन एलिपी साम्राज्य, कैस्पियन सागर तक फैला था। दक्षिण में एलाम तथा मूल फ़ारस। लगभग २०००–१००० ई० पू० एलिपी में हिंदी-यूरोपीय दक्षिण रूस से आये। ये सीथियन या मन्द (मीडीज़) थे। उन्होंने एलिपी को नष्ट कर दिया।[8] बैबीलोनिया ने एलाम जीता, परंतु असीरिया की संस्कृति ने जीत लिया। मर्दुक देवता असुर देवता के सामने झुक गया।[9]

कुछ बोगज़ कोई के शिलालेख बैबीलोनियन भाषा में हैं। ज़्यादातर कनेसियन, लूबियन, बलाइक, प्रोटो-हटिक, हुर्रियन और मन्दाइक (हिंद-यूरोपीय से मिलती-जुलती), बोलियों में हैं। मितली की भाषा जार्जियन से अधिक मिलती है, हिंद-यूरोपीय से

---

१. वेदिक इंडैक्स १, पृ० ३२०.
२. वही पृ० ३२२.
३. वही पृ० ३७४.
४. वही पृ० ३१५.
५. ज अ ओ सो XLIX—XLX १९२९–३० पृ० २६६.
६. इंडियन मिथ एंड लिजेन्ड पृ० २९ (भूमिका).
७. असुर इंडिया, पृ० ६.
८. वही पृ० ७.
९. वही पृ० ८.

कम। ईसा पूर्व १५वीं सदी में कप्पाडोसियनहत्ती असीरिया के शासन में था। १३८० ई० पू० में शिब्बिलुलीउमा गद्दी पर चढ़ा।[1] पार्जिटर बोगज़ कोई संधि को मध्य-हिमालय के एलों से संबंधित समझते हैं। वेद पूर्वी भूभागों में बने (अर्थात् देर से)।[2]

आर्य्यों में आर्य्येतरों के कुलीन वंश तथा खेतिहर लोग मिल गये। आर्य्य प्रभाव में आ गये और उन्हीं के साथ रहने लगे।

सत्ययुग के सामाजिक विकास को देखने के पहले पार्जिटर की राजवंश तालिका को देखना आवश्यक है। तालिका को साथ में उद्धृत किया गया है। इस तालिका में निम्नलिखित व्यक्ति प्रसिद्ध हुए हैं: मनु, इला, पुरूर्वस, आयु, नहुष, ययाति, यदु, द्रुह्यु, तुर्वसु, पुरु, अनु, इक्ष्वाकु, ककुस्थ, पृथु, निमि, मिथिजनक, नाभानेदिष्ट, जनमेजय प्रथम, युवनाश्व, हैहय, हर्याश्व, देवरात, (शुनः शेप ?), चित्ररथ, शशबिंदु, मतिनार, पुरूकुत्स, त्रसदस्य, जन्हु, दिवोदास, कृतवीर्य्यार्जुन, वीतिहोत्र, गाधि, विश्वामित्र, हरिश्चन्द्र। अब इन व्यक्तियों के साथ उल्लिखित घटनाओं को दर्ज करना चाहिये।

१. मनु : प्रथम पुरुष।

२. इला : पुरुष से स्त्री होना।

३. पुरूर्वस : ऊर्वशी का पति।

४. आयु।

५. नहुष : इंद्रपद ग्रहण करने वाला।

६. ययाति : असुर-कन्या से विवाह किया, स्वर्ग नहीं पहुंचा।

७. यदु
८. द्रुह्यु
९. तुर्वसु
१०. पुरु
११. अनु
} ऋग्वेद में वर्णित युद्ध के पात्र असुर कहा गया है।

१२. इक्ष्वाकु : पूर्व का राजा। मुण्डा जाति की सृष्टि उत्पत्ति कथा से मिलती कथा वाला।

१३. ककुस्थ।

१४. पृथु : पृथु वैन्य। इसने खेती चलाई। पिता ने ब्राह्मणों का विरोध किया था। इसने सिर झुकाया। निषाद जाति का इसके साथ उल्लेख हुआ है।

१५. निमि।

१६. मिथिजनक : माथव विदेह (संभवतः इसका पुत्र) पूर्व में यज्ञाग्नि ले गया था।

१७. नाभानेदिष्ट।

१८. जनमेजय प्रथम : यह यज्ञकर्त्ता था। परवर्त्ती जनमेजय को इससे मिला कर भूल की जाती है।

---

१. असुर इंडिया पृ० ८९–९०. २. वही पृ० ९८.

१९. युवनाश्व

२०. हैहय : ब्राह्मण-विरोधी क्षत्रिय थे।

२१. हर्यश्व : हैहयों ने इससे युद्ध किया था।

२२. देवरात : शुनःशेप का दूसरा नाम कहा जाता है। वरुण की बलि के लिये प्रस्तुत किया गया था। विश्वामित्र ने बचाया। ऋग्वेद में प्रसिद्ध कथा है।

२३. चित्ररथ ।

२४. शशबिंदु ।

२५. मतिनार ।

२६. पुरुकुत्स } वेद में योद्धा हैं।
२७. त्रसदस्यु

२८. जन्हु : इसने अपनी पुत्री से विवाह किया था। जान्ह्वी से।

२९. दिवोदास : वेद का प्रसिद्ध व्यक्ति। शूद्र था ? पिजवन पुत्र था। ऊपर उल्लेख हो चुका है। संभवतः यह द्वितीय दिवोदास था।

३०. कृतवीर्य्यार्जुनः ब्राह्मण-क्षत्रिय युद्ध इसके समय में भीषण हो गया था।

३१. वीतिहोत्र ।

३२. गाधि ।

३३. विश्वामित्र : इसने युद्ध ही नहीं अन्य क्षेत्रों में भी ब्राह्मण से टक्कर ली और जीतना चाहा ।

३४. हरिश्चन्द्र : ब्राह्मणों ने इसे दबाया था।

इन कथाओं को एक साथ रखने पर क्रम ऐसे बैठता है।

मनु के समय में वर्ण प्रारंभ हो गये। पुरूर्वस का गंधर्वों से संबंध था। नहुष ने इंद्र-पद तक प्राप्त किया, किंतु उसमें व्यक्तिगत संपत्ति बना स्त्री को भी भोगने की इच्छा हुई जो उस समय अग्राह्य थी। ययाति के समय ऋतुस्नान का फल लेने लायक स्त्री स्वतन्त्र थी, परंतु दासी हो सकती थी। घोड़ों के लिये बदले में भोगी जा सकती थी। यदु, द्रुह्यु, तुर्वसु, पुरु, अनु इत्यादि के समय गणों में युद्ध होने लगा था। इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ पूर्व में जाकर बसने वाले योद्धा थे। आर्य्य बस गये और पृथु के समय में खेती खूब फली। ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को दबा लिया। यहां की पूर्ववासी जातियों से संघर्ष मुखर हुआ। मिथिजनक आर्य्य शक्ति का प्रसार कर रहा था। हैहय ने फिर ब्राह्मण का दर्जा गिराया। देवरात के समय तक नरबलि की (संभवतः) प्रथा थी जिसे क्षत्रियों ने रुकवा दिया। संभवतः यह अनार्य्यों से मिलन का परिणाम था। पुरुषमेध का प्रभाव हो। पहले दासों को पकड़ कर मार डाला जाता था।

जन्हु के समय तक पिता-पुत्री के संबंध का इंगित मिलता है। प्रथा शायद चलती रही।

दिवोदास के समय संभवत: यहां के धनी शूद्र भी आर्य्यों में इज्ज़त पाने लगे ।[१]

कृतवीर्य्यार्जुन ने ब्राह्मणों का नाश प्रारंभ किया ।

विश्वामित्र ने उनके समस्त अधिकारों से टक्कर ली ।

हरिश्चन्द्र के समय ब्राह्मण फिर सर्वेसर्वा हो गये । इस समय दास-प्रथा थी । मनुष्य बिक जाता था । स्त्री दासी होती थी । विभिन्न जातियों के मिलन से शूद्र भी आर्य्य समाज में आ गये थे ।

यह एक संक्षिप्त रेखाचित्र है :—

१. वर्ण-व्यवस्था का उदय ।

२. देव जाति से छटते संबंध ।

३. स्त्री संपत्ति बनने लगी ।

४. स्त्री दासी हो चली यद्यपि संभोग पर पाबंदी नहीं थी । ब्राह्मण-क्षत्रिय भेद शुरू हो गये । ब्राह्मण ऊंचा था । स्त्री सामान की तरह बदली जाने लगी ।

५. परस्पर गणयुद्ध बढ़ चले । राष्ट्र बनाये जाने लगे ।

६. राष्ट्र बने । आर्य्यों ने यहां के निवासियों को जीत-जीत कर राज्य बसाये ।

७. ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ था । वेन ने बग़ावत की । मारा गया । पृथु ने नतशीश गद्दी ली और खेती बढ़ाई । पुरानी जातियों से संघर्ष बढ़ा । उन्हें भगाया गया ।

८. आर्य्य-शक्ति पूर्व तक बढ़ गई ।

९. क्षत्रिय-ब्राह्मण संघर्ष होने लगा ।

१०. नर-बलि को क्षत्रियों ने रुकवाया । हत्या की जगह अब संभवत: दास बनाये जाने लगे और संभवत: दास बहुत बढ़ने से उनकी विभिन्न जातियों का भेद न देखकर उन्हें शूद्र कहा जाने लगा । दास को खाना देना पड़ता था । शूद्र को खाना देने की जिम्मेदारी नहीं थी ।

११. मातृसत्तात्मक समाज की कुछ रीतियाँ जीवित थीं ।

१२. धनी शूद्र भी सम्मान पाने लगे ।

१३. ब्राह्मण-क्षत्रिय युद्ध हुआ ।

१४. ब्राह्मण जीते । क्षत्रियों ने यज्ञ के बल पर जीतना चाहा । पर यज्ञ अब व्यक्तिगत हो चुका था । धनी-दरिद्र का भेद आ गया था ।

१५. हरिश्चन्द्र के समय में ब्राह्मण-विजय, क्षत्रिय का झुकना, दास-प्रथा, मनुष्य का क्रय-विक्रय, द्रव्य का बाजार में पूरा अधिकार दिखाई देता है ।

इस क्रम को समझने के लिये पूरी तालिका पर दृष्टि डालना आवश्यक है, अत: यहां उद्धृत की जाती है:—

---

१. ऋग्वेद में तरुक्ष की बल्बूथदास के साथ स्तुति की गई है ।

राजवंश	यादव	हैहय	द्रुह्यु	तुर्वशस्	कान्यकुब्ज	पौरव	काशी	आणव उत्तर-पश्चिम	आणव पूर्वी	अयोध्या	विदेह	वैशाली
संख्या १.	मनु	....	मनु	मनु	मनु	मनु	मनु	मनु	....	मनु	....	मनु
२.	इला	....	इला*	इला	इला	इला	इला	इला	....	इक्ष्वाकु	....	नाभानेदिष्ट
३.	पुरूर्वस*	....	पुरूर्वस*	पुरूर्वस*	पुरूर्वस*	पुरूर्वस*	पुरूर्वस*	पुरूर्वस*	....	विकुक्षि शशाद	निमि	....
४.	आयु*	....	आयु*	आयु*	अमावसु	आयु*	आयु*	आयु*	....	ककुत्स्थ ?/४	....	....
५.	नहुष*	....	नहुष*	नहुष*	....	नहुष*	नहुष*	नहुष*	....	अनेनस	मिथिजनक	....
६.	ययाति*	....	ययाति*‡	ययाति*‡	....	ययाति*‡	क्षत्रवृद्ध	ययाति*‡	....	पृथु	....	भालन्दन
७.	यदु	....	द्रुह्यु	तुर्वसु	....	पुरु	....	अनु	....	विष्वगाश्व	....	....
८.	क्रोष्टु	सहस्रजित	....	....	....	जनमेजय[1]	....	....	....	अद्रि	उदावसु	वत्सप्री
९.	....	....	....	....	भीम	प्राचीनवन्त	सुनहोत्र	....	....	युवनाश्व[1]	....	....
१०.	....	....	....	....	....	प्रवीर	....	सभानर	....	श्रावस्त	....	....
११.	वृजिनीवन्त	शतजित्	....	....	....	मनस्यु	....	....	....	बृहदाश्व	नंदिवर्द्धन	....
१२.	....	....	बभ्रु	....	....	अभयाद	काश	....	....	कुवलाश्व	....	प्राम्शु
१३.	....	....	....	....	....	सुधन्वन् धुंधु	....	कालानल	....	दृढाश्व	....	....
१४.	स्वाहि	हैहय	....	वन्हि‡	कंचनप्रभ	बहुगव	....	....	....	प्रमोद	सुकेतु	....
१५.	....	....	....	....	....	संयाति	दीर्घतपस	....	....	हर्यश्व[1]	....	....
१६.	....	....	....	....	....	अहंयाति	....	सृंजय	....	निकुंभ	....	प्रजानि
१७.	रुषाद्गु	धर्मनेत्र	सेतु	....	....	रौद्राश्व	धन्व	....	....	संहताश्व	देवरात	....
१८.	....	....	....	....	....	ऋचेयु	....	....	....	अकृशाश्व	....	....
१९.	चित्ररथ‡	कुन्ति	....	....	सुहोत्र	मतिनार‡	धन्वन्तरी	पुरंजय	....	प्रसेनजित‡	....	....
२०.	शशबिंदु‡	....	....	....	....	तंसु	....	....	....	युवनाश्व[2]‡	बृहदुक्थ	खनित्र
२१.	पृथुश्रवस	साहञ्ज	अंगार	गर्भ	....	....	केतुमंत[1]	....	....	मांधातृ‡	....	....
२२.	अंतर	....	....	....	....	....	....	महाशाल	....	पुरुकुत्स‡	....	....
२३.	....	महिष्यमन्त	गांधार	....	जन्हु*‡	....	भीमरथ	....	....	त्रसदस्यु‡	महावीर्य्य	....
२४.	सुयज्ञ	....	....	....	सुनह	....	....	महामानस	....	संभूत	....	क्षुप
२५.	....	भद्रश्रेण्य	....	....	अजक	....	दिवोदास[1]	....	....	अनरण्य	....	....
२६.	उशनस	....	धर्म	....	बलाकाश्व	....	अष्टरथ‡	उशीनर*‡	तितिक्षु	तृशदाश्व	धृतिमंत	....
२७.	....	दुर्दम	....	....	....	....	....	शिवि	....	हर्यश्व[2]	....	....
२८.	शिनेयु	कनक	....	गोभानु	कुश	....	....	....	....	वसुमत, वसुमनस	....	विंश
२९.	....	....	धृत	....	कुशाश्वकुशिक	....	....	केकय‡	....	त्रिधन्वन्	सुधृति	....
३०.	मरुत्त	कृतवीर्य्य	....	....	गाधि*‡	....	....	....	रुशद्रथ	त्र्यारुण‡	....	....
३१.	....	अर्जुन‡	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....
३२.	कंबलबर्हिष	....	दुर्दम	....	विश्वामित्र*‡	....	....	....	....	सत्यव्रत त्रिशंकु‡	धृष्टकेतु	विविंश
३३.	....	जयध्वज	....	....	....	....	....	....	....	हरिश्चन्द्र‡	....	....
३४.	रुक्मकवच	तालजंघ	....	त्रिशानु	अष्टक	....	....	....	हेम	रोहित	....	....
३५.	....	....	प्रचेतस	....	....	....	....	....	....	हरितचंचु	हर्यश्व	खनिनेत्र
३६.	परावृत	वीतिहोत्र	....	....	लौहि	....	....	....	....	विजय	....	....
३७.	....	....	....	....	....	....	....	....	....	रुरुक	....	....
३८.	ज्यामघ*	अनंत	सुचेतस	....	....	....	हर्यश्व‡	....	सुतपस	वृक	मरु	
३९.	....	दुर्जय	....	....	....	....	सुदेव‡	....	....	बाहु (आसित)	....	
४०.	विदर्भ	सुप्रतीक	....	करन्धम	....	....	दिवोदास[1] ?/४	....	....	....	....	

[कृतयुग] (पृ. १५४ के सम्मुख)

महाभारत के आदिपर्व ६८वें अध्याय में कथा है :

के वंश में क्षत्रिय ब्राह्मण आदि हुए। तभी से ब्राह्मण और क्षत्रिय का संगम हुआ। यह सब मानव हुए। मनु के वंश में ब्राह्मण वेदज्ञ हुए।

वैवस्वत मनु के क्षत्रिय पुत्र

नाभागारिष्ट वेत, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारुष, शर्याति, पृषध्र कन्या इला
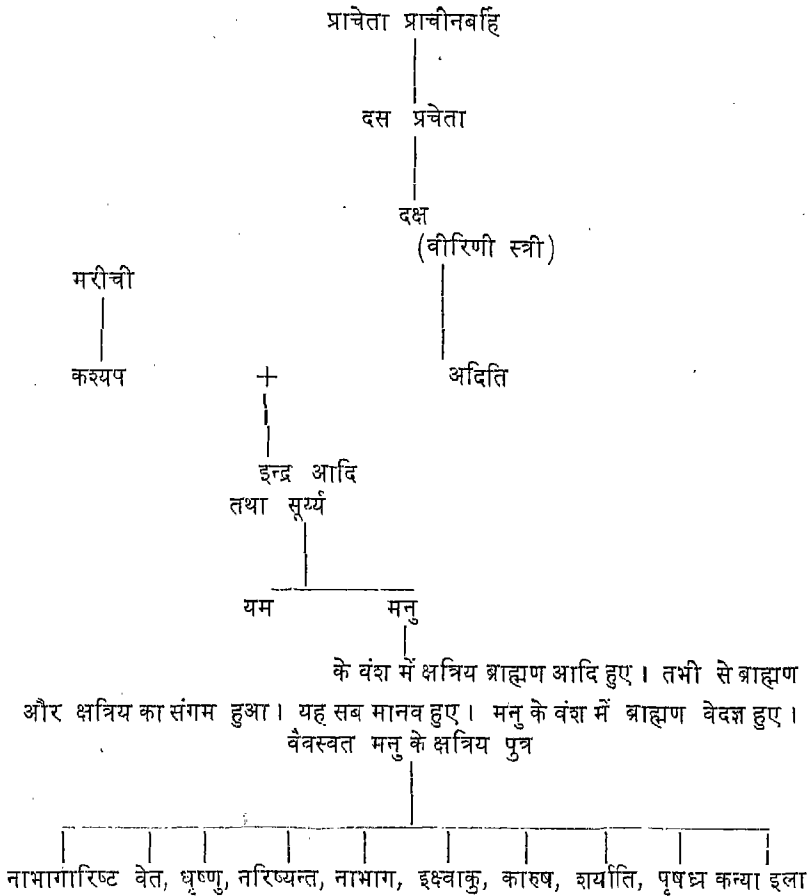
यह कन्या बाद में पुरुष हो गई।

मनु के और भी पचास पुत्र हुए पर वे लड़-भिड़ कर ही आपस में नष्ट हो गये।

इला के बुध के द्वारा पुरुरव हुए।

पुरुरवा मनुष्य होकर भी अमानुष अनुचरों के साथ समुद्र के तेरह द्वीपों का शासन करते थे। अर्थात् देव सभ्यता के पास थे? पुरुरवा ने ब्राह्मणों पर अत्याचार किया। अंत में ब्राह्मणों ने उन्हें नष्ट कर दिया।
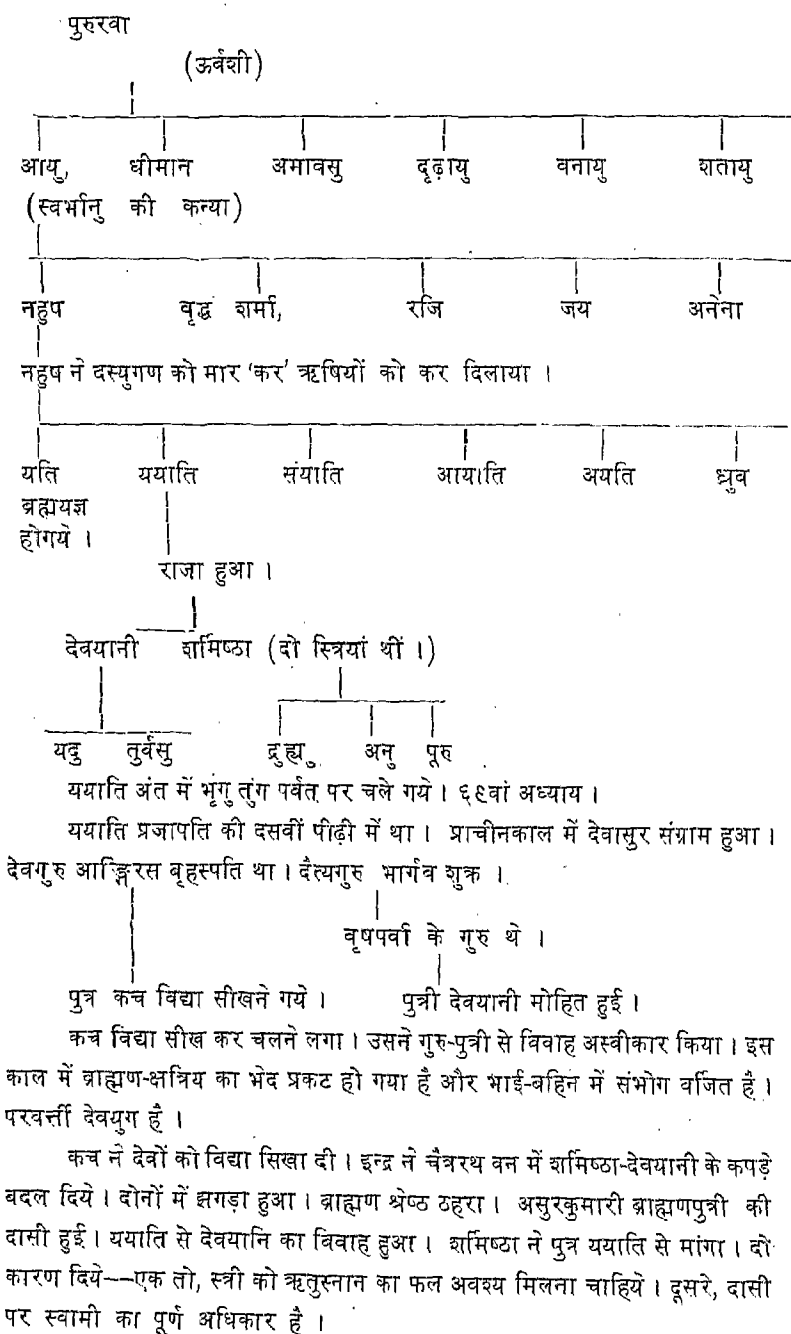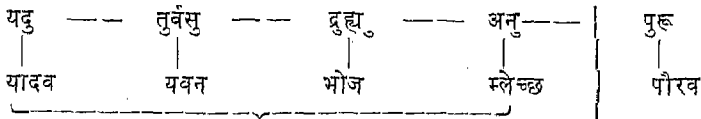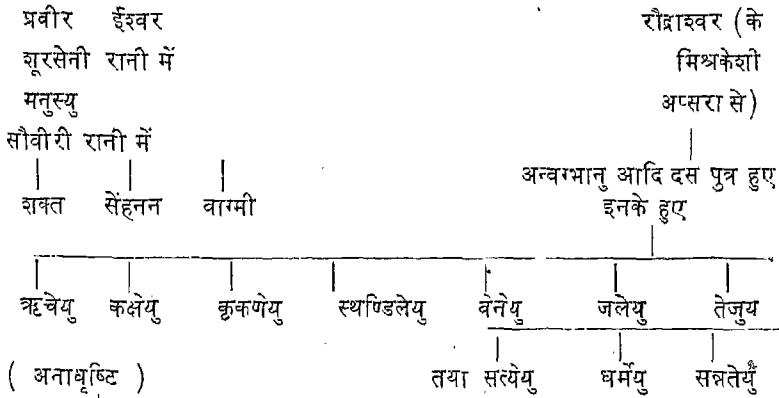
ययाति अंत में भृगु तुंग पर्वत पर चले गये । ६९वां अध्याय ।

ययाति प्रजापति की दसवीं पीढ़ी में था । प्राचीनकाल में देवासुर संग्राम हुआ । देवगुरु आङ्गिरस बृहस्पति था । दैत्यगुरु भार्गव शुक्र ।

वृषपर्वा के गुरु थे ।

पुत्र कच विद्या सीखने गये । पुत्री देवयानी मोहित हुई ।

कच विद्या सीख कर चलने लगा । उसने गुरु-पुत्री से विवाह अस्वीकार किया । इस काल में ब्राह्मण-क्षत्रिय का भेद प्रकट हो गया है और भाई-बहिन में संभोग वर्जित है । परवर्त्ती देवयुग है ।

कच ने देवों को विद्या सिखा दी । इन्द्र ने चैत्ररथ वन में शर्मिष्ठा-देवयानी के कपड़े बदल दिये । दोनों में झगड़ा हुआ । ब्राह्मण श्रेष्ठ ठहरा । असुरकुमारी ब्राह्मणपुत्री की दासी हुई । ययाति से देवयानि का विवाह हुआ । शर्मिष्ठा ने पुत्र ययाति से मांगा । दो कारण दिये—एक तो, स्त्री को ऋतुस्नान का फल अवश्य मिलना चाहिये । दूसरे, दासी पर स्वामी का पूर्ण अधिकार है ।

दुष्यंत ने म्लेच्छों को जीता था। इस समय ऋषियों के आश्रम बनने लगे थे। आश्रम क्या थे ? ब्राह्मणों के छोटे-छोटे राज्य-मंडल।

दुष्यंत त्रेता का व्यक्ति है अतः इसे यहीं छोड़ देना उचित है। वंश-परम्परा का कहीं अंत नहीं होगा। अतः हम यहां मुख्य-मुख्य घटनाओं तथा विषयों पर दृष्टिपात ठीक समझते हैं।

उस समय तक आर्य्य और दास यही भेद था। जो भारतीय, आर्य्यों को मिलते थे पहले उन्होंने उनको 'पुरुषमेध' अर्थात् मार डाला, क्योंकि तब तक दास रखना उनके लिये व्यर्थ था। उसके बाद जब वे यहां जमने लगे तब दास-प्रथा चली। दासों से काम लिया जाने लगा। स्वयं आर्य्य भी आपस में दास हो सकते थे। दास-प्रथा के बाद शूद्र-प्रथा प्रारंभ हुई। पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय और विश् थे। बाद में शूद्र आये। बृहदारण्यकोपनिषद् ४ ब्राह्मण अध्याय १ में कहा है :

आत्मा ही यह पहले पुरुषाकार था (१)। ज्ञान से जीव निर्भय हुआ (२)। उसे स्त्री मिली (३)। धर्म जगा (४)। जनन-इच्छा हुई, प्रभाव वृषभ तथा स्त्री-भाव गौ बना (५)। सृष्टि का ज्ञान हुआ (६)। मंथन से देव जन्मे (७)।

पहले युग में यह ब्राह्मण वर्ण ही था। वह एक ही था। वह एक होने से न बढ़ सका। उसने कल्याणरूप क्षत्रिय संघ रचा। क्षत्रिय रक्षक देव हैं इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु और ईशान। क्षत्रिय से उत्कृष्ट कोई नहीं। राजसूय यज्ञ में राजकर्म में ब्राह्मण नीचे बैठ कर क्षत्रिय को आराधता है। जो ब्राह्मण है वह यह क्षत्रिय की योनि है। वह राज्य का यश ब्राह्मण-क्षत्रिय में ही स्थापित करता है। इस कारण यद्यपि राजा परमता को पहुंचता है, परंतु अन्त में ज्ञान और शान्ति की कामना से ब्राह्मण के ही आश्रित होता है, अपने जन्म के कारण आश्रित होता है। जो राजा इस ब्राह्मण को मारता है वह अपनी योनि को मारता है, और पापी होता है (११)।

क्षत्रिय सृष्टि करके भी वह ब्राह्मण वर्ण समर्थ न हुआ, वृद्धि न कर सका, तब उसने वैश्य वर्ण बनाया। वैश्य देव हैं—वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, मरुत (१२)।

वैश्य वर्ण बनाकर भी वह ब्राह्मण वर्ण समर्थ न हुआ। तब इसने शूद्र वर्ण बनाया। शूद्र वर्ण पूषण है, धारण-पोषण करने वाला है। भूमि समान पोषक शूद्र वर्ण है (१३)।

(अर्थात् समाज का उत्पादन-वितरण उसी पर निर्भर है।)

चारों वर्णों को स्थापित करके भी ब्राह्मण समर्थ न हुआ, वृद्धि न कर सका। तब उसने कल्याणरूप धर्म को भलीभांति रचा। क्षत्रिय का रक्षण कर्म रहा (१४)।

यह ब्राह्मण वर्ण ही क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण है। ब्राह्मण अग्नि से, यज्ञ से ब्रह्म हुआ, ब्रह्मा कहलाया। वह मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय कर्म से क्षत्रिय, वैश्य कर्म से वैश्य, और सेवा से शूद्र हो गया (१५)।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि शूद्र अंतिम था। अब दास और शूद्र का भेद मननीय है। दास वह था जिसके खाने-पीने का प्रबन्ध करना पड़ता था। शूद्र के अधिकार छीने गये परंतु यह ज़िम्मेदारी नहीं थी।

वर्ण क्यों बने ? क्योंकि पशु-पालन इत्यादि से संपत्ति बढ़ी और लोगों ने अलग-अलग धंधे लिये। आदान-प्रदान शुरू हुआ। बाजार शुरू हुआ। तब समाज में धन आया। धन आया तो आदमी भी बिकने लगे और आदमी पर धन हावी हो गया।

सत्ययुग में दास और शूद्र का एक ही स्थान है। वर्ण-व्यवस्था में पहले तीन वर्ण ही मुखर हैं, चौथे को अभी स्वीकार नहीं किया गया है।

विभिन्न जातियां मिलती हैं और उन्हें उनके सांस्कृतिक स्तर से आर्य्यों में वैसा ही स्थान मिलता है। प्रारंभ में निषाद शूद्रों से अलग माने गये। वे नहीं दबे धनी शूद्र राजा भी हुए और उनकी दानस्तुतियां भी गाई गई। वेद में अब धनी-दरिद्र का भेद दिखाई देता है :—

हे सोमपायी और सत्यवादी इन्द्र ! यद्यपि हम कोई धनी नहीं हैं, तो भी हे बहु-धनशाली इन्द्र ! सुन्दर और असंख्य गौओं तथा घोड़ों द्वारा हमें प्रशस्त धनवान् करो। (१.१.२.६.२९.१.)

हे इन्द्र ! हमें भरपूर धन देकर हमारे पास व्यापारी नहीं बनना।
(१.१.३.७.३३.३.)

अग्नि धनशाली है, वह गो-प्राप्ति के लिये संग्राम में हिनहिनाते घोड़े की तरह सर्वतोभाव से आहूत होकर कण्व ऋषि के लिये यथेच्छ धन वर्षण करे। (१.१.३.८.३६.८)

धनपूर्ण रथ ! मैं सामने ही हूं। मुझे समृद्ध करो। उस सुखकर रथ को अश्विद्वय, स्तोताओं के सोमपान के स्थान पर ले जाते हैं। (११)

मैं प्रातःकाल स्वप्न से घृणा करता हूं और जो धनी दूसरों का प्रतिपालन नहीं करता, उसे भी घृणित समझता हूं। दोनों शीघ्र नाश को प्राप्त होते हैं। (१२)
(१.१.८.१८.१२०)

धन के लिये पूजनीय इन्द्र ! हमारे पास से अपना अनुग्रह नहीं हटाना। हमें अन्न पुष्टि दे। मघवन् तुम धनपति हो, हमें गौ दो। हम तुम्हारी पूजा में तत्पर हैं। हम पुत्र, पौत्र आदि के साथ धन प्राप्त करें। (१.१.८.१८.१२१.१५.)

वज्रधर इन्द्र ! तुम हमें इस दुर्दान्त दरिद्रता से बचाओ। समीपवर्ती संग्राम में हमें पाप से बचाओ। (१.१.८.१८.१२१.१४.)

आर्य्यों में व्यक्तिगत संपत्ति शुरू हो गई। वर्गभेद हो गया। धनी दरिद्र हो गये। वर्णभेद हो गया। कहीं-कहीं राष्ट्र बने। अर्थात् गण जब एकत्र हुए तो सगोत्र का रिश्ता शिथिल हुआ। पहले एक कबीले में एक रक्त के लोग रहते थे। फिर जनपद में कई कबीले रहने लगे पर वे आर्य्य थे। अब राष्ट्र बना जिसमें सभी प्रकार के लोग रहते थे, उनके अलग-अलग धंधे, धर्म, जातियां थीं।

दास, शूद्र, गण, स्त्री के अधिकार, आर्य्यों का अन्य जातियों से संबंध, राज्य, वर्ण तथा वर्ग, आर्य्यों का भीतरी गठन यहां इसका एक बहुत सूक्ष्म रेखाचित्र दिया गया है।

यहां कुछ विशेष घटनाओं पर दृष्टिपात करके इस अध्याय को समाप्त करते हैं ।

इस समय आर्य्य ही भारत में घुस रहे थे यह ठीक नहीं है। उनके साथ ऋक्ष, वानर, नाग (संभवत: यह पहले से थे) तथा राक्षस उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे।

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि वानर, ऋक्ष तथा राक्षस पुलस्त्य की संतान थे। महाभारत में त्रित कथा में जो शाप दिया गया है उसमें भी यही स्पष्ट है ।[1] गद्गद्, जाम्बुवान के पिता, का वर्णन हो चुका है। अब प्रश्न है कि हमारे इस अनुमान का आधार क्या है ?

सत्ययुग के प्रारंभ या मध्य तक (अथवा उत्तर युग बल्कि त्रेता और द्वापर में भी) गंधर्व, अप्सरा इत्यादि से आर्य्यों का कुछ-न-कुछ संबंध बना रहा है। यह अवश्य है कि जैसे-जैसे समय बढ़ता गया वे जातियां देवयोनि में मानी गईं और उनके साथ अलौकिक शक्तियां जुड़ती गईं। राक्षस जाति के आरंभ पर, उनके समाज की गठन पर हम विवेचन कर चुके हैं। उनका कुछ जाति से जो सम्बन्ध है वह भी महत्त्वपूर्ण विषय है। इसे त्रेता में देखना उचित होगा। यहां इनके आवागमन का पथ देखना चाहिये ।

ऋग्वेद के आर्य्य राक्षसों से भयभीत हैं।

हमारे द्रोही राक्षसों से मिल गये हैं। अग्नि ! तुम उन्हें जला दो। (१.१.१.४.१२.५)

सभारक्षक इन्द्र और अग्नि राक्षस जाति को दुष्टताशून्य करें। भक्षक राक्षस लोग नि:संतान हों ।

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नीरक्ष उब्जतन् अप्रजा: संत्वत्रिण (१.१.२.५. २१.५.)

सविता,—देव, राक्षसों और यातुधानों का निराकरण करके प्रति रात्रि स्तुति प्राप्त कर अवस्थित हैं। (ईरानी लोग यातुधान को यातुमान कहते हैं।)

(१.१.३.८.३५.१०.)

हमें राक्षसों से बचाओ । (१.१.३.८.३६.१५.)

अग्निदेव ! राक्षसों, यातुधानों और विश्वभक्षक शत्रुओं का नाश करो ।

(१.१.३.८.३६.२०.)

अग्नि ! राक्षसादि तुम्हारे व्रत का ध्वंस नहीं करते। यदि वे करें तो तुम मरुद्रगण को साथ लेकर उनका नाश कर देते हो । (१.१.५.१२.६६.४.)

अग्नि ! राक्षसों का दहन करो । (१.१.५.१३.७६.३.)

अग्नि राक्षसों को ताड़ित करते हैं । (१.१.५.१३.७९.१२.)

इन कतिपय उद्धरणों से ही स्पष्ट हो जाता है कि राक्षस काल्पनिक न होकर वास्तविक शत्रु थे और यह लोग भयानक भी थे। इतने उद्धरणों से उनके उत्पात तथा आर्य्य विरोध प्रगट होते हैं। यह भी इंगित मिलता है कि जब आर्य्यों में आपस में

१. शल्यपर्व, महाभारत । ३६वाँ अध्याय । ५०–५४ तक ।

लड़ाई होती थी तो कभी-कभी आर्य्यद्रोही जाकर राक्षसों से मिल जाते थे। यह बात वास्तव में ध्यान देने योग्य है। महाभारत में एक कथा है जो इस पर प्रकाश डालती है।

१८४ अ० आदिपर्व महाभारत में राक्षसों के विरुद्ध युद्ध की कथा है। पराशर ने अपने पिता शक्ति की हत्या को स्मरण करके राक्षसों को मारने के लिये राक्षस-यज्ञ का आरंभ कर दिया। अपने पिता की हत्या का बदला चुकाने के लिये पराशर ने उस प्रसिद्ध यज्ञ में अनेकानेक बालक-बूढ़े-जवान राक्षसों को आग में जला दिया।

वशिष्ठ ने भी पराशर को राक्षस-यज्ञ करने से नहीं रोका।

तब अत्रि ने आकर वह यज्ञ रुकवाया। उनके पीछे राक्षसों की रक्षा करने के लिये पुलस्त्य, पुलह और बड़े भारी याज्ञिक क्रतु नाम के महर्षि भी वहां आये।

तब पराशर ने उस यज्ञ को बीच में ही समाप्त कर दिया। राक्षसों के नाश के लिये उन्होंने जिस अग्नि को प्रज्वलित किया था उसे उन्होंने हिमाचल के उत्तर तट पर स्थित महावन में छोड़ दिया। वह अग्नि अब तक समय-समय पर वहां के राक्षसों, वृक्षों और पत्थरों को जलाता हुआ देख पड़ता है।

यहां पराशर को परवर्त्ती समझ कर भ्रम हो सकता है। पर वशिष्ठ की कथा के प्रसंग में यह कथा प्राचीन ही है। वशिष्ठ और विश्वामित्र के संबंध में जो राक्षसों की कथा है वह यहां बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

यज्ञ अर्थात् इकट्ठे होकर आर्य्यों का प्रयत्न। जनमेजय का नागयज्ञ भी ऐसे ही हुआ था। आर्य्य जब हराने में असमर्थ हो जाते थे तब वे क़त्लेआम करते थे और फिर वह रोकना पड़ता है क्योंकि यह बर्बरता चलना कठिन था।

सत्ययुग में राक्षसों का उत्पात था। यह इससे प्रकट होता है।

भृगुवंशियों का जब क्षत्रियों ने नाश किया तब और्व उठ खड़ा हुआ। उसने क्षत्रिय नाश करना चाहा। साथ ही राक्षसों से भी बदला लेना था। क्षत्रियों से उनके परवर्त्ती समय परशुराम ने बदला ले लिया। परंतु राक्षसों से युद्ध करने में वशिष्ठ ने भी नहीं रोका।

वशिष्ठ को राक्षसों ने नुकसान पहुंचाया था।

शल्यपर्व ३७वें अध्याय में कथा है : गर्ग स्रोत तीर्थ पवित्र स्थान है। वहां सरस्वती तट है। वहां गर्ग ने ज्योतिष विद्या पढ़ाई थी। बलराम वहां से शंखतीर्थ गये। वहां महाशंख नामक वृक्ष था। सरस्वती-स्थित उस महावृक्ष के नीचे अनेक ऋषि, यक्ष, विद्याधर, पराक्रमी राक्षस, महाबली पिशाच और हज़ारों सिद्ध पुरुष रहते हैं, इनको मनुष्य नहीं देख पाते।

इससे प्रकट होता है कि यह लोग प्राचीन काल में रहे होंगे। द्वापर तक इनके चिन्ह इस स्थान पर नहीं रहे। तीर्थ वही हो सकता है जिसकी महिमा के विषय में अतीतकाल

की कोई कथा कही जाये। यहां से बलभद्र नागधन्वातीर पर गये। 'यहां वासुकि तथा उनके अनुचर रहते हैं।' ध्यान रहे वासुकि आर्य्यों के मित्र नाग थे। कहा है—प्राचीन काल में 'सब देवताओं ने वहां आकर नागश्रेष्ठ वासुकि का अभिषेक किया था और उसे नागों का राजा बनाया था।

फिर 'वहां अनेक नाग रहते हैं, किंतु वे किसी से बोलते-चालते नहीं।'

मतबल आर्य्यों के शत्रु नहीं।

बलभद्र फिर पूर्व दिशा को चले। मार्ग में पग-पग पर पवित्र और प्रसिद्ध असंख्य तीर्थ मिले।

बलभद्र फिर नैमिषारण्य गये। सरस्वती पूर्वाभिमुख थी।

कारण यह बताया गया: पहले सत्ययुग में नैमिषारण्य में वहां के मुनियों ने बारह वर्ष में समाप्त होने वाले महायज्ञ का आरंभ किया था। उस यज्ञ में अनेक महाभाग ऋषि-मुनि आये। और वहां बारह वर्ष तक रहे। वह यज्ञ समाप्त होने पर ऋषिगण तीर्थ-दर्शन की इच्छा से सरस्वती के दक्षिण तीर पर उपस्थित हुए। वे असंख्य मुनि वहीं रह कर तप करने लगे जिससे सरस्वती के दक्षिण और उत्तर तट के सब तीर्थों में नगरों की-सी भीड़ हो गई। तीर्थवास के लालच से ऋषिगण नदी के किनारे-किनारे समन्तपंचक तीर्थ की सीमा तक बस गये। उन मुनियों के हवन के समय अग्निहोत्रों का प्रकाश नदी को शोभायमान करता था, उनके वेदपाठ की ध्वनि से दिशाएं गूंज उठती थीं। गंगातट को शोभित करने वाले देवताओं के समान असंख्य मुनि सरस्वती तट की शोभा बढ़ाने लगे। अनेक नियम धारण करके तपस्या करने वाले बालखिल्य, अश्मकुट्ट, दन्तोलूखली, संप्रख्यान, वायुभक्ष, फलाहारी, पत्ते चबाकर तप करने वाले और स्थण्डिलशायी आदि असंख्य मुनि सरस्वती के तीर पर रहने लगे। उन लोगों के बाद भी सैकड़ों याज्ञिक, ऋषि, तपस्या और तीर्थवास के लिये, वहां आकर उपस्थित हुए। किंतु सरस्वती के दोनों तट खाली नहीं थे। कहीं ठहरने की जगह न देखकर वे महाव्रतधारी मुनि पूर्व की ओर पवित्र कुरुक्षेत्र में पहुंचे और वहां अपने यज्ञोपवीतों से भूमि को नाप कर, उसी भूमि को सरस्वती तीर्थ कल्पित कर, अग्निहोत्र आदि विविध कर्म करने लगे। सरस्वती नदी उन ऋषियों को अपने जल के लिये चिंतित और निराश देखकर उनके कार्यसाधन के लिये, उसी स्थान पर पहुंची। वहां अनेक गहरे स्थानों में सरस्वती का जल भर गया और वे पवित्र तीर्थ हो गये।

वहां से बलभद्र सप्तसारस्वत तीर्थ गये।

अब ध्यान देने की बात है कि—

(१) यह कथा जनमेजय को सुनाई गई जो बलभद्र की दो-तीन पीढ़ी बाद हुआ।

(२) वहीं परम्परा में रहकर जब ब्राह्मणों को तीर्थ-महिमा गाने की आवश्यकता पड़ी तब इस रूप में प्रस्तुत की गई, और बहुत समय बीतने से कथा में काव्य तथा गल्प आ गया।

(३) बलभद्र के समय में स्वयं घटना सुदूर अतीत की थी क्योंकि यह तीर्थ-स्थान थे।

(४) प्राचीनकाल में यहां राक्षस, पिशाच, मुनि, नाग इत्यादि रहते थे।

(५) तपस्या करने वालों का उल्लेख ऐसा ही जैन ग्रन्थों में मिलता है। संभवतः यह परवर्त्ती हो।

(६) मुनि पहले सरस्वती तीर पर बसे। उन्होंने यज्ञ किया। वेद साक्षी है कि उस काल में तप नहीं था। आर्य्यों ने बाद में तप सीखा था।

(७) मुनि पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़े।

(८) मुनियों ने नई जगह के लिये पुराने नाम कल्पित किय। इसी प्रकार हर नदी को उन्होंने सरस्वती ही माना। आगे स्पष्ट होता है।

सत्ययुग का आदिकाल है। अभी देवों से संबंध क़ायम है। ३८वें अध्याय में और भी प्रकाश पड़ता है :

तपोबल अधिक रखने वाले मुनियों ने, जहां-जहां सरस्वती को बुलाया है, वहां-वहां वह गई है। पितामह ब्रह्मा ने एक समय पुष्कर तीर्थ में महायज्ञ का प्रारंभ किया और दीक्षा ली। उनकी यज्ञशाला में ब्राह्मणगण पुण्याहवाचन और वेदपाठ करने लगे। वहां गंधर्व गाते थे। अप्सराएँ नाचती थीं। यज्ञ सर्वांगपूर्ण था। देवगण प्रसन्न हो गये। मनुष्यों की कौन कहे, देवताओं को भी वह यज्ञ देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।[1] तब ऋषियों ने ब्रह्मा से कहा : यज्ञ सर्वांगपूर्ण नहीं है क्योंकि नदियों में श्रेष्ठ सरस्वती यहां नहीं है।

ब्रह्मा ने सरस्वती को याद किया। वह सुप्रभा नामक शाखा से उपस्थित हुई। यज्ञ श्रेष्ठ हुआ।

अर्थात् सरस्वती के बाद सुप्रभा मिली। यह पुष्कर नामक स्थान की घटना है।

फिर काञ्चनाक्षी मिली। सत्रयाजी मुनियों द्वारा पूजित सरस्वती की दूसरी शाखा नैमिष क्षेत्र में विराजमान है। प्रारंभिक यज्ञ जिसमें सब ऋत्विक थे वह सत्र था। सत्र=इकट्ठा होना। दक्षिण भारतीय अभी तक धर्मशाला को सत्र कहते हैं। यहां

---

१. स्पष्ट है कि यह देव देवताओं से अलग थे। इन्द्र आदि देवता थे। यह बर्बर युग का मध्यकाल है।

ब्राह्मणों का प्राधान्य था। इससे व्यक्तिगत संपत्ति का इंगित होता है। सत्र अभी पूरी तरह नष्ट नहीं था।

यज्ञ कर राजा गय ने तीसरी शाखा विशाला पाई। अर्थात् यज्ञ गय के नाम पर पड़ा। व्यक्तिगत संपत्ति युग है।

कोशल देश के उत्तर में औद्दालकि[1] ने यज्ञ किया। सरस्वती इसके यज्ञ में हिमालय के पार्श्व से बहती हुई आई। यह मनोरमा थी।

बराबर पूर्व की ओर बढ़ते आर्य्यों का वर्णन है।

कुरु ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ किया। वहां आचार्य वशिष्ठ की आज्ञा से ओघवती नाम से सरस्वती आई।

हरद्वार में दक्षयज्ञ में सुरेणु छठी शाखा हुई। सातवीं शाखा विमलोदका ब्रह्मा के हिमालय यज्ञ में आई।

३९वें अध्याय में १-१० तक सप्तसारस्वत प्रदेश की महिमा है। यहां दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने तप किया था।

रुशंगु तीर्थ में विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये थे। आर्ष्टिषेण, सिंधुद्वीप, देवापि, क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये थे।[2]

४०वां अध्याय : आर्ष्टिषेण सत्ययुग के वासी थे। उन्होंने कहा था कि सरस्वती तीर पर नागों का भय नहीं होगा। (७-१०)

गाधि के उपरांत विश्वामित्र राजा हुए। वे बहुत यत्न करके भी अच्छी तरह प्रजा की रक्षा नहीं कर पाते थे। उन्हें खबर मिली कि राक्षस बड़ा ऊधम मचाये हुए हैं। उनसे प्रजा को बड़ा भय है। विश्वामित्र सेना लेकर राक्षसों का दमन करने गये और नगर से दूर वशिष्ठ के यहां उनकी सेना ने पड़ाव डाला। सैनिक उत्पात करने लगे। वशिष्ठ ने लौट कर देखा कि सेना के लोग चारों ओर उस आश्रम-वन को उजाड़ रहे हैं। तब क्रुद्ध होकर महर्षि ने अपनी होमधेनु नंदिनी से कहा : इन दुष्टों का दमन करने के लिये घोर रूप शबर जाति को शीघ्र उत्पन्न कर। धेनु ने तत्काल अपनी देह से भीषणाकार शबरों की सृष्टि की। वे शबर विश्वामित्र की सेना पर आक्रमण करने लगे, तो सेना भाग गई। विश्वामित्र ब्राह्मण होने के लिये तप करने लगे।

उन्हें ब्रह्मर्षि पद मिल गया।

४१वें अध्याय में वकदालभ्य की कथा है जिसने यज्ञ के लिये धृतराष्ट्र (महाभारत का नहीं) से पशु मांगे। उसने मृत पशु दिये। इन्होंने राज्य का नाश प्रारंभ किया। अंत में संधि हुई।

---

१. औद्दालकि-श्वेतकेतु। अतः सत्ययुग में हुआ। बाकी श्वेतकेतु परवर्त्ती हुए।

२. यह लोग त्रेता के हैं।

यहां बृहस्पति का मांस हवन वर्णित है जो उन्होंने देवासुर संग्राम में असुर-वध के लिये किया। निकट ही ययाति तीर्थ था।

इन तथ्यों से प्रकट हुआ :

(१) ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष। क्षत्रियों का ब्राह्मण बनने का प्रयास। ब्राह्मणों की क्षत्रियों के विरुद्ध शबरों की सहायता लेना।

(३) राक्षसों का सरस्वती तीर पर उत्पात।

(४) यज्ञ में मांस हवन।

(५) ययाति यहीं रहा था।

अब वशिष्ठापवह तीर्थ कथा। ४२वें अध्याय में राक्षसों की, विश्वामित्र-वसिष्ठ के विरुद्ध सहायता लेते हैं। स्थाणु तीर्थ की बात है। विश्वामित्र के शाप से सरस्वती में एक वर्ष तक रक्त-मिश्रित जल बहता रहा जिसे राक्षस पीते रहे।

अर्थात् राक्षसों ने वहां राज्य किया।

४३वें अध्याय में शंकर की सहायता से ऋषियों ने सरस्वती को शुद्ध किया। राक्षस स्वर्ग पहुंचा दिये गये।

स्पष्ट ही अनेक तथ्य प्रकट हुए हैं। बारह साल के लिये देवों में अकाल पड़ गया था। तब देवों का मोचन ऋषि अगस्त्य ने किया था। अब भी ऋषियों ने आकर बचाया।

ऋषियों से भगाये गये राक्षसों की गति दक्षिण की ओर हुई। हिमालय में 'रावणहृद' नामक स्थान प्रसिद्ध है। वही राक्षस जाति हिमालय से सरस्वती तीर पर आई। वहां से अब और दक्षिण को ओर गई।

यह नितांत कल्पनायें नहीं हैं। यहां हैहयों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। हैहय क्षत्रिय थे। मत्स्य पुराण में हैहयों की पांच शाखा हैं : वीतिहोत्र, भोज, अवंती, कुंडीकर तुंडीकर तथा तालजंघ।[1] इन हैहयों ने उत्तर में अनेक उत्पात मचाये। इन्होंने करकोटकों से माहिष्मती छीन ली थी।[2]

इसी करकोटक जाति का एक व्यक्ति नल को आग से जलता हुआ वन में मिला था। शारदातिलक क्षेत्र में सर्पों के चार वर्ण गिनाये गये हैं जिनमें करकोटक शूद्र कहे गये हैं। करकोटक नाग थे।

परशुराम ने इन हैहयों को हराया था यह कथा बहुत प्रसिद्ध है। अत: हम उसे नहीं दुहरायेंगे। यह क्षत्रिय तथा ब्राह्मणों की शक्ति के लिये सशस्त्र लड़ाइयां थीं जो गोधन से प्रारंभ हुई थीं। गौ उस समय धन थी।

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ एन्शेन्ट इंडिया, पृ० १२३.

२. असुर इंडिया, पृ० ६६.

यहीं परशुराम दक्षिण गये थे ।

परशुराम ने कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी इत्यादि के उत्तर भागों से तथा मदुरा, मैसूर और महाराष्ट्र से ब्राह्मण लाकर केरल में बसाये थे। इन ब्राह्मणों के आठ गोत्र थे।[१] दक्षिणी संस्करण, महाभारत ७. ७०. ७ के अनुसार परशुराम ने दंकूट में रहने वाले ब्राह्मणों के शत्रु १४,००० क्षत्रिय नष्ट किये थे।[२]

भार्गव और्व ने कृतवीर्य्य को इसलिये जला दिया था कि उसने भार्गवों का धन चुराना चाहा था।[३] परशुराम 'हैहय प्रमाथी' था।[४]

तुलुव की परम्परा है कि परशुराम ने समुद्र युक्त धारा को बसाने के लिये कुछ कैवर्त्तों को ब्राह्मण बना लिया था।[५]

परशुराम, अगस्त्य इत्यादि एक व्यक्ति न होकर अपने नाम पर चलाये गये संप्रदाय थे, ऐसा प्रतीत होता है ।

भाण्डारकर का कथन है कि पाणिनि के पहले लोगों को दक्षिण भारत का ज्ञान नहीं था। विदर्भ इत्यादि का उल्लेख ब्राह्मणों में हुआ है जो पाणिनि से कहीं पहले बने थे, अतः भाण्डारकर यहां अमान्य हैं ।

निषध-नरेश नल, वीरसेन का पुत्र था (वनपर्व ५३)। उसका स्वयंवर में (५७) दमयन्ती से विवाह हुआ जो विदर्भ-कुमारी थी।

५८. द्वापर और कलियुग साथ-साथ जा रहे थे। इन्द्र से उनकी रास्ते में मुलाकात हुई। कलि, दमयंती नल की हो गई, सुनकर क्रुद्ध हो उठा। उसने द्यूत में द्वापर की सहायता मांगी। (नल के समय में द्यूत द्वापर का प्रभाव हुआ। किंतु कलि यहां कैसे आ गया ? यह कठिन कल्पना है।)

६१. नल ने दमयंती को जूए में नहीं बदा। जूए में पुष्कर से हार वह बन को चल दिया (स्त्रियों को जूए में बदना उचित नहीं समझा जाता था)।

६४. अ० उस समय व्यापारी वन में होकर जाते थे। रास्ते में डाकुओं का बहुत भय रहता था। व्यापार करने में काफ़ी दिक्कतें उठानी पड़ती थीं। व्यापारी यक्षराज मणिभद्र की पूजा करते थे (यक्ष धन का प्रतीक माना जाने लगा था)। आज भी व्यापारी अपनी दूकानों पर जिन देवताओं के नाम लिखते हैं वे अनार्य्य देवता थे—जैसे ॐ कुबेरायनमः,

---

१. ट्रैवन्कोर स्टेट मैन्युअल पृ० २१३.

२. प्रि आर्यन एण्ड प्रिद्रविडियन (लेवी), पृ० १६९.

३. एपिक मायथोलॉजी, पृ० १७९.

४. वही पृ० १८४.

५. दि वाइल्ड ट्राइब्स इन एन्शेन्ट इंडिया, पृ० ५४.

श्री गणेशायनमः। लक्ष्मी का कामदेव से संबंध है जिसको धन की देवी समझा जाता है। लक्ष्मी आर्य्यों में पहले नहीं थी। देवासुर संग्राम से पहले अमृतमंथन (परस्पर मिलन) से इस देवी को आर्य्यों ने पाया था। (अमृत मंथन को कल्पना समझना चाहिये क्योंकि देवों ने अमृतमंथन के बाद अमृत पिया था और वे अमर हो गये थे, पर बाद में उनके मरने का जिक्र है, तभी तो कच अमरता का मंत्र सीखने शुक्राचार्य असुर पुरोहित के पास गया था। अगर अमृत अमृत होता तो देवता क्यों मरते ?)

व्यापारी चेदि देश जा रहे थे।

६५. अ० में दमयंती ने कहा था——मैं किसी का झूंठा नहीं खाऊंगी। किसी के पैर न धोऊंगी। किसी मर्द से बातचीत न करूंगी। (दासी के यह काम थे।)

६६. नल को वन में कर्टोकट नाग वंश का व्यक्ति (बुरे दिनों में) जलता हुआ मिला। नल ने उसे बचाया। उसने कहा : मैं एक प्रधान नाग हूं।

ऋतुपर्ण भी पांसे का खेल खेलता था।

७१. स्त्रियों का दूसरा विवाह हो सकता था। तभी ऋतुपर्ण बुलाने पर गये। यदि ऐसी प्रथा न होती तो व्यभिचारिणी समझ कर ऋतुपर्ण दमयंती के स्वयंवर में जाते ही नहीं।

७८. अ० नल ने जूआ खेल कर ही अपना राज्य वापिस जीता। पुष्कर ने दमयंती को जूए में दाँव पर रखने की सलाह दी थी (इससे प्रकट होता है कि यह प्रथा भी थी जरूर, पर बुरी समझी जाती थी)।

क्षत्रियों की लूट बढ़ गई। उसे समाज ने एकदम स्वीकार नहीं किया। आर्य्यों और अनार्य्यों का ब्राह्मण ने क्षत्रिय-विरुद्ध मोर्चा बनाया। ब्राह्मण की शक्ति जा रही थी। और बाकी तथा ब्राह्मण का धन भी क्षत्रिय लूट रहे थे।

राजा को क्षत्रिय ने अनेक अधिकार दिये। यह भी ज्ञात होता है। ब्राह्मण अपने वर्ग-स्वार्थ रखते थे पर वे विश् की प्राचीन मर्यादा को एकदम तोड़ देने में समर्थ नहीं हुए थे। क्षत्रिय ने उसे तोड़ दिया। नीचकर्म लूट को वीरता के आडंबर में धन और वैभव के लिये उन्होंने अपना धर्म बना लिया।

उद्योगपर्व १५६ अ० में १।१० तक कथा है कि—पहले समय में कुशमयी ध्वजा लिये हुए ब्राह्मण लोग हैहय वंश के क्षत्रियों से लड़ने गये थे। उन ब्राह्मणों के साथ वैश्य और शूद्र भी थे। एक ओर तीन वर्ण थे और दूसरी ओर केवल क्षत्रिय थे। युद्ध में क्षत्रियों ने तीनों को भगा दिया। तब ब्राह्मणों ने क्षत्रियों से कारण पूछा। धर्म के जानकार क्षत्रियों ने बताया कि एक बुद्धिमान पुरुष को अगुआ बनाकर उसी की राय से सब काम करो। तुम लोग अलग-अलग ढाई चावल की खिचड़ी पकाते हो, तभी हारते हो (यह सैन्य-शक्ति का उदय हुआ।

पहले गण लड़ता था अब सेना अलग हो गई)। ब्राह्मणों ने एक पराक्रमी ब्राह्मण को सेनापति बनाया और अंत को ब्राह्मणों की जय हुई।

परंतु अंत में क्षत्रिय ही जीते। परशुराम जीती हुई धरती को सहेज न सके। दान दे दी, और क्षत्रिय जैसे लुटेरों से संबंध हो गया। इस प्रकार शूद्र और विश् को फिर दबा दिया गया। यदि ब्राह्मण यह न करते तो उन्हें ऊँचे अधिकार जो क्षत्रिय ने दिये, वे समाज में नहीं मिले होते। क्षत्रिय-ब्राह्मण-मिलन का सबसे बड़ा कारण भारत में अनार्य्यों की उपस्थिति थी, जिसके कारण युद्ध की दिशा मोड़ दी गई, जातीय युद्ध होने लगे।

हैहय ब्राह्मण-विरोधी थे। उनकी शक्ति तो दब गई, पर लूट क्षत्रिय की बची रह गई। उद्योगपर्व १७८ अ० में भीष्म ने परशुराम अर्थात् भार्गव ब्राह्मण से कहा है कि—(६०–६५) युद्ध करने चलिये। तेजस्वी क्षत्रिय पीछे उत्पन्न हुए हैं।

शांतिपर्व ५० अ० में कथा है कि इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करके परशुराम ने अश्वमेध-यज्ञ किया और उस यज्ञ में सारी पृथ्वी महर्षि कश्यप को दक्षिणा में दे दी (अर्थात् प्रजापति को)। कश्यप ने बचे-खुचे क्षत्रियों की रक्षा के लिये स्रुक और प्रग्रह लिये हुए हाथ से इशारा करके परशुराम से कहा: अब आप जाकर दक्षिण समुद्र के किनारे निवास कीजिये।

परशुराम ने शूर्पारक बसाया।

कश्यप ने पृथ्वी का राज्य ब्राह्मणों को देकर वनगमन किया।

इस तरह क्षत्रियों के न रहने पर पृथ्वी पर अराजकता छा गई। वैश्य और शूद्र स्वतन्त्र होकर इच्छानुसार ब्राह्मणों की स्त्रियों के साथ भोग करने लगे। ब्राह्मणों का प्रभुत्व उठ गया। पृथ्वी रसातल को जाने लगी। कश्यप ने पृथ्वी को उरु (जांघ) पकड़कर थाम लिया। तभी से पृथ्वी का नाम उर्वी पड़ा।

कश्यप को प्रसन्न करके अपनी रक्षा के लिये पृथ्वी ने उनसे एक राजा मांगते हुए कहा—मैंने हैहय वंश के गर्भस्थ बालकों की रक्षा की है। पौरववंशीय विदूरथ का पुत्र जीवित है। वह ऋक्षवान पर्वत पर ऋक्षों (जाति विशेष) से सुरक्षित है। पराशर महर्षि ने सौदास पुत्र की रक्षा की है—उसका नाम सर्वकर्मा है। शिवि का पुत्र गायों ने पाला है, वह गोपति है। प्रतर्दनपुत्र वत्स है। गोष्ठ में वत्सों ने बचाया है। दधिवाहन पौत्र तथा दिविरथ पुत्र गंगा तीर पर गौतम ऋषि ने बचाया है।

बृहद्रथ की रक्षा लंगूरों (वानर जाति) ने गृध्रकूट पर्वत पर की है।

मरुत्तवंशीय राजकुमारों की समुद्र ने रक्षा की है। (भाग गये समुद्र तीर पर) ये सब राजकुमार इस समय धाकारों (शूद्रों[1]) और सुनारों के घरों में छिपे हैं। इनके बाप-दादों ने मेरे ही लिये युद्ध में परशुराम के हाथों प्राण गंवाये हैं (अर्थात् राज्य और संपत्ति के लिये युद्ध करते हुए।)

---

१. राज मिस्त्री।

कश्यप ने क्षत्रियों को राज्य दे दिया।

महाभारत के बाद जैसे शूद्रों ने सिर उठाया तब जाजलि वैश्य को ब्राह्मण ने अलग तोड़ा और फिर दबाया, वैसे ही आर्यों के इस गृहयुद्ध के बाद भी शूद्र एक बार उठे। यदि पृथ्वी का उरु वैश्य है तो वही इस बार भी हुआ क्योंकि विश अंततः आर्य्य था। युद्ध जातीय युद्ध में परिणत हो गया।

ब्राह्मण ने क्षत्रिय से दया करके संधि नहीं की।

परम्परा है कि हैहय ने रावण को मारकर दक्षिण की ओर भगा दिया था। दक्षिणाभिमुख ये राक्षस विंध्य के दक्षिण में उतर गये और लंका के अधिपति बन गये। दूर-दूर तक के व्यापार पर इनका अधिकार हो गया और रावण की सुवर्ण लंका प्रख्यात हो गई। सरस्वती तीर पर बसने के कारण राक्षसों का एक नाम सारस्वत भी पड़ा। रावण को ब्राह्मण क्यों कहा गया है ? वह वेद-वेदांगपाठी है। इसको त्रेतायुग में देखना उचित होगा।

यहां की जातियों का इतिहास भी उल्लेखनीय है। राहुल का मत है कि गंगा-यमुना के प्रदेश में एक **भर जाति** रहती थी। उसी के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। आर्य परम्परा ऐसा नहीं कहती। परन्तु बिहार में अभी भी भर जाति है।

इस समय श्वेतकेतु ने स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की मर्यादा नियत की। गण अब राष्ट्र में बदलने लगे। पहले गण में सब एक दूसरे को जानते थे। स्त्री-पुरुष का संकल्प से संभोग होता था। अब संस्पर्श अर्थात् गोत्र-भेद हो गया। स्त्रियां विदेशी अनजाने व्यक्ति से संभोग नापसंद करने लगीं। यह उन पर ज़बर्दस्ती का बोझ था। कथा है कि धर्म ने ओघावती से संभोग किया तब ओघावती के पति ने प्रशंसा की। इसके बाद ययाति की कन्या का वर्णन है। तब स्त्री घोड़ों के बदले में भोगी जाने लगी थीं।[१] एक ओर शर्मिष्ठा आदि दासी होकर ऋतुस्नान का फल लेती थीं, दूसरी ओर दीर्घतमा को हमने देखा, पुत्रों ने माता के कहने से नदी में बहा दिया। सत्ययुग के अंत में पर-पुरुष को देखने पर परशुराम ने रेणुका माता का सिर काट दिया था। स्त्री का अधिकार छिनकर पितृसत्ता आ गई।

अब तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार सुदेव काश्यप ने पातिव्रत तथा ब्रह्मचर्य के खंडन पर दण्डविधान लागू किया।[२]

आरुणेय अथवा औद्दालकि श्वेतकेतु का शतपथ ब्राह्मण और छांदोग्य उपनिषद् में उल्लेख है। कौशीतकि उपनिषद् में वह आरुणेय तथा गौतम है। उसने ब्रह्मचारियों के लिये वर्जित मधु खाने पर जोर दिया था। वह प्रवाहण जैबलि तथा जनक विदेह का समसामयिक था। परवर्ती काल में उसे धर्म का विधान देने वालों में से उद्धृत किया गया है। और 'अवर' कहा है, अर्थात् पिछले समय का।[३]

---

१. उद्योगपर्व : ११५–अ०–१६–१७–१८ में ययाति-पुत्री माधवी की कथा।

२. वेदिक इन्डैक्स २, पृ. ४५५. ३. वही पृ. ४०६.

उद्दालक, आरुणि श्वेतकेतु का बाप—अरुण (पिता), तथा पतञ्चल काप्य (मद्र) का शिष्य तथा याज्ञवल्क्य, वाजसनेय कौशीतकि का गुरु था। इनके विवाद तथा शास्त्रार्थों का भी उल्लेख है। श्वेतकेतु पाञ्चालों में झगड़ा करता था। सायण ने उद्दालक को गौतम भी कहा है। वाजश्रवस गौतम नचिकेत का पिता था। उद्दालक, अलग-अलग समय पर दिवोदास भीमसेनी तथा वशिष्ठ चैकितानेय के साथ रहा था। उसने भद्रसेन, आजातशत्रव तथा प्राचीनयोग्य शौचेय को विवाद में हराया था। आपस्तंब ने श्वेतकेतु को उद्दालक का औरस पुत्र माना है तथा अवर कहा है।[१]

श्वेतकेतु की माता को एक ब्राह्मण गण गोत्र के अधिकारानुसार संभोग के लिये जबर्दस्ती पकड़ ले गया। श्वेतकेतु के नाराज़ होने पर उसके पिता ने कहा कि यही सनातन रीति है, स्त्रियां पहले गौ की हीं भाँति स्वतन्त्र थीं।

किंतु समाज अब बदल गया था। स्त्री के अधिकार पितृसत्तात्मक समाज में नष्ट हो गये थे, इस समय उसने भी पातिव्रत इसलिये स्वीकार किया कि वह वेश्या न बन जाय। पुरुष आर्थिक अधिकार छीनकर भी जहां तक भोग का विषय था स्त्री को वैसा ही रखना चाहता था, परंतु स्त्री ने विद्रोह किया। यही हमारे सती पातिव्रत का प्रारंभ है। आगे चलकर जब पैतृक संपत्ति हुई और वर्ण-व्यवस्था की रक्षा की आवश्कता हुई तब ब्राह्मणों ने नियोग तक बंद कर दिया।

श्वेतकेतु ने **एक पुरुष तथा एक स्त्री** की मर्यादा नियत की।

श्वेतकेतु का नाम जनमेजय के यज्ञ में उपस्थित ऋषियों में भी आता है।[२] तब क्या श्वेतकेतु जनमेजय काल में था? जब कि सत्यवती ने कथा सुनाते समय श्वेतकेतु को प्राचीन-काल का व्यक्ति कहा था। शतपथ ब्राह्मण और छांदोग्य उपनिषद् के श्वेतकेतु दो अलग-अलग व्यक्ति हैं। 'अवर' कहकर पहले और पिछले का भेद भी परम्परा में स्पष्ट कर दिया गया है। जनक **विदेह पद था**। उसका समसामयिक होना कठिन नहीं है। वृहदारण्यक उपनिषद् में स्पष्ट है कि याज्ञवल्क्य के 'जनक समसामयिक' का नाम अश्वल था। यह अजातशत्रु भी परवर्त्ती नहीं है। प्राचीन एतिहासिज्ञों में इन दो श्वेतकेतुओं की भूल पड़ गई है। दूसरा ही उपनिषदों में वर्णित है।

परम्परा के विकास के नियम के अनुसार श्वेतकेतु के बाद मुक्त संभोग समाज में प्राय: वर्जित हो गया और पुरुष ने त्रेता में एक से अधिक स्त्री रखना प्रारंभ किया जिसका साक्ष्य परवर्त्ती वेदकाल में मिलता है। ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में यह प्रकट है।

सत्ययुग का अंत हैहयों के प्रहार के साथ हुआ जिसके फलस्वरूप पहले आये हुए आर्य चारों ओर बिखर गये और भाषा के अंतरंग तथा बहिरंग दो रूप प्रकट होते हैं

१. वैदिक इन्डैक्स २, पृ. ८७.

२. आदिपर्व ५३वां अध्याय १–१५ तक ऋषियों के नाम हैं।

यादवसात्वत हारकर दक्षिण-पश्चिम को भाग आये और नये वासी अत्यंत दर्पोन्नत होकर शासन करने लगे। पुराने लोगों की अपेक्षा यह ब्राह्मणों के उतने पक्ष में नहीं थे।

हैहयों के प्रचण्ड आघात से पहले के क्षत्रिय दब गये, परंतु ब्राह्मण विद्वेष परशुराम में जागरूक हो उठा। ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष हुआ और इसमें यद्यपि शस्त्रबल में क्षत्रिय हारे, परंतु ब्राह्मण राज्य नहीं कर सके। उनके कृतयुग की समाप्ति हो गई। आर्यों का यहां के निवासियों से मेल-जोल बढ़ा तथा क्षत्रिय अब शासक हो गये।

क्षत्रिय का शासन ब्राह्मण को मजबूर होकर स्वीकार करना पड़ा। भारत के इतिहास में यह एक अजीब बात है। संसार में अन्य देशों में भी पुरोहित, योद्धा, किसान तथा दास थे। किंतु कहीं भी जातिप्रथा ऐसी नहीं बनी जैसी भारत में दिखाई देती है। ऐसा क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर एक पूरी पुस्तक का विषय है। अतः संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि भारत में वर्गभेद आर्यों की सामाजिक व्यवस्था का भीतरी नियम था। वर्गभेद वाला आर्येतर समाज से बाहर आकर उनमें मिला। वे ही शूद्र और दास हुए। इन लोगों पर राज करने के लिये आर्यों ने वर्ण-व्यवस्था को धीरे-धीरे जाति-व्यवस्था में बदल देना चाहा और इसलिये 'रक्त' की नींव पर शुद्धि का प्रचार किया। यह सब उच्च वर्गों का प्रयत्न था। परंतु यह होने में आर्यों के उच्चवर्गों में स्वयं झगड़ा होने लगा।

सत्ययुग में गणयुद्ध होते रहे। परंतु जहां आर्येतरों से संबंध था; वहां प्रायः सब ही आर्य उनसे एक ही-सा व्यवहार करते थे। उन्हें दबाते थे। जो आर्य राष्ट्र बनाकर रहते थे उनके **गण, या समितियां या सभा होती थीं**। उनमें कहीं-कहीं निर्वाचन के स्थान पर पैतृक सत्ता के फलस्वरूप राज्य भी पितृसंपत्ति हो चला था।

सत्ययुग का अंत इस प्रकार हुआ कि आर्यों में सब से धनशालीवर्ग अब गरीब हो गया और उसकी जगह क्षत्रिय ने ले ली। इसका भी आर्थिक कारण था। प्राचीन यज्ञ में ब्राह्मण समाज की वस्तु वितरित करता था। तब छोटे-छोटे गण थे। अब गण की जगह राष्ट्र हो गये। और लूटने वाले क्षत्रिय थे। इस कारण ब्राह्मण की सत्ता खोखली हो चली और संपत्ति कम हो गई। धन क्षत्रियों के पास जमा होने लगा। वे शासन करने लगे। धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मण ऊँचा था। क्षत्रिय ने उसे वहां से गिरा देना चाहा। वह असफल रहा। ब्राह्मण ने सशस्त्र युद्ध किया। धन के बल पर क्षत्रिय अपने व्यक्तिगत यज्ञ कराने लगे और ब्राह्मणों को दान देकर उनकी स्तुति के पात्र बने।

विराट् विश् तथा दास और शूद्रों को दबाने के लिये क्षत्रिय और ब्राह्मण सत्ययुग के अंत में मिले। ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माना गया, परंतु इसकी कीमत में उसे दान पर रहना पड़ा। यह मान लिया गया कि जो कुछ है उसी का है, परंतु क्षत्रिय ने धरती ले ली, और उसका पालन स्वीकार किया।

ब्राह्मण ने लाचार स्वीकार किया कि यदि वह विरोध करता तो जो कुछ था उसके भी छिन जाने का डर था। वह मौका देखने लगा।

इस युग का अंत २७०० ई० पू० मानना उचित है। पार्जिटर ने ४० पीढ़ियां दी हैं। ४०×२०=८०० वर्ष। ३५०० ई० पू० में से ८०० वर्ष घटाने पर लगभग २७०० ई० पू० का समय आता है। भाषा के आधार पर भी यह ठीक लगता है।

संक्षेप में इस युग का नक्शा ऐसा बनता है :

हम ऋग्वेद के छंद, कवि तथा विषय उद्धृत करते हैं।[१]

छंद—अभिसारिणि, अनुष्टुप् के अनेक रूपान्तर, अष्टि, अस्तर-पंक्ति, अतिधृति, अतिजगति, अतिनिचृत, अत्यष्टि बृहति, चतुर्विंशतिक द्विपदी, धृति, द्विपदि विराज, एक पद त्रिष्टुभ, एक पद विराज, गायत्री, जगति, ककुभ्, ककुभ् के अनेक प्रकार, कृति, मध्ये ज्योतिष्, महाबृहति, महापदपंक्ति, महापंक्ति, शतोबृहति, महाशतोबृहति, नष्टरूपी, न्यांकुमारिणी, पदनिचृत, पदपंक्ति, पंक्ति पंक्त्युत्तर, पिपीलिका, मध्या, प्रगाथा, प्रस्तर पंक्ति, प्रतिष्ठा, पुरस्ताद् बृहति, पुरौष्णी शतोबृहति, स्कन्धोग्रीवा, तनुशिरा, त्रिष्टुप्, उपरिष्टत् बृहति, उपरिष्टद् ज्योतिः, ऊर्ध्वबृहति, उरोबृहति, उषणिग्गर्भा, उषणिक्, वर्धमान, विपरीत, विराड्रूप, विराज, विराट्पूर्व, विराट्स्थान, विष्टरबृहति, विष्टरपंक्ति, यवमध्या।

ऋषि (कवि)—मधुच्छन्द, जेत, मेधातिथि, शनुःशेप, हिरण्यस्तूप, कण्व, प्रकण्व, सव्य, नोध, पराशर, गोतम, कुत्स, कश्यप, ऋज्रस्व, तृताप्त्य, कक्षिवन्, भायव्य, रोमश, परुच्छेप, दीर्घतमस, अगस्त्य, इन्द्र, मरुत, लोपामुद्रा, गृत्समद, सोमहूति, कूर्म, विश्वामित्र, ऋषभ, उत्कल, कठ, देवश्रवा, देवव्रत, प्रजापति, वामदेव, अदिति, त्रसदस्यु, पुरुमिल्ल, बुध, गविष्ठि, कुमार, ईश, सुतम्भरा, धरुण, पुरु, वव्रृ, द्वित, प्रयस्वत, शश, विश्वसान, द्युम्न, विश्वचर्षणि, गोपपण, वसुयु, त्र्यारुण, अश्वमेध, अत्रि, विश्ववर, गौरीरिति, बभ्र, अवस्यु, गतु, समवरण, पृथु, बसु, अत्रिभूय, अवत्सरादि, प्रतिक्षत्र, प्रतिरथ, प्रतिभानु, पुरुहनमन, सुदीति, पुरूमीड, हर्यट, गोपवन, सप्तवधृ, विरूप, कुरुसुति, कृत्नु, एकद्यु, कुसीदी, उषणाकाव्य, कृष्ण, विश्वक, द्युम्निक, नृमेध, अपाला, श्रुतकक्ष, सुकक्ष, विन्दु, पूतदक्ष, तिरश्चि, द्युतान, रेह, जमदग्नि, नेम, प्रयोग यविष्ठ, प्रस्कण्व, पुष्टिगु, श्रुष्टिगु आयु, मातरिश्वा, कृश, पृषद्, सुपर्ण, असित, देवल, दृढच्युत, इधमवाह, श्यावश्व, प्रभुवसु, रहूगण, बृहन्मति, अपास्य, कवि, उचथ्य, अवत्सार, अमहीपु, निध्नुवि, भृगु, वैखानस, अत्रि, पवित्र, रेणु, हरिमन्त, वेन, अकृष्टभाष्याः, अजाः, गृत्समद, प्रतर्दन, व्याघ्रपाद, कर्णश्रुत, अम्बरीष, रिजस्वा, रेमसूनु, ययाति, नहुष, शिखण्डिनी, चक्षुः, सप्तर्षि, गौरी

१. हिन्दुत्व पृ. २६ तथा आगे।

रीति, ऊर्ध्वसद्मन, कृतयक्ष, ऋणञ्चय, शिशु, त्रिशिरा, यम, यमी, शंख, दमन, देवश्रवा, संकुसुक, मथित, च्यवन, वसुक्र, लुषा, अभितपा, घोषा, सुहृत्य, सप्तगु, वैकुण्ठ, बृहदुक्थ, माता सहित गोपायन, नाभानेदिष्ट, सुमित्र, जरत्कारु, स्यूमरश्मि, विश्वकर्मा, मूर्द्धन्व, शरपात, तान्व, अर्बुद, पुरुखा, उर्वशि, सर्वहरि, भिषज, देवापि, वभ्र, दुवस्यु, मुद्गल, अप्रतिरथ, भूतांश, सरमा, पणि: जुहु, राम, उष्ट्रदंष्ट्र, नभप्रभेदन, शतप्रभेदन, साधि, धर्म उपस्तुत, अग्निपूय, भिक्षु, उरुक्षय, लव, बृहद्दिव, हिरण्यगर्भ, चित्रमहा, कुलमल, बर्हिष, विहत्य, यज्ञ, सुदास, मान्धाता, ऋष्यश्रृंग, वृषाणक, विप्रजूति, व्यंग, विश्वावसु, अग्निपावक, अग्नितापस, द्रोण, साम्बमित्र, पृथुवन्व, सुवेद, मृडिका, श्रद्धा, इन्द्रमाता, शिरिम्बिथा, केतु, भुवन, यक्ष्मानशन्, रक्षोहा, वव्रूहा, प्रचेता, कपोत, अनिला, शबर, विभ्राज, इत, सम्वर्त, ध्रव, अभिवर्त्त, ऊर्ध्वग्रीवा, पतंग, अरिष्टनेमि, शिवि, सप्तधृति, श्येन, सार्पराज्ञि, अघमर्षण, सपबन, प्रतिप्रभ, स्वस्ति, स्ययस्व, श्रुतविद्, रातहव्य, यजट, उरुचक्रि, बहुवृक्त, पौर, अवस्तु, सप्तवध्, यवापमरुत, भरद्वाज, वीतहव्य, सुहोत्र, शुनहोत्र, नर, सम्पु, गर्ग, ऋजिस्वा, पायु, वासिष्ट, मैत्रावरुणी, वशिष्ठ, शक्त्रि, वाशिष्ठा, प्रगाथकण्व, मेधातिथि, आसङ्ग, शस्वति, देवातिथि, ब्रह्मातिथि, वत्स, पुनर्वत्स, साध्वंश, शशकर्ण, नारद, गोसूक्ति, अश्वसूक्ति, इरिम्बिथि, सौभरि, विश्वमना, वैवस्वत मनु, कश्यप, निपतिथि, सहस्त्रवसु, रोचिशा, श्यावाश्व, नाभाग, त्रिशोक, भर्ग, कलि, मत्स्य, मान्य ।

इस सूची को पूरा दोहराने का एक विशेष कारण है। वेद को ईश्वरकृत समझने वाले देखें कि वेद कितने हाथों के द्वारा बना है। कुछ नाम दुहराये गये हैं। शबर और इरिम्बिथि जैसे नाम तो आ भी नहीं लगते। कुछ कवि सत्ययुग, कुछ नाम त्रेता तथा द्वापर का जरत्कारु तक मिलता है। हो सकता है यह सब लोग पुराने थे और परवर्त्तियों से केवल इनका नाम साम्य मिलता है। यदि यह मत ठीक नहीं है तो भी कोई आश्चर्य का विषय नहीं होना चाहिये। वेद एकदम नहीं बना। वेद को बहुत बाद में व्यास ने इकट्ठा किया और संपादन किया। यह आवश्यक नहीं है कि उन्होंने बिल्कुल ठीक ही कालक्रम से मंत्रों को लगाया। इसीलिये हमने ऋग्वेद के सबसे पहले मंडल के अष्टक को ही अपना विशेष आधार बनाया है। विद्वानों का मत है कि वह निस्सन्देह सबसे प्राचीन है। तथापि ऋग्वेद में काफ़ी हद तक क्रम का ध्यान रखा गया मिलता है।

अब उन देवताओं का नाम देखना चाहिये जिनकी ऋग्वेद में स्तुति की गई है :

अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, मित्रावरुण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, सरस्वती, अपृह, ऋतु, मरुत, त्वष्ट्रा, ब्रह्मणस्पति, सोम, दक्षिणा, ऋभु, इन्द्राणी, वरुणाणी, अग्नपेयि, द्यौः, पृथ्वी, विष्णु, पूषण, आयु:, सविता, उषा, अर्यमा, आदित्य, रुद्र, सूर्य, वैश्वानर, सिंधु, स्वनय, रोमशा, बृहस्पति, वाक्, काल, साध्य, रति, अन्न, वनस्पति, राका, सिनिवाली, आयलपत्, कपिञ्जल, यूप, पर्वत, सोमक, वामदेव, उच्चैःश्रवस, दधिक्न, क्षेत्रपति, सीता, घृत, उषणा, अत्रि, देवि, पर्जन्य, धेनु, प्रस्तोक, पृष्णि, वास्तोष्पति, सरस्वा, चित्र,

सोमयनमान, पितृ, सरमापुत्राः, मृत्यु, धाता, वैकुण्ठ, आत्मा, निर्ऋति, ज्ञान, ओषधयः, अरण्यानि, श्रद्धा, शचि, मायाभेद तथा तार्क्ष्य।

इस सूची में देवताओं के अतिरिक्त कुछ पितर भी प्रतीत होते हैं। आर्यों में पितरपूजा स्वीकृत थी।

ऋग्वेद की विषय-सूची तत्कालीन घटनाओं, स्थानों तथा वस्तुओं पर अच्छा संक्षिप्त प्रकाश डालती है :

१. ऋग्वेद में सबसे अधिक अग्नि के स्तोत्र हैं। अग्नि पृथ्वी के देवताओं और मनुष्यों के मध्यवर्त्ती देवता हैं। उन्हीं के सहारे और देवता बुलाये जाते हैं।

२. इन्द्र स्तोत्र। इन्द्र शक्तिशाली, मेघचालक, वज्री हैं। वर्षा से ही धरती अन्न-धन से समृद्ध होती है और वर्षा वही कराते हैं। वृत्रासुर से युद्ध, मेघवृष्टि, वज्रपात।

३. उषा का वर्णन। वह हिम नष्ट करती है। सूर्य की अग्रगामिनी है।

४. सूर्य वर्णन।

५. अनेक उपर्युक्त देवताओं के वर्णन हैं।

६. कृषिकार्य, मेषपालन, देशभ्रमण, वाणिज्य, समुद्रगमन, नद्यादि का भौगोलिक वर्णन। ऋक्ष, सौर वत्सर, चांद्र वत्सर वर्णन।

७. देवताओं की गाएँ और घोड़े।

८. पञ्चकृष्टि।

९. प्राचीनकाल के मनुष्य की परमायु।

१०. अविवाहिता कन्या।

११. तन्तुवायु, वस्त्रनिर्माण। नापित; **वर्म**। तनुत्राण, शिरस्त्राण, वाद्ययन्त्र।

१२. अनार्यों से युद्ध।

१३. नागों का उत्पात और सर्पमन्त्र।

१४. पक्षी की अमंगल ध्वनि के मन्त्र।

१५. सूर्य की दैनिक गति।

१६. शस्यादि का वर्णन। खदिर और शिशुकाष्ठ की गाड़ी-रथ-निर्माता शिल्पी, सुवर्ण-सज्जाविशिष्ट अश्व, युद्ध का अश्व, अमात्य, वेष्टित गजस्कंध पर आरूढ़ राजा।

१७. प्रस्तर निर्मित नगर।

१८. सरयू के पूर्व में **आर्य** राज्य का विस्तार और **आर्यों** का युद्ध। दृषद्वती, आपया

यमुना, रसा, कुभा, सरस्वती, परुष्णी, अनितमा, सिन्धु, गोमती, हरियूपिया, वायव्यावती, विपाशा, शतद्रु, शर्यणावती, जाह्नवी, आर्जीकिया-नदी ।

१६. अनार्य जाति, कीकट देशीय बर्बर (तृतीय मंडल में) ।
२०. सूर्यग्रहण ।
२१. ईश्वरी बल की एकता । एकेश्वरानुभव ।
२२. सर्पनाग की कथा । दिति और अदिति ।
२३. स्वर्ग और पृथ्वी की एकबारगी सृष्टि ।
२४. ऋषियों की प्रतिद्वंद्विता । संसार और युद्ध में ऋषियों की प्रवृत्ति । ऋषियों के वंशानुक्रम में मन्त्ररक्षा ।
२५. मुद्रा का प्रचलन ।
२६. लोहे का कलश । धातु गलना । लुहार की भाथी ।
२७. स्वामी सहित स्त्री का यज्ञ करना । विवाह-वर-वेष ।
२८. त्रिधातुगृह, दशयन्त्र उत्स ।
२९. दही, सुरा **रखने को चर्माधार ।**
३०. हिरण्यमय कवच । विविध आभरण ।
३१. भाषारहित अनास्-अनार्य वर्णन ।
३२. युद्ध में अश्व का व्यवहार ।
३३. गाय के चमड़े में मँढा हुआ युद्ध-रथ । युद्ध-दुंदुभि ।
३४. नदी कूल और उर्वरा भूमि पर झगड़ा । मरुभूमि, मेघस्तुति, सारमेयस्तुति, पर्वत, नदी, वृक्ष, गौ और घोड़े आदि की स्तुति ।
३५. सर्प के विष का मन्त्र ।
३६. सुदास राजा का वर्णन । युद्धास्त्र और आयोजन ।
३७. स्वर्ग और अमृतत्त्व लाभ ।
३८. कृष्ण नामक अनार्य योद्धा ।
३९. सोमरस बनाने की रीति ।
४०. विविध वैदिक उपाख्यान ।
४१. समुद्र-मंथन से अमृत लाभ ।
४२. गरुड़ द्वारा अमृतहरण ।
४३. अमृतपान से देवगण का अमरत्व ।
४४. नवम मंडल के शेष भाग में ऋतु का वर्णन ।
४५. यम-यमी-जन्म । यम-यमी-संवाद ।
४६. अंत्येष्टि क्रिया के मन्त्र ।
४७. पुण्यात्मा पुरुषों का स्वर्गवास और यज्ञ भाग ग्रहण । सत्य का सम्मान ।

४८. पञ्च जनवास की कथा।

४९. **स्तोता, वैद्य, लोहार** आदि के भिन्न-भिन्न व्यवसाय।

५०. कन्याविवाह में अलंकार-दान।

५१. अग्निदाह-प्रथा।

५२. मृतदेह का मृत्तिका में स्थापन।

५३. कुआँ खोदना, पशु चराना, भेड़ के रोएँ से वस्त्र बनाना।

५४. सिंह, हरिण, वराह, शृगाल, शशक, हाथी, गोधा और सर्प का उल्लेख।

५५. संसारी ऋषियों की संपत्ति।

५६. सृष्टि-कथा।

५७. प्राचीनकाल में आर्यों का निवासस्थान।

५८. शोकप्रकाश करने की चाल।

५९. भाषा की आलोचना। छन्दःशास्त्र और ज्योतिष की चर्चा।

६०. स्वपत्नियों पर अपने अधिकार जमाने के मन्त्र। गर्भसंचार के मन्त्र। गर्भरक्षा के मन्त्र। रोगारोग के मन्त्र। अमंगलनाश के मन्त्र।

६१. राज्याभिषेक आदि के मन्त्र।

६२. सामाजिक, वैज्ञानिक, गृह्य और धार्मिक अन्य विषय, कोई थोड़े कोई अधिक परिमाण में, ऋग्वेद में हैं।

विषयों को क्रमानुसार नहीं लिखा गया है। परंतु ऊपर हमने जिन तथ्यों को प्रकट किया था उनका आधार यहां स्पष्ट दिखाई देता है।

अनेक कथाएँ, व्यक्तिगत, संपत्ति विषयक जो तथ्य हमने ऊपर निकाले हैं उनका आधार ऋग्वेद में ही है।

वेद के अनेक विषय, जो परवर्त्ती हैं, इस ऋग्वेदकालीन संग्रह में उपस्थित नहीं है। यद्यपि क्रम पर पूरा आधारपूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता, किंतु परम्परा का थोड़ा आधार मिलता है। जो हो, यह इतना महत्त्वपूर्ण है भी नहीं, यह ऊपर देखा जा चुका है।

अनेक तथ्यों की सूची यहां उपस्थित करना ठीक समझता हूँ —

महाभारत—

वनपर्व	९६–११० अध्याय	अगस्त्य उपाख्यान
	११४	पाण्डवों की तीर्थयात्रा
	११५–११७	परशुराम
	१२१	नृग
	१२२–१२५	च्यवन
	१२६	मान्धाता
	१२७–१२८	सोमक

	१२६–३०	तीर्थवर्णन
	१३१	उशीनर
	१४२	नरकासुर
	१८४	हैहय
	१८५	पृथु
	१८६	तार्क्ष्य
	१८७–१८८	मनु
	१९२	वामदेव
	१९५	ययाति
	२७५	रावण
	२९३–२९९	सावित्री
उद्योगपर्व	३५	विरोचन
	१०६–११७	दिशा वर्णन
द्रोणपर्व	५४	अकंपन
	५५	सुवर्णष्ठीवी
	५६	सुहोत्र
	५७	अंग
	५८	शिवि
	५९	राम
	६०	भगीरथ
	६१	दिलीप
	६२	मान्धाता
	६३	ययाति
	६४	अम्बरीष
	६५	शशबिन्दु
	६६	गय
	६७	रन्तिदेव
	६८	भरत
	६९	पृथु
	७०	परशुराम
कर्णपर्व	३४	परशुराम (१२३–१६२)
शल्यपर्व	३७–५४	तीर्थयात्रा

शांतिपर्व	२९	अनेक राजा
	४९	परशुराम
	५९	पृथु
	२०७	संसार, सृष्टि
	२४३	,, ,,
अनुशासनपर्व	३–४	विश्वामित्र
	२८	ब्राह्मण
	५१	नहुष-च्यवन
	५५–५७	कुशिक
	९६	जमदग्नि
	१००	नहुष
	१२७	धर्म
	१५५	कार्त्तवीर्य्य
अश्वमेधपर्व	१०	मरुत्त
	२९	परशुराम

उपर्युक्त अध्याय जिज्ञासु को अधिक सहायता दे सकते हैं। उन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए।

७

त्रेतायुग

उत्तर वैदिक काल

महाभारत, शांतिपर्व के ७२वें अध्याय में भीष्म ने युधिष्ठिर को वायु तथा पुरुरवा का वार्त्तालाप सुनाया है (१०–२०): 'ब्राह्मण सब वर्णों से पहले पैदा हुए हैं, इसलिये पृथ्वी के सब पदार्थों पर उन्हीं का अधिकार है। ब्राह्मण अपना ही खाते, पहनते और अपनी ही वस्तुएँ दान करते हैं क्योंकि सब कुछ उन्हीं का है। ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ तथा गुरु हैं। जैसे पति के न रहने पर स्त्री देवर को पति बना लेती है वैसे ही ब्राह्मण से सुरक्षित न होने पर पृथ्वी ने क्षत्रिय को अपना स्वामी बना लिया है।'

और भी—

महाभारत, शांतिपर्व के २०७ अध्याय (४०–४६) में भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है कि दक्षिण देश में उत्पन्न नरवर, अन्ध्रक, गुह, पुलिन्द, शम्बर, चूचुक, मद्रक और उत्तर देश निवासी यौन, काम्बोज, गांधार, किरात और बर्बरगण सदैव पाप-निरत हैं। वे लोग चाण्डाल, गिद्ध और कौए के-से आचरण करते हैं। उनकी उत्पत्ति सत्ययुग में नहीं हुई थी। त्रेतायुग से ही उनकी बढ़ती होने लगी। उनकी संख्या अधिक हो जाने और उनके कारण पृथ्वी के पीड़ित होने पर, भगवान् भूतभावन की इच्छा से, वे सब आपस में लड़ने लगे।

त्रेता युग की यही दो मुख्य विशेषताएँ हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष थम गया। परशुराम के अनुयायियों का अंतिम प्रयत्न राम के समय हुआ और उस समय क्षत्रिय बल के सामने उनकी एक भी नहीं चली। ब्राह्मण ने इसीलिये त्रेता को दूसरा युग माना। इस समय आर्यों में परस्पर छोटे-छोटे युद्ध हो रहे थे। यह संपत्तिशालियों के एक दूसरे को हड़पने के प्रयत्न थे।

यह यजुर्वेद और अथर्ववेद के कुछ प्रारंभिक मन्त्र बनने का लंबा समय है। इस समय संपत्ति के कारण चोरी प्रारंभ हो गई थी। यजुर्वेद में चोरों से रक्षा की प्रार्थना की गई है।[१] त्रयम्बक शिव की प्रशंसा,[२] राक्षसों के नाश की प्रार्थना,[३] वैश्य को उत्साहित करने के वर्णन,[४] स्त्री को पुरुष से न डरने को अभय देना,[५] धनी का समाज में पूजित होना,[६]

---

१. यजुर्वेद १।१६, ३. वही ५।२३—२४-२५. ५. वही ६।३५.
२. वही ३।६०, ४. वही ६।२८, ६. वही ७।४.

सभा, सेना तथा प्रजा की इकट्ठी सभाओं का उल्लेख,[१] राष्ट्र का वर्णन,[२] क्षत्रिय का रक्षक होना,[३] जनराज्य का उल्लेख,[४] कपर्दी की प्रशंसा,[५] नीलग्रीव शिवस्तुति,[६] शिव का पशुपति होना,[७] तथा क्षत्रिय का राज्य, पशु, अश्व, गौ और पृथ्वी में प्रतिष्ठित होना,[८] चातुर्वर्ण्य की खूब प्रतिष्ठा होना[९] उस समय वर्णित हैं।

यहां सुनीतिकुमार का मत उद्धृत करना आवश्यक है :

ईसा की दूसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध में पूर्व देशों (हिंद के उत्तर-पश्चिम के पश्चिम) में हिंदी-यूरोपीय लोगों का काफ़ी इधर से उधर गमन हुआ। सेन्तुम वर्ग (हिताइत तथा प्राचीन ग्रीक), सेतेम वर्ग (आर्य) तब परस्पर संघर्ष कर रहे थे, इधर से उधर आ-जा रहे थे। १२२९ ई० पू० के लगभग, प्राचीन मिस्री लेखों से पता चलता है, रेमेसस द्वितीय के पुत्र मेरू-प्ताह फ़राऊन के राज्यकाल के पांचवें वर्ष में मिस्र पर लिबियनों ने हमला किया। उनके साथ अनेक जातियां थीं—अकसवास, रूकु, तुरुस, शकर्स तथा सर्दना मिस्री राजा ने इन सब को बुरी तरह हराया। यह जातियां 'उत्तरी,' तथा 'समुद्री देशों' से आगत कहलाई थीं। अब उन्हें कुछ हिंदी-यूरोपीय तथा अ-हिंदी यूरोपीय जातियों से पहचानने की कोशिश की जाती है। जो उस समय एशिया माईनर, ग्रीक द्वीपों तथा ग्रीस में रहती थीं। अकयवास प्राचीन ग्रीक थे, जिन्हें होमर अखईओइ या अखियन के नाम से जानता था। रूकु लीसियन थे (लुकोई का रूपांतर) यह अ-हिंद आर्य थे। तुरुस=तिरसेनियन या तस्कन, और सर्दना=एशिया माईनर के सार्डीनियन, जो इटली में गये, और सार्डीनिया को जिन्होंने अपना नाम दिया। शकर्स=-सिसेल्स जिन्होंने सिसली को नाम दिया (?)

११९२ ई० पू० में रेमेसस तृतीय ने उत्तरी आक्रमणकारियों का दूसरा संघ हराया जिसमें पुरूसती, वक्षस, तक्रुई, दनउना थे। इनमें पुरूसती=फिलिस्तीन (क्रीटवासी), दनउना=होमर के दनोई अर्थात् प्राचीन ग्रीक। तुरुस तथा बरकी दो के विषय में कुछ लोगों का विचार है :

भारतीय=तरु, वश, तुरुस। यह अनार्य, अ-हिंदी यूरोपीय थे, भाषा आर्य हो गई थी।

पुरुसती=पुलस्त्य (यजुर्वेद) इनके सादे बाल थे। ये भत्सु-भरत थे। कपर्दिनों की भाँति यह 'जटी' नहीं थे।

कपर्दिन=प्राचीन यहूदी बाइबिल के कैफ्टर या मिस्री लेखों के ऐसे ही बालों वाले केफ्तियू (=क्रीटवासी ?)।[१०]

---

१. यजुर्वेद ७।२९.
२. वही १०।२.
३. वही १०।११.
४. वही १०।१८.
५. वही १६।२९.
६. वही १६।५७.
७. वही १६।५७.
८. वही २०।१०,
९. वही ।३०।५.,
१०. इन्डो आर्यन एण्ड हिंदी. पृ० ५०—५१.

कुछ ब्राह्मणों से प्रकट होता है कि आर्य उस काल में भी घुमक्कड़ थे। वैदिक आर्य पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी दोआब से पूर्व की ओर बढ़े और कालांतर में भरतों का कुरु, पञ्चाल, वत्स, उशीनर, मत्स्य, शाल्व, शूरसेन, कोसल, काशी, विदेह जैसे राज्य उठ खड़े हुए। इनमें वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकार के आर्य थे। अनार्यों पर आर्य भाषा तथा संस्कृति लादी जाने लगी। पूर्वी आर्यों पर अनार्य प्रभाव पड़ा। यहीं ब्राह्मण धर्म का विरोध प्रारंभ हुआ। व्रात्य इसके उदाहरण हैं। कुछ व्रात्य शैव भी थे। वे दीक्षित भी थे और अदीक्षित भी।[1]

देशी भाषाओं पर कोल तथा द्रविड़ भाषा का प्रभाव पड़ा। वे संस्कृत से दूर होती गईं।[2]

बंगाल को पद्मा, भगीरथी, ब्रह्मपुत्र ने ४ भागों में बाँट रखा था। उत्तर मध्य में पुण्ड्र ब्रह्मपुत्र के पूर्व तथा पद्मा के उत्तर में बंग, राढ़ तथा दक्षिण में सुम्ह प्रदेश थे। यहां दलदल बहुत थी। अन्य जातियाँ भी थीं—कैवर्त्त, चाण्डाल, डोम्ब, हाडिक्क, बागुडि के पूर्वज वाथुरी तथा चूहड़े। निकट ही ओढ्र और कलिंग थे।[3]

यह सब अनार्य जातियां थीं, जो पूर्व में बसती थीं। इन अनार्य भाषाओं के शब्द रूप बदलकर संस्कृत के बन गये।

हिंद चीन के मान-मा शब्द का ब्रम्मा बना। जिससे बाद में संस्कृत रूप ब्रह्म हुआ। बर्मी के र्हाम या सान का स्याम बना।[4]

तिब्बती बर्मन शाखा की बोड़ो विभाग—(बोड़ो, मेच, कोच, कचारी, शभा, नरो, तिपुर) इत्यादि आसाम और पूर्वी बंगाल में और उत्तर बंगाल तक फैल गये। यह संभवतः ईसवी पूर्व हुआ। ७०० ई० के पहले ही बोडो ने उत्तरी बंगाल जीत लिया। इन्हीं में कम्बोज भी थे। हिंदू शासन में कोच ने साम्राज्य बनाया। तिब्बती तथा द्रविड़ प्रभाव बंगाल में काफ़ी है। ईसा पूर्व के पहले सहस्राब्द में बंगाली आर्य भाषाभाषी नहीं लगते। उस समय उनके पास कुछ ऐसी कलाएँ तथा शिल्प थे जिनकी प्रशंसा मगध में भी होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (लगभग चौथी शती ई० पू०) में पुण्ड्र, सुवर्ण-कुड्य, बंग के रेशम की तारीफ़ है। हस्त्यायुर्वेद, पाल काप्य के साथ वर्णित है। यह रचना ६००—२०० ई. पू. सूत्रकाल में रची गई। पाल काप्य—लौहित्य प्रदेश का वासी था।[5]

यह बंगाल की परवर्त्ती परिस्थिति है। उससे पहले के काल में इसका पूर्ण अनार्य रूप रहा होगा।

यह काल विशेषकर सामवेद और यजुर्वेद का है। सामवेद में गीत हैं। अतः यजुर्वेद

---

१. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट ऑफ़ बंगाली लेंग्वेज एण्ड लिटरेचर पृ० ४२, ४६, ४७ के आधार पर।

२. वही पृ० ५२.

३. वही पृ० ६७—६८.

४. वही पृ० ६९,

५. वही पृ० ६९—७०.

का रेखाचित्र देखना चाहिये। 'हिन्दुत्व'[1] से सारांश दिया जाता है: मत्स्यपुराण के अनुसार त्रेता युग में एक ही वेद था, वह था—यजुर्वेद। इसी एक यजुर्वेद के अंतर्गत सभी का समावेश था। परन्तु इस एक यजुर्वेद के शासन के कारण त्रेतायुग में यज्ञकर्म की ही प्रधानता थी। हरिश्चंद्र को पुत्र चाहिये अतः यज्ञ करते हैं, त्रिशंकु को स्वर्ग चाहिये अतः यज्ञ करते हैं, और दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं। विश्वामित्र यज्ञ की ही रक्षा के लिये राघव-बन्धुओं को ले जाते हैं। धनुषयज्ञ से ही विवाह होता है। ऋषियों के यज्ञों में बाधा डालने वाले राक्षस भी विजयकामना से यज्ञ करते हैं।[2] राज्याभिषेक यज्ञ से ही होता है और प्रत्येक प्रतापशाली राजा अश्वमेध यज्ञ करने का अभिलाषी होता है। यजुर्वेद यजन का ही वेद है। ऋग्वेद के मन्त्र यज्ञ में काम आते हैं। साम मन्त्रों का गान होता है। व्यक्तिगत इष्टि यज्ञों में अथर्ववेद-विहित प्रयोग होते हैं।

यजुर्वेद के २ पाठ हैं। शुक्ल और कृष्ण। शुक्ल में १५ शाखा हैं : काण्व, माध्यंदिन, जाबाल, बुधेय, शाकेय, तापनीय, कापीस, पौंड्रवहा, आवर्त्तिक, परमावर्त्तिक, पाराशरीय, वैनेय, बौधेय, औधेय और गालव। यह सब एकत्रित होकर वाजसनेयी शाखा भी कहलाती हैं। इसमें १९९० मन्त्र हैं।

कृष्ण यजुर्वेद का दूसरा नाम तैत्तरीयसंहिता है। यहां अधिक विस्तार भेद में न जाकर संक्षेप में यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश डाला जाता है :

पहले से लेकर उन्तालीसवें अध्याय तक कर्मकाण्ड है।

१. यज्ञ, यज्ञ का विधान, अन्न कूटकर पाक करना।
२. असुर अररु का निवारण। प्रेत पिशाच निवारण।
३. यजमानपत्नी का ग्रंथिबंधन।
४. अग्नि को होता नियुक्त करना।
५. यज्ञरक्षार्थ प्रार्थना।
६. यजमान पत्नी की ग्रंथि खोलना।
७. राक्षसों का भाग।
८. विष्णु त्रिविक्रम।
९. गार्हपत्य अग्निपूजन।
१०. गोगुण-गान।
११. रुद्र त्रयम्बक का आहुतिसहित पूजन।
१२. यजमान का यज्ञार्थमुंडन।
१३. तनूनपात्यग्निक आह्वान।
१४. पशुयज्ञ।
१५. यूप खड़ा करना। बलिपशु बंधन तथा वध।

१. पृ. ४० तथा आगे.
२. अब यज्ञ अधिकांश अग्नि-पूजा हो चला है।

१६. मांसबलि ।
१७. अष्टदेवासुर तर्पण ।
१८. सौत्रामणि ।
१९. सीताकरण ।
२०. दक्षिणाग्नि में सुरा का हवन ।
२१. पितरों का स्तवन ।
२२. अग्निष्वात्ता : पितरों के यजु ।
२३. आसन्दी (गद्दी) ।
२४. अश्वमेध ।
२५. अश्व के लौटने पर भुना मांस देवताओं को देना ।
२६. पुरुष मेध, उन पुरुषों और स्त्रियों का वर्णन जो विविध देवताओं के लिये मारे जा सकते हैं ।
२७. शिव संकल्प उपनिषद् । भग, पूषण और ब्रह्मणस्पति की स्तुति तथा प्रार्थना ।
२८. अंत्येष्टि संस्कार तथा प्रेतकर्म ।
२९. विविध देवताओं की पूजा ।

अनेक विषयों में से कुछ इंगित करते हैं । इनमें एक परवर्त्ती काल के होने का द्योतन है ।

४०वें अध्याय में ईशोपनिषद् है । इन विषयों को यहां विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है । इनसे इतना ज्ञान होता है कि देवता बहुत दूर हो गये हैं । यज्ञ पहले साधारण था । अब उसे रूढ़ियों और रीतियों में बांधकर अत्यंत जटिल कर दिया गया है । पहले जिस सत्र में सब ऋत्विज होते थे अब इस यज्ञ कराने के लिये उन लोगों की ज़रूरत है, जो यही काम करते-करते पक गये हों । हर कोई यह काम नहीं कर सकता । पुरुषमेध के साथ ही अश्वमेध भी आ गया है । अर्थात् आर्य अब दूसरों को लूटने लगे हैं और उनके राज्य हड़पने लगे हैं । ब्राह्मण ढाल बनकर क्षत्रियों के वर्ग स्वार्थ को यज्ञ से मिला चुके हैं, जो किसी समय आदिम समानता का प्रतीक था । अब वही यज्ञ रूप बदलकर शोषक वर्गों के हाथ का खिलौना हो गया है ।

ऊपर सिंधु द्वीप का नाम आ गया है । वह त्रेता का ही व्यक्ति था । त्रेता में भी ब्राह्मणों का थोड़ा-बहुत प्रयत्न चलता रहा कि किसी तरह क्षत्रियों को दबायें । दूसरी ओर क्षत्रिय भी ब्राह्मण को उस दिमागी और आत्मा के क्षेत्र से हटाने में लगा हुआ था ।

यहां पार्जिटर राजवंश-तालिका को पहले देख लेना उचित है ।

इस सूची में हैहयों का महत्त्व बहुत घट गया है । यादव, काशी, अयोध्या, विदेह, वैशाली के वंश बहुत प्रमुख हैं ।

सगर के राज्यकाल में अश्वमेध प्रारंभ हो गया है । सगर की कथा बहुत प्रसिद्ध है । उसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं । केवल इतना काफ़ी है कि यज्ञ अब उस आर्यदंभ

का प्रतीक बना दिया गया जिसने सहस्रों वर्षों तक ब्राह्मण और क्षत्रियों के हाथ में पड़कर भारतवर्ष में असंख्य अन्यायों को रोजमर्रा की बात बना दिया। इन्द्र का घोड़ा चुरा लेना और कपिल का सागर के पुत्रों को भस्म कर देना काव्यमय गल्प-से लगते हैं। इन कथाओं से केवल इतना इंगित होता है कि प्राचीन परम्परा में रहे आर्य अश्वमेध के विरुद्ध थे। वे यज्ञ में समान उत्पादन वितरण के भागी थे। अब यज्ञ कुछ लोगों की संपत्ति हो गया था और जनसमाज धनहीन हो गया था। यह जनसमाज 'विश' कहलाता था। एक दिन समाज में अलग-अलग पेशे अख्तियार करने पर अलग-अलग वर्ण प्रारंभ हुए थे,उस समय वह प्रगति का चिह्न था, क्योंकि समाज में गौ, दूध इत्यादि वस्तु---अर्थात् उत्पादन बढ़ गया था। समाज की संपत्ति बढ़ गई थी। संपत्ति बढ़ने के कारण, आबादी ने तरह-तरह के काम अपना लिये थे। अब उत्पादन यद्यपि 'विश' के हाथ में था परंतु सैन्य शक्ति के प्रादुर्भाव के कारण वितरण क्षत्रियों के हाथ में चला गया था। पहले ब्राह्मण समाज की संपत्ति का वितरण करता था। अब नहीं कर सका क्योंकि दूसरों को दबाने के लिये क्षत्रिय ने सेना बना ली थी। इस प्रकार सेना का उदय हुआ। पहले की सेनाओं में सब लड़ते थे, सारा गण लड़ता था। अब सैनिक पेशेवर होने लगे। स्त्रियों के, अधिकांश, लड़ने के अधिकार छिन गये। 'विश' अर्थात् आर्यों का जनसमाज भी हथियार नहीं रख सका। क्योंकि उसको रखने नहीं दिया गया। ब्राह्मण वर्ग ने क्षत्रिय वर्ग से समझौता कर लिया। इस समझौते में ब्राह्मण ने नगर के बाहर बड़ी-बड़ी जागीरें स्वीकार कर लीं और धर्म की ढाल उठाली। क्षत्रिय ने सारी पृथ्वी का वैभव लेकर उस ढाल को आगे कर लिया। ब्राह्मण नंगा हो गया पर, उसकी ज़िम्मेदारी क्षत्रिय ने ले ली। अटूट बंधन बन चला। ऐसा कि त्रेता के अंतकाल में परशुराम और दाशरथि राम के झगड़े के बाद समस्त द्वापर से कलि तक कोई झगड़ा फिर सुनाई नहीं देता। चंद्रगुप्त मौर्य के काल में जब क्षत्रिय ने ब्राह्मण को टालने का प्रयत्न किया तब ब्राह्मण ने फिर तलवार उठाई।

क्षत्रिय द्वारा जब ब्राह्मण की शक्ति छिन गई तब उसका सम्मान और भी बढ़ गया। अब वह उपर से देखने को धनहीन था। परंतु उसको धन की कमी नहीं थी। हमने अंग्रेज़ी शासनकाल में विलायत से सौ रुपये की तनख़्वाह पर आने वाले पादरियों को देखा है, जो नाममात्र के लिये १००) लेते थे। उनको रुपयों की कमी नहीं थी। वे धर्म फैलाने और सभ्य बनाने के नाम पर साम्राज्य को दृढ़ करते थे, किंतु उनका सम्मान कम नहीं था। यही ब्राह्मण का हुआ। महाभारत में अनेक कथाएँ हैं जिनमें प्रकट होता है कि ब्राह्मण प्रचार किया करते थे। वैसे तो असंख्य घूमते फिरते, उपदेश देते, ब्राह्मणों, ऋषियों का उल्लेख है, परंतु शांतिपर्व १६८ अध्याय में यह बहुत स्पष्ट होती है।

भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि उत्तर देश निवासी म्लेच्छों के एक देश में एक बार मध्यदेशीय गौतम नामक ब्राह्मण गया। वह गाँव मालदार था। वहां एक भी ब्राह्मण नहीं था। केवल एक धनवान् दस्यु रहता था। वह दस्यु ब्राह्मणों का भक्त, सत्यप्रतिज्ञ

राजवंश	यादव	हैहय	द्रुह्यु	तुर्वशत्थ	कान्यकुब्ज	पौरव	काशी	आणव उत्तर-पश्चिम	आणव पूर्वी	अयोध्या	विदेह	वैशाली	राजवंश
संख्या ४०	विदर्भ												संख्या
४१.	कृतभीम	चेदि	..	मरुत्त⊙	..	..	प्रतर्दन	..	बलि⊙*	सगर*⊙	प्रतिन्धक	नरिष्यंत	४१.
४२.	कुन्ती	कैशिक	..	..	..	..	वत्स	..	..	असमंजस	..	दम	४२.
४३.	धृष्ठ	चिदि	..	(दुष्यंत)	..	दुष्यंत*	अलर्क*⊙	..	अंग	अंशुमन्त⊙*	..	..	४३.
४४.	निर्वृति	..	..	..	..	भरत*	..	..	..	दिलीप १	कीर्त्तिरथ	राष्ट्रवर्द्धन	४४.
४५.	विदूरथ	..	..	..	..	..	सन्नति	..	..	भगीरथ*⊙	..	सुधृति	४५.
४६.	दशार्ह	..	..	..	..	भरद्वाज⊙	सुनीथ	..	..	श्रुत	..	नर	४६.
४७.	व्योमन	..	..	..	..	वितथ	..	..	दधिवाहन	नाभाग	देवमीढ	केवल	४७.
४८.	जीमूत	..	..	..	..	भुवमन्यु या भूमन्यु	क्षेम	..	..	अम्बरीष*	..	बंधुमन्त	४८.
	..	..	..	..	..		..	..	..	..	..	..	
४९.	विकृति	..	..	..	..	बृहत्क्षत्र	..	..	..	सिंधुद्वीप	..	वेगवंत	४९.
५०.	भीमरथ⊙	वीरबाहु	..	..	..	सुहोत्र	केतुमन्त २	..	..	अयुतायुस्	विबुध	बुध	५०.
५१.	रथवर	सुबाहु	द्विमीढ	उत्तर पञ्चाल	दक्षिणपंचाल	हस्तिन	..	..	दिविरथ	ऋतुपर्ण	..	..	५१.
५२.	..	..	..	..	..	..	सुकेतु	..	..	सर्वकाम्	..	तृणबिंदु*⊙	५२.
५३.	दशरथ	..	द्विमीढ	..	..	अजमीढ*	..	..	..	सुदास	महाधृति	विश्रवस	५३.
५४.	एकादशरथ	..	..	..	..	..	धर्मकेतु	..	धर्मरथ	मित्रसहकल्माषपाद*	..	विशाल	५४.
	..	..	..	..	..	..	..	..	..		..	..	
५५.	शकुनि	..	यवीनर	नील	बृहद्वसु	..	..	..	..	अश्मक	..	हेमचंद्र	५५.
५६.	करम्भ	..	..	सुशांति	बृहद्विषु	..	सत्यकेतु	..	..	मूलक	कीर्त्तिरात	सुचंद्र	५६.
५७.	..	..	धृतिमंत	पुरुजानु	बृहद्धनुष	..	..	..	चित्ररथ	शतरथ	..	धूम्राश्व	५७.
५८.	देवरात	..	..	रक्ष	बृहद्कर्मन्	..	विभु	..	..	एडविडवृद्धशर्मन्	..	सृंजय	५८.
५९.	देवक्षत्र	..	सत्यधृति	ब्रह्मयाश्व	जयद्रथ	..	..	..	..	विश्वसह १	महारोमन्	सहदेव	५९.
६०.	देवन्	..	दृढनेमि	मुद्गल	विश्वजित्	..	सुविभ्र	..	सत्यरथ	दिलीप २ खट्वांग	..	कृशाश्व	६०.
६१.	मधु*	..	..	(ब्रह्मिष्ठ)	..	..	..	..	..	दीर्घबाहु	स्वर्णरोमन्	..	६१.
६२.	पुरुवस	..	सुवर्मन्	वध्र्यश्व*	सेनजित्	..	सुकुमार	..	..	रघु*	..	सोमदत्त	६२.
६३.	पुरुद्वन्त	..	सार्वभौम	दिवोदास*	रुचिराश्व	रक्ष १	..	..	..	अज	ह्रस्वरोमन्	जनमेजय	६३.
६४.	जन्तु (अंश)	..	..	मित्रयु	पृथुसेन	..	धृष्टकेतु	..	लोमपाद*	दशरथ*⊙	सीरध्वज⊙	प्रमति	६४.
६५.	सत्वन्त	..	महत्पौरव	सोम	पार १	..	..	..	..	राम*⊙	भानुमंत	..	६५.

त्रेतायुग (पृ. १८५ के सम्मुख)

और बड़ा दानी था। भिक्षुक ब्राह्मण ने उसके द्वार पर जाकर उससे वर्ष भर के लिये भोजन की सामग्री और रहने को स्थान माँगा। दस्यु ने उसी दम ब्राह्मण को रहने के लिये स्थान देकर नये कपड़े और एक युवती दासी दी। तब गौतम बहुत प्रसन्न हुआ और बड़े आनंद से उस दासी के कुटुंब का भरण-पोषण करता हुआ उस दस्यु के घर रहने लगा। वहां दस्यु के साथ रहकर वह ब्राह्मण बाण चलाना सीख गया और शिकारी बन गया।

बहुत दिन बाद एक जटा अजिनधारी विद्वान् विनीत वेदज्ञ ब्राह्मण देवता उस गाँव में आये। वे शुद्ध स्वभाव ब्रह्मचारी जी गौतम के प्रिय मित्र थे। वे कभी शूद्र का अन्न नहीं लेते थे, इसलिये उस दस्यु के गाँव में ब्राह्मण का घर ढूँढ़ते, अंत में गौतम के द्वार पर आये। उसी समय गौतम भी शिकार किये हुए हंसों को कंधों पर लटकाये धनुष-बाण लिये घर आया। उसकी देह में खून लगा हुआ था। अभ्यागत ब्राह्मण ने गौतम को देखते ही पहचान लिया और उससे कहा: 'तुम मध्यदेशीय ब्राह्मण हो। तुम अज्ञान से दस्यु-कर्म क्यों करते हो ? तुम अपने वेदज्ञ विख्यात् ज्ञानवान् पूर्वजों का स्मरण करो। तुम उनके कुल में कलंक हो। जो हो, अब इस स्थान को शीघ्र छोड़ दो।'

गौतम ने दीन स्वर में कहा: 'मैं निर्धन हूँ। मुझे वेद का ज्ञान नहीं है। इसी कारण धन कमाने यहां चला आया हूँ। आज आप मेरे यहां रहें। कल मैं चला चलूँगा।' गौतम के कहने पर ब्रह्मचारी ने रात को, दया करके, वहीं निवास किया, परंतु भूखे रहने पर भी उन्होंने वहां कुछ खाया-पिया नहीं।

स्पष्ट है:

१. ब्राह्मण प्रचारक था।

२. दरिद्र ब्राह्मण सब कुछ करता था।

३. ब्राह्मणदंभ बढ़ चला था।

४. स्त्री को दासी बनाना चल पड़ा था। अनार्यों में यह प्रथा थी।

५. ब्राह्मण का अधिकार था कि अपने भरण-पोषण के लिये चाहे जिससे कुछ भी माँग ले।

अब यहां पार्जिटर की तालिका पर दृष्टिपात करना चाहिये।

विस्तार से देखने पर प्रत्येक राजा के साथ नये-नये तथ्य एकत्र हो सकते हैं। वह एक पूरी पुस्तक का विषय है। हम यहां सक्षेप में ही दृष्टिपात करेंगे।

पौरव दुष्यंत ने शकुन्तला से ब्याह किया था। शकुन्तला तपोवन में रहती थी। यह प्रेम-विवाह नहीं था। शकुन्तला ने महाभारत में शर्त्त करा ली थी कि उसका बेटा ही गद्दी का मालिक होगा। यह प्रकट करता है कि उन दिनों क्षत्रियों के अनेक स्त्रियां होती थीं जिनमें यह स्पर्धा चलती थी कि मेरा बेटा ही गद्दी का मालिक हो। दुष्यंत वासना से भर गया था। उस समय राजा को चार स्त्रियां रखने का अधिकार था: महिषी (पटरानी) परिवाक्त्री (उपेक्षिता), वावाता (प्रिया) तथा पालागली (किसी दरबारी अफ़सर की

लड़की)। इसका तैत्तिरीय, शतपथ तथा पञ्चविंश ब्राह्मण में उल्लेख है।

शकुन्तला एक अप्सरा की बेटी थी। अर्थात् उस समाज की स्त्री थी जिसमें स्त्री स्वतन्त्र थी। आर्यों में वह स्वतन्त्रता यद्यपि त्यक्त नहीं थी, परंतु नागरिक दुष्यंत उस अप्सरा को भला-बुरा कह गया और डरकर स्त्री को स्वीकार नहीं कर सका। दुष्यंत ने म्लेच्छों के अधिकारभुक्त देश तक विजय का डंका बजाया था (आदिपर्व ८८. अ. ३-६)।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि अप्सरा शकुन्तला ने भरत को नाडपित नामक स्थान में जन्म दिया था। स्वयं शकुन्तला ही अप्सरा कही गई है।

कण्व ने भी युवक-युवती के स्वयं इस प्रकार गांधर्व विवाह कर लेने को अनुचित नहीं कहा था।

इसी वंश में हस्तिन् का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। उसी ने हस्तिनापुर बसाया था। कालांतर में जब यमुना ने उसे डुबाना शुरू किया तो कौरव लोगों ने उसे छोड़ नई राजधानी बसाई जहां ब्राह्मणों ने उस वंश को ही समाप्त कर दिया।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अयोध्या का वंश है।

सगर का पुत्र असमंजस पिता के द्वारा निकाल दिया गया था क्योंकि प्रजा उसको सह सकने को तैयार नहीं थी। यह बताता है कि राजा तब तक निरंकुश नहीं हो सका था। जनमत राजा को निकाल सकता था।[1] राजा पर ब्राह्मणों का अंकुश विशेष रहता था।[2] मन्त्री, ग्रामणी अथवा ग्रामिकों के अतिरिक्त समिति या परिषदें थीं। इनमें जन इकट्ठे होते थे।[3] ऊपर यजुर्वेद के उल्लेख दिये जा चुके हैं। प्राचीन गणों की परम्परा अभी पूरी तरह से नष्ट नहीं हुई थी, यद्यपि दास-प्रथा और शूद्र दोनों ही समाज में मिलते हैं। लोगों की राय की परवाह करनी पड़ती थी।

शद्र और दास ही वास्तव में ब्राह्मण का विराट् 'विश' पर प्रभाव जमाने का कारण था। इस 'वैश्य' का समाज में शूद्र और दास से अब भी ऊँचा स्थान था, और क्योंकि यह लोग अनार्य थे, जाति और रक्त के नाम पर ब्राह्मण इन्हें भिड़ा देते थे। इस तथ्य को समझना बहुत जरूरी है। उच्च वर्गों ने अपनी जाति के निम्न वर्ग का शोषण किया है और जब समस्या सामने आई है तब उसे अन्य जातियों से लड़कर, जातीय समस्या के रूप में बदल दिया है। इसमें आर्थिक समस्या मूल में सदैव रही है। यही हिटलर ने यहूदियों से किया, यही मुसलमानों ने धर्म के नाम पर किया, यही प्राचीन आर्यों ने भी 'अश्वमेध' के रूप में किया। और जो जाति जितनी कड़ी टक्कर लेती थी उसे उतना ही, समाज में, नीचा दर्जा दिया जाता था। पूर्व के पासी, मंसूरी के पास पुराने समय में रहनेवाले चण्डाल सब इसी दर्प के शिकार हुए। निषाद का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। निषाद मजबूत थे। नहीं दबे, तो उनको पांचवाँ वर्ण तक माना गया और बाद में तो यह भी आवश्यक हो गया कि विश्वजित् यज्ञ करने के

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ एन्शेन्ट इंडिया पृ० १३७.

२. वही पृ० १५६. ३. वही पृ० १४६.

पहले आर्य को निषादों के ग्राम में कुछ दिन रहना चाहिये। अर्थात् उनसे मित्रता करनी चाहिये।[1] यहां विमलचरण लॉ ने लिखा है कि संभवतः निषाद का अर्थ केवल आदिम-निवासी हो। परंतु यह विचार भ्रमक है। यह देखना चाहिये कि यज्ञ 'विश्वजित्' था। आर्य ऐसे यज्ञ को तभी कर सकते थे जब अपने टक्कर के लोगों को अपना दोस्त बना लें। निषादों से आर्यों का संबंध रहा। मनु ने परवर्त्ती काल में उन्हें ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता की संतति माना है। वर्ण संकरों पर लिखते समय मनु ने कहा है कि निषाद और शूद्रा स्त्री का पुत्र पुल्कस होता है, परंतु शूद्र और निषाद स्त्री का पुत्र कुक्कुट कहलाता है। यह लोग मछली-मांस लाकर नगरों में देते थे। राम के समय में गुह निषाद था जिसने नदी पार कराई थी। निषादों का गंगातीर पर राज्य था, और उनकी राजधानी शृंगवेरपुर थी।

सगर के पुत्र असमंजस के बारे में किंवदंती है कि वह कुछ दिन ऋक्ष, वानरों में रहा और फिर पश्चिम की ओर चला गया। संभव है उसी ने आर्यों का संबंध प्रचलित किया हो।

दिलीप का नाम भी काफ़ी प्रसिद्ध है। उसकी गौ-सेवा महत्वपूर्ण है। भगीरथ ने गंगा का स्रोत ढूँढ़ा था और इसके लिये उसे उत्तर के उन प्रांतों में जाना पड़ा था जहां शिव के उपासकगण रहते थे। भगीरथ आर्यों के प्रसार का प्रतीक है।

रघु के साथ दिग्विजय प्रसिद्ध है। उसने उत्तर के कुबेर को भी झुकाया था।

उस समय समस्त आर्यों में एक ही-सी राज्यव्यवस्था नहीं थी। ऐतरेयब्राह्मण में उल्लेख है कि पूर्व में साम्राज्य, दक्षिण में भौज्य, पश्चिम में स्वराज्य थे। उत्तर कुरु, मद्र में वैराज्य थे। परवर्त्ती काल में कृष्ण को सम्राट्, विराट्, भोज सब ही कहा गया है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इन व्यवस्थाओं में भेद नहीं था।

उस समय शूद्र भी राजा थे। छांदोग्य उपनिषद् में जनश्रुति पौत्रायण शूद्र था। संभव है यह राजा परवर्त्ती था। शतपथब्राह्मण में उल्लेख है कि मरुत्त आवीक्षित आयोगव था।

राजसूय यज्ञ बड़े धूमधाम से होते थे। उसमें होतृ शुनःशेप का आख्यान पढ़ते थे। राजा के रत्नी निम्नलिखित लोग होते थे: सेनानी, पुरोहित, महिषी, सूत, ग्रामणी, अंतरवंशिकक्षत्री, संग्रहीतृ, भागदुघ, अक्षवाक्, गोविकर्त्तन, पालागल, दूत, शासनहर इत्यादि।[2]

यहां की प्राचीन जातियों को बुरा समझा जाता था। ऐतरेयब्राह्मण ७. १८. में पुलिंद म्लेच्छ माने गये हैं। वर्णित है कि विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्रों को शाप मिला और वे आंध्र, पुण्ड्र, शाबर, पुलिंद और मूतिब हो गये। यह दस्यु जातियां आर्य भूप्रांतों की सीमाओं पर रहती थीं। पुलिंद नीच कुल कहे गये हैं।[3]

---

१. ट्राइब्स इन ऐन्शेन्ट इंडिया पृ० ९८.

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया पृ० १४१.

३. प्रिआर्यन प्रिद्रविड़ियन पृ० ८८.

कुछ जातियां आर्यों से अपना विरोध छोड़ चुकी थीं। इनमें शबर थे। राम को शबरी दक्षिण में मिली थी।

रामायण के अनुसार, पुलिंद, मत्स्य और शौरसेन के बीच में रहते थे।[१] उत्कल तथा मेकल का नाम साथ-साथ आता है।[२] यह भी अनार्य देश थे।

उस समय क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न नृत्य करनेवाले लोगों को, सूत कहा जाता था।[३] स्त्रियों के उपपति भी होते थे। जार, व्यभिचारी स्त्री-पुरुष तथा बड़े भाई से पहले विवाह करने वाले छोटे भाई और बड़ी बहिन से पहले अपना ब्याह कर लेने वाली छोटी बहिन का भी उल्लेख है।[४] बढ़ई महीन काम करते थे।[५] अर्थात् शिल्प का विकास हो गया था।

तैत्तिरीयसंहिता का समय तिलक के अनुसार २३५० ई० पू० है।[६] अविनाश चंद्रदास के मत से शतपथब्राह्मण का समय लगभग २५०० ई० पू० है।[७] विद्वानों में इनके समय का अंकन अलग-अलग है और उनके अलग-अलग कारण हैं। अविनाशचंद्र की प्रवृत्ति है कि हर समय को और भी अतीत का बताया जाय। किंतु तिलक ने जो समय दिया है वह विद्वानों द्वारा अभी तक काटा नहीं जा सका। उनके तर्क इस विषय में अधिक गंभीर नहीं हैं। हो सकता है कि कुछ ब्राह्मण इस युग में प्रारंभ हो चुके थे।

अब त्रेतायुग की सबसे प्रसिद्ध घटना को देखना उचित है। यह थी राम द्वारा राक्षसों की पराजय। यजुर्वेद के वे उद्धरण दिये जा चुके हैं जिनमें राक्षसों के उत्पात का वर्णन है। बाल्मीकि रामायण में यद्यपि प्राचीनता के अनेक चिह्न हैं और वह 'आक्खानक' काव्य की भाँति बुद्धकाल में ही गाई जाती थी परंतु विद्वानों का मत है कि जो रूप वाल्मीकि रामायण का अब है वह शुंगकाल में प्रस्तुत किया गया। अर्थात् ईसा से लगभग २ सौ बरस पहले। इसलिये उसमें अनेक क्षेपक हैं। उस समय भारत में सामंतकालीन व्यवस्था थी। तत्कालीन कवि ने उसमें सामंतकालीन व्यवस्था को भी चित्रित करने का प्रयत्न किया है और एक आदर्श सामंत के रूप में राम का चित्रण किया है। कुछ जैनों का मत है कि यदि राम सीता के पीछे रुदन नहीं करते, तो उन्हें आदर्श पुरुष 'मर्यादावान्' के रूप में तीर्थंकर ही स्वीकार कर लिया जाता। वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड को बाद का समझा जाता है। शम्बूक की कथा के विषय में भी यही विचार है। किंतु शुंगकाल का इतिहास यह नहीं बताता। उस समय शूद्र काफ़ी बढ़ चुका था। उसको इस प्रकार मारना कठिन था। हो सकता है नंद वंश की समाप्ति पर शुंग ब्राह्मण गर्व मुखरित हो उठा था। परंतु यह नहीं भूलना चाहिये कि शुंगकाल में भागवत संप्रदाय की सहिष्णुता बढ़ रही थी, और बौद्धों से ब्राह्मणों को

१. प्रिआर्यन पिड्रविड़ियन पृ० ८२.
२. एपिक मायथॉलॉजी पृ० १५७.
३. यजुर्वेद ३०।६.
४. वही ३०।९.
५. वही ३०।६.
६. वेदिक इन्डैक्स १ पृ० ४२५.
७. ऋगवेदिक इंडिया १ पृ० ३६४.

टक्कर लेनी पड़ रही थी। विदेशियों के प्रहार हो रहे थे। ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय बौद्धों और विदेशियों से सतर्क थे। इस दृष्टिकोण से देखने पर शम्बूक-कथा प्राचीन ही प्रतीत होती है। विराट् पुरुष का रूप भी त्रेता में ही कल्पित हुआ था। त्रेता और द्वापर के बीच एक भयानक अकाल पड़ा था। उसमें विश्वामित्र ने चाण्डाल के यहां से मरा हुआ कुत्ता माँगकर खाया था। चाण्डाल तैयार नहीं होता था। परंतु विश्वामित्र भूख से व्याकुल थे। उससे कहा कि आपत्ति में यही धर्म है। ब्राह्मण ने त्रेता में शूद्र को ढील नहीं दी थी। और क्षत्रिय ने शूद्र को दबाने में जितनी सहायता त्रेता में दी बाद में वह नहीं दिखाई देती। इन कारणों को देखते हुए शम्बूक की कथा प्राचीन परम्परागत ही लगती है।

रामायण राम से पहले निस्संदेह नहीं लिखी गई थी, और वाल्मीकि के आश्रम में सीता रही थी यह भी निश्चित नहीं है। हो सकता है सीता तत्कालीन किसी तपोवन में रही थी। अब स्पष्ट विरोध प्रतीत होता है। वाल्मीकि बहेलिया था। वह राम राम का उल्टा जप करके ऋषि हो गया और शम्बूक शूद्र था, किंतु उसके तप से ब्राह्मण-पुत्र मर गया। इसका कारण क्या हो सकता है कि एक शूद्र को ऋषिपद मिला, दूसरे को मृत्यु। स्पष्ट ही वाल्मीकि-कथा भागवत संप्रदाय की सहिष्णुता में लिखी गई है। सबसे बड़ी बात है कि वाल्मीकि रामायण के प्रारंभ में वाल्मीकि ने अपने लिये उत्तम पुरुष का प्रयोग न करके अन्य पुरुष का ही प्रयोग किया है, जिससे यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

वाल्मीकि की रामायण की तुलना में महाभारत प्राचीन मानी जाती है। अतः वाल्मीकि रामायण के साथ हमने महाभारत में दी हुई रामकथा को भी लिया है। यह सत्य है कि स्वयं महाभारत में जो रामकथा है वह भी बहुत परवर्त्ती है और उसमें भी काव्य गल्प स्पष्ट दिखता है। परंतु उसमें राम को इतनी मर्यादा नहीं दी गई है। जैसे-जैसे समय बीतता गया है, राम का दर्जा बढ़ता गया ह। तुलसीदास के राम तो भगवान् ही हैं। अब वे मनुष्य नहीं वरन् मनुष्य के रूप में भगवान की लीलामात्र हैं। महाभारत की रामकथा में वह बहुत सी बातें नहीं हैं जो वाल्मीकि में आ गई हैं, और तुलसीदास में तो फिर कोई रोकथाम ही नहीं है।

पहले हम महाभारत की रामकथा को देखेंगेः—

रामोपाख्यान पर्व। वन पर्व २७३ अध्याय से आगे।

२७४. मार्कण्डेय ने कहा—इक्ष्वाकुवंश में अज नामक प्रसिद्ध राजा थे। उनके पुत्र दशरथ थे। उनके चार पुत्र थे—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न। राम की माँ कौशल्या, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की सुमित्रा और भरत की कैकेयी थी।[1]

---

१. सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण सौमित्र कहलाते थे। पुरुषों के आधिपत्यकाल में भी स्त्री

राम की स्त्री सीता विदेहराज जनक की कन्या थी। उन्हें विश्वकर्मा ने अपने हाथ से बनाया था। वे अयोनिजा थीं।*

रावण के पितामह ब्रह्मा थे (स्वयंभू)। उनके मानसपुत्रों में से एक पुलस्त्य था। पुलस्त्य के गो नाम की भार्या से वैश्रवण नाम का एक पुत्र हुआ।

वैश्रवण, पिता की सेवा छोड़कर, अपने पितामह की उपासना करने लगा, क्रुद्ध पुलस्त्य ने योगबल से दूसरा शरीर धारण कर लिया। इस प्रकार अपने आधे अंश से दूसरा रूप रखकर महात्मा पुलस्त्य विश्रवा नाम से प्रसिद्ध हुए। उधर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वैश्रवण को अमर, धनेश्वर और लोकपाल बना दिया। **महादेव से वैश्रवण की मित्रता हो गई।** उनके नलकूबर नाम का पुत्र भी उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा जी ने वैश्रवण को राक्षसों से बसी हुई लंका नाम की राजधानी और पुष्पक नाम का विमान भी दिया। वह विमान सब जगह जा सकता था। इस प्रकार ब्रह्मा ने वैश्रवण को सब यक्षों का स्वामी और राजराज बना दिया। २७५ : पुलस्त्य के आधे शरीर विश्रवा से जो मुनि उत्पन्न हुए वे कुबेर को क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखने लगे। राक्षसों और यक्षों के राजा कुबेर अपने पिता को कुपित देखकर उन्हें प्रसन्न करने का यत्न करने लगे। लंका-निवासी **नरवाहन** राजराज कुबेर ने पिता विश्रवा

का दर्जा अभी पूरी तरह गिरा नहीं था। मातृसत्तात्मक नियम अभी भी जीवित ही थे।

कैकेयी केकय देश की थी अर्थात् उत्तर पश्चिम भारत की निवासिनी थी। दशरथ के अनेक रानियां थीं। तत्कालीन समाज में राजा के हरम होना प्रारंभ हो गया था यह इससे प्रकट होता है। कौशल्या महिषी थी, सबसे बड़ी थी।

* महाभारत और रामायण दोनों ही सीता के विषय में कुछ निश्चित नहीं कर सकी हैं। कम्बोडिया में ख़्मेर भाषा की एक रामायण मिली है। उसका नाम रामकेर्त्ति है। केर्त्ति कीर्त्ति के स्थान पर है। ख़्मेर में सीता की जगह सेता लिखा जाता है। सीता की कथा बहुत प्राचीन है। परंतु सीता के विषय में काफ़ी भिन्न प्रकार की कथाएं मिलती हैं। एक परम्परा के अनुसार सीता रावण की बेटी थी, अर्थात् राक्षसी थी। कहीं सीता को धरती माता की पुत्री कहा गया है। बौद्ध कथाओं के अनुसार सीता राम की बहिन थी। (इंहिक्वा. १५. १९४३. पृ० २६३।)

सीता वेद में सवितृ इंद्र की पत्नी भी बताई गई है (एपिक मायथॉलॉजी पृ० १२।) सीता के विषय में कुछ निश्चय से नहीं कहा जा सकता इलियट का मत है कि सीता असल में आदिम निवासियों की कोई खेती संबंधी देवी थी जो बाद में आर्यों में मान ली गई। कोई-कोई तो यह भी कहते हैं कि सारी राम-सीता की कथा काल्पनिक है और इसमें कोई भी ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। परंतु परम्परा ऐसा नहीं मानती।

के पास, उनकी सेवा करने के लिये, तीन राका, मालिनी और पुष्पोत्कटा नामक राक्षसियां रख दीं। वे तीनों नाच-गाकर रिझाने लगीं उन्हें। तब—
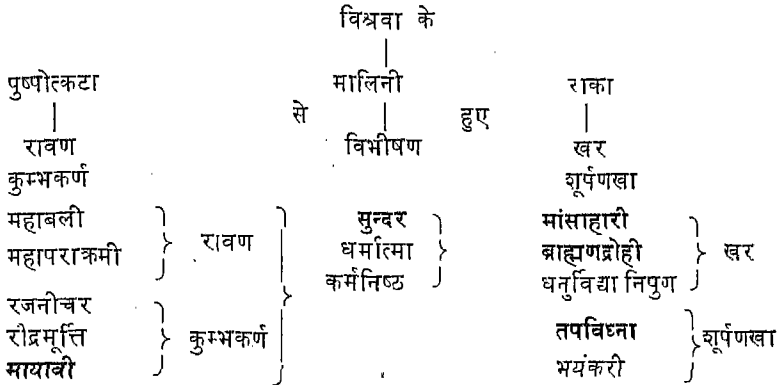
वे सब अपने पिता के साथ **गंधमादन** पर्वत पर रहते थे। एक दिन उन्होंने **अपने भाई नरवाहन कुबेर** को **परम ऐश्वर्य** से भूषित होकर पिता के पास बैठे देखा। ऐश्वर्य न सह सकने के कारण उन्होंने घोर तप किया। (इस समय विभीषण भी तप करने वालों में थे) रावण ने **सिर काटकर** आहुति दे दी। ब्रह्मा प्रसन्न हुए। रावण से कहा : तुमने सिर आहुति दिया है, इसलिये मैं तुमको यह वर देता हूँ कि तुम **जितने चाहोगे उतने सिर** तुम्हारे हो जायँगे और **उनसे तुम्हारा रूप** नहीं बिगड़ेगा। तुम **इच्छारूप** होगे। तुम अजेय होगे। **मनुष्य के सिवाय** तुम्हें किसी से डर नहीं होगा।

रावण ने ब्रह्मा से वर पाकर कुबेर पर **चढ़ाई की** और उन्हें युद्ध में हराकर लंकापुरी छीन ली। कुबेर लंकापुरी छोड़कर **गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किम्पुरुष** आदि के साथ **गन्धमादन** (?) पर्वत पर चले गये। रावण ने पुष्पक भी छीन लिया।

कुबेर ने कहा : **मैं तेरा बड़ा भाई हूँ**। तूने मेरा अनादर किया है। इस कारण शीघ्र ही तू भी मारा जायगा।

विभीषण सज्जनों के अनुगामी और सुमार्ग पर चलने वाले होने के कारण शोभा और ऐश्वर्य के अधिकारी हुए। कुबेर ने उन पर अत्यंत प्रसन्न होकर **उन्हें यक्षों और राक्षसों का सेनापति** बना लिया। उधर **मनुष्यभक्षी महाबली राक्षसों और पिशाचों ने** मिलकर **रावण को अपना राजा** बना लिया। इस प्रकार राज्यासन पाकर **कामरूपी** आकाशचारी प्रबल राक्षसराज रावण ने **दैत्यों, दानवों और देवताओं** के सब श्रेष्ठ पदार्थ छीन लिये। महाबली **दशानन** ने सब लोकों को पीड़ा पहुँचाकर रुला दिया, इसी से उसका नाम रावण पड़ा। **रावण से सब देवता भी डरते थे।**

रेखाङ्कित शब्द इंगित करते हैं कि तत्कालीन लंका गन्धमादन से दूर नहीं थी। यक्ष और राक्षस एक ही स्रोत से निकले थे। वे भले ही माने जाते थे। यह लड़ाई धन और

ऐश्वर्य के पीछे हुई। इस वर्णन के बीच में महादेव का नाम आ गया है। महादेव से मित्रता का क्या अर्थ है? शिव और काम के युद्ध के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। कुबेर नरवाहन था। रावण के दस सिर नहीं थे। चाहे जितने सिर हो सकते थे। वह इच्छारूप था। बाद में लंका गन्धमादन से बहुत दूर हो गई। परम्परा ने पुराने देवयुग की कथाओं को जीवित रख लिया। राम के युग का रावण उसी जाति का व्यक्ति था। राक्षसों की उत्तर से दक्षिण की ओर गति हम दिखा चुके हैं। अब बालि से हारा हुआ रावण दक्षिण में था। तिब्बती भाषा में लंका एक द्वीप को कहते हैं, और भारत में अनेक लंका हैं यह भी देखा जा चुका है।

यह सब लोग देवयुग के अवशेष थे। इसकी पुष्टि में परम्परा ने अभी और भी तथ्य प्रस्तुत किये हैं। वे इस प्रकार हैं—

२७६: रावण के सताये सब ब्रह्मर्षि, देवर्षि और सिद्ध लोग अग्निदेव को आगे करके ब्रह्मा की शरण में आये। ब्रह्मा ने देवताओं के सामने इन्द्र से कहा: हे इन्द्र! तुम विष्णु की सहायता करने के लिये सब देवताओं के साथ पृथ्वी पर वानरों और रीछों की स्त्रियों में अपने अंश से ऐसे पुत्र उत्पन्न करो जो **कामरूपी** और महाबली हों।

इस प्रकार वानरों और ऋक्षों की स्त्रियों में देव जन्मे।

वानर भी **कामरूपी** हैं। वानर और ऋक्ष बन्दर और रीछ नहीं थे। हम ऊपर ऐसी जाति का उल्लेख कर आये हैं। जो ऐसे पशु की खाल ओढ़ती थी कि पूँछ पीछे लटकती रहे। यहां अब कुछ और तथ्य देखने चाहियें।

रामायण युद्धकाण्ड सर्ग १२७। ३९, ४०, ४१ में वानर मनुष्य रूप धरते हैं।

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः
कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा।

और बातचीत करते हैं। सुषेण वानर था। सुग्रीव का ससुर था। किंतु उसके पंख थे और उसका नागों से संबंध था।[1]

हनुमत् मय की गुहा में गया था। हाथी रूप साम्बदानव को हनुमान के पिता ने मारा था। (वनमानुष—जीवन वाले का हाथी से स्वाभाविक वैर प्रकट होता है)[2] महाभारत में हनुमत् को कपि कहा गया है। कपि सूर्य का भी नाम है। क्या यह वेद का वृषाकपि है? पार्जिटर का मत है कि हनुमान आण-मन्डि (द्रविड़) से बना है। और संभवतः यह वृषाकपि ही है।[3]

वानरों के विषय में इतना और याद रखना है कि ऋक्ष, बानर और राक्षस, तीनों ही पुलस्त्य संतान हैं। अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह जातियां भी देवकालीन थीं और भारत में दक्षिण तक घुस आई थीं। इनमें सभ्यता थी। कुछ इनके ऐसे कबीले थे जो प्रायः 'जंगली' थे। वे पत्थर, पेड़ आदि से लड़ते थे। वानर मनुष्य-भाषा बोलते थे। उनमें भी स्त्री

१. अभाओरिइं २३. १९४२ पृ० १९३.
२. एपिक मायथॉलॉजी पृ० १५.
३. वही पृ० १५.

पुरुष संबंध धर्म थे, अधर्म के विचार थे। ऋक्ष जाति तो द्वापर तक बनी रही थी।

इच्छारूप का अर्थ रावण पर विचार करते समय स्पष्ट हुआ था। द्रविड़ सूर्योपासना में सूर्य का कपि होना बाद में कपिध्वज बनकर मंदिरों में समा गया। यही गरुडध्वज का भी इतिहास है। इस काल में भी यक्ष, नाग, गंधर्व, गरुड आदि जातियों का उल्लेख मिलता है। अधिक नहीं तो थोड़ा उल्लेख अवश्य है।

रावण रामायण की सबसे बड़ी पहेली है और इसका कारण है कि तुलसीदास की रामायण ने बहुत गड़बड़ कर दी है। वह तक नहीं रहने दिया जो वाल्मीकि की रामायण में है। ऐसे प्रवाद प्रचलित हो गये हैं कि आज वे सत्य-से प्रतीत होते हैं। तुलसी को भक्ति से मतलब था। आज से लगभग तीन सौ बरस के पहले तुलसीदास को न प्राचीन परम्परा की चिंता थी, न नये वैज्ञानिक विश्लेषण की। उन्हें तो राम की श्रद्धा-भक्ति से काम था। उसमें वे अवश्य सफल हुए हैं।

दक्षिण में आर्यों के गमन के संबंध में काफ़ी मतभेद है। लेकिन दक्षिण में आर्य काफ़ी प्राचीनकाल में ही पहुँच गये थे। एतरेयब्राह्मण में भीम वैदर्भ का उल्लेख है।[1] वैदर्भ विदर्भ का हुआ। विदर्भ दक्षिण में था। नल (नड) नैषध का शतपथब्राह्मण में मनुष्य राजा के रूप में वर्णन है। नैषध निषध अनार्य देश का राजा था। नल की विजयों की तुलना में उसे यम के साथ रखा गया है। क्योंकि वह दक्षिणी यज्ञाग्नि से संबंधित है। दक्षिण का राजा है। यम को भी परम्परा में दक्षिण दिशा का ही लोकपाल माना है।[2] क्या भैंसे की सवारी करनेवाला यम किसी दक्षिणी (द्रविड़) देवता से मिल नहीं गया है?

दक्षिण के सात्वत भोज राजाओं का ऐतरेयब्राह्मण में उल्लेख है।[3] वे यादवों के वंशज थे जिनका पहले मथुरा में यमुना तीर पर निवास था।[4] ब्राह्मण युग में विदर्भ, दंडक में आर्य राजा थे।[5]

दक्षिण में जाने वालों में परशुराम और अगस्त्य का नाम विशेष है। परशुराम का उल्लेख हो चुका है। अब अगस्त्य को देखना चाहिये। महाभारत में प्रसिद्ध कथा है कि विंध्य सिर उठाने लगा। तब अगस्त्य ने उससे कहा : तू झुक जा। उसने नमस्कार किया। और तब अगस्त्य ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण दिशा से लौट न आऊँ तब तक तू ऐसे ही रहना। इसके बाद अगस्त्य फिर दक्षिण से लौटे ही नहीं। इस कथा से इंगित होता है कि पहले विंध्य दुर्लंघ्य था। उसे अगस्त्य पार करके नीचा दिखला गये। अगस्त्य और उनकी पत्नी लोपा-मुद्रा का ऋग्वेद में उल्लेख हुआ है।[6] सप्तर्षियों में गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप तथा अत्रि का उल्लेख हुआ है। परवर्ती काल में ऋषियों में भृगु और दक्ष भी कभी-कभी इन नामों में कुछ हेरफेर करके रखे जाते हुए पुराणों में दिखाई दे जाते हैं।

---

१. वैदिक इन्डैक्स २, पृ० ३२९. ४. वही पृ. ७७ ५. वही पृ. ७८

२. वही १, पृ० ४३३. ६. वैदिक इन्डैक्स २, पृ० २३४.

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ एन्शेन्ट इंडिया पृ० ७६.

अगस्त्य का उल्लेख नहीं होता। यह अगस्त्य––कलशज, कलशीसुत, कुंभयोनि, कुंभसंभव, घटोद्भव कहे जाते हैं। अगस्त्य की दक्षिण भारत में भी अनेक दंत कथाएँ हैं। इन कथाओं में लोपामुद्रा को विदर्भ की राजकुमारी कहा गया है।[1]

अगस्त्य मित्रावरुण के पुत्र हैं।

नासिक, दण्डकारण्य, मलकूट, दक्षिणकाशी, पोथियल, (पाण्ड्यदेश), इन्दोनीशिया, बर्हिणद्वीप (बोर्नियो) कुशद्वीप, वराह द्वीप तथा स्याम (कम्बोडिया) और जावा तक में अगस्त्य का सम्मान दिखाई देता है।[2]

कुबेर की भी जावा में पूजा होती थी। इन तथ्यों से प्रकट होता है कि अगस्त्य एक वंश था। जैसे भार्गव और अंगिरस थे वैसे ही यह भी थे। अगस्त्य का शिव से संबंध जोड़ा जाता है। जावा में शिव-मूर्त्तियों को अगस्त्य की मूर्त्ति कहा जाता है। संभवतः अगस्त्य वंश का शैवों से प्राचीनकाल में ही संबंध हो गया। और तभी अगस्त्य को अनार्यों ने भी श्रद्धा से स्वीकार कर लिया। अगस्त्य को तमिल का पंडित कहा जाता है। वाल्मीकि रामायण में कथा है कि अगस्त्य ने राम को ऋषियों-मुनियों की हड्डियां दिखाईं तब राम ने राक्षस नाश की प्रतिज्ञा करके आर्य्यों को अभय दान दिया।

राम से पहले विदर्भ तक पहुँचे हुए आर्यों का पथ राम ने और भी दक्षिण में खोल दिया।

अगस्त्य के से भ्रम रावण के विषय में भी हैं। रामायण में रावण को दशशीश और दशानन तथा विंशभुज अर्थात् बीस भुजा वाला कहा गया है। लेकिन गौर से देखने पर वाल्मीकि रामायण में एक भी स्थान ऐसा नहीं है जहां रावण के व्यक्ति का वर्णन किया जाय और उसके दस सिर तथा बीस हाथों का जिक्र हो। व्यक्ति के रूप में, उठते, बैठते, सोते, जागते उसके दो हाथ, एक सिर का वर्णन है। हाँ, जहां नाम की बात है वहां उसे दशशीश, इत्यादि कहा गया है। संभवतः रावण का कोई ऐसा नाम था जिसका संस्कृत रूपांतर दशानन तथा पर्य्यायार्थ वाले शब्द बने, जैसे ऊपर भ्रान-मा का ब्रह्म शब्द बन गया था, हम सुनीतिकुमार को उद्धृत कर चुके हैं।

रावण देवयुगीन सभ्यता का वंशज प्राणी होने के नाते ही देवयोनि माना गया और उसे ब्रह्मा का वंशज मानकर ब्राह्मण कहा गया है। ब्राह्मण परम्परा में राक्षसों और असुरों को ब्राह्मण क्यों कहा गया है? क्षत्रियों ने ऐसा वर्णन किया है? यह अवश्य एक पहेली है। रावण को बदनाम किया गया है। यह भी प्रकट होता है कि आर्य अपने शत्रुओं को कितनी बुरी तरह बदनाम करना जानते थे। परवर्त्ती आर्य दूसरे की स्त्री का अपहरण करने लगे थे। तब यह राक्षस विवाह-पद्धति के रूप में उनमें घुसा था। रावण के राक्षस समूही में कबन्ध, पिशाच इत्यादि भेद तो मिलते हैं परंतु राक्षसों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भेद नहीं मिलता। रावण वस्तुतः शिवोपासक तथा यज्ञ-विरोधी था।

---

१. अगस्त्य इन तमिल लैण्ड पृ० ५–६. २. वही पृ० ५–६ तथा ५२.

रावण अनेक हुए हैं ।

रावण शब्द, एक मतानुसार, तमिल के 'ईरैवन' शब्द से बना है, जिसका तमिल में तात्पर्य केवल 'राजा' है ।[1]

जी० रामदास ने 'रावण एण्ड हिज़ ट्राइब्स' नामक लेख में रावण पर विशेष प्रकाश डाला है । जिज्ञासुओं को वह लेख पढ़ना चाहिये ।[2] उन्होंने लिखा है कि वाल्मीकि रामायण में रावण के एक सिर तथा दो भुजाओं का ही उल्लेख है । जब जब व्यक्ति रूप से रावण का चित्रण हुआ है, ऐसा ही रूप मिलता है । लेकिन विशेषण के तौर पर उसे दशकंठ, विंशभुज इत्यादि कहा गया है ।

यह निस्संदेह ठीक है । तुलसीदास ने इस विषय में बहुत भ्रमोत्पन्न किये हैं । वाल्मीकि रामायण में न अंगद की लात से रावण के दस मुकुट गिरते हैं, न रावण के दस सिर एक के बाद उगते हैं जिन्हें राम ने काटा था । रामायण युद्धकाण्ड, ४१/६९ में राम ने जब अंगद को दूत बनाकर भेजा है तब कहा है कि मैं तेरा राज्य भोगना नहीं चाहता । तब अंगद गया । उसकी बात सुनकर रावण क्रोध से भर गया । उसने अंगद को बंदी बनाने की आज्ञा दी । अंगद ने प्रासाद का एक कंगूरा गिरा दिया और भाग गया (८५. ८६, ८७) ।

राम ने रावण का सिर काट दिया (युद्धकाण्ड १०७/५४) फिर ५५, ५६, ५७ में बार-बार वही सिर उगा ।

एवमेवशतंछिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम्

तब राम परेशान हो गये और १०८/१८ तथा १९ में राम ने रावण का हृदय भेद दिया—

विभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः

इस प्रकार रावण के दस सिर थे यह प्रकट नहीं होता । एक सिर बार-बार उगता है । रावण की स्त्रियां वाल्मीकि रामायण में रावण का एक ही सिर लेकर गोदी में रख कर रोती हैं, यह नहीं है कि अलग-अलग रानियों ने एक-एक सिर संभाल लिया हो ।

रामदास ने दक्षिण की कुई जाति से राक्षस जाति के रीति-रिवाजों की जो तुलना की है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है ।

लंका में एक लंकिणी थी । कुई गोंड (मध्यप्रांत की जातियां) हर गाँव में रक्षिका-देवता स्थापित करते हैं ।[3] राक्षस अपने चेहरों पर नकली चेहरे लगाते थे ।[4] यह मास्क कहलाते हैं । ऊपर हम सभ्यता की एक मंज़िल में चेहरे लगाने का वर्णन कर आये हैं । तिब्बत, बंगाल तथा दक्षिण भारत में अभी तक चेहरे नाच गीतों में चढ़ाये जाते हैं । खोंड

---

१. अगस्त्य इन तमिल लैण्ड पृ० ७५.
२. इंहिक्वा ५. १९२९.
३. इंहिक्वा ५. १९२९. पृ० २८७.
४. वही पृ० २८९.

जाति सिर पर सींग लगाती है।[1] रामायण में रावण की सेना चेहरोंसहित और चेहरों के बिना भी असली रूप में उल्लिखित है। मास्क लगाने की प्रथा उस समय तक प्रचलित थी जब गांधार-कला भारत में समृद्ध हो रही थी।[2] दक्षिण के कथकलि नृत्यों में अब भी चेहरे लगते हैं। भूटान (भूतस्थान) में द्रविड़ जाति रहती थी।[3] मास्क बदल देने से चेहरा बदल जाता था। इसी से मास्क धारण करनेवाले कामरूपिण: अर्थात् इच्छारूप कहलाते थे। राक्षसों के साथ वानर भी ऐसे ही वर्णित थे। वानर हनुमान तो ब्राह्मण बन गये थे। संस्कृत के पंडित थे। जान-बूझकर सीता से अशोक वाटिका में प्राकृत बोले थे।

विवाह में राक्षस स्त्री का अपहरण किया करते थे।[4] यह प्रथा अब भी दक्षिण में बहुत रूप बदलकर प्रचलित है। लड़के वाला लड़की को छीनता है। अब तेलगू तथा तमिल भाषी कुछ जातियों में लड़के वाला लड़की के घर का कुछ सामान पहले उठाकर ले जाता है। अब लूट नहीं रही है। इस प्रकार भारतीय द्रविड़ जातियों में राक्षस विवाह की प्रथा अपने भयानक रूप से एक कोमल रूप में बदल गई है।[5]

दक्षिण की मातृसत्तात्मक व्यवस्था में यह पितृसत्तात्मक समाज का प्रभाव था। इससे स्पष्ट है रावण राक्षस द्वारा जो दानव, असुर तथा तमिल जातियों के समाज से अलग थे उनकी सामाजिक व्यवस्था में पितृसत्ता आ गई थी और वह भी काफ़ी जबर्दस्त बनकर, जिसने स्त्री के अधिकार छीन लिये थे।

रावण देव दानवों का शत्रु था।[6] विराध तथा कबंध दानव थे।[7] रावण राम की इच्छा से जलाया गया था। विराध गाड़ा गया था। कबंध जलाया गया था फिर उसकी भस्म और अस्थि गाड़ दी गई थीं।[8] गरुड़ राक्षसों के शत्रु थे। राक्षसों के मित्र काक थे। सुपर्ण, जटायु (विष्णुपूजक) राक्षसशत्रु थे।[9] नाग राक्षसों के मित्र थे? इन्द्रजित ने नागपाश बांधा था।

अब.कुछ जाति दक्षिण के पूर्वी घाटों के जंगलों में रहती है।[10] कुई भाषा में रोने-चिल्लाने के लिये 'रिव' शब्द का प्रयोग होता है। तेलगु में रिव्व, रव्व तथा कन्नड़ में राव। न, अन् प्रत्यय के समान है। इसी से रावण शब्द बनता है।[11] दशानन दश=दुःख। इस प्रकार दशानन का अर्थ दुःखदाता है।[12] (दशरथ=दुःख से आर्त्त?)।[13]

रावण की लंका के विषय में भी मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि लंका विंध्य के पास थी। सह्य, महेन्द्र, मलय आदि पर्वतों के नाम उनके अनुसार रामायण में क्षेपक हैं, और बाद में आये हैं। यदि यह थे भी तो किष्किन्धा के पास कुछ दुर्ग थे, या पहाड़ों

---

१. इंहिक्वा ५. १९२९. २८९.
२. वही पृ० २९०.
३. वही पृ० २९०.
४. वही पृ० २९०.
५. वही पृ० २९०.
६. वही पृ० २८६.
७. वही पृ० २८६.
८. वही पृ० २९५.
९. वही पृ० २९८.
१०. वही २९८.
११. वही ६. १९३० पृ० ५४५.
१२. वही पृ० ५४६.
१३. वही पृ० ५४६.

के शिखरमात्र थे।[१] परंतु मलय द्वीपसमूह में कुछ स्थानों का नाम लंका है।[२]

लंका का अर्थ संभवतः जल से घिरा भूभाग था। वह सुदूर दक्षिण में था यही अधिक ठीक लगता है।

जैन स्रोतों में वर्णन है कि रावण ने जडाउ को हराया। किष्किन्दगिरि पार करके लंका पहुंचा। लवण सिंधु में राक्षस द्वीप है। और उसके बीच में त्रिकूट पर्वत है। लंका पर्वतशिखर पर बसी है। लंका सीलोन है।[३] राक्षस एक स्थान छोड़कर नई-नई जगह बसे। जहां-जहां गये वहीं उनका स्थान लंका कहलाया। स्मरण रहे कार्त्तवीर्य्यार्जुन के बाद वानरराज वालि ने भी रावण को हराकर भगाया था।

रामायण में यक्ष देश का हिमालय में वर्णन है। मधुवन या मथुरा के मधु की अनुचर दैत्य जाति का भी उल्लेख है। गंधर्व देश तथा नर्मदा तीरवासी हैहयों का भी वर्णन रामायण में है।[४]

सिंधु के दोनों ओर गंधर्व रहते थे। (स्मरण रहे सत्ययुग में सरस्वती तीर पर बसे गंधर्वों का उल्लेख किया जा चुका है।—बलभद्र की तीर्थयात्रा) राम ने गंधर्वनगर नष्ट करवाया था। भरत के पुत्र तक्ष तथा पुष्कल को उन्होंने भेजा था। तक्ष ने तक्षशिला तथा पुष्कल ने पुष्कलावत बसाये थे।[५] कुछ लोगों का मत है कि तक्षशिला को तक्षक नाग ने बसाया था। नाग सरस्वती तीर के आसपास रहते अवश्य थे।

अभी तक आर्यों का विभिन्न देवी-देवता मानने वाले कबीलों से युद्ध हुआ था। अब दक्षिण के शिवोपासकों से युद्ध हुआ। तपोवनों में शिव घुस गया था। यजुर्वेद में शिव-स्तुति का उल्लेख किया जा चुका है। तपोवन संभवतः अनार्य प्रभाव था। अनार्य योगी तथा तपस्वी सदैव वनवासी ही दिखाई देते हैं। परंतु यह विवादास्पद है। ब्राह्मणों ने आश्रम, तपोवन नगर के बाहर जागीरों के रूप में बसाये थे जहां दास काम करते थे। उपनिषदों में 'श्रमण' शब्द का उल्लेख है।[६] मुनि वेद में आया शब्द है।

प्रसिद्ध कथा है कि ऋषि शिवविरोधी थे। एक बार तपोवन में ऊर्ध्वलिंग शिव-आगये। ऋषि उन्हें मारने दौड़े, परंतु मुनिपत्नियाँ शिव के प्रति आकृष्ट हुईं। स्त्रियों के माध्यम से ही आर्यों में शिव-प्रभाव बढ़ा। लिंग का उल्लेख ऋग्वेद में भी है।[७] अनार्य देवों का प्रभाव बढ़ चला था। विहटने का मत है कि अथर्ववेद में देवताओं से भय होने लगा था, जैसे देवता बलि से प्रसन्न तथा बलि न देने से अप्रसन्न हो जाते हों।[८]

लिपि संभवतः तब बन चुकी थी। अथर्ववेद में जूए का हिसाब लिखे जाने का इंगित

१. आभां ओरिइ १७. १९३५-३६ पृ० ३७६.
२. प्रिआर्यन एण्ड प्रिद्रविड़ियन पृ० १०३.
३. लाइफ़ इन एन्शेन्ट इंडिया पृ० ३०६.
४. इंहिक्वा २. १९२६ पृ० ७२५.
५. एपिक मायथॉलॉजी पृ० १५७.
६. वेदिक इन्डैक्स २, पृ० ४०१.
७. इंहिक्वा ६. १९३० पृ० ११७.
८. सूर्य्य पृ० ७ तथा आगे.

है।[1] उस काल में सभा में जूआ होता था। यह प्रथा दिन-दिन बढ़ती गई। द्वापर में तो जूआ इज्ज़त की चीज़ हो गई। उस काल में जूए का कर्ज़ न चुकाने वाला दास बना लिया जाता था।[2]

उस समय स्त्री के स्वयंवर की प्रथा थी। स्वयंवर एक दृढ़ रक्षक ढूँढ़ने की प्रथा थी। स्त्री को समाज में ख़तरे बढ़ चले थे। वह अब संपत्ति जो समझी जाने लगी थी।

इस समय अनेक वैदिक गुरु अथवा ऋषि हुए और यजमानपत्नी का अश्व के साथ शयन जैसा प्राचीन टीकाकारों ने उल्लिखित किया है इस समय संभवतः प्रचलित था। परंतु यहां उस ओर न जाकर हम महाभारत की रामकथा को लेते हैं, और रामायण पर विचार आवश्यक समझते हैं—

रामायण में उल्लेख है कि कैकेयी ने दशरथ के रथ का चक्का युद्ध में पकड़कर रथ गिरने से बचाया था। यह प्रकट करता है कि स्त्रियां तब भी युद्ध में जाती थीं।

वनपर्व २७७ में कैकेयी ने दशरथ से दो वर माँगे। अब आगे वहीं का उल्लेख देना उचित है जहां प्रसिद्ध रामायण कथा से भेद है या कोई विशेष बात है।

२७८. रावण सीता के पास त्रिदण्डधारी संन्यासी के रूप में गया था। लक्ष्मण ने राम को ढूंढ़ने के लिये जाते समय यहां कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं खींची। सीता ने (प्राचीन परम्परा का ध्यान कर) अतिथिसत्कार किया।

रावण ने कहा : मैं राक्षसराज रावण हूँ। महासागर के पार मेरी राजधानी लंका-पुरी है। वहां तुम नर-नारियों के बीच मेरे साथ परम शोभा पाओगी। हे सुन्दरी! तपस्वी राघव को छोड़कर तुम मेरी भार्या बन जाओ।

सीता ने कहा : हथिनी क्या कभी मदमत्त जंगली गजराज को छोड़कर शूकर को छू सकती है? जिस स्त्री ने पुष्पों से उत्पन्न मधु और बढ़िया मदिरा पी है, वह क्या कभी कांजी को पी सकती है?

रावण सीता को पकड़ ले चला। वह चिल्लाई। पर्वतनिवासी गिद्धराज जटायु ने दूर से सीता की यह दशा देखी।

सीता के साथ पातिव्रत है और सीता मद्य की बात कहती है। रामायण में जब सीता गंगा पार करती है तब कहती है : माता गंगे! यदि मैं पति और देवर के साथ सुरक्षित लौट आऊँ तो तुझमें सौ घड़े मद्य चढ़ाऊँगी।

राम के विषय में भी यह उल्लेख है कि उन्होंने सूहर, हिरन, बकरे तथा 'निषिद्ध' मोर का मांस खाया था।[4]

ऊपर पातिव्रत स्त्री ने स्वयं स्वीकार किया था वर्णित हो चुका है। यहीं रामकाल की अहिल्या का भी उल्लेख करना उचित है। कुछ लोगों का मत है कि जिस भूमि में

---

१. भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १२.
२. वही पृ० २०३.
३. कोष्ठक मेरे हैं।
४. एपिक मायथॉलॉजी पृ० २०.

हल नहीं चल सके, राम ने ऐसी धरती को सजीव और उपजाऊ कर दिया था। हम इतनी लंबी कल्पना नहीं कर सकते। अहिल्या की कथा से इतना ही प्रकट होता है कि इन्द्र प्राचीन परम्परा का द्योतक है। किसी पुरुष ने स्त्री को स्वतन्त्र समझकर अहिल्या से संबंध किया, किन्तु अब सामाजिक परिस्थिति काफ़ी बदल चुकी थी। पितृसत्तात्मक समाज में यह सर्वमान्य नहीं रही थी। राम ने उसी प्राचीन परम्परा में अहिल्या को निर्दोष माना और समाज में जीवित माना। सीता में पातिव्रत था। अयोध्या के रघुकुल के अन्त में लिच्छविगण उठा। यह विद्वान् मानते हैं। लिच्छविगण में भाई-बहिन का विवाह होता था। जैन परम्परा है कि अयोध्या कुल में जन्मे तीर्थंकर ऋषभ ने इस प्रथा को रोका था। इन दोनों को दो विरोधी बातें नहीं समझना चाहिये। दक्षिण के ब्राह्मणों में मामा-भांजी का संबंध जायज़ है। मुसलमानों में अब भी दूध छोड़कर निकाह करते हैं। किन्तु इसके यह मतलब नहीं कि इन दोनों के समाज में पातिव्रत नहीं होता।

सीता और रामचन्द्र जिस युग में थे उन दिनों स्त्री और पुरुष दोनों मदिरा पीते थे। सीता राम को देखकर घूँघट नहीं काढ़ती थी। सीता राम से उनका नाम लेकर बात करती थी।

महाभारत की कथा प्राचीन है। तब तक राम को मर्यादा का इतना बड़ा आवरण नहीं पहनाया गया था जितना परवर्त्ती काल में, तभी कथाकार निडर होकर लिख गया है।

२७९. वनपर्व। जटायु तथा रावण का युद्ध हुआ। जटायु (सुपर्ण ?) मारा गया।

उधर राम ने लक्ष्मण से पूछा कि तुम राक्षस परिपूर्ण वन में सीता को कैसे छोड़ आये ?

अर्थात् वह राक्षसों से भरा वन था।

२८०. हनुमान को सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण के पास भेजा।

यहां हनुमान ब्राह्मणवेश धरकर नहीं गया है।

वाली पुरी में रहता था। तारा ने उसे रोका। कहा: मैन्द, द्विविद, हनुमान, ऋक्षराज जाम्बवान् राम से मिलकर सुग्रीव के साथ आये हैं। तुम न जाओ।

परंतु वाली नहीं माना। वह समझा तारा सुग्रीव को चाहती है।

वाली माल्यवान् पर्वत के पास खड़े सुग्रीव के पास गया।

सुग्रीव ने कहा : तुमने मेरा राज्य और स्त्री हर लिये हैं।

फिर दोनों में शिला और वृक्षों से युद्ध हुआ।

यह प्रकट करता है कि वे युद्ध में कितनी साधनहीन समाजव्यवस्था के व्यक्ति थ।

राम ने कार्यसाधन के लिये यहां निहायत बेईमानी से छिपकर वाली को मार डाला। सुग्रीव को राज्य मिला और तारा भी।

इसी अध्याय में त्रिजटा ने सीता को सुनाया है : नलकूबर के शाप से रावण तुम पर अत्याचार नहीं कर सकता। पापी दशानन ने पहले नलकूबर की प्रेयसि और इसी

कारण अपनी बहू, रम्भा अप्सरा से बलात्कार किया था। तब नलकूबर ने उसे शाप दिया था।

यह तथ्य निस्संदेह परवर्ती है। सीता का चरित्र भ्रष्ट नहीं हुआ, यही साबित करना है। इस कथा में सीता के शरीर में इतनी शक्ति अभी नहीं हुई है कि रावण छूते हुए डरे और जल जाये। अतः सीता की बजाय रावण को ही शाप से बांध दिया गया है। सोचने की बात है कि जो रावण सीता को छूकर उठाकर हरकर ले जाते समय नहीं जला, गोया वह कोई धार्मिक काम था, तो वह बाद में कैसे जलता? यहां उन लोगों से मेरा तर्क नहीं है जो सोचते हैं कि यह सब तो भगवान् की लीला थी। प्रश्न है नलकूबर की कथा असंगत क्यों है? असंगत है कि देवयुग में प्रायः ऐसी ही एक कथा हम कुबेर के संबंध में भी देख चुके हैं। दूसरे अप्सरा से बलात्कार कैसा? अप्सरा का तो मानापमान उसके यौन संबंधों में कभी भी नहीं था। इस कथा से केवल इतना इंगित होता है कि रावणों की परम्परा में जो पहले प्रचलित था, वह अब नहीं था, या रावण पहले बलात्कार करता था बाद में उसने नहीं किया। डराता वह अवश्य रहा।

२८१. रावण वसंत के समान शोभायमान था, पर वह कल्पवृक्ष नहीं, बल्कि मसान में लगे हुए पेड़ की तरह भयंकर जान पड़ता था। रावण ने कहा : मेरी सब स्त्रियों में श्रेष्ठ बनो। मेरे घर में देवताओं, गन्धर्वों, दैत्यों और दानवों की सैकड़ों कन्याएँ तथा स्त्रियां है। चौदह करोड़ पिशाच, उनसे दूने भीमकर्मा राक्षस और तिगुने यक्ष मेरी आज्ञा में रहते हैं। थोड़े से यक्ष राक्षस ही मेरे भाई कुबेर के आधीन हैं। कुबेर की तरह मेरी सेवा में भी गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड हाज़िर रहते हैं। देखो, मैं ब्रह्मर्षि विश्रवा का पुत्र हूँ और पांचवें लोकपाल कुबेर के समान मेरा भी यश सर्वत्र प्रसिद्ध है। मेरे यहां भी इन्द्रलोक का-सा ऐश्वर्य और दिव्य खाने-पीने की सामग्री है। वनवास के कष्टों को भूलकर तुम भी मन्दोदरी के समान मेरी भार्या बनो।

रावण के ये वचन सुनकर, अपना मुँह फेरकर, आँसुओं से अपने पीन और उन्नत स्तनों को भिगोती हुई पतिव्रता सीता——तिनके की ओट करके——कहने लगी : देख, मैं पतिव्रता और पराई स्त्री होने के कारण तुझे नहीं मिल सकती। हे राक्षस, इसके सिवा मनुष्य जाति की स्त्री तेरे उपभोग के योग्य भी नहीं हो सकती। विवश स्त्री पर बलात्कार करने से तुझे क्या आनन्द मिलेगा, साक्षात् प्रजापति के तुल्य, ब्रह्मा के पुत्र, ब्राह्मण तेरे पिता हैं। तू खुद लोकपाल-तुल्य होकर भी धर्म का पालन क्यों नहीं करता? महेश्वर के सखा, राजराज, प्रभु, धनेश्वर, कुबेर को अपना भाई कहते तुझे लज्जा भी नहीं आती?

इस वर्णन में रावण ने यक्ष राक्षस संबंध प्रकट किया है। सीता के कथन से प्रतीत होता है कि अर्थ्य कुबेर यक्ष के विरुद्ध नहीं थे। रावण ब्राह्मण कहा गया है। विश्रवा ब्राह्मण था?

२८२. राम ने सुग्रीव के पास लक्ष्मण को यह कहकर भेजा कि यदि वह हमारा काम न करे, तो उसे भी मार डालना।

परंतु सुग्रीव काम कर चुका था। हनुमान आदि वानर विश्राम करके राम के पास आये।

संपाति रावण को अच्छी तरह जानता था। उसने बताया कि त्रिकूट पर्वत की कंदरा में लंकापुरी रावण की राजधानी है। मैं लंकापुरी को देख चुका हूँ।

हनुमान ने अशोकवाटिका में सीता से कहा कि मैं राक्षस नहीं—वानर हूँ।

जानकी ने कहा : धर्मात्मा राक्षस अविन्ध्य ने मुझे पहले बताया है कि हनुमान आदि वानर सुग्रीव के सचिव और साथी हैं।

यहां हनुमान ने विराट् रूप भी नहीं दिखाया है। अविन्ध्य रावण का गुप्त विरोधी था। राक्षस के राज्य में फूट पड़ चुकी थी।

२८३. वाली के ससुर सुषेण, गज और गवय, भयंकर रूप वाला गवाक्ष नामक लंगूर, **गन्धमादन वासी** गन्धमादन वानर, पनस वानर, वृद्ध वानरराज दधिमुख, ऋक्षराज जाम्बवान् आदि एकत्र हुए।

राम गोह के चमड़े के अंगुलित्र पहने थे। नल, नील, अंगद, क्राथ, मैन्द, द्विविद यूथप थे।

महाभारत का वर्णन है : हमारी सेना में नावें अधिक नहीं हैं। जलमार्ग के व्यापारियों के रोजगार में बाधा पहुँचाना ठीक नहीं। डोंगी—घरनइ के सहारे पार होने में सेना फैल जायगी और शत्रु नष्ट कर देगा।

वानर नल विश्वकर्मा का पुत्र था। वह कारीगर तथा बलवान् था। उसने नलसेतु बनाया।

इधर विभीषण आ मिला। घर का भेदी आ पहुँचा।

सुग्रीव को विभीषण पर संदेह हुआ कि वे रावण के जासूस हैं। परंतु रामचन्द्र ने विभीषण की सच्चाई और चेष्टाओं को जाँचकर जान लिया कि सुग्रीव की शंका निर्मूल है।

इस वर्णन में राम की शरणागतवत्सलता नहीं है।

राम ने विभीषण का बड़ा सत्कार किया और उन्हें सब राक्षसों तथा लंका का राजा बना दिया। विभीषण को लक्ष्मण के सलाहकार और मित्र का पद भी दिया।

यह भेदनीति काम में लाई गई।

फिर विभीषण की सलाह से, उसी सेतु की राह, सेनासहित रामचन्द्र समुद्र के उस पार एक महीने में गये। रामचन्द्र की आज्ञा से वानर लोग लंका में घुसकर बड़े-बड़े सुन्दर बागों को तोड़ने-फोड़ने लगे। रावण के मन्त्री और जासूस, शुक और सारण, वानर का वेश बनाये, राम की सेना में घुसे हुए थे। विभीषण ने उन्हें पहचानकर पकड़ लिया। जब वे दोनों राक्षस प्रमाणित हो गये, तो राम ने अपनी सेना दिखाकर उन्हें छोड़ दिया।

इससे ज्ञात हुआ कि लंका में बड़े-बड़े बाग थे। वानर का वेश बनाकर राक्षस रहे थे।

२८४. लंका में दुर्ग, खाई सब थे। सात खाई थीं, इनमें जल गहरा, उसमें मगरमच्छ।

खाई—१. लकड़ी के शंकु।
२. कपाट यन्त्र।
३. सींग और फेंक कर मारे जाने वाले गोले।
४. नाग और योद्धा।
५. सर्ज-रस और धूल।
६. मूसल, जलती लकड़ियां, शस्त्रादि।
७. मधुरस और मुद्गर के कारण अगम्य।

राम सुबेल पर्वत पर थे। अंगद दूतत्व करके वहीं पहुँचे। रावण के उन्होंने कहीं लात नहीं मारी है।

२८५. रावण की ओर से पर्वण, पतन, जम्भ, खर, क्रोधवश, हरि, पुरुज, आरुज, प्रघस आदि पिशाच और क्षुद्र राक्षस लड़े।

पिशाच यहां भी रावण के साथ हैं।

रावण शक्ति, शूल, खड्ग से लड़ा। लक्ष्मण बाणों से। इन्द्रजित बाणों से लड़ा।

२८६. धूम्राक्ष राक्षस भी बाण चलाकर युद्ध करता था। धूम्राक्ष फिर गदा, परिघ से युद्ध कर रहा है। हनुमान पेड़ उखाड़कर मारता है।

कुम्भकर्ण के साथी प्रमाथी और वज्रवेग थे।

२८७. कुम्भकर्ण चण्डबल और वज्रबाहु वानर को खा गया। सुग्रीव ने उसके सिर पर एक शाल का पेड़ दे मारा। वह सुग्रीव को पकड़कर ले चला। लक्ष्मण ने बाण मारा। सुग्रीव को कुम्भकर्ण ने छोड़ दिया और एक बड़ी शिला लेकर लक्ष्मण पर टूटा।

अंत में कुम्भकर्ण को लक्ष्मण ने मार डाला। वाल्मीकि रामायण में राम ने कुम्भकर्ण को मारा है।

२८८. इन्द्रजित बाण-युद्ध में लक्ष्मण को नहीं हरा सका। उसने राम-लक्ष्मण को घायल कर दिया। और दिव्य अस्त्रों के पिंजड़े में बन्द कर दिया।

२८९. विभीषण ने प्रज्ञास्त्र से बेहोशी दूर कर उन्हें मुक्त किया।

यहां हनुमान जड़ी लेने नहीं जाते। न नागपाश का वर्णन है, न गरुड़ के आने का।

यहां कुबेर ने श्वेतपर्वत से एक यक्ष के हाथ दिव्य जल राम के पास भिजवाया, ऐसा विभीषण के कथन से ज्ञात होता है। उस जल से आँख धोकर सबको दिव्यज्योति मिली—हनुमान सुग्रीव आदि को भी। यद्यपि यह सब भी इच्छारूप और कामचारी और आकाश में गति रखते थे। अवश्य सब वानर आकाश में नहीं जा सकते थे। अगर जा सकते होते तो समुद्र को सब ही उड़कर पार कर ही गये होते।

लक्ष्मण ने इन्द्रजित मार डाला। रावण ने क्रोध से सीता को मार डालना चाहा। परंतु अविंध्य ने रोक दिया कि स्त्री-हत्या ठीक नहीं है।

२९०. राम ने ब्रह्मास्त्र से रावण को भस्म कर दिया। न रावण के बार-बार सिर उगते हैं, न इंगित होता है कि उसके दस सिर थे। विशेषण के रूप में दशानन आदि अवश्य प्रयुक्त हुआ है।

२९१. विभीषण को राज्य दिया। अविन्ध्य जानकी को लाया।

सीता के चरित्र पर संदेह करके राम ने कहा: राक्षस से तुम्हें छुड़ाकर मैं कर्त्तव्य-पालन कर चुका। अब जहां चाहे चली जाओ। मुझसा मनुष्य पराये घर में रही हुई पत्नी को पल भर भी कैसे अपने पास रख सकता है? जानकी, तुम्हारा चरित्र चाहे शुद्ध हो चाहे न हो, परंतु कुत्ते के जूठे किये हुए हव्य की तरह, मैं तुमको स्वीकार नहीं कर सकता।

राम के ये निष्ठुर वचन सुन वानर और लक्ष्मण भी सन्नाटे में आ गये। उस समय ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, वायु, यमराज, वरुण, यक्षराज कुबेर, सप्तऋषि, दशरथ सब विमानों पर चढ़कर राम के पास आये। अंतरिक्ष में देवता और गंधर्व आ गये।

आकाशवाणी हुई। देवताओं ने सीता को पवित्र कहा। इस सब को सुनकर अंत में सीता को राम ने स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार सीता का अग्निप्रवेश भी वर्णित नहीं है। राम को प्राचीन परम्परा ने बल दिया और वे सीता को ले आये।

फिर आकर गोमती तीर पर उन्होंने अश्वमेध किया।

इस पूरी कथा में अनेक नये तथ्य हमने देखे। दिखाने का तात्पर्य यह है कि रामायण-कथा जैसे-जैसे काल व्यतीत होता गया है अपनी स्वाभाविकता खोती गई है और उसे दैवी शक्तियाँ दी गई हैं।

रावण की सेना को देखकर लगता है कि बाण का राक्षसों में अधिक प्रयोग नहीं था। क्या यह इंगित करता है कि उनके पास लोहा नहीं था?

पूरे महाभारत के रामोपाख्यान में राम को भगवान् नहीं कहा गया है। वे अवतार नहीं हैं। महाबली पुरुष हैं। कोई भी उनके हाथ से मरकर स्वर्ग नहीं पहुँचा है।

उत्तरकाण्ड की कथा यहां है ही नहीं। उसकी प्राचीनता पर हम ऊपर विचार कर चुके हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राम ने ऋक्ष और वानरों को राक्षसों से लड़ाया और अपना काम बनाया, पर इससे आर्यदंभ कम हो गया।

संभव है इस समय का जनक विदेह कोई दार्शनिक था, परंतु यह वह नहीं था जो परवर्ती काल में प्रवाहण जैबलि तथा याज्ञवल्क्य के साथ मिलता है। वह महाभारत के बाद का व्यक्ति है। यह आगे महाभारत—गीता—और उपनिषद् के संबंध में स्पष्ट होगा।

यह बर्बर युग का अंत है, जो दास-प्रथा के सुदृढ़ होने के साथ सभ्यता की ओर बढ़ रहा है। जो ब्राह्मण सत्ययुग में चल रहा था, त्रेता में खड़ा था, द्वापर में बैठ गया, क्योंकि क्षत्रियों ने उसके आखिरी हौसले तक को दबा दिया था। अब वह धर्मसंचालक था और दान पर चलता था।

राम से एक नई बात हुई। अभी तक आर्य हटाकर दास बनाते थे। अब यह उनके लिये असंभव हो चला। वे दबा सकने में असमर्थ थे। लाचार भेदनीति से काम लिया।

अभी तक अनार्य धनी दान देकर स्तुति पाते थे, अब मौका यह हो गया कि आर्यों के साथ-साथ अनार्य शासन अपने दासप्रथा के ढाँचे को लेकर खड़े रहे। उन्हें आर्य जीत नहीं सके। इस प्रकार द्वापर को दो परम्परा मिलीं। एक—अनार्यों से युद्ध; दूसरी—अनार्यों को भी बराबर समझना।

भेदनीति से काम तो लिया, परंतु राम ने महान् कार्य किया। अभी तक आर्य यहां की जातियों से घृणा करते थे। दबाते थे। राम की सहिष्णुता शताब्दियों तक बनी रही। क्षत्रिय ने ब्राह्मण के लिये जो सहायता का कार्य किया, उससे क्षत्रियों में एक ऐसी सहिष्णुता बढ़ी जो गौतमबुद्ध और महावीर में प्रकट हुई। कालांतर में जब ब्राह्मण और क्षत्रियों से जनसमाज को लाभ नहीं पहुँचा तब राम को जनसमाज ने अवतार बनाकर पूजा।

अनार्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा। और द्वापर में अनार्य आर्यों के समान अपने वर्गभेद के आधार पर स्वीकृत किये जाने लगे। महाभारत में अनेक अनार्य आर्यों के स्वयंवर में आने लगे।

राम के इस कार्य का एक महान् प्रभाव यह भी पड़ा कि दक्षिण का समस्त समाज आर्यों से पुरानी घृणा छोड़ गया और फिर धीरे-धीरे राक्षस समाज घुलमिलकर लुप्त हो गया।

राम का प्रभाव आगे आर्य अनार्य संबंधों के विषय में विचार करते समय अधिक प्रकट होगा।

इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि सबसे बुरा ब्राह्मण था। ब्राह्मण का अपना एक गौरव था। परंतु वह उसका अपना गौरव था।

वर्णदंभ और जातिदंभ उसी की कृतियां हैं। उसने अपने को श्रेष्ठ कहलवाया व्यक्तिगत ऊंचाइयों से, किंतु उसके सामाजिक पक्ष के स्वार्थ को कभी और किसी की पुकार, कोई भी नहीं छिपा सकता।

ब्राह्मण में सबसे बड़ी बात थी कि वह बदलती परिस्थितियों में अपने को ऊँचा रखते हुए, अपने को बदलना जानता था। अब अनार्य चिंतन अपना प्रभाव उस पर डालने लगा था। आर्य ब्राह्मण ने उसे बिलकुल ही अस्वीकार नहीं कर दिया, वरन् उसमें जो ऊँचाई थी वह अपना ली और बाद में इस तरह पेश की जैसे वह उसकी अपनी थी।

किंतु राजनैतिक रेखाचित्र के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को भी देखना आवश्यक है।

इस समय आर्यों को नये धर्म की आवश्यकता थी। वर्गों का आपस का संबंध अब पहले जैसा नहीं रहा था। और दासों के साथ-साथ असंख्य शूद्र भी मिल गये थे। समाज के नये नियमन की आवश्यकता थी। दास पशु के समान था, किंतु शूद्र के समाज में पंचायत प्रणाली थी और शूद्र के अपने देवी-देवता थे। ब्राह्मण ने उनको नहीं छुआ किंतु शूद्र को विदेशी नहीं रखा जा सकता था। आर्य उसकी तुलना में कम थे। इन अनार्यों की स्त्रियों का आर्य लोग भोग करते थे। दास और शूद्र अलग-अलग थे। शूद्र एक क़दम आगे था; उसे मुक़ाबिले में ज्यादा आज़ादी थी। त्रेता में मजबूर होकर शूद्र को अंगीकार करना पड़ा। शूद्र को समाज में स्वीकार करना उच्चवर्ग के लिये आवश्यक हो गया। किंतु उच्च वर्गों ने इससे भी लाभ उठाया। दास से शूद्र का दर्जा कुछ ऊँचा था। शूद्र वे लोग थे जो आर्य-आधीनता को स्वीकार कर चुके थे। सत्ययुग में आर्य-दास थे—यही द्वन्द्व था। अब एक ओर त्रिवर्ण थे तथा दूसरी ओर शूद्र था। द्वापर में चातुर्वर्ण्य था और दूसरी ओर संघर्ष से भुलवाने को जातीय युद्ध थे। किंतु दासप्रथा का आंतरिक विरोध आर्यों के गृहयुद्ध के रूप में फूट पड़ा। महाभारत के बाद शूद्र उठे। द्वापर में शूद्र को संपत्ति के कुछ अधिकार मिले, पर दास को नहीं।

इस समय विराट पुरुष का जन्म हुआ। इसकी पृष्ठभूमि में संपत्ति के लिये चलते अश्वमेध यज्ञ पर निर्भर युद्ध थे। दासों के लिये समाज में काम करने का स्थान निकाल लिया गया था। तब पुरुषमेध बंद हो गये। फिर विजय की मादक तृष्णा को अनार्य और आर्य धन ललकारने लगा। अब यज्ञ का छोटा-सा ब्रह्म आकाश में छाने लगा। और वह वेदिक कवि जो पूछते थे कि बिना सहारे सूर्य आकाश में कैसे लटका रहता है, अब अनार्य चिंतन से प्रभावित होने लगे। अनार्य चिंतन ताम्रयुगीन सभ्यता के ह्रासकालीन दासत्व से 'अभावात्मक' हो चला था, जो परवर्त्ती शैव संप्रदायों में प्रखर है, जिसकी साधना का पथ एकांतिक है, और सदैव ही एकांतिक ही रहा है। अब इन आर्य जातियों ने आकर उस शांति को तोड़ दिया जिसमें जय तथा पराजय को भूलकर द्रविड़ रुकने लगे थे। उनके समाज में गतिरोध आ गया था, तभी वे हार गये थे और हारकर भी यही कहते रहे कि वे हार जीत को कुछ नहीं समझते। आर्यों पर वह अभाव छाया किंतु अभी इसका सामाजिक रूप उनके पक्ष में अभाव नहीं, वरन् अधिकार वर्णदंभ और संपत्ति की प्राप्ति थी अतः इस युग के वेदिक कवि ने पूछा :

> नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं
> नासीद्रजोनेव्योमाऽपरोयत् ।
> किमावरीवः कुहकस्य
> शर्म्मन्नम्भः किमासीत् गहनं गभीरम् ॥१॥
> न मृत्युरासीदमृतं न र्तहि
> न रात्र्या अन्ह आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास ॥२॥
तम आसीत् तमसा
गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं
यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥३॥
कामस्तदग्रे समवर्ततादधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतोबन्धुमसतिनिरविन्दन्हृदि
प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥
तिरश्चीनो विततोरश्मि
रेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा
अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥
को अद्धावेद क इह प्रवोचत्कुत
आजाता कुत इयं विसृष्टिः
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा
को वेद यत आबभूव ॥६॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न
यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो
अंग वेद यदि वा न वेद ॥७॥
(ऋ. अ. ८ । ७ । १७ व.)

अर्थात्—न था, न नहीं था, न तब रज थी, (गुण या परमाणु) न सबसे परे व्योम ही था। विराट् जलराशि थी उस पर आवरण की भाँति (ढक्कन) अंधकार छाया हुआ था। केवल वह गहन गम्भीर ही था ॥१॥

तब न मृत्यु थी, न अमृत ही अवस्था थी। न रात थी, न दिन। न वायु में गति थी, वह 'एक' था, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं था। वह अपने से ही अनुप्राणित था ॥२॥

बस अंधकार था। अंधकार से सब गूढ रहस्यमय था। केवल जल-ही-जल था। कोई आकार नहीं था। तब तपस् से उसमें से वह 'एक' उत्पन्न हुआ ॥३॥

उस प्रथम 'एक' में कामना हुई, (काम) और प्रथम मन में बीज हुआ। कवियों और मनीषियों ने पीछे जाना कि वह कामना ही सत् और असत् को बांधने का कारण हुई ॥४॥

इनको अलग करने वाली रेखा तिर्यक् रूप से फैल गई। फिर उसके ऊपर और उसके नीचे क्या था ? महिमान रेतस् था और इधर स्वच्छंद क्रिया थी, उधर परशक्ति थी ॥५॥

कौन जानता है ? कौन कह सकता है कि यह सब (सृष्टि) कैसे हुई ? यह सृष्टि पहले हुई, देव बाद में आये। वेद को यह सब कैसे ज्ञात हुआ कि यह कैसे हुई ॥६॥

यह सृष्टि जिसने बनाई, वही धारण करता है या धारण नहीं करता ? जो इस परम व्योम को जानता है, वह जानता है, या वह भी नहीं जानता ॥७॥

स्वामी दयानंद ने इसी पद्य का नहीं, प्रायः ही वेदों का प्रचारार्थ अनुवाद किया है। उनमें परम्परा नहीं है, प्रचार है। अतः उनके पूर्वजों के किये अर्थ प्राचीन परम्परा के अधिक अनुकूल हैं। दयानंद का सामाजिक कार्य था, वह उन्होंने किया, परंतु उस कार्य के आवेश में उन्होंने वेद में बहुत से मतलब अपनी ओर से जोड़ दिये हैं। अस्तु !

ऊपर हमने नासदीय सूक्त का तात्पर्य दिया। स्वयं वेदकर्त्ता जानता है कि यह क्या है ? क्यों है ? वेद का ईमानदार कवि इसकी जिम्मेदारी नहीं लेता कि वह जानता है, परंतु दयानंद ने यहां वेद के अनादि होने का इंगित पा लिया है।

वेद की यह अस्ति और नास्ति की द्वन्द्व भावना तत्कालीन समाज के चिंतन में पड़ी गहरी उथलपुथल को दिखाती है जिसे बहुत ईमानदारी के साथ प्रकट किया गया है। परवर्त्ती भारतीय चिंतन पर वेदकवि के इस निर्भीक प्रश्न ने गहरा प्रभाव डाला है। बाद के आलोचक और भाष्यकारों ने अपने-अपने स्वार्थ के अनुसार इसका मतलब निकाला है। संस्कृत के विद्वानों के लिये कभी कुछ कठिन नहीं है। गीता के अनेक अर्थ किये जा चुके हैं।

परंतु निष्पक्ष रूप से देखने पर स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषि ने अभी अपने को छिपाना नहीं सीखा है।

यद्यपि यज्ञ अब 'विश' का नहीं था, वह एक धर्म की रूढ़ि था, परंतु उसमें अभी पराजय नहीं थी। निस्संदेह जहां तक दर्शन की उड़ान है, और सृष्टि के रहस्य को खोज निकालने का प्रयत्न था, यह प्रश्न बताते हैं कि आर्य का चिंतन बहुत गंभीर था और यह कविता संसार की सुंदर काव्यकृतियों में स्थान पाती है। यह एक महान् खोज थी, एक विराट् जिज्ञासा थी। परंतु यह उसका निराकार रूपमात्र था। शून्य हुआ ब्रह्म। पहले ब्रह्म बात करता था, अब वह कहां था ? किसी को दिखता नहीं था। पहले एक छोटा गण था, फिर बड़े-बड़े गण हुए, फिर राष्ट्र बन गया। अब कौन किसे जानता था, परंतु ऋषि केवल कल्पना का प्राणी नहीं था, उसका ब्रह्म क्या करेगा यदि उसका कोई आकार नहीं है, उसका सामाजिक रूप नहीं है और तब विराट् पुरुष का वर्णन हुआ। जैसे-जैसे परवर्त्ती काल में आर्य का ब्रह्म दुरूह होता गया, अर्थात् समाज के विषम हो जाने के कारण सृष्टि-क्रम को समझना कठिन हो गया, और अनार्य अभावात्मक चिंतन—पराजय का चिंतन, गुलाम का चिंतन, अपना प्रभाव बढ़ाता गया, आर्यों का ब्रह्म उपनिषद् काल में लड़खड़ाया

और बौद्ध और जैन विद्रोह में वह खो गया। भक्तिकाल में वह फिर रूप लेकर उतरा। यहां आर्यों के यजुर्वेद के पुरुष सूक्त को देखना आवश्यक है जो प्रकट करता है कि तत्कालीन नासदीय सूक्त का व्यावहारिक पक्ष किस प्रकार समाज को अपने भीतर समेट बैठा। वेदकवि ने अपनी भावना को अपने लाभ के लिये पूरे विश्वास के साथ व्यक्त किया है। परवर्ती यूनान का विचारक अरस्तू भी समाज के एक चौथाई अंग को गुलाम बनाना आवश्यक समझता था। यूनानी की समस्या थी—प्रजातंत्र अर्थात् गण। परंतु उसका गण समस्त प्रजा अथवा जनता का न होकर केवल यूनानी रक्त के लिये था। वह उसी की चिंता करता था। यही हाल हमारे देश के उच्च वर्गों का था। समाज अच्छा है, इसका अर्थ था—उच्च वर्गों के लिए अच्छा है। प्रलय क्या है? प्रलय है वर्त्तमान उच्चवर्ग के स्वार्थ का पलट जाना। अब पुरुष सूक्त को देखना आवश्यक है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रप (।
सभूमि सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांग्रलम् ॥१॥

—वह पुरुष हज़ार सिर, आँख और पाँव वाला है। अर्थात् असंख्यात है। वह सारी भूमि को धारण किये है और वह दस अंगुल में समाया हुआ है ॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

—वह पुरुष ही यह सब कुछ है,जो हुआ और होगा सब वही है। वह अमृत है, ईशान है। वह अन्न है, स्थित है और तिरोहित है ॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

—यह सब उसी की महिमा है, और पुरुष अनंत है। विश्व उसके एक पाद में है, और त्रिपाद में अमृतमय जगत् है। तिगुना है। ज्ञान से तात्पर्य है ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥

—वह त्रिपाद ऊर्ध्व पुरुष व्याप्त है। इसी पाद में स्थित सब फिर-फिर होता है। सब उसी की सामर्थ्य से हुआ है। वह अन्न और अनशन से युक्त है। ॥४॥

तस्मात्* विराडजायत विराजो अधिपूरुषः
सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥५॥

—उससे विराट् जन्मा। उस विराट् से असंख्य प्राणी। वह अलग है, फिर भूमि को धारण भी करता है।

---

* विराट का वर्णन (१) में हो चुका है। उससे विराट क्यों जन्मा? विराट का अर्थ क्या है?

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥६॥

उससे, यज्ञ से सब अन्न पानी मिला, उसने पशु बनाये, पक्षी, अरण्य और ग्राम के प्राणी बनाये ॥६॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छंदासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥

उस सर्वहुत यज्ञ से ऋक्, साम हुए। उससे छंद हुए। उससे यजु उत्पन्न हुआ ॥७॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥

उससे अश्व पैदा हुए। जिनके मुख में दोनों ओर दांत हों ऐसे पशु हुए (ऊंट आदि)। उससे गाय हुई। उसी से अजा आदि भी हुई ॥८॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षनपुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्यो ऋषयश्च ये ॥९॥

उस यज्ञ को ठीक करने वाला मनुष्यों में अग्रणी है। उसी से (यज्ञेन) देव, साध्य और ऋषि सुखी हुए ॥९॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरूपादा उच्येते ॥१०॥

जो वह धारणकर्त्ता पुरुष है उसे भिन्न प्रकार से कल्पित करते हैं। उसके मुख में क्या हुआ। बाहु, उरु और पाद से क्या हुआ, वह कहते हैं। ।१०॥

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥११॥

मुख उसका ब्राह्मण हुआ। बाहु राजन्य क्षत्रिय बनाये गये। जो वैश्य है सो ऊरु तथा पैरों से शूद्र पैदा हुए ॥११॥

उपर्युक्त वर्णन को जैसा है वैसा देखने पर कितना स्पष्ट होता है।

वह पुरुष असंख्यात है। पर वही छोटे से छोटे में भी है। दुनिया उसके एक चरण में है और वह अमृत है। उसके तीन चरण (विष्णु, सूर्य्य) में सब नप जाता है। वह अन्न से युक्त है। भूख से युक्त है। उसी से विराट् जन्मा है। उसी से सृष्टि हुई है। वह अलग है (हो गया है ? पहले नहीं था)*—वह भूमि को धारण करता है। इसके बाद यज्ञ का नाम आता है। (यज्ञ साम्य का प्रतीक था, अग्नि के माध्यम से उत्पादन-वितरण) यज्ञ से अन्न-पानी मिला। पशु मिले। ग्राम और अरण्य का भेद हुआ। फिर उससे गीत हुए। उससे घोड़े हुए। पशु बढ़े। गाय, बकरी का प्रयोग समाज में आ गया। यज्ञ करने वाला मनुष्य अग्रणी हुआ। श्रेष्ठ हुआ। विजेता हुआ। देव, साध्य और ऋषि (तत्कालीन जाति) सुखी

* कोष्ठक मेरे हैं। विशेष ध्यान केन्द्रित करने के लिये।

हुए। अब भिन्न कल्पना हुई। और वर्ण हुए। ११वें मंत्र में मुख्य बात है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य विराट् पुरुष के अंग हैं। शूद्र पैरों से निकला है। तीन वर्ण थे, चौथा बाद में अंगीकृत किया गया।

चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकानकल्पयन् ॥१३॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥
सप्तास्यासन् परिध्यस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि,
धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त,
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥
अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च,
विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति,
तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्,
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति,
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे,
अन्तरजायमानो बहुधा विजायते,
तस्य योनिं परिपश्यन्ति,
धीरास्तस्मिन् हतस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वोयोदेवेभ्यो जातोनमोरुचाय ब्राह्मये ॥२०॥
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा, अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य, देवा असन्वशे ॥२१॥
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे,
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम ।

इष्णन्निषणामुं म इषाण,
सर्वं लोकं य इषाण ॥२२॥ (यजुर्वेद, ३१ अ०)

श्री सम्पूर्णानंद ने पुरुषसूक्त पर पुस्तक लिखी है। उन्होंने ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों के ही पुरुषसूक्तों को लिया है। ऋग्वेद में १६ मन्त्र हैं। यजु में २२। ६ अधिक हैं। क्योंकि इसमें यजु का नाम है यह यजुर्वेद के काल में बनी रचना है। इसे केवल वही मानने से इंकार करेंगे जो वेद को ईश्वर-कृत मानते हैं कि वेद तो पूरा-का-पूरा पहले से था। फिर भी प्रश्न है कि अथर्ववेद को क्यों नहीं गिनाया गया? यह वर्णन बाद में संपादन करते समय वेदव्यास ने ऋग्वेद में भी जोड़ दिया। ऐसी दुहराहट कई जगह हुई है।

अब संक्षेप में इसका अर्थ दिया जाता है :

मन से चन्द्रमा तथा आँख से सूर्य पैदा हुआ। कानों से वायु, प्राण, मुख से अग्नि॥ इस पुरुष से अंतरिक्ष नियत है। और (शीर्ष) सामर्थ्य से द्यौ आदि उत्पन्न हुए हैं। पैरों से भूमि तथा दिशा, श्रोत्र से लोकों को बनाया॥

पुरुष द्वारा हविष द्वारा देवों ने यज्ञ बढ़ाया। (सृष्टिरूपी यज्ञ में) बसन्त आज्य (घी) हुआ। ग्रीष्म ईंधन और शरद हवि हुई॥

उसने सात परिधि रचीं। २१ समिधा बनाईं। देवों ने उस यज्ञ को बढ़ाया। और पुरुष पशु की बलि दी।

यज्ञ से देवों ने यज्ञ बढ़ाया। वह प्रथम धर्म में स्थित हुए। वे स्वर्ग की महिमावान् हैं। वहीं पुरातन साध्य, देव आदि हैं।

रस के संभृत से पृथ्वी बनाई। वह विश्वकर्मा प्रथम हुआ। त्वष्टा ने उसे रूप दिया। तब मर्त्यों के अग्र में देवों को जानो॥

इस महान् पुरुष को जानो। मैं जानता हूँ। वह आदित्यवर्ण है, तम से परे है। उसको जानने से मृत्यु छूटती है। इस मार्ग के बिना और कोई मार्ग नहीं है॥

प्रजापति गर्भ में रहता है, अंतर जायमान है, बहुधा जन्मता है। धीर उसकी योनि (रूप) को देखते हैं। उसमें भुवन और विश्व स्थित हैं।

जो देवों को प्रकाशस्वरूप है, जो देवों का पुरोहित है, जो प्राचीन देवों से प्रत्यक्ष होता है। (जातो—जन्मता है) उस ब्रह्म को हमारा नमस्कार है।

वह ब्रह्म आनंददाता है, पहले ही देवों ने उसे कहा था। जो ब्रह्म को जानता है, वही देव वश करता है अर्थात् उसके वश में होते हैं—मन इन्द्रिय आदि॥

तुम्हारी श्री और लक्ष्मी स्त्री हैं। दिन-रात पार्श्व हैं। नक्षत्र रूपस्थानी हैं। सूर्य के समान व्याप्त रूप है।

हम पर दया करो! दया करो! दया करो! सर्व लोकों पर दया करो!!

यजुर्वेद का ४०वां अध्याय वही है जो ईशावास्योपनिषद् कहलाता है। यह दर्शन त्रेता के अंत का दिखाई देता है। अथर्व द्वापर में बना, यजु त्रेता में, ब्राह्मण, आरण्यक,

उपनिषद् बाद में बने। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि रेखा खिंच गई। हम क्रम को उनके अधिक रूप कब बने उससे लेते हैं। कुछ ब्राह्मण पहले बने कुछ बाद में। कुछ बहुत ही परवर्त्ती उपनिषद् हैं। अब ईशोपनिषद् को देखना आवश्यक है क्योंकि वह तत्कालीन समाज के चिंतन का प्रतीक है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥१॥

जो है वह ईश है। जगत् में जो है वह उसी से आच्छादित है। तू त्याग से पदार्थों को भोग। मत ललचा। किस का धन है? (सब उसका है)।[1]

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत्ँ समाः
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥१२॥

ऐसे ही कर्म करता हुआ सौ बरस जीने की इच्छा करे। (कर्त्तव्य न छोड़े) ऐसे तुझ नर में कर्म लिप्त न होगा। इससे अन्यथा नहीं है (कर्म कर पर उससे अलग रह। किये जा।)

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

वे मरकर असूर्य्या नाम अन्धेरे तमसावृत लोक में जाते हैं जो आत्महनन करने वाले जन हैं।

अनेकदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो
मातरिश्वा दधाति ॥४॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥
यस्तुसर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥६॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥
स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर
ँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः
याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः ॥८॥

---

१. अब यह कोष्ठक मेरे हैं।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमोयउविद्याया ँरताः ॥९॥
अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥
विद्यांचाविद्यांच यस्तद्वेदोभय ँसह ।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥११॥
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या ँरताः ॥१२॥
अन्यदेवाहुः
सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम
धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥
सम्भूतिंच विनाशंच यस्तद्वेदोभय ँसह ।
विनाशेन मृत्यु तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥१४॥
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्मायदृष्टये ॥१५॥
पूषन्ने कर्षे यम सूर्य्य
प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते
पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः
सोऽहमस्मि ।१६॥
वायुरनिलममृतमथेदं
भस्मान्त ँ शरीरम
ॐ क्रतो स्मर कृत ँस्मर
क्रतो स्मर कृत ँस्मर ॥१७॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ॥१८॥

अर्थात् वह अचल तथा एक है। मन से भी वेगवान् है। उसको देव भी नहीं पहुँच पाये। वह आगे गया है। दौड़ते हुए अन्यों को वह लांघ जाता है। पर ठहरा हुआ लगता है। वह वायु तथा जल अर्थात् जीव और कर्म को धारण करता है। वह हिलता है, नहीं हिलता; दूर है, पास है। वह सब के अंतर में है वह सब के बाहर है। जो सब भूत को

आत्मा में ही देखता है, वह सर्वभूत में आत्मन् देखता है, अतः किसी से घृणा नहीं करता ।। जिसे सब भूत में आत्मा का ही ज्ञान हो गया, उसे मोह, शोक कहां, वह तो 'एक' को ही देखता है ।। वह सब ओर दीप्तिमान, कामरहित, अव्रण, नाड़ीहीन, शुद्ध है, पाप से नहीं बिंधा हुआ है। उस कवि, मनीषी, सर्वत्र प्रगट, स्वयंभू ने, निरंतर रहने वाले वर्षों के लिये ठीक-ठीक पदार्थों को रचा। वे घोरतम में गिरते हैं जो अविद्या की उपासना करते हैं। जो ही विद्या में रत हैं उनसे भी बढ़कर ही वे अंधकार में जाते हैं ।। विद्या से अन्य अविद्या से अन्य फल है। ऐसा धीरों से सुना जिन्होंने हमें वह भेद बताया ।। विद्या, अविद्या को, जोड़े को जो इकट्ठा जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को तरकर विद्या रूपी अमृत प्राप्त करता है। घोर अंधकार में वे जाते हैं जो प्रकृति को उपासते हैं। जो ही आत्मारत हैं उससे ही अधिक अंधकार में जाते हैं ।। आत्मज्ञान से अन्य फल कहते हैं, प्रकृति से अन्य फल कहते हैं। ऐसा सुना। आत्मा, प्रकृति के जोड़े को जो जानता है, वह विनाश से मृत्यु को तरकर आत्म ज्ञानामृत पाता है ।।

सुवर्णमय पात्र से सत्य का मुख ढंका है। हे पूषन् ! तू सत्यधर्म दिखाने को उसे उठा दे।

पूषन् ! एकद्रष्टा ! यम ! सूर्य्य ! प्रजापति ! किरणों को दूर कर, तेज एकत्र कर, जो तेरा परम कल्याणमय रूप है, उस रूप को मैं देखूँ, जो यह, यह पुरुष है, वह मैं हूँ।

वायु, अनिल, अमृत हो, और यह शरीर भस्म हो जाये। हे कर्म करने वाले ! ॐ का स्मरण कर। किये को याद कर। हे क्रतो याद कर। किये को याद कर।

अग्नि ! हमें ऐश्वर्य्य के लिये सुपथ से ले चल। देव ! तू विश्वकर्म जानता है। हमसे कुटिल पाप दूर कर। तुझे अनेक बार नमस्कार वचन समर्पण।

अब यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि जो आर्य प्राचीनकाल में देवताओं से धन दो, धन दो, यही चिल्लाकर माँगा करता था, अब वह धन के प्रति उदास हो रहा है। अब उसे धन की उपेक्षा करते हुए देखा जाता है। वह कहता है तू त्याग से पदार्थों को भोग। पदार्थों का भोग तो त्याग नहीं है। अब यह विरोध क्यों है ? इसका अर्थ है कि जो मिले वही पाकर संतोष कर ले। क्योंकि साथ ही यह भी कहा है कि लालच मत कर। पहले जो आर्य कहता था कि हे इन्द्राग्नी, शत्रुओं का धन भी हमें दे दे, वही अब कहता है कि लालच मत कर। क्योंकि किसका धन है ? किसी का नहीं है। जो कुछ है परमात्मा का है। परमात्मा के धन को देखकर लालच मत कर, जो है उसे भोग परंतु त्यागमय समझकर, अपना उसे मत समझ। यह अद्भुत विरोध क्यों है। इसका स्पष्ट कारण है कि तब धन की इच्छा थी। सब चाहते थे। किंतु अब धन कुछ के पास है और कुछ के पास नहीं है। जिसके पास है वह तपोवन में संसार की मर्यादा और सम्मान ग्रहण करके कहता है दूसरों का धन मत ले। क्योंकि जो धनी का धन है, वह उसका नहीं है, वरन् भगवान् का दिया धन है, अर्थात् भाग्य से मिला है, अन्यथा कुछ के पास ही धन क्यों होता ? सभी धनी

क्यों न होते ? तब हमने देखा कि संपत्ति के व्यक्तिगत अधिकारों ने यहां नये प्रकार के दर्शन को जन्म दिया है ।

और फिर कहा है, कि कर्म कर, सौ बरस जी, पर कर्म से अलग रह । गरीब ने पूछा कि जब भाग्य की बात है तो मैं क्यों जिऊँ ? धनी ने कहा कि जी और सौ बरस तक काम किये जा, यह मत समझ कि तू कर रहा है । करने वाला और है, तू तो सिर्फ़ बीच का एक माध्यममात्र है ।

जो आत्महत्या करते हैं वे नरक में जाते हैं ।

यहां कर्म, नरक, और लिप्तालिप्त उठ खड़े हुए हैं । ब्रह्म का धन से जब सम्बन्ध हुआ तब वह समाज से गायब हो गया और इसके बाद गीता का कर्मवाद, छांदोग्य उपनिषद् का पुनर्जन्मवाद, सब बाद में बढ़ते चले गये । और आगे चलकर ऋषि ने कहा है कि सबको अपना जैसा मान । यह 'अपना जैसा' उसी समाज की वास्तविकता है (?) जिसमें चातुर्वर्ण्य का दुर्दंभ था ? इसका विरोध द्वापर में भीषण होकर फूट पड़ा । तब ब्राह्मण चिल्लाया—ब्रह्म ननाशहा । अर्थात् ब्रह्म नष्ट हो गया । ब्राह्मण क्षत्रिय अधिकार नष्ट हो गये । समाज में कलि आ गया और यह ब्रह्म नष्ट हो गया । परंतु नष्ट होने पर भी मिट नहीं सका । उसका रूप बदल अवश्य गया और वह उपनिषदों में फिर उठा, किंतु अब वह विवेक के तीक्ष्ण खड्ग के नीचे था ।

इस समय प्रकृतिवादी, आत्मवादी परस्पर संघर्ष कर रहे थे, ऐसा प्रतीत होता है । उपनिषद् में ज्ञात होता है कि दार्शनिक परस्पर लड़ने लगे थे (ज्ञान के तार्किक क्षेत्र में), किंतु उपनिषद में जीवन के प्रति निराशा नहीं है । अभी उसमें वही ओज है जो वेद में मिलता है : सौ बरस जीऊँ—

जीवेम शरदः शतम्,

नन्दामि शरदः शतम्,

पश्येम शरदः शतम् इत्यादि ।

परवर्तीकाल में जीवन भार हो गया और योग की नीरसता ने संसार से घृणा करा दी । अभी बूढ़े वन में रहते थे, तब युवक भी संसार छोड़ने लगे । अभी उस निराशा का कारण उत्पन्न नहीं हुआ था ।

जहां प्राचीनकाल में पूर्वजन महान् कार्य कर गये हैं, जहां देवों ने असुरों को हराया था, जो गाय, अश्व तथा अन्न को बढ़ाते थे, उनको धारण करने वाली यह पृथ्वी हमें समृद्धि और शक्ति दे (अ० वे० १२. ५.) ।

हे महान् ! अग्नि ! तू सबको सम करता है । तू पृथ्वी पर वाणी में व्यक्त होता है । धन देता है । (हम तुझे नमस्कार करते हैं) तू धन से भर दे । (ऋ० वे० १०, १९१, १) ।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं संवो

मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना
उपासते ॥२॥

मिल कर बढ़ो। इकट्ठे होकर तप करो। एक राय हो। देवों ने पूर्वकाल में यही किया था, ऐसे ही मेरी उपासना की थी।

संमानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्
समानं मंत्रमभिमंत्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

मिलकर मन्त्र (सलाह) हो। मिलकर समिति हो। समान सलाह राय हृदय हो। समान मंत्र अभिमंत्रित करता हूँ। समान आनंद के कारण हो।

मैं समान आनंद के कारण देता हूँ।

समान ध्येय, समान हृदय, हो। समान मन हो। समान जीवन की प्रगति हो।

(४)

एक हृदय, एक राय, द्वेष से दूर, मैं बनाता हूँ, तुम्हारे लिये, एक दूसरे को। हर तरह से एक दूसरे से प्रेम करो, जैसे नये बछड़े से गाय प्रेम करती है।

(अ० वे० ३।३०।१)

समान तुम्हारा अन्न भाग हो, पीना हो, समान जूआ ढोओ। एक समानता से मैं तुम्हें जोतता हूँ। ऐसे मिलकर (उपासना) करो जैसे पहिये की धुरी में सब अरे मिल जाते हैं ॥६॥

जीवन का एक ध्येय हो। परस्पर सहायता हो। जैसे देवों में थी। अमृत की रक्षा करो। प्रातः सायं सौमनसः (मित्रता) से रहो ॥७॥

तुम्हारा तन-मन एक होकर काम करे। एक ध्येय हो। भग और ब्रह्मणस्पति (देवता और पुरोहित या धन और ब्राह्मण या सर्वशक्तिमान भगवान्) ने तुम्हें जीवन में एकत्र किया है। (अ० वे० ६।७४।१)

जैसे उग्र शक्तिमान् निडर आदित्य, वसु, मरुत् पहले हुए थे, उसी प्रकार तीनों काल में निडर हो। इन जनों को जीवन में एकता के सूत्र में बांधो ॥३॥

किंतु यह महानता आर्यों में नहीं रह सकी और समय तभी पतित हो गया ऐसा विद्वानों को बार-बार कहना पड़ा।

प्राचीनकाल में आर्यों में युवक और युवतियां दोनों जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहनते थे। स्त्रियों में कुछ यज्ञोपवीत पहनती थीं। कुछ नहीं भी पहनती थीं। पराशर माधव तथा हारीत स्मृति में स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये इसका उल्लेख है।

प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयञ्जपेत ॥

तथा——

स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च ।।

बाण ने महाश्वेता को यज्ञोपवीत धारिणी लिखा है (कादम्बरी) चूडामणि चंद्र-मयूखजालेनेव मण्डलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम् ।।

कालांतर में स्त्रियों से जनेऊ छीन लिया गया और उनके लिये वेद का द्वार बन्द हो गया। इस प्रकार स्त्री को शूद्र बना दिया गया।

ऋग्वेद के अंतिम काल में राजा और राष्ट्र का उल्लेख प्रारंभ हो गया है :

राजा राष्ट्रानाम् पेशो नदीनामनुत्तमस्मै
क्षत्रं विश्वायु । ७।३४।११.

अर्थात् राजा विभिन्न धंधों के लोगों को अपने में ऐसे एकत्र करता है जैसे अनेक अलग-अलग नदियों को समुद्र।

इसके बाद यजुर्वेद १७।३१ में उल्लेख है—

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्मा—
कमन्तरम्बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या
चासुतृपउक्थशासश्चरन्ति ।।

अर्थात् तुम उसे नहीं जानते जिसने यह सब बनाया है। वह तो तुम्हारे भीतर है। जिसे तुम खोज रहे हो वह उससे भिन्न है। अलग-अलग तरह की बात कहने वाले बहुत हैं पर वे स्वयं नीहार से ढंके हुए अर्थात् कुहरे से आवृत्त के समान है।

इससे स्पष्ट होता है कि आर्यों में परस्पर दार्शनिक विभेद हो चले थे।

राजा पर ऋग्वेद १०.१७३. में उल्लेख है :

आत्वाहार्षमत्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः
विशस्त्वा सर्वा वान्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ।।१।।

हे राजा। मैंने तुझे चुना है। आपस के बीच में। (हमीं लोगों में से)। ध्रुव हो। ठहर। सारा विश् तुझे पसंद करे, चाहे। तेरे कारण राष्ट्र पतित न हो।

स्पष्ट है कि विश् का सम्मान रखा गया है। चुनाव होता था। राष्ट्र का उदय इस प्रकार हुआ।

इहैवैधि मापच्योष्ठाः
पर्वत इव विचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह
राष्ट्रमु धारय ।।२।।

---

१. एक्लीशियाडिवीनिया—वायस ऑफ़ द वेदाज़—भूमानंद सरस्वती नई, दिल्ली—१९३६—पृ० ७८.

इसमें (राष्ट्र में) गिर मत (हार मत)। पर्वत के समान अचल हो। इन्द्र के समान ध्रुव हो, ठहर, इस राष्ट्र को धारण कर।

इममिन्द्रो अदीधरद्ध्रुवं
ध्रुवेण हविषा।
तस्मै सोमो अधि
ब्रवत्तस्मा उब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

इसमें जो ध्रुव है, ध्रुव हविष से (जो दिया जाये अर्थात् कर द्वारा) धारण कर। यानी कर से धारण कर, ध्रुव हो। इसके लिये सोम, ब्रह्मणस्पति से सलाह ले और कर। अर्थात् मंत्रियों की सलाह ले। (ब्रह्मणस्पति यज्ञ में प्रमुख होता था) यहां राजा अकेला नहीं है। उसे दूसरों से राय लेकर काम करना आवश्यक है।

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी
ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद्ध्रुवो
राजा विशामयम् ॥४॥

जैसे द्यौ, पृथ्वी, पर्वत, ध्रुव हैं, ध्रुव है यह विश्व और जगत्, वैसे ही राजा विश् में ध्रुव हो।

ध्रुवं ते राजा वरुणो
ध्रुवं देवो बृहस्पतिः
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च
राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥

वरुण, देव, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि, ध्रुव हैं, वैसे ही राजा तू ध्रुव हो; ये सब ध्रुव हो राष्ट्र धारण करें।

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि
सोमं मृशामसि।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो
बलिहृतस्करत् ॥६॥

ध्रुव हविष (कर) से (लेकर) ध्रुव न्याय कर। और केवल विश् से कर ले। यहां कर देने वाले को बलिहृत् कहा गया है। हृत् माने मर्जी से लिया हुआ नहीं है। अर्थात् पहले लोगों ने इसका विरोध किया होगा। केवल विश् से अर्थात् साधारण प्रजा से और वह भी अपनी। अर्थात् अभी राष्ट्र छोटा था। उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि सबसे कर ले सके।

यह स्पष्ट बताता है कि विश् में चुनाव से राजा आया और उसने राष्ट्र धारण किया। उसके कुछ मन्त्री थे। वह साधारण प्रजा से कर लेता था। यह राष्ट्र का उदय हुआ।

और भी—

अर्थववेद ८.१० में विकास पर प्रकाश डाला गया है :

विराड्वा इदमग्र आसीत्तस्या

जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥१॥

यहां श्री भूमानंद सरस्वती का किया हुआ अर्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है।[1] इस प्रकार है—

अग्रे इदम् (जगत्) विऽराट् वै आसीत्। तस्याः (विराजः) जाताया इयम एव इदम् भविष्यति इति सर्वम् अबिभेत्।

विरा = (वि+√राज्+क्विप=विगतः राट् यस्याः) = वह मनुष्यसमाज जहां राजा नहीं था। वै=निश्चय ही। इदम्=यह (संसार), अग्रे=(प्राचीनकाल में) प्रारंभ में। आसीत्=था। तस्याः=उससे (विराट् से संबंध=यह तात्पर्य है) जातायाः=(उत्पन्न हुआ)हुआ, जब वह दिखाई दिया, जब वह प्रकट हुआ। सर्वम्= सारा जगत् या मानव समाज। अबिभेत्=डर गया। इयम्=यह। एव=केवल, सिर्फ़। इयम्०—इति=कि यह हालत सारी दुनिया पर फैल जायगी और सब कुछ वश के बाहर हो जायेगा।

प्रारंभ में मनुष्यसमाज में कोई राजा नहीं था जो एकत्र कर सके, राज्य कर सके। जब मनुष्यों को यह ज्ञात हुआ तो वे डर गये कि यह हालत सब जगह फैल जायगी और कुछ भी वश में नहीं रहेगा।

सोदक्रामत्सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥२॥

सा उतऽअक्रामत (च) सा गार्हऽपत्ये निऽअक्रामत्। उदक्रामत् (उत+√क्रम)= उठे। अपने आप को उठाया। गार्हपत्ये (गृह+पति+ञ्य) =संगठित किया परिवार को एक प्रधान के आधीन, गृहशासन हुआ। न्यक्रामत्=रूप बदल गया।

यह राजाहीन व्यवस्था बेहतर हुई और उसने अपना रूप बदला कि हर एक कुटुंब एक प्रधान के आधीन हुआ और वे अलग-अलग एकत्र हुए।

गृहमेधी गृहपतिभवति य एवं वेद ॥३॥

यः एवम् वेद स गृहऽमेधी (भूत्वा) गृहऽपतिः भवति। गृहमेधी(गृह+√मेध+ णिनि) =जो गृहकाज का प्रबन्ध करता है। गृहपति=घर का प्रधान (मालिक)।

जो यह सिद्धान्त जानता है, वह अपने परिवार का इन्तज़ाम करेगा (ठीक से)और इस प्रकार परिवार का प्रधान होगा (मालिक होगा)।

सोदक्रामत्साहवनीये न्यक्रामत् ॥४॥

सा उत ऽअक्रामत् (च) सा आऽहवनीये निऽअक्रामत्। आहवनीये (आ+√हु दानादनयोरादाने चेत्येके+अनीयर्)=पारस्परिक सामाजिक आदान-प्रदान।

यह और बढ़ा और पारस्परिक धार्मिक, सामाजिक और अन्य आदान-प्रदान

---

१. एकलीशिया डिवीनिया पृ० १२३.

(मनुष्य परिवार के) हुए (रूप बदला)।

यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥५॥

अस्य देवऽहूतिम् देवाः यन्ति। य एवम् वेद (सः) देवानाम् प्रियः भवति। यन्ति= जाना, उपस्थित होना। देवहूतिम (देव+√हु+क्तिन्)=देव[1] को दिया आमंत्रण। प्रियः=प्रिय, मित्र। देवाः= देव लोग।

देव उसका सम्मान करते हैं जो संगठन के रहस्यों को जानकर आव्हान करता है और उन्हें विशेष अवसरों पर बुलाता है क्योंकि वह देवों से मित्रता करता है।

सोदक्रामत्सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥६॥

सा उतऽअक्रामत् (च) सा दक्षिणऽअग्नौ निऽअक्रामत। दक्षिणाग्नौ (दक्षिण+अग्नि)= और भी उन्नत बढ़े हुए सामाजिक संगठन।

वह और बढ़ा (सामाजिक संगठन में) और उसका रूप बदला।

यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥७॥

यः एवम् वेद सः यज्ञऽऋतः दक्षिणीयः वासतेयः भवति। यज्ञर्त (यज्ञ+√ऋ+क्त) यज्ञ में रत। दक्षिणीयः[2]=सम्मान योग्य। वासतेयः (वसति+ढञ्)=दूसरों को शरण देना।

जो इस सत्य को जानता है, वह यज्ञ (यज्ञ मेरा अर्थ है। भूमानन्द ने 'धार्मिक कृत्य' अर्थ दिया है।) में रत होता है अतः सम्मान पाता है। वह दुःखी और जरूरतमन्दों का शरणदाता भी होता है।

सोदक्रामत्सा सभायां न्यक्रामत् ॥८॥

सा उतऽअक्रामत् (च) सा ससभायाम् निऽअक्रामत। सभायां=ग्राम सभा।

उससे सभा बनी, रूप बदल गया।

यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवम् वेद ॥९॥

यः एवम् वेद सः सभ्यः भवति, अस्य सभाम् (जनाः) यन्ति। सभ्यः (सभा+यः)= चतुर वक्ता, या सभा का सदस्य।

जो इस सत्य को जानता है वह सभ्य बनता है और सभा में उपस्थित होकर अन्यों पर प्रभाव डालता है।

सोदक्रामत्सा समितौन्यक्रामत् ॥१०॥

सा उत्ऽअक्रामत (च) समऽइतौ सा निऽ अक्रामत्। समितौ (सम्+√इ+

---

१ देव का अर्थ विद्वान किया गया है, हम देव को देव ही रखते हैं। इससे स्पष्ट होगा कि 'विद्वान्' परम्परा को भूला हुआ परवर्त्ती रूप है।

२ नल के साथ दक्षिणाग्नि का उल्लेख हुआ है। यह भी क्या सम्मानसूचक शब्द है? या अन्य विद्वानों के अनुसार दक्षिण की अग्नि ही दक्षिणाग्नि है? क्या यह देवों का दक्षिण ओर आना प्रकट करता है?

वितन)=राजा के सलाहकार।

और बढ़कर समिति बनी, रूप बदल गया।

यन्त्यस्य समिति सामित्यो

भवति य एवम् वेद ॥११॥

यः एवम् वेद (सः) साम्ऽइत्यः भवति (च) अस्य सम्ऽइतिम् (जनाः) यन्ति। सामित्यः (समिति+रायः)=सलाह देने योग्य समिति सदस्य।

जो यह जानता है वह समिति का सदस्य बनने योग्य होता है।

सोदक्रामत्सामन्त्रणेन्यक्रामत् ॥१२॥

सा (ततः) उत्ऽअक्रामत्। (उत्क्रम्य च) आऽमन्त्रणे निऽअक्रामत्। आमन्त्रणे (आ+√मन्त्र+ल्युट्)=मंत्रियों की समिति है।

वहां से बढ़कर वह आमन्त्रण अर्थात् मंत्रियों की समिति हो गई और रूप बदला यहां राजा का प्रारंभ हो गया।

यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणी यो भवति य एवं वेद ॥१२॥

यः एवम् वेद (सः) आऽमन्त्रणीयः भवति तस्य (च) आऽमन्त्रणम् (राजा विद्वांसः च) यन्ति। आमन्त्रणीयः (आमन्त्रण+छ)=योग्य मंत्रियों में बैठने योग्य। यन्ति=आना, उपस्थित होना।

जो इसे जानता है वह (राजा की) मन्त्री सभा में बैठने योग्य होता है। और उसकी राय के लिये उसका सम्मान होता है।

इस विकासक्रम से हम त्रेता के अंत तक पहुँच जाते हैं। कितना स्पष्ट कहा गया है। भूमानंद जी धार्मिक व्यक्ति हैं अतः जैसा उन्होंने लिखा है उसमें पश्चिमी प्रभाव नहीं देखना चाहिये। वस्तुतः वास्तविकता यही थी। हमें गौरव करना चाहिये कि हमारे पूर्वज इतने ईमानदार थे। परवर्त्ती संस्कृतज्ञों ने उन्हें विकृत करके उनकी महानता को अपने स्वार्थ के लिये तोड़-फोड़कर उनका जो अपमान किया है इतिहास उन्हें इसके लिये कभी भी क्षमा नहीं करेगा। यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है। पुरुषसूक्त में आता है=

ततो विराडजायत विराजोअधिपूरुषः

क्या यहां विराट् का अर्थ वही है जो भूमानंद ने दिया है—

वि+√राज्+क्विप=विगतः राट् यस्याः (वह समाज जिसमें राजा नहीं था)

अब देखना चाहिये।

पुरुष असंख्यात् था। वह था वह होगा। वह अनंत अमृत सर्वव्याप्त था। वह अन्न और अनशन से युक्त था=वह कभी खाना पाता था, कभी भूखा रहता था। अर्थात् अन्न पूरा नहीं था,। कम खाना था। अर्थात् समाज में उत्पादन की कमी थी। उससे विराट् (राजाहीन समाज) जन्मा। ठीक है। उससे अधिपुरुष। असंख्य प्राणी। इस के बाद यज्ञ आया। अर्थात् अग्नि के मिलने से सब इकटठे हुए, सब मिलकर खाना इकट्ठा करने लगे

और खाने लगे। यज्ञ से पशु मिला। पशु से ग्राम की स्थापना प्रारंभ हुई। यज्ञ से गीत बने। यज्ञकर्त्ता अग्रणी देव थे। अर्थात् वे जो अपने आसपास के सब मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हुए। मुखी हुए। अब वह जो पुरुष था नये समाज में उसकी भी भिन्न कल्पना होती है। और फिर भारत की पृथ्वी पर अखंड घोष करने वाली वह पंक्तियां हैं जिन्होंने शताब्दियों तक राज्य किया है : ब्राह्मण उसका मुख था—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् ······ ।

और महाभारत के बाद इसको बार-बार चुनौती दी जाने लगी।

इस प्रकार हमने समाज का विकास देखा।

यह बर्बर युग का अन्त है। राष्ट्र अब बढ़ने लगे।

पौराणिक कथन है कि रावण और राम का युद्ध महाभारत युद्ध से ५०० बरस पहले हुआ। पार्जिटर ने अपनी राजवंशतालिका में त्रेता में १५ पीढ़ी दी हैं। इनका समय हुआ २५×२०=५०० ।

२७०० ई० पू० त्रेता का प्रारम्भ माना था। उसमें से ५०० घटाने पर=२२०० ई० पू०। यह त्रेता का अंत हुआ। संक्षेप में इस युग का नक्शा ऐसा प्रतीत होता है :—

८
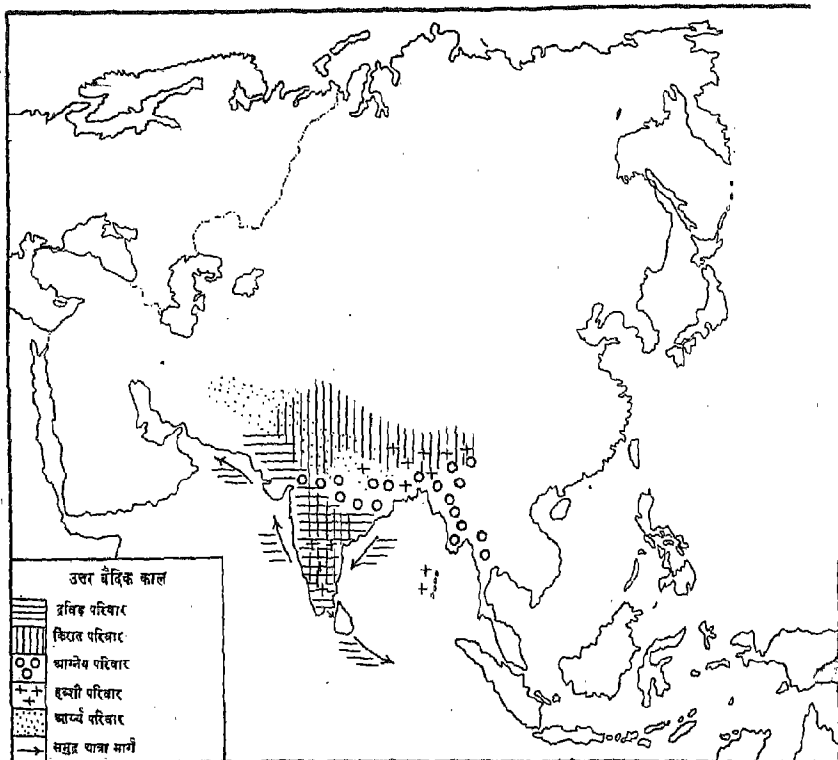
द्वापर युग

महाभारत युद्ध काल

(अथर्ववेद–ब्राह्मण–आरण्यकों का समय)

देव युग—मातृसत्ता से पितृसत्ता; सामूहिक गण यज्ञ से अनेक गण यज्ञ; सामूहिक उत्पादन वितरण से ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ग का विकास; जंगली से बर्बर युगका इतिहास था।

सत्य युग बर्बर युग का पूर्ण विकास; पुरुषमेध से दास प्रथा, ब्राह्मण की जगह क्षत्रिय शक्ति, लूट का प्रारंभ था। व्यक्तिगत संपत्ति से 'विश' का उदय था। आर्य्यों में आपस में धनी दरिद्र का भेद था।

त्रेता क्षत्रिय ब्राह्मण मेल का विश और शूद्र के विरुद्ध युग था। अश्वमेधों का युग था। बड़े गणों से राष्ट्र बने। स्त्री संपत्ति हो गई। आर्य्य राज्य बसे। दास शूद्र का युग था। शूद्र के संघर्ष का युग था।

अब द्वापर युग है। यह उच्च वर्गों के आंतरिक विरोधों और दासप्रथा के द्वारा उत्पन्न विषमता के कारण तत्कालीन समाज व्यवस्था का गृह युद्ध में—संपत्ति-असंपत्ति के रूप में विभाजित होकर गिरने का युग है। इसके बाद कलि प्रारंभ हुआ। यह एक बहुत जबर्दस्त हलचल का समय है।

त्रेता के बाद अकाल पड़ा और द्वापर का जन्म हुआ।[1] और हम ऐसे युग में आ पहुंचे जो महान् घटनाओं से आक्रांत है। इस युग में अथर्ववेद तथा कई ब्राह्मण बने। महाभारत युद्ध हुआ। आर्य्य, अनार्य्य, दास, शूद्र गण, राज्य, राष्ट्र तपोवन दर्शन युद्ध के बाद की हलचल, ब्राह्मण का गंभीर चिंतन, जातीय घृणा इत्यादि अनेक ऐसी बातें हैं जिनका विस्तार से विवेचन आवश्यक है। इस सबका विशेष आधार महाभारत है जिसे पंचम वेद भी कहा गया है। महाभारत आकाश और समुद्र की भांति पूर्ण है। इसमें इतना भंडार है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है, यद्यपि अनेक स्थानों पर क्षेपक हैं और उन्हें निकाल कर अलग रखना हमारा आवश्यक कार्य है।

अनेक विद्वानों ने इस महासमुद्र में गोते लगा कर अनेक मोती निकाले हैं और बिखरा दिये हैं। किंतु इनका संबद्ध रूप उपस्थित नहीं किया गया है। जैसे महाभारत काल में सूर्य्यध्वज, रोचमान, अंशुमान सूर्य्योपासक थे। अर्वावसु को सूर्य्य का गुप्तभेद ज्ञान था।[2]

---

१ महाभारत। विश्वामित्र चांडाल कथा। शांति पर्व।

२. एपिक मायथॉलॉजी पृ० ८८

विदुर के मरने पर उन्हें जलाया नहीं गया था। उनकी माता का नाम परासवी था। जयनाथ-पति का मत है परासवी शायद पारसी थी।[१] राजा उपरिचर के समय से इन्द्रध्वज यज्ञ में गाड़ा जाने लगा था।[२] उपरिचर का पाँचरात्र से भी संबंध है। ऋषि, चारण, चर, तुषित, गंधप, स्पर्शासन, चित्यद्योत तथा आभासुर, लेख इत्यादि कुछ उपासना पद्धतियां थीं।[३]

तथ्यों का ऐसा ही भंडार मिलता है। इनमें अनेक में काव्य और गल्प का भी सम्मिश्रण हो गया है। इस काल के पात्र भारत में अपनी महानता के लिये प्रसिद्ध हो गये हैं। लोग उनपर श्रद्धा करते हैं। इसलिये परवर्त्ती क्षेपककारों ने अपने-अपने मत और सिद्धांतों को महाभारत से संबद्ध कर देने का प्रयत्न किया है। आर्य्य के अतिरिक्त महाभारत में अनेक जातियों का उल्लेख है।

महाभारत में मेकल, द्रविड, लाठ, पुण्ड्र, कणवशिरस, चौण्डिक, दरद, दख, चौर शबर, बर्वर, किरात, यवन, तथा अन्य अनेक जातियों का वर्णन है जो पहले क्षत्रिय थीं, परन्तु ब्राह्मणों के क्रोध के कारण शूद्र करार दे दी गईं।[४]

किरात, दरद, दख, शूद्र, वैयामक, औदुम्बर, दुर्विभाग, पारद, वाह्लिक, काश्मीर कुमार, घोरक, हंसकयन, शिवि, त्रिगर्त, यौधेय, मद्र, कैकेय, अम्बष्ठ, कौकुर, तार्क्ष, वस्त्रप पहलव, वशात्या, मौलेय, क्षुद्रक, मालव, पौंड्रय, सानवत्य, गय, इन अच्छे क्षत्रियों का महाभारत में वर्णन है। यह सेना में थे और इनके राजाओं ने युधिष्ठर को असंख्य धन दिया था। यहां क्षत्रिय का अर्थ बहुत साधारणीकृत है।[५]

किरात पूर्वी लोग थे। महाभारत में भगदत्त की सेना में सोने से लदे हुए चमचमाते आच्छादन वाले चीन तथा किरात योद्धा थे। प्राग्ज्योतिष के राजा पर जब अर्जुन ने हमला किया तब उसकी ओर से अर्जुन के विरुद्ध चीन और किरात लड़े।[६]

महाभारत से ज्ञात होता है कि किरातों में भी अनेक कबीला जातियां थीं। कृष्ण ने जब गहरे रंग के चर्मों में सज्जित पृथ के पुत्रों को देखा तो अत्यंत क्रुद्ध होकर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि इन्द्रप्रस्थ में जब राजसूय यज्ञ हुआ था तब उन्होंने (कृष्ण ने) मुख्य देशों के समस्त राजाओं, समुद्रतीर, सीमाप्रांतीय तथा पहलव, दरद तथा किरातों की अनेक जातियों के शासकों को यवन तथा चक्र शासकों के साथ देखा था। इन्होंने उस स्मरणीय अवसर पर अनेक काम किये थे। जब युधिष्ठिर सभा में गये थे तब पुलिंग और सुमन नाम के दो किरात राजा भी वहीं सेवा में उपस्थित थे।[७]

---

१. इंडिक्वा ५. १६२६ पृ० २६६.
२. आदिपर्व ६३. १५.२०
३. एपिक मायथॉलॉजी १८६
४. द वाइल्ड ट्राइब्स इन इंडियन हिस्ट्री पृ० १४
५. वही पृ० १५
६. वही पृ० १६
७. वही पृ० १६-१७

महाभारत में किरातों की जातियों का वर्णन पोषकों कलिंगों के बाद तथा तोमरों, हंसमार्गों, करमंजकों के पहले हुआ है। इन लोगों के राज्य पूर्वी तथा उत्तरी भू-भागों में बताये गये हैं। इसी सिलसिले में इन्हें पुण्ड्र, भार्ग, सुदेष्ण, कुरुवर्णक तथा बर्बर इत्यादि के साथ गिनाया गया है।[१]

मार्कण्डेय पुराण विष्णु पुराण का मत पुष्ट करता है कि किरात पूर्वी लोग थे, पर यह भी कहा है कि वे नये घरों की खोज में थे और देश में फैलने लगे थे।[२]

मत्स्य पुराण का कथन है कि भारतवर्ष के सीमाप्रांतों पर पश्चिम में यवन और पूर्व में किरात रहते थे। मत्स्य पुराण ने हिंदुस्तान की नदियों के पास बसे अनेक जनपदों को नाम गिनाया है। मध्यप्रदेश के जनपदों में भद्रकाष, वाह्य, पटचर मत्स्य कुल्य इत्यादि के साथ किरात जनपद का भी उल्लेख हुआ है।[३]

विंध्य से टकरा कर जो गंगा ह्लादिनी गंगा में गिरती है, उसके तीरवर्ती भूप्रदेशों में किरातों और पुलिंदों के आर्य्य जनपद थे। ह्लादिनी गंगा का वर्णन है कि वह पूर्व की ओर बहती है और उपक,निषाद, किरात, कालञ्जर तथा अन्य प्रदेशों में होकर समुद्र में गिरती है। इसी पुराण में यह भी कहा गया है कि किरात राज्य पर्वतों पर बसा हुआ था।[४]

अर्जुन का सफेद घोड़े वाला रथ, दक्षिण दिशा की ओर चला। अश्वमेध का घोड़ा आगे था, जो चेदि राज्य के शुक्तिमती नामक नगर की ओर गया। फिर काशी, फिर अंग, फिर कोसल और तदुपरांत किरात और तंगण देशों की ओर उसकी गति हुई।[५]

नकुल ने किरातों को (म्लेच्छ, पह्लव यवन शक इत्यादि के साथ उल्लिखित) दक्षिण दिशा में पराजित किया।[६]

सहदेव ने शूरसेन के अधिराज, फिर राजा सुकुमार और सुमित्र, फिर मत्स्य तथा पटच्चर, फिर निषाद जाति को हराया।[७]

किरात जंगली थे। कंदमूल फल खाते थे। हिमालय में, कारूष समुद्रतीरवर्ती प्रांत में, या लौहित्य पर्वत के दोनों ओर रहते थे। चंदन, चमड़े, सोना, गंध, लड़कियां, पक्षी तथा पशु—यह सब चीजें युधिष्ठिर को वे भेंट देने के लिये लाये थे। पर पहले उन्हें भीतर घुसने से द्वारपाल ने रोक दिया।[८]

किरात तथा ऐसी ही अन्य जातियां चण्डिका देवी की उपासना किया करती थीं।[९]

कुलिंद, आनर्त, कालकूट, साकल, प्रतिविंध्य, प्रागज्योतिष, उलूक, उत्तर के पांच गणराज्य, उत्सव संकेतगण राज्य, दारभस, कोकनद, अभिसारी, उरग, सिंहपुर, वाल्हीक,

---

१. द वाइल्ड ट्राइब्स इन इंडियन हिस्ट्री पृ० १६-१७
२. वही पृ० १८
३. वही पृ० १६
४. वही पृ० १६
५. वही पृ० २०-२१
६. वही पृ० २०—२१
७. वही पृ० २०—२१
८. वही पृ० २४.
९. वही पृ० २५.

दरद किंपुरुष (नेपाल) हाटक (मानसरोवर के पास), उत्तर हरिवर्ष (तिब्बत), पंचाल विदेह, दर्शाण (छत्तीसगढ़) पुलिंद नगर (बुंदेलखंड और सागर), श्रेणिमान मल्ल, भल्लाट (शुक्तिमान पर्वत) मलद, वत्सभूमि, निषाद, शरभक, वरमक, बर्बर, किरातों के सात राज्य, मगध, पुण्ड्र, कोशिकच्च (पुर्निया), ताम्रलिप्त, सुह्म, लौहित्य, यह सब प्रदेश युधिष्ठिर के साम्राज्य के आधीन थे।[1]

भगदत्त असुर तथा म्लेच्छ भी कहा गया है। उसका राज्य म्लेच्छ देश था। असीरियन मल्कु नाम के अभी भी बिलोचिस्तान में म्लेक या मलेक नामक रूपांतर मिलते हैं। सिंधु प्रदेश में इसे मलिक कहते हैं। जरासंध का पश्चिमी असुर यदुओं से संबंध था। यदु असुर वृषपर्वन पुत्री शर्मिन्दा की संतान थे। कंस मथुरा में यादव तथा असुर था। उसका ससुर जरासंध था। कंस के मारे जाने पर जरासंध ने कृष्ण को द्वारका भगा दिया था।[2].

महाभारत में कई जगह ऐसी मिलावट हो गई है जिसको अलग कर देना कठिन है। विद्वान भी बहुधा क्रम नहीं देख पाते। वे जनमेजय को कभी ब्राह्मणों में देखते हैं, कभी महाभारत में और कहते हैं वह एक ही था।

ऐसे ही अनार्य्य जातियों को देख कर वे यह स्पष्ट नहीं कह पाते कि इनका क्या प्रभाव था।

कुलिंद हिमालय में था। उसमें हाथी और घोड़े बहुत थे। किरात, तंगण, पुलिंद के साथ कुलिंद का नाम आता है। देवता उस देश को बहुत पसंद करते हैं। उसमें अनेक अद्भुत वस्तु हैं। (३·१४०. १०८६६. महाभारत) वहां का राजा सुबाहु है। उसने पांडवों का उनके गंधमादन जाते समय सत्कार किया। उसी पथ से लौटते समय पांडव चीन, तुषार, दरद होकर कुलिंद देश पहुंचे जो रत्नदेश था। वहां कठिन हिमालय पार करके, उन्होंने राजा सुवाहु का दुर्ग देखा (३.१७७. १२३५० महाभारत)[3] यमुना उसी कुलिंददेशीय पर्वतों की पुत्री कालिंदी है।[4]

आर्य्यों में यह शब्द ऐसे आया जो देखने पर बिल्कुल संस्कृत समझा जाता है।

यहां ऐसी ही कुछ उलझनों को पहले देख लेना ठीक है, ताकि आगे बारबार दुहराना नहीं पड़े।

जनमेजय पारीक्षित एक से अधिक हुए हैं। एक जनमेजय, पुरु का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। इसे इक्ष्वाकु मांधाता ने पराजित किया था। जनमेजय द्वितीय या परीक्षित प्रथम का पुत्र कुरू का पौत्र था। इसने गार्ग्य ब्राह्मण पुत्र मार डाला फिर इन्द्रोतशौनक की सहायता से अश्वमेध किया। ययाति का वंश रथ इसके पास से उपरिचर वसु चैद्य के पास चला गया। ब्रह्मपुराण, वायु तथा महाभारत तथा शतपथ ब्राह्मण के अनुसार तुरकावषेय

१. इंडिक्वा ७. १६३१, पृ० ५२६
२. असुर इंडिया पृ० ६५
३. प्रिआर्य्यन एण्ड प्रिद्रविडियन, पृ० ६१
४. वही पृ० ६३

इसी का पुरोहित था। जनमेजय तृतीय परीक्षित द्वितीय का पुत्र था और अभिमन्यु का पौत्र था। यही महाभारत का नागवधिक था।[1]

यह तीनों पौरव वंश में ही पैदा हुए थे।[2]

चन्द्रवंशी राजा कुरु का पुत्र जनमेजय था, उसकी माता वाहिनी थी। (महाभारत पृ० २०७)* सूर्य्य की कन्या तपती संवरण की रानी थी। उनसे राजा के कुरु नाम का महाप्रतापी राजा उत्पन्न हुआ, कुरु को परम धार्मिक देख कर राजा ने राजगद्दी पर बिठलाया। धर्मात्मा कुरुने जंगल प्रदेशमें तप किया, जिससे उस प्रदेश का नाम कुरु जांगल और कुरुक्षेत्र पड़ा। उसके वाहिनी से पांच पुत्र हुए: अविक्षित, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि और जनमेजय। अविक्षित के परीक्षित, शबलाश्व आदि हुए। जनमेजय के धृतराष्ट्र,पाण्डु, वाल्हीक, निषध, जाम्बूनद, कुण्डोदर, पदाति और वसाति, ये आठ पुत्र हुए। धृतराष्ट्र के कुण्डिक, हस्ती, वितर्क, क्राथ, कुण्डिन, हविश्रवा, इन्द्राय और भुमन्यु हुए; इनके जो पुत्र हुए उनमें प्रदीप, धर्मनेत्र और सुनेत्र प्रधान हुए। प्रतीप के शांतनु हुए।

चन्द्रवंशी पुरु का पुत्र, कौशल्यामाता, पत्नी अनंता: पुत्र प्राचीनवान्, दूसरा था। इसने ब्रह्महत्या की और उससे फिर छुटकारा पाया (पृ० ३५४१—४५).

पाण्डव पौत्र परीक्षित पुत्र, जो माद्रवती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, वही नाग यज्ञ कर्त्ता था। (पृ० १०८—१५)

इनके अतिरिक्त एक राजा जनमेजय, दुर्मुख का पुत्र था, युधिष्ठिर का संबंधी और सहायक था (पृ० १४६३, पृ० २५५७)

जनमेजय नीप-वंशी एक कुलघातक राजा था (पृ० १६५६)। जनमेजय वरुण की सभा का एक नाग था। (पृ० ५३१)

चन्द्रवंशी पुरु के वंश में उत्पन्न विदुर के पुत्र अनश्वान् माधवी संप्रिया के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उसकी पत्नी अमृता थी, पुत्र का नाम परीक्षित था। (पृ० २०६)

अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय एक परीक्षित ने मण्डूक राज की कन्या सुशोभना से विवाह किया था। बाद में वह उन्हें छोड़ गई तो राजा ने मण्डूकों को मरवाना शुरू कर दिया। बाद में वह लौट आई। इनके शल, दल तथा बल नामक पुत्र हुए। शल ने वाम्य घोड़ों के लिये वामदेव को सताना चाहा। वही मारा गया। (महाभारत: वनपर्व १५२, अध्याय)

वैशाली के शासक, करन्धम पौत्र मरुत से नागों का युद्ध हुआ। दूसरी बार, उन्होंने तक्षशिला जीत कर वैभव जमाया। हस्तिनापुर पर आक्रमण करके परीक्षित द्वितीय को मार डाला। शिशुनाग मागध के शासक थे। वे सुरूप, बहुरूप थे। कल्माष-कुंडल पहनते थे। उनके राजा वासुकि तथा शेष प्रसिद्ध थे।[4]

---

१. इंहिक्वा ६. १६३३ पृ० ८०४
२. वही
३. इंडियन प्रेस महाभारत की पृ० सं०
४. असुर इंडिया, पृ० ६५

नागों ने उत्तर पश्चिम भारत से मगध तक आर्य्यों से युद्ध किया। उन्होंने पुरूकुत्स से प्रार्थना की कि वह उनको मौनेय गंधर्वों से बचाये, जिन्होंने उन्हें उत्तर पश्चिम भारत में दबा लिया था।[१] नाग भोगवती से सिंधु, सिंधु से मध्यदेश, फिर वहाँ से दक्षिण की ओर गये। जो नाग गोश्रृंग, खोतान में थे, वे नागपुर, छोटा नागपुर तक भागे और वहाँ जंगलवासी दासों के साथ घुलमिल कर खो गये। एक शाखा आसाम के पहाड़ों में चली गई।

आर्यक एक नाग था। कुन्ती के पिता शूरसेन का नाना, सुमख नाग का पितामह, तथा चिकुर नाग का पिता था (पृ० २८५, पृ० १७०६, पृ० १७०७,) इन्द्र के सारथि मातलि ने अपनी पुत्री गुणकेशी के लिये सुमुख नाग को चुना था। नारद ने सुमुख का महाभारत उद्योगपर्व १०३वें अध्याय में (२०–२६) परिचय दिया है: यह ऐरावत नाग के कुल में उत्पन्न है। नाम सुमुख है, पिता चिकुर, पितामह आर्यक तथा नाना वामन है। कुछ दिन पहले विनता के पुत्र गरुड़ ने चिकुर को मार डाला था। घटनास्थल भोगवतीपुरी है।

नाग आर्यक कुंती का नाना था। उसने भीम को 'दौहित्र दौहित्र' कह कर छोड़ दिया था। क्या पांडव भी नागों से संबंधित थे?[२] नागलोक का केंद्र पाताल था जहां जल बहुत था।[३] उलूपी एरावत की पुत्रवधु थी, परन्तु पति के रहते उसने अर्जुन को वरा। वह नागराज स्नुषा है। कौरव्यपुत्री है, वासुकि की बहिन है। मनुष्य इरावत की मां है। समस्त नाग जल के वासी हैं।[४]

चित्रांगदा कौरव्य थी। मणिपुर नागों का गढ़ था।[५] दैत्यपुत्री शर्मिष्ठा ने ययाति से विवाह किया था।

[अथवा विवाह बिना (दासी रूप में ही) ऋतु स्नान का फल प्राप्त किया था।] असुरेन्द्र सुता के माध्यम से असुर वृष पर्वन् कुरु, पाण्डु का पूर्वज था।[६]

चित्रांगदा बभ्रुवाहन की सौतेली मां थी। एरक एक कौरव्य वंश का नाग था जो जनमेजय के सर्पयज्ञ में जल गया था। (महा. पृ० ११६)

आर्यक का पुत्र सुमुख था, जिसका श्वसुर वामन था।

मणिपुर नरेश चित्रवाहन चित्रांगदा का पिता था (४७२) चित्रांगदा बभ्रुवाहन की माता थी। (२१२,४७२)

नागों को काश्मीर से पिशाचों ने निकाला था।[७] महाभारत में नाग ताडध्वज कहे गये हैं।[८]

---

१. असुर इंडिया पृ० ९६
२. एपिक मायाथॉलॉजी पृ० २५
३. वही पृ० २६
४. वही पृ० २६
५. वही पृ० २६
६. वही पृ० ५१
७. असुर इंडिया पृ० ६२
८. विक्रमस्मृतिग्रंथ पृ० ६८७

कृष्ण एक पहेली है। बौद्ध अट्ठ कथा में कृष्ण ने चांडाली को वरा है।[1] वासुदेव के भक्त भागवत थे।[2]

किंतु ब्राह्मण धर्म की कथाओं में और ही वर्णन हैं। कृष्ण की भागवत में ऐसी कथा मिलती है :—

१. पृथ्वी की भगवान् से प्रार्थना

२. ईश्वर की प्रतिज्ञा

३. कृष्ण जन्म

४. कृष्ण का गोकल पहुंचाया जाना

५. कंस के प्रयत्न

६. वसुदेव तथा नन्द

७. कृष्ण जन्मोत्सव

८. गोकुल में

९. पूतना, धेनुक, प्रलंबासुर, इन्द्र पराजय। रासक्रीड़ा। अरिष्ट वध। कंस चौकन्ना हुआ। अक्रूर भेजा। केशी प्रेषण। मथुरा गये। कंसवध।

१०. सांदीपनि के शिष्य, अवंती में कृष्ण

११. जरासंध का मथुरा पर हमला।

१२. बलराम गोकुल में।

१३. कृष्ण, रुक्मिणी हरण। चेदिराज शिशुपाल से युद्ध।

१४. प्रद्युम्न और संवर.

१५. कृष्ण की अन्य स्त्रियां तथा सन्तान

१६. ऊषा अनिरुद्ध

१७. बलराम के कार्य

१८. यादवों का अन्त।

तथा महाभारत में —

कृष्ण १. द्रौपदी स्वयंवर। इन्द्रप्रस्थ बना। कृष्ण द्वारका लौटे।

२. सुभद्रा विवाह। खांडवदहन। द्वारका लौटे।

३. युधिष्ठिर, राजसूय, बातचीत, जरासंध मरा।

४. कृष्ण चरण प्रक्षालन। शिशुपाल मरा। कृष्ण घर लौटे।

५. शाल्व युद्ध। वन में पांडव भेंट। सुभद्रा अभिमन्यु के साथ द्वारका लौटे।

६. यादव — पांडव— प्रभास में भेंट

७. सत्यभामा आई। काम्यक वन में पांडवों के साथ कृष्ण। दुर्वासा को भेज दिया।

---

१. भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ० १०५

२. वही पृ० १११

८. कृष्ण अभिमन्यु विवाह को उपप्लव्य के पास गये। राजाओं की सभा में पांडवों की मांग के लिये गये। फिर द्वारका।

९. दुर्योधन और अर्जुन कृष्ण के पास मदद लेने गये।

१०. कृष्ण पांडव दूत। निराश।

११. धृष्टद्युम्न, सात्यकि, कृष्ण, पांडव सेना।

१२. युद्ध।

भगवद्गीता सुनाई। भीष्म युद्ध। भगदत्त का प्रहार झेला। अभिमन्युवध हुआ। भूरिश्रवस को मुक्ति। जयद्रथवध। घटोत्कच को कर्ण के विरुद्ध भेजा। दुर्योधन का पाप वध किया। बलराम को समझाया।

जाम्बवती पुत्र के लिये कृष्ण ने रुद्र प्रशंसा की। उत्तंक को शांत किया। युधिष्ठिर के अश्वमेध में रहे। अन्त में मारे गये।[१]

हलधर बलदेव मदिरा के शौकीन थे जैसे कृष्ण स्त्रियों के।[२] कुरु तथा जरासंध प्राचीन शैव थे। उन्होंने कृष्ण को नारायण नहीं माना था।[३] जरासंध के मित्र पौण्ड्रक वासुदेव की कृष्ण ने हत्या की थी।[४] जरासंध को जरा राक्षसी ने जोड़ा था जो रक्त मांस पर रहती थी। वह दानवों का नाश करती थीं। घरों पर गृहदेवी के रूप में उसके चित्र बने रहते थे।[५]

कोसल विदेह के आर्य्य कुरु पंचाल वालों से पहले के थे। उनकी संस्कृति और धर्म में भी कुछ भेद था।[६] कुरुक्षेत्र में दृष्द्वती, सरस्वती और आपया नदी थीं। उत्तर में तूर्घ्ना, पश्चिम में परिणाह और दक्षिण में जिस भू प्रदेश के खाण्डव था, उसे कुरुक्षेत्र कहते थे।[७]

तब यादव कौन थे ?

कृष्ण भी एक नहीं थे। अनेक हुए हैं और भिन्न समयों पर हुए हैं। ऐसा मिलता है। एक कृष्ण, इन्द्र का पुरोहित था। ऋग्वेद में एक ऋषि का नाम कृष्ण मिलता है। विष्णापू का पौत्र था, जिसे अश्विनों ने बचाया था।

कृष्ण देवकी पुत्र, कृष्ण हारीत, कृष्णदत्त लौहित्य, कृष्ण धृति सात्यकि, कृष्ण रातलोहित्य।[८]

इन्हीं में से एक कृष्ण महाभारत के कृष्ण थे, वे यादव थे, यादवों में अंधक और वृष्णि थे।

संभव है वृष्णि और अंधक, तथा वज्जि तथा मल्ल जो कुरु पंचाल के पूर्व में हैं पहले

१. अंभाओरिइ ९-१० ; १९२८-२९ पृ० २६५-३४६
२. एपिक मायथॉलॉजी पृ० २१२
३. वही पृ० २१३ कुरु शैव थे ?
४. वही पृ० २१७
५. वही पृ० ८८
६. वेदिक इन्डैक्स १ पृ० १५४
७. वही पृ० १६९
८. वेदिक इन्डैक्स १, पृ० १८४

१. एन्शेंट इंडियन, हिस्टौरिक ट्रैडीशन, पार्जिटर, पृ० १; ५——७
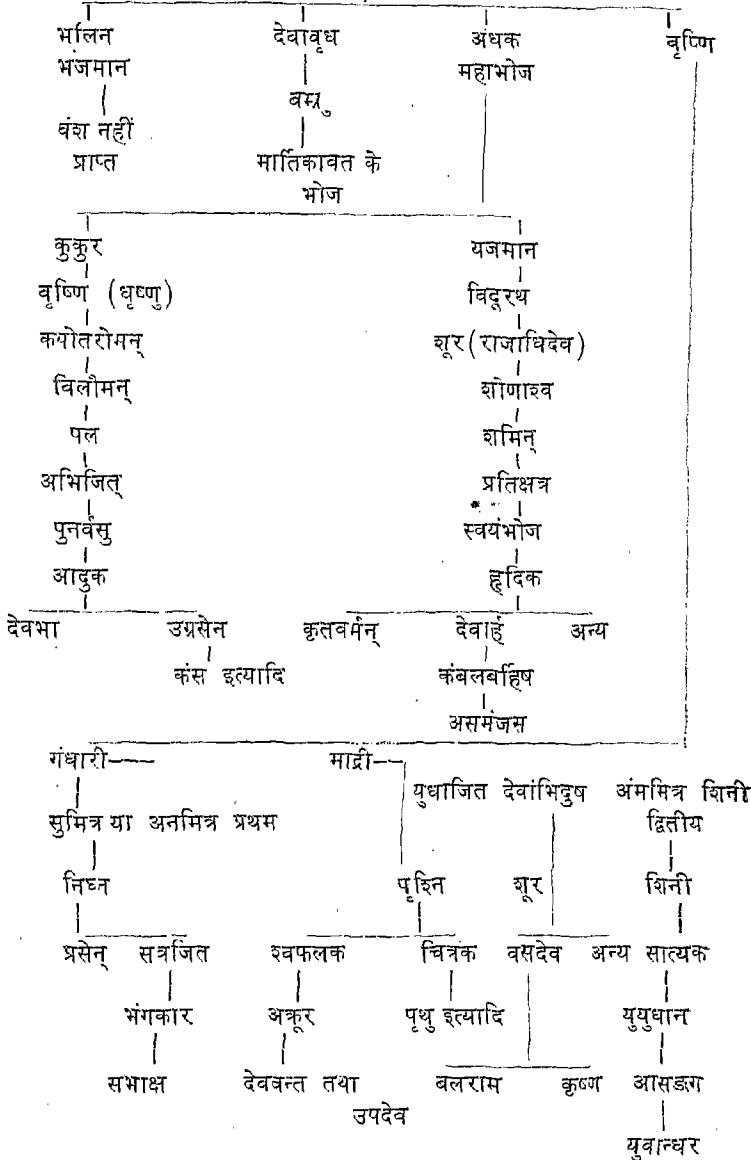
आये आर्य्य थे ।[1] वृष्णियों को ब्राह्मणों ने उखाड़ फेंका था ।[2] महाभारत द्रोणपर्व में अंधक तथा वृष्णि व्रात्य कहे गये हैं ।[3]

और भी उल्लेख हैं —–

कौरव, पंचाल, शाल्व मत्स्य, नैमिष, चेदि ही धर्म के ज्ञाता समझे जाते थे । पंचाल वेद, कौरव धर्म, मत्स्य सत्य शूरसेन यज्ञ–– में कुशल थे ।[4]

यहां एक दृष्टि उस वंश तालिका पर भी डालनी चाहिये जिनमें यादवों का उल्लेख है । किन्तु यादव वंश की जैन स्रोतों से ऐसी तालिका बनती है :––

जैन-स्रोत में यादव वंश

जदु

पुत्र (सोरियपुर का संस्थापक)			वीर तथा सुवीर (सोवीर का संस्थापक)
अंधगवन्हि		भोगवन्हि	
१.समुद्धविजय		उग्गसेन	
२.अक्खोह	१.अरिष्टनेमि	बंधु	पजुण्ण
३.थिमिय	२.रहनेमि	सुबंध	सम्ब
४.सागर		कंस	भाणु
५.हिमव		रायमती	सुभाणु
		इत्यादि	इत्यादि
६.अयल			
७.धरण		१.वासुदेव	
८.पूरण		२.बलदेव	
९.अभिचण्ड		३.जराकुमार	१. सुमुहकुमार
		४.अक्रूर	
१०. वासुदेव		५.सारंग	२. दुम्मुह
११.कुन्ती		६.सुहदारग	३. कूवदारय
१२.मद्दी		७.अणाहिहि	४. निसठ
		८.सिद्धत्थ	५. कुंजवारा
		९.गय सुकुमाल इत्यादि	६. ढंढ इत्यादि

१. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एन्शेन्ट इंडिया पृ० १२०

२. वही पृ० १२०

३. वही पृ० १२०

४. वही पृ० १२८

५. लाइफ़ इन एन्शेन्ट इंडिया पृ० ३७७

राजवंश	यादव	यादव	द्विमीढस	उत्तरपञ्चाल	दक्षिणपञ्चाल	पौरव	काशी	आणव उत्तर-पश्चिम	आणव पूर्वी	अयोध्या	विदेह	वैशाली	राजवंश
संख्या ६६.	भीमसत्व⊙			सृंजय⊙	नीप		वेणुहोत्र		चतुरंग		प्रद्युम्न शत द्युम्न		६६ संख्या
६७.	अन्धक⊙	वृष्णि		च्यवन *						कुश	मुनि		६७
६८.				सुदास *⊙			भर्ग			अतिथि	ऊर्जवह्		६८
६९.	कुकुर			सहदेव		संवरण⊙			पृथुलक्ष	निनाध	सनद्वाज		६९
७०.				सोमक ⊙						नल	शकुनि		७०
७१.				जन्तु		कुरु	पौरव	पौरव	चंप	नभस	अंजन		७१
७२.						परीक्षित१	जन्हु	सुधन्वन		पुण्डरीक	ऋतुजित		७२
७३.	वृष्णि					जनमेजय२		सुहोत्र	हर्यांग	क्षेमधन्वन्	अरिष्टनेमि		७३
७४.						भीष्मसेन इत्यादि	सुरथ	च्यवन		देवानीक	श्रुतायुस		७४
७५.								कृत	भद्ररथ	अहीनुग	सुपार्श्व		७५
७६.		देवमीढुश	रुक्मरथ		समर	विदूरथ		चेदि		पारिपात्र	संजय		७६
७७.	कपोतरोमन्					सार्वभौम	मगध	वसुचैद्य*		दल, बल	क्षेमारि		७७
७८.			सुपार्श्व		पार २	जयत्सेन		प्रत्यग्रह ?	बृहत्कर्मन	उक्थ⊙	अनेनस		७८
७९.			सुमति			अराधिन्	बृहद्रथ			वज्रनाभ	मीनरथ		७९
८०.	विलोमन				पृथु	महाभौम	कुशाग्र			शंख	सत्यरथ		८०
८१.			सन्नतिमंत			अयुतायुस्			बृहद्रथ	व्युशिताश्व	उपगुरु		८१
८२.			सनति		सुकृति	अक्रोधन्	ऋषभ			विश्वसह २	उपगुप्त		८२
८३.	नल					देवातिथि	पुष्पवन्त		बहद्भानु	हिरण्याभ⊙	स्वागत		८३
८४.			कृत⊙		विभ्राज	ऋक्ष २				पुष्य	सुवर्चस		८४
८५.						भीमसेन	सत्यहित		बृहन्मनस	ध्रुवसन्धि	श्रुत		८५
८६.	अभिजित्				अनुह	दिलीप	सुधन्वन			सुदर्शन्	सुश्रुत		८६
८७.					ब्रह्मदत्त⊙*	प्रतीप			जयद्रथ	अग्निवर्ण	जय		८७
८८.					विश्वक्सेन		ऊर्ज			शीघ्र	विजय		८८
८९.	पुनर्वसु	शूर⊙			उदकसेन	(ऋष्टिशेण)			दृढ़रथ	मरु	ऋत		८९
९०.			उग्रायुध		भल्लाह्	शान्तनु	संभव			प्रसुश्रुत	सुनय		९०
९१.			क्षेम्य	प्रशत् ⊙	जनमेजय ⊙	(भीष्म)				सुसंधित	वीतहव्य		९१
९२.	उग्रसेन⊙	वासदेव⊙	सुवीर			विचित्रवीर्य्य	जरासंध	दमघोष	विश्वजित्	अमर्ष	धृति		९२
९३.	कंस⊙		नृपंजय	द्रोण ⊙	द्रुपद*⊙	धृतराष्ट्र *				विश्रुतवन्त	बहुलाश्व		९३
९४.		कृष्ण⊙*	बहुरथ	अश्वत्थामा⊙	धृष्टद्युम्न	पाण्डव	सहदेव	शिशुपाल*	कर्ण*⊙	बृहद्बल	कृतक्षण⊙		९४
९५.		साम्ब⊙			धृष्टकेतु⊙	अभिमन्यु	सोमाधि	धृष्टकेतु	वृषसेन⊙	बृहद्क्षय			९५

(पृ. २३३ के सम्मुख)

जैन तालिका परवर्ती है। किंतु ब्राह्मण तालिका भी प्राचीन ही है यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि जैन की तुलना में ब्राह्मण प्राचीन है और उसका अलग-अलग स्थानों में अनेक जगह वर्णन हुआ है।

महाभारत कथा द्वापर के अन्त की है। पहले के राजाओं को जानने के लिये पार्जिटर की तालिका को देखना आवश्यक है।

इसमें यादवों की दो शाखा हैं : अंधक और वृष्णि। द्विमीढस, उत्तर पंचाल, दक्षिण पंचाल, पौर्वस, काशी, आणव, अयोध्या, विदेह तथा वैशाली के वंश हैं। इस समय और भी अनेक वंश हैं। परन्तु यह प्रमुख थे। वैशाली खाली है। कोई महत्वपूर्ण राजा नहीं हुआ। विदेह अयोध्या भरे पूरे हैं।

संवरण, कुरू, वसु, चैत्य (उपचिर) अरिष्टनेमि आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

इन तालिकाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक नाम दुहरा दुहरा कर रखे जाते थे अतः हमें नाम एक देख कर काल और क्रम को छोटा करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, न उन असंभव तिथियों को मानना चाहिये जिनमें एक एक व्यक्ति की आयु हजारों वर्ष बताई गई है। यह बाद में क्षेपक आये हैं जब पुराणकार और इतिहासकार स्वयं गड़बड़ में पड़ गये। तालिका यों है :—(चार्ट देखिये—सामने)

द्वापर में यादवों का गण एक महत्त्वपूर्ण शक्ति हुआ। क्षत्रिय ही भूमि लिप्सा में परस्पर लड़ने लगे। यहां हमें नागों के दर्शन प्रारंभ होते हैं। सुपर्णों से भीत कालिय यमुना तीर पर आ बसा था जिसे कृष्ण ने दक्षिण की ओर भगा दिया। कृष्ण का चरित्र भारतीय इतिहास में राम के बाद दूसरा विशेष महत्त्वपूर्ण स्रोत है। महाभारत काल में यादवों ने संतुलन किया है। उत्तर के गंधर्वों के यहां तक इनकी पहुंच असंभव रही। अर्जुन ने दानवों का संहार किया। हिमालय में वे फिर प्राचीन Punaluan (स्त्री-पुरुष स्वतंत्र संबंध) देव जाति समाज में जा पहुंचे जिसके अवशिष्टों ने उन्हें अत्यंत प्रभावित किया। हिमालय में किरातों का भी राज्य था। कृष्ण क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी आभीरों में पले जो कबीला जाति के समान थे। तभी इस व्यक्ति में जाति द्वेष नहीं मिलता। वैसे कृष्ण अनार्य्य शत्रु थे, परंतु उन्हीं के जो अत्याचारी थे। इस बात के दो पक्ष होते हैं। एक, आर्य्य अनार्य्य युद्ध चले। पारस्परिक आर्य्य युद्ध न हो। दो। अनार्य्य विरोधी मिटाकर आर्य्य अनार्य्य निकट आयें। इस समय भी मगध शत्रु था। जरासन्ध आर्य्य नहीं था? तभी बिहार, बंगाल इत्यादि पूर्व तथा दक्षिण की जातियां सशंक थीं? उत्तर से नई जातियां आने लगीं। आर्य्य दंभ को नष्ट करने में असमर्थ कृष्ण वन में चले गये। यादव गण, अंधक और वृष्णि कुलों में परस्पर युद्ध से नष्ट हो गया।

आर्य्य अनार्य्य एक दूसरे के स्वयंवर में जाते थे, कलिंग राज की पुत्री के स्वयंवर में कौरव आदि गये थे (अध्याय ४ शान्तिपर्व महाभारत) यह तत्कालीन मिलन को प्रगट करता है।

आरण्यकों में गंभीर विवेचन होने लगा। सूत्र बनने प्रारंभ हुए। इन सूत्रों से परवर्त्ती सूत्र नहीं समझना चाहिए। यह सूत्र clue के लिये प्रयुक्त हुआ है। आर्य्य शक्ति का मानसिक ह्रास हो चला। कुछ लोग इस बात पर आक्षेप करते हैं। परंतु यदि वे देखें कि प्राचीन द्यूत के शब्द कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलि के नाम से समय को बांट दिया गया, स्वयंभू मनु ने धर्म वर्णाश्रम की फिर व्यवस्था की, और अब यहां के निवासियों के संसर्ग से रक्षा असंभव दिखाई देने लगी, तब वे संभव है इसे समझेंगे। आर्य्य अभी तक अपने को दंभ से ऊंचा समझता था। अब उस पर यहां के चिंतन ने ऐसा प्रभाव डाला कि वह अपने धर्म में कमी देखने लगा। ह्रास यही हुआ, परंतु यह आर्य्य का दृष्टिकोण था कि यह ह्रास था। आखिर आर्य्य कब तक दबा कर रख सकते थे। अब फिर अपने ही विश्वासों का भीतरी अर्थात् आर्य्यों में ही खंडन प्रारंभ हो गया था। तभी नागों ने सिर उठाया। जनमेजय ने नाग यज्ञ किया। नागार्य्य आस्तीक ने उसे रुकवा दिया। और इसके बाद भारत में जातीयता का वह भेद लुप्त होने लगा जो आर्य्यों को विदेशी कह सकता। ब्राह्मणों का बनाया समाज अधिष्ठापित हुआ। परंतु संघर्ष बराबर चलता रहा। आर्य्यों के त्रेता के संसर्ग से दक्षिण में कई स्थानों पर पाषाण युग के बाद एकदम लौह युग आ गया। बीच में ताम्र युग दिखाई ही नहीं देता। इस आकस्मिक उन्नति ने दक्षिण को अधिक सुदृढ़ बना दिया ?

विद्वान महाभारत युद्ध के बाद ही कलि मानते हैं। परंतु मैंने जनमेजय के बाद रखना ठीक समझा है। कारण है एक घटना-समूह और आर्य्य शक्ति का ह्रास तथा दंभ नाश, नहीं हुआ। आगे के इतिहास में स्पष्ट भेद दिखाई देता है अतः उसे परवर्त्ती युग में रखना उचित है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि फिर आर्य्य नष्ट हो गये। नहीं। वे रहे और शासक ही रहे। पर उनकी पहले जैसी शक्ति नहीं रही। कारण था सामाजिक विषमता। इसको कलियुग में देखना ठीक है।

अब महाभारत का अध्ययन आवश्यक है। यद्यपि महाभारत में घटनायें क्रम से नहीं रखी गई हैं परंतु हम उन्हें क्रम से ही देखेंगे।

द्वापर युग आर्य्यों के एक युग समूह का अंत था। इसके बाद जो हुआ उसे स्वयं आर्य्यों ने यह मान लिया कि जो कुछ था वह सब समाप्त हो गया। अब क्या है ? कलियुग है और कलियुग में सब कुछ हो सकता है क्योंकि यह पतन का समय है।

महाभारत में असंख्य ऐसी बातें हैं जिनमें इतना सत्य लिखा है कि उसे पढ़कर आश्चर्य होता है। इसमें काफी परवर्त्ती तथ्य होने पर भी काफी पुरानी परंपरा है। अतः महाभारत कथा देखनी आवश्यक है।

पार्जिटर की सूची से महाभारत आदिपर्व की कुरुवंश परंपरा की सूची नहीं मिलती। फिर भी उसे उद्धृत करते हैं क्योंकि उसमें राजाओं के विवाह से बदलती सामाजिक व्यवस्था, कुल आदि मान, का ज्ञान होता है।

पहले अपहरण नहीं होता था। आर्य्य अनार्य्य दोनों का परस्पर भी विवाह हुआ है। असुर वंशी कन्या का रक्त आर्य्यों में बहता है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अहंयाति
कृतवीर्य्य कन्या भानुमती स्त्री
—
सार्वभौम
स्वयंवर विजिता केकयकन्या सुनन्दा स्त्री
|
ज्यत्सेन
विदर्भ कुमारी सुश्रुवास्त्री
|
अवाचीन
विदर्भ कुमारी मर्यादास्त्री
|
अरिह
अंगदेशीय कुमारी स्त्री
|
महाभौम
प्रसेनजित् कन्या सुयज्ञा स्त्री
|
अयुतनायी
पृथुश्रवाकन्या कामा स्त्री
|
अक्रोधन
कलिंग कुमारी करम्भा स्त्री
|
देवातिथि
विदेह कुमारी मर्यादा स्त्री
|
अरिह
अंग कुमारी सुदेवा स्त्री
|
ऋक्ष
तक्षक कन्या ज्वाला स्त्री
|
मतिनार सरस्वती तीर पर १२ वर्ष का याज्ञिक।
सरस्वती स्त्री
|
तंसु
कालिंगी स्त्री
|

ईलिन
रथन्तरी
|
दुष्यंत तथा चार भाई
(विश्वामित्र कन्या शकुन्तला स्त्री)
|
भरत
काशिराज सर्वसेन कन्या सुनन्दा स्त्री
|
भुमन्यु
दशार्ह राजकन्या विजया
|
सुहोत्र
इक्ष्वाकु कन्या सुवर्णा
|
हस्ती (हस्तिनापुर बसाया)
त्रिगर्त देश कन्या यशोधरा स्त्री
|
विकुण्ठन
दशाहि कन्या सुदेवा
|
अजमीढ
चार रानियां
कैकेयी, गान्धारी, विशाला, ऋक्षा
(२४०० पुत्र हुए)

अन्यों के अलग वंश चले ।

सबसे बड़ा संवरण
सूर्य्य कन्या तपती स्त्री
|
कुरु
दशार्ह कुमारी शुभांगी
|
विदुर
माधवी संप्रिया स्त्री
|

अनश्वान्
मगध कन्या अमृता
परिक्षित्
वाहुदा सुयशा
भीमसेन्
केकय कन्या कुमारी
प्रतिश्रवा
प्रतीप
शिविकन्या सुनंदा
देवापि
(वानप्रस्थ हो गया)
शान्तनु
बाह्लीक
गंगा
सत्यवती
दूसरा नाम
भीष्म
काली
(आ० प०
६०, अध्याय)
गन्धकाली भी
एक नाम था ।
चित्रांगद विचित्रवीर्य (निःसंतान मरा)
(एक गन्धर्व ने मार डाला) काशीराज कन्या अम्बिका अम्बालिका
स्त्रियां थीं,
व्यास द्वारा धृतराष्ट्र पाण्डु [विदुर
गांधारी
स्त्रियां
कुंती माद्री
१०० पुत्र
(सती हुई)
दुर्योधन
दुःशासन
विकर्ण
चित्रसेन प्रधान
युधिष्ठिर
भीम
अर्जुन
नकुल
सहदेव
अर्जुन के
नाग कन्या उलूपी से इरावान
मणलूरू कन्या चित्रांगदा से बभ्रुवाहन

हिडिम्बा से घटोत्कच

(यह सब स्त्रियां हर कर लाई गईं।

द्रौपदी सब की स्त्री

यौधेय (शैव्य कन्या देविका से)—युधिष्ठिर से—प्रतिविन्ध्य
सर्वग (बलंधरा से)—भीम—सुतसोम

अर्जुन—श्रुतकीर्ति

अभिमन्यु (सुभद्रा से) अर्जुन—श्रुतकीर्ति

विराट कन्या उत्तरा से { परिक्षित (माद्रवती)
जनमेजय (वपुष्टमा)

निरमित्र (चेदिकन्या करेणुमती से) —नकुल—शतानीक

सुहोत्र (मद्रकन्या विजय से) सहदेव —श्रुतकर्मा शतानीक शंकुकर्ण विदेह कन्या से शतानीक के अश्वमेधदत्त ।

यह परंपरा महाभारत के युद्ध के बाद लिखी गई है। क्योंकि इसमें अश्वमेधदत्त का नाम है। उसके आगे नाम नहीं मिलने का अर्थ है कि और आगे के समय के शासक इस सूची में जोड़े नहीं गये।

निषाद के घर में पली लड़की भी क्षत्रिय ले सकता था।

कौरव चित्रांगद को चित्रांगद गंधर्व ने कुरुक्षेत्र के मैदान में मार डाला था। सरस्वती तीर पर युद्ध हुआ था। गंधर्वों से युद्ध होता था। गंधर्व सशक्त जाति थी। सरस्वती तीर पर गंधर्व थे यह ऊपर हम बता चुके हैं।

आ० प० १०३ अ० भीष्म बलपूर्वक अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका को हर लाये। उस समय काशी में उन्होंने आर्य्यों में स्वीकृत निम्नलिखित विवाह पद्धतियां बताई थीं :

१. गुणी पात्र को बुला कर यथाशक्ति गहने और धन देकर कन्या देना—ब्राह्म विवाह।

२. एक गाय और एक बैल देकर विवाह—आर्ष

३. धन देकर कन्या लेना—आसुर

४. जबर्दस्ती कन्या हर ले जाना—राक्षस

५. कन्या को राजी करके उससे विवाह—गंधर्व

६. असावधान कन्या को छल से ले जाकर विवाह—पैशाच

७. दाता के यहां स्वयं जाकर कन्या मांगना—प्राजापत्य

८. यज्ञ में कन्या ग्रहण करना—देव

क्षत्रिय के लिये राक्षस ही श्रेष्ठ कहा गया है। देव विवाह में यज्ञ में कन्या ग्रहण होता है। हम ऊपर यज्ञ के विषय में लिख आये हैं। यह परंपरा भी उसके अनुकूल है।

१०५ अ० में सत्यवती और भीष्म में पुरातन स्त्री-पुरुष के संबंधों पर प्रकाश डाला है । भीष्म ने कहा——

क्षत्रिय वंश निर्मूल होने पर क्षत्रिय पत्नियों ने वेदज्ञ ब्राह्मणों से नियोग द्वारा संतान ली । वेद में कहा गया है कि जो आदमी पाणिग्रहण करता है उसके क्षेत्र (स्त्री) में उत्पन्न संतान उसी की है । इस कारण वे ब्राह्मणों के वीर्य से क्षत्रियों की पत्नियों में उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण न होकर क्षत्रिय ही हुई ।

इससे प्रगट होता है कि स्त्री क्षेत्र हो गई थी । जैसे किसान का खेत । कोई बोये मगर फसल उसी की मानी जायेगी जिसकी जमीन है । इस अवस्था में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की बात नहीं है । स्त्री केवल सन्तानोत्पत्ति का क्षेत्र है फिर भी उस पर पातिव्रत का बोझा नहीं आया है ।

दीर्घतमा की कथा से प्रगट होता है कि मातृसत्ता तब जीवित थी । पिता से अधिक माता का कहना माना जाता था ।

दीर्घतमा के दासी में उत्पन्न पुत्र शूद्र योनि में हुए ।

१०६ अ० सत्यवती से भीष्म ने यह कहा : किसी गुणी ब्राह्मण को धन देकर महलों में बुलाओ जिससे वंश चले ।

यहां सत्यवती ने भेद खोला कि कानीनावस्था में उसके व्यास हुआ था जब वह निषाद के यहां थी । माता ओर पुत्र में यह बातें फिर कभी नहीं हुई । यह द्वापर का एक रूप प्रगट करने वाली बात है । ब्राह्मण निषाद घरों से व्याह कर लेते थे (अ० प० २८ अ० १३——२१) तथा (२९ अ० १——१०)

१०७ अ० व्यास देवर थे अम्बिका, अम्बालिका के, उनका काला रंग, पीली जटा, ज्वलित नेत्र, भूरी दाढ़ी मूंछ, शरीर से दुर्गंध, यह वर्णन दिया गया है ।

इसी अध्याय में होने वाली विदुर की मां (दासी) का दासीत्व व्यास ने समागम से प्रसन्न होकर छुड़ा दिया ।

११२ अ० शूरसेन यादव के पुत्र वसुदेव के एक बड़ी बहिन थी——जिसका नाम पृथा था । वह कन्या शूरसेन ने अपनी बुआ के लड़के कुन्तिभोज को दे दी । वह कुन्ती थी । उसकी कानीनावस्था में सूर्य्य से एक बालक हुआ । उस समय कन्यावस्था में बालक अस्वीकृत था । उसने उसे छिपा कर बहा दिया और कन्या ही बनी रही ।

११३ अ० कुन्ती का पाण्डु से स्वयंवर के बाद विवाह हुआ ।

११४ अ० भीष्म ने दिग्विजय की । मद्र (वाल्हीक वंश) ने अपनी कन्या पाण्डु को दे दी । इन मद्रों की रीति थी कि यदि कोई कह देगा कि 'हम को कन्या दो' तो उससे धन ले लेंगे । यह प्रथा भी तब अजीब हो गई थी । परंतु मद्रराज ने कन्या का 'शुल्क' ले लिया । पाण्डु ने दिग्विजय की । दशार्ण देश के राजाओं को जीता । 'राजगृह' में मगध-

राज को मार डाला। मिथिला में विदेह नरेश को जीता। काशी, सुह्म और पुण्ड्र देश जीते। राजा कर देने लगे।

११५ अ० विदुर का विवाह एक दासी के गर्भ से महाराज देवक की लड़की दासी से हो गया। विदुर को बराबर की हैसियत दी गई।

१२० अ० पाण्डु अपनी दोनों स्त्रियां लेकर हस्तिनापुर से उत्तर की ओर चले। नागशत, चैत्ररथ, कालकूट, हिमालय लांघ कर वे गंधमादन गये। यहां उन्हें सिद्ध विद्याधर आदि मिले। वे अच्छे और बीहड़ सभी तरह के स्थानों में जाते और रहते थे। वहां से पाण्डु इन्द्रद्युम्न सरोवर और हंसकूट पर्वत लांघ कर शतश्रृंग पर्वत पहुंचे।

१२१ अ० शतश्रृंग के उत्तर में स्वर्ग था। यक्ष, गंधर्व, किन्नर, अप्सराएं वहीं राह पर रहती थीं।

उस समय यह पुत्र पिता की संपत्ति पा सकते थे।

१. औरस---धर्मपत्नी गर्भ, अपना वीर्य

२. प्रणीत---धर्मपत्नी गर्भ अन्य उत्तम व्यक्ति वीर्य्य

३. परिक्रीत---धर्मपत्नी गर्भ तथा मूल्य देकर खरीदा गया वीर्य्य

४. पौनर्भव---अपने मरने पर विधवा भार्या में दूसरे से

५. कानीन---अपनी स्त्री में, उसके क्वांरेपन में

६. कुण्ड---मनमाना आचरण करने वाली स्त्री में

७. दत्तक---गोद लिया हुआ (यह चलता है)

८. क्रीत---दाम देकर खरीदा हुआ

९. उपक्रीत---पाला हुआ

१०. आप से आ कर 'मैं तुम्हारा पुत्र होऊंगा' कहने वाला

११. ज्ञातिरेतासहोढ़, भाई, सजातीय की गर्भवती स्त्री से व्याह कर लेने पर उत्पन्न

१२. हीन योनिधृत---निकृष्ट जाति की स्त्री में उत्पन्न। अपने क्रम से ही ये श्रेष्ठ हैं। १ अव्वल है और ११वां सब से नीचा।

मनु ने कहा है कि मनुष्य अपने सिवाय अन्य के वीर्य्य से भी शुभ फलदायक पुत्र उत्पन्न करा सकते हैं। संभव है यह परवर्त्ती क्षेपक है या यही नियम फिर मनु में आया है।

वीर पत्नी शरदण्ड की स्त्री पुत्रोत्पत्ति के लिये, पति की आज्ञा पाकर, एक दिन ऋतु स्नान करके रात को चौराहे पर खड़ी थी। वहां एक ब्राह्मण से पुंसवन कर्म करके गर्भ धारण किया।

१२३ अध्याय में पाण्डु ने प्राचीन धर्म का वर्णन किया। पूर्व समय में सब स्त्रियां स्वाधीन थीं। पर्दा न था। वे चाहे जिसके साथ रह सकती थीं। वे घूमती फिरती थीं। स्वजन उन्हें रोक न सकते थे। क्वांरी रहने पर भी स्त्रियां व्यभिचार करती थीं, पर उन का वह काम दोष न समझा जाता था **क्योंकि उस समय का सामाजिक नियम ही ऐसा था।**

काम और क्रोध आदि से रहित पशु पक्षी आदि इस समय भी इसी प्राचीन धर्म के अनुसार चलते हैं। **ऋषि लोग इस धर्म को प्रमाण सिद्ध समझ कर मानते हैं। उत्तर कुरु देश में अब तक यही धर्म प्रचलित है क्योंकि यह धर्म अत्यंत प्राचीन और स्त्रियों के अनुकूल है। कुछ ही दिन हुए यह धर्म यहां से उठा दिया गया है।**

आगे श्वेतकेतु की कथा है। मोटे शब्दों के वाक्य सारगर्भित हैं। अर्थात् स्त्रियों के अधिकार छिने बहुत दिन नहीं हुए। मातृसत्ता चलती रही थी। स्त्री को पुरुष की संपत्ति हुए अधिक दिन नहीं हुए थे। पाण्डु पुरुष अब भी इसे बुरा नहीं मानता था। उसका विचार क्षेत्र का था। स्त्री ने गण टूटने पर अपने को व्यभिचार और जबर्दस्ती दूसरों के संभोग से बचाने को पातिव्रत प्रारंभ किया। कुन्ती का यही विचार है। कालांतर में क्षेत्र और बीज दोनों पर पुरुष का अधिकार हुआ तब पातिव्रत पुरुष का सहायक हुआ जैसे पहले पुरुष सूक्त में जब शूद्र समाज का सजीव अंग माना गया तब वह प्रगति हुई, पर बाद में वह गतिरुद्ध हो रूढ़ि हुई और यह प्रगति शूद्र के ही विरुद्ध पड़ गई।

कल्माषपाद की पत्नी मदयन्ती ने उसी की आज्ञा से, उनके भले के लिये, अश्मक नामक पुत्र वशिष्ठ से पैदा किया। वेद व्यास ने कुरुवंश चलाया। प्राचीन धर्मज्ञ लोगों का कथन है कि स्त्री जब ऋतुस्नान करे तब उसे अवश्य स्वामी का सहवास करना चाहिये, **इसके सिवा और अवसरों पर उसे स्वाधीनता प्राप्त है।** इसके अतिरिक्त पाण्डु ने नये विधान को भी कुन्ती पर लागू किया—स्वामी की आज्ञा धर्म-विरुद्ध हो तो भी उसका पालन करना प्रत्येक स्त्री का कर्त्तव्य है।

१२४. अध्याय और १२५ में कुन्ती और माद्री के पुत्र होते हैं।

धर्म से युधिष्ठिर, मृगारोही वायु से भीम, इन्द्र से अर्जुन हुए। नकुल सहदेव अश्विद्वय की संतान हुए।

आश्चर्य का विषय है कि शताब्दियों से लोग इस पर विश्वास करते रहे। इसका कारण क्या था। प्राचीनकाल के वर्णन में परवर्त्ती लोगों ने यह क्षेपक जोड़ दिये। पहले संस्कृतकाल के लोग ब्राह्मण क्षत्रिय थे जो पढ़े-लिखे थे। व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकारों के साथ जब स्त्री भी संपत्ति हो गई तब इसी को मानना श्रेयस्कर लगा। परवर्त्ती काल में हिंदू रूढ़िवादी हो गया था और उसने लकीर की फकीरी ग्रहण कर ली थी। जब अंग्रेजी राज्य आने पर, नये विचार आये तब वह महाभारत के इस सत्य को यों टालने लगा कि सब कुछ कल्पना है अतः साफ नहीं कहा जा सकता। कारण था कि कुन्ती के ऐसे बच्चे स्वीकार करके वह अपने को विदेशियों के सामने गिराना नहीं चाहता था। अब तो प्रगतिशील चिंतन ने इसे साबित किया है कि आर्थिक आधार जब समाज में बदलते हैं तब स्त्री पुरुष के संबंध भी बदल जाते हैं। भारतीय विद्वान इसे कैसे माने। वह तो अभी तक भारत के इतिहास को उलझन मानता है। उलझन को साफ़ नहीं करता। उसे तो प्राचीन के गौरव से मतलब है, उसके अनुभव से अपने को अच्छा बनाने में वह असफल रहा है।

देवताओं की संतान को अस्वीकार करने का क्या कारण है ? कारण है महाभारत का साक्ष्य। एक विद्वान ने मुझे बताया था कि कीचक वध में द्रौपदी ने अपने पांच गंधर्व पति बताये थे, अतः पाण्डव गंधर्व थे। यह तर्क का गलत तरीका है। वहां गंधर्व भूत-प्रेत के रूप में प्रयुक्त हुआ है और तब पाण्डव छिपे हुए थे। कैसे अपने को प्रगट कर देते ?

अब हम देवताओं के अंशों को देखें।

महाभारत में अंश और अवतार कौन नहीं था। यह सूची उपस्थित है—

अ. ६७ आ. प.

१. विप्रचित्ति	जरासन्ध
२. हिरण्यकशिपु	शिशुपाल
३. प्रह्लाद का छोटा भाई संह्लाद	वाल्हीक राजा शल्य
४. अनुज अनुह्लाद	धृष्टकेतु
५. शिविदैत्य	द्रुम
६. वाष्कल असुर	भगदत्त
७. अयःशिरा	केकय के ५ राजा
८. अश्वशिरा	
९. अयः शंक	
१०. गगनमूर्द्धा	
११. वेगवान्	
१२. असुर केतुमान	अमितौजा
१३. स्वर्भानु असुर	उग्रसेन
१४. असुर अश्व	अशोक
१५. अश्वानुज अश्वपति	हार्दिक्य
१६. वृषपर्वा	दीर्घप्रज्ञ
१७. उसका अनुज अजक	शाल्व
१८. अश्वग्रीव	रोचमान्
१९. सूक्ष्मासुर	बृहद्रथ
२०. तुहुण्ड	सेनाबिन्दु
२१. इषुपात्	नग्नजित्
२२. एकचक्र	प्रतिविंध्य
२३. विरूपाक्ष	चित्रधर्म्मा
२४. हर	सुबाहु
२५. अहर	बाल्हीक
२६. निचन्द्र असुर	मुंजकेश

२७. निकुम्भ दैत्य	देवधिप
२८. शरभ	पौरव
२९. कुपट	प्रतापी सुपार्श्व
३०. कपट	पार्वतेय
३१. शलभ	वाल्हीकराज प्रह्लाद
३२. चंद्र दैत्य	काम्बोज चंद्रवर्मा
३३. अर्क दानव	ऋषिक
३४. मृतपा दैत्य	पश्चिम अनूपदेश का राजा
३५. गविष्ट दानव	द्रुमसेन
३६. मयरासुर	विश्व
३७. मयूर भ्राता सुपर्ण दैत्य	कालकीर्त्ति
३८. चंद्रहन्ता असुर	शुनक राजर्षि
३९. चंद्रविनाशन असुर	जानकि
४०. दीर्घजिह्व दैत्य	काशिराज
४१. सिंहिका राक्षसी पुत्रराहु	क्राथ
४२. दनायु पुत्र विक्षर असुर	वसुमित्र
४३. विक्षर भ्राता	पाण्डयदेशराजा
४४. असुर पौण्ड्र	मत्स्य देश राजा
४५. वृत्र सुर	मणिमान
४६. क्रोधहन्ता असुर	दण्ड
४७. क्रोधवर्धन असुर	दण्डधार
४८. आठ कालेय असुर	मगध नरेश जयत्सेन अपराजित निषाद नरेश भीम पराक्रम श्रेणिमान् महौजा, अभीरु, समुद्रसेन, बृहत्
४९. कुक्षि दानव	पार्वतीय
५०. क्रथन असुर	सूर्याक्ष
५१. सूर्य्य असुर	दरद
५२. क्रोधवश असुरगण	मद्रक कर्णवेष्ट

	सिद्धार्थ
	फीटक (**कीकट?**)
	सुवीर, एकलव्य,
	सुवाहु, सुमित्र,
	महावीर, वाटधान,
	बाल्हिक, गोमुख,
	ऋथ, क्षेमधूर्त्ति,
	विचित्र, श्रुतायु,
	सुरथ, उद्वह,
	नील, बृहत्सेन,
	श्रीमान्, क्षेत्र,
	चीरवासा, उग्रतीर्थ,
	भूमिपाल, कलिंग नरेश कुहर,
	दन्तवक्त्र, मतिमान,
	दुर्जय, ईश्वर।
	रुक्मी
	आषाढ
	वायुवेग
	भूरितेजा
	करुष देश के राजगण
	इत्यादि
५३. कालनेमि असुर	राजा उग्रसेन पुत्र कंस।
५४. देवक असुर	गंधर्वपति।
१. बृहस्पति	भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य्य
२. महादेव यम काम क्रोध	अश्वत्थामा
३. ८ वसु—गंगा गर्भ से	भीष्म
४. रुद्रगण	कृपाचार्य्य
५. द्वापर	महावीर शकुनि
६. मरुद्गण	यादव सात्यकि
७. ,,	द्रुपद

८. मरुदगण	कृतवर्मा
	विराट् राजा
९. अरिष्टा पुत्र गंधर्व पति	व्यास पुत्र धृतराष्ट्र
१०. मरुद्गण	पाण्डु
११. अत्रि (सूर्य्य)	विदुर
१२. कलियुग	दुर्योधन
१३. पौलस्त्य दानवों से––	धृतराष्ट्र के १०० पुत्र।
१४. धर्म	युधिष्ठिर
१५. वायु	भीमसेन
१६. इंद्र और नर	अर्जुन
१७. अश्विद्वय	नकुल, सहदेव
१८. सोमपुत्र वर्चा	अभिमन्यु
१९. नारायण	कृष्ण
२०. अग्नि	धृष्टद्युम्न
२१. एक राक्षस	शिखण्डी
२२. सूर्य्य	कर्ण
२३. शेषनाग	बलदेव
२४. सनत्कुमार––	प्रद्युम्न
२५. अन्यदेवता	अनेक यादव
२६. अप्सराएं	कृष्ण की १६००० रानियां
२७. इन्द्राणी	द्रौपदी
२८. लक्ष्मी	रुक्मिणी
२९. सिद्धि	कुन्ती
३०. धृति	माद्री
३१. मति	सुवल पुत्री गांधारी

यहां स्पष्ट होता है कि अंशवाद अवतारवाद एक परवर्त्ती कल्पना है। ऐसे ही राम रावण युद्ध में वानर आदि के जन्म वृत्तांत को देखा जा चुका है। पुराने इतिहासकार अंश और अवतार इसलिये लिखते थे कि गुणानुसार स्मृति बनी रहे। इस सूची से एक लाभ है। कम से कम यह तो अधिकांश में प्रगट हो जाता है कि कौन परवर्त्ती थे और कौन पूर्ववर्त्ती। अब यह नहीं कहा जा सकता कि कौन ठीक किस समय हुआ, परंतु एक रूप-रेखा अवश्य बन जाती है। यह भी प्रतीत होता है कि पूर्ववर्त्ती लोगों की परंपरा में, किस शकल में याद बची रह गई थी।

अब महाभारत के उस साक्ष्य को देखना चाहिये जिससे स्पष्ट होता है कि कुन्ती

के पुत्र मनुष्यों के पुत्र थे। अब ऊपर के कुन्ती पाण्डु के संवाद के मोटे शब्दों के वाक्यों को दुहरा लेना चाहिये जो स्पष्ट कहते हैं कि यह परंपरा उस समय उत्तर कुरु में चल रही थी। यही प्राचीन धर्म था। यह यक्षवाद था अर्थात् देवयुगीन स्त्री पुरुष स्वातंत्र्य।

दूसरे, घटना हुई शतशृंग पर्वत के पास, हिमालय के उत्तर में। शतशृंग कौन सी जगह थी। देवयुगीन सभ्यता की। ऊपर संजय ने जो उत्तर देशों का वर्णन किया है उसका हमने देवयुग के दूसरे अध्याय में उल्लेख किया है।

जब अर्जुन पैदा हुआ तो समस्त देवयुगीन लोग आते हैं। नाग, गरुड़, अरुण, गंधर्व, अप्सराएं इत्यादि। गंधर्व राज तुम्बुरु, भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्च्चा, प्रगय, तृणप, कार्किण्ण, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्ज्जन्य, कलि, नारद, ऋत्त्वा, बृहत्त्वा, बृहक, कराल, ब्रह्मचारी, बहुगुण, सुवर्ण, विश्वावसु, भूमन्यु, सुचन्द्र, शरु और हाहा, हूहू गंधर्व गाने लगे।

अनूचाना, अनवद्या, गुणमुख्या, गुणावरा, अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, लम्बुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुवपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या और शारद्वती अप्सराएं नाचने लगीं। परंपरा ने पुरानी अप्सराओं को भी गिनाया है---स्वर्ग की कहकर---मेनका, सहजन्या, कर्णिका, पुंजिकस्थली, ऋतुस्थली, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ति, उम्लोचा, प्रम्लोचा तथा उर्वशी गाने लगीं। ये ग्यारह स्वर्ग की प्रसिद्ध अप्सराएं थीं।

कुन्ती ने तीन बार ऐसे पुत्र उत्पन्न करना ठीक बताया। चौथी बार स्त्री व्यभिचारिणी कहाती थी।

उस समय उत्तर कुरु में यह प्रथा थी। आज भी हिमालय प्रांत में इस प्रथा को मानने वाली पहाड़ी जातियां हैं जिनके यहां अतिथि का घर की लड़की हर प्रकार से सत्कार करती है। जौनसार के वासी तो अपने को अब पाण्डव वंशज कहते हैं। उनके यहाँ एक एक स्त्री के अनेक पति होते हैं। दक्षिण भारत में भी ऐसी जातियां हैं।

१२७ अध्याय में तो यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। पाण्डु के मरने पर सिद्ध ऋषिगण पाण्डु तथा माद्री का शव पहुंचाने हस्तिनापुर गये। वहां यक्षों के साथ ऋषि कुन्ती को पहुंचाने गये थे सो अंतर्धान हो गये। यह अलौकिकता क्यों जोड़ी गई? ताकि लोग इस पर प्रश्न न करें। मान लें। पर इसके बावजूद भी महाभारतकार, जो पुराना था, असली बात नहीं छिपा पाया। कौरव इसके विरुद्ध थे, यह आगे प्रगट होगा। पर प्राचीन ऋषि परंपरा तब तक मान्य थी अतः तत्कालीन समाज के लोग यद्यपि इसे त्यक्त समझते थे, पर खुला विरोध नहीं कर पाते थे।

१४० अध्याय १०–१८ में दुर्योधन ने भरी सभा में कहा था : शूरों और नदियों के जन्म का वृत्तांत कोई नहीं जानता। चराचर विश्व में व्याप्त तेजस्वी अग्नि का जन्म (नीचगामी) जल से हुआ है। दानवों का नाश करने वाला वज्र दधीचि की हड्डियों से

बना है। कुमार कार्त्तिकेय के जन्म का भी कुछ निश्चय नहीं। उन्हें कोई अग्नि का, कोई कृत्तिका का, कोई रुद्र का और कोई गंगा का पुत्र कहते हैं। क्षत्रियों से उत्पन्न विश्वामित्र ब्राह्मण हो गये हैं। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य्य द्रोण कलश में (? कोई मनुष्य-स्त्री या पुरुष!) से उत्पन्न हुए हैं। औरों की कौन कहे तुम पाण्डवों का जन्म जिस तरह हुआ है वह भी मुझसे छिपा नहीं है।

स्पष्ट हुआ। दुर्योधन की बात का किसी ने जबाव नहीं दिया। अगर यह सब देवताओं की संतान थे तो क्यों सब लोगों ने उठकर विरोध नहीं किया?

वरन् १८–१९–२० में वर्णन है कि दुर्योधन की बात पूरी होते ही रंग भूमि में चारों ओर साधुवाद का कोलाहल गूंज उठा। इस सभा में द्रोण, कृप, तथा अन्य स्थलों पर वेदव्यास का जन्म वृत्तांत इनमें से कुछ भी छिपा हुआ नहीं था। कुन्ती अपने पुत्रों तक से लोक लाज के कारण कर्ण जन्म के विषय में नहीं कह सकी।

कुछ लोग कह सकते हैं कि अधिकांश लोग पांडवों के देवताओं के द्वारा जन्म लेने की कथा पर विश्वास नहीं करते, इसीलिये सभा में कोई न बोला। लेकिन प्रश्न है कि फिर अल्प मत ने ही क्यों स्वीकार कर लिया? इस सबका तात्पर्य स्पष्ट है। कुन्ती के सब पुत्र मनुष्य पुत्र थे और पाण्डव शतशृंग में पैदा हुए, जो उत्तर कुरु की सीमा था। उत्तर कुरु में स्त्री पुरुष स्वतंत्र थे। यक्षवाद को ऊपर देखा जा चुका है। प्राचीन परंपरा के रूप में आर्य्यों ने इसे स्वीकार कर लिया। वैसे अब आर्य्यों के समाज में मर्यादा बदल गई थी। पति के रहते कुन्ती ने जो नियोग से गर्भ धारण किये उन्हें तो उसने स्वीकार कर लिया, किंतु जो अकेले कानीनावस्था में किया था उसे वे समाज के डर के मारे नहीं कह सकी।

महाभारत के नये नये लेखकों ने उसे चमत्कार और दिव्य बना कर सब कुछ छिपा देना चाहा ताकि लोग इस पर फिर विश्वास नहीं करें। लेकिन महाभारत के मूल लेखक के लिखे हुए तथ्य बीच में आजाने के कारण वह बात छिपी नहीं।

१२८ अ० में पाण्डु का राजसी वैभव से दाहकर्म हुआ। तत्कालीन मृत-शोक कैसे मनाया जाता था इस अध्याय से अच्छा प्रगट होता है।

१२९ अ० ६०–७० पाण्डवों का नागों से भी संबंध था। आर्यक नाग कुन्ती के पिता शूरसेन का नाना था। उसने भीम को बचा लिया।

आर्यक नागों की एक उपशाखा थी, यह ऊपर देखा जा चुका है।

१३० अ० भीम नागलोक से घर लौट आया।

द्वापर में धनी और दरिद्र में भयानक भेद हो गया था। १३७ अ० में द्रुपद की द्रोण के प्रति उक्ति सारगर्भित है: ब्राह्मण! तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। अतुल विभवशाली राजा श्रीहीन लोगों के साथ कभी मित्रता नहीं कर सकते। समय पाकर मित्रता भी नष्ट हो जाती है। जिनका धन और बल बराबरी का है, उन्हीं में परस्पर शत्रुता और मित्रता हो सकती है। इसलिये तुम मित्रता को भूल जाओ।

ब्राह्मण दरिद्र हो गये थे। द्रोण को पानी में चावल घोल कर 'दूध' की जगह अपने बच्चे को पिलाना पड़ा। तपोवन में लोग हंसने लगे (१३४–अ०)। द्रोण ने भार्गवों से शस्त्र विद्या सीखी थी (१३२ अ० ३०–४०)। द्रोण को एक गाय तक मांगने से न मिली (१३४–३५–४०)। निर्धन द्रोण धनोपार्जन नहीं कर सका तो ब्राह्मण उसे धिक्कारने लगे। द्रोण को धन के लिये पराई सेवा करनी पड़ी। वे कुरु वंश के बच्चों को अस्त्र शिक्षा देने लगे (१३५अ०)। यहां वृष्णि और अन्धक वंश के यादव भी द्रोण से युद्ध विद्या सीखने आये (१३५ अ०–१०)। इसी अध्याय में ३० से ६० तक एकलव्य की वह कथा है जो आर्य्य राजकुलों के गौरव की गाथा को स्पष्ट कर देती है। हिरण्यधनु नामक निषाद-पति का पुत्र एकलव्य अस्त्र शिक्षा प्राप्त करने आया। द्रोण ने उसे शिष्य स्वीकार नहीं किया। एकलव्य चरणों में माथा नवा कर लौटा गया। आगे की कथा प्रसिद्ध ही है। उसका अंगूठा द्रोण ने गुरु दक्षिणा में मांग लिया। जब अंगूठा मिल गया और एकलव्य से धनुष नहीं चला तब अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। "पृथ्वी पर तुम से बढ़ कर धनुर्द्धर और कोई न होगा द्रोण ने यह जो अर्जुन से प्रतिज्ञा की थी वह सत्य बनी रही।"

यह है कथा का आर्य्य बयान। अब निषादों को याद करना ठीक है। हमने अंगरेज़ी राज देखा है जिसमें ढाका के जुलाहों के अंगूठे अंगरेज़ों ने इसलिये कटवा लिये थे कि वे मलमल बहुत अच्छा बनाते थे और अंगरेजी कपड़ा व्यापार उससे खतरे में था।

यह कहना असत्य तब होता जब द्रोण कम-से-कम एक वर तो एकलव्य को देते। वह भी नहीं। और आगे देख पड़ेगा कि इस निषादराज एकलव्य को कृष्ण ने मार डाला। संभव है राजकुल का गौरव आज इन शब्दों में कर्णकटु लगे पर कर्ण के संबंध में यह शीघ्र ही स्पष्ट होगा और याद रखना चाहिये कि दास के लिये उस समय भी एक ही बात थी—'यथाकाम बध्याः दासाः' अर्थात् (जैसे रोम साम्राज्य में) इच्छा पर दास का बध किया जा सकता था। दास की कोई संपत्ति नहीं हो सकती थी। शूद्र की कोई संपत्ति नहीं हो सकती थी।

और १४८ अ० ओलैम्पिक होने लगे। रंगभूमि पर वीर राजकुमार अपना कौशल दिखलाने लगे।

दुर्योधन ने कर्ण की वीरता देखकर उसे अपना मित्र बनाना ठीक समझा। वह पाण्डवों से डरा हुआ था (१३६)। कुन्ती अर्जुन और कर्ण को युद्ध के लिये तत्पर देख अचेत हो गईं। परंतु वे यह नहीं कह सकीं कि यह सूर्य्य भगवान् की संतान कर्ण मेरा पुत्र है। उस समय जब कि दो वीर टक्कर पर खड़े थे, कृपाचार्य्य ने राजकुल के दंभ से कहा: अपना कुल बताओ, कर्ण? क्योंकि राजपुत्र लोग अज्ञात-कुल-शील पुरुष से या नीच कुल से उत्पन्न पुरुष से द्वन्द्व-युद्ध नहीं करते।

कुल गर्व का कांटा कर्ण के चुभ गया।

कर्ण लज्जा से झुक गया। दुर्योधन ने कहा: राजवंश, अच्छा कुल या वीर पुरुष,

तीनों राजत्व के योग्य हैं। मैं कर्ण को अंग देश का राजा बनाता हूं।

दुर्योधन ने कर्ण को खरीद लिया।

१४०. पर तभी अधिरथ सारथी (सूत) जिसने कर्ण को पाला था वह आ गया। कर्ण ने उस भरी सभा में भी उसके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया क्योंकि उसने कर्ण को पाला था।

भीम ने तब कहा : सूतपुत्र ! तुम राजकुल के पुरुष से युद्ध करने योग्य नहीं हो। जाकर घोड़े हांको। जैसे कुत्ता यज्ञ की हवि में मुँह नहीं डाल सकता, वैसे ही तुम अंग राज्य का उपभोग करने योग्य नहीं हो।

दुर्योधन ने स्वयं पाण्डवों के जन्म पर शंका उठाई। और कहा : जो इसे नहीं सह सके वह आकर युद्ध करें।

उस भरी सभा में कौरवों के वयोवृद्ध बैठे थे। एक ने भी नहीं कहा कि कुन्ती के पुत्र देवताओं के पुत्र हैं। उनका कर्ण से क्या मुकाबिला। एक भी नहीं बोला। तभी सूर्य्य अस्त हो गया।

मशालें हाथ में लिये उजेला करते हुए नौकर लोग आगे-आगे चले।

कुन्ती कर्ण को पहचान मन-ही-मन प्रसन्न हुई। पर उस ने कुछ कहा नहीं।

१४१. तब द्रोण के शिष्यों ने द्रुपद से बदला लेने को उस पर हमला किया। युद्ध अपने व्यक्तिगत मानापमान के बहाने के लिये होते थे। सृंजय और पांचालों का कौरवों-पाण्डवों से युद्ध हुआ।

(६१–६२) द्रुपद कुरुवंशियों के संबंधी थे।

जब द्रोण के सामने द्रुपद लाया गया तब महावीर परमत्यागी ब्राह्मण द्रोण ने कहा : मैंने तुम्हारा राज्य छीन लिया है। तुम्हारे नगर को लूट लिया है।

अर्थात् तुम्हारी प्रजा को लूट लिया है।

फिर क्षमाशील ब्राह्मण ने गंगा के दक्षिण किनारे का राज्य द्रुपद को दिया और गंगा के उत्तर की ओर का राज्य स्वंय ले लिया।

द्रोणाचार्य्य अहिच्छत्र देश का शासन करने लगे।

अहिच्छत्र का नागों से संबंध था यह प्रसिद्ध है।

१४२. अ० अर्जुन महा धनुर्द्धर प्रसिद्ध हुए। सहदेव ने उद्धव से नीति शास्त्र पढ़ा। नकुल अतिरथी हुए। जिस सौवीर देश के राजा ने गंधर्वों के उपद्रव करने पर भी तीन वर्ष तक निर्विघ्न रूप से यज्ञ किया उसे युद्ध में अर्जुन ने मारा। पाण्डु जिस यवन राज (?) को न मार सके, उसे अर्जुन ने मारा। विपुल सौवीर राज ने कुरु वंश का दबाव न माना तो उसे अर्जुन ने मारा। सौवीर दत्तामित्र और सुमित्र को हराया। अर्जुन ने पूर्व और दक्षिण जीते।

धृतराष्ट्र की नींद गायब हो गई। राज्य ! राज्य के लिये। संपत्ति और अपने पुत्रों

के अधिकार के लिये। सत्यवती ने इसी राज्य के लिये नियोग से संतानोत्पत्ति कराई थी।

१४३. अ० तत्कालीन राज्यों पर अच्छा प्रकाश डालता है। राज्य चलते कैसे थे ? धर्म और सत्य के अवतार, मनुष्यों में श्रेष्ठ ब्राह्मण और क्षत्रिय, अपना शासन यों चलाते थे। ब्राह्मण-श्रेष्ठ कणिक ने धृतराष्ट्र को नीति सिखाई। वे मंत्री थे। बोले : राजा को चाहिये कि वह नित्य दण्ड देने के लिये उद्यत रहे। अपने पौरुष को प्रजा और शत्रुओं को दबाने के लिये प्रगट रक्खे। जो राजा नित्य दंड देने के लिये उद्यत रहकर कड़ा शासन करता है उससे लोग बहुत डरते हैं (ध्यान रहे, अब राजा 'विश' के चुनाव से नहीं होते थे। राजगद्दी पैतृक संपत्ति थी)। शत्रु यदि बली हो तो तब उस पर वार करे जब वह विपत्ति में हो। इस विषय में धर्म अधर्म का विशेष विचार करना ठीक नहीं। शत्रु को विश्वास दिला कर––साम, दान आदि उपायों से––नष्ट करना ही राजा का कर्त्तव्य है। शरणागत शत्रु पर भी दया नहीं करनी चाहिये। शत्रु के मरने से खटका जाता रहता है। मरा हुआ शत्रु कुछ हानि नहीं कर सकता। पहले के अपकारी शत्रु को भी, उसके कर्मचारियों को धन का लाभ देकर मिला कर, उनके द्वारा मरवा डालना चाहिये। अग्निहोत्र, यज्ञ दीक्षा, गेरुए कपड़े, जटा और मृगछाला आदि के द्वारा शत्रुओं को विश्वास दिला कर, भेड़िये की तरह उन पर चोट करनी चाहिये अपना काम सिद्ध करने के लिये उक्त प्रकार की धूर्तता ही सब से अच्छा उपाय है। होशियार लोग काम निकालने के लिये मौका देखते हुए शत्रु को कंधे पर चढ़ाये रखते हैं। जब मौका पाते हैं, तब पत्थर पर घड़े की तरह, उसे गिरा कर चूर-चूर कर देते हैं।

गीदड़ की कथा सुना कर कणिक ने फिर कहा : गीदड़ नीति से चलने वाला राजा नित्य अधिकाधिक सुख भोगता है। कायर को डर दिखा कर, वीर को विनय से, लोभी को धन देकर और बराबरी वाले तथा नीच को तेज दिखा कर अपना कार्य्य सिद्ध करना चाहिये।

झूठी सौगन्ध खाकर, धन देकर, विष दिलाकर, या माया जाल फैलाकर, जिस तरह हो सके, शत्रु को मार डालना ही नीति है। अपना वार करते समय, उसके पहले, और बाद को भी प्रिय ही बोले। अपने वार से दूसरे का सर्वनाश होते देख कर आप अनजान-सा बन कर उससे सहानुभूति दिखावे। शोक करे और रोनी सूरत बना ले। शत्रु को बहुत समय तक सांत्वना देकर, भलाई की बातें बता कर, अपनी **धर्मनिष्ठा** दिखाकर अपने ऊपर विश्वास दिलाना पहला काम है। (धर्म भी नहीं छोड़ा ?) उसके बाद जब शत्रु को नीति (कौन सी ? यही ?) की राह से विचलित देखे तब, घात पाकर, उस पर अपना वार करे। **नित्य धर्मनिष्ठा दिखाने वाला राजा यदि कोई घोर अपराध भी कर डालता है तो उसका वह दोष, काले बादलों से पहाड़ की तरह ढंक जाता है।** जिसको मार डालना हो उसके घर में रात को आग लगवा दे ; गरीब, ठग, चोर, परलोक पर विश्वास न रखने वाले नास्तिक आदि के द्वारा विष दिलवा दे। (गरीब क्योंकि उसे धन

खरीद सकता है ? ठग, क्योंकि समाज में वे पैदा हो गये हैं ? चोर, क्योंकि कुछ लोगों को संपत्ति नहीं मिली? नास्तिक क्योंकि वे ब्राह्मण के बनाये धर्म को नहीं मानते?) जिसे मारना हो उसका बड़ा आदर करे। अच्छी-अच्छी चीजें भेंट करे। उसे देखकर उठ खड़ा हो। आदर से सम्मान दे। उसके अंगों पर सिर झुका कर बातचीत करे। अपने हृदय के तीक्ष्ण भाव को छिपाये रहे। बहुत ही विश्वास दिलाकर उस पर चोट करे।

जिस पर विश्वास भी करे तो अत्यंत विश्वास न करे, क्योंकि ऐसे अति विश्वास वाले पुरुष से प्राप्त भय टाले नहीं टलता। जासूस रखे। दूसरों के राज्य में पाखण्डी, तपस्वी आदि के वेष में जासूस घुसा दे। अपनी भलाई के लिये हाथ जोड़ कर, सौगंध खा कर, विनय करके, पैरों पर सिर रख कर, आशा देकर, शत्रु से काम निकालना चाहिये। मौका पाकर सर्वनाश कर डाले।

अच्छे या बुरे किसी उपाय से दीनता दूर करके अपना उद्धार करना चाहिये।

जो मनुष्य किसी पर संदेह करना नहीं जानता, उसकी भलाई नहीं होती।

मछुए जैसे मछलियों के अंग काटते हैं वैसे शत्रुओं के मर्मस्थल को काटे बिना दारुण कर्म बिना किये राजा को विशाल संपत्ति नहीं मिलती।

अर्थ की कामना रखनेवाले दो पुरुष कभी मित्र नहीं हो सकते (?) अर्थसंपन्न पुरुषों में मित्रता का भाव नहीं रहता; इससे किसी की इच्छा पूरी न करे—अधूरी रखे ताकि वह उलझा रहे। शत्रु को वश में अथवा नष्ट करने के लिये कोई उपाय उठा न रखना चाहिये। पूर्ण रूप से साम-दाम भेद, दण्ड आदि का प्रयोग करके अपने भले की चेष्टा करनी चाहिए।

समय पाकर विग्रह (युद्ध) करे।

देश और काल को देख कर काम करने से ही सफलता और कल्याण होता है। यह नीति का निश्चय और निचोड़ है। हे राजन्! पाण्डवों से आप अपनी और अपने ऐश्वर्य्य की रक्षा कीजिये।

अस्तु! यह था धृतराष्ट्र का पाण्डवों, अपने भतीजों के प्रति प्रेम। यह सब क्यों था? मनुष्य इतना पतित क्यों था ? राज्य, ऐश्वर्य्य और संपत्ति के लिये। प्राचीन विश् में यह सब कहां था ? राम राज्य के बाद यह द्वापर आया था। यह राम राज्य का फल था ? और आगे हम देखेंगे कि कौरव पाण्डवों के धर्मयुद्ध का अंत 'धर्मस्थापना' नहीं कलियुग था। जैसे मुग़ल राज्य के लिये भाई भाई का खून करते थे, क्या यह वही नीति नहीं है?

जतुगृह दाह, लाक्षाभवन, सब इसी नीति के परिणाम थे।

१४८. अ० में विदुर और युधिष्ठिर म्लेच्छ भाषा बोलते हैं। यह प्रगट करता है कि म्लेच्छ भाषा का काफी प्रभाव था।

पुरोचन इन पाण्डवों पर अत्याचार करता था। पर यह सब चुप थे। अभी समय नहीं आया था।

पाण्डवों को जान बचा कर जंगल में भाग जाना पड़ा। पाण्डु पहले राजा हुआ था। उसके पुत्रों का अधिकार, धृतराष्ट्र के बेटों ने छीन लिया था। प्रजा चुप थी। उसे कोई दुःख न था। चाहे यह राजा हों, या वे।

१५५. अ० में हिडिम्बी राक्षसी भीम पर मोहित हो गई। उसने बताया कि इस वन में राक्षस रहते हैं।

१५६. अ० में भीम ने हिडिम्ब को ललकारा : रे राक्षसकुलाधम! राक्षसों के यश को कलंक लगाने वाले।

अर्थात् राक्षसों का भी यश था ?

१५७. हिडिम्ब वध हुआ। यह द्वन्द्व-युद्ध था। राक्षस द्वन्द्व युद्ध करते थे, एक साथ सब टूट नहीं पड़ते थे। अर्थात् उनमें भी कुछ नैतिकता थी।

१५८ अ० हिडिम्बा ने कुछ दिन भीम से 'जोड़ा विवाह' किया। घटोत्कच पैदा हुआ। इस विवाह को पाण्डवों और कुन्ती सबने स्वीकार किया।

अर्थात् राक्षस राज्य अभी तक वनों में थे। जोड़ा विवाह आर्य्यों में अवशिष्ट था। इसे पाप नहीं समझा जाता था।

१५९. तपस्वियों के वेश में पाण्डव शिकार करके मांस खाते थे। मार्ग में मत्स्य, त्रिगर्त्त, पांचाल, कीचक आदि देश पड़े। वे एकचक्रा नगरी में पहुंचे।

१६१. अ० में (३०–४०) ब्राह्मणी ने कहा है—पुरुष बहु विवाह कर सकते हैं। स्त्री एक पति के रहते, दूसरे पुरुष का आश्रय ले तो पाप लगता है।

१६६. अ० से प्रगट होता है कि वनों में रहने वाले राक्षस आर्य्यों पर भी अत्याचार करते थे। यह मनुष्य वध करने वाले थे।

१६८. अ० में वकासुर वध हुआ। उसके परिवार के लोगों ने मनुष्य वध न करने की प्रतिज्ञा की।

१७०. अ० द्रुपद के राज्य में याज और उपयाज सूर्य्य के उपासक थे। सूर्य्य पूजा उन दिनों चलती थी।

१७३. अ० गंगा किनारे अंगारपर्ण गंधर्व का राज्य था। अर्जुन का उससे युद्ध हुआ। गंधर्व मनुष्यों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। उसने गंधर्व जाति के घोड़े दिये। अर्जुन ने उसे अपनी अस्त्र विद्या सिखा दी।

१८७. अ०याचकों और ब्राह्मणों को स्वयंवर में दान दिया जाता था। ब्राह्मण दान पाने के लिये जाया करते थे।

१८८. अ० में स्वयंवर के वैभव का वर्णन है। राजकुल परस्पर स्पर्धा से बैठते थे।

१८९. अ० क्षत्रिय तथा नीचे समझे जाने वाले काम्बोज, मद्रराज शल्य, आदि

खरीद सकता है ? ठग, क्योंकि समाज में वे पैदा हो गये हैं ? चोर, क्योंकि कुछ लोगों को संपत्ति नहीं मिली? नास्तिक क्योंकि वे ब्राह्मण के बनाये धर्म को नहीं मानते?) जिसे मारना हो उसका बड़ा आदर करे। अच्छी-अच्छी चीजें भेंट करे। उसे देखकर उठ खड़ा हो। आदर से सम्मान दे। उसके अंगों पर सिर झुका कर बातचीत करे। अपने हृदय के तीक्ष्ण भाव को छिपाये रहे। बहुत ही विश्वास दिलाकर उस पर चोट करे।

जिस पर विश्वास भी करे तो अत्यंत विश्वास न करे, क्योंकि ऐसे अति विश्वास वाले पुरुष से प्राप्त भय टाले नहीं टलता। जासूस रखे। दूसरों के राज्य में पाखण्डी, तपस्वी आदि के वेष में जासूस घुसा दे। अपनी भलाई के लिये हाथ जोड़ कर, सौगंध खा कर, विनय करके, पैरों पर सिर रख कर, आशा देकर, शत्रु से काम निकालना चाहिये। मौका पाकर सर्वनाश कर डाले।

अच्छे या बुरे किसी उपाय से दीनता दूर करके अपना उद्धार करना चाहिये।

जो मनुष्य किसी पर संदेह करना नहीं जानता, उसकी भलाई नहीं होती।

मछुए जैसे मछलियों के अंग काटते हैं वैसे शत्रुओं के मर्मस्थल को काटे बिना दारुण कर्म बिना किये राजा को विशाल संपत्ति नहीं मिलती।

अर्थ की कामना रखनेवाले दो पुरुष कभी मित्र नहीं हो सकते (?) अर्थसंपन्न पुरुषों में मित्रता का भाव नहीं रहता; इससे किसी की इच्छा पूरी न करे—अधूरी रखे ताकि वह उलझा रहे। शत्रु को वश में अथवा नष्ट करने के लिये कोई उपाय उठा न रखना चाहिये। पूर्ण रूप से साम-दाम भेद, दण्ड आदि का प्रयोग करके अपने भले की चेष्टा करनी चाहिए।

समय पाकर विग्रह (युद्ध) करे।

देश और काल को देख कर काम करने से ही सफलता और कल्याण होता है। यह नीति का निश्चय और निचोड़ है। हे राजन्! पाण्डवों से आप अपनी और अपने ऐश्वर्य्य की रक्षा कीजिये।

अस्तु ! यह था धृतराष्ट्र का पाण्डवों, अपने भतीजों के प्रति प्रेम। यह सब क्यों था ? मनुष्य इतना पतित क्यों था ? राज्य, ऐश्वर्य्य और संपत्ति के लिये। प्राचीन विश् में यह सब कहां था ? राम राज्य के बाद यह द्वापर आया था। यह राम राज्य का फल था ? और आगे हम देखेंगे कि कौरव पाण्डवों के धर्मयुद्ध का अंत 'धर्मस्थापना' नहीं कलियुग था। जैसे मुग़ल राज्य के लिये भाई भाई का खून करते थे, क्या यह वही नीति नहीं है?

जतुगृह दाह, लाक्षाभवन, सब इसी नीति के परिणाम थे।

१४८. अ० में विदुर और युधिष्ठिर म्लेच्छ भाषा बोलते हैं। यह प्रगट करता है कि म्लेच्छ भाषा का काफी प्रभाव था।

पुरोचन इन पाण्डवों पर अत्याचार करता था। पर यह सब चुप थे। अभी समय नहीं आया था।

पाण्डवों को जान बचा कर जंगल में भाग जाना पड़ा। पाण्डु पहले राजा हुआ था। उसके पुत्रों का अधिकार, धृतराष्ट्र के बेटों ने छीन लिया था। प्रजा चुप थी। उसे कोई दुःख न था। चाहे यह राजा हों, या वे।

१५५. अ० में हिडिम्बी राक्षसी भीम पर मोहित हो गई। उसने बताया कि इस वन में राक्षस रहते हैं।

१५६. अ० में भीम ने हिडिम्ब को ललकारा : रे राक्षसकुलाधम ! राक्षसों के यश को कलंक लगाने वाले।

अर्थात् राक्षसों का भी यश था ?

१५७. हिडिम्ब वध हुआ। यह द्वन्द्व-युद्ध था। राक्षस द्वन्द्व युद्ध करते थे, एक साथ सब टूट नहीं पड़ते थे। अर्थात् उनमें भी कुछ नैतिकता थी।

१५८ अ० हिडिम्बा ने कुछ दिन भीम से 'जोड़ा विवाह' किया। घटोत्कच पैदा हुआ। इस विवाह को पाण्डवों और कुन्ती सबने स्वीकार किया।

अर्थात् राक्षस राज्य अभी तक वनों में थे। जोड़ा विवाह आर्य्यों में अवशिष्ट था। इसे पाप नहीं समझा जाता था।

१५९. तपस्वियों के वेश में पाण्डव शिकार करके मांस खाते थे। मार्ग में मत्स्य, त्रिगर्त्त, पांचाल, कीचक आदि देश पड़े। वे एकचक्रा नगरी में पहुंचे।

१६१. अ० में (३०-४०) ब्राह्मणी ने कहा है—पुरुष बहु विवाह कर सकते हैं। स्त्री एक पति के रहते, दूसरे पुरुष का आश्रय ले तो पाप लगता है।

१६६. अ० से प्रगट होता है कि वनों में रहने वाले राक्षस आर्य्यों पर भी अत्याचार करते थे। यह मनुष्य वध करने वाले थे।

१६८. अ० में बकासुर वध हुआ। उसके परिवार के लोगों ने मनुष्य वध न करने की प्रतिज्ञा की।

१७०. अ० द्रुपद के राज्य में याज और उपयाज सूर्य्य के उपासक थे। सूर्य्य पूजा उन दिनों चलती थी।

१७३. अ० गंगा किनारे अंगारपर्ण गंधर्व का राज्य था। अर्जुन का उससे युद्ध हुआ। गंधर्व मनुष्यों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। उसने गंधर्व जाति के घोड़े दिये। अर्जुन ने उसे अपनी अस्त्र विद्या सिखा दी।

१८७. अ० याचकों और ब्राह्मणों को स्वयंवर में दान दिया जाता था। ब्राह्मण दान पाने के लिये जाया करते थे।

१८८. अ० में स्वयंवर के वैभव का वर्णन है। राजकुल परस्पर स्पर्धा से बैठते थे।

१८९. अ० क्षत्रिय तथा नीचे समझे जाने वाले काम्बोज, मद्रराज शल्य, आदि

भी यहां आये थे। काम्बोज श्रेष्ठ नहीं माने जाते थे। कुछ उन्हें ईरानी मानते हैं।* यहां भोज भी आये थे।

१९०. अ० कर्ण से द्रौपदी ने कहा : "मैं सूतपुत्र को वरण नहीं करूंगी।"

कर्ण क्रोध से हंसकर चुप बैठ गया।

१९४. अ० पाण्डव ब्राह्मण वेश में द्रौपदी को स्वयंवर में जीतकर, स्त्री के पीछे होनेवाले युद्ध में राजाओं को हराकर, कुम्हार के यहां पहुंचे जहां वे ठहरे हुए थे।

द्रौपदी पांचों भाइयों की पत्नी हुई, यह कुन्ती की आज्ञा से हुआ। यह भी देवयुगीन परंपरा थी।

१९५. अ० पाण्डव यहां भिक्षा पाकर रहते थे।

कर्ण के विषय में ज्ञात था कि वह सूत था, अतः द्रौपदी ने उसे स्वीकार नहीं किया। लेकिन स्वयं पाण्डवों के विषय में द्रुपद ने धृष्टद्युम्न से पूछा— (१४–१८) किसी नीच जाति के पुरुष ने, शूद्र ने या 'कर' देने वाले वैश्य ने तो मेरी कन्या द्रौपदी को जीत ले जाकर मेरे सिर पर पैर नहीं रखा?

१९८ अ० (२०–३०) युधिष्ठिर ने कहा : द्रौपदी हम सब भाइयों की धर्मपत्नी होगी। माता ने ऐसी ही आज्ञा दी है।

द्रुपद ने कहा : बहुपत्नी सुनी गई है, बहुपति नहीं सुने।

युधिष्ठिर ने कहा : धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। हम लोग उसकी जटिल समस्याओं को समझ नहीं सकते। **पूर्व पुरुष जिस राह पर चले हैं उस पर हम चल भर सकते हैं**। मैंने कभी असत्य नहीं कहा। मेरी प्रवृत्ति अधर्म में नहीं होती। मेरी माता की आज्ञा है कि द्रौपदी हम पांचों की धर्मपत्नी हो। यह अटल धर्म है।

१९९ अ० १०—२० में युधिष्ठिर ने फिर कहा है कि गौतम—नंदिनी जटिला ने सात ऋषियों के साथ ब्याह किया था। ऐसे ही मुनिकन्या वार्क्षी का ब्याह एक नाम वाले दस प्रचेताओं के साथ हुआ था।

व्यास ने कुन्ती से कहा : भद्रे, तुमको झूठ बोलने के पाप में लिप्त न होना होगा। जो तुमने आज्ञा दी है, **वह सनातन धर्म के अनुकूल है**। धर्म की व्यवस्था के अनुसार इसे सनातन धर्म ही मानना चाहिये।

२०० अ. में व्यास ने एक पूर्व जन्म की कथा एकांत में सुनाई। इसमें शिव, पांच इन्द्र-विश्वभुक, भूतधामा, शिवि, शान्ति, तेजस्वी तथा एक स्त्री की कथा है। पाण्डव आदि उन्हीं के अवतार थे।

२०१. में शंकर को धर्म अधर्म का जिम्मेदार ठहराया गया। यह विवाह शंकर का विधान ठहराया गया। (शंकर अनार्य्य देवता थे। यक्ष, राक्षसों के देवता?)

---

* ट्राएइं पृ० २, काम्बोज।

शल्य की निंदा कर्ण ने की थी जो आगे देखेंगे

परंतु यह कथा सभा में नहीं सुनाई गई। द्रुपद मान गये। परंतु सभा ने कैसे स्वीकार कर लिया? सीता के अग्नि-प्रवेश तक को तो लोगों ने माना नहीं था, यहां व्यास के कह देने भर से मान लिया कि यह सनातन धर्म है? इत्यलम्।

विवाद बढ़ाना व्यर्थ है।

द्रुपद ने १०० रथ, चार घोड़े वाले, एक सौ अलंकृत हाथी, सुसज्जित एक सौ जवान दासियां, एक एक दामाद को दीं।

पाण्डव इन दासियों, धन और द्रौपदी को लेकर द्रुपद के यहां रहने लगे।

दास प्रथा कितनी बढ़ गई थी!

२०२. अ. कृष्ण ने भेंट के तौर पर पाण्डवों को गहने, कपड़े कंबल, दुशाले, सैकड़ों जवान अलंकृत दासियां, गजराज, उत्तम घोड़े, रथ, मोहरें, छकड़ों सोना, भेजा।

धर्मराज ने वे ले लिये।

आदिपर्व २१६ अ. में अर्जुन ने युधिष्ठिर और द्रौपदी को एकांत में बैठे देखा और वे वन चले गये। यह वन यात्रा १२ वर्ष की हुई।

२१७ अ. हरद्वार में नागकन्या उलूपी मिली। कौरव्य नाग के अग्निहोत्र में अर्जुन ने हवन किया। उलूपी एरावत वंश में उत्पन्न कौरव्य नाग की पुत्री थी। उससे अर्जुन ने *एक रात्रि के लिये विवाह किया।*

२१८. अ. अर्जुन पूर्व की ओर बढ़े। कलिंग देश के प्रारंभ होने पर वे ब्राह्मण जो अर्जुन के साथ थे, उनकी अनुमति लेकर लौट आये। मणिपुर में चित्रवाहन की पुत्री चित्रांगदा थी। यह शैव थे। पुत्री को पुत्रिका मानते थे अर्थात् उसका पहला बालक नाना का होगा। यही कन्या का शुल्क था।

तीन वर्ष अर्जुन चित्रांगदा से विवाह करके वहीं रहे और पुत्र होने पर तीर्थयात्रा पर चल दिये।

२२१. अर्जुन पश्चिम के प्रभासतीर्थ में पहुंचे। कृष्ण से वहां जाकर मिले। भोज, *अंधक और वृष्णि वंश ने उनका स्वागत किया। वे द्वारका पुरी गये।*

२२२. रैवतक पर्वत पर यादवों ने एक उत्सव किया। वहां हलधर अपनी स्त्री रैवती सहित वारुणी के मद में मत्त होकर घूम रहे थे। यहां गंधर्व जाति के लोग थे। गाते बजाते थे। अक्रूर, सारण, गद, बभ्रु, विदूरथ, निशठ, चारूदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यक, सात्यकि, भंगकार, हार्दिक्य, उद्धव आदि अपनी अपनी स्त्रियों को लिये अलग-अलग घूम रहे थे।

यहां (२०--३५) कृष्ण ने अर्जुन को सलाह दी कि यदि वे उनकी बहिन सुभद्रा पर मोहित हैं तो उसे ज़बर्दस्ती हर कर ले जायें क्योंकि यह ज़रूरी नहीं था कि स्वयंवर में सुभद्रा अर्जुन को ही वरती। उस समय के धर्मज्ञ क्षत्रियों की स्त्रियों का अपहरण ही श्रेष्ठ समझते थे।

इसलिये हे मित्र अर्जुन, चुपचाप भगा ले जाओ। अभी किसी को भी नहीं मालूम।

धर्मराज के पास दूत भेजकर अनुमति मांगी गई। धर्मराज ने अर्जुन और कृष्ण के विचार का अनुमोदन करके आज्ञा दे दी।

२२३. अ० में सुभद्रा रैवतक पर्वत पर देवीपूजन करने गई। देवी पूजन इस वर्णन के अनुसार आर्यों में काफी प्राचीन काल में ही स्वीकार कर लिया गया था। अर्जुन सुभद्रा को हरकर ले चला।

यादव सैनिक चिल्लाने लगे। वे सुधर्मा सभा में गये। सभापाल से अर्जुन का हाल कहा गया। सभापाल ने तुरंत युद्ध का डंका बजवा दिया। उस शब्द को सुनकर खाना पीना वगैरह जरूरी काम भी छोड़ कर भोज, अंधक, और वृष्णि वंश के सब यादव इकट्ठे होने लगे। वे सब बहुमूल्य आसनों पर सभा में बैठ गये। सभापाल ने सुभद्रा हरण कथा सुनाई। यादव क्रुद्ध हो गये।

परंतु जनार्दन कृष्ण चुप थे। जब पूछा गया तो उन्होंने कहा—२२४ अ. अर्जुन ने हमारे वंश का अपमान नहीं, बल्कि मान किया है। पाण्डव हमें धन का लोभी नहीं मानते। उन्होंने स्वयंवर की राह इसलिये नहीं देखी कि उसमें संदेह था। पशु की तरह कन्या को देना ही कौन पसंद करेगा? और धन लेकर संतान बेचना किसे रुचेगा? इसलिये अपहरण में क्या बुराई है? यह क्षत्रियधर्मानुकूल है।

यादवों की सभा मान गई। अर्जुन से सुभद्रा का विवाह हुआ और वे एक वर्ष सुख से वहीं रहे। फिर पुष्कर में रहे। १२ वर्ष बाद खाण्डवप्रस्थ लौट गये।

स्पष्ट है यादव गण था। और कृष्ण की दृष्टि में स्त्री का सामाजिक अधिकार कुछ भी नहीं था। स्वयंवर में मुमकिन है स्त्री वह न करे, जो उससे चाहा जाये, तो क्यों न ताकत आज़मा ली जाये।

उस समय राजतंत्र हो या गणतंत्र क्षत्रियों में सब जगह एक ही सा प्रभाव पड़ रहा था। यह तब हाल था जब सुभद्रा कृष्ण की बहिन थी।

अर्जुन जब अपने नगर पहुंचे तब उन्होंने लाल रेशमी कपड़े पहिन रही सुभद्रा को ग्वालिन के वेश में रनिवास में भेजा। (क्या यादव ग्वाले थे? या आभीरों में पले कृष्ण की बहिन का इस प्रकार परिचय दिया गया?)

खाण्डवप्रस्थ में पाण्डव, कृष्ण, बलभद्र, वृष्णि, अंधक तथा भोज वंशी अनेक यादव एकत्र हुए।

इस नगर में धनी सौदागर थे। वासुदेव ने सुभद्रा के ब्याह के उपलक्ष में यातुक (दहेज़) स्वरूप बहुत-सा धन दिया (दहेज चल पड़ा था)। घोड़े, गायें, घोड़ियां, खच्चर, हजार दासियां भी दीं। यह सब भी धन थे। हाथी दिये। वाल्हीक के कंबल और घोड़े उस समय भी प्रसिद्ध थे। कौरवों और यादवों का समागम हुआ।

यहां कौरव पाण्डवों को कहा गया है। जब अन्य यादव चले गये कृष्ण और अर्जुन

वहीं रह गये। सुभद्रा के समय आने पर अभिमन्यु पैदा हुआ।

धौम्य ने पाण्डवों के बालकों के सब संस्कार करवाये। वे उनके पुरोहित थे।

२२५ अ. में कृष्ण और अर्जुन सुंदरी स्त्रियों को लेकर यमुना तट पर बिहार करने गये। उस समय खूब मदिरा भी पी गई।

२२६ अ. यहां एक ब्राह्मण ने आकर खाण्डव वनदहन की प्रार्थना की। इसे अग्नि कहा गया है। इस वन के रक्षक इन्द्र (देवों के अवशेष ?) थे। नागराज तक्षक वहां अपने चरों के साथ रहता था (तक्षक एक नाग वंश था यह ऊपर देखा जा चुका है)। ब्राह्मण कई बार प्रयत्न करके भी उस नाग और उसके साथियों का कुछ नहीं बिगाड़ सका था।

२२७. अ. में यद्यपि क्षेपक जैसी एक बहुत लंबी कहानी है कि अग्नि को अजीर्ण हो गया परंतु सत्य इतना स्पष्ट है जो अर्जुन ने कहा है—(१५–२०) युद्ध में नागों और पिशाचों को मार सकें।

अर्थात् खाण्डव तक्षक की भूमि थी। पहले वह कुरुक्षेत्र में रहता था इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

२२६ अ. में कृष्ण और अर्जुन ने खाण्डव को जलाना शुरू कर दिया।

१—२ उस समय महारथी अर्जुन और श्री कृष्ण उपवन के चारों ओर घूम-घूम कर भाग रहे असुर, पिशाच आदि का नाश करने लगे। जिधर खाण्डववासी प्राणी भागते देख पड़ते थे उधर ही ये दोनों वीर दौड़ पड़ते थे।

वास्तव में यह आर्यों के वे युद्ध थे जो वे यहां के अनार्यों से लड़ते थ। १–१० तक ऐसा वर्णन है जैसे मनुष्य मारे जा रहे थे। जला कर मारना एक निहायत बर्बर तरीका था।

२३०. अ. में उल्लेख है कि महाबली नागराज तक्षक उस समय कुरुक्षेत्र को गया हुआ था। उसका पुत्र अश्वसेन वहां था। बड़ी मुश्किल से अपनी माता नाग-नन्दिनी की सहायता से निकल भागा किंतु अर्जुन ने उसकी माता का सिर तीर मार कर काट दिया। अश्वसेन धोखा देकर भाग निकला।

१०. क्रुद्ध होकर अर्जुन, श्री कृष्ण और अग्नि ने अश्वसेन नाग को शाप दिया कि तू जगत में प्रतिष्ठाहीन होकर रहेगा।

आर्यों ने यह इतिहास लिखा है। तभी ऐसा वर्णन है। अनार्य लिखते तो अर्जुन को स्त्री का हत्यारा कहते। एक तो स्त्री को मारा दूसरे तीनों नाराज इस पर हुए कि अश्वसेन जीवित क्यों निकल गया ? गोया मर जाना चाहिये था।

इस युद्ध में असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, नागगण, अयःकणप, चक्राश्म तथा भुशुण्डी जैसे हथियार लेकर अर्जुन और कृष्ण पर हमला करते हैं। अगर नाग जाति तथा अन्य अनार्यों से यह युद्ध नहीं था तो और इसका क्या अर्थ हो सकता है ?

३०—४० तक सारे देवता ही अर्जुन और इन्द्र पर टूट पड़े। देवता हार कर भाग गये।

२३१. अ० में आकाशवाणी हुई : नागराज तक्षक भस्म नहीं हुआ। वह खाण्डवदाह के समय कुरुक्षेत्र को चला गया था।

३८ तथा आगे के श्लोकों में मय दानव, शार्ंगक पक्षी (संभवतः कोई टाटेम जाति) इस ध्वंस से बच गये।

२३४–५ मन्दपाल ऋषि थे। उनकी स्त्री जरिता थी। चार पुत्र थे—जरितारि, सारिसृक्क, स्तम्बमित्र, द्रोण।

२३५–२० में अग्नि ने द्रोण को ऋषि कहा है।

विडालों को भस्म किया गया। विडाल टाटेम के लोग आज तक भारत में हैं।

२३६ अ. में मन्दपाल ने लपिता से कहा है कि मैं पुत्रोत्पन्न करने के लिये ही भ्रमण करता हूं। संभवतः वे यायावर थे।

२३७ अ. में कृष्ण ने देवताओं से वर मांगा कि उनकी अर्जुन से सदैव मित्रता बनी रहे। मय दानव, कृष्ण और अर्जुन यमुनातट पर एक जगह बैठे।

इस प्रकार खाण्डवदहन हुआ।

सभापर्व. १. अ. में मय दानव ने पाण्डवों के लिये एक सुंदर सभा बनाने का काम उठाया।

२ अ. कृष्ण पिता से मिलने, बुआ कुन्ती से मिलकर, द्वारका चल पड़े। युधिष्ठिर ने उनका रथ हांका, अर्जुन ने चंवर डुलाया। कृष्ण ने युधिष्ठिर के चरण छुए।

३ अ. में मय दानव ने पाण्डवों के लिये सभा बनाने का विचार किया और वह सामग्री लेने मैनाक पर्वत पर गया।

मय नाम के संभवतः कुछ दानव थे जो शिल्प चतुर थे। इन लोगों ने शिल्प और स्थापत्य में ख्याति प्राप्त की थी। मय ने उत्तर दिशा का उल्लेख किया है। उसमें कैलास, मैनाक, दानव, वृषपर्वा (प्राचीन), विन्दु सरोवर, राजा यौवनाश्व, वरुण के शंख का वर्णन है।

मय पूर्व-उत्तर दिशा को गया। विन्दुसर पहाड़ भगीरथ काल में ज्ञात हुआ था या संभवतः और भी पहले पूर्व-ही-पूर्व में हिमालय पथगामी आर्यों को वह स्थान मिला था। हमने ऊपर लिखा है कि भगीरथ जहां गंगा का स्रोत देखने गया था वहां शंकर के उपासक थे। वही तथ्य यहां भी कहा गया है कि 'वह प्रजा अब तक (वहां) उनकी (शिव) उपासना करती है।' वह स्थान किंकर राक्षसों द्वारा रक्षित था।

सभा का जो वर्णन महाभारत में है वह संभाव्यरूप से अतिशयोक्ति है। किंतु उस काल में भी सुंदर भवन बनते थे जो आश्चर्य में डाल सकते थे। उससे भी बहुत प्राचीन काल में जो मिस्र में पिरैमिड बनी है, जो मसाले लगाकर शवों को सुरक्षित रखा जाता था, वे सब आज भी देख कर विस्मय होता था। उस समय पेंच पर वज़न उठाने की तरकीब

नहीं मालूम थी। दास इसी से भार उठाने में बहुत मरते थे। महाभारत में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

४. अ. में युधिष्ठिर ने पहले घी-शक्कर से तर खीर, स्वादिष्ट फल-मूल, वराह और मृग का मांस खिला कर हजारों ब्राह्मणों को गोदान दिये। फिर मयनिर्मित सभा में गये।

मल्ल (पहलवान), झल्ल (लठैत), नठ, सूत, बन्दी जन वहां थे।

निम्नलिखित महर्षि आये थे : असित, देवल, सत्य, सर्पिर्माली, महाशिरा, अर्वा, वसु, सुमित्र, मैत्रेय, शुनक, **बलि**, बक, दालभ्य, स्थूलशिरा, **कृष्णद्वैपायन**, **शुकदेव** (?),* सुमन्तु, जैमिनि, पैल, तित्तिर, याज्ञवल्क्य, पुत्रसहित लोमहर्षण, अप्सुहोम्य, धौम्य, अणीमाण्डव्य, कौशिक, दामोष्णीष, चैबलि, पर्णाद, घट जानुक, मौन्जायन, **वायुभक्ष** पाराशर्य (?) (व्यास के अतिरिक्त कोई और ?), सारिक, बलिवाक, सिनीवाक, सत्यपाल, कृतकाम, जातूकर्ण, शिखावान्, आलम्ब, पारिजातक, महाभाग पर्वत, महामुनि मार्कण्डेय, पवित्रपाणि, सावर्ण आमुकि, गालव, जंघाबंधु, रैभ्य, कोपवेग, भृगु, हरिबभ्रु, कौण्डिन्य बभ्रुमाली, सनातन, काक्षीवान (?), औशिज, नालिकेत, गौतम, पैंग्य, वराह, शाण्डिल्य, शुनक, (दूसरे), कुक्कुर, वेणुजंघ, कालाम, कठ इत्यादि।

इन नामों में स्पष्ट ही गड़बड़ी है। यहां निम्नलिखित राजा थे :

१. मुन्जकेतु
२. विवर्द्धन
३. संग्रामजित्
४. दुर्मुख
५. उग्रसेन
६. कक्षसेन
७. अपराजित क्षेमक
८. काम्बोजराज कमठ
९. **यवन** विमर्दक कम्पन
१०. **जटासुर**
११. मद्रराज
१२. कुन्तिभोज
१३. **किरातराज पुलिन्द**
१४. **पुण्ड्रक**
१५. **अंग**

* परीक्षित के समय १६ बरस के थे, तीन पीढ़ी पहले यहां कैसे आ गये ? संभव है कोई और हों।

१६. बंग
१७. पाण्ड्य
१८. उड्रराज
१९. अन्धक
२०. सुमित्र
२१. शत्रुदमन
२२. शैव्य
२३. किरातराज सुमना
२४. यवनाधिपति चाणूर
२५. देवरात
२६. भीमरथ
२७. भोज
२८. श्रुतायुध
२९. कलिंग (?)
३०. जयसेन
३१. मागध (?)
३२. सुकर्मा
३३. चेकितान
३४. शत्रु मर्दन पुरु
३५. केतुमान्
३६. वसुदान
३७. वैदेह
३८. कृतक्षण
३९. सुधर्मा
४०. अनिरुद्ध
४१. महाबल श्रुतायु
४२. दुर्द्धर्ष अनूपराज
४३. सुदर्शन क्रमजित्
४४. शिशुपाल
४५. करूष नरेश
४६. वृष्णिवंश के देवरूपी कुमार

आहुक, विपृथ, गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्मा, शनिपुत्र सत्यक, भीष्मक, आकृति, द्युमत्सेन,

४७. धनुर्द्धर केकय-नरेश-गण
४८. चंद्रवंशी यज्ञसेन
४९. केतुमान् (दूसरा ?)
५०. वसुमान्

इत्यादि।

५. अ० क्षेपक है। इसमें उत्तर मीमांसा का उल्लेख है जो स्पष्ट ही परवर्ती है।

१३. अ० में युधिष्ठिर का नाम 'अजातशत्रु' पड़ गया। उन्होंने राजसूय यज्ञ करना चाहा। वह 'सर्वजित्' कहलाता था। राय लेने के लिये कृष्ण को द्वारका से बुलाया गया।

१४. अ० कृष्ण ने तत्कालीन राजवंशों को उल्लिखित किया है। कहा : इस समय जो क्षत्रिय कहे जाते हैं वे पहले के क्षत्रियों की अपेक्षा हीनपराक्रमी और निकृष्ट हैं **क्योंकि जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने पूर्व समय में क्षत्रियों का नाश कर दिया था।** [इससे स्पष्ट हो जाता है कि भीष्म और अन्यान्य द्वापरकालीन व्यक्तियों के संबंध में जो परशुराम का उल्लेख होता है सो वह परशुराम एक दूसरा व्यक्ति है। यह दूसरा व्यक्ति प्राचीन परशुराम के कुल का व्यक्ति है, अर्थात भार्गव वंश को यह उपाधि मिली है। वे लोग जो फरसा रखते थे—और ऐसे लोग अभी तक विहार में हैं—सुना जाता है, इन्हें Axe-Cult (परशु-उपाशक) माननेवाला कहते हैं।] निकृष्टहीन पराक्रमी क्षत्रियों ने **एकत्र होकर जो कुलों के नियम आदि चलाये हैं उन्हें आप भी जानते हैं। इस समय के अधिकांश क्षत्रिय राजा अपने को इला और इक्ष्वाकु की संतान कहते हैं। इला और इक्ष्वाकु की सन्तानों से सौ कुल पैदा हुए। उनमें भोजवंश के राजा ययाति का कुल ही पृथ्वीमण्डल भर में प्रसिद्ध और श्रेष्ठ है।**

राजन्! सब क्षत्रियकुल अपने पूर्वजों के राज्य-ऐश्वर्य का उपभोग करते आते थे, किंतु **वर्त्तमान समय में मगध-नरेश राजा जरासन्ध ने अपने बाहुबल से सब राजाओं को वश में कर लिया है। वह एकाधिपत्य कर रहा है।** जो अखण्ड और अद्वितीय हो वही राजसूय कर सकता है।

जरासन्ध का मित्र तथा सेनापति शिशुपाल है। करूष देश का राजा वक्र, जरासन्ध के शिष्य के समान उसकी उपासना करता है। हंस और डिम्भक दो पराक्रमी राजा उसके सहायक हैं। वक्रदन्त, करभ और मेघवाहन भी उसके साथ हैं। मुरु और नरक देश के शासक, यवनाधिपति, पाण्डुमित्र, वृद्ध भगदत्त इस समय जरासन्ध के अनुकूल हैं। (कृष्ण के) मामा पुरुजित् पश्चिम-दक्षिण के एक श्रेष्ठ शासक उसी के मित्र हैं। चेदिदेश में मोहवश सदा मेरे चिह्नों को धारण करने वाला, वंग-पुण्ड्र—किरात देशों का अधिपति, मिथ्या वासुदेव, महापराक्रमी पौण्ड्रक जरासन्ध के आधीन था। पाण्ड्य-क्रथ-कौशिक-देश-विजेता, भीष्मक भी जरासन्ध-भक्त था। (कृष्ण) हम इन भीष्मक के नातेदार हैं। पर वे हमारी ओर नहीं।

अठारह भोजकुल और उत्तर देश के राजा जरासन्ध से डर कर पश्चिम दिशा को चले गये हैं। शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व, पटच्चर, सुस्थल, सुकु, कुलिन्द, (अनार्य ?)कुन्ति, शाल्वायन आदि वंशों के राजा, दक्षिण-पाञ्चाल के राजा, पूर्व-कौशल के राजा, सब कुन्ति देश को चले गये हैं। मत्स्य और संन्स्तपाद देश के राजा दक्षिण में भाग गये हैं। पाञ्चाल देश के भी सब राजा जरासन्ध के डर से राज्य छोड़कर इधर उधर भाग गये हैं।

यादव अंधक कंस ने जरासन्ध की अस्ति, प्राप्ति नामक दो कन्याओं से विवाह किया था। वह अपने जातिवालों और कुटंबियों को दबाकर प्रधान बन बैठा (गण के स्थान पर राज्यतंत्र बनाया) ऐसा करने से कंस को सब घृणित और निंदित समझने लगे। भोजवंश के वृद्ध क्षत्रिय उसके अत्याचार को नहीं सह सके तब मेरे (कृष्ण के) पास आए। जाति का हित करने के लिए मैंने आहुक की बेटी सुतनु का विवाह अक्रूर से करा दिया और **बलभद्र की सहायता से कंस तथा सुनामा, दोनों को मार कर जाति का उपकार किया।** (बलभद्र और कृष्ण अलग-अलग मां की सन्तान थे।)

इस पर जरासन्ध ने हमला किया। अठारह कुल यादव मिलकर लड़ते तो भी तीन वर्ष में भी जरासन्ध से जीत न पाते, यह सबने मिलकर निर्णय किया। यह केवल मेरा (कृष्ण का) मत न था। किंतु सब राजाओं (गण के राजकुल) का ऐसा ही विश्वास था।

१७वीं बार जरासन्ध हंस और डिम्भक के साथ आक्रमण कर चढ़ा। (धोखे और छल से, झूठ से) हंस, डिम्भक मारे गये। बलभद्र ने एक हंस नाम के किसी राजा को मारा। किसी ने कह दिया कि हंस मारा गया। तब डिम्भक यमुना में स्वयं डूबकर मर गया। उसकी मृत्यु सुनकर हंस भी डूब गया। जरासन्ध की हिम्मत टूट गई। वह लौट गया। हम मथुरापुरी में आनन्द से रहने लगे।

हंस की स्त्री भी जरासन्ध की पुत्री थी। उसने पिता को बदला लेने को उकसाया। हमने तब भाग जाना ठीक समझा। शत्रु के डर से हम लोग बहुत-सी संपत्ति वहीं छोड़कर थोड़ी-सी आपस में बाँटकर और वही लेकर—सजातीय, पुत्र, बन्धु बान्धव आदि के साथ वहां (मथुरा) से भागकर रैवतक पर्वत से शोभित कुशस्थली नामक नगरी में जा बसे। कुशस्थली (द्वारका) में किले बनाकर, उनकी मरम्मत करके हमने अधिकार जमा लिया है (यनी जीत लिया है) वृष्णि पुरुषों के अतिक्ति वृष्णि स्त्रियाँ भी लड़ सकती हैं। १८ यादव कुलों के योद्धा उस गढ़ के रक्षक हैं।

हमारे (वृष्णि) वंश में १८ हज़ार भाई पैदा हुए हैं। आहुक के १०० बेटे हैं (वंश में हैं) यादवों में सात अतिरथी हैं:

१. चारुदेष्ण;

२. उसका अनुज चक्रदेव;

३. सात्यकि;

४. मैं (कृष्ण);

५. वलभद्र;

६. साम्ब;

७. प्रद्युम्न।

सात महारथी हैं:

१. कृतवर्मा;

२. अनाधृष्टि;

३. समीक;

४. समितिञ्जय;

५. कङ्कु;

६. शङ्कु;

७. कुन्ति।

अन्ध और भोज के दो पुत्र और वृद्ध राजा उग्रसेन, ये दस महावीर जरासन्ध के विरोधी और हमारे (वृष्णि के) साथी हैं।

[उपर्युक्त वर्णन यादव गण पर अच्छा प्रकाश डालता है।]

कृष्ण ने कहा: (युधिष्ठिर से) आप सम्राट बनें। **क्षत्रियों के बीच आपका सम्राट होना अत्यंत आवश्यक है।** (कृष्ण बिखरे हुए क्षत्रियों को एक झंडे के नीचे चाहते हैं। गण-राज्य के होकर भी सम्राट् चाहते हैं। किंतु निरंकुश सम्राट् नहीं।)

जरासन्ध शैव था। उसने नरबलि देने को राजाओं को पकड़ लिया था। उन राजाओं को छुड़ाइये। अतः जरासन्ध का वध आवश्यक है।

१५. अ० युधिष्ठिर ने कहा: राजसूय महायज्ञ आरंभ करके अंत को परम सुख-दायक फल पाने की आशा करना दुराशामात्र है। हमारे वंश के सब राजाओं का यही सिद्धांत रहा है। जान पड़ता है, **वे कभी सारी पृथ्वी को जीतकर वश में नहीं कर सके** (युधिष्ठिर का मन साम्राज्य-लोलुपता पर प्रश्न करता है। जीत? पर किसलिये?)

कृष्ण ने यहां बताया है कि सम्राट् पहले भी हो चुके थे। प्राचीन काल में—

१. युवनाश्व पुत्र मान्धाता। उसने 'कर' लेना छोड़ दिया।

२. भगीरथ ने प्रजापालन किया।

३. कार्त्तवीर्य ने तप करके (?)

४. भरत ने बाहुबल से।

५. मरुत्त ने धनबल से।

[इससे इतना भर प्रकट होता है कि सम्राट् होना बहुत पहले से शुरू हो गया था। मान्धाता बहुत पहले हुआ था। उसने 'कर' लेना बंद किया, यानी गणों को स्वतंत्र कर दिया। तब सबने उसे नेता माना।

सम्राट् शब्द का अर्थ बदलता रहा है। इन्द्र को भी सम्राट् कहते थे। वरुण को भी। भगीरथ ने भी प्रजा का पालन किया। कार्त्तवीर्य ने युद्ध से, भरत ने युद्ध से। यह सत्य के अंत त्रेता युग की बात है। मरुत्त कई हुए हैं। अतः निश्चय से नहीं कहा जा सकता। पर धनबल परवर्त्ती काल में बढ़ा था। अतः परवर्त्ती काल में ही समझना चाहिये। सम्राट् का अर्थ हुआ जो आर्य्य संस्कृति के लोगों को एक सूत्र में बांध सके। बाद में इसका अर्थ बदलता चला गया।]

एक सौ वंशों के इतने क्षत्रिय हैं। सबको दबाकर जरासन्ध एकछत्र राज्य कर रहा है। वह सबसे **जबर्दस्ती** 'कर' लेता है। उसने पशुपति के मन्दिर में ८६ राजा कैद कर रखे हैं। १०० होते ही वह उन्हें मार डालेगा।

जो जरासन्ध को जीतेगा वह सम्राट् हो जायगा।

[कृष्ण के चरित्र पर आगे विचार होगा। यहां हम केवल तथ्य एकत्र कर रहे हैं]

१६. अ० युधिष्ठिर साम्राज्य का इतना इच्छुक नहीं था। उसे जरासन्ध के डर से राज्यसूय यज्ञ ही नहीं जँचा।

अर्जुन ने कहा--क्षत्रिय को युद्ध करना चाहिये। **शांति की इच्छा रखने वाले मुनियों को गेरुआ कपड़ा पहनकर वन में रहना चाहिये। हम लोग साम्राज्य की इच्छा से शत्रुओं के साथ अवश्य युद्ध करेंगे।**

१७-१८. अ० जरासन्ध जरा राक्षसी द्वारा दिया हुआ समझा जाता था। वह आर्य था। (कुछ का मत है वह अनार्य था) जरा एक राक्षसी थी। वह इच्छारूप थी। उसका राज्य में सम्मान था। वह मनुष्यमात्र के घरों में रहती थी। ब्रह्मा ने दानवों के नाश के लिये, गृहदेवी नाम से पहले उसकी सृष्टि की थी। जो स्त्री अपने घर की दीवार में नव-यौवना पुत्रवाली स्त्री के रूप में उसकी मूर्त्ति बना देती थी उसका कल्याण होता था। आर्य बृहद्रथ के घर में भी उसकी मूर्त्ति थी।

[जरा कोई अनार्यों की उपास्य देवी थी। जैसे दक्षिण की मारी अम्मा या उत्तर भारत की सीतलामाई या साढ़ माई। आर्यों में वहां उसकी पूजा चल पड़ी थी। यह राक्षस देवी थी, दानवों की शत्रु थी। जरासन्ध उसकी देन समझा जाता था जैसे अकबर के बारे में मशहूर है कि उसका बेटा जहांगीर शेख़ सलीम चिश्ती के वर प्रसाद से हुआ था।]

जरा बच्चों को खाती थी।

[ऊपर कार्त्तिकेय के साथ बच्चों को खाने वाली देवियों का ज़िक्र हो चुका है। यह उस समय की कोई अनार्य देवी थी।]

मगध में इस जरा का उत्सव होता था।

१९. अ० जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज थी। उसने मथुरा तक आक्रमण किया। वृष्णि, कुक्कुर, भोज और अन्धक आदि यादव वंश भाग गये।

२०. अ० कृष्ण, अर्जुन और भीम ब्राह्मण वेष धरकर जरासन्ध को मारने चले।

कुरुदेश से चलकर, कुरुजांगल, पद्मसर, कालकूट पर्वत, गण्डकी नदी, महाशोण नद, सदानीरा नदी, सरयू नदी, पूर्वकोशल देश, मिथिला, माला और चर्मण्वती नदी पार करके, गंगा और शोण नद पार करके वे मगध पहुँचे। गोरथ पर्वत के पास जरासन्ध की राजधानी थी।

२१· अ० गिरिव्रज सुन्दर नगर था। वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक नाम के वहां पर्वत थे। लोध्रवृक्ष, पीपल, बहुत थे। प्राचीनकाल में **गौतम ऋषि ने औशीनरी नाम की शूद्रा के गर्भ से काक्षीवान् आदि पुत्र उत्पन्न किये थे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न होने पर भी महाराजा राज्य कर रहे थे** सो गौतम की कृपा ही थी। पूर्व समय में **अंग, बंग आदि देशों के राजा इस गौतम ऋषि के आश्रम में आकर यहां अपार आनंद पाते थे। अर्बुद, शक्रवापी, शत्रुदमन, स्वस्तिक और मणि नाम के नागों का यहीं निवासस्थान*** था। मगध में पानी काफी था। मेघों का मुँह नहीं ताकना पड़ता था। **मणिमान और कौशिक** की भी इस देश पर कृपा थी।

[स्पष्ट है यह आर्य अनार्य संसर्ग से हुए थे। तभी इन्हें असुर राक्षस भी कहा गया है। अनार्य प्रभाव इतना पड़ा कि किसी ने इन्हें व्रात्य कहा, किसी ने इन्हें अशुद्ध कहा। जरा गृहदेवी, शिव पशुपति की पूजा चलती थी। नाग जाति यहां रहती थी। अंग बंग से संबंध था जो अनार्य थे। और मणिमान की कृपा थी। मणिमान*, कुबेर के उपासक यक्षों का देवता है। यह भी अनार्य प्रभाव का द्योतक है।]

वहां चारों वर्ण थे।

ये तीनों सदर दरवाजे से नहीं घुसे। नगर चैत्य की राजा-प्रजा पूजा करते थे। चैत्यपूजा यक्षों में थी। मांसभोजी ऋषभ राक्षस को मारकर आर्य बृहद्रथ ने उसकी खाल से मँढवाकर नगाड़े रखवा दिये थे। उन नगाड़ों की पूजा होती थी (क्यों?)। इन तीनों ने उन्हें तोड़ डाला और चैत्य के पास पहुँचे जो बहुत पूज्य और पुराना था।

इन्होंने चैत्य तोड़ डाला।

ब्राह्मणों ने नगर में उत्पात देखकर जरासन्ध का स्वस्तिवाचन कर उसे हाथी पर चढ़ाकर उसके चारों ओर आग घुमा दी और जरासन्ध ने उस दिन उपवास किया।

इन तीनों ने बाजार में मालाएँ दूकानदारों से छीनकर पहन लीं।

जरासन्ध ने इन्हें ब्राह्मण समझकर इनकी अभिवादना की। उसने कहा कि तुम ब्राह्मण होकर रंगीन कपड़े पहनते हो? तुमने मेरी पूजा स्वीकार नहीं की? नगर का चैत्यकशिखर तोड़ दिया। तुम्हारे साथी (अर्जुन और भीम) मौनी हैं, मुझे संदेह होता है।

कृष्ण ने कहा : **ब्राह्मण ही नहीं, क्षत्रिय और वैश्य भी स्नातकव्रतधारी होते हैं।** हम क्षत्रिय हैं।

---

* वनपर्व १६० आगे देखिये।

२२. अ० जरासन्ध आर्यों का सजातीय था, यहां कृष्ण ने स्वयं कहा है। नरबलि का कृष्ण ने विरोध किया है। क्षत्रिय होकर क्षत्रिय की, पशु के समान बलि देना असह्य था ।

जरासन्ध ने कौशिक और चित्रसेन का स्मरण किया और द्वन्द्व युद्ध के लिये तैयार हो गया। (चित्रसेन गंधर्व था ?)

कुश्ती की कला का काफी विकास हो चुका था। बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। दर्शक खड़े रहे।

कृष्ण ने भीम को एक चालाक इशारा दिया कि शत्रु थक गया है उसे मार डालो।

२४. अ० भीम ने जरासन्ध को मार डाला, बंदी राजा छुड़ा लिये गये। जरासन्ध के पुत्र सहदेव को कृष्ण ने राज्य दे दिया। [यही कृष्ण की राजनीति थी। वे राज्य हड़पने के पक्षपाती नहीं थे। स्वयं गण के व्यक्ति थे अतः राजा होना उन्हें नापसंद था। पर वे गण और एकतंत्र के बीच का कोई लचीला विधान ढूंढ रहे थे। एक ओर ब्राह्मणों द्वारा कृत वर्णाश्रम उन्हें स्वीकृत था, तो दूसरी ओर उन पर उगते हुए पांचरात्र, भागवत संप्रदाय की सहिष्णुता का भी प्रभाव पड़ने लगा था। यादवों और पांचरात्र का पुराना संबंध था। निस्संदेह उस समय उसका वह रूप नहीं था जो हमारे सामने गीता तथा अन्य परवर्ती रूपों में प्रकट हुआ है ।]

कृष्ण द्वारका चले गये ।

जरासन्ध कौरवों का मित्र था। कर्ण को उसने मालिनी नाम की नगरी प्रसन्न होकर दे दी थी। कर्ण अंग और मालिनी दोनों का शासक था (शांतिपर्व ५ अ०)।

२५. अ० पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ के लिये दिग्विजय प्रारंभ की। राज्य का कोष बढ़ाना था। उसके लिये 'कर' (अर्थात् लूट) की आवश्यकता थी।

दिग्विजय २६—२७—२८——

(१) **अर्जुन उत्तर दिशा में गये।** (सेना ले कर) **जीते**

१. कुलिन्द (शीघ्र)
२. कालकूट, आनर्त्त, (राजा समुण्डल) (इन्हें साथ लिया)
३. शाकलद्वीप (प्रतिविन्ध्य राजा)
४. सप्तद्वीप के बीच शाकलद्वीप के सब राजा (घोर युद्ध) (इन्हें साथ लिया)
५. प्राग्ज्योतिषपुर (भगदत्त) इसकी सेना में **किरात, चीन** आदि थे। यह हारा नहीं, पर इसने प्रसन्न होकर 'कर' दे दिया।
६. अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, उपगिरि ।
७. उलूक देश का बृहन्तर राजा (इसे साथ लिया)।
८. देवप्रस्थ नगर का सेनाबिन्दु गद्दी से उतार दिया।

९. उत्तर, उलूकदेश के मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल, आदि राजा ।
१०. पंचगणदेश
११. पुरुवंशी विष्वगष्व। इसके पास महावीर पहाड़ी लोगों की सेना थी ।
१२. उत्सव-संकेत लुटेरी म्लेच्छ जाति के सात दल ।
१३. काश्मीर—दस सामन्त राजाओंसहित लोहित ।
१४. त्रिगर्त्त, दार, कोकनद स्वयं झुक गये ।
१५. अभिसारी नगरी ।
१६. उरगावासी और रोचमान राजा ।
१७. सिंहपुर ।
१८. (सुह्म और चोल)?
१९. वाल्हीक
२०. दरद, काम्बोज
२१. उत्तर-पूर्व दिशा के म्लेच्छ, जंगली जातियां ।
२२. लोह, परम काम्बोज, ऋषिक, उत्तर ऋषिक देश ने हरे रंग के ८ घोड़े 'कर' स्वरूप दिये ।
२३. हिमवान्, निष्कुट, श्वेत पर्वत ।
२४. किंपुरुषखंड में पहुँचे। वहाँ द्रुम राजा था। अनेक क्षत्रिय यहां युद्ध में नष्ट हुए। द्रुम ने कर दिया ।
२५. फिर यक्षों के द्वारा सुरक्षित **हाटक** (सोने का केन्द्र) नाम के स्थान को **सामनीति** से जीतकर मानसरोवर गये। वहां मुनि. कन्यायें देखीं ।
२६. वहां से हाटक देश के आसपास गंधर्वों के सुरक्षित देशों को जीता। गंधर्वों ने उन्हें 'कर'के रूप में तित्तिरि,कल्माष,मण्डूक आदि नाम वाले घोड़े दिये ।
२७. अर्जुन उत्तर-हरिवर्ष गये। वहां द्वारपालों ने रोक दिया। वह गंधर्व नगर था। कहा—

यहां पर जीतने की कोई चीज नहीं है। यह उत्तर कुरु देश है। यहां युद्ध नहीं हो सकता।

बिना युद्ध के 'कर' लेकर अर्जुन लौट आये ।

२९-३०. (२) **भीम पूर्व दिशा में गये, सेना लेकर जीते ।**

१. पांचाल देश के अपने संबंधियों को अनेक उपायों से अपना अनुगत बनाया ।
२. गण्डक, विदेह, जीते ।
३. दशार्ण (राजा सुधर्मा से बाहुयुद्ध) हटाकर उसे सेनापति बना लिया ।
४. अश्वमेधकर्त्ता रोचमान तथा अन्य अनुचरों को हराया ।
५. वहां से दक्षिण ओर स्थित पुलिंद देश के सुकुमार और सुमित्र ।

६. चेदिदेश के शिशुपाल ने नातेदारी में 'कर' दिया।
७. कुमार देश का श्रेणिमान्।
८. कोशल का बृहद्बल।
९. अयोध्या का याज्ञिक दीर्घयज्ञ।
१०. गोपाल कक्ष
११. उत्तर कोशल
१२. मल्ल देश के राजा।
१३. हिमवान् के निकटवर्त्ती जलाद्भेव देश के सब राजा।
१४. भल्लाटदेश।
१५. शुक्तिमानपर्वतवासी
१६. काशी के सुवाहु और सुपार्श्व देश के क्रथ, मत्स्य, मलद, अनध, अभय आदि के राजाओं से 'कर' लेकर पशुभूमि को अपने अधिकार में कर लिया।
१७. मदधार, महीधर, सोमधेय, उत्तर मुख।
१८. वत्सभूमि, भर्गराज, **निषादपति,** मणिमान् राजा।
१९. दक्षिण मल्ल, भोगवान् पर्वत के राजा, शर्मक, वर्मक राजा; विदेहराज जनक से कर लिया।
२०. विदेह में ही रहकर इन्द्रपर्वत के पास रहने वाले किरात जाति के ७ राजाओं को जीत लिया। सुह्म, प्रसुह्म।
२१. मगध के दण्ड, दण्डधार राजा जीते।
२२. जरासन्धपुत्र सहदेव को 'करद' बनाकर ढाढस दिया।
२३. सब राजाओं को साथ लेकर अंग देश के कर्ण को जीता। कई पहाड़ी राजा जीते।
२४. मोदापर्वत के राजा को बाहुयुद्ध में मारा।
२५. पुण्ड्र नरेश वासुदेव, कौशिकीकच्छ के राजा, बंग के समुद्रसेन, चन्द्रसेन, ताम्रलिप्त नरेश, कर्वट नरेश, सुह्माधिप समुद्र तटवर्त्तीम्लेच्छ जीते। फिर लौहित्य देश जीता।

म्लेच्छ राजाओं से रत्न, चंदन, अगरु, कपड़े, मणि, मोती, कंबल, सोना, चांदी, मूंगे, कर के रूप में लिये।

३१. (३) सहदेव दक्षिण गया। सेना ले कर जीते—

१. शूरसेन
२. मत्स्यराज
दन्तवक्त्र, सुकुमार, समित्र आदि राजा।

३. चोरदेश
४. निषादभूमि
५. पर्वतश्रेष्ठ गोशृंग
६. राजा श्रेणिमान
७. नर राष्ट्र
८. कुन्तिभोज का देश
९. चर्मण्वती नदी के किनारे जम्भक पुत्र, इससे पहले कृष्ण ने युद्ध करके इसे निर्बल कर दिया था।
१०. सेक, अपरसेक, देश
११. नर्मदातट पर अवन्ती देश राजा विन्दु अनुविन्द
१२. भीष्मक दुर्धर्ष
(भोजकट नगर)
१३. कोशलनरेश
१४. वेणा नदी के तीर के राजा
१५. कान्तारक (जंगली) लोग
१६. प्राकोटक, नाटकेय, हेरम्बक, मारुध राजा
१७. रम्यग्राम
१८. नाचीन, अर्बुक आदि जंगली राजा
१९. वाताधिप राजा लोग
२०. पुलिन्द
२१. पाण्ड्य देश—राजा
२२. किष्किन्धा में मैन्दद्विविद वानर राजों से युद्ध। वानर हारे नहीं पर प्रसन्न हो गये।
२३. माहिष्मती नगरी। नील राजा।
२४. त्रिपुर राज्य।
२५. पौरवेश्वर, सुराष्ट्र के राजा कौशिकाचार्य आकृति
२६. रुक्मी, रुक्मिणी (कृष्ण-पत्नी) के पिता यादव भीष्मक (दूसरे)
२७. शूर्पारक तालाकट, दण्डक
२८. समुद्र के टापुओं के म्लेच्छ राजा। निषाद, कर्ण प्रावर्ण, कालमुख इत्यादि राक्षस। कोलगिरि, सुरभीपट्टन, ताम्रद्वीप, रामपर्वत।
२९. राजा तिमिङ्गिल
३०. एक-पाद, केरल बनवासी जाति, सञ्जयन्ती नगरी के राजा, पाषण्ड देश, करहाटक देश, पाण्ड्य, द्रविड़, उड्र-केरल, अन्ध्र, तालवन, कलिंग, उष्ट्रकर्णिक,

रमणीय आटवीपुरी, यवनों की नगरी। समुद्रतट का कच्छ देश। लंका।

३२. (४) **नकुल पश्चिम गया। सेना ले कर जीते—**

कृष्ण एक बार पश्चिम दिशा जीत चुके थे। उसी दिशा में नकुल चले।

१. भगवान कार्तिकेय का प्रिय देश रोहीतक। मत्तमयूरजाति से युद्ध। मरुभूमि के राजाओं को हराया। शैरीष, महेत्थ राजा को हराया।
२. राजर्षि आक्रोश।
३. दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ, मालव, पञ्चकर्पट, मध्यमक क्षत्रियों और वाटधान ब्राह्मण हराये।
४. पुष्कर में उत्सव संकेत जाति म्लेच्छ।
५. समुद्रतटवर्त्ती ग्रामीणीय लोग
६. सरस्वती के पास के शूद्र और आभीर।
७. कैवर्त्त
८. पञ्चनद देश
९. अमर पर्वत
१०. उत्तर ज्योतिष देश
११. दिव्यकट, द्वारपाल नगरों को जीता
१२. रामठ, हारहूण
१३. कृष्ण वासुदेव
१४. मद्रदेश, शाकल नगर। मामा शल्य।
१५. दारुण म्लेच्छ समुद्री टापुओं में जीते। पह्लव बर्बर, किरात, यवन, शक इत्यादि।

इस वर्णन में गड़बड़ है। बहुत सी परवर्त्ती जातियां, नगर, देश, इत्यादि का वर्णन है। एक-एक नाम बारबार दुहरा भी दिया गया है। भारतवर्ष की प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक जातियों पर एक पूरा ग्रंथ लिखा जा सकता है। इस विषय को हम यहां विस्तार से नहीं देखेंगे। इससे इतना स्पष्ट होता है।

(१) उत्तर में देवयुगीन जातियाँ अवशिष्ट थीं।

(२) किरात, म्लेच्छ, पुलिन्द, कुलिंद इत्यादि थे।

(३) दक्षिण में असंख्य जातियां थीं।

(४) आभीर आ चुके थे।

(५) शुद्ध आर्य, अनार्य, मिश्रित आर्य सभी तरह के लोग थे।

(६) जिस प्रदेश के साथ आया है कि वहां के राजाओं को जीता उसका तात्पर्य गण व्यवस्था से लगाना चाहिये। ये प्रमुख राजवंश थे। विस्तार के लिये 'ट्राइब्स इन ऐंशेंट इंडिया' पढ़नी चाहिये।

यह विस्मय नहीं करना चाहिये कि बहुत सी जातियों में परिवर्त्तन नहीं आया। वे अपने ही ढर्रे पर चलीं। आज भी भारत में गोंड आदि जातियाँ हैं जो बहुत कम बदली हैं। वही ढर्रा चल रहा है।

३३. अ० इस अपार लूट की सम्पत्ति से युधिष्ठिर का भंडार साठस भर गया। राजसूय यज्ञ होना निश्चित हो गया।

कृष्ण सेना लेकर आ गये। निमंत्रण भेजे गये।

१. तेजस्वी ब्राह्मणों को ऋत्विक बनाया।
२. सत्यवतीपुत्र व्यास ब्रह्मा हुए
३. धनञ्जय गोत्रीय सुसामा, उद्गाता
४. ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य अध्वर्यु।*
५. वसुपुत्र पैल और धौम्य होता
६. इनके पुत्र होत्रगाता। यज्ञभूमि का पूजन हुआ।

दुर्योधन को भी निमंत्रण देने भेजा गया।

धर्मराज ने हर एक निमंत्रित व्यक्ति को अलग-अलग सैकड़ों हजारों गायें, सुवर्ण की शय्याएँ और दास-दासियाँ दीं।

३४. अ० यह रहे और आये भी।

१. धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, दुर्योधन आदि
२. गान्धारराज सुबल, शकुनि, अचल, वषक
३. कर्ण
४. शल्य, वाल्हीक, सोमदत्त
५. भरि, भूमिश्रवा, शल, कृपाचार्य्य
६. द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा
७. सिन्धुराज जयद्रथ
८. सपुत्र द्रुपद
९. शाल्व
१०. समुद्रतीर वासी म्लेच्छ
११. पहाड़ी जातियों के साथ प्रागज्योतिष्पुर के राजा भगदत्त
१२. वृहद्बल
१३. पौण्ड्रक वासुदेव
१४. बंग, कलिंग राज
१५. आकर्ष, कुन्तल राजा
१६. गालव और अन्ध्र राजा

*उपनिषद् वाले नहीं।

१७. द्रविड़ सिंहल राजा

१८. काश्मीर राजा

१९. कुन्तिभोज

२०. गौरवाहन

२१. वाल्हीक देश के राजा

२२. सपुत्र विराट

२३. मावेल्ल

२४. शिशुपाल

२५. यादवों के महारथी

३५. अ० दुर्योधन करद राजाओं से सामान वसूल करता था।

कृष्ण आये हुए राजाओं के पैर धोते थे जो सर्वश्रेष्ठ कार्य था।

जो सभा देखने आया था उनमें कोई ऐसा न था जो एक हजार स्वर्णमुद्रा से कम भेंट लाया हो।

दक्षिणा से जो जाता था, भेंट से भर जाता था।

३६. अ० कृष्ण को प्रथमार्घ्य दिया गया। शिशुपाल चेत गया।

३७. अ० शिशुपाल ने जो कहा वह ध्यान देने योग्य है। इसमें गाली होने के कारण पोलें खोली गई हैं। ऐसा ही कृष्ण का भी उत्तर है। इनमें अनेक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

शिशुपाल ने कहा—कृष्ण राजा नहीं है फिर राजा-महाराजाओं के बीच क्यों पूज्य है ? (कृष्ण गणतंत्र का व्यक्ति था। तभी जरासन्ध का, एकतंत्रवाद में विश्वास रखने वाला, मित्र, बिगड़ उठा) किंपुरुषकुल के मुखिया द्रुम की पूजा नहीं की ? (उसे अनार्य राजा स्वीकृत थे। मुखिया संभवतः गण जैसी वस्तु थी। परंतु उसमें शिशुपाल को बुरा नहीं लगा। इसमें शिशुपाल की व्यक्तिगत लड़ाई को भी ध्यान में रखना होगा)।

यहां एकलव्य को जीवित गिनाया गया है। (यह संभवतः भल है)

शिशुपाल उठकर सभा से चल दिया।

३८. अ० भीष्म ने समझाया। कहा कृष्ण, महाविजयी है।

३९. अ० शिशुपाल ने युद्ध के लिये उद्योग किया। राजाओं में दलबंदी होने लगी।

४०. अ० भीष्म अकड़ गया।

४१. अ० शिशुपाल ने भीष्म की निन्दा की। यहां महाभारत में कृष्ण के पूतना वध का उल्लेख है। कृष्ण को **गोप** कहा गया है। बकासुर, वत्सासुर तथा केशी का कृष्ण द्वारा वध उल्लिखित है। "कृष्ण ने मामा को मार डाला। कंस को। यह पेटू है। गोवर्धन उठाने पर मैं विश्वास नहीं करता।" (अगर उठाया होता तो वह अवश्य करता।) कृष्ण ने (पूतना) स्त्री-हत्या की है। यह आदमी अहिंसा का ढोंग करके हिंसा करता है। भीष्म ! तुम्हारे धर्म-

ज्ञान का क्या कहना है ! तुम्हारे सामने ही तुम्हारे भाई की स्त्रियों में, नियोगविधि से, दूसरे ने पुत्र उत्पन्न किये !

४३. अ० श्रीकृष्ण के सामने ही शिशुपाल का जन्म हुआ था। वह उनसे आयु में काफी छोटा था।

४५ : अ शिशुपाल ने कृष्ण को दास कहा। (दास से संभवतः नीच से तात्पर्य था। अथवा पशुपालक ग्वाला।)

कृष्ण ने कहा : हमारे प्राग्ज्योतिष पुर में जाने की खबर सुनकर यह दुष्ट (शिशुपाल) द्वारका चला आया। इसने रैवतक पहाड़ पर विहार करते पहले राजा भोज को, अनुचरों को मारकर, पकड़ लिया। इसने **मेरे पिता के अश्वमेध-यज्ञ में** विघ्न डाला (यादव गण थे किंतु अश्वमेध करते थे ?) इसने तपस्वी बभ्रु की स्त्री से बलात्कार किया। करूप देश के राजा के वस्त्र पहन विशालापुरी के राजा की कन्या भद्रा को धोखा देकर उड़ा लाया।

शिशुपाल ने कहा : जिस रुक्मिणी से मेरा विवाह होने वाला था उसे तुम चोरी से हर लाये।

कृष्ण ने भरी सभा में अपना पक्ष अच्छा देखकर शिशुपाल को मार डाला।

यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। युधिष्ठिर सम्राट् पद पा गये। पृथ्वी पर वे चक्रवर्ती राजा मान लिये गये।

कृष्ण द्वारका चला गया।

४९. अ० **हर एक ब्राह्मण की सेवा के लिये यज्ञ में युधिष्ठिर ने तीस-तीस दासियाँ रखी थीं**। काम्बोज राजा ने मृगछाला और कंबल भेजे थे। राजाओं ने विचित्र चौपाये दिये। पशुशाला भर गई। सैकड़ों ब्राह्मण सुवर्ण के कमंडल लिये दानार्थ आये पर भीड़ के कारण बढ़ न सके। (सोने के कमंडल में दान ?) किसानों और ग्वालों ने भेंट दी। वरुण का मधु (शराब) खूब चला था। शैक्य एक अस्त्र लेकर कोई भी पूर्व, पश्चिम, दक्षिण समुद्रों में जा सकता था, पर अर्जुन उत्तर दिशा भी गया था, जहां केवल पक्षी जा सकते थे (इतना दुर्गम पथ था)। **वैश्यों की तरह राजा लोग 'कर' लाये थे।**

५१ और ५२ अध्याय में दुर्योधन ने यज्ञ की भेंटों का वर्णन किया है।

१. काम्बोज से	भेंड़-बिल्ली मूषक के रोमों के बने ऊनी कपड़े। खच्चर, ऊंट।
२. किसान, गोपाल	सोने के घड़ों में घी
३. समद्र के निकट कार्पासिक देश	छरहरी अलंकृत दासियाँ। रंकु (ब्राह्मणों के पहनने योग्य) मृगछाला
४. गांधार	घोड़े

५. समुद्रतटवर्त्ती वन्य लोग तथा नहर से अपनी सिंचाई करने वाले लोग, वैराम, पारद, आभीर, कितव	कंबल, पशु, शहद
६. यवनराज भगदत्त	घोड़े। जड़ाऊ गहने
७. दो आँख के, तीन ,, ,, माथे पर ,, ,, औष्णीक अन्तवासी रोमक नरभक्षक एकपाद	खच्चर
८. वंक्षुतीर वासी	सोना-चांदी
९. एकपाद	जंगली घोड़े, सोना
१०. चीन, शक, ओड्र, बर्बर, वनवासी, हारहूण, नीपवासी, कृष्ण-हिमाचल-वासी अनूपवासी।	खच्चर, रेशम, शस्त्र, खच्चर, भेड़ की खाल, सुगन्धि की सामग्री।
११. शक तुषार भृंगी रोम वाले लोग	गजराज
१२. पूर्वी राजा	हाथीदांत के कवच नाराच।
१३. मेरु मन्दर के बीच शैलोद नदी तीर-वासी कीचक जाति, खस, एकासन, प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिन्द, तंगण, पर-तंगण	सोने का ढेर जिसे चिंटियां निकालती हैं।*
१४. हिमालयवासी	चँवर
उत्तर कुरुवासी	जलयुक्त मालाएँ, औषधियाँ
उत्तर कैलासवासी	

*देखिये, देवयुग में उल्लेख हुआ है।

	उदयाचलवासी करुषदेश समुद्रतीरवासी समुद्र तीर वासी लोहित पर्वत निकटवासी	अनेक उपहार
१५.	जोमिले फलफूल खाने वाले चमड़ा पहनने वाले, क्रूर कर्मा, असभ्य किरात*	अगरु, चंदन, दासियाँ, मृग, पक्षी।
१६.	दरद, दर्व, शूर, यमक, औदुम्बर, दुर्विभाग, पारद, वाल्हीक, काश्मीर, कुमार, घोरक, हंसकायन, शिवि, त्रिगर्त्त, यौधेय, मद, केकय, अम्बष्ठ कौक्कुर, तार्क्ष्य, वस्त्रप,पह्लव, वशातल मौलेय, क्षुद्रक, मालव, पौण्ड्रक, कुक्कुर, शक, अंग, वंग, पुण्ड्र, शाणवत्य, गय, कलिंग, मगध, ताम्रलिप्त, पुण्ड्रक, दौवालिक, सागरक, पत्रोर्ण, शैशव, कर्णप्रावर्ण	द्वारपालों ने रोक दिया। ऊंचे-ऊंचे हाथी देने पर भीतर जाने पाये।
१७.	गंधर्व	घोड़े
	शूकर देशवासी	हाथी
	मत्स्यवासी	हाथी
	राजावसुदान	हाथी
	राजा द्रुपद	१४ हज़ार दास दासी **स्त्रियों सहित १० हज़ार सेवक।** हाथी। घोड़े।
१८.	कृष्ण	हाथी।
१९.	चोलराज पाण्ड्यराज	चंदन का अर्क दर्दुर पहाड़ का काला गुरु महीन कपड़े
२०.	चारों वर्ण के लोग	उपहार
२१.	म्लेच्छ राजा	'कर'

विवाह संबंध होने के कारण पांचालराज द्रुपद और मित्रता के कारण यादव तो

*संभव है खेती न करने वाले।

कर देने से बच गये पर और सब राजाओं ने युधिष्ठिर की आधीनता स्वीकार कर ली।

उस समय का धन—५३. अ०

१. गायें। बैल (सोने से मंढे सींग)

२. पशु (उपयोगी) ऊंट, भेड़।

३. रथ, हाथी, घोड़े।

४. लकड़ी, कवच, कंबल।

५. सोना, चांदी, रत्न।

६. शस्त्र।

७. दास-दासियाँ।

रन्तिदेव, नाभाग, यौवनाश्व, मनु, पृथु, भगीरथ, ययाति, नहुष, किसी का भी युधिष्ठिर जैसा वैभव नहीं हुआ।

[इस समस्त दिग्विजय, इत्यादि में एक बात ध्यान देने योग्य है कि कहीं नाग जाति का नाम नहीं आता। क्यों ? नाग सबल थे। उनसे नहीं लड़ा गया ?]

५४. अ० धृतराष्ट्र ने राय दी कि पराया धन देखकर जलो मत, अपना मन यज्ञ, ब्राह्मणों को दान, प्रार्थियों की इच्छा पूर्ण करने, तथा बेखटके माला-चन्दन-उत्तम स्त्री आदि के भोग में लगाकर बुरे विचार भूल जाओ।

५५. अ० दुर्योधन ने बृहस्पति नीति सुनाई कि ज़बर्दस्ती दूसरे का धन छीनना, शत्रु को धोखे से मारना ठीक है क्योंकि साधारण लोक व्यवहार से राजा का व्यवहार अलग होता है। यह पृथ्वी अविरोधी राजा और परदेश न जाने वाले बरह्मण को खा जाती है। ऐसा शास्त्रों में कहा है।(युद्ध और यात्रा)।

५६. अ० दुर्योधन ने कहा : पहले के राजा भी जूआ खेलते थे। उनका नाश नहीं हुआ, न युद्ध हुआ।

५८. अ० युधिष्ठिर जूआ खेलने का आह्वान अस्वीकृत न कर सके (जूआ न खेलना अपमान और कायरता की निशानी थी)

६०. अ० भाईयों में जूआ होने लगा।

युधिष्ठिर ने निम्नलिखित वस्तु जूए में हारीं।—

१. सोने का हार (६०वां अ)

२. खजाना (६१वां अ०)

३. रथ

४. एक लाख दासियाँ

५. एक लाख दास

६. हाथी, हथिनियां

७. घोड़े, रथ, रथी

८. **जातरूप नामक सोना**

९. पशु (६५वां अ०)

१०. **ब्राह्मणों और उनके धन को छोड़कर नगर, गांव, जनपद, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र जाति की प्रजा और उनकी सब संपत्ति।**

(यह सब भी राजा की संपत्ति थी)

११. अपने गहने

१२. नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम।

१३. **स्वयं** (दास बनने के बाद उनकी संपत्ति क्या रही ?)

१४. द्रौपदी (दास बनने के बाद भी स्त्री संपत्ति ही रही)

६७. अ० द्रौपदी नंगी की जाने लगी। दासी को सभा में नंगा कर देना कोई बड़ी बात नहीं थी।

भीष्म ने द्रौपदी से कहा : स्वयं हारा हुआ आदमी, किसी का स्वामी न होने के कारण पराये धन को दाँव पर लगाकर हार नहीं सकता। और इसके साथ ही स्त्री सदा पति के आधीन है। अतः मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता।

६८. अ० जुआरियों को भी उन वेश्याओं को दाँव पर लगाने का अधिकार न था जो उनके घर रहती थीं। किंतु अपनी स्त्री को लगाया जा सकता था।

कर्ण ने कहा : द्रौपदी को दाँव पर लगाते समय पाण्डव चुप क्यों रहे ? देवताओं ने स्त्री के लिये एक ही पति की व्यवस्था दी है। किंतु उस नियम के विरुद्ध द्रौपदी पांच पुरुषों की स्त्री है। इसलिये उसे व्यभिचारिणी के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? व्यभिचारिणी को नंगा करने में क्या दोष है ? तुम पाण्डवों के भी कपड़े उतार लो।

यहाँ कृष्ण का नाम स्मरण करने पर द्रौपदी की लाज बच गई। मेरा विचार यह है कि भरी सभा में जहां कौरव और पाण्डव पक्षी अनेक राजा थे, तत्कालीन 'धर्म' के कारण, कौरव पक्ष का जोर बढ़ा हुआ था। किंतु यादवगण की समस्त शक्ति को सब जानते थे। वह दोनों ओर संतुलन करने वाली शक्ति थी। कौरवों को उन्हीं से खतरा था।

मेरा विचार है इसी कारण कौरव दब गये और फिर नंगा करने से रुक गये क्योंकि यह 'धर्म'–विरुद्ध था। (संभवतः इस विचार के आने पर ही धृतराष्ट्र भी घबरा गया।)

कौरव द्रौपदी को अपने महल में दासी बनाकर भेजने लगे।

उस समय द्रौपदी ने स्पष्ट कहा :

६९. अ० "पहले का सनातन धर्म यह था कि किसी की धर्मपत्नी सभा में नहीं लाई जाती थी।

मैं पाण्डवों की भार्या, धृष्टद्युम्न की बहिन और **वासुदेव की सखी** हूं। मैं धर्मराज **सवर्णा भार्या** हूं। मैं दासी हूं या नहीं ?"

७१. अ० दास, पुत्र और पराधीन स्त्री तीनों धनहीन कहे गये हैं। **निर्धन दास की पत्नी और दास का सब धन उस दास के पुत्र का होता है।** (यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। दास प्रथा का परिचय देती है)।

दासी का कोई खास पति नहीं होता।

सभा में स्त्री को लाना द्यूत कर्म के विरुद्ध माना जाता था।

द्रौपदी पर दया करके, तथा पाण्डवों का ध्यान करके धृतराष्ट्र ने पाण्डवों और द्रौपदी को दासता से मुक्त कर दिया और पाण्डवों को शस्त्र रखने के अधिकार दिये गये।

वैश्य को एक, क्षत्रिय की स्त्री को दो, राजा को तीन और ब्राह्मण को सौ बार तक मांगने का अधिकार था।

७२. अ० में भीम ने दुःशासन की छुई हुई द्रौपदी को अपवित्र माना। परन्तु अर्जुन ने स्वीकार नहीं किया।

७३. अ० पाण्डव खाण्डवप्रस्थ को चले।

७४. अ० फिर बुलवाया गया।

७६. अ० फिर द्यूत हुआ। यद्यपि लोगों ने समझाया, पर क्षत्रिय धर्म (द्यूत ?) और लज्जा (द्यूत अस्वीकार करना ?) के विचार से धर्मराज रुके नहीं। खेले। १२ वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास—यह शर्त्त रखी गई। कौरव जीत गये।

८०. अ० पाण्डवों ने वनगमन किया। प्रजा ने भी दुःख मनाया। द्रोण ने कौरवों को महायज्ञ करने की सलाह दी (अर्थात दान, दक्षिणा तथा लूट की राय दी)।

८१. अ० कौरव अब यह तरकीबें सोचने लगे कि तेरह बरस बाद पाण्डव पांचालों को साथ लेकर राज्य न मांग बैठें।

वनपर्व १०. अ० मैत्रेय ऋषि ने आकर दुर्योधन से कहा वह पाण्डवों से सुलह कर ले। किंतु दुर्योधन ने स्वीकार नहीं किया। मैत्रेय ने क्रुद्ध हो शाप दे दिया।

११. अ० काम्यक वन में राक्षसों का राज्य था। भीम ने किर्मीर को मारा। राक्षसों के इस वन में वनचारी और तापस लोग घुसते हुए डरते थे। दूर से ही उसे छोड़ जाते थे।

[एक बात ध्यान देने की है। राक्षस शब्द अब संभवतः नरभक्षक जातियों के लिये प्रयुक्त होने लगा था। जो असभ्य और जंगली हो, आर्यों का घोर शत्रु हो, जिसकी सामाजिक व्यवस्था आर्यों की सामाजिक व्यवस्था से भिन्न हो, जो आर्यों के धर्म को न मानता हो—ऐसे व्यक्तियों की जाति को राक्षस कह दिया था। जैसे मुसलमानों को परवर्त्ती काल में विदेशी मात्र होने के कारण यवन कह दिया जाता था। राक्षस जाति का अधिकांश समूह अब आर्य और आर्य जातियों में घुल चुका था। राक्षसों की विवाह-पद्धति तो क्षत्रियों में चल ही पड़ी थी।]

१२. अ० पाण्डवों के वनवास का संवाद पाकर भोज, अंधक और वृष्णि वंश के यादव उनसे मिलने आये। चेदिदेश का राजा धृष्टकेतु और केकय-राज दुर्योधन से क्रुद्ध

होकर पाण्डवों के पास आये (राजनैतिक दलबंदी प्रारंभ हो गई)।

कृष्ण ने यहां बताया है कि छल करने वाले दुरात्माओं को मार डालना ही सनातन धर्म है। [कृष्ण के चरित्र की यह भी एक बागडोर है।]

१४. अ० जब पाण्डवों पर यह विपत्ति पड़ी थी तब वृष्णिवंशी कृष्ण आनर्त देश में नहीं था। वह शाल्व के सौभनगर को नष्ट करने गया था। सौभ शाल्व ने दमघोषपुत्र शिशुपाल की हत्या का बदला लेने को हमला कर दिया। उसने अनेक वृष्णि बालकों को कृष्ण की अनुपस्थिति में मार डाला।

शाल्व के साथी दानव कहे गये हैं। कृष्ण का घोर युद्ध हुआ। जब नगर द्वारका घिर गया तब अंधक वंश के बहुदर्शी यादवों ने **नगर में मदिरा पीने की मनाही कर दी।** (इससे प्रकट होता है कि अच्छी मात्रा में यादव शराब पीने के शौकीन थे। कृष्ण गोसाइयों के उपास्य के रूप में कभी मदिरा का भोग नहीं लगा पाते) नटों को नगर से निकाल दिया गया। इशारा नियत कर दिया गया। उसे दिखाये बिना न कोई नगर में घुस सकता था, न बाहर जा सकता था। **सैनिकों की तनख्वाह चुका दी गई थी**। अर्थात् वैतनिक सैनिक थे। इस गण में प्राचीन गणों से यही भेद था। सेना का अधिकार राजकुलों को प्राप्त था।

१६. अ० शाल्व की सेना श्मशान वल्मीक, देवस्थान और **चैत्यवृक्षों के तले की जगह** (यक्ष प्रभाव) छोड़कर सर्वत्र डेरे डालने लगी।

जाम्बवती के पुत्र साम्ब युद्ध करते थे (जाम्बवती—ऋक्षराज की पुत्री थी। अर्थात् अभी तक ऋक्ष जाति थी।)

शाल्व की सेना में वेगवान् नाम का **असुर** था।

१७. अ० यादवों के रथ पर मछली के चिह्न वाली पताका फहराती थी।

२०. अ० कृष्ण ने महादेव को और ब्राह्मणों को प्रणाम करके रथ पर सवारी की। (कृष्ण पर अनार्य देवता महादेव का प्रभाव था) मार्त्तिकावत् नगर से कृष्ण समुद्रतट पर गये। वहां **दानव शाल्व, उसकी सेना और सामंतगण थे**। (काश्मीर तथा यहां भी सामंत-गण का उल्लेख हुआ है। सम्भवतः अनार्यों के समाज में यह प्रथा प्रारंभ होने लगी थी या यह परवर्त्ती लेखकों की भूल है।)

२२. अ० शाल्व मारा गया। इसी झगड़े के कारण कृष्ण नहीं आ सके (इससे स्पष्ट होता है कि द्रौपदी चीरहरण के समय जो कहा गया है कि द्रौपदी का चिल्लाना कृष्ण ने चौपड़ खेलते वक्त सुना और चीर बढ़ता गया, यह बाद की कहानी है। कृष्ण उस समय युद्ध में थे। दुःशासन और कौरव यादवों की आदत जानते थे, द्रौपदी से उनका स्नेह उन्हें ज्ञात था, तभी वे डर गये। कृष्ण राजनीतिक काम में लगे थे, तभी उन्हें इधर क्या हो रहा है उसके बारे में कुछ भी मालम नहीं हो सका।)

यहां कुछ ऐसे लोगों का पाण्डवों के साथ होने का वर्णन है जिन्हें पहले नहीं बताया

गया था। कृष्ण सुभद्रा और अभिमन्यु को ले गये। धृष्टद्युम्न अपने भाँजों को ले गया। धृष्टकेतु चेदिदेशराजा नकुल की स्त्री करेणुमती अपनी बहिन को लेकर शुक्तिमती पुरी चला गया। केकय-नरेश सहदेव के साले थे। वे भी चले।

२३-२४. अ० कुरुजांगल छोड़कर पाण्डव द्वैतवन चले गये। वहां ऋषियों के आश्रम थे।

अनेक ब्राह्मण और ऋषि पाण्डवों से आकर मिलने लगे।

२६. अ० ब्रह्मतेज क्षत्रियतेज से मिलने लगा।

ब्राह्मण की अनुपम कृपादृष्टि और क्षत्रिय का अप्रतिम बल, दोनों के मिल जाने पर तीनों लोक वश में हो जाते हैं। (यह पाण्डव और प्राचीन आर्यों का मत था। दुर्योधन इसमें अड़चन डाल रहा था। प्राचीन आर्य गृहयुद्ध से बहुत डरते थे।)

ऋषि जैसे स्वर्ग में इन्द्र का पूजन करते हैं (थे), वैसे ही ब्राह्मण युधिष्ठिर का करने लगे)।

३०. अ० युधिष्ठिर वन में भी वैश्व देव बलि, याग, पशुबन्धन, काम्य और नैमित्तिक कर्म, पाक-यज्ञ, यज्ञकर्म करते थे। वे **अश्वमेध गोमेध, राजसूय और पुण्डरीक** यज्ञ कर चुके थे।

३३. अ० शूद्र के मुँह में वेद, कुत्ते के चमड़े में दूध के समान माना जाता था।

सञ्जय, कैकेयगण, वृष्णिवंश तथा और भी लोगों के ऊपर पाण्डव आसरा रखते थे।

३५. अ० ३०-३५. युद्ध ही क्षत्रियों का सनातन धर्म था। 'पूतिका' 'सोमलता' की जगह पर यज्ञ में काम दे सकती थी। **एक महीना एक वर्ष का प्रतिनिधि हो सकता था।** (इस कारण युग तथा काल अवधि के जो अंक मिलते हैं उनको निश्चित रूप से ठीक नहीं समझा जा सकता)।

३६. अ० ब्राह्मण पाण्डवों की ओर थे, यह व्यास के कथन से प्रकट होता है।

३७. अ० अर्जुन पाशुपतास्त्र लेने हिमालय गया। ३८, ३९, ४०. अ० में शिव को किरातरूप में प्रकट किया है। किरात शिवोपासक थे यह इससे प्रकट होता है।

इसके बाद (४१, ४२, ४३, ४४, ४५.) में इन्द्र के स्वर्ग में अर्जुन चले गये। (संभव है वे देवयुगीन अवशेषों में गये जिसका वर्णन परवर्त्ती काल में ऐसा हुआ कि देवताओं के बारे में आर्य जो सोचते थे वह लगाया गया। या यह क्षेपक ही है। जो हो, ऊर्वशी के यौन संबंधों में अर्जुन की यौन-संबंध धारणा में बहुत भेद है। देवयुगीन सभ्यता में मां पुत्र का प्राचीन संबंध था। अर्जुन ने उसे स्वीकार नहीं किया

४७/३० वनपर्व, में उल्लेख है कि पहाड़ों में भयंकर राक्षस रहते थे।

५०. अ० वन में शिकार करके पाण्डव खाते थे (इस कथा से स्पष्ट होता है कि सूर्य ने जो पात्र दिया था कि उसमें से जो चाहे खाना प्राप्त होगा, वह परवर्त्ती कल्पना है)।

५२. अ. ४०/४५ में युधिष्ठिर ने बताया कि पांसों का खेल मैं बिल्कुल नहीं जानता (इससे स्पष्ट है कि न जानकर भी इसलिये खेले कि उस समय जूए का निमंत्रण अस्वीकार करना क्षत्रियों में असम्मान का विषय समझा जाता था)।

१३९. अ० में पाण्डव श्वेत गिरि और मन्दराचल के बीच में गये। वहां मणिप्रभद्र यक्ष और यक्षराज कुबेर, गंधर्व, किम्पुरुष, यक्ष, राक्षस रहते थे। यक्ष तथा राक्षस बली थे। वहां रौद्र और मैत्र नामक राक्षस भी थे।

उसके उत्तर में कैलाश था वहां यक्ष राक्षस, किन्नर, गरुड़ तथा गंधर्वों का निवास समझा जाता था। देवता भी वहीं आया-जाया करते थे।

१४०. अ० यहां भूतगण रहते थे।

पाण्डव (२०-२९) हिमालय के पास सुबाहु-राज्य में पहुँचे। वहां हाथी और घोड़े बहुत थे। किरात, तंगण, पुलिन्द आदि पहाड़ी जातियाँ थीं।

१४५. अ० में उत्तर देश में म्लेच्छ, विद्याधर, किन्नर, **वानर** (देवजाति की भांति प्राचीन) किम्पुरुष तथा गंधर्व इत्यादि का वर्णन हुआ है। **उत्तर कुरु** को लांघकर वे कैलाश पहुँचे।

१४६. अ० गन्धमादन के शिखर पर विशाल **कदलीवन** (परवर्त्ती काल में बहुत उल्लिखित) देखा।

१५४. अ० में भीम का यक्षों से युद्ध हुआ। पर अंत में मित्रता हो गई।

१५५. अ० में एक स्थान ऐसा आ गया जहां से आगे जाना असंभव था; पाण्डव लौट पड़े।

१५७. अ० में पाण्डवों को बदरिकाश्रम में जटासुर नामक राक्षस मिला। वहां युधिष्ठिर ने कहा है : **धर्म का मूल राक्षस हैं। वे उत्तम रीति से धर्म को जानते हैं।**

[शरीर को छोटा-बड़ा करना उस समय की काव्यशैली थी। **युधिष्ठिर ने भी अपने शरीर को बहुत भारी कर लिया** जिससे जटासुर बोझ से दब गया।]

(४० तथा आगे) भीम ने इस जटासुर से जो कहा जिससे प्रकट होता है कि जटासुर ब्राह्मण का वेष धारण कर, प्रियवादी और प्रिय कार्य करता था। ब्राह्मण वेष में राक्षस है, यह जान भी हत्या करने में पाप समझा जाता था। ब्राह्मण का स्थान समाज में इतना ऊंचा माना जाता था।

जटासुर भीम का शत्रु था क्योंकि भीम ने अनेक राक्षस मारे थे (जाति नाशक को मारने के लिये मौका देखता हुआ राक्षस ब्राह्मण बनकर इनके साथ लग लिया था।)

जटासुर मारा गया।

१५८. अ० बदरीवन नर-नारायण का आश्रम था जहां वे प्राचीन काल में रहते थे। घटोत्कच आदि राक्षस उत्तर के इस प्रांत में पाण्डवों के सहायक थे।

१५९. अ०में पाण्डव गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। यहां आर्ष्टिशेण ने बताया : इसके

शिखरों पर अपनी प्यारी स्त्रियों के साथ **किम्पुरुष आदि देवगण** (देवयोनि) **काम भोग** करने आते हैं। गंधर्व, अप्सरायें रहती हैं। आगे मनुष्य नहीं जा सकता। कैलाश पर राक्षस रहते हैं। कैलास पार के मनुष्य को सिद्धों और देवर्षियों की गति मिलती है। लांघकर उधर जाने वालों को राक्षस मार डालते हैं। अर्थात् राक्षस उधर घुसने नहीं देते। कुबेर, दानव, देव, सिद्ध आदि वहां रहते हैं। (उस समय उत्तर से संबंध बहुत कम था। यह जातियाँ उत्तर में थीं अवश्य, पर प्राचीन संबंध के द्वारा आर्य इन्हें देवयोनि में मानते थे। इनके देवताओं से आर्य डरते थे।)

१६०-१६१. अ० माल्यवान् पर्वत पर राक्षसों का राज्य था। यक्ष राक्षसों से भीम का युद्ध हुआ। मणिमान् का उल्लेख हमने यक्षदेवता के रूप में किया है। (जरासन्ध के संबंध में) वह मणिमान् कुबेर का सेनापति था, अतः हमने कुबेर से उसका संबंध उचित ही माना है।) (आर्यों में पुराने नामों को दुहराने की आदत रही है। यहां केवल इतना तथ्य है कि यक्षों का सेनापति मर गया। यक्षों के बहुत नाम नहीं हैं। उन्हीं पुराने नामों को बार-बार गिना दिया गया है) मणिमान् ने देवयुग में अगस्त्य ऋषि पर थूका था (इस से स्पष्ट हुआ कि मणिमान् व्यक्ति बहुत प्राचीन था। वह ऋषि-विरोधी रहा होगा। यक्षों में राक्षस सदैव ही पहले देव तथा बाद में आर्य विरोधी थे। मणिमान् को राक्षस कहा गया है। मणिमान की तभी अनार्य मगध में पूजा होती थी। अर्थात् उसके वर से सब प्रसाद माना जाता था)।

१६२. अ० यक्ष कंबल पहनते थे। यक्षों की लाशें हटा दी गईं। (अगर यक्ष मनुष्य न होकर देवता होते तो क्यों मरते और क्यों इनकी लाशें हटाई जातीं?)

१६८, १६९, १७०, १७१, १७२ अ० अर्जुन ने समुद्रतटवासी निवात कवच दानवों को यक्ष, देव, गंधर्व आदि जातियों को साथ लेकर मारा।

१७३. अ० अर्जुन ने कालेकय और पौलोम नामक दैत्यों में फूट डालकर (२१. २२.) उन्हें नष्ट करवा दिया।

१७७. अ० पाण्डवों के लौटने का मार्ग : गन्धमादन, कैलाश, बदरिकाश्रम, चीन (?) तुषार, दरद, कुलिन्द, किरातराज सुबाहु का देश। विशोक इन्द्रसेन आदि सेवक रसोइये साथ लेकर पाण्डव फिर चले। यमुना नदी तीर, प्रस्रवणपर्वत, विशाखयूप, महावन। महावन में नहुष ने भीम को पकड़ लिया (ऊपर नागों के नहुष वंश का नाम आ चुका है। उन्हीं नागों ने भीम को पकड़ लिया) युधिष्ठिर ने छुड़ाया। फिर चैत्ररथ वन, सरस्वती नदी तट, द्वैतवन।

१८९. अ० नहुष ब्राह्मणों का अपमान करने के कारण समाज में गिरा दिये गये थे। पाण्डवों ने उन्हें अच्छा दर्जा दिया और उनसे छूटे। इन नहुषों का चंद्रवंश से संबंध था जैसे आर्यक नाग का कुन्ती से। नहुष प्राचीन काल में सात ऋषियों के नहीं, बल्कि एक हज़ार ब्राह्मणों के कंधों पर चला था। इससे प्रकट होता है वह ऋषि-द्रोही था। परवर्त्ती

काल में ऋषि ही ब्राह्मण माने गये। अगस्त्य वंश ने नहुषों को पतित कर दिया। सारे अधिकार छीन लिये।

२३७. अध्याय में द्रौपदी और सत्यभामा का संवाद है। सत्यभामा पूछती है कि सुंदरी! तुम्हारे पति कैसे तुम्हारे अधिकार में रहते हैं? क्या तुम किसी जड़ी-बूटी का सहारा लेती हो? या मन्त्र का?

द्रौपदी कहती है: यह काम ओछे स्वभाव की स्त्रियों के हैं—वशीकरण आदि धूर्तों के काम हैं। स्त्री को गृहकार्य-कुशलता और पतिसेवा से पति को जीत लेना चाहिये। द्रौपदी तो पाण्डवों के नहाये बिना नहाती भी न थी। (आजकल हिंदू स्त्रियाँ पहले नहा लेती हैं) द्रौपदी दास, दासी, हाथी, घोड़े, नौकर परिवार सब का लेखा-जोखा, देखभाल करती थी। कुटुम्ब की देखभाल और राज्य का भी कार्य करती थी।

सत्यभामा ने झेंपकर कहा कि दिल्लगी में उसने यह प्रश्न किया था [परंतु वास्तविकता और ही थी। द्रौपदी प्राचीन देवयुगीन परंपरा के जोड़ा विवाह से रहती थी जिस में उसको सब अधिकार मिले थे। सत्यभामा गण के राजकुलीन क्षत्रिय कृष्ण की स्त्री थी जिसे कोई अधिकार न थे। सपत्नी डाह था। द्रौपदी तभी पाण्डवों के साथ वन में दुख झेलती रही। पाण्डवों की अन्य स्त्रियाँ अपने अपने संबंधियों के जाकर रहीं। सत्यभामा में नारी के अधिकार छिन चुके थे।]

किंतु द्रौपदी भी सेवा भाव पर जोर देती है। यह तत्कालीन समाज का प्रभाव है। वह जवान पुत्रों के पास बैठने तक को मां को मना करती है।

२३८. अ० कौरवों के घोष (गाय-बैल) द्वैतवन में रहते थे।

२३९. अ० कौरव घोष यात्रा के लिये चले।

२४०. अ० आभीरों ने नाच दिखाया। वे कबीला जाति थे। वहीं गंधर्व ठहरे हुए थे। उन्होंने दुर्योधन द्वारा अपने सरोवर का अपहरण देखकर विरोध किया।

२४१. अ० गंधर्वों और कौरवों में युद्ध हुआ।

२४२. अ० गंधर्वों ने दुर्योधन को जीता ही पकड़ लिया। दुर्योधन की सेना के बचे हुए लोग—वेश्याओं के डेरे (साथ चलती थीं) लेकर पाण्डवों की शरण में आये। गंधर्वों ने कौरवों की स्त्रियाँ घेर लीं।

२४३-४ अ० में अर्जुन ने युधिष्ठिर के कहने से गंधर्वों को पराजित करके कौरवों और उनकी स्त्रियों को छुड़ा लिया।

दुर्योधन ने भूखा रहकर धन दे देने की ठान ली। तब (२५१ अ.) शकुनि के समझाने पर वह दानवों से मदद मांगने गया। दानव देवों के पुराने शत्रु थे। पराजित होकर वे पाताल में रहते थे। (पाताल का वर्णन ऊपर हो चुका है) दानवों के पुरोहित अब ब्राह्मण थे। वे अथर्ववेद मानते थे (अर्थात् अनार्य प्रभाव) (कुछ लोगों का मत है कि अनार्य कहना अनुचित है। आर्यों के रहने के दो तरीके थे। एक जो तीन वेदों में हैं, दूसरा

जो अथर्ववेद में है।* यह ठीक नहीं लगता। अथर्ववेद अनार्य प्रभाव की आर्य उपज है।) (दानवों के साथ वेद और ब्राह्मण का वर्णन या तो परवर्त्ती है, या दुर्योधन को गिराने के लिये ऐसा उल्लेख है। परंतु यह ठीक है कि उस समय भी गंधर्व, यक्ष, दानव आदि थे। यक्ष तो बुद्धकाल तक रहे। आज भी हिमालय में याखा या यक्ख जाति है। दुर्योधन और आर्य शत्रु अनार्यों का संबंध हो सकता है क्योंकि दुर्योधन आर्य की चिन्ता करता हुआ कहीं भी दिखाई नहीं देता।

परवर्त्ती लेखक का यह भी तात्पर्य हो सकता है कि कौरवों में दानवत्व भर गया। पर इतनी लंबी कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। महाभारत युद्ध में दुर्योधन के पक्ष-विपक्ष को देखते समय हमारा कथन स्पष्ट हो जायेगा।)

२५४. अ० कर्ण दिग्विजय करने निकला। द्रुपद, उत्तर के राजा, भगदत्त, हिमालय की जातियाँ, नेपाल (?), अंग, बंग, कलिंग, शुण्डिक, मिथिला, मगध, कर्कखण्ड, आवशीर, योध्य, अहिक्षत्र, वत्सभूमि, केवला, मृत्तिकावती, मोहन, पत्तन, त्रिपुरा, कोशल आदि नगर; राजारुक्मी; पाण्ड्य और शैल प्रदेश, केरल, नील, वेणुदारिसुत, शिशुपालपुत्र, उज्जैन के राजा (मित्रता से), इन **वृष्णिवंशी यादवों को साथ लेकर** पश्चिम दिशा तथा बर्बर जातियाँ, भद्र, रोहितक, आग्रेय, मालव, शशक आदि गण, म्लेच्छ, जंगली, पहाड़ी जातियाँ, नग्नजित आदि महारथी—सबको जीत लिया।

२५५. अ० दुर्योधन ने यज्ञ की तैयारी की। यह यज्ञ वैष्णव यज्ञ था। एक भाई राजसूय कर चुका था, दूसरे पिता जीवित थे, इसलिये ब्राह्मणों ने राजसूय यज्ञ की आज्ञा नहीं दी। **वैष्णव यज्ञ में पराजित राजाओं के सोने से एक हल बनाया गया और उससे जोतकर यज्ञभूमि शुद्ध की गई।** यही वैष्णव यज्ञ था। इसमें यथेष्ट अन्नदान आवश्यक था।

२५६. अ० पाण्डव बुलाने पर भी वनवास के कारण नहीं आये।

२५७. अ० दुर्योधन दान-पुण्य करके ब्राह्मणों को प्रसन्न करने लगा। कर्ण का दान तो विख्यात था।

२५८. अ० द्वैतवन में इस कदर हिरन पाण्डवों ने मार डाले कि मृग नष्ट हो गये। बहुत कम बच रहे। तब पाण्डव काम्यक वन चले गये।

२५९. अ० कुरुक्षेत्र में प्राचीन काल में ही ऐसे ऋषि (मुद्गल) रहने लगे थे जो खेतों से गिरा हुआ अन्न बीनकर खाते थे और तप करते थे।

जयद्रथ द्रौपदी को एक दिन अकेला पाकर हर ले गया। पाण्डवों ने छुड़ा लिया। अर्जुन और भीम जयद्रथ को पकड़ लाये। जयद्रथ धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला का पति था अतः उसे जान से नहीं मारा। युधिष्ठिर ने उसे छुड़वा दिया।

द्रौपदी की दासी का नाम धात्रेयिका था। पाण्डवों के पास इस समय भी रथ थे।

*हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता पृ० ७५

३०७. अ० में कन्या शब्द का अर्थ इस प्रकार है—**वह सब की कामना कर सकती है।**

सूर्य ने कुन्ती से कहा : हे कुन्ती ! तुम्हारे माता-पिता, गुरुजन आदि किसी को भी **तुम्हारे दान का अधिकार नहीं है।** अतएव मेरी इच्छा पूरी करने से तुम्हें अधर्म न होगा। स्वभाव से सभी स्त्री और पुरुष, अपनी इच्छा के अनुसार काम करने के लिये स्वाधीन हैं। **वैवाहिक नियम का बंधन स्वभाव के विकार से उत्पन्न हुआ है।**

(प्राचीन देवयुगीन विचारधारा के अवशेष आर्यों में इस प्रकार प्रकट हुए।)

३०८. अ० कुन्ती ने उस बालक को अश्व नदी में बहा दिया। अश्व—चर्मण-वती—यमुना—गंगा—में बहती संदूकची चम्पापुरी के पास सूत-राज्य में पहुँची।

३०९. अ० अधिरथ सूत वहां राज्य करता था। वह धृतराष्ट्र का सखा था और उस की स्त्री राधा अद्वितीय रूपवती थी। उसने बच्चा पाल लिया। कर्ण के तीन नाम और थे—'वसुषेण', 'वृष', 'सूतपुत्र'।

विराटपर्व १-२-३. अध्याय युधिष्ठिर कंकनामक ब्राह्मण-द्यूतप्रिय, भीम—बल्लव **रसोइया, नागराज वासुकि की बहिन को** हर लाने वाला अर्जुन नपुंसक बृहन्नला, अश्व विज्ञान में निपुण नकुल अश्वाध्यक्ष ग्रन्थिक, गायों की देखरेख में चतुर सहदेव तन्तिपाल, द्रौपदी बड़े लोगों के यहां अच्छे वंश की स्त्री-शृंगार करने वाली स्त्री सैरन्ध्री—यह छद्म-वेष धारण करके विराट राजा के यहां जाना तय हुआ।

४. अ० धौम्य पुरोहित भीम के साथ जाकर अग्निहोत्र की रक्षा करें (न बुझने वाली अग्नि) दास द्वारका, तथा दासियाँ पांचाल जायें, यह भी निश्चित हुआ।

४/२१. राजा को अग्नि और देवता समझकर उसकी सेवा करनी चाहिये।

५/२०. युधिष्ठिर ने भी पहले, कुरुक्षेत्र की एक युद्ध में रक्षा की थी।

५/३०. पाण्डवों ने एक मुर्दा उस पेड़ में बांध दिया जिसमें शस्त्र छिपाये थे। ग्वालों से कह दिया कि कुल की रीति के अनुसार अपनी वृद्धा माता का मुर्दा हमने पेड़ में बांध दिया है। (उद्विताः। शव ऊपर उठाकर टांगने की भी उस समय एक प्रथा थी)

७. अ० ब्राह्मण को जिस अपराध पर देश निकाला हो सकता था, अन्य वर्ण वाले को प्राणदण्ड मिलता था।

८. अ० भीम ने अपने को सूपकार (शूद्र) बताया। उसे रसोइया बनाया गया। (शूद्र तब रसोइये बनते थे। आर्य शूद्रों से खाना बनवाने में छुआछूत नहीं मानते थे।)

१३. अ० मत्स्य देश में ब्रह्मा का मेला हुआ। उसमें मल्ल योद्धा आये (आज भी मत्स्य—जयपुर-भरतपुर—में मेले और कुश्तियों का बहुत चाव है)।

भीम ने जीमूत पहलवान को मार डाला। (यह मल्लयुद्ध रोम साम्राज्य के युद्धों की भांति था, जिसमें एक दूसरे को, राजा के आनंद के लिये मृत्यु तक लड़ाई करने में, मार देना जायज़ था) भीम को राजा (रोम साम्राज्य के राजाओं की ही भांति) विराट सिंह,

बाघ, और मस्त हाथियों से लड़वाते थे (यह प्रथा—सांड से युद्ध—स्पेन में भी थी) भीम रनिवास की स्त्रियों को भी, पशुओं से युद्ध करके, बहलाते थे।

१४. अ० कीचक द्रौपदी पर मोहित हो गया। (उन दिनों दरबारों में रहने वाली स्त्रियों को बहुत खतरा था। राजवंश के लोग हर एक स्त्री को भोग लेते थे। कीचक के पास ऐसी अनेक स्त्रियाँ थीं)।

ऊपर सैरंध्री को ऊंचे वंश का कहा गया है, किंतु (३०–४०) कीचक-सैरंध्री (द्रौपदी) संवाद में द्रौपदी कहती है कि—हे सूतपुत्र (कीचक) मैं हीन वंश में उत्पन्न चोटी गूंधने का काम करने वाली **दासी** सैरंध्री हूँ।

द्रौपदी ने कहा कि पांच अदृश्य गंधर्व मेरे रक्षक तथा पति हैं (इससे प्रकट होता है कि गंधर्व देवयोनि के कारण देवता भी माने जाते थे)।

१५. अ० रानी सुदेष्णा ने द्रौपदी को कीचक के घर भेजा। **मदिरा** लाने द्रौपदी गई (उच्च कुल की स्त्रियाँ भी पुरुषों के दासी भोग को बुरा नहीं समझती थीं)।

२२. अ० भीम ने कीचक को मार डाला।

२३. अ० (भीम का शरीर बढ़ गया (?)) वेष बदलकर उन्होंने उपकीचकों को मार डाला।

३०. अ० पहले कीचक ने मत्स्य और शाल्व देश की सेना को साथ लेकर त्रिगर्त्त राज सुशर्मा को हराया था। अब दुर्योधन ने उसे भड़काया। कौरव गायें लूटने लगे। छीन ले गये (३५. अ०)।

३७. अ० उत्तरा ने मृत कौरव सेनापतियों के कपड़े और आभूषण खेलने (गुड़िया बनाने) को अर्जुन से मांगे।

(गायों के पीछे युद्ध अभी भी चलता था। **गाय धन थी**।)

४४. अ० २१ **अर्जुन सांवला था, अतः उसका एक नाम कृष्ण भी था**।

अर्जुन ने कर्ण, भीष्म आदि सबको मारकर भगा दिया।

कौरव सेना में कुछ विदेशी सैनिक भी थे (३७. अ०)।

७२. अ० उत्तरा का अभिमन्यु से ब्याह हुआ।

उद्योगपर्व ७. कृष्ण के पास नारायण नाम से प्रसिद्ध **गोपों की सेना थी** (!) पांचाल, केकय, मत्स्य में अहीर गडरिये थे, जो युधिष्ठिर के पक्ष में थे (५० अ.)

८. अ० राजाओं को बुलाया जाने लगा। शल्य मद्र का राजा था। वह दुर्योधन को वचन दे गया किंतु कृष्ण ने कूटनीति से उससे यह स्वीकार करा लिया कि वह कर्ण का उत्साह घटाता रहेगा। मद्र मान गया।

पाण्डव पक्ष में इस समय ये लोग होंगे ऐसी आशा की जाती थी।

१. द्रुपद पांचाल

२. मत्स्यराज

३. केकय के पांच राजकुमार

४. पहाड़ों और दुर्गों के वासी

५. सृंजय गण (कुछ कौरवपक्ष में भी थे)

६. म्लेच्छ राजा

७. कृष्ण

८. चेदि

९. करुष

२३. अ० ब्राह्मणों की वृत्ति छीनना बुरी बात समझी जाती थी। ब्राह्मणों को जीविका बांधने की प्रथा थी। राजा अपने मंत्रियों और कर्मचारियों का ध्यान रखता था। डाकुओं से सामना करना पड़ता था।

२४. अ० दुर्योधन शत्रुओं को भी धन देता था।

२५. अ० युद्ध बहुत बुरा समझा जाता था (गृहयुद्ध) संजय की राय थी (२७वां अ.) कि दुर्योधन यदि राज्य न दे तो युद्ध से बेहतर है **कि अंधक और वृष्णिवंश के राज्य में भीख मांगकर जीवन बिता दिया जाये।**

शरीर छूटने पर आगे-आगे कर्म जाते हैं और पीछे-पीछे उनका करने वाला जाता है। हार-जीत अनिश्चित है।

४८वें अ० में श्रीकृष्ण के पराक्रम का वर्णन है:

१. रुक्मी को जीतकर रुक्मिणी को हर लाया।

२. गांधार नग्नजित के पुत्रों को हराकर राजा सुदर्शन को छुड़ाया।

३. पाण्ड्य राजा को कपाट नगर में मारा।

४. दन्तवक्र और कलिंग सेना को मारा।

५. काशीपुरी को जलाया। फिर काशी में बहुत दिन तक राजा ही नहीं हुआ।

६. **निषादराज एकलव्य** को मार डाला।

७. कंस को मारा, उग्रसेन को राजा बनाया।

८. शाल्व वध किया।

९. दुर्गम प्राग्ज्योतिष नगर में भौमासुर को मार डाला। दानव, दैत्य भी उसको कहा गया है।

१०. निर्मोचन नगर में ६ हज़ार असुर तथा ओघ नामक राक्षसों को मारकर नगर में घुसकर नरकासुर को मारा।

११. मुर दैत्य को मारा।

इतनी कथा से हमारे सामने निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं:

१. राजपरंपरा में स्त्री का नाम आना आवश्यक था अर्थात् स्त्री का समाज में इतना महत्त्व अवश्य माना जाता था। कन्या आर्य, अनार्य अनेक देशीय होती थीं।

पहले आपस की पसंद का ज़माना था, फिर स्वयंवर अधिक रहा अर्थात स्त्री की मर्ज़ी रही। फिर पिता का पुत्री पर अधिकार हो गया, परंतु द्वापर के अन्त तक स्त्री को संपत्ति की भांति अपहृत किया जाने लगा। भीष्म, ने काशिराज की अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका नामक कन्याओं को हर लिया था। भीष्म धर्मात्मा समझे जाते थे। उस ज़माने के धर्मात्माओं का कायदा ही यही था। हमारे उत्तर भारतीय विवाहों में ढोल-नगाड़े पीटकर घोड़े पर जाना, तलवार से तोरण मारना अर्थात् दरवाजा तोड़ देना, दहेज लेकर लौटना अर्थात् लूट का माल लेकर लौटना, इसी प्रथा के अवशेष हैं।

२. गंधर्वों से युद्ध होता था। यक्ष, गंधर्व आदि जीवित जातियाँ थीं। गंधर्व देवता भी माने जाने लगे थे।

३. उत्तर के प्रांतों से काफी संबंध पाण्डवों ने रखा। सब लोगों का आवागमन कठिन था। उत्तर को देवताओं का स्थान माना जाता था। हिमालय के पूर्व में भी ऐसा ही माना जाता था। इससे हमारा कथन और भी अधिक पुष्ट होता है कि आर्य उत्तर में हिमालय के पूर्व की ओर भारत में आने के पहले गये। यद्यपि इन देवयोनियों के समाज में अन्य व्यवस्था बदल गई थी, पर स्त्री-पुरुष संबंध वैसे ही थे। आज भी वैसे ही हैं। ये जातियाँ कहीं-कहीं मैदानों में भी उतर आई थीं।

अधिकांश बातों का हम साथ-साथ इंगित कर चुके हैं अतः यहां कुछ विशेष तथ्य दिये जाते हैं।

४. यादवों का एक सशक्त गण था। उसमें दासप्रथा थी। स्त्री के अधिकार छिन चुके थे। भेद इतना ही था कि (चातुवर्ण्य तो दोनों मानते थे) गण में आर्यों के अनेक कुल शासन करते थे। राजतंत्र में एक करता था।

५. दासप्रथा वहुत बढ़ गई थी। युद्ध काफी होते थे।

६. ब्राह्मण तथा पुराने लोग और कुछ यादवगण गृहयुद्ध विरोधी थे। इस युद्ध को सर्वनाश करने वाला समझकर डरते थे।

युद्ध को रोकने के अनेक प्रयत्न हुए। प्राचीनकाल के देवासुर संग्राम का ज़िक्र हुआ। नर ने समुद्र पार जाकर निवात कवच असुरों को मारकर हिरण्यपुर उजाड़ा था (४९ अ०)। फिर नर ने देवताओं को जीतकर अग्नि का यज्ञ किया (४९)। भीष्म और द्रोणाचार्य भी संधि चाहते थे। किन्तु धृतराष्ट्र चुप पड़ गये। उल्टे पूछा कि धर्मज्ञ और धर्मात्मा युधिष्ठिर को शान्ति का उपदेश देकर युद्ध से रोकने वाले कौन-कौन हैं?

संजय मूर्छित हो गया।

दुर्योधन ने कृष्ण को फूट का कारण बताया (५५ अ.)।

पांचाल, यादव और केकय का पाण्डवों की ओर मिल जाना भयानक शक्ति का केन्द्र हो गया था। युद्ध अनेक हुए और होते थे। फिर इसी युद्ध से इतना डर क्यों था? इसका कारण था कि यह युद्ध छोटा-मोटा नहीं था। प्रायः समस्त आर्य राज्यों में युद्ध होने

वाला था। इसमें सर्वनाश होने का भय था।

तभी दुर्योधन ने कहा : सूई की नोंक बराबर धरती भी न दूंगा।

धरती मांगकर नहीं दी जाती और दुर्योधन का स्पष्ट उत्तर इतिहास का ज्वलंत उदाहरण बन गया।

संजय ने सुनाया (६६वां अ०): मैं जब अंतःपुर में पहुँचा मैंने देखा **कृष्ण और अर्जुन माध्वी मदिरा पिये बैठे थे।** सत्यभामा की गोद में सिर तथा अर्जुन की गोद में पांव रखे कृष्ण अधलेटे थे और द्रौपदी की गोद में अर्जुन के पांव थे।

यह अटूट मित्रता के चिह्न थे।

धृतराष्ट्र डरते थे। वे युद्ध में कौरवों को पराजित समझते थे। उन्होंने युद्ध को रोकने का प्रयत्न किया।

उस समय **पौराणिक** कथा थी कि देवताओं को काम, द्वेष और लोभ के त्याग से ही देवपद प्राप्त हुआ है (६१वां अ०)। यह तथ्य बहुत ठीक है। आर्यों में जैसे-जैसे संपत्ति के बढ़ने के साथ समाज विषम होता गया, परस्पर लोभ बढ़ा, द्वेष बढ़ा और स्त्री के अधिकार बदलने के साथ पुरानी स्वच्छंदता पवित्रता नष्ट हो गई। स्त्री-पुरुष के संबंध में बुराई आ गई। पुरातन लोगों में ऐसा नहीं था। अतः पितर पूजा करने वाले आर्यों में पुराने लोगों की स्मृति और अधिक पवित्र और महान होने लगी। वे यह याद रख सके थे, परंपरा से, कि पहले जो संसार में नहीं होता था, अब होने लगा है। समय काफी बीत चुका था। देवता सर्वश्रेष्ठ थे। जब दैवी शक्ति जुड़ी तब कल्पना में अपने में जो भी कुछ सर्वश्रेष्ठ था, वह अपने देवताओं के साथ जुड़ गया। इस प्रकार इन्द्र, वरुण आदि के भवन, महल तथा अन्य वैभवों की कल्पना हुई जो अत्यंत रंगीन है। अब देवता सिर्फ परीक्षा लिया करते थे। इन्द्र तो सिवाय अप्सराओं में पड़ा-पड़ा मदिरा पीता था और उसे कोई काम ही नहीं था। यह इन्द्र वह पुरातन भयानक टेढ़ी भौं वाला इन्द्र नहीं रह गया था। इस तरह मनुष्य ने पुरानी बात को नया रूप दे दिया था।

दुर्योधन (६१वां अ०) ने अपनी प्रजा को सुखी बताया, अपने को सत्य संकल्प कहा। उसने प्रजा को कोई कष्ट नहीं दिया था। जो उसकी समाज व्यवस्था का शासक कर सकता था, उसने वही किया था। कर्ण ने (६२वां अ०) भार्गवों से अस्त्र-विद्या सीखी थी तब वह ब्राह्मण बन गया था। सूतपुत्र या क्षत्रिय कहता तो क्षत्रियद्वेषी भार्गव उसे कभी भी नहीं सिखाते।

भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी कि वे नमक अदा करेंगे।

जाति विरोध का अनर्थ अब कौरवों की सभा में पुकारने लगा (६४वां अ०) सन्धि करो—विदुर ने बार-बार कहा। धृतराष्ट्र, व्यास, गान्धारी सब समझाने लगे। उधर युधिष्ठिर युद्ध टालकर केवल अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा एक और ग्राम लेकर संधि करने को तैयार हो गये (७२वां अ०)।

धन के लिये समाज में कितनी विषमता थी, युधिष्ठिर का कथन उस पर प्रकाश डालता है। धन से लोभ होता है। लोभ से ज्ञान चला जाता है। तब मनुष्य श्री-हीन हो जाता है जिसका परिणाम उसका नाश है। तब **जाति वाले, ब्राह्मण और मित्र निर्धन को छोड़ जाते हैं।** वह मौत के बराबर होता है। शम्बर कह गया है कि जब सवेरे खाने का ठिकाना न हो उससे बढ़कर क्लेश संसार में कोई नहीं है। **धन ही परम धर्म है। क्योंकि धन से ही धर्म और अन्य काम होते हैं। जो दूसरों का धन छीनता वह अधर्मी है (?) निर्धनता से पीड़ित होकर प्राणी प्राण छोड़ चुके हैं, सैकड़ों आदमी नगर छोड़कर गांव और गांव छोड़कर वन में चले गये हैं।** कितने ही ऐसी हालत में पागल हो गये हैं। किसी ने शत्रु की आधीनता स्वीकार कर ली है, और कोई पापी पेट पालने के लिये सेवक बन गये हैं।

मृत्यु एक सनातन लोकमार्ग है। जन्म के निर्धन को निर्धनता से उतना कष्ट नहीं पहुँचता, जितना सुख के योग्य पुरुष को मिली हुई लक्ष्मी छिन जाने से कष्ट मिलता है। (यह है वर्गभेद का सुदृढ़ ढांचा। अनेक अनार्य तब जंगलों में भाग चुके थे। कितने ही अनार्य दासप्रथा के राज्य बनाये हुए थे। कहीं-कहीं कबीले थे। पर आर्यों ने गंगा-यमुना का प्रदेश दबा रखा था। उस समाज में वर्ण-व्यवस्था जो काम बाँटने से पैदा हुई थी अब लड़-खड़ाकर धनी और दरिद्र में बदल गई थी। ब्राह्मण और क्षत्रिय भी गरीब हो चले थे। वे भी बिकने लगे थे। यह अनर्थ था। फिर भी ब्राह्मण और क्षत्रिय अपने अधिकारों को छोड़ना नहीं चाहते थे। समाज में घोर विषमता थी, दासप्रथा के भार को पालने के लिये धन चाहिये। धन के लिये धरती चाहिये थी और धरती के लिये युद्ध चाहिये था)

कृष्ण ने युधिष्ठिर का साम्राज्य बनवाया था। वह गण और एकतंत्र के बीच का मार्ग खोज रहे थे। इसी से एकतंत्र की निरंकुशता के विरोधी थे। वे भी दासप्रथा, स्त्री-अपहरण, राज्य की कूटनीति स्वार्थ के लिये शत्रुवध, मानते थे। पर शूद्र को कुछ रियायत देकर उन्हें अपने से मिला लेना चाहते थे। ब्राह्मण धर्म को सर्वोच्च रखते हुए, वे क्षत्रिय-मात्र को एक करना चाहते थे। उनका तथा पाण्डवों का मत था कि आपस में न लड़कर अनार्यों से युद्ध किया जाये। कृष्ण और अर्जुन ने अनेक असुर, राक्षस तथा निषादों को मारा था। परंतु इसके लिये समस्त क्षत्रियों को एक होने की आवश्यकता थी। दुर्योधन तथा कौरव पक्ष तैयार नहीं था। ब्राह्मण पाण्डवों के पक्ष में थे। कौरव अपनी निरंकुशता आर्य ब्राह्मण तथा क्षत्रिय पर भी लागू कर रहे थे। तभी यह लोग उससे लड़ने को मजबूर हो गये। यादवगण बँट गया। कुछ एकतंत्र की ओर क्षत्रिय पुनर्संगठन की ओर थे, वे कृष्ण की ओर हो गये। अन्य दूसरी ओर। कुछ भयानक रूप से जटिल दासप्रथा के हामी दुर्योधन के भी साथी थे।

(कृष्ण के शूद्रों को रियायत देने से एक बड़ा कार्य हुआ कि वे समाज में एक प्रगति कर गये—यह उनकी देन थी जिसने मनुष्य को आगे बढ़ाया)।

प्रज्ञादृष्टि चाहिये। यह शास्त्र का मत था। अर्थात् सुख-दुःख का कारण न मिटाकर उससे मन को हटा लिया जाये। **जिसके पास लक्ष्मी है वह तब तक मनुष्य गिना जाता है। परन्तु शूद्र कभी धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता।**

राज्य के लिये यदि प्राण भी चले जायें तो कोई हानि नहीं।

युधिष्ठिर ने कहा कि दोनों पक्ष सन्धि करके शान्ति से बराबर राज्य बाँट लें और सुखी रहें। (लूट बराबर बाँटो। अकेले नहीं भोगने देंगे) यदि दुर्योधन तैयार नहीं हुआ तो उसे मारकर हम राज्य छीन लेंगे। (फिर जनता का विचार फट पड़ता है) **युद्ध** ठानकर प्राणियों की हिंसा करना भी कुछ उत्तम काम नहीं है (फिर राज्य की भूख पुकारती है) निकट के आत्मीय कौरवों को भी हम मार डालेंगे (फिर) **असंख्य जाति-वालों, सहायकों और गुरुओं की हत्या करना तो अत्यन्त दोष की बात है। युद्ध मंगल कार्य नहीं है। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है, पाप कार्य ही क्षत्रियों का परम धर्म माना गया है। हम भी उसी अधम निन्दनीय क्षत्रिय बंश में पैदा हुए हैं। इसलिये भला हो या बुरा, युद्ध ही हमारा धर्म है**। उसके सिवा और सब धर्म हमारे लिये निन्दनीय हैं। **शूद्र का सेवा धर्म, वैश्य का धर्म बनिज-व्यापार, ब्राह्मण का धर्म भिक्षा** और **हम क्षत्रियों का धर्म** हिंसा (हत्या, लूट) ही है।

मछलियाँ जैसे मछलियों को खा जाती हैं, कुत्ते जैसे कुत्तों को मार डालते हैं, वैसे ही क्षत्रिय भी क्षत्रियों के प्राणों के ग्राहक हैं। युद्ध में **कलियुग** का निवास है, **इसी से** उसमें हजारों प्राणियों का नाश होता है।

हम नीति बल का आश्रय लेकर युद्ध करेंगे (बहाना लेकर लड़ेंगे)।

जय और पराजय किसी के वश में नहीं है। बदनाम आदमी भी यशस्वी को नीचा दिखा सकता है (अर्थात् युद्ध न्याय का कारण नहीं है ? न युद्ध का परिणाम समाज का सुधार है ?)

हानि दोनों को होगी (गृहयुद्ध का भय)—जो हारते हैं उनका धन-जन-बल नष्ट हो जाता है। युद्ध हर प्रकार से एक पापकर्म है। मौत और हार एक ही बात है। धीर, लज्जाशील, गुणी, दयालु पुरुष ही प्रायः युद्ध में मारे जाते हैं। दुराचारियों को कुछ नहीं होता।

शत्रुहीन पुरुष ही बेखटके सोता है। **बैर से बैर की शान्ति नहीं होती।**

शत्रुओं की जड़ काट देने से राज्य की प्राप्ति तो हो जाती है, पर वह बड़ी निर्दयता का काम है। पर राज्य-त्याग से प्राप्त शांति भी मृत्यु है। **एक ओर राज्य-त्याग है दूसरी ओर कुलक्षय है।** युद्ध न करना कायरता है।

कुत्ते पहले दुम हिलाते हैं, गुर्राते हैं, भूकते हैं, चक्कर लगाते हैं, मुँह फैलाकर दांत निकालते हैं, फिर क्रोधसूचक शब्द करते हुए हमला कर बैठते हैं। फिर मांस के छीछड़ों के लिये युद्ध होता है। बलवान् निर्बल से छीनकर खा जाता है। दबने वाला निर्बल

समझा जाता है ।(ब्राह्मण ने भिक्षा के लिये इसी क्षत्रधर्म को गौरवान्वित किया । जाति युद्ध में परिणित किया । जब तक अनार्यों से युद्ध था, कभी आर्यों को बुरा न लगा । परंतु विराट् विश अब विषमताओं से चिल्ला उठा । यहां ब्राह्मण ने युद्ध रोकने का प्रयत्न किया । अपने पुराने अधिकारों के लिये । पर क्षत्रियबल लूट पर उतारू था । यह परस्पर झगड़ा कैसे मिटता ? और सुलझन कहीं भी नहीं थी । उस समय कृष्ण ने उच्च वर्ग को नया दर्शन दिया । वह आगे देखा जायेगा । यहां तत्कालीन विषमता को देखना चाहिये ।)

कृष्ण दूतकार्य करने चला । विषमता रुक जाये तो अच्छा । उच्चवर्गीय धर्म-अर्थ-काम बच जायें तो अच्छा ।

दूतकार्य में कृष्ण का अर्थ भीख मांगना नहीं था । भेद कार्य्य था । उन्होंने कहा : मैं वहां नगर और जनपद में रहनेवाले, बालक, बूढ़े, जवान, चारों वर्णों के लोगों के सामने स्पष्ट शब्दों में दुर्योधन की निंदा करूँगा । शान्ति की प्रार्थना करने पर कोई आपको अधार्मिक नहीं समझेगा बल्कि सभी लोग धृतराष्ट्र की तथा उनके पुत्रों की निंदा करेंगे । संग्राम की तैयारी करिये । मुझे निश्चय है कि आपके जिस समृद्धिशाली राज्य को दुर्योधन पा चुका है उसे वह जीते जी कभी नहीं छोड़ेगा (७३वां अ०) ।

भीम ने शांति का ही प्रस्ताव किया । भीम के वक्तव्य में पुराने समय के—युग के अंत में अठारह ऐसे राजाओं का उल्लेख है जिन्होंने अपने कुलघातक कर्मों से बन्धु-बान्धवों सहित अपनी जाति का नाश करा लिया । वे यह हैं :

१. धर्म की हीनता के समय तेजस्वी समृद्धिशाली असुरों में **कलि** ने नाश कराया । (महाभारत युद्ध के बाद कलियुग कहा गया है । वह कलि इसी के नाम पर पड़ा, क्योंकि यह कुलघातक था, कलि के विषय में देखा जा चुका है कि वह एक वंश था, उसका अन्यत्र स्थान पर छूत से संबंध था । कुलघातक परम्परा दुहराई गई । कलियुग प्रसिद्ध हुआ । यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है । इसे आगे के लिये याद रखना होगा कि इसी नाम के साथ आगे चलकर कितनी बातें जुड़ गईं ।)

२. हैहय वंश में उदावर्त्त ।

३. नीपवंश में जनमेजय (अब तो विद्वानों को कोई संशय ही नहीं रहना चाहिये कि जनमेजय एक नहीं अनेक हुए हैं । अपना जनमेजय तो भारतवंश-कुरु वंश का है, पाण्डवों का वंश चलाने वाला है । उसका नीपवंश से संबंध नहीं । नीपवंश का जनमेजय भी काफी महत्वपूर्ण राजा रहा होगा ।)

४. तालजंघवंश में बहुल (तालजंघ भी हैहय की एक शाखा थी) ।

५. कृमिवंश में उद्दतस्वभाव वसु ।

६. सुवीर वंश में अजाबिन्दु ।

७. सुराष्ट्रवंश में रुषर्द्धिक ।

८. बलीह वंश में अर्कज ।

९. चीनवंश में धौतमूलक (विद्वानों का मत है कि चीन शब्द ईसा से कुछ सदी पहले भारत में आया था। अतः यह पुराना नहीं माना जा सकता। विषय संदिग्ध है। भारत में चीन वंश कोई नहीं था। संभवतः चीन वंश जिसका अन्यत्र भी नाम आया है कोई भिन्न चीन रहा हो। जो हो, विषय पर स्थिरता से नहीं कहा जा सकता)।

१०. विदेहवंश में हयग्रीव (परवर्त्ती या कोई और पुराना)।

११. महौजसवंश में वरयु।

१२. सुन्दरवंश में बाहु।

१३. दीप्ताक्षवंश में पुरवा।

१४. चेदिमत्स्य वंश में सहज।

१५. प्रवीरवंश में वृषध्वज।

१६. चन्द्रवत्सवंश में धारण।

१७. मुकुट ंश में विगाहन।

१८. नादिवेगवंश में सम।

ये कुल बहुत बड़े नहीं थे, वर्ना ये भी भारत के राजनैतिक इतिहास पर बड़ा प्रभाव डालते। महाभारत में कुल के घात के साथ प्रायः सभी बड़ी शक्तियाँ एक दूसरे से टकराई थीं। जो बचे वे भी दासप्रथा के विषम समाज से उत्पन्न दुरूहताओं में परस्पर लड़े जैसे यादवगण। कलि इस प्रकार माना गया। तब न गणयुद्ध, न राज्ययुद्ध, न कुलघात, कोई भी आर्यों की परंपरा में नया नहीं रह गया था। पुराना साम्यवादी समाज दूर छूट गया था। राज्य की मोहक दाहभरी तृष्णा थी। अब केवल एक बात का भय था कि क्षत्रिय संघर्ष यदि इतने बड़े पैमाने पर होगा तो आर्य्यों के उच्च वर्ग की शक्ति नष्ट हो जायेगी। इसी को कलि कहा गया। आर्य्यों के प्राचीन जीवन के स्थान पर गीता के रूप में एक नया दर्शन आ गया।

यहां तत्कालीन राजनैतिक दाँवपेंच देखना ठीक है।

भीम ने भरतवंश का नाश रोकने के लिये दुर्योधन की आधीनता मानना भी स्वीकार कर लिया। (७४/२०)

परंतु कृष्ण ने कहा कि अपने प्रताप से जीती हुई वस्तु का उपभोग करना ही क्षत्रियों को सोहता है। (७५/२३)

कृष्ण दस महारथी वीर, पैदल सिपाही, सवार तथा **सैकड़ों दास** लेकर चले (८४वां अ०)। राह में कौरवों की बनाई स्वागतार्थ सभायें उन्होंने आँख उठाकर भी नहीं देखीं (८५/१८)। उपप्लव्य गाँव से कौरव राज्य के वृकस्थल ग्राम में जब कृष्ण टिके तो कौरवों ने उनके स्वागत की तैयारियाँ बढ़ा दीं। कृष्ण आहुकवंश में प्रधान थे, और सब यादवों के मुखिया थे। वे भरे-पूरे उन्नतिशील वृष्णिराज्य के रक्षक थे (भय का यही कारण था। यादवशक्ति प्रचंड थी) (८६वां अ०)

[कुछ लोगों का मत है कि दासप्रथा भारत में यूनान और रोम तथा मिस्र जैसी नहीं थी। यह कहना गलत है। यहां भी दास यथाकामबध्या थे, हरिश्चंद्र के रूप में बिकने का वर्णन है, दास की स्त्री और बच्चे उसके न होकर मालिक के होते थे, यह देखा जा चुका है। उसके कोई संपत्ति नहीं थी। ८६/१–१० तक धृतराष्ट्र ने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये जो उपहारों के नाम बताये हैं उनमें हाथी, वाहन, घोड़े, मेढ़ों के साथ कहा है—एक सौ दास और एक सौ दासियाँ दूंगा। **दासियाँ नौजवान और ऐसी होंगी जिनके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ।** बच्चे तो बिक सकते थे। फिर बच्चे बिना दासी क्यों? बच्चे के बिना स्त्री अभुक्त है, अतः वह ज्यादा अच्छी समझी गई।

यहां एक ही भेद था। किसी भी देश में शूद्र नहीं थे। भारत में शूद्र थे। तभी दासप्रथा को कोई एकदम समाप्त नहीं कर सका।]

कृष्ण के स्वागत को दासियाँ, **वेश्याएँ**, कन्याएं पैदल भेजी गई। (८७/९) में धृतराष्ट्र ने धन देकर वासुदेव को खरीदने की चाल की, यह विदुर ने धृतराष्ट्र से कह दिया।

कृष्ण कौरवों की सभा में हँसी-दिल्लगी करके प्रेम से बातें करने लगे। ऊपर से चतुरता से मित्र बने रहे। (८९वां अ०)

दुर्योधन ने भोजन का कृष्ण को निमंत्रण दिया, परंतु कृष्ण ने मना कर दिया (९१वां अ०) और विदुर के घर गये (९२वां अ०)। विदुर ने इस अध्याय में स्पष्ट कर दिया है: संहार का समय उपस्थित है। **पृथ्वी के सब योद्धा और राजा दुर्योधन के लिये पाण्डवों से लड़ने आये हैं** (भय का कारण) वे सब पाण्डवों और कृष्ण के पुराने बैरी हैं। आप संधि मत करें (विदुर को डर था कहीं संधिवार्त्ता में कृष्ण का अपमान नहीं हो जाये)।

९५. अ० कृष्ण ने कहा: पाण्डवों से संधि करिये। वे आपका साम्राज्य बढ़ायेंगे। हे धृतराष्ट्र! उस समय आपके समकक्ष या आप से श्रेष्ठ राजा भी आप से संधि कर लेंगे।

संग्राम का फल केवल महाक्षय है। दोनों ओर का नाश आपका नाश है। **पृथ्वी के सब राजा क्रोधवश होकर मिले हैं** (?) इन्हें शांति दीजिये।

ब्राह्मण परशुराम, कण्व, नारद, कृष्ण, भीष्म, द्रोण, विदुर सबने दुर्योधन को समझाया। पर दुर्योधन ने कहा: पाण्डव पाञ्चालों से मिलकर हमारा अनिष्ट क्यों कर रहे हैं? (१२७/१०.) जब तक धृतराष्ट्र हैं तब तक हम लोग या पाण्डव कोई राजा नहीं होसकता। इनके पीछे निबट लेंगे। सूई की नोंक भर भी भूमि युद्ध के बिना, मैं पाण्डवों को नहीं दूंगा। (१२७/२५.)

१२८. अ०में कृष्ण ने कहा: कुल की रक्षा के लिये एक व्यक्ति, गाँव की रक्षा के लिये कुल भर को, जनपद की रक्षा के लिये सारे गाँव को, आत्मरक्षा के लिये सारी पृथ्वी को त्याग देना चाहिये। दुर्योधन को पकड़कर पाण्डवों के पास भेज दीजिये।

दुर्योधन को गांधारी (१२९वां अ.) ने समझाया। दुर्योधन ने कृष्ण को कैद करने

की सलाह की। (१३०वां अ०) **इन्द्र ने जैसे राजा बलि को बलपूर्वक पकड़ लिया था,** इन्होंने भी वही सोचा। सात्यकि इस विचार को समझ गया (१३०/१०)। उसने कृतवर्मा से सलाह करके कृष्ण को सूचना दे दी। यादव शस्त्र लेकर लड़ने को तैयार हो गये। पर कृष्ण पर हाथ उठाने की हिम्मत नहीं पड़ी। जैसे सरकारी अफ़सर अकेला नहीं होता, उसके पीछे सरकार का वज़न होता है, कृष्ण के पीछे, अर्जुन, बलराम, पाण्डव, अन्धक और वृष्णिवंश के यादव थे। वे सात्यकि और कृतवर्मा के साथ सभा से निकल गये। कौरवों की हिम्मत नहीं पड़ी कि उन्हें गिरफ़्तार कर लें। वृद्ध कौरव दूत और कृष्ण जैसे प्रभावशाली व्यक्ति को पकड़ने के दुस्साहस के विरुद्ध थे।

कृष्ण कुन्ती से मिले। कुन्ती ने क्षत्रियों का धर्मयुद्ध बताया।

१४०. अ० में कृष्ण ने कर्ण को फोड़ लेने की चेष्टा की। उससे कहा : तुम सनातन वेद का ठीक-ठीक मर्म समझ चुके हो। अत्यंत सूक्ष्म और जटिल धर्मशास्त्र का ज्ञान भी तुम्हें पूरा-पूरा है। **स्त्रियाँ जब क्वारी होती हैं तब दो तरह के पुत्र पैदा करती हैं**—एक कानीन (कन्यावस्था में ही उत्पन्न), दूसरा सहोढ (ब्याह के बाद जन्म लेने वाला)। शास्त्रकारों ने **उनका पिता उसी कन्या के होने वाले पति को माना है।** तुम कुन्ती के कानीन हो, अतः पाण्डु तुम्हारे पिता हैं। पाँचों पाण्डव, उनके पुत्र, मैं, तुम्हारे अनुगामी होंगे। **दाशार्ह और दाशार्णकुल तुम्हारे परिवार में सम्मिलित हो जायेंगे।** द्राविड़, कुन्तल, अन्ध्र, तालबर, चूचुप, रेणुप देशों के वीर तुम्हारे आगे चलेंगे। तुम ही सम्राट् हो जाओगे।

१४१. अ० यहां प्रतीत होता है कर्ण को अपने जन्म का वृत्तांत मालूम था। पर उसे माता पर क्रोध था। उसने कहा : सूत ने पाला है। उसी जाति की **कन्याओं** के साथ मेरा विवाह हुआ है। इस समय मेरे सूत स्त्रियों से पुत्र और पोते तक पैदा हो चुके हैं। दुर्योधन के आश्रित मैंने सुख पाया है। **अपनी जाति के सूतों के साथ मैं कई यज्ञ भी कर चुका हूँ। मेरे घर में सूतों की ही रीतियाँ प्रचलित हैं।**

[यह अंश क्षेपक लगता है क्योंकि २८ से लेकर ५७ तक महाभारत का अंत बताया गया है और बहुत सुंदर कवि-कल्पना है। इससे इतनी ही परंपरा प्रकट होती है कि कर्ण के घर में सूतों से संबंध हुआ था।]

राज्य का ऐश्वर्य भाई भाई में रक्त बहायेगा ! यह भयानक शब्द राजकुलों पर मंडराने लगा। कृष्ण आग लगा रहा था। राज्य की भूख से कौरव और पाण्डव अंधे हो रहे थे।

कुन्ती कर्ण से भीख मांगने छिपकर गई (१४५वां अ०)। कर्ण ने कुन्ती से कहा : आज पुत्र-स्नेह से व्याकुल होकर आई हो ? यह एक क्षत्रिय अधिकारों से वंचित, राजकुल के दंभ से चिढ़ने वाले व्यक्ति का चरित्र था। फिर भी उसने वचन दिया कि अर्जुन के अतिरिक्त और किसी को न मारेगा (व्यक्तिगत मानापमान की बड़ी तेज़ भावना रहती थी)।

भीष्म के पितामह प्रतीप का विशाल साम्राज्य नाश के कगारे पर खड़ा था।

प्रजापति सोम कुरुवंश के आदिपुरुष थे। सोम से छठी पीढ़ी में नहुष के पुत्र ययाति थे। उनके पाँच पुत्र थे (ज्येष्ठ यदु था)। परंतु गद्दी पिता के कहने से वृषपर्वा दानवपुत्री शर्मिष्ठा के पुत्र कुरु को मिली और कुरूवंश चला। यदु ने क्षत्रियों को जीतकर राज्य जमाया और (जहां) हस्तिनापुर (है) में रहने लगे। ययाति ने उन्हें निकाल दिया (१५०वां अ०)।

अब वह परंपरा भी नहीं रही। दुर्योधन मनमानी कर रहा था।

कृष्ण की सामनीति, भेदनीति, दाननीति सब व्यर्थ हो गई। अब दण्डनीति अर्थात् युद्ध के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था (१५०वां अ०)।

युद्ध की तैयारी होने लगी। सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू, अक्षौहिणी, वरूथिनी कुरुक्षेत्र में एकत्र होने लगीं। अनेक शस्त्र, उच्चकुलीन योद्धा, सारथि, अश्वारोही, पैदल इत्यादि आ गये। पत्ति, सेनामुख, गुल्म, गण, सेनापति और जन इकट्ठे हो गये। कौरवों में भीष्म प्रधान सेनापति हुए।

ब्राह्मण दोनों ओर से धन पाकर स्वस्त्ययन पढ़कर जय के आशीर्वाद देते थे। (यदि उनमें बल होता तो दुर्योधन ही क्यों न जीत जाता ?)

यादवों में फूट पड़ गई। बलराम पाण्डवों से मिलकर तीर्थयात्रा पर चले गये (१५७वां अ०)। राजा युधिष्ठिर ने बलराम से स्नेहपूर्वक हाथ मिलाया (१५७/२१)। बलराम ने बहुत कहा कि हमारे लिये कौरव-पाण्डव समान हैं (गणतंत्र को दोनों राज्यतंत्र समान थे), पर कृष्ण नहीं माना। बलराम ने कृष्ण का विरोध नहीं किया। तीर्थयात्रा पर चले गये।

रूक्मी (१५८वां अ०) को न पाण्डवों ने सहायक स्वीकार किया न कौरवों ने। वह भी तीर्थयात्रा को चला गया।

पांचालों को **सोमक** भी कहते थे (१६०वां अ०)।

दुर्योधन ने शकुनि-पुत्र उलूक को पाण्डवों के पास दूत बनाकर भेजा। उससे कहलवाया—(१) कृष्ण कंस के नौकर हैं, अतः चक्रवर्ती राजा उनसे युद्ध नहीं कर सकता।

२. भीम मूंछें नहीं रखते थे। दुर्योधन रखता था।

दुर्योधन की सेना यह थी :—

१. काम्बोज—राजासुदक्षिण—एकरथ
२. शक
३. **खश** (खस)
४. शाल्व
५. मत्स्य
६. मध्यकुरू
७. म्लेच्छ
८. पुलिन्द
९. द्रविड़

१०. आन्ध्र

११. काञ्जी

१२. भगदत्त (प्राग्ज्योतिष)

१३. माहिष्मतीपुरी---राजा नील (सहदेव-शत्रु)

१४. अवन्ती देश (विंद तथा अनुविन्द)

१५. त्रिगर्त्त--(विराट् नगर में गोहरण के समय पाण्डव-शत्रु) पाँच राजकुमार। मुख्य सत्यरथ।

१६. शकुनि-एकरथ।

१७. कृपाचार्य

१८. द्रोणाचार्य---अश्वत्थामा।

१९. कर्ण---अंगदेश। पुत्र वृषसेन।

२०. वाल्हीक

२१. राक्षसराज अलम्बुस

इनमें अधिकांश आर्य हैं। प्रायः राज्यतंत्र के अनार्य लोगों से दुर्योधन ने संधि कर ली। आर्य अनार्य के स्थान पर संपत्तिशाली और असंपत्तिशाली यह भेद कौरवों की ओर से होने लगा। कृष्ण को यह नापसंद है। दूसरी ओर पाण्डवों की ओर **गण** हैं। आर्य हैं। घटोत्कच तो भीम का पुत्र है।

आर्य का प्रतीक पाण्डव हो चले हैं यह निम्नलिखित सूची से स्पष्ट होता है :---

१. पाण्डव।

२. गांधार वीर। अचल और वृषक।

३. द्रौपदी के ५ महारथी पुत्र

४. सात्यकि यादव

५. उत्तमौजा युधामन्यु यादव

६. विराट् वृद्ध मत्स्य पाञ्चाल

७. द्रुपद पाञ्चाल

८. प्रभद्रकगण

९. अज और भोज

१०. केकय के पाँच राजकुमार

११. वार्द्धक्षेमि तथा चित्रायुध वीर। चेकितान सत्यधृति व्याघ्रदत्त चंद्रसेनरथी। रोचमान महारथी। कुन्तिभोज (भीम के मामा)।

१२. राक्षस घटोत्कच।

युद्धस्थल में एक महान् घटना हुई। कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। गीता ने भारत पर अखण्ड प्रभाव रखा है। आज भी उसका प्रभाव है। उसको बौद्धों, जैनों,

शैवों ने नहीं माना, किंतु प्रभाव सब पर पड़ा। पुनर्जन्म सब में आ गया। एक ही दर्शन राज्यतंत्र के समूह का रक्षक हुआ। ब्राह्मण पक्ष में सामंतवाद का उदय करने वाला हुआ, अन्य आर्य्येतर विश्वासों में ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद हो, इसका प्रभाव यह पड़ा कि व्यक्तिवादी प्रभाव पड़ा। गीता का पूर्ण रूप जो अब प्राप्त है वह महाभारत युद्ध के बाद की बात है, अतः अगले अध्याय में देखना ठीक होगा। यहां एक रूपरेखा देना ठीक है जो तब हुई होगी।

योग निस्संदेह अनार्य प्रभाव था। पाञ्चरात्र भागवत संप्रदाय का प्रभाव बाद में पड़ा। उससे परवर्त्ती गीता का रूप मिला है। परंतु उस काल में योग ने सामूहिक चिंतन पर आर्यों में व्यक्तिवाद की छाप लगा दी। कृष्ण ने भाई-भाई से लड़ने में डरते हुए अर्जुन को शिक्षा दी। कोई किसी का नहीं है। सब ऐसे हो रहा है जैसे कठपुतली का खेल हो। कर्म करो फल की आशा मत करो। आत्मा अलग है। वह अमर है।

महाभारत में जो सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, कर्म-संयास-योग, आत्मसंयम योग—विज्ञान योग महापुरुष योग, राजगुह्ययोग, विभूति योग तथा विश्व रूप दर्शन है, वह सब परवर्त्ती लेखनी ने मंजे हुए रूप में उपस्थित किया है। महाभारत के बाद यह मंजे हुए रूप मिले हैं तो यह कहा जा सकता है कि महाभारत के समय में इनके बीज विद्यमान थे।

ऊपर जो कृष्ण की गीता का संक्षिप्त सार दिया है वह सर्वश्रेष्ठ तथा मान्य सिद्धांत हैं। उनकी व्याख्या का सामाजिक रूप यह है : भाई बान्धव की चिंता मत करो। मनुष्य का व्यक्तित्व अब शेष नहीं है। किये जाओ, जो मिले पाओ, यह मत सोचो कि अच्छा फल मिलेगा (एक अंधी दौड़ है) मनुष्य दुनिया में नहीं है। एक परलोक है उसकी चिंता करो। (इस प्रकार जीवित विश्व एक परलोक के लिये सिर्फ माध्यम हो गया) और सब से बड़ी बात थी—सोचो मत, श्रद्धा करो। सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ।

केवल इतना अर्थ करना तो गीता को केवल समाज में अभावात्मक दृष्टिकोण से देखने के समान होगा। यह ठीक नहीं है, अधूरा काम है। इसका रचनात्मक रूप भी रहा जैसे राम के संबंध में देखा गया था। गीता ने ब्राह्मण धर्मकृत चातुर्वर्ण्य को माना, पर भक्ति का स्त्री और शूद्र को भी अधिकार दिया है। इससे आर्य अनार्य का भेद मिट गया, परंतु उच्चवर्गों की चतुरता के कारण निम्न वर्ग शूद्र में बदल गया। ब्राह्मण और क्षत्रिय के अधिकार और घट गये। वैश्य उठा। परंतु यह अगले अध्याय का विषय है।

इस प्रकार युद्ध प्रारंभ हुआ।

४३/४१–४३ में भीष्म ने कहा है कि मुझे कौरवों ने धन और वृत्ति देकर अपने आधीन बना रखा है (खरीद लिया है)।

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य ने भी यही कहा। ४३/८०–८१ में शल्य ने कहा—**मनुष्य धन का दास है, धन किसी का भी नहीं है।** कौरवों ने मुझे धन से जीत लिया है।

पुराने क्षत्रियों के कांटा खटक रहा था कि अन्यायी के पक्ष में सिर्फ धन के दायित्व के कारण, खड़ा होना पड़ा है।' वैश्या से धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु पाण्डवों की ओर आ गया (संभवतः उसे बराबर का मान कौरवों ने नहीं दिया था)।

द्वन्द्व युद्ध होता था। परंतु अभिमन्यु को सात महारथियों ने घेरकर बेईमानी से मार डाला। अनेक प्रकार के व्यूह बनते थे। उनका महाभारत में विस्तृत वर्णन किया गया है। महाभारत का पहला नाम 'जय' नामक काव्य कहा जाता है। परंतु बाद में इस घटना का इतना प्रभाव पड़ा कि बाद के व्यासपीठ के लोगों ने इसे महासागर जैसा गंभीर बना दिया। द्रोणपर्व ११वें अध्याय में कृष्ण वर्णन है। निम्नलिखित बातें कृष्ण के विषय में बताई गई हैं :—

१. गोपमण्डली में बचपन में पला।

२. केशी दैत्य मारा।

३. पूतना, शकटासुर, धेनुक, अरिष्टासुर, मारे।

४. गोवर्द्धन उठाकर शिलावृष्टि रोकी (इस कथा के साथ भागवत में इन्द्र पूजा का विरोध वर्णन है। कृष्ण ने आर्यों में पुरानी पूजा को उखाड़ दिया। आगे इन्द्र विरोध बढ़ता हुआ मिलता है)।

५. वृषभासुर, प्रलम्बासुर, नरकासुर, जम्भ, महासुर पीठ, मुर दानव मारे।

६. कंस (गणविरोधी एकतंत्र शासक) साथियों सहित मार डाला। सुनामा को मारा।

७. दुर्वासा (ब्राह्मण, कट्टर) प्रसन्न किये।

८. गान्धार राज की कन्या हर ली।

९. जरासन्ध को भीम से मरवाया (यह भी एकतंत्र शासक, स्वेच्छाचारी था)।

१०. शिशुपाल को मारा (जरासन्ध मित्र था)।

११. शाल्व-दैत्यपुरीनाशक।

१२. **अंग, वंग, कलिंग, मगध,** काशी, कोसल, वात्स्य गार्ग्य, करूष, पौण्ड्र, अवन्ती, **दक्षिणात्य, पहाड़ी,** दाशेरक, **काश्मीर, औरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज, वाटधान, चोल, पाण्ड्य,** त्रिगर्त, मालव, दुर्जय, **दरद, खश, शक** को जीता। (अनेक अनार्य हैं)

१३. कालयवन को मार भगाया।

१४. पातालवासी पंचजन दानव हराये।

१५. खांडवदहन में नाग मारे।

१६. अमरावती में देवगण हराये। (कल्पना लगती है)

१७. कृष्ण के कारण गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अवगाह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण, उल्मुक, निशठ, झिल्लीबभ्रु, पृथु, विपृथु, शमीक, अरिमेजय आदि वृष्णि पाण्डवों के साथ हो गये।

सात्वत पाण्डवों की ओर थे। अम्बष्ठ भी (२५वां अ०) संशप्तकगण कौरवों की ओर थे (२७वां अ०) (कुछ गण कौरवों की ओर भी थे) अरट्ट, भोजवंशी यादव कौरवों की ओर थे (१९३वां अ०)।

१९७. अ० जयद्रथ का सिर काटकर निषादों या चाण्डालों की बस्ती में फेंक दिया गया था।

कर्णपर्व में ३२वें अध्याय में एक तथ्य महत्त्वपूर्ण है।

मद्रराज शल्य से जब कर्ण का सारथि बनने को दुर्योधन ने प्रार्थना की तब वह कुपित हो उठा। उसने कहा : तुम मुझ से इस नीच कुल उत्पन्न कर्ण का सारथि होने को कहकर मेरा अपमान कर रहे हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्ण हैं। इन चारों वर्णों के संयोग से—

अनुलोम (क्षत्रिय स्त्री+ब्राह्मण पुरुष)
या (वैश्य स्त्री+क्षत्रिय पुरुष)
प्रतिलोम (ब्राह्मण स्त्री+क्षत्रिय पुरुष)
या (क्षत्रिय स्त्री+वैश्य पुरुष)

क्षत्रियकर्म: प्रजापालन। रक्षा। कर लेना। दान देना।
ब्राह्मण : लोकों पर कृपा करना। यज्ञ कराना। पढ़ाना। विशुद्ध दान लेना।
वैश्य : पशुपालन, धर्मानुसार दान।
शूद्र : इन तीनों की सेवा।
सूतकर्म : ये वर्णसंकर हैं। ब्राह्मणक्षत्रिय सेवा।

शल्य आर्तायनि था। उसने अंत में दुर्योधन की प्रार्थना स्वीकार करली (३५वां अ०)।

४०. अ० में मद्रों* का कर्ण ने जो वर्णन किया है वह महत्त्वपूर्ण है; ब्राह्मणों ने मद्रों के विषय में कहा है कि मद्र निवासी मित्रद्रोही होता है। झूठा होता है। **मद्र देश में पिता, पुत्र, मामा, माता, सास, ससुर, दामाद, बेटी, भाई, नाती, बन्धु-बान्धव, दास, दासी, वयस्य, अभ्यागत आदि सब छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष परस्पर जान-बूझकर, अनजान की तरह, इच्छानुसार रमण करते हैं। (संभवतः स्त्री-पुरुष संबंध में गण के व्यवहार थे)।** मछलियाँ तथा सत्तू खाते हैं। निषिद्ध मांस खाकर, कड़ी मदिरा पीते हैं। शास्त्र विरुद्ध हैं। (कर्ण यद्यपि सूतपुत्र था, पर ब्राह्मण की बात को बढ़-बढ़कर कह गया)। मद्र मलिन और अशुचि रहता है। मद्र तथा गांधार में मैत्री तथा पवित्रता का क्रम से अभाव है।

आथर्वण मंत्र से बिच्छू का विष उतरता था।

मद्र में स्त्रियाँ मदिरा के नशे में चूर होकर बेपर्दा नाचती हैं। वे व्यभिचार करती हैं और मनमाने पुरुष से रमण करती हैं। वे खड़े-खड़े मूत्र त्यागती हैं। मद्र देश की स्त्री से सुवीरक (काञ्जिक) कोई मांगता है तो वे नितम्बों पर हाथ मार कहती हैं कि पुत्र अथवा

*मद्र—आधुनिक पश्चिमी पंजाब।

पति दे सकती हूं, पर काञ्जिक नहीं दे सकती। मद्र देश की स्त्रियाँ गोरी, निर्लज्ज, बहुत भोजन करने वाली, लम्बी-चौड़ी, कम्बल ओढ़ने वाली और प्रायः गन्दी होती हैं। मद्रक, सिन्धु-सौवीर म्लेच्छ हैं। (यहां कर्ण अपने को क्षत्रिय कहता है।)

४४. अ० एक बूढ़े ब्राह्मण ने मद्र और वाल्हीक देश के विषय में कहा था—हिमालय, गंगा, यमुना, सरस्वती और कुरुक्षेत्र के बाहर तथा सिंधु नद और उसकी पाँच शाखा-नदियों के बीच में बसने वाले जो वाल्हीक हैं वे धर्म बहिष्कृत हैं, उन्हें दूर से ही छोड़ देना चाहिये। शाकल नगर, आपगा नदी, जर्तिका वाल्हीकगण निन्दित हैं। वे गुड़ की बनी मदिरा पीते हैं। स्त्रियाँ बाजार में नशा करके नाचती हैं। माला चन्दन धारण नहीं करतीं। भोंडे गीत चिल्लाकर गाती हैं। सब इच्छानुसार व्यभिचार करती हैं। पर-पुरुष से संकोच नहीं करतीं। पुरुषों से आनन्दपूर्वक कामोद्दीपक बातें करती हैं। एक वाल्हीक देश की स्त्री का पति एक समय कुरु जांगल देश में था। उसने घर की याद करके कहा था—मैं अपने देश में गधे, ऊंट और खच्चर की सवारी वाले नर-नारियों को कब देखूंगा। कब पूड़े, सत्तू और मट्ठे आदि खाकर हम सुखी होंगे? मार्ग में मदिरा आदि पीने से कामवश होकर हम लोग स्त्रियों को नग्न करके उनसे रमण करेंगे। वहां गौड़ी मदिरा पी जाती है। प्याज डालकर मेष मांस खाया जाता है। जिन लोगों ने सूअर, मुर्गे, गधे, भेड़, ऊंट का मांस नहीं खाया उनका जन्म वहां वृथा समझा जाता है। आरट्ट देश में ब्राह्मण, देवता तथा पितर नहीं रहते। वे यज्ञ नहीं करते। कुत्ता चाट गये बर्त्तनों में भी आरट्टवासी मदिरा, लकड़ी और मिट्टी के पात्रों में पीते हैं। गधी, ऊंट और मेष का दूध-दही खाते हैं। वे किसी के अन्न और दूध को नहीं छोड़ते। उनमें किसी के पिता का पता नहीं है (गण का गुण)।

जो युगन्धर में ऊंट का दूध पीता है, 'अच्युत स्थल' में रहता है और 'भूतिलय' में स्नान करता है वह स्वर्ग नहीं जाता। 'वाह' और 'हीक' दो पिशाच थे। उन्हीं के नाम पर वाल्हीक पड़ा है (संभवतः वाल्हीक में पहले पिशाच जाति का प्राधान्य था)। वहां के लोग प्रजापति की संतान नहीं हैं(?)धर्महीन कारस्कर, माहिषक, कालिंग, केरल, कर्कोटक (नाग जाति संबंधी ?), वीरक आदि मदिरा पीकर उन्मत्त होने वाली, वाल्हीक देश की जातियों से संबंध नहीं रखना चाहिये। महोलूखलमेखला नामक राक्षसी ने तीर्थ-यात्रा की थी, उसी ने यह सब बताया।

वहां के ब्राह्मण न वेद पढ़ते हैं, न यज्ञ-हवन करते हैं। ब्राह्मण धर्म प्रभाव-राज्यतंत्र के प्रभाव में नहीं हैं। तभी बुरे हैं। यह हैं वे गणतंत्र जिनकी निंदा की गई है। प्रस्थल, मद्र, गांधार, खश, वसाति, सिंधु, सौवीर में म्लेच्छप्राय लोग हैं, धर्मभ्रष्ट हैं।

४४. अ० वाल्हीक देश में ब्राह्मण से क्षत्रिय फिर वैश्य, फिर शूद्र और फिर नाई होता है। इसके बाद फिर ब्राह्मण और द्विज होकर वहीं दास पद को भी प्राप्त है। **वहां ब्राह्मणों के एक कुल में एक ही भाई ब्राह्मण होता है, अन्य भाई इच्छानुसार कर्म करते हैं और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि** की श्रेणी में चले जाते हैं। (अर्थात् कर्मानुसार वर्णविभाजन,

जातिप्रथा से पहले की हालत) गांधार, मद्रक और वाल्हीकगण वर्णसंकर होते हैं—आरट्ट देश के डाकू एक सती को पकड़ लाये, उसका धर्म नष्ट किया। उसने कहा : मैं भाइयों वाली हूं (ऊपर लिखा जा चुका है कि वेद काल में बिना भाई की स्त्री को वेश्या होना पड़ता था, क्योंकि उसका रक्षक नहीं था। यहां भाई वाली का अर्थ है कि मेरे तो रक्षक हैं।)

आरट्ट देश में यह नहीं समझा गया। वहां स्त्रियां स्वच्छंद थीं।

आरट्ट में पुत्र धन का उत्तराधिकारी नहीं होता था, भाञ्जा होता था। (मातृसत्ता के चिह्न)

ये लोग आय का छठा भाग राज्य को देते थे।

धर्म तथा सदाचार को जाननेवाले देश :

१. मत्स्य
२. पाञ्चाल
३. कुरु
४. शाल्व (दक्षिण)
५. नैमिष
६. चेदि

(१–६) राज्यतंत्र के देश।

७. शूरसेन (याज्ञिक लोग)

अन्य प्रकार के लोग :—

१. पूर्व : दास तथा शूद्र
२. दक्षिण : धर्मद्रोही।
३. वाल्हीक : चोर-डाकू
४. सुराष्ट्र—वर्णसंकर
५. आरट्ट तथा पञ्चनदवासी—कृतघ्नता, पराया धन हर लेना, मदिरा-पान, गुरु-स्त्री-गमन, भ्रूणहत्या, कठोर वचन बोलना, गोवध करना (पुरानी आर्य परंपरा पर लगे रहना), पराये वस्त्र का उपयोग।

अंग, मगध आदि देश के लोग धर्म के स्वरूप को पूर्ण रूप से न जानने पर भी शिष्टाचार और सदाचार के अनुगामी होते हैं :

यहां विभिन्न दिशा वर्णन हैं :—

१. अग्नि आदि देवगण : पूर्व
२. पितृगण—यमराज : दक्षिण
३. वरुण—सूर : पश्चिम
४. ब्राह्मण—सोम : उत्तर
५. राक्षस पिशाच : हिमालय

६. यक्ष गुह्यक : गन्धमादन

७. विष्णु—सर्वत्र

वाल्हीक की रक्षा कोई देवता नहीं करता। म्लेच्छ, यवन वैदिक धर्म नहीं मानते।

कर्णपर्व ६६वें अध्याय में अर्जुन युधिष्ठिर की डाँट से कुपित हो उठा। वह युधिष्ठिर को मार डालने को उठा। कृष्ण ने रोक लिया।

९०वें अध्याय में अश्वसेन नाग (एरावतवंश) का कर्ण के बाण के साथ होने का उल्लेख है।

नाग ने कर्ण को बताया कि अर्जुन ने उसकी माता को मार डाला था।

अर्जुन ने नाग को मार डाला।

युद्ध में पाण्डव प्रायः ही छल से जीत गये। भीष्म से उनकी मृत्यु पूछी। शल्य और कर्ण को फूट से मारा। द्रोण को झूंठ से मार डाला। गुरु का सिर काट दिया। दुर्योधन को नाभि के नीचे गदा मारकर धर्मविरुद्ध मार डाला। परंतु विजेता का कार्य धर्म होता है। कृष्ण की कूटनीति में काम निकालना धर्म था। बलराम अप्रसन्न हो द्वारका लौट गये। (शल्य पर्व ६०वां अ०)

६१. अ० महाभारतकार ने दुर्योधन के मुँह से कृष्ण के प्रति कहलवाया है : कंस के दास के पुत्र! तूने अधर्मयुद्ध से, कूट उपायों से धर्मयुद्ध कर रहे राजाओं को मरवाया है।

६१. अ० कृष्ण ने दुर्योधन के पाप बताये।

दुर्योधन ने क्षत्रियधर्म पालन करने की दुहाई दी और स्वर्ग से उसके माथे पर फूल गिरे (इससे प्रकट होता है कि दुर्योधन उस समय इतना पापी नहीं समझा जाता था जितना कालांतर में उसे समझा जाने लगा)।

६१/६१ में कृष्ण ने पाण्डवों से कहा है—**तुम लोग न्याययुद्ध करके कौरवों को कदापि न जीत पाते। इसीलिये युक्तिपूर्ण उपाय से मैंने सबका वध कराया।** शत्रुओं की संख्या अधिक होने पर उन्हें कूट-युद्ध में मारना राजनीति का नियम है। पूर्व समय में असुरों को मारने के लिये देवताओं ने इसी मार्ग को ग्रहण किया है। बड़े लोग जिस राह पर चलें उस पर सभी को चलना चाहिये। (यह है कृष्ण का राजनीतिक जीवन)

शल्यपर्व ५४वां अ० में कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ही दुर्योधन की सेना में जीवित रहे। वे भी डरसे भाग गये थे।

दुर्योधन समन्तपञ्चक में मरा (५५. अ०)।

इसके बाद एकदम विनाश के चिह्न प्रगट होने लगे। महाभारतकार ने लिखा है : (६२अ०) शिविर शून्य हो गये थे। वहां अधिकतर स्त्रियाँ और नपुंसक ही रह गये थे या वृद्ध अमात्य देख पड़ते थे। दुर्योधन के अमात्य गेरुए और मैले कपड़े पहने पाण्डवों के पास

हाथ जोड़े दीन भाव से आये। अर्जुन का रथ नीचे उतरते ही भस्म हो गया।

युद्ध की शक्ति विनष्ट हो गई।

संशप्तकगण को हराना एक कठिन काम था। अर्जुन ने उन्हें हराकर बड़ा काम किया था।

कौरवों का कोष, रत्न, सोना, चांदी, कम्बल, आभूषण, मणि-मोती, ऊनी और रेशमी वस्त्र, दास-दासी आदि सामान पाण्डवों को मिल गया।

पाञ्चाल युद्ध में थककर सो रहे थे। उस समय अश्वत्थामा ने महादेव से सहायता ली (संभवत: अनार्यों से), और सोते हुए पाञ्चालों का संहार किया (सौप्तिक पर्व ८ अ०) अश्वत्थामा ने सृंजयों को भी मारा। और मार कर भाग गया।

कृपाचार्य और कृतवर्मा प्रसन्न हुए।

दुर्योधन मरकर स्वर्ग चला गया। (९वां अ०)

[पाप-पुण्य करके भी क्षत्रिय युद्ध करके स्वर्ग जाता था। क्या इस प्रकार भूमि, राज्य, स्त्री, अपहरण और हत्याकांड को छूट नहीं दी गई? अच्छे-बुरे का परिणाम एक-सा हो गया।]

पाँचों पाण्डव, कृष्ण, सात्यकि ये सात एक ओर और कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा दूसरी ओर शेष रहे। सर्वनाश हो गया।

१४. अ०पाण्डवों ने अश्वत्थामा को पकड़ा। वेदव्यास और नारद ने आगे का सर्वनाश बीच में आकर रोक लिया (ब्राह्मण ने बीच-बचाव कर दिया), अश्वत्थामा परास्त किया गया (१०वाँ अ० स्त्रीपर्व)। कृपाचार्य हस्तिनापुर, कृतवर्मा द्वारका (यादव) गये तथा अश्वत्थामा भटकने लगा (१०वां अ० स्त्रीपर्व)।

गांधारी ने स्त्रीपर्व २४वां अ० में कृष्ण से कहा कि एक-दूसरे का नाश कर रहे पाण्डवों और कौरवों को, सर्वथा समर्थ होकर भी, तुमने नहीं रोका। तुम भी नष्ट होगे (यादव समर्थ तो थे)।

२५/१० अनेक योद्धा मर गये, अनेक भाग गये।

२६. अ० में कुन्ती ने श्राद्ध करते समय युधिष्ठिर को बताया कि कर्ण तुम्हारा बड़ा भाई था। वह कर्ण की आत्मा के लिये शांति नहीं त्याग सकी (जो उसने जीवित को नहीं दिया, मरे को देने आई थी)।

युधिष्ठिर ने अश्वमेध करने का व्यास से उपदेश पाया (३वां अ०अश्वमेधपर्व)। युद्ध की वीभत्सा से उसका हृदय काँप गया था। अभी तक गण या राजकुल लड़ते थे। पर इतने बड़े पैमाने पर एक ही घर के भाई-भाई पहली बार लड़े थे। किंतु धन नहीं था। राजपुत्र निर्धन हो गये थे। अश्वमेध में दान की आवश्यकता थी। प्राचीन काल में मरुत ने यज्ञ में जो दान दिया था वह सोना ब्राह्मण उठाकर ले न जा सके तो हिमालय में छोड़ गये।

४ अ.

कृष्ण जब द्वारका चले (५३ अ०) राह में उत्तङ्क मिला। वह ब्राह्मण था। उसने कृष्ण को कौरवों का नाश करने वाला बताकर डाँटा।

युधिष्ठिर मुन्जवान् पर्वत पर जाकर (६४ अ०) धन ले आया। इस धन की रक्षा (शिव की कृपा से प्राप्त हुआ) किन्नर करते थे (६३ अ०)। महादेव की पूजा में पाण्डवों ने माँस का सामान (खाद्य) बनवाया (६३ अ०)। **भूतगण, यक्ष, मणिभद्र यक्ष तथा यक्ष-पतियों को कृसर, माँस, तिल और घड़ों में भरा भात भेंट किया। फिर राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को हजारों गायें देकर उनसे निशाचरों के लिये बलि देने को कहा।**

फिर अश्वमेध प्रारम्भ हुआ। अर्जुन ने (७३ अ०) उत्तर जीता। फिर पूर्व दिशा की ओर चले गये। किरात, यवन, म्लेच्छ, आर्य, त्रिगर्त्तगण (७४ अ०) प्राग्ज्योतिपुर के स्वर्गीय भगदत्त पुत्र वज्रदत्त (७५ अ७) पश्चिम में सिंधु देश के वीर राजा गण, पूर्व में मणिपुर राजा बभ्रुवाहन, मगध, चेदि, काशी, कोशल, गांधार आदि जीतकर अर्जुन

लौट आया। कुरुक्षेत्र तथा पहले के अश्वमेध की हार से वे क्रुद्ध थे तभी अर्जुन से लड़ने आये। इससे प्रकट होता है कि हारे राजा कर देकर फिर स्वतंत्र हो जाते थे।

कृष्ण और बलराम आये (८६ अ०) अर्जुन की स्त्री उलूपी और चित्रांगदा कुन्ती की आज्ञा से वहीं रहने लगीं (८८ अ०)।

भीम को धृतराष्ट्र पर श्रद्धा नहीं थी। उन्होंने दुर्योधन आदि का श्राद्ध करने को धन नहीं दिया। (युधिष्ठिर ने अपने कोष से दे दिया। धृतराष्ट्र और गांधारी वन में कुन्तीसहित जल गये। विदुर पागल होकर संन्यासी होकर मर गया।

मौसलपर्व—१. अ० छतीस वर्ष बाद वृष्णिवंश में अनीति प्रारंभ हुई। विश्वामित्र, कण्व और नारद द्वारका गये। सारण और साम्ब तथा कुछ अन्य यादवों ने उनसे ठट्ठा किया। ब्राह्मणों ने उनके नाश की प्रतिज्ञा की। वृद्ध यादवों ने सचेत होकर शराब पीना अपने नगर में बंद करवा दिया।

२. अ० यादवों को व्रात्य कहा गया है। वे ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे। कृष्ण, बलदेव को छोड़कर सब ब्राह्मणों के विरोधी हो गये। यादव प्रभासतीर्थ पर इकट्ठा हुए।

३. अ० यादव यहाँ अलग-अलग घरों में रहने लगे। फूट पड़ गई। मद्य-माँस खूब चल निकले।

उद्धव चले गये। यादव ब्राह्मणों के निमित्त तैयार किया हुआ भोजन मदिरा मिलाकर वानरों को खिला देते थे। प्रभास तीर्थ में नटों, नर्त्तकों का जमघट था। **कृष्ण के सामने ही बलदेव, सात्यकि, गद बभ्रु और कृतवर्मा मदिरा पीने लगे।**

सात्यकि पाण्डव पक्ष का था। कृतवर्मा कौरव पक्ष का।

गण में फूट पड़ गई। भयानक गृहयुद्ध प्रारंभ हो गया। भोज और अन्धक, वृष्णियों के विरुद्ध हो गये। वृष्णि कम थे। वे हार गये।

कृष्ण वृष्णि थे। उन्होंने भोज और अंधकवंश से युद्ध किया। अन्धक, भोज, शिनि, वृष्णि, कुक्कुर, सात्वत सब लड़ मरे। साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गद मारे गये। कृष्ण ने बहुतों को मारा।

४. अ० बलदेव इस नर-संहार से अलग थे। कृष्ण ने दारुक और बभ्रु की स्त्रियों को हस्तिनापुर पहुँचाने को भेजा। दारुक पाण्डवों को खबर देने चला गया। मदिरामत्त बभ्रु मारा गया। कृष्ण वसुदेव पर सब देखभाल छोड़कर वन को चले गये।

बलदेव वन में मर चुका था। जंगल में कृष्ण को व्याध ने मार डाला। इतना बड़ा राजनीतिज्ञ जंगल में अकेला मारा गया। उस समय उसके पास कोई न था।

५. अ० अर्जुन संवाद पाकर द्वारका गया।

६. अ० ब्राह्मणों ने यादव कुल में फूट डाल दी।

७. अ० वसुदेव की मृत्यु के बाद अर्जुन यदुवंश की स्त्रियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ को चले। कृष्ण और बलदेव की लाश ढूँढकर उनका दाह करा दिया।

पन्चनद प्रदेश में आभीरों ने यादव स्त्रियों को लूट लिया। पाण्डव शक्ति क्षीण हो गई। बर्बर आभीर स्त्रियों को भगा ले गये। बचा हुआ धन और स्त्रियाँ कुरुक्षेत्र में पहुँचा कर, उन्हें मार्तिकावत नगर में ठहरा दिया। सात्यकि पुत्र को सरस्वती नगरी तथा कृष्ण के पौत्र वज्र को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया।

अंत में पाण्डव भी हिमालय पर चले गये। परीक्षित राजा हो गया।

राजतंत्र या गणतंत्र दोनों की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। कुरुवंश क्षीण हुआ तभी राजा का नाम परिक्षित रखा गया। ब्राह्मणों ने यादवगण को नष्ट कर दिया, क्योंकि वहाँ ब्राह्मण का स्वेच्छाचार न था। दूसरे दास-प्रथा का भार, साम्राज्य की भूख राजतंत्र के दोनों पक्षों के समर्थक परस्पर लड़कर नष्ट हो गये।

महाभारत के अंत में अहिंसा तथा राज-विरोधी अनेक भावनाएँ हैं। वे तत्कालीन ब्राह्मण का यत्न नहीं हैं। परवर्त्ती हैं। क्योंकि महाभारत युद्ध के बाद जब युद्ध की वीभत्सा ने समाज को शिथिल कर दिया तब नाग, आभीर आदि अनेक जातियों ने सिर उठाया। पहले के आये आभीर आर्यों से दबे हुए थे। तब नाग भी दबे हुए थे। कृष्ण ने कालिय को यमुनातट से भगा दिया था। अब वे फट पड़े।

ब्राह्मण ने इन्हें दबाने का भयानक यत्न किया। इसमें क्षत्रिय ने उसकी सहायता की। नागों का बुरी तरह संहार किया गया, परंतु बाद में जब यह भी शक्ति क्षीण हो गई, तब जातीयता का भेद खो गया और ब्राह्मण के अधिकार और कम हो गये। क्षत्रिय भी बहुत कमज़ोर हो गया।

यहीं से कलि प्रारंभ हुआ। महाभारत में यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के भड़काने से ही जनमेजय ने इतना भीषण नाग-यज्ञ किया। आश्चर्य का विषय है कि जनमेजय फिर भी घृणा की दृष्टि से नहीं देखा गया। संभवतः एक कारण तो यह था कि आर्यों ही का बनाया इतिहास है, दूसरे नागों ने भी खूब अत्याचार किये होंगे, क्योंकि कथाएँ ऐसा ही प्रकट करती हैं।

इस प्रकार हमने जातियों का उत्थान-पतन, आर्थिक व्यवस्था का विकास तथा पुरुष और स्त्री के पारस्परिक अधिकारों का संक्षेप में विवेचन किया।

मूलाधार कुटुम्ब पैतृक व्यवस्था ग्राम बनी, फिर प्रदेश बने। गणों से गोत्रों से विकास होते-होते राजतंत्र बना। और उसकी पूर्ण विजय हो गई। परंतु वह दास-प्रथा के कारण अंत में लड़खड़ा गया। फिर उठा वह अवश्य परंतु तब दास-प्रथा नष्ट होकर किसान प्रथा (Serfs) आ गई। यह इतिहास के अगले पग में हुआ।

(कर) बलि प्रजा से ली जाती थी। पुरोहित राज्य कैसे धीरे-धीरे घटता गया, यह हम देख चुके हैं।

इस समय धीरे-धीरे न्याय का विकास हुआ अर्थात् व्यक्ति के अधिकारों का विकास हुआ। यज्ञ लूट से मिला और फिर शक्तिहीन होने लगा। स्त्री के अधिकार धीरे-धीरे

छिनते चले गये। इसी से पुत्र की उत्पत्ति हर्ष का कारण बनती चली गई।

इस समय तक माँस और मदिरा स्वतंत्रता से चलते थे। इस युग के अंत में ब्राह्मण सुरा को बुरा समझने लगे थे, यह अन्न से बनने वाला एक तीव्र मादक पदार्थ था। इस घृणा का कारण था पौरोहित्य करने वाले वर्ग ने अपना दृष्टिकोण बदल दिया था या कहें उस पर आर्येतरों का प्रभाव पड़ने लगा था। जैन संप्रदाय जो मूल में आर्येतरों का संप्रदाय था, या उत्तर से आनेवाले पाञ्चरात्र अहिंसक संप्रदाय ने अपना प्रभाव डाला था।

इस युग के अंतिम काल में सती-प्रथा बहुप्रचलित प्रथा बन ही गई थी।

आर्यों में खानपान की छुआछूत का चक्कर अभी बढ़ा नहीं था। विवाह के नियम अवश्य जटिल होने लग गये थे। धीरे-धीरे पुरों का स्थान नगर लेने लग गये थे। कृषि-व्यवस्था में उन्नति हुई थी। २४ बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हल का भी वर्णन मिलता है।

शिकारी, मछुए, हलवाहे, रंगाई करने वाले, नाई, जुलाहे, कसाई, सुनार, नट, जहाज़ी लोग धीरे-धीरे अलग-अलग बढ़ने लगे। अब यह मेहनतकश जातियाँ बनकर रूढ़ियों में बँधने लगे थे। व्यापारी अलग दिखाई देते हैं। यही लोग थे जो इतिहास को आगे बढ़ा ले गये।

९
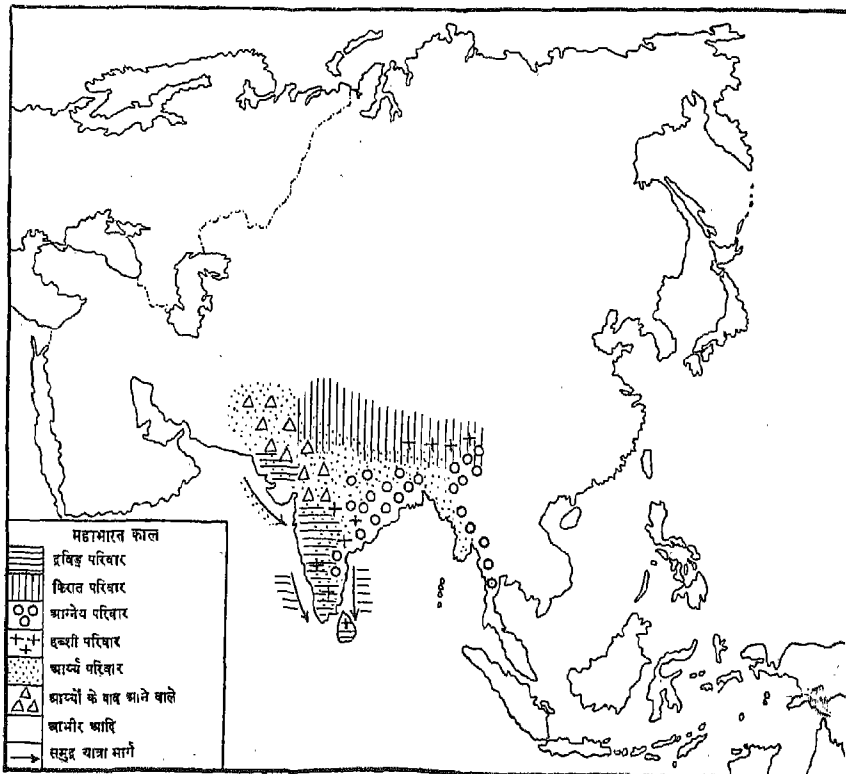
कलियुग

धार्मिक और दार्शनिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप ब्राह्मण वर्ग जब खतरा अनुभव करने लगा, वहीं से कलि प्रारंभ हुआ। पार्जिटर के अनुसार यह युग ८४० ई० पू० से प्रारंभ होता है। हमारे विवेचन के फलस्वरूप यह समय लगभग १६०० ई० पू० है। यहीं भारतीय इतिहास का मध्य प्राचीनकाल समाप्त तथा उत्तर प्राचीनकाल का प्रारंभ होता है। यह कपिल के सांख्य का युग है। इसी समय धर्मशास्त्रों की आज्ञाएँ प्रचलित हुईं। षड्दर्शन की रूपरेखा का उपनिषदों के गंभीर चिंतन से जन्म हुआ, उनकी प्रारम्भिक रूपरेखा बनी। आर्य सामाजिक व्यवस्था के भीतर और बाहर आस्तिकता और नास्तिकता का व्यापक संघर्ष होने लगा। पुराण तथा शास्त्र कहते हैं कि इस युग के अंत तक तीन बार एक व्यापक गणतंत्र बनाने की चेष्टा की गई अर्थात् दास-प्रथा को क़ायम रखने के लिये राजकुलों ने एक्य का यत्न किया, किन्तु तीनों बार इसमें असफलता ही मिली। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के जो पुराण हमें आगे चलकर सुव्यवस्थित अवस्था में मिलते हैं उनका श्रीगणेश भी इसी काल में हुआ। महाभारत लिखी गई। रामायण का पुराना ढाँचा तैयार किया गया जो बाद में बदल-बदलाकर परवर्त्ती काल की छाप लेकर वाल्मीकि रामायण के नाम से हमारे सामने मौजूद है। परवर्त्ती काल के विचारों को भी महाभारत में घुसाया गया। सूत्रों का सूत्रपात हुआ। श्लोक उपनिषदों के बाद तथा सूत्रों से पहले विकासक्रम में आते हैं।[1]

इस काल में कोई चक्रवर्त्तित्व नहीं रहा। चारों ओर खंडित रूप से कबीला जातियां तथा आर्य लोग अपना-अपना शासन चलाते रहे। आर्यों में भी कुछ स्थानों पर दास-प्रथा पर जीवित गणतंत्र था। इक्ष्वाकु वंश को खत्म कर गण उठ खड़े हुए। गणों में राजकुल का प्रभाव था। पश्चिम के कुछ गण आयुधजीवी थे अर्थात् सब ही लड़ते थे। वे संभवतः और आदिम अवस्था में थे।

अधिकांश समाज (ब्राह्मण स्वार्थकृत) जर्जर होता चला जा रहा था। उधर उच्च वर्ग भी अपने को सुगठित और सुदृढ़ करते जा रहे थे। उन्हें नास्तिकों की टक्कर अधिकाधिक तीव्र होती दिखाई दे रही थी। इस नास्तिकता का केन्द्र गण ही थे। ब्राह्मणवाद सामंतवाद का प्रतीक हो चला था। इससे आगे विस्तार से देखना आवश्यक है। अतः गण उसको चुनौती देते थे, और प्राचीन आर्येतर जातियों के अनेक विश्वास उनकी धारणाओं की पुष्टि करते थे। इसके साथ शिव का प्राचीन अघोर रूप भी अभी तक अपने सशक्त रूप

१. वेदिक इन्डैक्स २, पृ० ४०५।

में जीवित था। ब्राह्मण अपने को सर्वोपरि स्थापित करके भी उसको नहीं तोड़ सके थे। योग का प्रभाव बढ़ चला था। साम्राज्य-निर्माता कृष्ण का दिया पथ समाज के निम्न वर्गों को राहत दे गया था। क्षत्रिय और ब्राह्मणों में इस समय चटक रही थी। क्षत्रिय ऋषभ जैन तीर्थंकर था। उसने विद्रोह खड़ा किया।

राजवंशों की तालिका ठीक नहीं मिलती। अतः उसको नहीं लिया गया है। हस्ती ने जो हस्तिनापुर बसाया था, उसे इस युग के अंत में जमुना बहा ले गई। कौरव वंश को ब्राह्मणों ने नष्ट कर दिया। इस युग के अंत में दिल्ली के आसपास से आर्य शक्ति का केन्द्र उठकर पूरब में पाटलिपुत्र की ओर खिसक गया।

देवयुग में भारत के उत्तर-पश्चिम में हिन्दूकुश के उस पार आर्य थे। सत्ययुग में पञ्चनद प्रदेश केन्द्र रहा। त्रेता में कोशल इत्यादि। द्वापर में प्रजापति की उत्तर वेदी समन्त पञ्चक (कुरुक्षेत्र) रहा और वह मगध में आ गया।

दास-प्रथा टूटने लगी। दास शूद्रों में मिल गये। अनार्यों का एकतंत्र भी टूटने लगा। कलि के वर्णन हुए। कलि-वर्णन के रूप में ब्राह्मण समाज अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने लगा। भद्रकाली, आदि सौर, गाणपत्य तथा यक्ष प्रभाव पड़ने लगा। स्त्री-पुरुष, धर्म-अधर्म, जाति-भेद आदि के सम्बन्ध बदल गये। जंगली जातियाँ अब वनों को घेर बैठीं। आभीरों तथा श्वेत द्वीप (उत्तर) से पाञ्चरात्र का प्रभाव बढ़ा और भागवत संप्रदाय की सहिष्णुता समाज में घुसने लगी। गीता का विराट् पुरुष उठा। समानता में वैषम्य था। पुनर्जन्म की प्रचलित आर्येतर धारणा जो उपनिषदों में स्वीकृत हुई वह फल फूल उठी।

दत्तात्रेय संप्रदाय का प्रारंभ हुआ। यह क्षत्रिय कार्त्तवीर्य का गुरु बताया गया है। इसका इतना बड़ा प्रभाव था कि यह बाद में अवतारों में गिन लिया गया।

जनक के यहाँ अश्वल, जारत्कारव आर्त्तभाग, भुज्यु लाह्यायनि, उशस्त चाक्रायण, कहोड कौशीतकेय, गार्गी वाचक्नवी, उद्दालक आरुणि, विदग्ध शाकल्य आदि आते-जाते थे।[१] अश्वपति केकयराज, प्रवाहण जैवलि[३] उसके समसामयिक थे।

विदेह और कोसल के बीच सदानीरा नामक नदी बहती थी। कोसल के आगे दलदल जैसा देश था। ब्राह्मण वहाँ तब गये थे जब पहले माथव विदेघ ने अग्नि पहुँचाई थी।[४] महाभारत में यह कथा है।

विदेह में कलार (कराल) जनक के समय में साम्राज्य उलट दिया गया और लिच्छविगण स्थापित हुआ।[५] (—?)

अथर्ववेद में सर्वप्रथम मगध का नाम आया है। यजुर्वेद में मागध गायक उल्लिखित हैं।[६] उषस्ति चाक्रायण बौद्धों के बहुत पहले ही उत्तर बिहार में बस गया था।[७]

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ ऐंशेंट इंडिया पृ० ५९.

२. वही पृ० ५३.

३. वही पृ० ६१.

४. वही पृ० ६४.

५. वही पृ० ७१.

६. वही पृ० ९५–९६.

७. वही पृ० १०१.

पाञ्चरात्र का प्रादुर्भाव उत्तर से हुआ। श्वेत द्वीप की कथा से ऐसा ही ज्ञात होता है कि इसका प्रारम्भ उत्तर से हुआ।[1] ५वीं सदी ईसा पूर्व पाञ्चरात्र उपासना आधुनिक मराठा प्रदेश के क्षेत्र तक पहुँच चुकी थी।[2] पाञ्चरात्र संहिता में चार पद कहे गये हैं। ज्ञान, योग, क्रिया, चर्य्या।[3] गुण मिलकर वासुदेव का शरीर बनाते हैं। उसकी प्रिया लक्ष्मी है।[4] प्रत्येक व्यूह विष्णु है। उसके छः गुण हैं जिनमें दो ही प्रकट हैं। गुण—ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति तथा तेजस् हैं। व्यूह हैं—संकर्षण (बलराम, बलदेव, कृष्ण का अग्रज), प्रद्युम्न (कृष्ण का पुत्र), अनिरुद्ध (कृष्ण का पौत्र)।[5]

कथा शाङखायन श्रौतसूत्र में है कि वृद्ध द्युम्न ने यज्ञ में गलती कर दी, जिसके कारण ब्राह्मण उसके विरुद्ध हो गये, क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा कि वे कुरुक्षेत्र से कुरुओं को निकाल देंगे, और उन्होंने उन्हें निकाल दिया।[6] ऐसे काम कर सकने को ब्राह्मणों में अभी शक्ति शेष थी।

निचक्षु के समय में (गंगा ?) हस्तिनापुर बहा ले गई। तब इसने कौसांबी में राजधानी बसाई।[7]

घर तब सुंदर नहीं बनते थे। ७वीं शती ईसा पूर्व टीलों में मिली नगर की सड़कें तथा घर बेतरतीबी-से बने हैं, पत्थर के हैं, और अनगढ़ हैं।[8]

पाणिनि तथा यास्क के पूर्ववर्त्ती वैयाकरण तथा निरुक्तकारों के नाम ऐसे मिलते हैं—औदुम्बरायण, क्रौष्टुकी, शतबलाक्ष, मौद्गल्य, शाकपूणि, शाकटायन, स्थौलाष्ठीवी आग्रायण, औपमन्यव, और्णवाभ, कात्थक्य, कौत्स, गार्ग्य, गालव, चर्मशिरस् तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकल्य इत्यादि।[9] यह उस लंबी परम्परा को बताता है कि वैदिक समय काफ़ी पहले बीत चुका था।

अब जैनों को देखें। उषभ अथवा ऋषभ जैनों में पहले जिन हैं। उन्हीं से संसार को ज्ञान मिला। उन्होंने ही विवाह-प्रथा चलाई, शवदाह सिखाया, थूभ (स्तूप) बनवाये।

इन्द्र तथा नाग पूजा के उत्सव चलाये। वे इक्खाग भूमि (अयोध्या) में पैदा हुए थे।[10] ऋषभ वास्तव में बहुत प्राचीन रहे होंगे। ऋषभदेव के बाद तेईस तीर्थंकर हुए। इनमें चार को छोड़कर प्रायः सभी इक्ष्वाकु वंश में हुए थे।[11] यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजित-नाथ, अरिष्टनेमि नामक तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। भागवत पुराण में भी ऋषभदेव

१. इन्ट्रोडक्शन टु दी पान्चरात्र एण्ड दी अहिबुध्न्यसंहिता, पृ० १६
२. वही पृ० १७.
३. वही पृ० २२.
४. वही पृ० ३४.
५. वही पृ० ३५.
६. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ ऐंशेंट इंडिया, पृ० ३७.
७. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ ऐंशेंट इंडिया, पृ० ३६.
८. रिवीलिंग इंडियाज़ पास्ट जे. वोगेल, पृ० १४२-४३.
९. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० ८.
१०. लाइफ़ इन ऐंशेंट इंडिया, पृ० १९.
११. जैन धर्म, पृ० १७.

को ही जैनधर्म का संस्थापक माना गया है।[१] जैन संघ में चारों वर्णों के लोग सम्मिलित हो सकते थे। शूद्र को भी धर्म सेवन का अधिकार था।[२] ऋषभ के समय में भाई-बहिन की शादी जायज़ थी।[३] पार्श्वनाथ महावीर से लगभग २५० वर्ष पूर्व हुए थे।[४] उनका समय इस प्रकार ईसा पूर्व नवीं शती हुआ।[५] उन्होंने चार गण स्थापित किये थे।[६] पार्श्व के अनुयायी ५०० थेर थे जो तुञ्गिय में रहते थे।[७]

महावीर से पहले ये तापस (तावस) थे जो उसे मोराग सन्निवेश के वन में मिले थे।

गंगातीर पर वातापत्थ तावस, बलिदायी होत्तिय, नंगी धरती पर सोने वाले कोत्तिय, कपड़े पहनने वाले पोत्तिय, यज्ञकर्त्ता जण्णई, अपनी समस्त संपत्ति को सदैव अपने ही साथ रख लेने वाले थालई, भक्त लोग सड्ढाई, कुण्डिका श्रमण हम्बौद्ध, दांतों से दाने पीसकर खाने वाले दन्तुक्खालिया, वाउभक्खी, उम्मज्जक, सम्मज्जक, निम्मज्जक, संपक्खाल दक्खिणकूलग, उत्तरकूलग तथा सेवालभक्खी आदि।[८]

पार्श्वनाथ की मृत्यु ७७६ ई० पू० हुई।[९]

उस समय की अनेक जंगली जातियों में शिव की उपासना थी। पंपा रामायण में उल्लेख है कि रुद्र ने मूक दानव के वराह रूप का पीछा करते समय शबर का रूप धारण किया था।[१०]

अब भाषा को देखना चाहिये।

स्मृति से प्राचीन लिपि को फिर लिखा जाये और जब एक नई भाषा के लिये उसका प्रयोग हो, तब उसमें एक अपूर्णता रह जाती है। ईसा से १,००० वर्ष पूर्व ब्राह्मी से मिलती हिंद-आर्य लिपि भी तत्कालीन वैदिक ध्वनियों को लिखने वाली एक अनगढ़ प्रयोग थी।[११] संभवतः प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक हिन्द आर्य भाषाओं के बीच में प्राकृत तथा अपभ्रंश जोड़ने वाली कड़ियाँ हैं।[१२]

गौतम बुद्ध के कुछ समय पहले पुरानी हिंदु आर्य भाषा का समय समझा जा सकता है।[१३] ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिमी हिमालय की खस जाति की भाषा दरद (हिंद आर्य) थी। खस, ब्राह्मण समाज के बाहर के आर्य थे। दक्षिण में आने पर उनकी भाषा को पहले से आये आर्यों ने दबा दिया।[१४] सिंहाली भी हिंद-आर्य भाषा है जो ५वीं सदी ईसा पूर्व अपनी निकट की भाषाओं से अलग कर गई।[१५]

---

१. जैन धर्म पृ० ३.
२. वही पृ० २७५.
३. लाइफ़ इन ऐंशेंट इंडिया, पृ० १६०.
४. वही पृ० १९.
५. वही पृ० २२.
६. वही पृ० २३.
७. वही पृ० २१.
८. वही पृ०२०३,
९. जैन धर्म पृ० ३५३.
१०. दी वाइल्ड ट्राइब्स इन ऐंशेंट इंडिया, पृ० ५८.
११. इन्डो-आर्यन एण्ड हिंदी, पृ० ४९.
१२. ओरीजिन एंड डेवलपमेंट आफ़ बंगाली लेंग्वेज, पृ०२२.
१३. वही पृ० १७.
१४. वही पृ० ९–१०.
१५. वही पृ० १५.

भारत में आर्य भाषा होने पर आर्य तथा आर्यों के आने से पहले बसे हुए लोगों की दंतकथाएँ, कहानियाँ, पौराणिक कथाएँ तथा किंवदन्तियाँ आपस में मिल गईं।[१] पाली जातक में चांडाल बस्तियों का उल्लेख हुआ है। ये चांडाल अपनी भाषा के अतिरिक्त ब्राह्मणों की भाषा भी सीखते थे।[२] इस प्रकार एक दूसरे की भाषा पर प्रभाव पड़ता था और कथाएँ इधर से उधर फैलती थीं। (याद रहे चाण्डाल अत्यंत पतित माने जाते थे।)

ईसवी दूसरी या तीसरी शती में इन्डोचीन में संस्कृत पहुँच गई थी।[३] वहाँ से मलय, इन्डोनीशिया, जावा, सुमात्रा, बाली में भी फैल गई।[४] प्राचीन-खोतानी और तुषारी ने मध्य एशिया तथा चीनी सीमा पर भारतीय भाषा तथा संस्कृत को फैलाने में माध्यम का काम किया।[५]

संस्कृत ईसवी पूर्व शतियों में पंजाब और मध्य-प्रदेश की बोली थी। वही सर्व-स्वीकृत हुई[६] और देवभाषा करार दी गई।

संस्कृत ब्राह्मणों को प्रिय थी। अन्य संप्रदायों के आचार्य तत्कालीन देशभाषाओं को काम में लाते थे। कारण था कि वे ब्राह्मण के विरुद्ध ब्राह्मणों से इतर जनसमाज को अपनी ओर खींचना चाहते थे।

आर्य भाषा गांधार से विदेह, मगध, हिमालय से मध्यभारत, गुजरात तक फैल गई। ६०० ई० पू० में आर्य भाषा बंगाल तथा दक्षिण में फैली। वहाँ संस्कृत और प्राकृत दोनों साथ-साथ गईं। तमिल में अनेक प्राकृत के शब्द हैं, जो आसानी से पहचाने नहीं जाते।[७] उत्तर-पश्चिम भारत और पंजाब के वासी अपनी प्राकृत के साथ ३०० ई० पू० में खोतान गये और यह उत्तर-पश्चिम प्राकृत पुरानी हिंद आर्य से उतनी दूर नहीं थी जितनी पूर्वीय और दक्षिण-पूर्वीय प्राकृत हो चुकी थी। लंका में ६०० ई० पू० के लगभग गुजरात से एक दूसरी प्राकृत गई।[८] भारतीय ब्राह्मण बर्मा गये।[९] भारतीय प्रभाव स्याम (द्वारावती), कम्बोडिया (काम्बोज), अनाप (चम्पा) में ईसा से पहले ही पहुँच गया था।[१०]

प्राचीनकाल की सशक्त रही निषाद जाति की शक्ति अब क्षीण हो चली। स्त्री और विवाह के सम्बन्ध बदल गये। अभी तक जो स्त्री दास युग में दासी थी, अब दास से जैसे शूद्र होने पर दास को कुछ अधिकार मिले, वैसे ही कुछ अधिकार पा गई। विभिन्न जातियों से भारत घिरा हुआ था। वर्ण-व्यवस्था के रूप में ब्राह्मण वर्ग स्वार्थों को क़ायम रखता था। इस समय वह जाति-व्यवस्था दृढ़ होती जा रही थी जिसका समानान्तर

---

१. इन्डो-आर्यन एण्ड हिंदी, पृ० ५२–५३.
२. वही पृ० ५८.
३. वही पृ० ६८.
४. वही पृ० ६९.
५. वही पृ० ७१.
६. वही पृ० १५९–६०.
७. वही पृ० ६५–६६.
८. वही पृ० ६६–६७.
९. वही पृ० ६७.
१०. वही पृ० ६८.

दुनिया में कहीं नहीं मिलता। वर्ण-व्यवस्था की आड़ में ब्राह्मण दिव्य हो चला। संपत्ति के स्वार्थों को क़ायम रखने के लिये जातिभेद बढ़ा। इसमें जातीय भेद तथा संस्कृति और रहन-सहन, दर्शन, ने भी प्रभाव डाला। इसमें आर्यों के अतिरिक्त अनार्यों का भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और इसी समय आर्यों के समाज में अनार्य समाज की बहुत-सी बातें ज्यों-की-त्यों आ गईं और बहुत-सी अपना रूप बदलकर घुसीं। अनार्यों पर भी आर्यों का प्रभाव बढ़ चला और अनार्य आर्यों के जीवन को अपनाने लगे। जो अच्छी जातियाँ थीं, उनमें ज़्यादा असर पड़ा, जो कम सभ्य थीं उनमें उसी के अनुसार कम प्रभाव पड़ा। गोंड जाति ने कभी भी ब्राह्मण का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। आज भी वे ब्राह्मण के हाथ का नहीं खाते। पूछने पर कहते हैं कि यदि वे ब्राह्मण के हाथ का खायें तो ब्राह्मण को उससे तकलीफ़ होगी। यह बात उनमें तब घुसी जब ब्राह्मण सारे भारत में पूज्य हो गया होगा। गोंड भी दब गये थे। जंगली जातियों पर तो बहुत कम प्रभाव पड़ा। दक्षिण की बेडर जाति ब्राह्मण-विरोधी थी।

आर्यों में भी ब्राह्मण का विरोध करने वाले प्रारंभ हो रहे थे। इस प्रकार समाज में चार रूप हो चले :

	ब्राह्मण-विरोध	ब्राह्मण जय
१.	आर्य	अनार्य
२.	अनार्य	आर्य

ब्राह्मण के सामने अपने को सुदृढ़ करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। इसी समय बड़े-बड़े यज्ञ होने लगे जिनमें ब्राह्मण इकट्ठे होने लगे।

अकेले दस हज़ार को भोजन देने वाला शौनक कुलपति था। उसने एक यज्ञ किया। उसमें बारह वर्ष की दीक्षा लेकर अनेक ऋषि आये। यह नैमिषारण्य क्षेत्र में हुआ। यहाँ पुराणवक्ता रोमहर्षण सूत का पुत्र उग्रश्रवा आया। सूत का ऋषियों ने सत्कार किया (अ. प. १. १-६)

सूत कर्ण भी था। ऊपर कर्ण का सम्मान देखा जा चुका है। इस समय सूत का सामाजिक स्थान पहले से कहीं अधिक ऊँचा हो गया है।

सूत ने बताया कि जनमेजय के सर्पयज्ञ में वैशम्पायन ने कृष्ण द्वैपायन रचित महाभारत सुनाया था। (१.)

इससे स्पष्ट हुआ कि कृष्ण द्वैपायन ने जनमेजय से पहले ही महाभारत लिखा था, जिसे वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाया अर्थात् अर्जुन से तब तक तीसरी पीढ़ी चल रही थी।

इस कथा का प्रचार समन्त पञ्चक तीर्थ में था। सूत ने वहीं सुनी थीं। क्योंकि वहीं प्राचीनकाल में कौरव-पाण्डवों का युद्ध हुआ था। यहाँ (२६-३७) संसार क्रम इस प्रकार बताया गया है :

संसार और घोर अंधकार

|

अण्ड (बीज)

इस अण्ड में परब्रह्म घुसा

|

प्रजापति ब्रह्मा

|

७ ऋषि, १४ मनु, स्थाणु, स्वायंभुव मनु, दस प्रचेता, दक्ष, दक्ष के सात पुत्र।

|

अप्रमेय विराट् पुरुष

|

१० विश्वेदेवा, १२ आदित्य, ८ वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, साध्यगण,
पिशाच, गुह्यक, पितृगण

|

महर्षि तथा राजर्षि

|

रक्त, पृथ्वी, स्वर्ग, वायु, आकाश, १० दिशाएँ,
वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, रात्रि
अन्य पदार्थ

|

अब भविष्य में प्रलय होगा।

यह एक जन्म-मरण का चक्र है जो बराबर चल रहा है।

इस प्रकार ३६३३३ देवताओं की सृष्टि हुई।

दिव

|

ब्रह्मद्भनु, चक्षु, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क
भानु, आशावह, रवि, मनु (मह्य)

|

देवभ्राट सुभ्राट

|

दशज्योति | शतज्योति | सहस्रज्योति

१००००पुत्र | १ लाख पुत्र | १० लाख पुत्र

|

कुरुवंश, यदुवंश, भरतवंश, ययातिवंश,
इक्ष्वाकुवंश, राजर्षियों के वंश

इस क्रम में परम्परा को भूला हुआ रूप है। कुरु, ययाति तथा भरतवंश को आगे

एक ही कहा गया है। किन्तु यहाँ सब अलग-अलग माने गये हैं। इस समय भारत में असंख्य देवताओं का प्रभाव मुखर हो चला था, या पूर्ववर्त्ती देवजाति को इस प्रकार परिगणित किया गया।

इस क्रम में प्रजापति ब्रह्मा के बाद विराट पुरुष का जन्म हुआ है। ऐसा क्यों? क्या यह भी विराट् (वेदिक) की परम्परा भूल जाने के कारण ऐसे व्यक्त किया गया है कि विराट् का अर्थ महान् से लगाया जाने लगा था?

महाभारत ग्रंथ के विषय में भी भ्रम थे। कोई 'नारायणं नमस्कृत्य' से, कोई आस्तीक पर्व से, कोई उपरिचर राजा की कथा से महाभारत ग्रंथ का आरम्भ मानते थे। आस्तीक पर्व से पहले है: आदिपर्व, पर्वसंग्रहपर्व, पौष्यपर्व, पौलोमपर्व, पौष्य और पौलोम में नागयज्ञ का कारण है। स्पष्ट ही यह उस समय लिखे गये जब महाभारत के नाग यज्ञ की वास्तविकता भली जा चुकी थी और नाग और आर्यों का पारस्परिक विद्वेष लुप्त हो चुका था।

६३वें अध्याय में उपरिचर का उपाख्यान है। भीष्म आदि के जन्म-वृत्तांत से कथा शुरू होती है। निस्संदेह इससे पहले का जो हिस्सा है वह इसका परवर्त्ती है।

महाभारत के लेखकों और प्रवक्ताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।
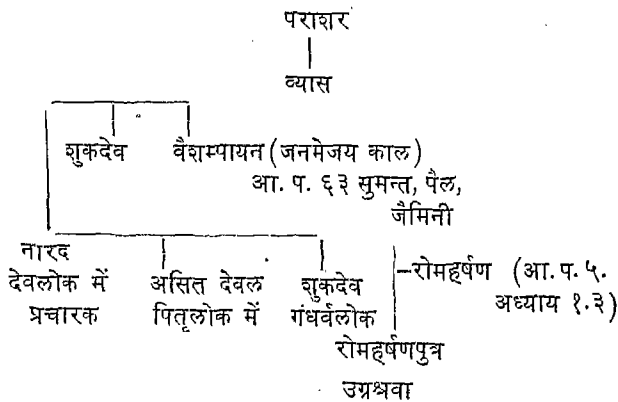
(आ. प. १. ६४-७०) इसके विषय हैं: तीनों वेद। (अथर्व नहीं)
मानुष अवतार तथा पाशुपतधर्म।

इस परवर्त्तीकाल में पाशुपतधर्म महत्त्वपूर्ण हो चुका था।

पर्वसंग्रहपर्व. १. २-३ में परशुराम के २१ बार क्षत्रिय नाश का त्रेता और द्वापर की संधि में वर्णन है। रक्त के पाँच कुण्ड समन्त पञ्चाक में बनाकर परशुराम ने पितरों का तर्पण किया।

समस्त परम्परा त्रेता के अन्त में परशुराम की राम के हाथों पराजय मानती है। यह परवर्त्ती भूल हुई है। निस्संदेह यह महाभारत का सबसे अन्त में बना भाग है क्योंकि इसमें पूरी सूची है और सूची तब बनी है जब सब क्षेपक भी जुड़ चुके हैं।

आदि पर्व ३. पौष्यपर्व।

परीक्षित् के चार पुत्र थे। जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन, भीमसेन। उनके यज्ञ में सरमा कुक्कुरी के पुत्र के साथ अन्याय हुआ।

जनमेजय ने श्रुतश्रवा के पुत्र सोमश्रवा को पुरोहित बनाया। इसकी माता नाग जाति की थी। जनमेजय ने तक्षशिला नगर जीत लिया।

उत्तङ्क ने गुरुदक्षिणा के हित पौष्य राजा से कुण्डल पाये। साधु का रूप बना तक्षक नाग उन्हें चुरा ले गया। उत्तङ्क नाग-लोक पहुँचा। नागों का विशाल नगर था। नाग गंगा तट पर भी रहते थे। यहाँ धृतराष्ट्र, ऐरावत आदि का प्रभुत्व बताया गया है। उत्तङ्क ने नागों को प्रणाम करके कहा: नागराज तक्षक पहले कुरुक्षेत्र में और फिर खाण्डव वन में रहते थे। इक्षुमती नदी के निकट कुरुक्षेत्र में बसने वाले, नित्य साथ रहने वाले, तक्षक और अश्वसेन भाई थे। तक्षक का छोटा पुत्र श्रुतसेन कुरुक्षेत्र में नागराज होने के लिये सूर्य से प्राथना कर रहा था।

उत्तङ्क बहुत दूर पहुंच गया था। उसके पुण्य कर्म का चौथा दिन बीत रहा था। यह बात बीच के फासले को प्रकट करती है।

ब्राह्मण उत्तंक, कुण्डल ले आया, परंतु जनमेजय को, उसने हस्तिनापुर में जाकर भड़काया। राजा जनमेजय उस समय तक्षशिला पर चढ़ाई करके जीत कर लौटा था। वह मंत्रियों के बीच में बैठा था। उसने कहा: आपके पिता तो निरपराध थे। तक्षक ने उन्हें मार डाला। उससे बदला लीजिये।

जनमेजय भड़क उठा।

पौलोमपर्व. आदिपर्व ४. यह जनमेजय यज्ञ का दूसरा कारण था।

८वें अध्याय में कथा है।

गंधर्वराज विश्वावसु + मेनका अप्सरा
|
महर्षि स्थूलकेश — प्रमद्वरा (काव्य वनत्यक्ता)
|
ने ———————— पाली, रूरू को ब्याही

उसे नागों ने मार डाला। तपोवन में स्वस्ति, आत्रेय, महाजानु, कुशिक, शंखमेखल, उद्दालक, कठ, यशस्वी श्वेत, भरद्वाज, कौणिकुंत्स्य, आर्ष्टिषेण, गौतम, प्रमति, रुरु।

(१००० अ) रूरू ने नागों का विध्वंस शुरू किया। डुण्डुभ नाग को उन्होंने घेरा जिनको ब्राह्मणों ने वीर्य्यहीन कर दिया था। डुण्डुभ को रुरु ने क्षमा किया (११)। रू रू के पिता प्रमति ने आस्तीक-कथा सुनाई।

(१३. अ०) आस्तीक, यायावर बंशी जरत्कारु आर्य का जरत्कारु नाग स्त्री से पुत्र था। जरत्कारु नागी वासुकि बंश में थी जो आर्यों का देवयुग से सहायक था।

आ० प० ३७. नाग जनमेजय के नाग यज्ञ से बचने का उपाय सोचने लगे। वे

यहाँ (२०-३०) यज्ञ विरोधी हैं।

३८. ८. ९. ९. से प्रतीत होता है कि जनमेजय के नाग यज्ञ में सब नाग नहीं मरे। वासुकि ने अपनी बहिन जरत्कारु आर्य को ब्याह दी थी। उसके पुत्र आस्तीक ने आर्यों के मित्रों को बचवा दिया। एलापत्र नाग संधि के पक्ष में था।

४१. अ. जनमेजय के पिता के विरुद्ध शृंगी ऋषि हो गया। उसने नागों को बढ़ावा दिया। उसके पिता शमीक ने रोका भी।

परीक्षित डरकर छिपा। (४३) काश्यप ब्राह्मण को ज्ञात हुआ कि नाग उसके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे थे। वह बचाने चला, परंतु नागों ने उसे धन देकर खरीद लिया।

ब्राह्मण की धनलोलुपता अब आर्य लाभ सोचना संभवतः छोड़ चुकी थी। नागों न छल से परीक्षित को मार डाला। और भागकर उत्तर चला गया।

४४. अ० उस समय जनमेजय बालक था।

४६. अ० जरत्कारु, जोड़े वाला ब्याह चाहते थे अर्थात् पुत्रोत्पन्न करना, बस। भरणपोषण करके स्त्री रखना चाहते थे। उन्हें दबे हुए एक नाग वंश में ऐसी स्त्री मिली।

आस्तीक को भार्गव वंश ने शिक्षा दी (४८वाँ अ०)।

४९. अ० उत्तङ्क ने जनमेजय को भड़काया। परीक्षित की मृत्यु का बदला चाहा। कौरव-वंश के 'क्षीण' होने पर उत्पन्न होने के कारण जनमेजय के पिता का नाम परीक्षित पड़ा था। (तक्षक आर्यों का पुराना शत्रु था। उसने इसी समय लाभ उठाया था) परीक्षित मृत्यु के समय ६० वर्ष का था।

५१. अ० जनमेजय ने नाग-वध प्रारंभ किया। पौराणिक थवई[1] नामक सूत ने कहा—यह काम पूरा नहीं होगा। ब्राह्मण ही इसे रोकेगा।

५२. अ० काले रंग के कपड़े पहनने वाले ब्राह्मण यज्ञ कराने लगे। नागों का कत्लेआम होने लगा।

५३. अ० जनमेजय के नाग यज्ञ में—

होता	चण्डभार्गव
शास्त्री	कौत्स
ब्रह्मा	जैमिनि
अध्वर्यु	शार्गंरव
	पिंगल

वेदव्यास, शुकदेव, वैशम्पायन, उद्दालक, प्रमतक, श्वेतकेतु, पिंगल, असित्, देवल, नारद, पर्वत, आत्रेय, कुण्ड, जठर, कालघट, वात्स्य, स्थविर, श्रुतश्रुवा, कोहल, देवशर्मा, मौद्गल्य, समसौरभ आदि।

यह नाम बाद में लिखे गये हैं। पूरी तरह से इन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

तक्षक अभी तक नहीं पकड़ा गया था। वह देवयुगीन सभ्यता के अवशेषों में छिप

---

१. ५८२ पृ० में लोहिताक्ष नाम आया है।

गया था, उत्तर की जातियों में ।

५६. अ० आर्यों का दबाव बढ़ने पर तक्षक को उत्तरी देवजातियों ने छोड़कर अलग कर दिया । परंतु आस्तीक ने यज्ञ रुकवा दिया ।

५७. अ० इस यज्ञ में सर्पों अर्थात् नागों के यह वंश मारे गये : कोटिश, मानस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमक, पिच्छल, कौशाप, चक्र, कालवेग, प्रकालन, हिरण्यबाहु, शरण, कक्ष, कालदन्त । वासुकि के वंश के भी नाग मरे । प्रच्छाण्डक, मण्डलक, पिण्डसेक्ता, रभेणक, उच्छिक, शरभ, भंग, विल्वतेजा, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेपन, मुद्गर, शिशुरोमा, सुरोमा, महाहनु--तक्षकवंशीय नाग मारे गये । कौरव्य वंश के--एरक, कुण्डल, वेणी, वेणीस्कंध, कुमारक, बाहुक, शृंगवेर,[1] धूर्तक, प्रातः, आतक मारे गये । धृतराष्ट्र नाग वंश के--शंकुकर्ण, पिठरक, कुठार, मुखसेचक, पूर्णाङ्ग, पूर्णमुख, प्रहास, शकुनि, दरि, अमाहठ, कामठ, सुषेण, मानस, अव्यय, भैरव, मण्डवेदाङ्ग, पिशंग, उदयारक, ऋषभ, वेगवान्, पिण्डारक, महाहनु, रक्ताङ्ग, सर्वसारङ्ग, समृद्ध, पटवासक, वराहक, वीरणक, सुचित्र, चित्रवेग, पराशर, तरुण, मणिस्कंध, आरुणि--मारे गये ।

ब्राह्मण और क्षत्रियों ने नाग जाति का भयानक नाश किया ।

५८. अ० आस्तीक (२०-३०) अकेला नहीं गया था । उसके साथ असित् तथा सुनीथ नाग और आर्त्तमान् भी जीवन की भीख मांगने गये थे । नागों ने आर्यों के समाने हथियार डाल दिया । आस्तीक ने वचन दिया कि नाग कभी आर्यों के विरुद्ध नहीं होंगे ।

जनमेजय ने तक्षशिला में नाग यज्ञ किया था । वहाँ से वह हस्तिनापुर लौट आया । (स्वर्गारोहण पर्व, ५ अ०)

इस समय ब्राह्मण की कट्टरता टूट गई । समाज में दास-प्रथा लड़खड़ा गई । नया चिंतन घुस आया और अनार्य अब चढ़ने लगे ।

इस समय योग का भारतीय आर्यों पर काफी प्रभाव पड़ चुका था । शरीर को तपाने वाले असंख्य लोग जंगलों में जीवन काट रहे थे ।

एक मत है कि महाभारत युद्ध का उल्लेख ब्राह्मणों में नहीं मिलता है ।[2] कृष्ण का समय जायसवाल के अनुसार १४०० ई० पू० है ।[3] पाजिटर के अनुसार परीक्षित के जन्म से महापद्म (३७२ ई० पू०) तक का समय १०१५ या १०५० वर्ष है ।[4]

पुलकेशिन द्वितीय का ५५६ (शक) संवत--६३५-३५ ई० का शिलालेख एहोल में मिला है, जिसके अनुसार उस समय भारत युद्ध से ३७३५ वर्ष बीत चुके थे ।[5]

---

१. ध्यान रहे शृङ्गवेरपुर में निषादों का राज्य था, इसका उल्लेख हो चुका है ।

२. इंहिक्वा ५.१९२९, पृ० २६५

३. वही पृष्ठ २६८.

४. दी डायनैस्टीज़ आफ़ दकलिएज पृष्ठ ५८ तथा ७४.

५. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ एन्शेन्ट इंडिया, पृ० २४.

आर्य भट्ट ने २३ वर्ष की अवस्था में लिखा है कि उस समय कलियुग के ३६०० वर्ष बीत चुके थे। आर्य भट्ट की २३ वर्ष की आयु ४९९ ई० में समझी जाती है।

एक मत है कि कलियुग का प्रारम्भ ३१०२ ई० पू० में हुआ।

पी० वी० काने ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में महाभारत की तिथि पर विस्तृत विवेचना की है। उन्होंने समय निकाला है। महाभारत का युद्ध हुआ १९०० ई० पू०। त्रेता युग का आदि हमने ऊपर २७०० ई० पू० तथा अंत २२०० ई० पू० माना था पौराणिक कथन है कि राम-रावण युद्ध महाभारत युद्ध से ५०० वर्ष पहले हुआ था। इस प्रकार होगा— २२००—५००=१७०० ई० पू०।

पार्जिटर की तालिका के अनुसार ३० पीढ़ियाँ हैं। ३०×२०=६०० वर्ष। अर्थात् २२००–६००=१६०० ई० पू०।

इसम लगभग १०० वर्ष का अंत बैठता है। काने से ३०० वर्ष का। इस विषय पर बिलकुल निश्चय से नहीं कहा जा सकता। अतः २००० ई० पू० से १५०० ई० पू० के बीच में किसी समय महाभारत युद्ध हुआ।

५० ई० पू० में युग तथा कल्प और मन्वन्तर का भेद बहुत प्रचलित रूप में अवस्थित था।

इस प्रकार हमारे प्राचीन इतिहास का मध्यकाल समाप्त हुआ और हम उत्तर प्राचीनकाल को देखते हैं।

इस युग का नक्शा संक्षेप में ऐसा बनता है :

आ. प. ८३ अ० में ययाति और अष्टक का संवाद है जो तत्कालीन पुनर्जन्म के सिद्धांत को प्रकट करता है।

स्वर्ग से पुण्यक्षीण होने पर मनुष्य गिरता है जैसे धनहीन व्यक्ति धनी और इष्ट स्वजन से बाहर त्यक्त हो जाता है। विषय-भोग बुरी बात है। मरने पर सियारगिद्ध खा लेते हैं। (जलाये नहीं जाते?) फिर पुनर्जन्म कैसे होता है। पृथ्वी को नरक क्यों कहते हैं? भौम नरक क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर है—जीव माता के गर्भ से कर्म प्राप्त देह पाने पर पृथ्वी पर आकर कर्म-फल भोगते हैं। इसी से इस पृथ्वी को भौम नरक कहा है। भौम राक्षस (स्त्री आदि) यातना देते हैं।

जीव स्वर्ग से गिरने के दुःख से जलमय होकर पानी में सूक्ष्म भूत के रूप में स्थित होता है। वही वीर्य बनकर स्थूल देह का वीज बनता है।

मनुष्य योनि में जीव संज्ञा प्राप्त पैदा होता है।

मनुष्य जब मरता है तब लोग इसके शरीर को जलाकर, गाड़ कर या किसी प्रकार से नष्ट कर देते हैं।

अर्थात् अनेक प्रकार का वर्णन है।

जीव देह से भिन्न है। स्वप्न की भाँति जीव दूसरे गर्भ और योनि में जाता है। स्वर्ग

के सात फाटक हैं : तपस्या, दान, शांति, इन्द्रिय, मन-दमन, लोकलज्जा, सरलता, दया।

८४ वां अध्याय। ब्रह्मचर्य्याश्रम में गुरुभक्ति होनी चाहिये।

गृहस्थ आश्रम में, प्राचीन उपनिषदों में लिखा है धन कमाकर यज्ञ करना, यथा-शक्ति दान देना, अतिथि-सत्कार, दूसरे का माल बिना उसके दिये न लेना धर्म है।

वानप्रस्थ में---परिश्रम करके अपनी जीविका चलावें।

भिक्षुक, संन्यासी--कारीगरी से जीविका न चलावें। देशाटन करें। स्त्री को पुत्र के हाथ सौंप दें। निर्लिप्त और त्यागी हों।

मुनि संन्यासी चार प्रकार के होते थे---कुटीचक, (गांव पीछे रखकर जो वन में रहे। ग्राम्य वस्तुओं का उपयोग न करे); बहूदक (वन पीछे रखकर गांव में रहे, गांव में रहकर अग्निहोत्र न करे, अगोत्रचारी, कौपीनधारी); हंस--त्यागी, मौनव्रती। परमहंस : वह पहुँची हुई अवस्था जब हाथ-पैर से काम न लेकर साधु पशुओं की तरह मुँह से ही खाता है। वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

८५. अमोक्ष ही धर्म कर्म का सच्चा मार्ग है। उसके लिये पुण्य कार्य करना योग-सिद्धि का मूल है।

पृथ्वी पर गाय-घोड़े आदि और जंगली तथा पहाड़ी जितने पशु हैं उतने ही लोक मनुष्य के भोग के लिये अंतरिक्ष में हैं।

ऐसा ही विचार कुछ-कुछ प्राचीन मिस्रियों का भी था जो समझते थे कि मरे आदमी के साथ गाय, भैंस, घोड़ा, दास सब उसके काम आते हैं। स्वयं आर्य बकरा और गाय मरने पर बलि देते थे। उनका खयाल था कि ये गाय आदि मृतात्मा को स्वर्ग पहुँचा देंगे। इसी का अवशिष्ट गोदान है। अब गाय की हत्या नहीं की जाती।

क्षत्रिय और उसकी स्त्री माँगने की हीनता स्वीकार नहीं करते थे। दान केवल ब्राह्मण का अधिकार था।

कोई किसी का पुण्य नहीं ले सकता। सब अपनी-अपनी भोगते हैं। भाग्यवाद का यह प्रारंभ हुआ जो भारत से कभी नहीं गया। मेरा विचार है कि यह बात अनार्य समाज से आई क्योंकि हमारे समाज के आर्य या अनार्य किसी भी स्रोत से आर्य वर्ग में यह बात बड़ी गहरी उतरी है।

इस भाग्य के साथ ही पूर्वजन्म की कहानी है जो उपनिषदों में स्पष्ट दिखाई देती है। गौतम बुद्ध के समय तक इस भावना का काफ़ी गहरा प्रभाव पड़ चुका था; तभी वे भी इसे दूर नहीं कर पाये यद्यपि आत्मा को उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

आर्य का चिंतन इस समय अपनी सरलता भूल चुका था। अभी तक वह अखंड शासक था। उसके जीवन में आनंद था। अब अधिक करके उसको उसके जीवन में और अनार्य के जीवन में वस्तुतः भेद नहीं रहा था। दोनों के सामने समान कठिनाइयाँ थीं और दोनों के अपने-अपने अभिमान चूर हो चुके थे। आर्य को भारत में आये इतने बरस हो चुके थे कि

महाभारत के बाद
द्रविड़ परिवार
किरात परिवार
आग्नेय परिवार
हब्शी परिवार
आर्य परिवार
बाद की जातियाँ, आभीर आदि
समुद्र यात्रा मार्ग

वह यह बिलकुल भूल गया था कि वह कहीं बाहर से आया था। अतः प्राचीन काल की दंतकथाएँ उसे किसी और समय की प्रतीत होती थीं। समय का विस्तार अपरिमित था और इसी से उसे जन्म जन्म के कल्पना-क्षेत्र मिले। पहले के कल्पों का ज्ञान यह भावना बन चुकी थी (सभापर्व ५) क्योंकि जो पहले हुआ आखिर वह कब हुआ ?

महाभारत के बाद के समाज का कुछ वर्णन इससे स्पष्ट होता है—

नारद ने कहा : काम-लिप्सा ने कहीं धर्म, अर्थ और मोक्ष को नहीं दबा लिया ? मन्त्र, औषध, इन्द्रजाल, साम, दान, भेद, दण्ड, ये सात उपाय थे। खेती, खनिज, किलों की मरम्मत, पुल बनवाना, आमदनी-खर्च की जाँच, पुरवासियों के कार्यों पर दृष्टि रखना और राज्य के जनपदों को देखते रहना—ये राजा के आठ राजकार्य थे। राजा की सात प्रकृतियाँ थीं—स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोष, राष्ट्र, दुर्ग तथा बल। औरों के जासूस राज्य में घूमा करते थे। बूढ़े शुद्धस्वभाव, अपने समान, अच्छे वंश में उत्पन्न, अनुगत पुरुष ही अच्छे मन्त्री माने जाते थे। किलों में सदैव धनुर्धर और कारीगर रहते थे। किले धन, अन्न, शस्त्र, जल और यन्त्रों से परिपूर्ण रहते थे। शत्रु पक्ष के अठारह तीर्थ तथा अपने १५ माने जाते थे। शत्रु तीर्थ ये हैं : मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, कारागार का अधिकारी, कोषाध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राजा की सीमा का रक्षक और वन-विभाग का अधिकारी। अपने पन्द्रह में मन्त्री, युवराज और पुरोहित को छोड़ दिया जाता था।

राजा अपने लिये मरने वालों के परिवार का भरण-पोषण करते थे।

आठ अंग ये थे : रथ, हाथी, घोड़े, योद्धा, पैदल काम करने वाले, जासूस, मुख्य कर्मचारी।

चार बल ये थे : मौल, मैत्र, भृग तथा आटविद।

अन्न की फसल काटने और जमा करने का समय ही शत्रुओं पर आक्रमण करने का अच्छा समय समझा जाता था। उस समय लोग काम में लगे रहते थे और लूट अच्छी हो सकती थी।

धर्माचरण के समय भृत्य लोगों को मद्य, द्यूत, क्रीड़ा, स्त्री आदि के खर्च का हिसाब देना निषिद्ध था। वृद्ध, सजातीय, गुरुजन, **व्यापारी, शिल्पी, आश्रित, दीन-दरिद्र और अनाथ लोगों को धन अन्न आदि की सहायता देना,** राजा का अच्छा काम समझा जाता था। नाबालिग को काम नहीं दिया जाता था। राज्य में तालाब और झीलों की रक्षा की जाती थी। आवश्यकता होने पर किसानों को साधारण सूद पर राज्य की ओर से कर्ज़ा दिया जाता था। गांव में पाँच अधिकारी होते थे—१. प्रशास्ता, २. समाहर्ता—कर वसूल करने वाला, ३. संविधाता—कर वसूली की जाँच करने वाला, ४. लेखक तथा ५. साथी।

चोर राज्यों में उपद्रव मचाते थे। राजा के पास लाल कपड़े और गहने पहने, खुला-खड्ग हाथ में लिये शरीर-रक्षक सैनिक सदा खड़े रहते थे।

वैद्य को चिकित्सा के आठ अंग जानना आवश्यक था—निदान, पूर्वचिह्न, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति, औषध, रोगी, परिचारक।

ब्राह्मण की सेवा, उसको दक्षिणा आवश्यक थी। **देवमन्दिर** तथा शुभ वृक्षों को प्रणाम किया जाता था। वाजपेय और पुण्डरीक आदि यज्ञ किये जाते थे। **आर्य को प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था**। रिश्वत कर्मचारियों में चलती थी।

बाहर से आये व्यापारियों से शुल्क लिया जाता था। व्यापार के सुभीते दिये जाते थे। सबको शिल्प की सामग्री सदा चार-चार महीने के लिये राज्य की ओर से दी जाती थी। अन्धे, गूंगे, लंगड़े, अंगहीन, अनाथ तथा अपाहिज और संन्यासी राज्य पर पलते थे।

प्राचीनकाल की देवजाति को भी लोग भूल चुके थे। धीरे-धीरे देवता बहुत दूर के लोग हो गये। उनसे नित्य-प्रति का संपर्क नहीं रहा, जैसे पुराकाल में पूर्वजों का हुआ करता था। और प्राचीनकाल के पुरुष यदि देवताओं के इतने समीप थे तो वे अवश्य कितने महान् रहे होंगे?

इस प्रकार प्राचीन का सब कुछ अब बहुत सुनहला दिखाई देने लगा। जो कुछ था तब था और अब जो कुछ है वह विषम है। इसका बहुत अच्छा उदाहरण है कि उस समय के लोगों ने देवताओं का वह वर्णन नहीं किया जो हमने ऋग्वेदकाल में देखा था। अब देवताओं के साथ अपूर्व शक्ति और वैभव है जो पहले वर्णित नहीं था।

महाभारत में से कुछ वर्णन यहाँ दिये जाते हैं :—

इन्द्र की सभा 'पुष्करमालिनी' कहलाती थी। सौंदर्य्य, गहने, वैभव अपार थे। ह्री, कीर्त्ति, कान्ति आदि वहीं स्थित थीं। उस सभा में—महर्षि पराशर, पर्वत, सावर्णि, गालव, शंख लिखित, गौरशिरा, क्रोधी दुर्वासा, श्येन, दीर्घतमा, पवित्रपाणि, द्वितीय सावर्णि, याज्ञवल्क्य, भालुकि, उद्दालक, श्वेतकेतु, ताण्ड्य, भाण्डायनि, हविष्यान्, गरिष्ठ, राजा हरिश्चंद्र; हृद्य, उदरशाण्डिल्य, पाराशर्म (व्यास), कृषीबल, वातस्कंध, विशाख, विधाता, काल, करालदन्त, त्वष्टा, विश्वकर्मा, तुम्बुरु, अयोनिज, योनिज, वायु-भक्षी, आहुति भोजी आदि देवता, सहदेव, सुनीथ, वाल्मीकि, शमीक, प्रचेता, मेधा-तिथि, वामदेव, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, मरुत्त, मरीचि, स्थाणु, कक्षीवान्, गौतम, तार्क्ष्य, वैश्वानर (महर्षि), कालक वृक्षीय, आश्राव्य, हिरण्य, संवर्त्त, देवहव्य, विश्वक्सेन, बीर्यवान्, दिव्य जल, सब औषधियाँ, श्रद्धा मेधा, सरस्वती, धर्म, अर्थ, काम, विद्युत, मेघ, वायु, बिजली की कड़क, पूर्व दिशा, यज्ञ की सत्ताइस अग्नि (अंगिरा, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, निर्मन्थ्य वैध्रत, शूर, संवर्त्त, लौकिक, जाठर, विषग, क्रव्यात्, क्षेमवान्, वैणव, दस्युमान बलद, शान्त, पुष्ट, विभावसु, ज्योतिष्मान्, भरत, भद्र, स्विटकृत्, वसुमान, ऋतु, सोम, पितृमान्), अग्नि-चंद्र, इन्द्र-अग्नि, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, विश्वेदेवा, साध्यगम वृहस्पति, शुक्र, विश्वावसु, चित्रसेन, सुमन, तरुण, सब यज्ञ, दक्षिण, सब ग्रह, सब नक्षत्र, यज्ञ मन्त्र, विविध नृत्य, गीत, वाद्य, हास-परिहास, मंगलस्तुति, सुंदरी अप्सरायें, गंधर्व, दिव्यमाला,

तेजस्वी ब्रह्मर्षिगण, राजर्षिगण, देवर्षिगण इत्यादि रहते हैं।

इस सभा को इन्द्र ने बनाया है। वह बुढ़ापा, शोक, थकन चिंता नहीं है। वह जहां चाहे वहाँ जा सकती है। १५० योजन लम्बी सौ योजन चौड़ी और पांच योजन ऊँची है। इन्द्र और इन्द्राणी वहाँ बैठते हैं।

अब यम की सभा का वर्णन है।

(८. अ०) यम की सभा कामरूपिणी है, विश्वकर्मा ने बनाई है। दिव्यगण सब वहीं हैं। मीठा, ठण्डा और गर्म जल भी मौजूद रहता है। यहाँ—ययाति, नहुष, पुरु, मांधाता, सोमक, नृग, राजर्षि त्रसदस्यु, कृतवीर्य्य, श्रुतश्रवा, अरिष्टनेमि, सिद्ध, कृतवेग, कृति, प्रनिमि, तर्दन, शिवि, मत्स्य, पृथुलाक्ष, बृहद्रथ, वार्त्त, मरुत्त, कुशिक, सांकाश्य, सांकृति, ध्रुव, चतुरश्व, सदस्योर्मि, कार्त्तवीर्य्य, भरत, सुरथ, सुनीथ, निशठ, नल, दिवोदास, सुमना, अम्बरीष, भगीरथ, व्यश्व, सदश्व, वध्र्यश्व, पृथुवेग, पृथुश्रवा, पृषदश्व, वसुमना, क्षुप, रुषद्रु, वृषसेन, पुरुकुत्स, आर्ष्टिषेण, दिलीप, उशीनर, औशीनरि, पुण्डरीक, शर्याति, शरभ, **फेनप, अश्मप,** सुधावान्, बर्हिषप, पितृगण, **कालचक्र,** अग्नि, दक्षिणायन में मरे दुष्ट लोग, यमदूत, शिंशप, पलाश, काश, कुश इत्यादि।

पितृपति यम की सभा अग्नि की तरह चमकती है। गंधर्व अप्सरा आते-जाते रहते हैं। गंधर्व महात्मा हैं। अप्सराएँ नाचती गाती हैं।

मोटे शब्दों को ध्यानपूर्वक देखना चाहिये। फेनप इत्यादि ऋषि थे। ब्रह्मदत्त काशी के राजा की उपाधि थी और अग्निष्वात्ता देवताओं के उपास्य थे। इस समय नाग जाति भी यम के दरबार में दिखाई देती है।

वरुण की सभा का यह वर्णन है :—

(९. अ०) जलेश्वर वरुण की सभा कमलों से सजी हुई है। विश्वकर्मा ने उसे जल के भीतर बनाया है। वरुण वारुणी (स्त्री) के साथ बैठते हैं। जलवायु यहाँ का दिव्य है। वासुकि, तक्षक, ऐरावत, कृष्ण, लोहित, पद्म, चित्र, कँबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, बलाहक, मणिमान्, कुण्डधार कर्कोटक, धनञ्जय, पाणिमान्, कुण्डधार, प्रह्लाद, मूषिकादु **जनमेजय,** पताकी, मण्डली, फणाधारी आदि नागगण, विरोचन पुत्र बलि, दिग्विजयी नरकासुर, संह्लाद, विप्रचित्ति, कालखञ्ज शुचि, अंग, रिष्ट, वेन, (वेन भी ?) दुष्यंत, सृंजय, जय, भांगासुरि, सुनीथ, **निषध,** वहीनर, करन्धम, बाल्हिक, सुद्युम्न, बली मधु, ऐल, मरूत्त, कपोतरम्मा, तृणक, सहदेव, सहस्रबाहु अर्जुन, व्यश्व, साश्व, कृशाश्व, शशबिन्दु, दाशरथि राम-लक्ष्मण (राम वैकुण्ठ में नहीं पहुँचे ?), प्रतर्दन, अलर्क, कक्षसेन, गय, गौराश्व, परशुराम, नाभाग, सगर, भूरिद्युम्न, महाश्व, पृथाश्व, जनक, वैन्य, वारिसेन, पुरुजित् जनमेजय, ब्रह्मदत्त, त्रिगर्त, उपरिचर, इन्द्रद्युम्न, भीमजानु, गौरपृष्ठ, अनघ, लय, पद्म, मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, **प्रसेनजित्** (?) अरिष्टनेमि, सुद्युम्न, पृथुलाश्व, अष्टक, **मत्स्यवंश के १०० नरेश, नीपवंश के और हयवंश के १०० राजा, १००**

धृतराष्ट्र, अस्सी जनमेजय, १०० ब्रह्मदत्त, १०० ईरि, १०० वीरि, २०० भीष्म, १०० भीम, १०० प्रतिविन्ध्य, १०० नाग (?), १०० हय, १०० पलाश, १०० काश, १०० कुश, शन्तनु, पाण्डु, उशंगव, शरथ, देवराज, जयद्रथ (?), मन्त्रियों सहित वृषदभ, दक्षिणा तथा यज्ञों को करके देवताओं को तृप्त करने वाले हज़ारों शशबिन्दु, मूर्तिमान मृत्यु, अगस्त्य, मातंग (?) काल, यज्ञ कराने वाले कर्मकाण्डी, सिद्धगण, योगी, अग्निष्वात्ता, आदि दानव, सुहृनु, दुर्मुख, शंख, सुमना, सुमति, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, स्वरूप, विरूप, महाशिरा, दशग्रीव (अर्थात् रावण ?), बाली, मेघवासा, दशावर, टिट्टिभ, विटभूत, संह्लाद और इन्द्रतापन आदि दैत्य असुर, चारों महासमुद्र, गंगा, कालिंदी, विदिशा, वेणा, नर्मदा, विपाशा, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, शतद्रु, सरस्वती, सिंधु, देवनदी, गोदावरी, कृष्णवेणा, कावेरी, किम्पुना, विशल्या, वैतरणी, तृतीया, ज्येष्ठिला, महानदशोण, चर्मण्वती, पर्णाशां, सरयू, वारवत्या, लाङ्गली, करतोया, आत्रेयी, लौहित्य, लङ्घती, गोमती, संध्या, त्रिस्रोतसी, तीर्थरूपी जलाशय, नदी, तीर्थ, सरोवर, कूप, झील, झरने सब शरीर; सब दिशाएँ, पृथ्वी, पर्वत, जलचर, जीव, गंधर्व अप्सरा, प्रसिद्ध वंश के पर्वत, मन्त्री सुनाम, परिवार तथा गोपुष्कर, धर्मपाश-धारी वरुण की सभा में रहते हैं।

इस वर्णन से प्रकट होता है कि रावण वरुण का उपासक था। यह होना अनुचित नहीं है। कुमार स्वामी ने प्रकट किया है कि वरुण वास्तव में अनार्यों का ही देवता है जो कालांतर में आर्यों में प्रवेश पा गया। वरुण तो इन्द्र से भी प्राचीन था यह हम ऊपर देख ही चुके हैं।

कुबेर का वर्णन इस प्रकार है :

१०. अ० धनद कुबेर यक्षराज है। १०० योजन लम्बी और सत्तर योजन चौड़ी सभा कैलास पर्वत के शिखर पर अपने तप से प्राप्त की है। उस सभा को यक्ष वहन करते हैं, अतः आकाश में लगी हुई लगती है (लगी नहीं है ?) दिव्य है।

कुबेर कुण्डल पहनकर बैठते हैं। उनके पास हज़ारों सुन्दरी स्त्रियाँ रहती हैं। नन्दन पवन, कल्पवृक्ष, सौगंधिक वनों की गन्ध, अलकनन्दा का शीतल जलकण, देवता, गंधर्व, किन्नर, अप्सराएं, मिश्रकेशी, रम्भा, चित्रसेना, शुचिस्मिता, चारुनेत्रा, घृताची, मेनका, पुंजिकस्थला, विश्वाची, सहजन्मा, प्रम्लोचा, उर्वशी, इरा, बर्गा, सौरभेयी, समीली, बुद्रबुदा, लता, गंधर्वों की स्त्रियाँ अभिनयकर्ता, किन्नर, नर जाति के गंधर्व, मणिभद्र, धनद, श्वेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गण्डकण्डू, महाबलीप्रद्योत, कुस्तुम्बुरु, पिशाच, गजकर्ण, विशालक, वराह कर्ण, ताम्रौष्ठ, फलकक्ष, फलोदक, हंसचूड़, शिखावर्त्त, हेमनेत्र, विभीषण, पुष्पानन, पिङ्गल, शोणितोद, प्रवालक, वृक्षवासी, अनिकेत, भीखासा आदि हज़ारों यक्ष, लक्ष्मी, पुत्र नलकूबर, नारद, ब्रह्मर्षिगण, माँसलोलुप राक्षस, पराक्रमी गंधर्व, शूलपाणि, उग्रधन्वा पशुपति भग-नेत्र-नाशन भवानीपति शंकर, कुबड़े विकट आकार वाले लाल-लाल आँखों से भयंकर नाद करने वाले मेदा-माँस-भोजी, वायुगति भूतगण प्रमथगण शिव की अर्द्धांगिनी महिषमर्दिनी भगवती, विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बरु, पर्वत, शैलूस, चित्रसेन, चित्ररथ गंधर्व, विद्याधर

राजा चक्रवर्मा तथा उसके छोटे भाई, **राजा भगदत्त**, किम्पुरुषस्वामी द्रुम, राक्षसराजा महेन्द्र या गन्धमादन, **विभीषण** हिमालय, पारिमात्र, विन्ध्य, कैलास, मन्दर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र, गन्धमादन, इन्द्रकील, सुनाभ, सुमेरु, नंदीश्वर, महाकाल, शंकु कर्ण आदि पारिषद, काष्ठ, कुटीमुख, दन्ती, विजय, श्वेत वृषभ, राक्षस, पिशाचगण, पुलस्त्य ऋषि पुत्र कुबेर के साथ ये सब जाकर शङ्कर को प्रणाम करते हैं। शङ्ख पद्म सेवा में रत रहते हैं।

अप्सराओं का कुबेर से विशेष संबंध है। नर जाति के गंधर्व भी होते थे। पिशाच, वृक्षवासी, माँसलोलुप राक्षस इत्यादि का कुबेर से सान्निध्य है। कितने ही अनार्य देवी-देवता इस देवता के मित्र हैं। शंकर कुबेर के विजेता हैं। यह यहाँ बिलकुल स्पष्ट है क्योंकि कुबेर शंकर को प्रणाम करते हैं।

ब्रह्मा का प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण था।

११. अ० **ब्रह्मा** की सभा की तो उपमा ही नहीं दी जा सकती। सत्ययुग में भगवान आदित्य उसे देखकर बड़े खुश हुए थे। वह क्षण-क्षण में नई शोभा धारण करती है। सूर्यमणियों की बनी है। उसमें ऊँचे और चौड़े खंभे नहीं हैं, पर टिकी हुई है। ब्रह्मा ऊँचे सिंहासन पर बैठते हैं। प्रजापति दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, कश्यप, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, गौतम, अंगिरा, पुलस्त्य क्रतु, प्रह्लाद, अथर्ववेदी आंगिरस, सूर्य्यकिरण पीने वाले बालखिल्य, अगस्त्य, मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन, दुर्वासा, ऋष्यश्रृंग, सनत्कुमार, असित, देवल, जैगीषव्य, **ऋषभ**, जितशत्रु, महावीर्य, मणि आदि महापुरुष, मन, अंतरिक्ष, विद्याएँ, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकृति, ४९ वायु, सब यज्ञ, संकल्प, प्राण, धर्म, अर्थ, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम, गंधर्वों और अप्सराओं के २७ दल, सब लोकपाल, शुक्र, बृहस्पति, बुध, मंगल, शनैश्चर, राहु आदि ग्रह, मन्त्र, रथन्तर साम, हरिमान और वसुमान नामक विशेषकर्म, अग्नि-सोम, इन्द्र-अग्नि, आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वकर्मा, आठ वसु, पितृगण, हवि, **ऋग्वेद, सामवेद**, यजुर्वेद, **अथर्ववेद**, (इन सबसे परवर्त्ती) **सब शास्त्र, इतिहास, उपवेद**, छहों वेदाङ्ग, सब ग्रह, सब यज्ञ, सोम, वेद माता गायत्री, सात वाणी, मेधा, धृति, स्मृति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश, क्षमा, **स्तुतिशास्त्र**, समग्र सामगान, **विविध गाथाएँ** तर्कसहित भाष्य, **नाटक, काव्य, कथानक, आख्यायिका, कारिका**, क्षण, लव, मुहूर्त्त, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, ५ प्रकार के संवत्सर, ४ प्रकार के रात-दिन (१ मनुष्यों का रात-दिन साठ घड़ी का, २. पितरों का एक महीने का ३. देवताओं का एक साल का, ४. ब्रह्मा का एक कल्प का) १२ राशि, अक्षय, अव्यय, नित्य, दिव्यकालचक्र, धर्मचक्र, अदिति, दिति, दनु, सुरसा, इरा, कालिका, सुरभि, सरमा, गौतमी, प्रभा, कद्रू, रूद्राणि, श्री, लक्ष्मी, भद्रा, षष्णीतेवी, मूर्त्तिवती पृथ्वी, गंगा, ह्री, स्वाहा, कीर्त्ति, सुरा, देवी इन्द्राण, पुष्टि, अरुन्धती, संवृत्ति, आशा, नियति, सृष्टि, रति, साध्यगण, विश्वेदेवा अश्विनीकुमार, मनोजव पितृगण, पितरों के सात गण (४ शरीरधारी, ३ अशरीरी, अग्निष्वात्त, वैराज, गार्हपत्य, स्वर्गचारी पितृगण) (सोमप, एकश्रृंग, चतुर्वेद और कला

नामक चारों वर्णों से पूजित ४ पितृगण, राक्षस, पिशाच, दानव, गुह्यक, नाग, सुपर्ण, पशुगण, स्थावर जंगम प्राणी। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, उमा, महादेव, कार्तिकेय, नारायण, देवऋषिगण, योनिज, अयोनिज, बालखिल्य, चर, अचर, ८८ हज़ार ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी, ५० हज़ार सन्तानवान् गृहस्थ, देव, दानव, द्विज, नाग, यक्ष, राक्षस, पक्षी, कालेय, गंधर्व, अप्सरा, अतिथि इत्यादि।

यह वर्णन परवर्ती है इसमें संदेह नहीं है किंतु एक बात इनसे स्पष्ट हो जाती है कि जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया अतीत की अधिक-से-अधिक महान् और सुंदर कल्पनाएँ की जाने लगीं और इधर-उधर की बहुत सी बिखरी हुई बातों, किंवदंतियों और परंपराओं को जिस रूप में भी पाया, तत्कालीन लेखक ने तुरंत ग्रसने के प्रयत्न में ज्यों-का-त्यों उतार कर रख दिया। पुरानी-पुरानी बातें कल्पना बन चुकी थीं। केवल कुछ परम्पराएँ अवशिष्ट थीं। ब्राह्मण समाज ने ही उन्हें अधिक सुरक्षित रखा क्योंकि जितनी प्राचीन बातों को दुहराने में उसे अपना कल्याण दिखता था उतना किसी और समाज का नहीं।

ब्राह्मण सबको अब दिव्य बना देना चाहता था। दूसरे लोग इसका विरोध कर रहे थ। पहले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ही आर्य थे। अब सब जातियों की अंतर्भुक्ति हो रही थी। पुजारी, योद्धा और व्यापारी चाहे नाग हों या असुर सब कर्मानुसार वर्णों में मिले जा रहे थे।

विरोध के अनेक कारण थे। मन को संतोष नहीं मिलता था। ईमानदार बुद्धि आगे की सोचती थी। इसका यह अर्थ नहीं है कि जो भी ब्राह्मण मानते थे वे सब जान-बूझकर ही करते थे। ऐसे कुछ चतुर व्यक्ति होते हैं। बाकी लोग परम्परा की लीकें पीटा करते हैं। ब्राह्मण का विरोध आर्यों के समाज में न केवल क्षत्रिय ने किया वरन् कहीं-कहीं स्वयं ब्राह्मण ने भी किया। यह तो सीधी बात है कि क्षत्रिय उस विरोध में बहुत आगे बढ़ गया। ज्ञान की भूख बढ़ चली थी।

शौनक सांख्य, योग और आध्यात्मतत्त्व के विषय में निपुण था (वनपर्व २)। उसने जनक के श्लोकों का तात्पर्य बताया है : व्याधि, परिश्रम, अनिष्ट के आने और इष्ट का नाश होने से ही शारीरिक दुःख होता है। प्रतिकार के द्वारा व्याधि की और विचार के द्वारा मानसिक पीड़ा की शान्ति हो सकती है। इसी कारण बुद्धिमान चिकित्सक-मात्र पहले प्रिय वचन कहकर और भोज की वस्तुएँ देकर रोगी के मानसिक दुःख को दूर करते हैं। ज्ञान से मानसिक क्लेश दूर होता है। **विषयासक्ति** बड़ी भयंकर है। उससे वियुक्त होने पर ही उसका त्याग नहीं है। जो विषयों के समागम में दोष की दृष्टि रखता है, वही विरागी है। जो तृष्णा को छोड़ता है वही सच्चा सुखी है। आशा का चक्कर मूर्खता है। संतोष ही सर्व-श्रेष्ठ है। रूप, धन, जीवित, जवानी और ऐश्वर्य कुछ भी सदा बना नहीं रहता। क्षणस्थायी वस्तुओं का लोभ पंडित नहीं करते। धन जोड़ने से कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि धनी निरुपद्रव नहीं रह सकता। बहुत लोग धर्म-कर्म का अनुष्ठान करने की इच्छा से धनोपार्जन चाहते

हैं, किंतु वह चेष्टा न करना अच्छा है। पहले अपने शरीर में कीचड़ लगाकर उसे धोने से भला कीचड़ ही नहीं लगाना है।

किंतु गृहस्थ को धन चाहिये था। ब्राह्मण को दान, अपने लिये रसोई न बनाने वाले संन्यासियों को भोजन करना, अतिथि का सत्कार, अग्निहोत्र, बैल, सजातीय, भाई-बन्धु, पुत्र-पुत्री, सेवक का यथायोग्य सत्कार, वृथा हिंसा न करना, केवल अपना पेट भरने के लिये रसोई न करना, देवपितर, भूत और मनुष्यों के लिये जो अन्न नहीं दिया जाता उसको न खाना आवश्यक था। **सवेरे और संध्या के समय कुत्ते, चाण्डाल** और पक्षियों **के लिए पृथ्वी पर अन्न रखकर वैश्वदेव बलि करनी चाहिए** थी। अतिथि के भोजन से बचा हुआ अन्न 'विघस' और पंचयज्ञ से बचा अन्न 'अमृत' कहलाता था।

शौनक को सब उल्टा ही देख पड़ता था। जिसमें साधु की लज्जा है उसी में असाधु का संतोष है। मूढ़ पुरुष पेट और इन्द्रिय सुख के लिये—मोह, राग आदि प्रवृत्तियों के वश होकर, रूप, रस, आदि इन्द्रिय विषयों के फेर में अनेक चेष्टाएँ करता है। अपने-अपने विषय को पाते ही इन्द्रियाँ मनुष्य के पूर्व—संकल्प—जनित मनोगतभावों, संस्कारों को जगा देती हैं। मूढ़ प्रवृत्ति में जा फँसता है। फिर कर्मफल के चक्कर में बार-बार जन्म लेकर असंख्य योनियों में घूमता है। कर्मकाण्ड व्यर्थ है। वास्तव धर्म, तप, जप, सत्य, इन्द्रियदमन, क्षमा, दान, अध्ययन और सन्तोष हैं। तप, जप, दान, अध्ययन से पितृलोक मिलता है। **मान-अपमान का खयाल छोड़कर,** कर्त्तव्य समझकर केवल इन्हीं चार कर्मों का आचरण करना चाहिये। सत्य, इन्द्रियदमन, क्षमा और संतोष ये चार देवलोक जाने के उपाय हैं। अत्यंत दृढ़ संकल्प करके, इन्द्रियों को वश में रखकर, गुरुओं की सेवा, **बड़े-बड़े व्रत करना,** शास्त्र की छानबीन, नियमित आहार, अन्य सब कर्मों का त्याग तथा चित्तवृत्ति को पूर्णतया रोकना—यही संसार पर जय पाने के उपाय हैं। शम का अवलम्ब करके उसी तरह योगसिद्धि और तप की सिद्धि पाने की चेष्टा करनी चाहिये। **योगसाधन द्वारा ही देवता भी प्रजा का पालन कर रहे हैं।**

उपर्युक्त जिज्ञासा इस बात का प्रमाण है कि ब्राह्मण का विरोध भी पूरी तरह से ब्राह्मण समाज की मर्यादा का तिरस्कार कर रखने में असमर्थ था। किसी प्रकार आपस में समझौता करने की कोशिश की जा रही थी।

अब मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन पर अधिक ज़ोर डाला जा रहा था क्योंकि अभी तक जो सहज ही होता रहा था, वही अब आर्य तक करने में हीलाहवाला करता था। कारण था कि अब समाज में उसकी आर्थिक स्वामी होने की शक्ति में कमी पड़ गई थी।

अभी तक तप का आर्यों में इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ा था। अब वह बढ़ा। यही तो बुद्ध और महावीर के काल तक इतना अधिक बढ़ गया कि फिर तो बाकायदा साधु लोग संघबद्ध रहकर ब्राह्मण की समाज-व्यवस्था को तोड़ने लगे। वे गृहस्थ धर्म के विरुद्ध हो गये। इसका कारण था कि जीवन में दुःख बहुत बढ़ गया था। इतिहास का

रूप इस प्रकार लगाना उचित नहीं होता कि उस समय के संघ स्थविर या धर्मनेता वैराग्य को एक सामाजिक चाल के रूप में बरतते थे ।

ब्राह्मण की व्यवस्था धीरे-धीरे शिथिल तो हुई पर उसका सिक्का नहीं गया । वह स्वयं बहुत चतुर था । जिधर ढील देने की आवश्यकता होती थी वहाँ ढील देता था, जिधर वह समझता था कि ढील देना हानिकारक है वहाँ वह बहुत से ऐसे नियम बनाता था जो एक रूढ़िवाद और सुधार को जन्म देते थे । उसे किसी प्रकार जीवित रहनेकी पड़ी थी ।

बिना आर्थिक और राजनीतिक सर्वाधिकार के भी ब्राह्मण को समाज में इतने अधिक अधिकार मिले हुए थे कि उसका इतना प्रभाव था कि केवल वही उनका एकमात्र भोक्ता था । उसनें यह सब अधिकार बड़े त्याग से पाये थे । अपने स्थान पर क्षत्रिय को नियुक्त करके, उससे समझौता करके, उसकी इतनी भारी-भारी तारीफें करके ।

क्षत्रिय अब ब्राह्मण का विरोध करने लगे तो ब्राह्मण आखिर क्या करें ? पर ब्राह्मण का ही दम था कि क्षत्रियों ने जितनी शक्ति थी आज़मा ली पर ब्राह्मण अंग्रेज़ों के आने तक सर्वश्रेष्ठ बना रहा । परवर्त्ती काल में इसके जो कारण थे वह मैंने अपनी 'भारतीय मध्ययुग के संधिकाल के मनन' में प्रकट किये हैं ।

उसने ईश्वर का आसरा लिया । जिसमें एक ओर यदि भाग्यवाद का सहारा था तो अपन द्वारा बनाये समाज को सुरक्षित रखने की भी तरकीब थी । ऐसी बुद्धि अधिक दिखाई नहीं देती । इसका मुख्य कारण था कि समाज में विशेषकर आर्यों में ब्राह्मण का बहुत पुराना प्रभाव था और अभी भी ब्राह्मण में शक्ति अवशिष्ट थी ।

वनपर्व ३०. अ० २० से—द्रौपदी ने भाग्यवाद पर कहा है : पुराण इतिहासों में लिखा है कि सभी लोग ईश्वर के आधीन हैं । कोई स्वाधीन नहीं है । वह ईश्वर ही सब प्राणियों के सुख-दुःख और प्रिय-अप्रिय का एकमात्र विधाता है । वह जीवों के पूर्वजन्म-संचित कर्मों के अनुसार सुख दुःख आदि का विधान करता है । हे नरवीर ! जैसे सूत्रधार काठ की पुतली बनाकर उसके सब अंग-प्रत्यंगों की रचना करता है, वैसे ही विधाता ने भी प्रजा उत्पन्न की है । वही अद्वितीय ईश्वर आकाश रूप से सब प्राणियों को व्याप्त करके पाप और पुण्य का विधान करता है । क्या स्वाधीन और क्या पराधीन सभी, डोरे में बँधे हुए पक्षी की तरह, ईश्वर के वश में हैं । कोई भी अपने या किसी दूसरे के ऊपर प्रभुत्व नहीं कर सकता । डोरे में पुँही हुई मणियों या रस्सी से बँधे हुए बैलों की तरह नियन्त्रित होकर यह संसार चलता है क्योंकि सब कुछ उसी में अर्पित है । जैसे तृण आदि का ऊपरी हिस्सा प्रबल वायु के वश में होता है, वैसे ही यह सब जगत् ईश्वर के आधीन है । विधाता का क्षेत्र-संज्ञक शरीर, जो दीखता नहीं, इस विश्व-राज्य का एकमात्र कारण है । वह अपनी माया से मोहित करके प्राणियों के द्वारा प्राणियों का संहार करता है ।

भगवान् स्वयंभू अपनी इच्छा के अनुसार संयोग और वियोग कराते हुए प्राणियों के

द्वारा क्रीड़ा करते हैं। **विधाता प्राणियों से माता-पिता का-सा व्यवहार नहीं** करता। वह मानो ग़ैरों की तरह क्रोधित होकर ही काम किया करता है। **सच्चरित्र, शीलवान् लज्जाशील आर्यगण कितने कष्ट से अपना जीवन बिता रहे हैं और उधर निपट नीच अनार्य लोग विषयभोग में आसक्त होकर परमसुख में रहते हैं।**

यदि कर्मकर्त्ता के सिवा और किसी को किये हुए कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता तो सर्वनियन्ता ईश्वर को भी, पाप-कर्म कराने के कारण, पाप में लिप्त होना चाहिये। अथवा यदि पाप-कर्म, कर्त्ता को स्पर्श नहीं करता, तो उसका कारण बल ही है। तो फिर दुर्बल व्यक्ति ही सब तरह शोचनीय हैं।

इस प्रकार का चिंतन ब्राह्मण का विरोधी था। दुःखी यदि अपने भाग्य से टक्कर लेने को उठे तो वह क्या नहीं कर डालेगा ? अतः ब्राह्मण ने इसे स्वीकार नहीं किया। प्रत्युत हम देखते हैं कि बराबर में ही उत्तर भी दे दिया गया है ताकि किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाये।

वनपर्व ३१. अ० में युधिष्ठिर ने द्रौपदी के मत को नास्तिकवाद कहकर कहा : मैं कर्मफल पाने की इच्छा से कर्म नहीं करता। देना चाहिये यह समझकर दान करता हूँ। यज्ञ करना चाहिये, यह समझकर यज्ञ आदि करता हूँ। फल हो या न हो, घर में रहकर पुरुष का जो कर्त्तव्य है वही मैं यथाशक्ति करता रहता हूँ। **फल की इच्छा करके धर्म का आचरण करना धर्म-वणिक् का काम है।** धर्म पर न अविश्वास करो, न शंका, यह वेदोक्त प्रमाण है।

इसके बाद नास्तिकों को शूद्र, नरकगामी आदि कहा गया है पर यह तर्क की भूमि नहीं, श्रद्धा का क्षेत्र है।

द्रौपदी ने (३२वां अ०) उत्तर दिया : क्या धाता और क्या विधाता, सभी जल में स्थित बगले की तरह पूर्वसंकल्प के वश होकर काम करते हैं। जीविका के लिये कर्म करना सबका कर्त्तव्य है। संसार में भाग्यवादी और चार्वाक मत के मानने वाले दोनों ही शठ हैं।

मनुष्य संसार में अकस्मात् जो कुछ पा जाता है उसे हठ प्राप्त कहते हैं, क्योंकि यह किसी के यत्न से प्राप्त नहीं है। दैववश से जो कुछ प्राप्त होता है उसे भाग्य से प्राप्त कहते हैं। स्वयं कर्म करने से जो कुछ मिलता है वह पौरुष से प्राप्त कहलाता है। स्वभाव से प्रवृत्त होकर किसी अनिर्दिष्ट कारणवश जो कुछ पाते हैं वह स्वभावज फल कहलाता है। इसी तरह हठ से, दैव से, स्वभाव से और कर्म से जो कुछ फल मिलता है सो सब पूर्व-जन्म के कर्मों का फल है। सब जीव कर्म-सिद्धि के सहारे जीवित रहते हैं। कर्म करते रहना चाहिये।

* चार्वाक का नाम प्रकट करता है कि काफी परवर्त्ती काल में लिखा गया वर्णन है। परंतु कर्मफल का यही सिद्धांत हमें उपनिषदों में भी प्राप्त होता है। इसी से इस उद्धरण को यहाँ दिया गया है।

वेद को दिव्य बना देने की पूर्ण चेष्टा की गई है। बात ही मत करो। परंतु लोग तो चुप नहीं रहते थे।

अतः ब्राह्मण ने अब चिल्लाना शुरू किया 'कलि है', 'काल है'।

कलि तो जुए में हारे हुए को कहा करते थे। अब वही युग का धर्म बन गया ? जन समाज ने इस नारे को क्यों स्वीकार किया ? क्योंकि विषमता हर जगह अपना प्रभाव दिखला रही थी। सुखी तो वह भी नहीं था।

युद्ध में कलि होता है, तभी नाश होता है।[1] किंतु कलि पहले वंश का नाम था। यह कुछ व्यक्तियों का भी नाम था। कलि एक गंधर्व था। दक्षकन्या मुनि इसकी माता थी। (१३६. २७२. महाभारत) कलि असुरवंशी एक कुलघातक राजा भी था (महा. पृ० १६५९)

मेरा अनुमान है कि कलि की भावना में अनार्य प्रभाव भी था। कलि का एक अनार्य रूप था अवश्य जो आर्यों में इस प्रकार आ घुसा।

कुल का घात—यह हुई कलि की संज्ञा। यह हुआ जुआ हारे रूप की विभीषिका को अधिक ही भयावना दिखाने वाला रूप। कुल का घाती कौन ? स्वयं कुल का ही तो व्यक्ति। अन्यथा यदि कुल को और कोई मारने वाला होता तो कुल नाश करने वाला रहता, उसे घाती की उपाधि नहीं मिलती।

जब आर्यों ने अपने ही समाज में महायुद्ध के फलस्वरूप, अनार्यों के शक्ति-ग्रहण के फलस्वरूप उच्छृंखलता बढ़ चलीं तो ब्राह्मण क्या समाज का नियंता रह सकता है ? परंतु ब्राह्मण का विरोध स्वयं क्षत्रिय करने लगा। ब्राह्मण का भय उचित ही साबित हुआ। जितना ही यह विरोध बढ़ा उतना ही अनार्य बढ़ा। कलियुग की शक्ति बढ़ी, गण-नास्तिक युग में पाटलिपुत्र में राजसिंहासन पर शूद्र बैठ गया। हमनें जहाँ से गण-नास्तिक युग प्रारंभ किया है, वहाँ कलियुग को समाप्त कर दिया है, परंतु ब्राह्मण का कलियुग तो और बढ़ गया। उसका अंत कहाँ हुआ ? चाणक्य जैसे ब्राह्मण को चोटी पकड़ कर धक्के देकर निकाला गया। अस्तु।

युगों की कल्पना का प्रभाव गहरा हो चला।

वनपर्व १४९।१०. हनुमान ने भीम से युग-वर्णन किया है :—

पहले सत्ययुग है। इस युग में सनातन धर्म प्रचलित था। कोई कार्य भी करने के लिये रह नहीं जाता था, अर्थात् सभी काम हो जाते थे। उस युग में धर्म की हानि या प्रजा का क्षय नहीं होता था। इसी कारण उसको कृतयुग भी कहते हैं। अब समय के प्रभाव से उसकी प्रबलता नहीं रही। सत्ययुग में देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग आदि जातियों के विभाग नहीं थे। कोई उपद्रव नहीं था। किसी प्रकार का क्रय-विक्रय नहीं था। चार वेद नहीं थे; एक ही वेद था। खेती आदि मनुष्यों के काम भी नहीं थे। संकल्प से ही सब काम

१. एपिक मायथालॉजी, पृ० ७६.

सिद्ध हो जाते थे। संन्यास ही एकमात्र धर्म था। इस युग में कोई व्याधि या बुढ़ापा नहीं था। ईर्ष्या, रोना, घमण्ड, चित्तविकार, लड़ाई-झगड़ा, आलस्य, द्वेष, छल, भय, सन्ताप, डाह आदि दुर्गुण या बुरी बातों का नाम भी न सुन पड़ता था। एकमात्र ही परब्रह्म योगियों की परमगति थे। शुक्लवर्ण नारायण ही सब योगियों के आत्मा थे। अपने-अपने कर्म में लगे हुए अपने-अपने धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रजाजन थे। आचार, आश्रय, ज्ञान, कर्म, धर्म, सब बातें सबकी समान थीं। क्रिया, मन्त्र, विधि आदि सब बातें एक थीं। सब लोग एक ही देवता की आराधना करते थे। राम आदि भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हुए भी सब सनातन धर्म के अनुयायी थे। समयानुकूल चारों आश्रमों के कर्त्तव्य का पालन करते हुए सब लोग एक वेद के अनुगामी होकर सद्गति प्राप्त करते थे। ब्रह्मयोग सम्पन्न धर्म ही सत्ययुग का लक्षण है। सत्य युग में चारों वर्णों का धर्म चार चरण का अर्थात् पूरा उस युग में माया के तीन गुणों का भेदभाव नहीं था।

त्रेतायुग में यज्ञ की विधि प्रचलित हुई। धर्म का एक चरण घट गया। विष्णु का वर्ण लाल हो गया। सब लोग कर्मकाण्डी और सत्य को सर्वोपरि मानने वाले हुए। अनेक धर्मों और कर्मों का चलन तेज़ी से हुआ। भाव और संकल्प से ही क्रिया और दान सफल होते थे। उस युग में सभी लोग तपस्वी, दानी, स्वधर्मनिष्ठ और कर्मनिरत थे। कोई धर्म के मार्ग का उल्लंघन नहीं करता था।

द्वापर युग में धर्म के दो ही चरण रह गये। वेद के चार भाग हो गये। विष्णु का वर्ण पीला हुआ। इस युग में कोई चारों वेदों को, कोई तीन वेदों को, कोई दो ही वेदों को और कोई एक ही वेद को पढ़ता था। कोई-कोई बिलकुल ही वेद नहीं पढ़ते थे। इस प्रकार अनेक शास्त्र बनने पर कर्मकाण्ड के भी बहुत से विभाग हो गये। सब प्रजा तप और दान में श्रद्धा रखती थी। लोगों की प्रकृति रजोगुणी थी। वेद के अनेक विभाग उप-विभाग हो गये क्योंकि एक को समझना कठिन था। सत्त्वगुण लुप्त हो गया, व्याधियाँ घिर आयीं, इच्छा बढ़ीं तो उपद्रव बढ़े, सत्यवादी कम रह गये। इस प्रकार मनुष्यों के पीड़ित होने पर दुःखों से छुटकारे के लिये कोई कठोर तप, कामभोग अथवा स्वर्गलाभ इत्यादि की इच्छा से यज्ञ करने लगा। द्वापर में अधर्म की बढ़ती से प्रजा का क्षय प्रारंभ हुआ।

इस समय कलियुग है। तमोगुण-प्रधान, एक चरण पर स्थित धर्म, कृष्ण रूप नारायण, वेद-आचार-धर्म-यज्ञ-कर्म-काण्डलोप, ईति, तन्द्रा, क्रोध आदि दोष और व्याधि, भूख-प्यास के उपद्रव इत्यादि इसमें हुए। विनाश का युग धर्मक्षय, लोकक्षय, धर्म का नाश इत्यादि इसमें होता है।

युग तो बदले। पर क्यों बदले। इसका कोई कारण नहीं दिया गया। आख़िर इस पतन का उत्तरदायित्व किस पर था ? विभिन्न जातियों का मिलन, समाज की आर्थिक प्रणाली का परिवर्त्तन, आपस के संबंधों का हेर-फेर, राजनीतिक वर्गों अथवा वर्णों की हार-जीत इत्यादि अनेक कारण थे जिनको वह आसानी से प्रकट नहीं कर सका क्योंकि उसमें

ऐतिहासिक अन्वेषण की वैज्ञानिक प्रणाली का ज्ञान नहीं था। परंतु उसने परंपरा को ज्यों-का-त्यों उतार दिया। पूर्वजों से सुना था कि प्राचीन काल में ऐसा होता था। अब नहीं होता।

एक बात स्पष्ट हुई। धन का जहाँ पहले कोई हाथ नहीं था, अब वह समाज में घुस आया और उसने अपने साथ इतनी गड़बड़ियाँ फैला दीं। द्वापर में वेद और कर्मकाण्ड तक बँट गये। पहले जो एक रास्ता था वह अब अलग-अलग हो गया।

पर इस वर्णन में उसे यह याद नहीं रहा कि पहले के समाज में शूद्र थे ही नहीं। इसका कारण कि शूद्र भी बहुत पहले ही समाज में स्वीकृत थे और वही करते थे जो उनसे कराया जाता था। अब जमाना बदल गया था। अब वह दबने से इन्कार करता था। अपने को आगे बढ़ाने की कोशिश में लगा हुआ था। दूसरे ब्राह्मण का लाभ इसी में था कि शूद्र को भी उसके प्राचीन कर्म की ओर जाग्रत करता रहे।

वनपर्व १५० अ० में हनुमान ने भीम को उत्तर दिशा का पथ बताया है। सौगन्धिक वन की रक्षा यक्ष और राक्षस किया करते हैं। और वह कुबेर का बाग़ समझा जाता है। साहस के काम छोड़कर अपने धर्म का पालन, उसमें दृढ़ रहकर उसी को श्रेष्ठ समझना आवश्यक है। क्योंकि आचार से धर्म की उत्पत्ति हुई है। **धर्म में ही सब वेद प्रतिष्ठित हैं,** सब यज्ञ वेदों से प्रकट हुए हैं। देवताओं की स्थिति यज्ञों से ही है। वेदोक्त आचार और विधि-यक्त यज्ञ देवताओं के आधार हैं। **बृहस्पति और भृगु की कही नीति के आधार पर मनुष्य चलते हैं।** सेवा बनिज, खेती, गाय आदि पशुओं का पालन, **यही सब मनुष्यों की जीविका के उपाय हैं।** इन्हीं जीविकाओं से अपना पालन करते हुए द्विजाति के लोग धर्म पालन करते हैं।

ब्राह्मण की याजन, अध्यापन आदि त्रयीविद्या, क्षत्रिय की दण्डनीति और वैश्य की सौदागरी खेती आदि ये तीन प्रकार की विद्यायें हैं।

धर्म के बिना त्रयीविद्या का होना असम्भव है।

जो दण्डनीति न होती तो संसार नियमहीन होने से मर्यादाहीन हो जाता।

वैश्यों की व्यापार नीति धर्मसंगत न होती तो प्रजा का नाश हो जाता।

अमृतज्ञान ब्राह्मणों का एकमात्र धर्म है। उस पर अन्य वर्ग का अधिकार नहीं है। दान, अध्ययन और यज्ञ करना, ये धर्म तीनों वर्णों के साधारण धर्म हैं। यज्ञ कराना, पढ़ाना और दान लेना ये भी ब्राह्मणों के धर्म हैं। पालन क्षत्रियों का धर्म है। पोषण वैश्यों का धर्म है। ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की सेवा ही शूद्रों का धर्म है। गुरु (त्रि) वर्ण के बीच रहने वाले शूद्रों को **भिक्षा (दान) माँगने का, हवन करने का, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का अधिकार नहीं है।**

वैश्य को कुछ अधिकार दिये गये हैं। पर शूद्र को अपने कर्म फिर-फिर समझाये जा रहे थे।

इस समय राज्य की दण्डनीति का विषय अधिक स्पष्ट किया जा रहा था। राजा

की शक्ति के बिना अब समाज का नियंत्रण असंभव था क्योंकि व्यक्तिगत संपत्ति ने धनी, दरिद्र की विषमता की खाई को काफी चौड़ा कर दिया था।

वनपर्व के १५१वें अध्याय में हनुमान ने राम को विष्णु का अवतार माना है। १५०वें अध्याय में हनुमान ने त्रेता का विराट रूप दिखाया है। १५१।१९ में हनुमान भीमसेन से बातचीत करके वहीं अंतर्धान हो गये।

देवताओं की संख्या अब बढ़ने लगी थी। चमत्कारों को अधिक-से-अधिक अपने वर्णनों में स्थान दिया जाने लगा था। इसका कारण था अनेक जातियों की अंतर्भुक्ति।

ब्राह्मण ने इस वर्णन को संभवतः तत्कालीन परम्परा और अंधविश्वासों से प्रेरित होकर किया हो, क्योंकि प्राचीन परम्पराओं का कालक्रम न रख सकने के कारण वह गुणानुसार, अथवा कुछ नामों के भ्रम के कारण जैसा पाता था वह वैसा ही रख लेता था। परवर्त्ती काल में यह झूंठ बढ़ती ही गई।

वनपर्व १५९।२०—३०, उत्तर का वर्णन है और देवताओं की बिहार भूमि का वर्णन है जो मनुष्य के लिये अगम्य है।

अब देवयुग की भूमि धुँधली-सी परम्परा बच रही थी। वह अब स्वर्ग बन गई।

१६३।५—१०, यम को दक्षिण दिशा का स्वामी बताया गया है। यह पितरों की दिशा है। यम प्रेतराज है। उसकी परमसमृद्धिशालिनी, अत्यंत अद्भुत **संयमनीपुरी है।**

वरुण, सूर्य, प्रजापति ब्रह्मा, यक्ष, वशिष्ठ आदि सप्तर्षि इत्यादि उत्तर के पर्वतों में रहते हैं। इस स्थान पर यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि दक्षिण का स्वामी यम इन्हीं पर्वतों के निकट दक्षिण का नहीं है। संभव है यम पहले जिस दक्षिण का पर्याय था, वह इन पार्वत्य प्रदेशों से अधिक दूर नहीं था। परवर्त्ती काल में दक्षिण दक्षिणायन से मिल गया।

देवताओं का निवास-स्थान पुरानी परम्परा के कारण अब उत्तर में मान लिया गया था। वही वास्तव में इस देव जाति का कार्यक्षेत्र भी था। दक्षिण में उतरते आर्यों को, प्राचीन के साथ उत्तर ही जुड़ा हुआ, परम्परा में मिलता था।

महाभारत में पशुपति, शिव और पाशुपत सम्प्रदाय का जो उल्लेख है, यद्यपि शैव सम्प्रदाय की स्तुति के अंश परवर्त्ती क्षेपक हैं। फिर भी वे शैव की एक परम्परा को प्रकट करते हैं। पाशुपत सम्प्रदाय लगभग १०वीं ईसवी सदी समाप्तप्राय हो गया। ईसा से पहले भी पाशुपत सम्प्रदाय के होने के इंगित मिलते हैं। अथर्व और यजुर्वेद में भी हम शिव के दर्शन कर चुके हैं। शिव ऋग्वेद में भी थे। शिव का रूप समयानुसार बदलता रहा। अनेक अनार्य —छोटे देवी-देवता इकट्ठे होने लगे। उनमें से कुछ के रूपों को आर्यों ने स्वीकार कर लिया। वह आर्य सामाजिक व्यवस्था में स्वीकृत शिव था। बाकी शिव अपने अलग-अलग प्रकार के रूपों और विश्वासों के साथ विभिन्न कबीला जातियों में तथा कुछ वर्णाश्रम जातियों में भी चलता रहा।

शिव के योग ने अनार्यों पर गहरा प्रभाव डाला। इस रूप के साथ जीवन की अभावात्मकता थी। यह अभावात्मकता बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एक ओर कर्मकांड की उपासना है जो जीवन को वास्तविक समझकर चलती है। दूसरी ओर ज्ञानकांड की समस्त चिंताधारा के सामने बार बार अभावात्मकता ने अपना सिर ही नहीं उठाया वरन् बाकायदा शासन किया है।

यह जो तपोवन पहले ही बड़ी-बड़ी जागीरों के रूप में ब्राह्मणों की दासप्रथा वाली व्यवस्था को रखने वाले स्थान थे, जहाँ विद्या दी जाती थी, बाद में जहाँ क्षत्रियों के पुत्र पढ़ाने के लिये भेज दिये जाते थे अब उनका प्रभाव कम हो चला था, क्योंकि तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय बनने लगे थे, पर उनमें अब अध्यात्म विद्या की चर्चा अधिक हो चली थी, इसका कारण और क्या था? दासों में नई जाग्रति और शूद्रों में उठने की प्रवृत्ति जिसके कारण आर्य जीवन में नई विषमता जाग उठी थी और उसका रूप हुआ अभाव का विस्तार। मनुष्य क्यों दुखी था? अतः जिसके पास था, जिसके पास न था, दोनों पर अभावात्मकता का प्रभाव पड़ा और आर्येतर चिंतन ने उसको व्यक्तिगत रूप दे दिया।

वनपर्व १८० अध्याय में एक गूढ़ प्रश्न है। अजगर ने युधिष्ठिर से कहा: "हे धर्मराज! अभ्रान्त वेद चारों वर्णों का हित करता है। वह वेद जिनका प्रतिपादन करता है, ऐसे सत्य, दान, क्षमा, आनृशंस्य, अहिंसा, दया आदि सद्गुण शूद्र में भी देख पड़ते हैं। तो फिर ब्राह्मण और शूद्र में विशेषता क्या रही? और तुमने कहा है कि सुख-दुःख रहित पदार्थ जानने की वस्तु है, किन्तु सुख-दुःख से रहित वस्तु तो कोई पदाथ ही नहीं देख पड़ता।

युधिष्ठिर ने कहा, "हे सर्प, जिस शूद्र में पहले कहे गये सत्य आदि गुण हैं वह शूद्र शूद्र नहीं है। और जिस ब्राह्मण में वे गुण नहीं हैं, वह ब्राह्मण ब्राह्मण ही नहीं। **केवल वंश से जाति का निश्चय नहीं होता**। सत्य आदि वेदोक्त लक्षण जिस ब्राह्मण में नहीं हैं—वह यथार्थ में शूद्र है। और जिस शद्र में वे लक्षण देख पड़ें।"

अजीब बात है कि दूसरी ओर पुराण, यहाँ तक कि तुलसीदास तक ने इस बात को सैकड़ों बरस के बाद भी स्वीकार नहीं किया।

कथा चलती है।

सुख-दुःख से रहित कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि सुख और दुःख सर्वत्र देख पड़ते हैं। किन्तु जैसे शीत के भीतर उष्ण और अग्नि के भीतर शीत नहीं होता वैसे ही सुख और दुःख से हीन वस्तु भी जिसका अनुभव साधारणतः नहीं होता, कहीं है। तुम चाहो जो समझते हो पर मेरी समझ में तो यही है कि जैसे शीत और उष्ण से रहित, अनुभव से परे, किसी पदार्थ की सत्ता स्वीकार की जाती है, वैसे ही सुख-दुःख शून्य ज्ञेय पदार्थ का होना भी स्वीकार करना पड़ेगा।

"यहाँ हम देखते हैं कि ईश्वर की सत्ता स्वीकार करने के लिये उस तर्क का सहारा लिया गया है जो बुद्धि पर आश्रित न होकर मुख्यतया भावना का विषय है।"

अजगर ने फिर पूछा, "यदि वेदोक्त आचार से ही ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है तो फिर जब तक मनुष्य में उस आचार के पालन की शक्ति नहीं आती तब तक जाति विभाग वृथा हैं।"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "जन्म-मरण, भाषा और मैथुन आदि में सब मनुष्य समान हैं। तभी सब स्त्रियों में सदा संतान उत्पन्न किया करते हैं। **सब वर्णों का इस प्रकार का संकर होने के कारण जाति की परीक्षा होनी अत्यंत कठिन है।** ऋषियों का कहना है कि यज्ञ करने वाले ही ब्राह्मण हैं। चरित्र ही प्रधान यज्ञ है। नाल काटने के पहले पुरुष का जातकर्म संस्कार कर दिया जाता है। उस समय उस बालक की माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है। इस जाति-सम्बन्धी सन्देह के समय के लिये ही **स्वयंभू** मनु ने व्यवस्था दी है कि पुरुष जब तक वेद नहीं पढ़ता तब तक शूद्र के समान रहता है।"

यह जाति-प्रथा को एक भयानक चुनौती थी जिसे ब्राह्मण को स्वीकार करना पड़ा। किन्तु उसने उसमें भी यह जोड़ दिया कि विशेष कर्मों द्वारा व्यक्ति ब्राह्मण हो जाता है। परंतु अभ्यास में ऐसा कब हुआ?

ब्राह्मण-क्षत्रिय द्वेष की वसिष्ठ-विश्वामित्र, हरिश्चंद्र-विश्वामित्र आदि की कथाओं को उदाहरणस्वरूप बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाने लगा।

नहुष (१८१. अ०) अहिंसा का उपदेश देता है। कर्मों का फल, विभिन्न योनियों की गति तथा विषयवासना से बचना इत्यादि का उल्लेख है।

[मेरा मत है कि पुनर्जन्म, अहिंसा इत्यादि के विचार अनार्यों की उपज हैं। नाग जाति की नहुष उपशाखा संभवतः इन विचारों को रखती थी। ध्यान देने योग्य है।]

यह आत्मा स्थूल और सूक्ष्म शरीरों का आश्रय लेने पर इन्द्रियों से युक्त होकर ईश्वरीय विधान के अनुसार विषयभोग के करने में समर्थ होता है। ज्ञान, बुद्धि, मन ये ही तीन आत्मा के भोग साधन का सामान करण हैं। जीवात्मा अपने आश्रयस्थान हृदय से निकलकर इन्द्रियासक्त मन की सहायता से विषयों को ग्रहण करता है और मन को नियुक्त करना बुद्धि का काम है, इसलिये एक साथ सब विषयों का उपभोग असंभव है। बुद्धि भी स्वाधीन नहीं है। जीवात्मा दोनों भौहों के बीच में रहकर बुद्धि को विभिन्न व्यापारों में लगाता है—किन्तु बुद्धि के साथ जीवात्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों अलग हैं क्योंकि युक्ति और अनुभव के द्वारा किसी विषय को समझने के बाद ही जिस ज्ञान का उदय होता है उसी से जीवात्मा का अस्तित्व अलग प्रमाणित होता है।

तब ये मन और बुद्धि हैं क्या? उत्तर है, बुद्धि आत्मा की नितान्त अनुगत और आश्रित है। आत्मचेतना से युक्त होकर बुद्धि कार्य द्वारा, आत्मा के वश में हो जाती है। विषय और इन्द्रिय का सम्बन्ध अच्छी या बुरी बुद्धि पैदा करता है। मन की सृष्टि करने वाला कोई नहीं है। बुद्धि में सुख-दुःख पैदा करने की सामर्थ्य नहीं है। यह मन में है।

किन्तु इतनी बुद्धि को भी ऐश्वर्य मदान्ध कर सकता था।

अब मन धीरे-धीरे अलग हो चला था। हमने पहले देखा था कि संथाल जाति में मन का महत्त्व माना जाता है। मन विदेशों में बहुत बड़ी चीज़ माना गया था। बुद्धि के परे मन की सत्ता स्वीकार कर ली गई। आगे युग में भी इसे अधिकांश ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया गया।

ब्राह्मण का गौरव सर्वोच्च दिखाया गया है। १८४वें अ० में आरष्टनमा के उपाख्यान में हैहय वंशी राजाओं को उपदेश दिया गया है: ब्राह्मण से मृत्यु डरती है। किन्तु १८५वें अ० में कथा है—ऋषि अत्रि दरिद्र आदमी थे। वह जब वन चलने को तैयार हुए तो उनकी स्त्री ने उनसे कहा कि वन जाने के पहले राजा पृथु से धन माँगकर लाइये और उनको देकर जाइये जो आप पर आश्रित हैं।

अत्रि ने बताया कि पृथु तो धार्मिक पुरुष थे किन्तु उनकी सभा के ब्राह्मण अत्रि से शत्रुता रखते थे। इनका मुखिया गौतम था। "वहाँ मेरे विद्वेषी ब्राह्मण मरे कहे धर्मार्थयुक्त वचनों को निरर्थक बतावेंगे, कुछ-का-कुछ कहेंगे।"

इससे प्रकट होता है कि उस समय भी ब्राह्मण आपस में झगड़ा करते थे और अपने फायदे के लिए धर्म का मनमाना अर्थ लगा लिया करते थे।

अत्रि पृथु की सभा में पहुँचे। अत्रि ने कहा—हे पृथु, आप धन्य, ईश्वर और पृथ्वी के सबसे पहले राजा हैं।

महर्षि गौतम क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा—अत्रि! तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं जान पड़ती। महेन्द्र प्रजापति चन्द्र हमारे प्रथम राजा तथा पालन करने वाले हैं।

अत्रि ने कहा—पृथु विधाता, प्रजापति, इन्द्र सब कुछ हैं। झगड़ा बढ़ गया। दोनों काश्यप के पास गये। जब वहाँ भी न्याय न हो सका तो सनतकुमार के पास गये। सनतकुमार ने तत्कालीन समाज की व्यवस्था का अच्छा चित्रण किया है—जैसे आग को हवा की सहायता मिलने से बड़ा भारी वन नष्ट हो जाता है वैसे **ब्रह्मतेज के साथ क्षत्र-तेज मिलने से सब शत्रुओं का नाश हो जाता है।** राजा धर्म को स्थापित करने वाला, नीति मार्ग को दिखाने वाला और प्रजा का प्रतिपालक होता है। इसी कारण राजा शक्र, बृहस्पति और विधाता का रूप है क्योंकि वह रक्षक, नीतिज्ञ, पितृ-तुल्य और हितोपदेष्टा है। प्रजापति, सम्राट, विराट, क्षत्रिय, भूपति आदि शब्दों से जिसकी स्तुति की जाती है उसकी पूजा कौन नहीं करेगा? राजा धर्म और स्वर्ग की राह दिखाता है। वह लोक-रक्षा का प्रधान कारण है। **वह ईश्वर तथा विष्णु का रूप है।**

पहले अधर्म के भय से डरे हुए महर्षियों ने क्षत्रियों को बहुत बलवान बनाया है। इस प्रकार राजा ही श्रेष्ठ और प्रधान है, देवता सदृश है।

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण क्षत्रियों की किस प्रकार खुशामद करने लगा था। इसके लिये तर्क देने लगा था। राजा की शक्ति का प्रसार यहाँ पूर्ण रूप से हुआ कि ब्राह्मण धन के लिये अब चाटुकारिता पर उतर आया। पहले का जमाना नहीं

रहा था कि अगस्त्य धन माँगने निकले तो राजा को अपने बही-खाते दिखाने बैठ गये ।

राजशक्ति और दण्ड के उदय से राजा को परमेश्वर मानने की भावना का उदय हुआ। मिस्र में तो यह भावना बहुत प्राचीन काल में भी थी। भारत में कलियुग में हुई।

अब तक जो सृजन पर ज़ोर डाला जाता था अब नाश का भी रूप सामने आने लगा।

वनपर्व १८८ अ० । २१. प्रलयकाल में सबका संहार हो जाता है । फिर सृष्टि का समय आने पर यह अद्भुत जगत् उन्हीं आदि-पुरुष (ब्रह्मा) से प्रकट होता है। सृष्टि के उपरान्त सतयुग का प्रारम्भ होता है ।

युग	परिमाण
सत्ययुग	४००० वर्ष
सत्ययुग की संध्या और संध्यांश	४०० ,,
त्रेता	३००० ,,
संध्या	३०० ,,
संध्यांश	३०० ,,
द्वापर	२००० ,,
संध्या	२०० ,,
शंध्यांश	२०० ,,
कलियुग	१००० ,,
संध्या	१०० ,,
संध्यांश	१०० ,,

ये दिव्य वर्ष=मनुष्य का १ वर्ष, देवताओं का एक दिन-रात।

कलियुग का क्षय होने पर फिर सत्ययुग आता है ।

चारों युग=१२००० वर्ष

ऐसी १००० चौयुगी=ब्रह्मा का १ दिन अर्थात् कल्प । हरेक कल्प में लोकों का प्रलय हो जाता है।

हज़ार वर्ष की आयु के कलियुग का कुछ अंश जब बाकी रह जाता है तब सब मनुष्य प्रायः मिथ्यावादी हो जाते हैं । उस समय यज्ञ, दान और व्रत कोई नहीं कर सकता । इस लिये उनके स्थान पर प्रतिनिधि कर्म प्रचलित हो जाते हैं। उस युगान्त के समय ब्राह्मण लोग शूद्रों के काम करने लगते हैं, और शूद्र लोग क्षत्रिय अथवा वैश्यों की वृत्ति से धनोपार्जन करते हैं ।

[अब यहाँ से भविष्य का वर्णन होता है ।]

कलियुग में ब्राह्मण लोग तप और स्वाध्याय छोड़कर दण्ड, मृगचर्म आदि को त्यागकर सर्वभक्षी हो जायेंगे। ब्राह्मण लोग जप आदि अपने कर्म छोड़ देंगे और शूद्र लोग

जपादि कर्म करने लगेंगे। पृथ्वी पर जब इस तरह विपरीत भाव दिखाई पड़ने लगें **तब उसे प्रलय की पूर्व-सूचना समझना चाहिये।**

कलियुग के अंत समय में आन्ध्र, शक, पुलिन्द, यवन, काम्बोज, वाह्लीक, शूर और आभीर आदि म्लेच्छ जातियों के राजा राज्य करेंगे। वे मिथ्यावादी पापी होकर अधर्म से राज्य का शासन करेंगे। उस समय कोई भी ब्राह्मण अपने धर्म को पालन नहीं करेगा। क्षत्रिय और वैश्य भी अपने कर्मों को छोड़कर धर्मविरुद्ध काम करने लगेंगे। मनुष्यों की आयु बल, वीर्य, पराक्रम, सारांश और शरीर आदि घट जायेंगे। वे सत्य बहुत कम बोलेंगे।

बस्तियाँ सूनी हो जायेंगी। दिशाओं में मृग और साँप आदि हिंसक जीव अधिकता से देख पड़ेंगे। अनुभव न होने के कारण मनुष्य वृथा ब्रह्मवाद का ढोंग रचेंगे। शूद्र लोग ब्राह्मणों को 'तुम' कहेंगे और ब्राह्मण शूद्रों को 'आप' कहेंगे। चारों ओर मनुष्यों की कमी और जीव-जन्तुओं की बढ़ती देख पड़ेगी। सुगन्ध की वस्तुओं में सुगन्ध, रसीली वस्तुओं में रस अप्राप्य हो जायेंगे। मनुष्यों के बाल-बच्चे अधिकता से होंगे। सबके शरीर छोटे हो जायेंगे। सुशीलता और सदाचार मिट जायेगा। स्त्रियाँ मुख से भगकार्य करने लगेंगी। बस्तियों में अन्न का अभाव होगा। चौराहों पर वेश्याओं और धूर्तों की भीड़ रहा करेगी। स्त्रियाँ निर्लज्ज हो जायेंगी। गायों का दूध घट जायेगा। वृक्ष कम फूलें-फलेंगे और उन पर कौवे आदि पक्षी अधिकता से बैठे देख पड़ेंगे। ब्राह्मण लोग लोभ और मोह के वश में हो जायेंगे। दिखावे के लिये धर्म के चिह्न धारण करके ढोंग रचेंगे। ब्रह्म-हत्या आदि पापों के करने वाले मिथ्यावादी राजाओं के पास जाकर ब्राह्मण लोग उनसे दान लेंगे। भिक्षा-वृत्ति का सहारा लेकर ब्राह्मण लोग गली-गली मारे-मारे फिरेंगे। गृहस्थ लोग राजा के लगाये कर के बोझ से दबकर चोरी और बेईमानी पर उतारू हो जायेंगे। ब्राह्मण लोग मुनियों का वेश बनाकर छिपे-छिपे व्यापार करेंगे। धन के लोभ से झूठे ब्रह्मचारी बने हुए ब्राह्मण नख और केश बढ़ायेंगे। चारों आश्रमों के लोग आचार का ढोंग रचेंगे। मद्यपान और गुरुशैयागमन का पाप बहुत बढ़ जायेगा। लोग इस लोक के सुखों में लिप्त रहकर केवल रक्त और मांस बढ़ाने की चेष्टा करेंगे। चारों आश्रमों के लोग विभिन्न पाखण्ड रचेंगे और पराया धन खाकर उसके गुणों का बखान करेंगे। न ठीक समय पर जल बरसेगा, न उपजाऊ शक्ति रहेगी। धर्मफल सर्वत्र हीन होगा। लोग अपवित्र और हिंसक होंगे। अधर्म करने वालों का भला होते देख पड़ेगा। उस समय धार्मिक पुरुष अल्पायु होते देख पड़ेंगे। कोई धर्म न रह जायेगा। सौदा बेचने वाले लोग कम तौलेंगे और बेईमानी करेंगे। धोखेबाजी का चलन बहुत बढ़ जायेगा। धर्म—बलहानि, अधर्म—बलवृद्धि होगी। धार्मिक अल्पायु, दरिद्र और हीन होंगे। अधर्मी, पापी लोग दीर्घायु, समृद्धिशाली, प्रबल और बढ़ते हुए दिखाई देंगे। ये लोग व्यवहार में अधर्मयुक्त उपायों का आश्रय लेंगे। लोग थोड़ा ही धन पास होने पर धनाढ्यों की तरह मदान्ध हो उठेंगे। यदि कोई विश्वास करके किसी के पास धरोहर के तौर पर अपना धन रख देगा तो उसे धोखा दिया जायेगा।....

नगरों के विहार स्थानों और देवस्थानों में भेड़िये, व्याघ्र, मांसभक्षी पक्षी और मृग सोवेंगे। उस समय सात-आठ वर्ष की स्त्रियाँ गर्भवती होंगी और दस-बारह वर्ष के पुरुष लड़के के बाप बन बैठेंगे। सोलह वर्ष की अवस्था में ही पुरुषों के बाल पकने लगेंगे। इस तरह शीघ्र ही बुड्ढे होकर यमपुरी सिधार जायेंगे। इस प्रकार जवान बुड्ढे हो जायेंगे और बुड्ढों का स्वभाव जवानों का-सा बना रहेगा। स्त्रियाँ अपने धर्म के विपरीत पूज्य पतियों को धोखा देकर दासों तथा पशुओं तक के साथ कुकर्म करेंगी। साधारण स्त्रियाँ और वीरों की स्त्रियाँ भी जीते हुए पतियों को धोखा देकर पर-पुरुषों से प्रीति करेंगी।

यह है वह भयानक चित्र जिससे ब्राह्मण को लोहा लेना पड़ा। निस्संदेह बहुत-सी बातें ऐसी होने लगीं जिससे ब्राह्मण को अपनी दुनिया, अपने आदर्श, नष्ट होते हुए दिखाई दिये। यही उसके लिये प्रलय था। स्त्री की स्वतन्त्रता छिन गई तभी वह समाज की विषमता में पड़ गई। वर्णाश्रम खंडित होने लगा। कोई मर्यादा दिखाई नहीं देती थी। कारण था समाज का नियंत्रण अब धन कर रहा था। जिसने धन कमा लिया उसकी सब इज़्ज़त करने लगे। ब्राह्मण दरिद्र हुआ तो उसके सामने और क्या रास्ता था ? अब भी शूद्र के सामने झुकना उसके लिये सरल नहीं था।

इस प्रकार हज़ार वर्ष तक कलियुग की आयु समाप्त होने पर बहुत वर्षों तक पानी नहीं बरसेगा। अन्न उत्पन्न न होने पर कलियुग के सारहीन प्राणी भूखे मरने लगेंगे। तब संवर्त्तक **अग्नि, देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, नाग** आदि प्राणियोंसहित सब जगत् को भस्म कर डालेगा। फिर प्रलय हो जायेगा।

अन्न की पहले जैसी बहुतायत नहीं रही क्योंकि धन ही खरीदफरोख्त का ज़रिया बनने लगा और पुराने सर्वाधिकार कम हो गये।

वनपर्व, १८९।३०. मार्कण्डेय से भगवान् ने कहा है, मेरा—

सत्ययुग में श्वेतवर्ण ।

त्रेता युग में पीत वर्ण ।

द्वापर युग में रक्त वर्ण।

कलियुग में कृष्ण वर्ण

कलियुग में अधर्म के तीन भाग होते हैं :—

१. अधर्म की उत्पत्ति

२. ,, ,, वृद्धि

३. ,, ,, अत्यन्त वृद्धि

भगवान् ही नाशकर्त्ता है। वह त्रिवर्त्मा है अर्थात तीन मार्ग हैं। १९०वें अध्याय में कलि का फिर वर्णन है। सत्ययुग में कपट, लोभ आदि न होने के कारण धर्म चारों चरणों में मनुष्यों में स्थित था। बैल की तरह धर्म के चार चरण थे। इसी से उसका एक नाम वृषभी है।

त्रेता युग में धर्म के तीन चरण रह गये हैं। द्वापर में दो तथा कलि में एक। कलियुग

में अल्पायु होने के कारण मनुष्य अच्छी तरह विद्याभ्यास करने में समर्थ न होंगे। इससे लोभ, क्रोध, मोह, काम, वैरभाव, हत्या बढ़ेंगे।

अन्त्यज जातियाँ अपने को क्षत्रिय बताकर उन्हीं का-सा व्यवहार करने पर उतारू होंगी। सन के कपड़े, और कोदों अन्न उत्तम वस्त्राहार समझे जायेंगे। पुरुष स्त्रियों के भक्त, उन्हीं को अपना सबसे बड़ा मित्र समझेंगे। गायों का नाश हो जाने से बड़े-बड़े व्रतधारी भी बकरियों और भेड़ों का दूध पियेंगे। लोग मछलियाँ खाने में कुछ संकोच न करेंगे। सब मनुष्य लोभी होकर परस्पर एक-दूसरे को ठगेंगे, चोरी और हिंसा करने में भी नहीं हिचकेंगे। जप-तप न करके चोर और नास्तिक बन जायेंगे। नदी तट पर कुदाल से खोदकर औषधियाँ बोई जायेंगी और उनमें भी फल कम होंगे। श्राद्ध आदि पितृकर्म और पूजा-पाठ में लगे हुए लोग भी लोभ के वशीभूत होकर एक दूसरे का धन छीनेंगे। पिता पुत्र के धन को और पुत्र पिता के धन को हर लेने की चेष्टा करेगा। **खाद्य अखाद्य का कुछ विचार नहीं किया जायेगा।**

अनार्य जातियों के आचार-व्यवहार जितना ही अधिक प्रभाव डालते थे उतनी ही धर्म की व्यवस्था टूटती हुई दिखाई दे रही थी। इसका क्षेत्र पूर्व की ओर अधिक था। पुराना अनार्य क्षेत्र था। दूसरे यहाँ जो आर्य थे वे भी पुराने आर्य थे। इस प्रकार एक द्वन्द्व के दर्शन होते हैं। (अनार्य वे थे जो यहाँ दास-प्रथा वाले समाज की विषमता को पहुँच चुके थे और पहले आये आर्यों के दल वे थे जिनमें ब्राह्मण वर्ग का पूरा आधिपत्य नहीं जमा था जैसे पाञ्चाल और अंतर्वेद में जम चुका था। गण-व्यवस्था आर्यों में अवशिष्ट थी और दास-प्रथा अनार्यों की शेष ही थी। इससे राजकुलीन गण-व्यवस्था का उदय हुआ। इस गण-व्यवस्था के क्षत्रियों पर अनार्य चिंतन की अभावात्मकता ने अपना गहरा प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया था। ब्राह्मण इन लोगों से कभी भी प्रसन्न नहीं हुए थे। वे इनका सदैव विरोध किया करते थे। याज्ञवल्क्य इस परिवर्तनकाल में जनक के साथ अनेक विवाद करता है। पर क्या उसका प्रभाव गणों को बचा सका ?

गणों के ब्राह्मण भी इन आचार-व्यवहारों को स्वीकार नहीं करते थे।

ब्राह्मण लोग चरित्र और आचार-विचार से विहीन होकर वेद विद्वेषी होंगे।

वेद विद्वेषी और ब्राह्मण ? यह एक अदभुत बात थी। ऐसा क्यों ? क्योंकि जो राज्य-व्यवस्था गणों में थी वहाँ ब्राह्मण को सुरक्षा नहीं मिलती थी जिसका प्रश्रय वह अपने धर्म को मानने वाले राजा की दण्ड-नीति के बल पर लेते थे। दूसरे जब ब्राह्मण को वे अधिकार ही नहीं मिले तो उसने भी सोचना प्रारंभ किया कि आखिर इस समस्या का हल क्या है ?

राज्यतंत्र वाला ब्राह्मण, जो आर्यों के बाद के दलों का सर्वमान्य शासक था, गणों का भयानक वर्णन करता था। यह हम ऊपर देख ही चुके हैं कि शल्य और कर्ण की बातचीत में किन शब्दों में ब्राह्मण ने गणों का वर्णन किया था।

और तपोवनों में जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी। इसी समय सांख्य की विचारधारा

बढ़ रही थी। वह एक स्वाभाविक बात थी। दूसरी ओर वह विचारधारा भी थी जिसका पूर्ण परिपक्व रूप हमें श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में दिखाई देता है। कृष्ण गण के थे, और वे निरंकुशता के विरोधी थे। परंतु अनार्यों और शूद्रों को सहूलियत देकर वे ब्राह्मण-क्षत्रिय मिलन से एकतंत्र स्थापित करना चाहते थे जिसमें अनार्य दास-प्रथा को चोट पहुँचती थी। परंतु वे पूर्णरूप से अपने कार्य को नहीं कर सके क्योंकि उन्होंने दो विरोधों को एक कर देने का प्रयत्न किया। किंतु उन्होंने एक नया दर्शन उपस्थित अवश्य किया था।

आत्मा, भाग्य, पुनर्जन्म एक ओर है दूसरी ओर भक्ति की समानधर्मिता। यह द्वन्द्व इतना गहरा था कि जिस गीता को सुनकर अर्जुन व्यक्तिवाद छोड़ कर कर्म क्षेत्र के समूह में उतरा था, उसी गीता को पढ़कर संन्यासी हो-होकर लोग घरों से निकलने लगे।[1] कारण था, अभावों का प्राबल्य जिसने व्यक्तिवाद को अधिक उभाड़ा और धर्मस्थापना के स्थान पर कलियुग आ गया।

शिष्य ने गुरु से पूछा—मन इष्ट वस्तु के प्रति किससे प्रेरित होकर जाता है? मुख्य प्राण किससे जोड़ा हुआ विशेषता से चलता है? इस वाणी को किसकी प्रेरणा से मनुष्य बोलते हैं? आँख, कान को कौन देव कार्यों में संयुक्त करता है?[2]

गुरु ने उत्तर दिया—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।[3]

अर्थात् सब इन्द्रियों का प्रेरक आत्मा है। वह कान का कान है, मन का मन है, निश्चय से वाणी की वाणी है और वह प्राण का प्राण है, नयनों का नयन है। जो इसे जानता है, वह इस लोक से मरकर अमृत हो जाता है।

इस प्रकार आत्मा ही सर्वोच्च है।

गुरु ने फिर कहा—उसमें आंख नहीं पहुँचती न वाणी, न मन। कोई कैसे इसको बताये यह हम नहीं जानते, नहीं समझते हैं, क्योंकि वह जाने हुए से निराला है, अज्ञात से भी ऊपर है। यह हमने पूर्वजों से सुना है जो हमारे लिये उसका वर्णन कर गये हैं।[4]

---

१. गीता को पाठ-रूप से नित्य पढ़ना गृहस्थ के लिये अब भी अच्छा नहीं समझा जाता।

२. केनेषितं पतति प्रेषितं मन : केनप्राणः प्रथमः प्रैतियुक्तः
केने षितां वाचमिमां वदन्ति? चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति?

३. वही. २. (केनोपनिषद्। प्रथम खण्ड ॥१॥)

४. न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो
मनो न विघ्नो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि
इति शुश्रुम पूर्वेषां येनस्तद् व्याचचक्षिरे। (केनोपनिषद) ३.

इससे प्रकट होता है परम्परा में 'आत्मा' का विकास आर्यों में पहले ही हो चुका था जो धीरे-धीरे अपने लिये इतना प्रभावपूर्ण स्थान बना लेने में अंततोगत्वा सफल हो गया। तब वह आत्मा ब्रह्म है। परन्तु उसे तर्क से कोई नहीं जान सकता। अर्थात् वह श्रद्धा अथवा अनुभव—स्वानुभव की बात हो गया। इस प्रकार आर्य्य जीवन के प्रारंभ का वह ब्रह्म जो सजीव था, इस प्रकार महाभारत के बाद के काल में अगम और अतीत हो गया।[१]

इस अगम को जानने के लिये वैसी ही बातें कही गई हैं जैसी आगे चलकर कबीर ने दुहराई हैं। अर्थात् संकल्प-विकल्प का आधार लिया जाने लगा। जो इस ब्रह्म का वर्णन करता है वह तो वास्तव में उसको जानता ही नहीं।[२] जिसे नेत्र नहीं देखते पर जो आंखों को दीखता है, उसे ही ब्रह्म समझ।[३] यहां ब्रह्म अदृश्य हो गया, वह दीखकर भी नहीं दीखता। जो कान से नहीं सुनता, किन्तु जिससे यह कान सुन पाता है, वही ब्रह्म है।[४] जो प्राण से प्राणित नहीं होता, जिससे प्राण आता-जाता है, वही ब्रह्म है।[५]

ब्रह्म इतना महान् है कि कोई इसका पूर्ण रूप तो जान ही नहीं सकता। जो सोचता है कि वह जानता है तो यह निश्चित है कि वह कम जानता है। जो रूप तू जानता है, और जो देव जानते हैं, वह भी कम है। इसलिये जो तू जानता है, उसका तुझे मनन करना चाहिये। यह मैं मानता हूँ।[६]

शिष्य ने स्वीकार किया कि मैं नहीं जानता। जो उसे जानता है, वह यही जानता है कि मैं नहीं जानता हूँ। किन्तु जानता हू।[७]

जो उसे नहीं जानते; वह उसका जाना हुआ है। जो जानता है, वह नहीं जानता। ज्ञानियों से वह अविज्ञात है, और न जानने वालों से जाना हुआ है।[८] अर्थात् दुरूह है और जो अनुभव करता है वह उस रहस्य को समझ गया है, वह कुछ नहीं जानता।

---

१. यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

२. यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

३. यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति तदेव ...... ॥६॥

४. यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम तदेव ...... ॥७॥

५. यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राण: प्रणीयते
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं वदिदमुपासते ॥८॥ (केनोपनिषद, प्रथम खण्ड)

६. यदि मन्यसे सुवेदेति द्भ्रमेवापि त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं
यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्।
(केनोपनिषद्। दूसरा खण्ड।१।)

७. यो नस्तद् वेद् तद् वेद नो न वेदेति वेद च ॥२॥

८. यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेदस:
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥३॥

किन्तु इतने ही ज्ञान से संतोष नहीं हुआ। ठीक है। परन्तु फिर? इसका एक ही तात्पर्य है। वह यह कि, यहाँ, इसी जन्म में, यदि ब्रह्म को जान लिया तो सत्य है, सफलता है। यदि यहाँ न जाना तो महा हानि है। सब भूतों (जीवधारियों) में चिंतन करके धीरजन इस लोक से मरकर अमृत हो जाते हैं।[1]

इसके आगे एक अत्यन्त सुंदर वर्णन है। इसमें देवों का उल्लेख है। यक्ष का भी। यक्ष इस काल से पहले ही देवयोनि में मान लिये गये थे यह ऊपर दिखाया जा चुका है।

निश्चय से ब्रह्म देवों के लिये विजेता हुआ। निश्चय से उस ब्रह्म की विजय देव महिमन्त हुए। वे विचारने लगे हमारी ही यह विजय है, हमारी ही यह महिमा है।

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिगो, तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।

त ऐक्षन्तास्माकमेवामविजयोऽस्माकमेवायं महिमेति (के. उ. ३।१.)

वह ब्रह्म इन देवों को जान गया। वह उन पर प्रादुर्भूत हुआ। उन्होंने उसे नहीं जाना कि वह यक्ष कौन था?[2]

देवों ने अग्नि से कहा कि तू इसे जान। परन्तु अग्नि यक्ष के रखे एक तिनके को भी नहीं जला सका। यद्यपि वह जानवेदा था। वायु उस तिनके को मातरिश्वा होकर भी नहीं उड़ा सका। जब इन्द्र आगे दौड़कर गया तो यक्ष छिप गया।[3]

अब तक देवता साथ रहते थे। यज्ञ में आकर बैठते थे (अवतारवाद नहीं) देवों को यथारूप स्थान दिया जाता था। यज्ञ में कोई ब्रह्मा बनता था, कोई बृहस्पति, कोई यम। किन्तु इन सबके रहते हुए भी तपोवन में बढ़ने वाला ब्रह्म मन के समान चलने वाला था।

तस्यैष आदेशो यदेतद्
विद्युतो व्यद्युतदा
इतीतिन्यमीमिषदा। इत्यधि दैवतम्॥ (केनोपनिषद् ४।४)

---

१. इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।
(केनोपनिषद् २.५.)

२. तद्दैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव
तन्न व्याजानन्त किमिदं यक्षमिति॥ (के. ०. ३.२१)
तदभ्यद्रवत् तमभ्यपदत् कोऽसी त्याग्निर्वा-
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति॥४॥
तस्मै तृणं निदधावेतद्हेति, तद्रूप प्रेयाय सर्वजनेन, तन्न शशाक दग्धुं।
स तत एव निववृते नैत दशकं विज्ञातुं यदेतद्य क्षमिति॥६॥

३. इन्द्र को देखकर—
अथेन्द्रमब्रुवन्, मघवन्नेतद् विज्ञानीहि किमेतद यक्षमिति
तथेति, तदभ्यद्रवत् तस्मात् तिरोदधे॥११॥

जो यह बिजली का चमकना-सा है, और ठीक जो आँखों का झपकना-सा है ब्रह्म का यह आदेश है, यह अधिदैवत है।

इस ब्राह्मी विद्या को जानना यों अधिक श्रेयस्कर है कि यह स्वर्ग पहुँचाती है।

स्वर्ग लोक में वीर जाते हैं, ऋषि-मुनि जाते हैं। स्वर्ग क्या है? यह एक प्राचीन की सुमधुर कल्पना है जिसे अब तपोवनों ने पाप-पुण्य के कठोर बंधनों में बाँधना प्रारंभ कर दिया है। यह भी अनुमान किया जाता है कि नरक-स्वर्ग की कल्पना में काफी हाथ आर्येतर जातियों के चिंतन का प्रभाव रहा होगा क्योंकि यह विश्वास अनेक ऐसी जातियों में भी मिलता है जो आर्य प्रभाव में नहीं आईं जैसे आग्नेय जातियाँ।

इन्द्र को यहाँ उमा मिली। (कुछ लोगों का मत है कि देव यहाँ इन्द्रियों के पर्याय हैं, तथा उमा सूर्य्य-ज्योति है। भांडारकर के मत से उमा का वर्णन शैव संप्रदायों का प्रभाव प्रकट करता है। यह उन्होंने अपनी पुस्तक के 'शैविज्म' अध्याय में किया है।[१] मेरा विचार भी यही है। स्पष्ट यों अधिक लगता है कि स्वयं इन्द्र के आते ही वह यक्ष अदृश्य होता है। इन्द्र आर्यों का सर्वश्रेष्ठ देवता है। अब ब्रह्म उस इन्द्र से भी ऊपर चढ़ गया है। और इन्द्र को उमा हैमवती समझाती है। आर्यों के ब्रह्म के रूप के विकास में आर्येतर चिंतन का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है।)

उस उमा ने कहा---यह ब्रह्म है। और ब्रह्म की इस विजय में, महिमा अनुभव करो। उससे ही इन्द्र ने जाना कि यह ब्रह्म है।[२]

अब इन्द्र को ब्रह्म जानना पड़ा। प्राचीन काल में इन्द्र केवल नेता था, योद्धा था। अब आर्यों के जीवन में गहरा भेद पड़ गया था।

आभीर जैसी नई जातियों का बल बढ़ गया था। आभीर दस्युओं ने सागर को गंदला कर दिया।[३] घोष में ग्वाले रहते थे, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता था। आभीर, मधुवन मथुरा से अनूप, आनर्त्त, द्वारका तक बसे हुए थे (महाभारत मौसल पर्व, अ० ७)। उन्होंने अर्जुन पर हमला करके वृष्णियों की स्त्रियाँ छीन लीं जो कुरुक्षेत्र जा रही थीं। डाकू, म्लेच्छ, पंचनद के वासी थे। आभीर उन्हीं में गिनाये गये हैं। विष्णु पुराण में वे अपरान्त (कोंकण) के तथा सौराष्ट्र के वासी बताये गये हैं। यही वराहमिहिर ने लिखा है। वृहत्संहिता में वे दक्षिणी लोग हैं। उन्होंने इराति के एक लेखानुसार राज्य भी किया। पुराणों में १० आभीर राजाओं का उल्लेख है। १८०. ई. सं. के एक लेख में इसकी पुष्टि मिलती है।[४] विष्णु वेद में नीचा है, ब्राह्मणों में कुछ उठा, पुराणों में बहुत ऊँचा

१. वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स.।

२. सा ब्रह्मेति होवाच, ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति।
ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति। (केनोपनिषद् ४।१)

३. एपिक मॉयथॉलॉजी, पृ० १२१.

४. वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स. पृ० ३७.

उठ गया ।[1] शतपथ ब्राह्मण में विष्णु वामन कथा है (१.२.५.) ।[2]

आभीर जाति का भारत में अपना स्थान है इस पर भांडारकर ने प्रकाश डाला है। भागवत संप्रदाय का जो रूप परवर्त्ती काल में हमने देखा है उसका मूल इसी ने कहीं उपस्थित किया था ।

६ सदी ई० पूर्व बंगाल आर्य-प्रभाव के बाहर था। ४ सदी ई० पू० बंगाल और मगध का व्यापार चलता था।[3] ५०० ई० पू० भी महाभारत प्रचलित थी।[4] बौद्ध महा-विभाषा के अनुसार २०० ई० में भी महाभारत में १२००० श्लोक थे।[5] सातवीं सदी ईसा से पहले ही, शामशास्त्री के अनुसार, महावीर के पहले, पाणिनि था।[6] व्याकरण की वह भीम मेधा भाषा के एक स्वरूप के अंत का और लौकिक के प्रारंभ का प्रतीक है।

अतिरिक्त शिव के कुछ रूप थे। हिमालय के हर ज़िले में क्षेत्रपाल शिव का मंदिर है। अब भी बंगाल में यह मत प्रचलित है। स्त्रियों को प्रिय है।[7] तञ्जौर में भी क्षेत्रपाल उपासना है।[8] चट्टगाँव में हिंदू, बौद्ध, मुस्लिम सब क्षेत्रपाल के लिये व्रत रखते हैं।[9] पश्चिम बंगाल में क्षेत्रदेवी वैष्णव है। वह विष्णुपत्नी लक्ष्मी है।

यह परवर्त्ती स्वरूप हैं। इनका प्रारंभ हम ऊपर बहुत प्राचीन काल में ही देख चुके हैं।

सूर्य्य की उपासना भी इसी प्रकार बहुत प्राचीन है।

पहले-पहल जब जीव उत्पन्न हुए तब वे भूख से बहुत ही व्याकुल हुए (वनपर्व ३.) सूर्य्य के उत्तरायण और दक्षिणायन बनकर तेज और रस निकाला। सूर्य्य जब क्षेत्र हुआ तब चन्द्रमा ने आकाश से तेज निकालकर जल के द्वारा औषधियाँ बनाईं। फिर अन्न बना। सूर्य्यस्य अन्न ही प्राणियों के प्राण धारण का एकमात्र उपाय है। सूर्य्य पिता हैं।

सूर्य्य के एक सौ आठ नाम थे।

१. सूर्य्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा,
२. अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्,
४. अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर,
५. पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायु
६. सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अंगारक
७. इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि,

---

१. वैष्णविज़्म, शविज़्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स ३३. (२) वही पृ० ३४.
३. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ़ बंगाली लेंग्वेज पृ० ६९
४. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ एन्शेन्ट इंडिया, पृ० ६. ७. इंहिक्वा ९. १९३३, पृ.२४१.
५. वही पृ० ३.
६. अभाओरिइ ११. १९३०, पृ० ८३.
८. वही पृ० २४२.
९. वही पृ० २४३.

८. शौरि, शनैश्चर, **ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र,**
९. स्कंद, यम, वैद्युताग्नि, जठराग्नि,
१०. ऐन्धनाग्नि, तेजपति, धर्मध्वज,
११. **वेदकर्त्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन,**
१२. सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग,
१३. कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, क्षपा, याम,
१४. क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ,
१५. **तमोनुद, वरुण, सागर,** अंश, जीमूत,
१६. जीवन, अरिहा, भूताश्रय, भूतपति, स्रष्टा,
१७. संवर्त्तक, वह्नि, सर्वादि, अलोलुप,
१८. अनंत, **कपिल,** भानु, कामद,
१९. सवतोमुख, जय, विशाल, वरद,
२०. मन, **सुपर्ण,** भूतादि, शीघ्रग,
२१. धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव,
२२. **दितिसुत,** द्वादशात्मा, अरविन्दाक्ष,
२३. पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार,
२४. प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप,
२५. देहकर्त्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा,
२६. विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा,
२७. मैत्रेय।

सूर्य्य ने बारह विभाग करके बारह मूर्त्तियाँ धारण की हैं। सूर्य्य को **अंशुमाली, वृषाकपि,** मिहिर, मित्र और धर्म भी कहा गया है। सप्तसप्ति, धामकेशी, **विरोचन** सूर्य्य के अनुचर, **माठर, अरुण** और **दण्ड** आदि हैं। क्षुभा और मैत्री भतमाता है।

परवर्त्ती काल में भी सूर्य्य की उपासना बहुत दिन तक भारत में चलती रही थी। पहले हम देख चुके हैं कि सूर्य्य भी आर्य तथा अनार्य दोनों ही जातियों में पूज्य था।

सूर्य्य की लकड़ी की मूर्त्तियाँ मिली हैं।

लकड़ी का यह काम मौर्य काल से बहुत पहले भारत में चलता था।[१] सूर्य्य, कुषाणकाल में, जूते पहने मिला है।[२] ग्रीस, मिश्र, सीथिया में सूर्य्य के साथ दो दासी या स्त्रियाँ नहीं हैं। केवल भारत में धावा पृथ्वी के रूप में वे पाई जाती हैं। उसके रथ के नीचे एक नंगी राक्षसी भी पड़ी मिलती है।[३] महाभारत में कथा है कि जमदग्नि को सूर्य्य ने ही छाता दिया था।[४] सूर्य्यछत्र, नाग तथा नागी आकृति पर मिलता है।[५] गांधार के एक

१. सूर्य्य पृ० ३१.
२. वही पृ० ३५.
३. वही पृ० ३५.
४. वही पृ० ४८.
५. वही पृ० ५६.

बोधिसत्वमुकुट में सूर्य्य सप्ताश्व रथ तथा अरुण के साथ अंकित है।[1] उत्तर भारत में भागवत वैष्णव धर्म था, दक्षिण में शैव। यहाँ कई अवैदिक देवता खो गये। सूर्य्य भी इसी प्रकार मध्ययुग के अंत तक ब्रह्मा, विष्णु और शिव में मिल गया।[2] सूर्य्योपासना जावा तक मिलती है। वहाँ सूर्य्य की स्थानीय, दक्षिण भारतीय तथा गुप्तकालीन शैलियों की मूर्त्तियाँ मिलती हैं।[3]

इस समय राजवंशों का इतिहास बहुत ही अँधेरे में है।

निचक्षु के समय में गंगा हस्तिनापुर बहा ले गई तब उसने कौसांबी में राजधानी बसाई।[4] इस युग के अंत तक निम्नलिखित महाजनपद अपने समृद्ध रूप में थे क्योंकि बुद्ध-काल में, अंगत्तुर निकाय में यह जनपद गिनाये गये हैं:—काशी, कोसल, अंग, मगध, वज्जि (वृजि), मल्ल, चेतिय, (चेदि), वंश (वत्स), कुरु, पंचाल, मच्छ (मत्स्य), शूरसेन, अस्सक (अश्मक), अवंति, गांधार, कम्बोज। जैन भगवती सूत्र में बंग, मलय, मालव (क), अच्छ, कोच्छ, पाढ (पांड्य ?), लाढ (राढ), मोलि (मालि), अवाह तथा संभुत्तर इत्यादि हैं। बाकी ६ ऊपर की दी हुई सूची के नाम हैं।[5]

इस समय का नक्शा जातियों के समूह के अनुसार इस प्रकार बनता है—

आर्य राज्य उत्तर में भी थे। आर्य जाति के हेखायन (एकमीनि) नामक ईरानी राजवंशी के नाम पर से उसके वंशज, ईरान के बादशाह हरवामनी वंशी कहलाते थे। यह पूर्वज संभवतः ईसा से ८०० वर्ष पूर्व था। इस हरवमान के वंशज ने मीडिया के राजा अस्त्यगिस (इष्टुविगु) को हटाकर ईरान और समस्त मीडिया पर अपना साम्राज्य ई० सं० पूर्व ५५८ के आसपास जमाया। इसे सिकंदर ने ३३१ ई० पू० में समाप्त कर दिया।[6]

इस काल का इतिहास तीर्थों के वर्णन में मिलता है।

पुष्कर (वनपर्व ८२. २०) जम्बूमार्ग (वनपर्व ८२. ४०–४१) तन्द्रुलिकाश्रम, अगस्त्य सरोवर इत्यादि का उल्लेख है। तीर्थों के इस वर्णन में कल्पना का काफ़ी पुट प्रतीत होता है क्योंकि तीर्थों को पवित्रता का बाना पहनाना था। वितस्ता नदी में वाजपेय यज्ञ का मिलता है। काश्मीर देश में नागराज तक्षक का वितस्ता नाम का पवित्र आश्रम था (वनपर्व ८२. ७५–९०)। बडवा तीर्थ में गुह्यक, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, राक्षस, दैत्य, रुद्रगण इत्यादि ने विष्णु के लिये खीर से होम किया था।

देविका तीर्थ महादेव का आश्रम था वहाँ ब्राह्मणत्व प्राप्त होता था।

वनपर्व ८२. १०९–१० में दीर्घसत्र का वर्णन है जहाँ बहुत दिन यज्ञ हुआ था। वहाँ से विनशन तीर्थ जाना ठीक है जहाँ से सरस्वती की गुप्त धारा मेरुपृष्ठ पर जाकर चमस, शिवोद्भेद और नागोद्भेद नामक स्थानों में दीख पड़ती है।

---

१. सूर्य्य पृ० ६१.
२. वही पृ० ९४.
३. वही पृ० ९७.
४. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ एन्शेन्ट इंडिया, पृ० ३६.
५. वही पृ० ८१–८२.
६. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० ३४.

सरस्वती उस समय लुप्त हो चुकी थी। कुरुक्षेत्र तीर्थ में मचक्रुक यक्ष द्वारपाल का आवास माना जाता था (वनपर्व ८३. ६–८)। सर्पों का तीर्थ सर्पदेवी था। वह नागलोक को प्राप्त कराता था। बराह तीर्थ में विष्णु अवतरित हुए थे। गुप्तकाल में वराह का बहुत प्रभाव बढ़ गया था। शिव का मुञ्जवट, यक्षिणी तीर्थ, परशुराम कुण्ड भी महत्त्वपूर्ण हैं। अरन्तुक द्वारपाल यक्ष तीर्थ था। वहाँ कुबेर का अधिकार था (वनपर्व ८३. ५१–५२)।

नारद का अम्बाजन्म तीर्थ था। (व. प. ८३. ८१.) (९१) में व्यास ने द्विजों के लिये सब तीर्थों का मिश्रण किया। वह मिश्रक तीर्थ था। संभव है, वह ब्राह्मणों की कोई सभा हुई जिसमें कुछ जातियों को ब्राह्मण मान लिया गया। जिससे मिश्र बने।

प्राचीन काल में नैमिषवासी ऋषिगण तीर्थ-यात्रा करते हुए कुरुक्षेत्र में जाकर सरस्वती कुञ्ज में टिके थे। (व. प. ८३. ९–१०) तीर्थयात्रा हुई। आर्यों का आवागमन उसी की अवशिष्ट स्मृति है। ब्रह्मतीर्थ में स्नान करने से नीच वर्ण का पुरुष भी ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त होता है (पता नहीं अभी तक सब ब्राह्मण क्यों नहीं हो गये ?) विश्वामित्र तीर्थ में भी ब्राह्मण हो जाते हैं। दर्भीकृत अर्द्धकील क्षेत्र में भी मही फल मिलता है। आपगा तीर्थ में महेश्वर की पूजा से गणपतिपद मिलता है। सन्निहती तीर्थ में भी मचक्रुक यक्ष द्वारपाल है। तरन्तुक, अरन्तुक, रामह्रद और मचक्रुक के बीच का क्षेत्र ही कुरुक्षेत्र है। समन्तपञ्चक भी पितामह की उत्तरवेदी कहा जाता है (व. प. ८३. २०७–८)। शाकम्भरी देवी का स्थान पूज्य था (व. प. ८४. ११–१५)। नागराज कपिल का तीर्थ था (व. प. ८४. ३१–३३) कपिलावट। वाशिष्ठी के पार जाने पर सभी वर्ण ब्राह्मण हो जाते हैं। गीत ध्वनि से गूँजते उद्यन्त पर्वत पर सावित्री का स्थान है। यहाँ योनिद्वार तीर्थ है जिसमें जाने से मनुष्य योनि-संकट से छूट जाता है। उर्वशी तीर्थ में स्नान करके पूजनीय होता था। कोशल में ऋषभ तीर्थ था (व. प. ८५.९)। कावेरी तीर्थ अप्सरा-स्थान था।

उस समय भी शूद्र अग्नि होत्रशाला की चौकसी किया करते थे। यवक्रीत को अंध शूद्र ने बलपूर्वक रोका था (व. प. १३६–१५–२०)। यवक्रीत की हत्या के बाद ही अर्वावसु ने सूर्य्य रहस्य नामक एक नया वेद बनाया। संभवतः वे सौर हो गये थे (व. प. १३८. १०–२०) क्योंकि एक ओर तीर्थ महत्त्व संगठन की प्रणाली थी और नये-नये प्रचलन हो रहे थे तो दूसरी ओर कलियुग आ रहा था। मार्कण्डेय ने कहा—(व. प. १९०) अब मैं कलियुग का भविष्य वृत्तांत कहता हूँ।

सत्ययुग में कपट, लोभ आदि न होने के कारण धर्म चारों चरणों से मनुष्य में स्थित था। धर्म के, बैल की तरह, चार चरण थे, इसी से उसका एक नाम वृष भी है। त्रेतायुग में धर्म के तीन चरण रह गये। एक चरण को अधर्म ने कमज़ोर बना दिया। द्वापर में धर्म के दो ही चरण रह गये। कलियुग में धर्म का एक ही चरण रह गया।

चातुर्वण्य खंडित होगा। सत्य संहारी, दिखावे के पंडित, अल्पायु जीवन, विद्याभ्यास-हीन, लोभी, क्रोधी, मोहग्रस्त, परस्पर मार डालने की चेष्टारत मनुष्य होंगे।

युग के अंत का समय जब आवेगा तब—

१. ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के आचरण शूद्रों के-से हो जायेंगे। वे तप और सत्य को छोड़ देंगे।

२. अन्त्यज जातियाँ अपने को क्षत्रिय बताकर उन्हीं का-सा व्यवहार करने पर उतारू होंगी (नंद वंश ने प्राय: यही तो किया था)।

३. सन के कपड़े और कोदों अन्न उत्तम वस्त्र और आहार समझे जायेंगे।

४. पुरुष स्त्रियों के भक्त होकर उन्हीं को अपना सब से बड़ा मित्र समझेंगे।

५. गायों का नाश हो जाने से बड़े-बड़े व्रतधारी भी बकरियों और भेड़ों का दूध पियेंगे। लोग मछलियाँ खाने में कुछ संकोच न करेंगे।

६. लोभ, ठगी, चोरी, हिंसा, जपतप-हीनता, नास्तिकता बढ़ेगी।

७. नदीतट पर कुदाल से खोदकर ओषधियाँ (अन्न) बोई जायेंगी, और उनमें भी फल कम होंगे।

८. श्राद्ध आदि पितृकर्म में लगे, पूजा-पाठरत लोग भी लोभ के वश दूसरे का धन छीनेंगे। पिता पुत्र के धन को, पुत्र पिता के धन को छीनेगा।

९. खाद्य अखाद्य का विचार नहीं होगा।

१०. ब्राह्मण आचार-विचारहीन वेद विद्वेषी होंगे और वृथा बहस में मोहित होकर, यज्ञ, होम आदि शुभ कर्मों पर श्रद्धा नहीं रक्खेंगे—नीच और हीन कामों को पसंद करेंगे और उन्हीं में उन्नति समझेंगे।

११. नीची जगहों में खेती, गाय और साल भर के बछड़े से बोझ ढोना, पिता पुत्र की परस्पर हत्या और परस्पर प्रशंसा आदि होंगे।

१२. सब लोगों के आचरण म्लेच्छों की तरह हो जायेंगे। कर्मकाण्ड, दान छोड़ेंगे। उत्सव आनन्द नहीं रहेंगे। दीन गरीब, इष्टमित्र, नातेदार, विधवा, अनाथ का धन हरेंगे।

१३. उस समय के पापी राजा लोग मूर्ख अपने को पण्डित मानने वाले होंगे (इस बात को तो भविष्य की आड़ में ही कहा जा सकता था)।

१४. लोककण्टक क्षत्रिय एक-दूसरे के गले पर छुरी चलावेंगे (गृहयुद्ध से घृणा) केवल दण्ड देंगे। रक्षा नहीं करेंगे।

१५. निर्दय राजा लोग सज्जनों को सतावेंगे, उनकी सम्पत्ति और स्त्रियों को छीनकर अपने काम में लावेंगे।

१६. न तो कोई किसी से विवाह के लिये कन्या माँगेगा, न कोई कन्यादान देगा।

१७. कन्याएँ आप मर्द ढूँढ लेंगी (यह परम्परा तो प्राचीन थी? परन्तु इस युग में स्त्री को यह स्वतंत्रता नहीं रही थी)।

१८. राजा प्रजा का धन हरेंगे (निरंकुशता)।

१९. दगा, सत्य की हत्या, जगत भर म्लेच्छ, कायर, झूँठे, शेखीखोर, अविश्वास, धर्मक्षय।

२०. खान-पान का भेदभाव न रहेगा।

२१. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों वर्ण मिटकर सब एक वर्ण अर्थात् शूद्र हो जायेंगे।

२२. सब अज्ञान के अँधेरे में रहेंगे। लोगों की आयु सोलह वर्ष से अधिक न होगी। सोलह वर्ष के बाद वृद्ध होकर लोग मरने लगेंगे। पांच या छ: वर्ष की बालिका बच्चे जनेगी। सात या आठ वर्ष का बालक बच्चों का बाप बन जायगा (भयानक वर्णन। डराने का प्रयत्न। अनीति की पराकाष्ठा)।

२३. अकाल होगा। स्त्री-पुरुष संबंध में असंतोष होगा। हिंसा, डाह बढ़ेगी। दान-पुण्य नहीं होगा।

२४. चौराहों पर कुलटाओं और धत्तों का जमाव रहेगा। स्त्रियाँ धन के लिये सतीत्व बेचेंगी।

२५. कलियुग के पिछले समय में लोग म्लेच्छाचारी, सर्वभक्षी और दारुण कर्म करने वाले होंगे।

२६. लोगों को सदा जीवन के लिये खटका लगा रहेगा।

२७. राजा धन के लिये ब्रह्महत्या करेंगे, ब्राह्मण लोग शूद्रों से सताये जाकर हाहाकार करते हुए इस पृथ्वी पर मारे-मारे फिरेंगे। उन्हें कोई रक्षा करने वाला नहीं मिलेगा।

२८. जब दया का अंत होगा तब कलियुग का अंत होगा और **ब्राह्मण आदि द्विजलोग डर के मारे नदियों, पर्वतों, भयंकर स्थानों में भागकर आश्रय लेंगे।**

२९. दस्यु लोग सतावेंगे और धर्मविरुद्ध आचरण करने वाले राजा लोग 'कर' के भार से पीड़ा पहुंचावेंगे।

३०. उस दारुण समय में, धैर्य को छोड़कर ब्राह्मण लोग काकवृत्ति का आश्रय लेंगे। अपना धर्म छोड़कर शूद्रों की सेवा करेंगे।

३१. शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे और ब्राह्मण उसे सुनेंगे, उनकी खुशामद करेंगे और उनकी बात को प्रमाण मानेंगे।

३२. लोग देवताओं की पूजा छोड़कर एडुकों की पूजा करेंगे (अर्थात् दीवारों की)।

३३. महर्षियों के आश्रमों में, ब्राह्मणों की बस्तियों में, देवस्थानों में, चैत्य और **नागों के भवनों में** हड्डी से चिह्नित स्थान देख पड़ेंगे। (नाग श्रेष्ठों में गिनाये गये हैं।)

३४. जब फूल पर फूल और फल पर फल पैदा होगा तब कलियुग का अंत होगा।

उस समय सर्वनाश होगा। प्रलय हो जायेगा। फिर रहने योग्य क्या होगा?

फिर क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्णों की स्थापना होगी। कालांतर में फिर दैव अनुकूल होगा, फिर सत्ययुग का आरंभ होने से लोगों का अभ्युदय होने लगेगा। (वनपर्व, १९०. ८५–८९)। यही एक आशा थी। कल्कि भगवान का अवतार होगा। वे ब्राह्मण वंश में

जन्मेंगे (वनपर्व १९१. १–१०)। वे ब्राह्मण क्षत्रिय धर्म स्थापित करेंगे। यज्ञ की दक्षिण म वे सब पृथ्वी ब्राह्मणों को दे देंगे (कितनी व्याकुलता थी!) तब–(व.प. १९०.१०–१५)।

१. ब्राह्मण जप-तप, यज्ञ धर्मरत छः कर्म करेंगे, संतोषी होंगे।

२. क्षत्रिय पराक्रमी, पृथ्वीपालक होंगे।

३. वैश्य श्रद्धा करेंगे।

४. शूद्र तीनों की सेवा करेंगे।

यह है हमारे युग-विभाजन की असलियत। मृत्यु, सर्वनाश की पृष्ठभूमि की भयानकता थी। वनपर्व २००. अ० में मार्कण्डेय ने कहा है––पुत्रहीन का, धर्मभ्रष्ट का, पराया अन्न खाने वाले का और देवता अतिथि बालक आदि को न देकर केवल अपने ही लिये अन्न पकाने वाले का जन्म वृथा है। अन्याय से प्राप्त धन का दान निष्फल है। पतित, चोर, मिथ्यावादी गुरु, पापी, कृतघ्न, ग्रामयाजक, वेद बेचने वाला, **शूद्र को यज्ञ कराने वाला** (यह भी होने लगा था?) अपने आचरण और विद्या से रहित, शूद्रजाति की स्त्री का पति (अब यह वर्जित हो गया?) इन ब्राह्मणों को दान देना व्यर्थ है। साँप को पकड़ने वाले, और नौकरी करने वाले तथा स्त्री को दान देना व्यर्थ है। **स्वर्गलोक जाने की इच्छा रखने वाले पुरुष को सभी अवस्थाओं में ब्राह्मणों को दान देना चाहिये।**

युधिष्ठिर ने कहा––हे तपोधन! ब्राह्मण लोग, चारों वर्णों का दान लेते हैं। फिर वे किस विशेषता के कारण औरों को तारते हैं और आप भी तरते हैं?

मार्कण्डेय ने कहा––ब्राह्मण लोग जप, मंत्रपाठ, हवन और स्वाध्यायपाठ करके **वेद की नाव बनाकर** उसके द्वारा अपना और दूसरों का उद्धार करते हैं। जो कोई ब्राह्मणों को संतुष्ट करता है उस पर सब देवता प्रसन्न होते हैं। **ब्राह्मणों के वचन से ही लोग स्वर्गलोक पा सकते हैं।** जिसका रंग काला हो, जिसके नख काले और खराब हों, जो कोई मायावी, कुण्ड और गोलक (पति के जीते रहने और मरने पर व्यभिचार से उत्पन्न) हो, **जो धनुष-बाण धारण करता हो** (क्षत्रिय वृत्ति से रहता हो) इन ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमंत्रण नहीं देना चाहिये। गूँगे, अंधे, बहरे ब्राह्मण वर्जित हैं, पर वेदज्ञान हो तो ठीक हैं। ब्राह्मण की जूठन उठाना गोदान से बढ़कर है। जो ब्राह्मण अपना उपकार न करे उसे अवश्य गाय देनी चाहिये। **एक ही ब्राह्मण को एक गाय देनी चाहिये।** ज़्यादा न दी जायें क्योंकि फिर बिकेंगी। **ह्मण को सोना देना चाहिये। धरती देनी चाहिये। अन्न देना चाहिये।**

युधिष्ठिर ने पूछा––मनुष्यलोक से यमलोक का मार्ग कितनी दूर है? कैसा है? कितना बड़ा है? कैसे वहाँ जाने से बचा जा सकता है।

मार्कण्डेय ने कहा––यमलोक भूलोक से ८६००० योजन है। वह आकाशमय, जलरहित, भयानक वन के तुल्य है। जो भी जो कुछ दान करता है, रास्ते में काम आता है। वहाँ अमृत की पुष्पोदका नदी है, पर पापियों को पीब भरी लगती है।

फिर ब्राह्मण को दान की अखंड महिमा गाई गई है। फिर मार्कण्डेय ने कहा है––

ब्राह्मण चाहे अच्छी तरह वेद जानते हों चाहे नहीं जानते हों, चाहे साधारण हो, चाहे संस्कारों से सुसंस्कृत हों उनका अपमान कभी न करना चाहिये। वे राख से ढकी हुई अग्नि के समान हैं।

वन में तप ही तप नहीं है। शरीर को कष्ट, निराहार रहना, पोषणीय परिवार का पालन न करना, व्यर्थ है (उस समय ऐसे संप्रदाय चल पड़े थे। ऐसे अनेक तपस्वी महावीर को मिले थे) ऐसे साधु थे :

१. कन्द मूल फल या वायु आहारी
२. मौनी
३. मुण्डी
४. घर-द्वार छोड़ने वाले
५. जटाधारी
६. खुले मैदान में पड़े रहने वाले
७. नित्योपासक
८. पन्चाग्नि तापने वाले
९. पानी के भीतर रहने वाले
१०. पृथ्वी पर सोने वाले

फिर वनपर्व २००. २०–२९ म अमावस्या, पीपल की छाया, नदी की उल्टी धारा, इत्यादि मीन की संक्रान्ति में दान का फल मिलता है। ग्रहण में दान दो।

इस जन्म में जो-जो पदार्थ ब्राह्मण को दिये जाते हैं, उस जन्म में वे ही पदार्थ भोग के लिये मिलते हैं। सोना अग्नि का पुत्र है, पृथ्वी विष्णु की कन्या है, और गाय सूर्य्य की बेटी है। इसलिये जो कोई इन तीनों का दान करता है उसे त्रिभुवन के दान का फल मिलता है। दान से ही सबका भला होता है। इसी से दान सब कर्मों में प्रधान है।

इतिहास के इस युग में निम्नलिखित योग संप्रदायों का प्रारंभ हुआ :—

१. सांख्य (भीष्म पर्व २६ अ०)
२. कर्मयोग (२७ अ०)
३. ज्ञानयोग (२८ अ०)
४. कर्म संन्यास योग (२९ अ०)
५. आत्मसंयम योग (३० अ०)
६. विज्ञान योग (३१ अ०)
७. महापुरुष योग (३२ अ०)
८. राजगुह्य योग (३३ अ०)
९. विभूति योग (३४ अ०)
१०. भक्ति योग (३६ अ०)

११. क्षेत्रक्षेत्रज्ञ योग (३७ अ०)
१२. त्रिगुण विभाग योग (३८ अ०)
१३. पुरुषोत्तम योग (३९ अ०)
१४. श्रद्धात्रय विभाग योग (४१ अ०)
१५. संन्यास योग (४२ अ०)

इन योगों के जो वर्णन दिये गये हैं वे परवर्त्ती काल के मंजे हुए रूप हैं। जिज्ञासु को विस्तार से देखना आवश्यक है।

इन सब योगों ने ब्राह्मण धर्म का विरोध नहीं किया। यह तत्कालीन संशयों के छोटे-छोटे विभेदमात्र थे। केवल सांख्य ने ईश्वर को सिद्ध और असिद्ध दोनों ही स्वीकार कर लिया। सांख्य ने जो रास्ता खोला वही आगे चलकर नये रूप लाया।

सांख्य का प्रवर्त्तक कपिल स्वयं क्षत्रिय था। प्रश्न था कि जीवन क्या है? ब्राह्मण को तो जन्म सार्थक था। किन्तु अन्य जातियाँ क्यों जीवित थीं? यहाँ गीता को देखना आवश्यक है। गीता ईसा से ५०० वर्ष पूर्व भी महत्त्वपूर्ण थी। यह ठीक है जो रूप उसका आज है वह परवर्त्ती प्रभाव भी अपने में लिये है।

गीता का उपदेश युद्धभूमि में दिया गया था। युद्धभूमि में इतना लंबा उपदेश दिया गया हो यह कुछ ठीक नहीं लगता। इतना स्पष्ट है कि युद्ध के पहले जो दार्शनिकता आवश्यक थी, नई परिस्थितियों में वह कृष्ण ने ही उपस्थित की। यह एक नया दर्शन था।

गीता का पहला उपदेश है कि राष्ट्र और धर्म व्यक्ति के सम्बन्धों से बड़े हैं। यह विचारधारा सगोत्र जीवन के छोटे बंधनों में सीमित रह सकने वाले युग के बाद की आवश्यकता थी। जातीय राष्ट्रों के परे बड़े राष्ट्र की स्थापना के लिये एक नये दर्शन की आवश्यकता थी। गीता में गणवाद का वह रूप है जो ब्राह्मणवाद का समर्थक होकर भी, अनेक नई सहूलियतें देकर, नये राजतंत्र का उदय प्रारंभ करता है। छोटे-छोटे राज्यों का परस्पर युद्ध इतना घृणित हो चुका था कि अर्जुन स्वयं चौंक गया। अब इतने बड़े पैमाने पर रक्त बहाना होगा? और वह भी :—

तत्रापश्यस्त्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान
आचार्य्यान मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि (१.२६.)

पिता के भाई, पितामह, आचार्य्य, मामा, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, ससुरों तथा सुहृदों को ही मारना होगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि पाण्डव आर्य जाति को नष्ट नहीं करना चाहते थे। राज्य को व्यक्ति से ऊपर उठाने का श्रेय कृष्ण को है। कृष्ण ने जातियों के भेद पर राष्ट्र नहीं रखा बल्कि 'राज्य' को 'दैवी' बनाने का यह प्रथम प्रयास था।

अर्जुन ने कहा :—

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे (१.३१.)

कुल को मारकर मुझे कल्याण नहीं दीखता।

तभी—१.३२-३५—

न कांक्षे विजयं कृष्ण
न च राज्यं सुखानि च
किं नो राज्येन गोविंद
किं भोगैर्जीवितेन वा।
येसामर्थे कांक्षितं नो
राज्यं भोगाः सुखानि च
त इमेऽवस्थिता युद्धे
प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।
आचार्याः पितरः पुत्रास्-
तथैव च पितामहाः
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः
श्यालाः संबन्धिनस्तथा
एतान्त हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि
मधुसूदन
अपि त्रैलोक्य राज्यस्य
हेतोः किं नु महीकृते।

जो भोग मिलने हैं वे तो युद्ध में आते ही त्यागकर छोड़े हैं। फिर संबंधियों को मार कर? त्रैलोक्य का राज्य मिले मुझे तब भी इनको मारना स्वीकृत नहीं है।

कुल विचार इस युग तक बहुत ही बड़ा था। अब कृष्ण ने इसे तोड़ा। अर्जुन ने कहा:—

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम्—धर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते **वर्णसंकरः** ॥४१॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥

कुलनाश से सनातन धर्म नष्ट होता है। फिर स्त्री दूषित होती हैं और वर्णसंकर पैदा होते हैं (आर्यों को भय) इससे जाति नष्ट हो जाती है।

कृष्ण ने इसे कायरता कहा। अर्जुन ने कहा (२६) कि इस दुनिया के भोग के लिये इतने पाप करूँ ? कृष्ण ने आत्मा का उपदेश तो बाद में दिया, पहले इस विचार को ही नापसंद किया कि इस दुनिया का क्या होगा ?

कृष्ण ने कहा सब मरते हैं। पण्डित लोग मरे हुए का शोक नहीं करते (२. ११.) क्योंकि :—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम ।२.१२।

आत्मा नित्य है। अतः शोक न कर। जब सब ही सदैव थे तो यह मत सोच कि तू नहीं था, या नहीं होगा।

यहाँ आत्मा की अमरता ने जीवन की क्षणभंगुरता को पुल बनकर पाट दिया। आत्मा को अस्वीकार करके भी बुद्ध इस शाश्वतवाद को दूसरे रूप में धारा कहकर रहे। वे इसे तोड़ नहीं पाये।

सुख-दुःख समान हैं (२. १५)

आत्मा न मरता है, न मारता है।
न जायते म्रियते वा कदाचि—
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे (२.२०)

आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है। यह अज, अविनाशी है। और इसके बाद वह पंक्तियाँ हैं जिन्होंने आज तक भारत पर अखंड शासन किया है। पुराने कपड़ों के समान देह हैं। नई मिल जाती हैं। न यह कटती है। न जलती है। आत्मा अच्छेद्य है।

भीष्म आदि के तन का शोक न कर (२. २८) क्योंकि जन्म और मृत्यु के व्यवधान के पहले और बाद यह अशरीरी ही थे और होंगे।

यह विचार ज़बर्दस्त है। आत्मा अबध्य है। अतः शोक मत कर (२. ३०)।

धर्मयुद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिये कर्म नहीं है। यहाँ द्वन्द्व रह गया। धर्म और अधर्म की संज्ञा की सार्थकता में एक अजर धारा है फिर कर्म की सार्थकता का आधार क्या है ? आगे उत्तर है।

मरकर स्वर्ग पायेगा। जीतकर पृथ्वी। आध्यात्म और भौतिक सुख बराबर के होकर तुला पर टंगे हुए हैं।

हे अर्जुन ! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है। इसलिये कोई महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति समझता है, और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्य की भाँति इसके तत्त्व को कहता है और दूसरा कोई इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति सुनता है। और कोई-कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता।

उपनिषदों पर दृष्टिपात करते समय इस ब्रह्म की अद्भुत शक्ति और महानता पर हम विचार करेंगे। यह आदर्शवाद कितना विस्मय करने का सुयोग देता है, क्योंकि इसमें कितनी उड़ान है, कितने चिंतन का परिचय इसके पीछे है कि तभी से इसे पूर्ण कहा गया है। परंतु परवर्त्ती काल में वल्लभाचार्य तक बराबर उस पूर्णता के नये-नये रूप हमारे सामने आते गये।

किन्तु अर्जुन को स्वीकार करने में हिचकते देखकर कृष्ण ने उससे कहा : तुझे धरती और स्वर्ग दोनों मिल रहे हैं, पर अगर न स्वर्ग चाहिये, न धरती, तब सुख-दुःख को समान मानकर युद्ध कर। यही निष्काम कर्म है। क्योंकि :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफल हेतुर्भूर्माते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि

कर्म करना तेरा अधिकार है। फल की चिंता मत कर।

ऊपर इस कर्म का फल कितना ठोस है यह हम देख चुके हैं। यह भी एक विरोध है कि यों नहीं, तो यों ही लड़।

कृपणाः फलहेतवः (२. ४९)

फल की आशा करके काम करने वाले अत्यंत तुच्छ हैं। कामना त्याग देने वाला पुरुष स्थिरबुद्धि है। स्थितप्रज्ञ है। इन्द्रिय वश करना ही श्रेष्ठ है। स्थितप्रज्ञ समुद्र की भाँति होता है।

अर्जुन ने पूछा कि जब ज्ञान कर्म से श्रेष्ठ है तो मैं कर्म क्यों करूँ ? (३. १.)

कृष्ण ने कहा : कर्म तो कर। उसके बिना फिर संसार में है ही क्या। क्योंकि प्रजापति ने सृष्टि करके यज्ञ दिया।

यज्ञ से देवताओं की उन्नति हुई। यज्ञान्न से पाप छूटते हैं। अन्न से प्राणि उत्पन्न होते हैं। अन्न वृष्टि से, वृष्टि यज्ञ से, यज्ञ कर्म से, और कर्म वेद से, और वेद परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। ब्रह्म यज्ञ में होता है।

(३. २०) में जनक का उल्लेख है। यह गीता में परवर्त्ती है। या संभव है मिथिला में पुराने समय के जनकों में भी ऐसी विचारधारा प्रारंभ हो चुकी थी क्योंकि पूर्व देश में अनार्य प्रभाव ने पहले से ही महत्त्व रखा था।

तीनों लोकों में कुछ भी मुझे कर्त्तव्य नहीं है, पर मैं कर्म में ही बीतता हूँ (३. २२)।

कर्म बिना सब नाश हो जायगा। वर्णसंकर होंगे। 'मैं करता हूँ' यह मत कह। सभी प्राणी प्रवृत्तिवश कार्य्य करते हैं।

अर्जुन ने पूछा—फिर मनुष्य दूसरे द्वारा चलाया जाकर भी पाप क्यों करता है ?

कृष्ण ने कहा—वह गुण भेद के कारण। ४. १३ में चातुर्वर्ण्य इसलिये रचे गये हैं कि उनसे 'स्पृहा' नहीं थी। उनके कर्त्ता को कोई इच्छा न थी। वह तो बस रच दिये। इतने अन्याय से क्यों रचा गया। इसका कोई उत्तर नहीं।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम ।

वह कर जो पूवज कर गये हैं।

जय विजय को तो सम कर दे, पर जय के लिये युद्ध कर।

यह एक अद्भुत बात थी। मैं जीता तो ठीक है। हारा तो कोई बात नहीं। क्षत्रिय को इस अंधबुद्धि की ही आवश्यकता थी। यही शास्त्रधारा राज्य और दंड को दृढ़ कर सकती थी। तभी अनेक धर्म एक से माने गये—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहं। (७.२१)

जो जिस देवता को पूजता है मैं उसकी श्रद्धा उसी देवता में धरता हूँ।

वस्तुतः यह एक बड़ी प्रगति भी थी। धार्मिक और जातीय युद्ध इससे हटा। तभी महाभारत के बाद आर्य और अनार्य भेद लुप्त होने लगा।

वीतराग। यही संन्यास, बौद्ध, जैन सबका ध्येय रहा। उसी का एक रूप गीता भी थी। परवर्त्ती काल में कर्मभेद भी हो गया। यहाँ उसको नहीं देखेंगे।

(१०. १९) से आत्मा, विष्णु, आदित्य, सूर्य्य, नक्षत्र, चंद्रमा, वेद, इन्द्र, मन, रुद्र, वसु, कुबेर, बृहस्पति, भृगु, हिमालय इत्यादि (३१ तक) को 'मैं' कहकर एक परम्परा जोड़ दी गई। यह सर्वात्मरूप भूत कितना ग्राह्य था।

हम यहाँ गीता की महानता को नहीं गिरा रहे। केवल उसके सामाजिक पक्ष को उस परिस्थिति को देख रहे हैं, जिसने आगे के समाज और इतिहास पर प्रभाव डाला। गीता के ज्ञान का प्रभाव अखंड रहा और उसने बहुत प्रभावित भी किया। किन्तु गीता के चिंतन से परवर्त्ती चिंतन, समाज, वर्ण-व्यवस्था, राज्य और संपत्ति पर जो प्रभाव पड़ा वही हमने दिखाया है।

इस समय भी समाज को नया रूप देने की कोशिश की गई है। पहले यज्ञ का ब्रह्म, वेद के पुरुषसूक्त में विराटरूप पा गया। अब उसी का नया रूप कितना विस्तृत है। यही मार्कण्डेय ने भी अनेक स्थानों पर वर्णित किया है। ११वें अ० में अर्जुन को कृष्ण ने दिव्य चक्षु देकर वह रूप दिखाया है। इस रूप में सब जगत थे। सब कुछ था। ब्रह्मा, विष्णु, महेश थे। ऋषि, सर्प, सूर्य्य, चंद्र, रुद्र, वसु, यक्षराक्षस, सभी थे।

उस रूप ने कहा—मैं काल हूँ। हे अर्जुन! मैं शत्रु को मार चुका हूँ। तू मारकर निमित्त हो जा।

निमित्त मात्रं भव सव्यसाचिन्। ११. ३३.

न इच्छा कर, न पूर्वजों के कर्म छोड़, फल की चिंता मत कर, अपने को कुछ मत समझ, यह अहंकार छोड़ कि मैं करता हूँ। बस किये जा। यह है एक पक्ष। यह है वर्णाश्रम को रखने का प्रयत्न।

जन्म-मृत्यु कुछ नहीं। शत्रु को मार। धरती जीत, बिना कर्म के कुछ नहीं है। अतः

कर्म कर। पर निष्काम। स्थितप्रज्ञ हो। यह है दूसरा पक्ष। यह है क्षत्रिय की हिंसा को न्याय्य बनाने वाली बात।

भक्ति कर। इस संसार का आदि-अंत नहीं है। परमात्मा ही सब कुछ है। वह ईश्वर मैं हूँ। यह है तीसरा पक्ष। सब धर्मों में एका, अनार्य आर्य भेद मिटाने वाली बात।

और मैं धर्मस्थापना करता हूँ। मैं बार-बार जन्म लेकर दुष्टों का दलन करता हूँ। यह है चौथा पक्ष। यह है ईश्वर और राज्यदण्ड का एकीकरण उसे दैवी करने वाली बात।

नित्य कर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। यह तामस त्याग है। यह है सामाजिक परम्परा को स्थापित रखने वाला पांचवाँ पक्ष।

हे अर्जुन! शरीर रूप यन्त्र में चढ़े हुए संपूर्ण प्राणियों को, परमेश्वर भ्रमाता हुआ उनके कर्मों के अनुसार, सबमें स्थित है। (१८. ६१.)

अतः उसी की शरण जा। परंतु कृष्ण का इतना उपदेश भी अर्जुन को निःसंशय न कर सका। तब उसे चुप देखकर कृष्ण ने कहा :

'तू (परमात्मा) मुझ में, मेरी भक्ति कर, मुझे नमस्कार कर। तू मुझको प्राप्त होगा, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है, क्योंकि तू मेरा प्रिय है।' (१८. ६५)।

यहाँ दर्शन की कितनी निर्बलता है। पहले बुद्धि की दुहाई दी गई थी। यहाँ दोस्ती निभाने की बात आ गई।

सब धर्म छोड़कर एक मेरी शरण में आ। मैं तुझे सब पापों से छुड़ाकर मोक्ष दूँगा।

गीता के अक्षर ब्रह्म की महानता एक ओर, और दूसरी ओर यह ढील, यही तो कृष्ण के चरित्र का द्वन्द्व है जो समाज को आगे बढ़ा ले गया।। कृष्ण ने जो चाहा था वह तो नहीं हुआ। क्षत्रिय ही अधिक वीतराग हुए। पहले तो वीतराग बनाया, फिर अपनी शक्ति देकर युद्ध कराया, परवर्त्ती काल में जब राज्यदंड बढ़ा, आर्य अनार्य मिले तब वर्णसंकर बढ़े? एक पूर्णब्रह्म आकाश में टंगा रहा परंतु ब्राह्मण खतरे में पड़ गया। क्योंकि लोग सनातन वर्णों को तोड़ रहे थे। यह था परिणाम गण-व्यवस्था के फिर उठने का। वे ही गण जिन्हें ब्राह्मणों ने यादवों में नष्ट कर दिया था और जिनको कृष्ण रोकने में असमर्थ जंगल में मारे गये थे।

जिस समय पतिव्रता ने कौशिक को पशुहत्या करने वाले धर्मव्याध के पास भेजा, उस समय कौशिक मिथिलापुरी गये (वनपर्व २०७ अ०)। व्याध मांस बेचना छोड़कर आया और उन्हें घर ले गया। आसन, पाद्य, अर्घ्य दिया।

व्याध ने कहा : यह मेरे पुरखों का काम है। विधाता ने यही काम दिया है। यही मेरा धर्म है। (इस प्रकार पैतृक धर्म ही वर्ण का आधार बनने लगा।)

हे ब्राह्मण! महाराज जनक के राज्य में सब अपने वर्ण का काम करते हैं (जनक के अध्यात्म का बाह्य रूप यहाँ है)।

१. वर्णाश्रम कठोरता से निबाहा जाये ।

२. राजा के जासूस लगे रहें ।

३. राज्य और दण्ड में ढील न हो ।

धर्मव्याध हत्या नहीं करता, मांस नहीं खाता । औरों का मारा हुआ पशु बेचता है। ऋतुकाल में स्त्रीगमन करता है। प्राणियों की हिंसा में तत्पर पुरुष भी धर्मात्मा हो सकता है।

१. कुछ लोग ज्ञान मार्ग का आश्रय लेकर नास्तिक, लोकमर्यादा को तोड़ने वाले, क्रूर और पापबुद्धि वाले होते हैं।

२. शरीर नदी है। इसमें लोभ मोह जैसे मगरमच्छ होते हैं।

३. परम्परा को नहीं छोड़ना चाहिये।

४. अहिंसा परमधर्म है। उसकी स्थिति सत्य में है। सब प्रवृत्तियाँ सत्य का आश्रय लेकर अपना-अपना काम करती हैं। शिष्टाचारयुक्त सत्य का ही बड़ा गौरव है। सज्जनों का आचार ही धर्म है, आचार ही सज्जनों का लक्षण है।

५. विधाता ने जिसकी जब मौत लिख दी है तभी घातक उसे मारता है और उसका मांस मैं बेचता हूँ ।

६. श्रुति में लिखा है कि औषधि, लता, पशु और मृग ये सब अन्न के समान मनुष्य का आहार हैं।

अ. मांस देवता को दिया जाता है।

आ. शिवि ने मांस दिया था ।

इ. रन्तिदेव की पाकशाला में नित्य दो हज़ार पशुओं की हत्या होती थी।

ई. ब्राह्मण के मारे पशु मंत्रबल से स्वर्ग जाते हैं।

उ. अग्नि मांसाहारी है।

ऊ. चातुर्मास्य में नित्य पशुहत्या होती है।

७. पहले के कर्मों का फल समझकर काम करना चाहिये। जो कुल म होता आया है उसे नहीं छोड़ना चाहिये ।

८. खेती में पशु कीट मर जाते हैं। वृक्ष, अन्न, पौधे काटे जाते हैं। मछली मछली को खा जाती है। जगत के सब प्राणी एक दूसरे को खाने को तैयार रहते हैं।

९. हिंसा से कौन बचा है ।

कौशिक ने कहा : जीव क्यों नित्य है ?

व्याध ने कहा : देह का नाश जीव का नाश नहीं है। तभी पुनर्जन्म होता है।

वनपर्व ३१२वें अ० में यक्ष न पूछा : कुल, चरित्र, स्वाध्याय और श्रुत आदि में कौनसी बात ब्राह्मणत्व का कारण है ?

युधिष्ठिर ने कहा—(१०६–१११) कुल, स्वाध्याय या श्रुत के ऊपर ब्राह्मणत्व

निर्भर नहीं है। चरित्र ही ब्राह्मणत्व का कारण है। दुराचारी ब्राह्मण चारों वेद पढ़कर भी शूद्र से गयाबीता है। जो मन को मारकर अग्निहोत्र आदि अपने कर्म करता है वही ब्राह्मण है।

फिर कहा : तर्क की कोई स्थिरता नहीं है, श्रुतियाँ भी अलग-अलग हैं। मुनि भी एक नहीं हैं। धर्म का तत्त्व गूढ़ है। राह वही है जिस पर बड़े लोग और महापुरुष चले हैं। जो भूत-भविष्य, सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय को समान समझता है वही सबसे बढ़कर धनी है।

इस समय यक्ष धर्म का प्रतीक हो चुका था (वनपर्व ३१४ अ. १–१०)।

उद्योगपर्व २८वें अ० में युधिष्ठिर ने सञ्जय से कहा है : कुछ लोगों में अधर्म धर्म लगत है। कुछ में धर्म अधर्म लगता है। जैसे दत्तात्रेय आदि योगी रागद्वेष से शून्य और योगधर्म का आचरण करके भी पागल दीख पड़ते हैं।

[दत्तात्रेय बुद्ध से पूर्व के योगी हैं। परवर्ती योगी संप्रदाय में इनका बहुत प्रभाव रहा। यह संप्रदाय भी क्षत्रियों में स्वीकृत हुआ। हैहयों के गुरु दत्तात्रेय का कई जगह उल्लेख हुआ है। दत्तात्रेय में अनार्य प्रभाव काफी दीख पड़ता है]।

इतने विचारों का समागम होना भी नितांत स्वाभाविक ही था, क्योंकि उस समय इतनी असंख्य जातियाँ उठ खड़ी हुई थीं। यहाँ जनपद जातियों के आधार पर दिखाये गये हैं। राज्य के केन्द्र के आधार पर नहीं क्योंकि राज्य तो घटते-बढ़ते रहे हैं। जातियाँ भी बनती मिटती रही हैं, पर उनके ऊपर अधिक ठोस आधार बनता है।

९. अ० भीष्मपर्व में भारतवर्ष की आर्य, म्लेच्छ और संकर जातियों का वर्णन है, जनपद और देश उस समय यह थे :

कुरुपाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय-जाङ्गल, शूरसेन, पुलिंद, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्तिकोशल, चेदि, मत्स्य, करुष, भोज, सिंधु पुलिंद, उत्तम, दशार्ण, मेकल, उत्कल, पाञ्चाल, कोशल, नैकपृष्ठ, धुरन्धर, गोध, मद्रकलिङ्ग, काशि, अपर काशि, जठर, कुक्कुर, दशार्ण कुक्कुर, कुन्ति, अवन्ति, अपर कुन्ति, गोमन्त, मन्दक, सण्ड, विदर्भ, रूपवाहिक, अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाद्य, मल्लराष्ट्र, वारवास्य, अयवाह, चक्र, चक्राति, (शक ?), विदेह, मगध, स्वक्ष, मलज, विजय, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यकृल्लोम, मल्ल, सुदेष्ठा, प्रह्लाद, माहिक, शशिक, वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पंचाल, चर्म मण्डल, अटवीशिखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, स्वराष्ट्र, केकय, कुन्दापरान्त, माहेय, कक्ष, सामुद्रनिष्कुट, अन्ध्र, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, अङ्गमलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर, प्रावृषेय, भार्गव, पुण्ड्र, भर्ग, किरात, सुदृष्ट, यामुन, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैर्ऋत्य, दुर्गाल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, कोशल, तीरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कन्यकागुण, तिलभार, मसीर, मधुमन्त, सुकंदक, काश्मीर, सिन्धु सौवीर, गान्धार, दर्शक, अभीसार, उलूत, शैवाल, व्यल्हीक, दार्वी, वानव, दर्व, वातज, आमरथ, उरग, बहुवाद्य, सुदाम, सुमल्लिक, वध्र, करीषक, कुलिन्द, उपत्यक,

वनायु, पार्श्वरोम, कुशबिन्दु, दश, कच्छ, गोपालकक्ष, जाङ्गल, कुरुवर्णक, किरात, वर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, उड्र, म्लेच्छ, सैसिरिध्र, पार्वतीय इत्यादि ।

दक्षिण के जनपद :

द्रविड, केरल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, माहिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन, कौकुट्टक, चोल, कोंकण, मालव, समङ्ग, करक, कुक्कुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सवसंकेत, त्रिगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकबक, प्रोष्ठ, समवेगवश, विन्ध्यचुलिक, पुलिंद, वल्कल, मालव, बल्लव, अपर बल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, तनवाल, सनीप, घट, संजय, आणिद, पाशिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदभ, काक, तङ्गण, अपरतङ्गण, उत्तर म्लेच्छ, अपर म्लेच्छ, यवन, (पाणिनि से पहले भी उत्तर में आ गये थे, जो बाद में सिकन्दर को मिले थे) चीन, काम्बोज, दारुण, सकृद्-ग्रह, कुलत्थ, (हूण), पारसीक, रमण-चीन, दशमालिक, क्षत्रियों के सीमान्त पर उपनिवेश, वैश्यों और शूद्रों के जनपद, शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पत्रि, खाशीर, अन्तचार, पंहलव, गिरिगहवर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषिक, कलिङ्ग, किरात, तोमर हन्यमान, करभञ्जक इत्यादि ।

राजा लोग इसी धरती के लिये कुत्तों की तरह झगड़ते हैं ।

भीष्मपर्व १२वें अ० ४०–५२ तक राहुग्रह का वर्णन है जिसमें राहु चंद्रमा और सूर्य्य से बड़ा है । तभी ग्रहण होता है ।

पद्मपुराण में सृष्टि खण्ड में प्रकट होता है कि पुरानी परम्परा की बातें कैसे बदल रही थीं ।

(देखिये पृष्ठ ३६३ पर)

आगे लक्ष्मी जन्म, समुद्र मंथन, अमृत प्राप्ति, सती दक्ष कथा, देवता, दानव, गंधर्व, नाग, राक्षस, मरुद्गण, भिन्न-भिन्न राजागण, १४ मन्वन्तर, पृथु, सूर्य्य वंश ,चंद्रवंश, यदुवंश, कृष्णावतार आदि का वर्णन है ।

सृष्टि का जो क्रम महाभारत में मिला था वह अपनी ऐतिहासिकता, जैसे-जैसे समय बीतता गया, बिलकुल खो चला । केवल उसकी छाया-सी बची रह गई । उसी को दुहरा-दुहरा कर लिखा गया ।

हमारे हिसाब में ६० संवत्सर गिने जाते हैं । एक बार ६०, दोबार के ६०, इसी प्रकार कितने ही ६० व्यतीत हो जाने पर उनकी गिनती किस प्रकार रखी जा सकती थी । अतः वहाँ भूल पड़ गई और क्रम खो गया ।

धन से ही जो सब काम होने लगे उसका समाज पर यह प्रभाव पड़ा कि धन के लिये दौड़ होने लगी । अर्थ का जीवन में एक मुख्य स्थान हो गया ।

दरिद्रता से बढ़कर बुराई कोई नहीं रही ।

(शांतिपर्व ८. १२. ३०) संसार में दरिद्रता से बढ़कर कोई दोष नहीं । दरिद्र पर

यह धर्म की संतान हुई [यहां ऐतिहासिकता नहीं रूपक रचा गया है]
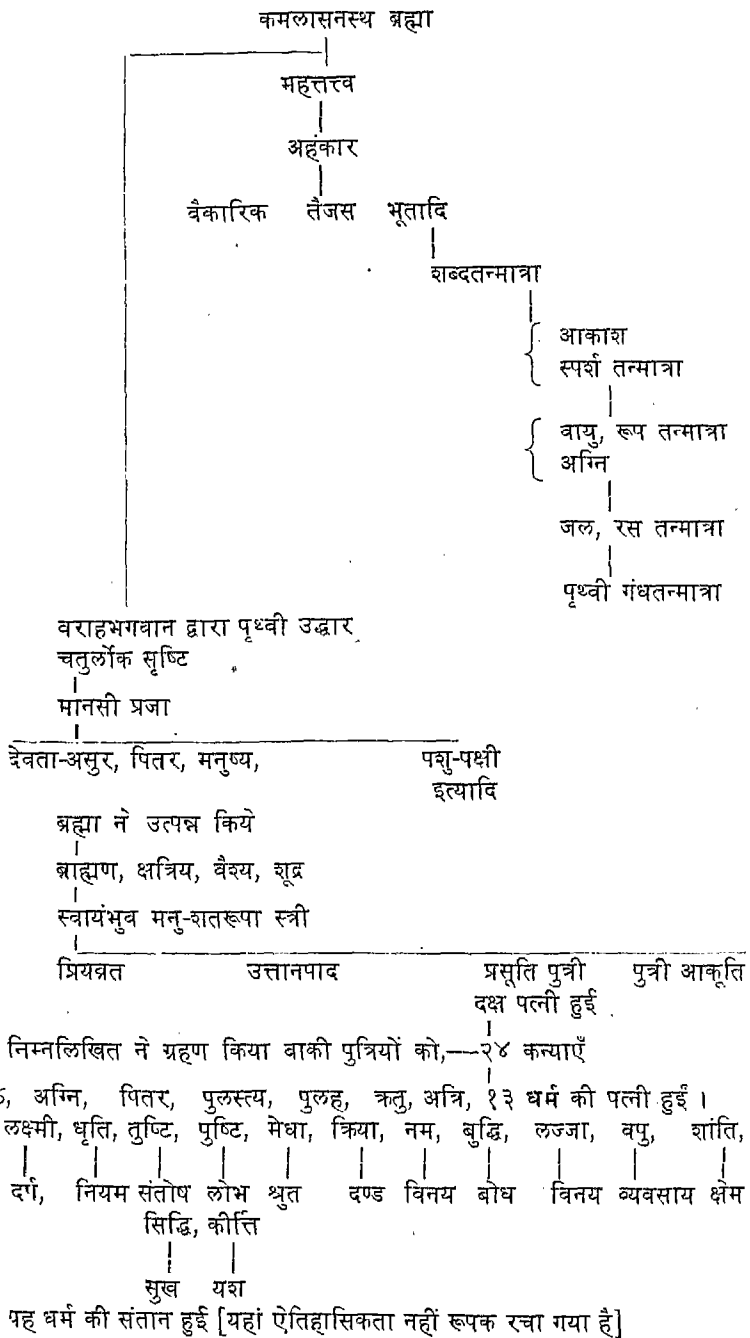
झूठमूठ दोष लगाये जाते हैं। दरिद्र पतित की तरह दुखी रहता है। संसार में दरिद्र और पतित के बीच कोई भेद नहीं है। जिस तरह पहाड़ से नदियाँ निकलती हैं उसी तरह संसार के सब काम प्रचुर धन से सिद्ध होते हैं। **धन से धर्म, काम और स्वर्ग मिलता है।** धन के बिना मनुष्य का निर्वाह होना कठिन है। संसार में जिसके पास धन है उसी के मित्र और भाई-बंधु होते हैं। वही बड़ा आदमी और पंडित कहलाता है। निर्धन मनुष्य धन पैदा करने में समर्थ नहीं होता। जिस तरह हाथियों के द्वारा हाथी मिलते हैं उसी तरह धन से ही धन मिलता है। **धन से ही** धर्म, काम, मोक्ष, हर्ष, क्रोध, शान्ति है। शास्त्र ज्ञाता कहते हैं धन से कुल और धर्म की बढ़ती होती है। निर्धन मनुष्य न इस लोक में सुखी रहता है और न परलोक में। संसार में जो शरीर से दुर्बल है वह दुर्बल नहीं, वास्तव में दुर्बल तो वह है जिसके धन-दौलत, गाय, घोड़ा और नौकर-चाकर नहीं हैं तथा जो अतिथि की सेवा नहीं कर सकता।

दैत्य लोग देवताओं के सजातीय हैं किन्तु देवता उनको मार कर राज्य करते हैं। दूसरों को जीत कर उनका धन छीने बिना धर्म-कर्म कैसे हो सकता है? वेद में कहा है कि तीनों वेदों का पढ़ना, विद्वान होना और धन का हरण करके यज्ञ करना चाहिये। देवता भी द्रोह करके स्वर्ग का राज्य करते हैं और अपने जाति वालों को मारकर आनंद करते हैं। पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना उत्तम काम है। **दूसरों** का अपकार किये बिना धन-संग्रह करते मैंने किसी को नहीं देखा। इसी से जैसे राजा दूसरों को जीतकर राज्य करते हैं और पुत्र पिता के धन का अधिकारी होता है वैसे ही हम लोग इस पृथ्वी को जीत कर अधिकारी हुए हैं।

राज्य की विचारधारा को स्थिर करने में अभी कितने ही संशय उठ रहे थे। ब्राह्मण ने क्षत्रिय का काम हिंसा कहा। यह आगे देखने को मिलेगा कि क्षत्रियों ने इसको विरोध किया और अहिंसा के गीत गाने लगे। परंतु ब्राह्मण ने ठीक बात कही थी क्योंकि वही राज्य करने वालों के हाथ में एक ठोस शक्ति बनी रही।

संन्यास का प्रभाव बढ़ रहा था। जैसे-जैसे समाज में चातुर्वर्ण्य उखड़ रहा था, यह बढ़ रहा था।

शांतिपर्व ९. युधिष्ठिर ने जो वैराग्य का रूप दिखाया है उसमें निम्नलिखित संन्यास के रूप दिखते हैं :—

१. वन गमन, ग्राम्य सुख त्याग।

२. मिताहार, मृगछाला वल्कल ओढ़ना, जटाधारण करना। प्रातः-सायं-संध्या हवन करना।

३. भूख, प्यास, परिश्रम, सरदी, गरमी, हवा का दुःख सहकर घोर तप करके शरीर सुखाना।

४. वानप्रस्थ मुनि ।

५. कच्चे-पक्के फल वन में खाना।

६. सिर मुंडाकर, भीख मांगते हुए अकेला एक वृक्ष के नीचे एक दिन से अधिक न ठहरकर मौन भाव से जीवन बिताना।

७. भस्म लगाकर वृक्षों के नीचे रहना।

८. इन्द्रियवश करके, वीतशोक, बिना पूछे किसी एक मार्ग पर, दिशा देश लक्ष्य छोड़कर, पीछे कभी मुड़े बिना, निरपेक्ष गमन। क्रम से भीख सात घरों में मांगना। कहीं कुछ न मिले तो भूखा रहना। भिक्षा में समदर्शिता रखना।

९. न जीने-मरने की इच्छा, न हर्ष या विरोध ही करना। कोई एक हाथ काटे, दूसरे हाथ में चंदन लगावे, तब भी बुरा-भला न कहना।

१०. कार्य में अलिप्त, इन्द्रिय कर्म त्याग करना।

११. विषय वासना, पापकर्म से दूर, मोह जाल त्याग, वायु की तरह किसी के वश में नहीं रहना।

१२. बिघसाशी=महायज्ञ का बचा हुआ अन्न खाने वाले। और भी=सूखी घास, पत्ते और फल खाने वाले, (शां० प० ११. ३—५)।

किन्तु यह सब संप्रदाय या रीतियाँ क्षत्रिय के लिये वेद-विरुद्ध थीं। उसका काम युद्ध ही था। परंतु वास्तविकता में क्षत्रिय पीछे नहीं रहा। जो ब्राह्मण का काम था उसने उसे करना चाहा। तभी (शां० प० १०. २०—२८) वन के मृगों, शूकरों और पक्षियों को, स्वर्ग नहीं मिला। न पर्वत और वृक्षों को ही त्याग से। वे नित्य संन्यासी, त्यागमय, किसी को कष्ट न देने वाले, सदा ब्रह्मचारी हैं। न किसी से वे दान ही लेते हैं। संसार में अपने भाग्य से ही सिद्धि मिलती है। कर्महीन मनष्य कभी सिद्धि नहीं पा सकता।

ब्राह्मण नें अकर्मण्यता कहकर उन समस्त संप्रदायों की जड़ काटने का प्रयत्न किया जो अति की ओर खींच कर ले जा रहे थे। क्योंकि उन संप्रदायों का कोई सामाजिक रूप नहीं था।

इस समय राजदण्ड की महत्ता कितनी हो गई थी, यह हमें बहुत ही स्पष्ट दिखाई देता है।

धन के बाद दण्ड का महत्त्व था।

(शांतिपर्व १५.) प्रजा का शासन और उसकी रक्षा दण्ड ही करता है। सोते हुओं में दण्ड जागता है। पण्डितों नें दण्ड को धर्म बतलाया है। धर्म, अर्थ और काम की रक्षा दण्ड ही करता है, तभी उसका नाम त्रिवर्ग है। दण्ड धन-धान्य की रक्षा करता है। पापी मनुष्य कोई तो राजदण्ड के डर से, कोई नरक, परलोक के डर से और कोई समाज के डर से पाप नहीं करते। अनेक लोग समाज दण्ड के भय से एक दूसरे को खा नहीं जाते। संसार के प्रायः सभी काम दण्ड के डर से होते हैं। दण्ड यदि संसार की रक्षा न करे तो सारा संसार

घोर अंधकार में डूब जावे। दण्ड दण्डों का दमन करता है, और उजड्डों को दण्ड देता है। दमन करने और दण्ड देने से ही इसका नाम दण्ड रखा गया है।

ये उचित दण्ड हैं :—

१. ब्राह्मणों को तिरस्कार-स्वरूप दण्ड देना।

२. क्षत्रियों को सिर्फ वेतन दे देना।

३. वैश्यों से जुर्माना (धन) लेना।

४. शूद्रों को दास बना लेना।

मनुष्यों को मोह रूपी अंधकार से बचाने और **धन की रक्षा करने के लिये दण्ड का नियम** बनाया गया है।

दण्ड का शरीर काला और उसकी आँखें लाल हैं।

जो राजा विचारपूर्वक उचित दण्ड देता है उसकी प्रजा कभी अनुचित काम नहीं करती। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सभी **दण्ड के डर से अपने-अपने मार्ग पर चलते हैं।** (चातुर्वर्ण्य दण्ड के आधीन हुआ)

(डर) दण्ड के बिना कोई यज्ञ, दान और नियम-पालन की इच्छा नहीं करता।

दूसरों का मर्मोच्छेदन किये बिना, कठिन काम किये बिना और मछली मारने वालों की तरह दूसरों की हत्या किये बिना न तो धन और यश मिल सकता है और न प्रजा ही मिल सकती है।

वृत्तासुर को मारने पर ही इन्द्र को स्वर्ग का राज्य मिला है। जिन देवताओं ने, दैत्यों का बध किया है वही संसार में पूज्य हैं। दैत्यों को रुद्र, कार्त्तिकेय, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, काल, मृत्यु, कुबेर, सूर्य्य, वसु, मरुद्गण, साध्य और विश्वेदेवों ने मारा है। मनुष्य इनके प्रताप का स्मरण करके इन्हें प्रणाम करते हैं। इनके सामने ब्रह्मा और विधाता की पूजा नहीं होती। शांतिपरायण इन्द्रियों को वश में रखने वाले, उदासीन, देवताओं की पूजा बिरले मनुष्य ही करते हैं। हिंसा किये बिना संसार में कोई जीवित नहीं रह सकता। बलवान जीव निर्बलों को मारकर खा जाते हैं। चूहे को नेवला, नेवले को बिल्ली इसी प्रकार ब्रह्मा ने चर-अचर जीवों को एक-दूसरे के खाने के लिये ही पैदा किया ह। इसी से विद्वान लोग हिंसा करके जीविका करने में संकोच नहीं करते। तपस्वी भी हिंसा करते हैं। इतने छोटे-छोटे कीट, औषधि, पशु, पक्षी, वृक्ष को नष्ट करके मनुष्य स्वर्ग जाते हैं।

दण्ड से सब काम सिद्ध होते हैं। यदि दण्ड न होता तो न प्रजा की रक्षा होती या निर्बल की रक्षा होती। नास्तिक भी दण्ड के भय से मर्यादा का पालन करते हैं। यदि दण्ड न हो तो ब्रह्मचारी वेद न पढ़ते, स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जातीं, दक्षिणासहित वार्षिक यज्ञ न होते। **सब चीजों को सभी ले लेते।** आश्रम, धर्म, नौकर-मालिक संबंध, कुछ न होता। दण्ड के प्रभाव से मनुष्यों को संसार में सुख और अंत को स्वर्ग मिलता है।

राज्य धर्म से मिले या अधर्म से, सब ठीक है। राज्य का भोग करो, यज्ञ करो।

सब काम धन से ही हो सकते हैं और धन दण्ड के अधीन है। संसार का काम चलान के लिये ही धर्म का विधान किया गया है।

नीति के अनुसार सनातन धर्म का पालन करिये। यज्ञ, दान, प्रजा का पालन, मित्रों की रक्षा और शत्रुओं का विनाश करके अपने धर्म का पालन करिये। शत्रुओं को मारने में कोई पाप नहीं होता। हथियार लेकर मारने को उद्यत व्यक्ति को मार डालने पर हत्या का पाप नहीं लगता, क्योंकि उस हत्या का कारण क्रोध है। आत्मा अवध्य है, उसको कोई मार नहीं सकता।

आत्मा को अलग करके जो मनुष्य को एक चक्रगति का दास बनाया गया उसके पीछे 'राज्य' की सुरक्षा की भावना कितनी बलवती थी ?

दण्ड के नीचे इस काल में धर्म भी आ गया। ब्राह्मणकृत वर्णाश्रम को स्थापित करने के लिये दण्ड की ही आवश्यकता थी। यह कहना ग़लत है कि अपनी ही इच्छा से लोगों ने चातुर्वर्ण्य को इस प्रकार के ऊँच-नीच के भेदभाव के साथ स्वीकार कर लिया था।

पर ऊँच-नीच क्यों है इसके लिये भाग्य को उत्तरदायी ठहराया गया। वास्तव में उस समय के संपत्तिशाली इसके अतिरिक्त और कुछ सोच भी नहीं सकते थे।

(शां० प० २५. १२—३५) दुर्निवार काल की गति को मेटने में कोई समर्थ नहीं है। कालचक्र में सब राजा चले गये। मनुष्यों को मनुष्य मारते हैं यह केवल संसारी कहावत है। न किसी को कोई मारता है, न किसी से कोई मारा जाता है। (फिर दण्ड और न्याय क्यों होते हैं ?) प्राणियों का जन्ममरण होना स्वाभाविक होता है। दुखी होने से दुःख और भीत होने से भय बढ़ता है। सुख-दुःख में प्राणी भ्रमण किया करते हैं। दुःख का न होना ही सुख है। जो मनुष्य हमेशा सुखी रहना चाहता हो वह सांसारिक दुःख और सुख दोनों को जीत ले। इस संसार में जो निरे मूर्ख हैं, अथवा उद्भट बुद्धिमान हैं, वही सुखी रहते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग हमेशा क्लेश सहते रहते हैं। सुख-दुःख के अनुभवी महात्मा सेनजित् ने ये सब बातें कही हैं।

यह तो असंभव है कि संसार में दुःख का अंत हो जाय। दुःख का सिलसिला नहीं टूटता। सभी को भाग्यवश, दुःख-सुख, हानि-लाभ, विपद-संपद्, और जन्म-मरण, होता रहता है। इसी से विद्वान लोग कभी हर्ष-विषाद नहीं करते। युद्ध करना राजाओं का यज्ञ है, राज्यकार्य्य में दण्डनीति का प्रयोग करना ही 'योग' है और यज्ञ में धन का त्याग करना ही 'संन्यास' है।

राजा का धर्म है :—

१. अहंकारशून्य होकर यज्ञ करना।
२. नीतिपूर्वक राज्यरक्षा करना।
३. धर्मानुसार सबको देखना, समान समझना।

४. संग्राम में विजयी होना ।

५. यज्ञ में सोमरस पीना ।

६. प्रजोन्नति का ध्यान रखना ।

७. युक्ति से दण्ड देना ।

८. वेदशास्त्र अध्ययन ।

९. **चारों वर्णों को अपने-अपने धर्म में लगाना ।**

१०. संग्राम में शत्रुओं के हाथ से मारा जाकर स्वर्ग प्राप्त करना ।

सांसारिक कार्य्यों में हर्ष-विषाद से परे होकर, वीतशोक रहना और समाज में परस्पर के असाम्य को निभाना, एक द्वन्द्व था ।

इस संसार में क्या था जो मनुष्य उसके लिये इतना श्रम करता । वह तो अपने को ही निर्बल समझ रहा था । परंतु इस दुविधा का एकमात्र हल था । जो कर्म मिला है उसे चुपचाप किये जाओ । इसके अतिरिक्त और है ही क्या ?

शांति पर्व (२७. २९-३५) पानी के बुलबुले की तरह संसार में जीव उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं । सभी पदार्थों का अन्त होता है । सभी संग्रहों का एक दिन नाश होता है । उन्नति की भी एक दिन अवनति होती है । संयोग का वियोग निश्चित है और जीवन के साथ मृत्यु का गंठ-जोड़ा बँधा हुआ है । सुख के लिये आलस्य में दिन बिता देने पर अन्त को दुःख भोगना पड़ता है और दुःख सहकर बुद्धिमानी से काम करने पर सुख मिलता है । बुद्धिमान मनुष्य ही ऐश्वर्य, श्री, लज्जा, धैर्य्य और कीर्ति पा सकता है । आलसी कभी नहीं पा सकता । बन्धु-बांधवों से ही कोई सुखी नहीं हो सकता, शत्रुओं से ही कोई दुखी नहीं होता, निरी बुद्धि से ही धन नहीं आ जाता, और केवल धन ही किसी के सुख का कारण नहीं हो सकता । विधाता ने कर्म करने के लिये ही मनुष्य को उत्पन्न किया है इसलिये कर्म करना चाहिये । कर्म त्यागने का मनुष्य को अधिकार नहीं है ।

शताब्दियों का इतिहास पीछे पड़ा था, जो परम्परा में अवशिष्ट था । ठीक है । परंतु इस समस्त इतिहास ने यह बताया कि जो कुछ है वह अस्थिर है । मनुष्य ने सब कुछ करके भी कोई अंत नहीं पाया है । वह बराबर एक ही बात को दुहराता चला जा रहा है ।

युधिष्ठिर जब पुत्रों के लिये शोक करते हैं तब उन्हें बहुत तरह से समझाया जाता है । जिसने पाप नहीं किया उसे बुरा फल क्यों मिलता है ?

जीवन की अदम्य तृष्णा बार-बार उठती थी, किन्तु मृत्यु का आवरण भयानक था । तभी शांति पर्व २९वें अ० में एक बार सवाल उठा है आखिर दुनिया क्यों ? क्या होगा इसका द्वापर का अंत एक विशाल काल खंड का सिमट जाना था । इतने दिन रहकर क्या हुआ । वैशम्पायन कहते हैं--(१२ से)

१. अविक्षित राजा के पुत्र मरुत्त के समय में बिना जोते अन्न पैदा होता था ।

२. सुहोत्र के समय में सोना बेहद था।

३. अंग के बृहद्रथ ने विष्णुपद पर्वत पर यज्ञ करके अमित दान दिया था।

४. उशीनर पुत्र शिवि ने भूमण्डल जीता था।

५. शाकुन्तल भरत ने अनेक अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये थे।

६. दाशरथि राम ने प्रजा का पुत्र के समान पालन किया था।

७. भगीरथ ने असुरों को हराया और यज्ञ में कन्यायें दान दी थीं।

८. दिलीप ने पृथ्वी जीतकर दान कर दी थी।

९. युवनाश्व पुत्र मान्धाता ने धरती जीत कर यज्ञ किया था।

१०. नहुषपुत्र ययाति ने शम्या (सैला) फेंके। जितनी दूर वह गिरता था उतनी दूरी पर यज्ञ वेदी बनाई और ऐसे वे समुद्र तीर तक पहुँच गये थे। दैत्यों को मारा था।

११. नाभागपुत्र अम्बरीष ने याज्ञिक राजाओं को ब्राह्मणों की सेवा में लगा दिया था।

१२. शशबिंदु के अपार धन था, उसने अश्वमेध यज्ञ किया था।

१३. अमूर्तरया का पुत्र गया यज्ञ से शेष अन्न खाता था। इसने ब्राह्मणों को भूमि और असंख्य गायें दी थीं।

१४. संकृतिपुत्र रंतिदेव ने इतने पशु मारे कि यज्ञ करते-करते उन्होंने जानवरों की खालों से चर्मण्वती नदी बहा दी। उनके जड़ाऊ कुण्डल पहनने वाले रसोइयें चिल्ला-चिल्ला कर कहते थे कि 'आज जी भरकर दाल खाओ, रोज़ की तरह मांस नहीं खाना होगा।'

१५. इक्ष्वाकुवंशी सगर ने पृथ्वी खुदवाकर समुद्र बना दिया था।

१६. वेनपुत्र पृथु ने ब्राह्मणों को तीन नल्व ऊँचे सोने के २१ पर्वत दान दिये थे।

किन्तु यह सब आकर मर गये। फिर? मृत्यु से शोक करने से लाभ? मृत्यु और जन्म में न विस्मय है, न कोई दुःख। यह तो एक धारा है, चलती चली जा रही है।

फिर इस धारा में क्षत्रिय जो हिंसा करता है, वह क्या अपने को कर्म-बंधन में नहीं बाँधता? यदि वर्णाश्रम के अनुसार कार्य करना है तो मनुष्य के त्रिगुण भेद से जो कर्म-बंधन काटा जा सकता है वह कहाँ कटता है?

इसका उत्तर यही है कि मनुष्य के, व्यक्ति के, त्रिगुण भेद के ऊपर है समूह की सुरक्षा की भावना अर्थात् चातुर्वर्ण्य। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता की दी हुई सहूलियत का भी द्वंद्व रूप हो गया।

शांतिपर्व ३३ अ० १५ से---राज्य या यश के लोभ से अपने सजातियों को युद्ध में मारना क्षत्रिय धर्म के अनुसार काम है। सभी प्राणी अपनी मौत से मरते हैं। माता या पिता कोई भी उन पर कृपा नहीं कर सकता। युद्ध तो निमित्त है और परस्पर लड़कर मर जाना ईश्वरीय नियम है। **ईश्वर का भी कोई दोष नहीं, वह तो कर्मों के अनुसार ही फल देता है** (बुद्ध की कर्म संघट्टवाली विचारधारा का प्रारंभ या स्रोत) इसलिये मौत कर्म

के अनुसार होती है। सुख और दु:ख भी कर्म के अनुसार ही मिलते हैं। हे युधिष्ठिर ! एक बार उन क्षत्रियों के कामों पर ध्यान दो। इन लोगों ने ऐसे कामों में लगकर ही अपनी मौत को बुलाया था जिनसे उनका नाश हो। और तुम अपने कर्मों पर ध्यान देने से स्पष्ट समझ जाओगे कि तुम धर्मात्मा और शांत स्वभाव होने पर भी दैवयोग से हिंसाजनक कामों में तत्पर हुए हो। जिस तरह कठपुतली चलाने वाले के अधीन रहती है उसी तरह यह नश्वर संसार कर्म के अधीन है। जब मनुष्यों का जन्म और मरण स्वाभाविक बात है—प्रकृति द्वारा हुआ करता है—तब उसके लिये हर्ष-विषाद करना वृथा है। सुना जाता है कि प्राचीन समय म देवताओं और दानवों में राज्य के लिये लगातार ३२,००० वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा। दानव बड़े भाई थे और देवता उनके छोटे भाई। अंत में देवताओं ने दानवों का नाश करके स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया था। यह देखकर शालावृक नाम के ८०,००० विद्वान् ब्राह्मण से दानवों की सहायता के लिये तैयार होगये। देवताओं ने उनका भी संहार कर डाला।

एक कुल के लिये व्यक्ति, राज्य के लिये कुल संहार करना चाहिये।

कहीं अधर्म धर्म के, कहीं धर्य अधर्म के समान दीख पड़ता है। जो राज्य के लिये शत्रु-संहार करते हैं वे नरक नहीं जाते। जहाँ शत्रु पुरुष नहीं वहाँ स्त्रियों को राज्य दे दो। स्त्री का भोग विलास से शीघ्र ही शोक दूर हो जायेगा।

यहाँ राज्य की विचारधारा कितनी स्पष्ट हो गई है :

१. व्यक्ति से ऊँचा कुल है।

२. कुल ,, ,, राज्य है।

यह हुआ 'राज्य' की विचारधारा या सबसे ऊपर उठना।

हमारा यह युग इसी द्वन्द्व का युग है। राजशक्ति पहले समिति सभा में थी। अब वह पूर्णत: व्यक्ति में आने का संघर्ष कर रही थी।

शांतिपर्व ५९वें अ० में धर्मराज ने पूछा है—राजा का नाम राजा क्यों पड़ा ? यह साधारण बात नहीं है कि एक व्यक्ति का आदर, देवता की तरह, सब लोग करते हैं।

भीष्म ने कहा : (१०——) सत्ययुग में पहले जिस तरह राजा की उत्पत्ति हुई है उसे सुनो। पहले संसार में न राज्य था, न राजा, न दण्ड (राज्य) और न दण्ड का विधान करने वाला ही। सब प्रजा धर्म से एक दूसरे की रक्षा करती थी। कुछ दिन बीतने पर इस तरह परस्पर रक्षा करना प्रजा के लिये एक बोझ-सा हो गया। प्रजा में धीरे-धीरे मूर्खता छा गई (विकास के समझ में न आने से गतिरोध) दुबिधा में पड़ जाने के कारण, क्रमश: धर्म का लोप होने लगा और प्रजा काम, लोभ, और चोरी आदि दुर्गुणों से दूषित होकर विवेकहीन हो गई (संपत्ति का प्रारंभ होगया) वाच्य-अवाच्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, और अगम्यागमन आदि का कुछ भी विचार न रह गया। संसार में मनुष्यों के कुमार्गगामी हो जाने पर धर्म और वेदों का लोप हो गया।

तब देवता बहुत डरे। वे ब्रह्मा की शरण में जाकर हाथ जोड़कर बोले : भगवन् मर्त्यलोक में सनातन वेदों का लोप हो गया है। वेदों के नष्ट होने से धर्म का विनाश हो गया है। अब हम लोग मनुष्यों के समान हो गये हैं। होम आदि कर्मों के न करने से मनुष्य ऊर्ध्व-वर्षी और पानी बरसाने के कारण हम सब अधोवर्षी कहलाते थे, किन्तु अब मनुष्य के कर्महीन होने से हम लोग बड़े संकट में है। हमें बचाइये।

स्वयंभू विधाता ने कहा : 'डरो मत।' अब प्रजापति ने अपनी बुद्धि से १०,००० अध्यायों का एक नीतिशास्त्र तैयार कर दिया। इसमें अनेक विषय हैं। (३० तक) (८० से——) ब्रह्मा का नीतिशास्त्र पहले शंकर ने पढ़ा। उन्होंने अल्पायु मनुष्य के लिये उसके १०,००० अध्याय कर दिये। वह वैशालाक्ष नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्द्र ने ५,००० अध्याय करके बाहुदन्तक नाम दिया। बृहस्पति ने ३०,०० अ० किये। तब वह बार्हस्पत्य कहलाया। देवताओं ने विष्णु से मनुष्य 'श्रेष्ठ' माँगा। विष्णु ने मानसपुत्र विरजा सृजा। उसने पृथ्वी अस्वीकार कर दी। विरक्त हुआ। उसका कीर्तिमान नामक पुत्र विषय-वासना-विहीन हुआ। कीर्तिमान -कर्दम-अनंग-अतिबल (इन्द्रिय लोलुप)——मृत्यु की मानसी कन्या सुनीथा पुत्र वेन——क्रमशः परम्परा में हुए। वेन ब्राह्मणविरोधी था। उसने निषादों को मारा, ब्राह्मण-सहायता से। फिर पृथु राजा बनाया गया। यह विष्णु का आठवाँ वंशज था। इसके समय में सूत मागध हुए, पहले नहीं थे **(मागध बाद में मिले) पृथु ने प्रजा को रंजन करके 'राजा' और क्षत अर्थात् विनाश से ब्राह्मणों की रक्षा करके क्षत्रिय शब्द को यथार्थ किया था।** (१२५ तक)।

अब दैवीशक्ति का प्रभाव मिला हुआ मिलता है——

पुण्य के क्षीण होने पर स्वर्ग लोक को त्यागकर दण्डनीति विशारद राजा, विष्णु अंश से, पृथ्वी पर जन्म लेता है। इसी से राजा बुद्धिमान् और महाप्राण होता है। राजा देवतुल्य है।

राजा को 'दैवी' मान लिया गया। प्रत्येक असाम्य या विशेष अधिकारों की पृष्ठ भूमि में एक ऐसे चिंतन का होना आवश्यक है जो मनुष्य के हाथ के बाहर की बात दिखाई दिया करे। तभी काम चल सकता है।

वर्ण, राजा के धर्म, राज्य, नौकर, कोष, दण्ड, इत्यादि के विषय में भीष्म ने कहा हैं :——

शांतिपर्व ६०——ब्राह्मण केवल वेद-पाठ करे, चाहे और कुछ करे या नहीं। क्षत्रिय दान, यज्ञ, पठन, प्रजापालन करे। माँगना, यज्ञ कराना, पढ़ाना उसके लिये निषिद्ध है। सदाचारी हो। युद्ध करे। वैश्य दान, अध्ययन, यज्ञ, ईमानदारी से धन-संचय और पुत्र समान पशुपालन करे। वैश्यों को छः गायों का पालन करने पर एक गाय का दूध, सौ गायों की रक्षा करने पर साल में एक गाय और एक बैल, दूसरे से धन लेकर वाणिज्य करने पर लाभ का सातवाँ भाग, मूल्यवान सींग और खुर का १६वाँ भाग तथा खेती में पैदा हुए अन्न

का ७वाँ हिस्सा अपने वेतन-स्वरूप लेना चाहिये ।

शूद्र का धर्म तीनों वर्णों की सेवा है। सेवा से शूद्र को परम सुख मिल सकता है। शूद्रों को धन का संचय नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे धनवान होने पर ब्राह्मण आदि ऊँची जातियों को अपने अधीन रखने का इरादा करेगें इससे पाप के भागी होंगे।

यहाँ शूद्र को धन रखने की आज्ञा देनी पड़ी। अब भी उस पर बहुत बंधन बाकी हैं। पर अब वह उठता ही चला जा रहा है। जनसमाज धीरे-धीरे छूट रहा है। तभी कहा है—(वही)।

इसलिये शूद्र, भोग की इच्छा से, धन का संचय न करे। हाँ, राजा की आज्ञा से किसी धार्मिक काम के लिये धन का संचय करना उनके लिये अनुचित नहीं।

पहले-पहल धर्म के लिये सहूलियत दी गई। वह भी राजा की आज्ञा से। ध्यान रहे उन्हें धन, राजा ही, नहीं रखने देता था। धन होने से शक्ति बढ़ती हैकहा है।—(वही)।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य को शूद्रों का भरण-पोषण करना चाहिये। उनको पुराना छाता, जूता, कपड़ा, पंखा और आसन आदि देना चाहिये। यह सब शूद्रों का धर्मतः प्राप्य धन है। जब कोई शूद्र किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के पास सेवा के लिये जावे तो उनको उसकी जीविका का प्रबन्ध कर देना चाहिये। किसी शूद्र के पुत्र न हो तो उसके मरने पर उसका पिण्डदान मालिक को करना चाहिये और बूढ़े या कमज़ोर होने पर उसका भरण-पोषण मालिक करता रहे। मालिक पर विपत्ति पड़े तो कोई शूद्र उसका साथ न छोड़े। यदि मालिक गरीब हो जाय तो सेवक को, अपने परिवार को खिलाने पिलाने से बचे हुए धन से, उसकी सहायता करनी चाहिये।

पहले शूद्र का कोई धर्म ही नहीं था। जब से सब की आत्मा स्वीकार कर ली गई उसके लिये धीरे-धीरे पिण्डदान की भी व्यवस्था होने लगी। आगे कहा है—

शूद्रों के धन का मालिक उनका स्वामी होता है।

परंतु यह अधिक दिन नहीं चला। कुछ शताब्दियों बाद ही बात बदल गई। तो जहाँ पुरानी परम्परा भी दुहराई गई, एक नई बात भी जोड़ी गई। आगे कहा है—

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये जो यज्ञ बतलाये गये हैं वे सब शूद्रों को भी करने चाहियें। किन्तु उनको स्वाहाकार, वषट्कार और मन्त्र का अधिकार नहीं है। इसलिये शूद्रों को व्रती न होकर वैश्वदेव और गृहशांति आदि शूद्र यज्ञ करना चाहिये। इन यज्ञों की दक्षिणा पूर्णपात्र है। सुना जाता है कि पैजवन नाम के शूद्र ने, अमन्त्रक ऐन्द्राग्न विधि के अनुसार, दक्षिणास्वरूप एक लाख 'पूर्णपात्र' दान किये थे।

शूद्र का धन जब बढ़ने लगा तब उससे धन ले लेने की तरकीबें होने लगीं और उसको भी यज्ञ करने का अधिकार दिया गया पर विशेष बंधन के साथ। आगे—

सब वर्णों के लिये जितने धर्म बताये गये हैं उनमें श्रद्धायज्ञ सबसे श्रेष्ठ है। ब्राह्मण लोग परस्पर देवता-स्वरूप हैं। वे विविध मनोरथों की सफलता के लिये अनेक प्रकार के यज्ञ

करते हैं और सबको हितकर उपदेश देते हैं। इससे वे देवताओं के देवता कहलाते हैं। ब्राह्मणों से ही क्षत्रिय आदि तीनों वर्णों की उत्पत्ति हुई है। इसलिये तीनों वर्णों को यज्ञ करने का स्वाभाविक अधिकार है। मानस यज्ञ करने का सभी को अधिकार है। ब्राह्मण तीनों वर्णों को यज्ञ करा सकता है। यदि चोर और पापी मनुष्य भी यज्ञ करने की इच्छा करता है तो वह साधु कहलाता है।

यज्ञ में जो दक्षिणा मिलती है उससे ब्राह्मण को लाभ था। इसलिये कर्मकाण्ड पर कोई छूत लाये बिना ही शूद्र को मानस यज्ञ का अधिकार दे दिया गया। शूद्र ने इसे तुरंत ही स्वीकार किया क्योंकि इससे वह समाज में अपनी अधिक ही महत्ता दिखाने में समर्थ हो सका।

शूद्र को धीरें-धीरे आश्रमों में भी स्थान मिलने लगा।

संन्यास आश्रम पर ब्राह्मणों का ही अधिकार है (शां० प० ६१. ३) शूद्र संन्यास के अतिरिक्त राजा की आज्ञा से और सब आश्रमों को ग्रहण कर सकता है (शां. प. ६३. १२–१५) अपने धर्म में लग हुए क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को संन्यास पर भी अधिकार है। (शां. प. ६३. २०–३.) गृहस्थ धर्म छोड़कर, ऋषि होकर, राजा जीवन की रक्षार्थ भिक्षावृत्ति का आश्रय ले, किन्तु सेवा न करे। भिक्षावृत्ति का अवलम्बन क्षत्रिय आदि तीन वर्णों का काम्य धर्म है, नित्य धर्म नहीं।

(शां. प. ६३. २४–३०) **समाज में क्षत्रियों को सबसे श्रेष्ठ कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। अन्य तीन वर्णों के धर्म और अधर्म राजधर्म के अंतर्गत हैं। जैसे हाथी के पाँव में सब पाँव समा जाते हैं। वैसे ही सब धर्म राजधर्म में आ जाते हैं। राज धर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ है। राजधर्म से ही प्रजा का पालन होता है। दान सबसे श्रेष्ठ धर्म है और वह राजधर्म के अंतर्गत है। राजधर्म न हो तो वेद का और सब धर्मों का नाश हो जाय। त्याग, दीक्षा, विद्या, और लोक आदि राजधर्म के आश्रित माने गये हैं। राजधर्म न हो तो कोई मनुष्य अपने धर्म में स्थिर न रहे।**

राजदण्ड के बाद दान की महिमा भी महत्त्वपूर्ण थी। वह आमदनी का जरिया था। ब्राह्मण को इसकी विशेष आवश्यकता थी।

इन्द्र ने मांधाता को उपदेश दिया है—महाराज! (शां. प. ६५. अ २४–२९) दण्ड-नीति और राजधर्म का नाश होने पर सभी प्राणी, राजा की दुष्टता से, उच्छृंखल हो जाते हैं। सत्ययुग बीत जाने पर असंख्य मनुष्य माँगने-खाने के लिये कपटवेष धारण करके भीख माँगने लगेंगे और काम-क्रोध के वश होकर धर्म की बातें भुलाकर, कुमार्ग पर चलने लगेंगे। जब राजा लोग दण्डनीति के प्रभाव से पाप को दूर कर देंगे तब फिर राजधर्म का अटल राज्य हो जायगा। जो मनुष्य राजा का अपमान करता है, उसके दान, होम और श्राद्ध आदि सब कुछ निष्फल हो जाते हैं।

धर्म की आड़ में माँगने-खाने वाले उस समय निकल पड़े थे। संभवतः यह ब्राह्मण-

धर्मेतर संप्रदायों के भिक्षु जैसे लोग थे क्योंकि उन्हें कपटवेषी कहा गया है। ऐसे ही लोग तो महावीर को मिले थे। ऐसों से तो बुद्ध की भी कई बार मुलाकात हुई थी। बुद्ध के समय में एक संप्रदाय था, तो निश्चिय ही उसका जन्म उससे पहले ही हुआ होगा।

शांतिपर्व ६८ वें अ० में अराजकता के दोषों का निरूपण है। शास्त्र में राजा को इन्द्र कहा है। अतएव अपनी भलाई चाहने वाली प्रजा को इन्द्र के समान राजा की पूजा करनी चाहिये। अराजकता में विदेशी (अर्थात् बाहर के राज्य का) कोई हमला करे तो प्रजा को उसका स्वागत करना चाहिये। उत्पातों से बचाने के लिये ही देवताओं ने राजा को बनाया है।

प्राचीन समय में पृथ्वी पर राजा के न होने से लोग एक दूसरे को सताने लगे थे। तब कुछ धर्मात्माओं ने यह नियम बना दिया कि जो कटुवादी, उग्र स्वभाव, व्यभिचारी और चोर होगा उसे हम त्याग देंगे। सब वर्णों के विश्वास के लिये प्रजागण कुछ दिनों तक इस नियम का पालन करके अन्त को बहुत दुःखी होकर ब्रह्मा के पास गये और बोले—भगवन् ! राजा के न होने से हम नष्ट हो रहे हैं।

ब्रह्मा ने मनु को उनकी रक्षा करने की आज्ञा दी।

मनु ने कहा—मैं पाप से बहुत डरता हूँ। शासन करना, विशेषकर मिथ्याचारी मनुष्यों को उनके धर्म में लगाना, बहुत कठिन है।

प्रजा ने मनु से कहा—आपको पाप नहीं लगेगा। पाप का भागी तो पापी ही होगा। हम लोग आपका कोष बढ़ाने के लिये पशुओं का और सुवर्ण का पचासवाँ हिस्सा तथा अन्न का दसवाँ हिस्सा देंगे। रुपया देकर कई लोग जहाँ सुन्दरी कन्या के साथ विवाह करने को प्रस्तुत होगें वहाँ आपको ही मौका दिया जायगा। जैसे इन्द्र के पीछे देवता चलते हैं वैसे ही, आवश्यकता पड़ने पर, अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करने वाले लोग आपका साथ देंगे। आपके पराक्रम से रक्षित होकर हम लोग जो धर्म करेंगे उसका चौथा हिस्सा आपको मिलेगा।

प्रजा के ऐसा कहने पर कुलीन महातेजस्वी मनु, असंख्य सैनिकों के साथ, उनकी रक्षा के लिये तैयार हो गये। इन्द्र का सा मन का-महत्त्व देखकर डर के मारे सब प्रजा अपने धर्म में लग गई।

स्पष्ट है कि मनु के नाम पर जो सृष्टि में नया समय हुआ, वह धन और सेना के प्रादुर्भाव से हुआ। यह स्पष्ट करने को ही इस कथा को सत्ययुग में उद्धृत करने के स्थान पर यहाँ उद्धृत किया गया है। अब साफ होता है कि मनु के साथ देवयुग के बाद, प्रलय के बाद, क्या भेद हो गया। मनु का इतिहास में कितना बड़ा हाथ था। धर्म और राजा का परस्पर बड़ा संबंध है—

राजा सब धर्मों की जड़ है। राजा का भय न हो तो—

१. प्रजा परस्पर झगड़ा करती है।

२. मनुष्य परदाररत होते हैं ।

३. प्रजा चौपट हो जाती है ।

४. बलवान लोग दुर्बलों को लूटकर उनकी संपत्ति का अपहरण कर लेते हैं ।

५. कोई भी अपनी स्त्री, पुत्र, अन्न, धन आदि को अधीन नहीं रख सकता ।

६. दुष्ट लोग एकाएक दूसरों की सवारी, कपड़े, गहने और विविध रत्न हर लेते हैं ।

७. अकाल में सब का सब कुछ नष्ट हो जाता है ।

८. डाकू होते हैं ।

९. व्यभिचार ।

१०. कृषि-वाणिज्य का नाश ।

११. वार्षिक यज्ञ, ब्राह्मण वेदपाठ नहीं होते हैं ।

१२. वर्णसंकर बढ़ जाते हैं ।

धर्म, धन, संपत्ति, जातिशुद्धि, स्त्री-रक्षा यह मुख्य कारण बताये गये हैं । अब संदेह नहीं होना चाहिये कि राजधर्म का धर्म से कोई संबंध नहीं है ।

इसीलिये राजा को सबसे परे ठहराया गया है । (शां. प. ६८. ५० से) राजा जिन वस्तुओं की रक्षा करता है उनके लेने का उपाय न करे । बुद्धिमान् मनुष्य को अपने धन के समान ही राजा के धन की रक्षा करनी चाहिये । जो मनुष्य राजा का धन चुराता है वह बहुत समय तक घोर नरक में सड़ता है । (६९ अ. ८० से) राजा ही काल का कारण है ।

जब राजा दण्डनीति के अनुसार अच्छे ढंग से प्रजा का पालन करता है तभी सत्ययुग हो जाता है । जब राजा दण्डनीति के तीन भागों से राज्य का पालन करता है तब त्रेतायुग होता है । पाप का $\frac{1}{4}$ हिस्सा प्रचलित होता है । (राजा राम के राज्य $\frac{1}{4}$ पाप था ?) आधी दण्डनीति छोड़ने पर द्वापर होता है । धर्म-अधर्म तब बराबर हो जाते हैं । जब राजा दण्डनीति छोड़ प्रजा को सताता है तब कलियुग होता है (निरंकुशता)। तब शूद्र भीख माँगते और ब्राह्मण दास का काम करते हैं ।

कुछ राजाओं ने जब ब्राह्मण धर्म को छोड़ा तो वहाँ शूद्रों को सेवा नहीं मिली । आसान था धर्म की आड़ में भीख माँगना और परम पूजनीय ब्राह्मण को दासत्व करने के लिये मजबूर होना पड़ा, क्योंकि कहीं से भी धन की धारा नहीं गिरी । मनुष्य आखिर क्या न करता । इसीलिये तो :—

शां. प. ७३ में कश्यप ने पुरुरवा से कहा है : ब्राह्मण के त्याग देने से क्षत्रिय का राज्य नष्ट हो जाता है और म्लेच्छ जातियाँ चाहे जिसको राजा बना लेती हैं । ब्राह्मण क्षत्रिय को अवश्य मिलकर रहना चाहिये । वे एक दूसरे की उत्पत्ति के कारण हैं ।

कारण हुआ अनार्य जातियों का उत्थान जो इस गठबंधन 'ब्रह्मक्षत्र' के टूटते ही उठने लगीं ।

शा. प. ७६. जो ब्राह्मण श्रोत्रिय नहीं है और जो अग्निहोत्र नहीं करते, उनसे धार्मिक राजा 'कर' ले और मुफ़्त में काम करावे। धर्माधिकारी, देवलक, ज्योतिषी, ग्रामयाजक और रास्ते पर शुल्क लेने वाले ब्राह्मण चाण्डाल के समान हैं। ऋत्विक, पुरोहित, मंत्री, दूत या जासूस ब्राह्मण क्षत्रिय के समान हैं। जो ब्राह्मण सेना में घोड़ा, हाथी और रथ के सवार या पैदल सिपाही हैं वे वैश्य के समान हैं। धनहीन होने पर राजा देवतुल्य और ब्रह्मतुल्य ब्राह्मणों को छोड़कर और सब ब्राह्मणों से कर वसूल करे। राजा जैसे अन्य वर्णों के धन का अधिकारी होता है वैसे ही धर्मभ्रष्ट ब्राह्मण के धन का भी अधिकारी होता है। ब्राह्मणों को धर्मभ्रष्ट होते देखकर राजा कभी उनकी उपेक्षा नहीं करे। न्याय के अनुसार दण्ड देकर उनको धार्मिक ब्राह्मणों की श्रेणी से अलग कर दे। यदि ब्राह्मणों की श्रेणी से पढ़ा-लिखा ब्राह्मण जीविका न होने के कारण चोरी करने लगे तो राजा उसके भरणपोषण का प्रबन्ध कर दे। इतने पर भी यदि वह चोरी करना न छोड़े तो राजा उसे परिवार समेत देश से निकाल दे।

७७. अ० ब्राह्मणेतर जातियों और वेदोक्तकर्मविहीन ब्राह्मणों के धन का संपूर्ण अधिकार राजा को है। कर्महीन ब्राह्मण का धन ले लेने में राजा को पशोपेश नहीं होना चाहिये। यदि राज्य में ब्राह्मण चोर है तो उसका अपराधी राजा है।

७८. अ० क्षत्रिय धर्म के अनुसार निर्वाह करने में असमर्थ होने पर ब्राह्मण वैश्यधर्म के अनुसार खेती करके और गायें पालकर अपना निर्वाह कर सकते हैं। पर मदिरा, मांस, शहद, नमक, पकाया अन्न, घोड़ा, गाय, भैंस आदि पशु न बेचने चाहियें।

राजा के विरुद्ध जब प्रजा विद्रोह करे तब उसे ब्रह्मबल का आश्रय लेना चाहिये।

ब्राह्मणों की रक्षा के लिये सब वर्णों को शस्त्र उठाना चाहिये।

धन, संपत्ति और ब्राह्मण का उससे क्या संबंध था, यह उपर्युक्त से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। अभी तक जो जन्म के ही आधार पर ब्राह्मण अपनी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित करते थे, अब वे कर्म के अनुसार उसे स्वयं देखने लगे।

राजा भी अपने गणों के विरुद्ध नहीं जा सकता था। शां. प. १०७ अ० १० से—भीष्म ने बताया है कि लोभ और क्रोध से ही राजा में और गणों में विरोध हो जाता है। राजा का लोभ और हिस्सा न पाने से गणों का क्रोध, उनके नाश का कारण बन जाता है। राजा और गण एक दूसरे को नष्ट कर डालने के लिये साम, दाम आदि प्रयोग करते हैं। जिन गणों में फूट पैदा हो जाती है, उनको आसानी से हराया जा सकता है, इसलिये गणों को आपस में फूट न होने देना चाहिये।

अब एक महत्त्वपूर्ण शक्ति की व्याख्या है। वह है राजा के हाथ में केन्द्रित हुआ दण्ड। पहले पंचायतों में जो दण्ड विभाजित था, अब उस सब पर एक दण्ड हावी हुआ—राजदण्ड। यह सबसे ऊपर था, सबका नियंता था। इससे बढ़कर कोई भी शक्ति नहीं थी।

शां. प. १२१. में दण्ड का रूप है। मनु का प्रागवचन है।—दण्ड श्रेष्ठ देवता है।

दण्ड का रूप

४ दाँत, ४ भुजा, २ जीभ, ८ पैर, अनेकाक्ष। तेज अग्नि-सा, स्वरूप नील कमल-सा। तेज कान, रोएँ खड़े हुए, जटाधारी, लाल मुँह, शरीर काला। सदैव उग्र। अनेक शस्त्र धारण करता है।

दण्ड के अनेक नाम हैं—मनु, शिवशंकर, विष्णु, नारायण, धर्मपाल इत्यादि।

दण्ड की स्त्री है—नीति; ब्रह्मकन्या, लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, जगद्धात्री उसके अन्य नाम हैं।

दण्ड—ईश्वर, पुरुष, प्राण, सत्त्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा, जीव—नाम से प्रसिद्ध है।

(शां. प. १२२. ३२ से) शिव ने विष्ण—फिर अंगिरा, इन्द्र तथा मरीचि, भृगु, ऋषिगण, लोकपाल, क्षुप, वैवस्वत मनु, यम, इस परम्परा म एक दूसरे ने दण्ड एक दूसरे के हाथ में दिया ताकि वह लुप्त न हो जाय।

दण्ड में ही देवता सन्निहित हो गये।

इस समय स्त्री-पुरुष संबंध भी बदल रहे थे। मातृसत्ता खत्म हो ही चुकी थी पितृसत्ता ने स्त्री को बाँध दिया था। परंतु वह अभी पूर्णतया बद्ध नहीं थी। बल्कि इस युग में तो उसने अपना सिर भी उठाने का यत्न किया। उसे संपत्ति मिलती थी। आगे चलकर वह सिद्धांत बढ़ा और आगे चलकर वह लुप्त भी हुआ। परंतु इस समय हम देखते हैं:—

स्त्री व्यभिचारिणी और घर में ही रहे तो उसे भोजन और वस्त्र देना चाहिये। व्यभिचारी पुरुष के लिये जो व्रत है, वही व्रत व्यभिचारिणी के लिये भी है। जो स्त्री अपने पति को त्यागकर नीच वर्ण के पुरुष का संसर्ग कर ले तो राजा उसे बीच बाजार में कुत्तों से नोंचवा डाले। व्यभिचारी पुरुष और व्यभिचारिणी स्त्री को लोहे की तपती हुई शय्या पर लेटाकर उसके ऊपर लकड़ियाँ रखकर आग लगा दे। जो मनुष्य पाप करके एक वर्ष तक उसका प्रायश्चित्त न करे तो फिर उसे दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये।

गाय के अतिरिक्त अन्य पशुओं की हिंसा करने में अधिक दोष नहीं है; क्योंकि पशु जाति पर मनुष्यों का अधिकार है। (१६५ अ० शां. प. ६२ से)।

अहिंसा के इस बढ़ते हुए आक्रमणों के पीछे वास्तव में गणतंत्र की स्वतंत्र विचार-धारा थी।

पहले जाति-भेद का आधार जन्म कहा गया था। अब उसमें हेरफेर करने का यत्न हुआ।

कर्म ही प्रधान माना गया क्योंकि गुण से भी काम नहीं चला। रंग का भेद भी कुछ नहीं रहा।

शांतिपर्व १८८ वें अ० में भृगु से भारद्वाज ने पूछा है—सब मनुष्यों में सब प्रकार के गुण हो सकते हैं फिर केवल गुण के द्वारा मनुष्य मनुष्यों का वर्णविभाग नहीं किया जा

सकता। तब भृगु ने कहा—तपोधन! वर्णों में कोई विशेषता नहीं है। संसार ब्रह्ममय है, सभी मनुष्य ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं और अपने कर्मों द्वारा भिन्न-भिन्न वर्ण के हो गये हैं। क्रमशः गुण नाश होने से ही ब्राह्मण गिरकर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हो गये। अतएव सभी वर्णों का धर्म और यज्ञादि करने का अधिकार है।

शां. प. १८९. ५—७ में—जो शूद्र रहकर वेद पढ़ता है और कृषि-वाणिज्य आदि करता है वह वैश्य है और जो वेदहीन तथा आचारभ्रष्ट रहकर सब काम करता तथा सब कुछ खाता रहता है वह शूद्र है। जो मनुष्य द्विज कुल में जन्म लेकर शूद्र कर्म करता है वह शूद्र है। जो शूद्र वंश में जन्म लेकर द्विज कर्म करता है—संयमी है—वह द्विज है।

इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण अब अनेक प्रकार के कार्य करने लगे थे। तभी ब्राह्मण धर्म गिर गया था। तभी कलि में कहा गया है, ब्राह्मण का धर्म उससे लुप्त हो जायेगा। परंतु ब्राह्मण परलोक नहीं जानता था।

शांतिपर्व १९२. अ० ६ से—भारद्वाज ने कहा: ब्रह्मन! सुना जाता है कि इस लोक से परे कोई दूसरा लोक भी है किंतु उस लोक को किसी ने कभी नहीं देखा। तो वह लोक किस प्रकार का है ?

भृगु ने कहा: **तपोधन! उत्तर दिशा में हिमालय के पास सर्वगुणसंपन्न परम पवित्र मंगलजनक पापहीन एक लोक है। वही परलोक कहलाता है।** लोभ-मोह से रहित शुद्ध चित्त पुण्यात्मा मनुष्य इस लोक में शांति से रहते हैं। वहाँ अकाल, मृत्यु और रोग नाम के लिये भी नहीं हैं। इन सब गुणों के होने से ही वह देश स्वर्ग के समान है। उस स्थान में रहने वाले मनुष्य अपनी-अपनी स्त्रियों में अनुराग रखते हैं; वे दूसरे की स्त्री का लोभ नहीं करते। एक दूसरे को कभी नहीं सताते। और कभी विस्मय नहीं करते। उनमें अधर्म नहीं होता। किसी को, किसी विषय में सन्देह नहीं होता और वहाँ सब कर्मों का फल प्रत्यक्ष हो जाता है। उस लोक में कोई तो महलों में निवास करके सोने के गहनों से भूषित होकर श्रेष्ठ वस्तुओं को खाता-पीता हुआ अपनी सब इच्छाएँ पूर्ण करता है और कोई भोग की इच्छाओं को त्यागकर परमात्मा का ध्यान करता है। इस लोक की अपेक्षा वह लोक सर्वथा उत्तम है।

धर्म में परलोक क्या है इसका यह एक अच्छा उदाहरण है। वास्तविकता का ज्ञान यही है। असल में जो प्राचीन देव जाति का क्षत्र था, वही परम्परा में स्वर्ग था वह धीरे-धीरे पृथ्वी से उठकर आकाश में चला गया था, यह ऊपर देखा जा चुका है।

शां. प. २०७ में विष्णु का वृत्तांत है।

भगवान् आकाश,वायु, पृथ्वी, तेज और जल, इन पाँच महाभूतों को पैदा करके फिर स्वयं जल पर सो गये।

फिर मन और अहंकार पैदा किये।

फिर नारायण की नाभि से दिव्य कमल निकला।

उससे ब्रह्मा हुए।

तब मधु नामक एक तमोगुणी महाअसुर पैदा हुआ और ब्रह्मा को खा जाने को झपटा। तब नारायण न उसे मार डाला। तभी से वे मधसूदन हुए।

तब ब्रह्मा ने ये पैदा किया—पैर के अँगूठे से प्रथम दक्ष। फिर ये मानस पुत्र—

मरीचि, अग्नि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु,

|

दक्ष कश्यप

| |

१३ कन्या इन कन्याओं के पति हुए।

फिर क्रमशः वही क्रम है।

(३०) विराट पुरुष से सृष्टि हुई। प्रथम युग में—उस समय जो जितने दिन जीना चाहता था उतने दिनों तक जीता रहता था, किसी को मृत्यु का भय नहीं था। उस समय स्त्रीप्रसंग करने की आवश्यकता नहीं थी, इच्छा से ही सन्तान की उत्पत्ति हो जाती थी। उस समय का नाम सत्ययुग था। सत्ययुग के बाद त्रेतायुग हुआ। उस युग में भी मैथुन धर्म नहीं था। स्त्री का स्पर्श करने से ही संतान की उत्पत्ति हो जाती थी। द्वापर युग से मैथुन धर्म प्रचलित हुआ और कलियुग में मनुष्य द्वन्द्वभाव को प्राप्त होंगे।

सृष्टि के इस क्रम के साथ स्त्री-पुरुष संबंध भी दिये गये हैं।

१. संकल्प : स्वतंत्र स्त्री-पुरुष संबंध।

२. संस्पर्श : वर्जित भाई, बहिन, माता, पुत्र, पिता, पुत्री संबंध।

३. मैथुन : गोत्र विवाह वर्जित।

४. द्वन्द्व : स्त्री-पुरुष का विवाह जिसमें पुरुष के समस्त अधिकार, स्त्री संपत्तिहीन।

वर्ण-व्यवस्था के बढ़ने के कारण धीरे-धीरे देवता भी उपासना में कर्मानुसार विभाजित कर दिये। तभी महाभारत शां० प. २०८ अ० २०—३० में देवताओं के भी वर्ण साबित किये गये हैं। आदित्यगण क्षत्रिय, मरुगद्‌ण वैश्य, अश्विनीकुमार शूद्र और अंगिरा के वंश में देवता गण ब्राह्मण हैं।

धर्म क्या है?

वह क्यों बदलता है?

उसका लौकिक पक्ष क्या है?

उसका अलौकिक पक्ष क्या है?

परम्परा और वेद क्या हैं?

ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ क्यों हैं?

तपोवनों में जहाँ ब्रह्म पर प्रश्न हो रहे थे, वहाँ ऊपर के प्रश्न बढ़ रहे थे। जो कहा जाता है कि जनमेजयकालीन ब्राह्मणों को शाप मिला कि अब से ब्राह्मण के वचन की शक्ति जावेगी चली वह एक सामाजिक सत्य ही था। ब्राह्मण ने अत्याचार से विरोध

बढ़ाये। शां. प. २६० में युधिष्ठिर ने धर्म की प्रामाणिकता पर आक्षेप किया है। मोक्ष पाने की इच्छा से धर्म की वृद्धि के लिये वेदांत आदि सुनने से शूद्रों को अधर्म होता है और यज्ञ के लिये हिंसा करना महर्षियों का धर्म है। तो फिर धर्म का निर्णय किस तरह किया जा सकता है। प्रत्येक युग में वेदों का ह्रास होता रहा है। इस कारण सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, इन चारों युगों का धर्म अलग-अलग है। जब इस तरह समय-समय पर वैदिक धर्म बदलता रहता है तब वेद वाक्यों को यथार्थ बतलाना केवल मनुष्यों का मनोरंजन करना है।

तब २६१ वें अ० शां. प. में भीष्म ने तुलाधार ब्राह्मण और जाजलि का संवाद सुनाया है। तुलाधार काशी का एक व्यापारी था। दूकान करता था।

२६२वें अ० में जाजलि ने उपदेश दिया, वह सनातन धर्म के अनुकूल केवल अपनी परंपरा निभाता चला जा रहा था। (४७ से) नहुष ने मधुपर्क करते समय गो-वध किया था। ऋषियों ने कहा यह—पाप है। पर तपोबल से उन्होंने देखा, कि नहुष ने जान-बूझकर यह काम नहीं किया तब उन्होंने उसके पाप को बाँटा और प्राणियों पर रोग स्वरूप फेंक दिया।

शक्ति का एक क्षेत्र और था। वैश्य की शक्ति। वह व्यापारी था। एक ओर शूद्र और अनार्य उठ रहे थे। दूसरी ओर वैश्य भी संघर्ष कर रहा था।

२६३. अ० में जाजलि ने ब्राह्मण तुलाधार को बताया कि यज्ञ की विशेष जानकारी रखने वाला ब्राह्मण (मनुष्य) दुर्लभ है। इस समय ब्राह्मण लोग अपने करने योग्य अंतर्याग का त्याग करके, क्षत्रियों के करने योग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करने लगे हैं। तभी हिंसा फैलती है।

जाजलि ने अहिंसा मुख्य उपदेश दिया।

युग ने ब्राह्मण को वैश्य के सामने घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। वैश्य को हिंसा—राजन्यवर्ग—दबा रहा था। उसके पीछे ब्राह्मण का न्याय था। इस समय के वैश्य ने ब्राह्मण के विरोध में क्षत्रिय को अपनी ओर मिलाने का यत्न किया। वह व्यापार के क्षेत्र चाहता था, सुरक्षा और बड़े-बड़े जनपद चाहता था, गण चाहता था, जहाँ निरंकुशता नहीं हो, और जहाँ धन के आधार पर उसका स्थान बन सके। युद्ध में उसकी हानि होती थी।

अब ब्राह्मण का कहना भी नहीं माना जाता था।

कोई मनुष्य यदि ब्राह्मण का कहना न माने तो ब्राह्मण इसकी सूचना राजा को दे। सूचना पाकर राजा उदण्ड मनुष्य को दण्ड दे। (२६७ अ० शां. प.)।

कपिल के सांख्य का भी आधार लिया जा रहा था। उसमें भी अहिंसा का ही उपदेश दिया गया। यह दर्शन भी आगे के क्षत्रियों के लिये पृष्ठभूमि बन गया। कहा है—

२६८वें अ० में जब नहुष ने त्वष्टा के लिये गोवध करना चाहा, कपिल ने विरोध किया। २६९ में स्यूम रश्मि ने ज्ञानमार्ग को श्रेष्ठ मानकर भी गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना है। यहाँ पर कपिल ने फिर अहिंसा का ही उपदेश दिया है। २७०वें अ० में वेद की प्रामाणिकता

को कपिल ने भी स्वीकार किया है। ब्रह्म दो प्रकार का है एक शब्द ब्रह्म, दूसरा परब्रह्म। (३४० अ० ५९ से) नारायण ने कहा : मैं यज्ञ रूप हूँ। सांख्य के आचार्य मुझे कपिल कहते हैं। मेरी आदिमूर्त्ति वासुदेव से अनंतदेव संकर्षण, संकर्षण से प्रद्युम्न, प्रद्यम्न से अनिरुद्ध, अनिरुद्ध से ब्रह्मा. ब्रह्मा, से चराचर जगत उत्पन्न होता है।

मैं क्रमशः—

१—नृसिह रूप धर हिरण्यकाशिपु को
२—वामन बलि को
त्रेता में ३—परशुराम क्षत्रियों को
त्रेता द्वापर संधि में :—
४. राम रावण को
द्वापर कलि की संधि में :—
५. कृष्ण कंस
नरकासुर, भौम, मरु, पीठ दानव, बाणदैत्य; गर्गपुत्र, कालयवन, गिरिव्रज, जरासंध के बाद शिशुपाल को मारूँगा।

इस प्रकार मैं द्वापर और कलियुग की संधि में वासुदेव आदि चार मूर्त्तियाँ धारण करके अनेक कार्य करके अपने लोक को चला जाऊँगा।

मैं—

१. हंस
२. कूर्म
३. मत्स्य
४. वराह
५. नृसिंह
६. वामन
७. परशुराम
८. राम
९. कृष्ण
१०. कल्कि

—ये १० अवतार लूँगा।

और रक्षा के लिये पपरम्रा में अवतारवाद का विकास हुआ।*

अनुशासन पर्व ४७ में युधिष्ठिर ने पूछा : ब्राह्मण के लिये ४ स्त्रियों का विधान है। ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा। उन सब स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न हुए ब्राह्मण के पुत्रों में से किसे पैतृक धन का अधिकार प्राप्त है ?

*संक्षेप के कारण हम बहुत कुछ छोड़े जा रहे हैं।

भीष्म ने कहा : धर्मराज ! ब्राह्मणों को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन्हीं तीन वर्णों की कन्या के साथ विवाह करना चाहिये। वे चित्त के भ्रान्त होने अथवा लोभ या संभोग की इच्छा से शूद्रा का पाणिग्रहण करते हैं, किंतु यह शास्त्रसंगत नहीं है। शूद्रा के साथ समागम करने से ब्राह्मण की अधोगति होती है। ऐसे ब्राह्मण को प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि शूद्रा के गर्भ से पुत्र पैदा हो जाये तो वह ब्राह्मण उससे दूना प्रायश्चित्त करे।

ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र के धन में से सर्वश्रेष्ठ वस्तुएँ ले। उसके बाद जो बचे उसके दस हिस्से किये जायें। उन १० के चार ब्राह्मणी पुत्र, ३ क्षत्रिया पुत्र, २ वैश्या पुत्र तथा एक भाग शूद्र पुत्र को मिलना चाहिये। यद्यपि ब्राह्मण वीर्य्य और शूद्रा गर्भ से उत्पन्न पुत्र पैतृक धन प्राप्त करने के योग्य नहीं होता, तो भी दया करके, उसे थोड़ा-सा धन दे देना चाहिये। शूद्रा का पुत्र ब्राह्मण नहीं हो सकता। बाकी तीनों वर्णों की स्त्रियों की संतान ब्राह्मण कहलाती है।

पति के मरने पर स्त्री उसके धन की उत्तराधिकारिणी होकर केवल उसका उपभोग कर सकती है, बेचने का उसे अधिकार नहीं। पिता से मिला हुआ ब्राह्मणी का धन, उसके मरने पर, कन्या को मिलना चाहिये।

क्षत्रिय को क्षत्रिया तथा वैश्या से विवाह करना उचित है। ब्राह्मण का-सा ही शेष नियम है।

वैश्य केवल वैश्या से विवाह करे।

शूद्र शूद्रों में ही विवाह करे। (४८ वाँ अ० अनुशासनपर्व) वर्णसंकर यों होते हैं :
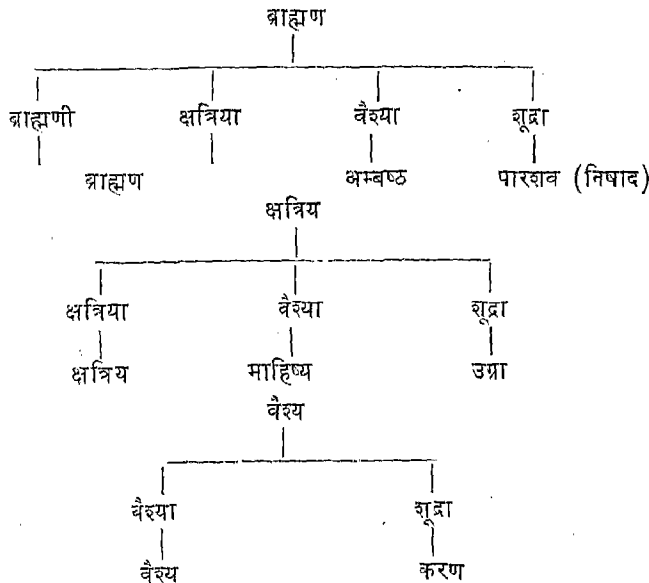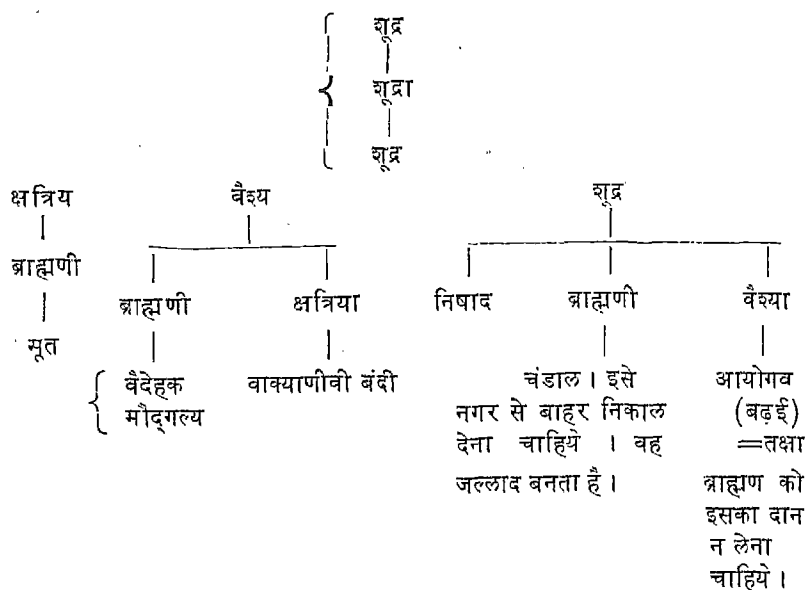
इसी तरह क्रमशः हीन जातियों से अति निकृष्ट १५ जातियाँ उत्पन्न होती हैं।

मगध देश की सैरन्ध्री के गर्भ और बाह्य (उक्त निकृष्ट १५ जातियों) के वीर्य से जो संतान पैदा होती है उसे आयोगव कहते हैं।

गर्भ, सैरन्ध्री + वैदेह, वीर्य्य

मैरेयक (मदिरा बनाने वाले)।

गर्भ, सैरन्ध्री + निषाद वीर्य्य = नौकाजीवी

गर्भ, सैरन्ध्री + चण्डाल = मरघट रक्षक चण्डाल।

आयोगव वीर्य्य + मागधी गर्भ

मांस विक्रेता, मांस पकाने वाले रसोइये और सौगन्द

आयोगवी + वैदेह

मायाजीवी (क्रूर)

आयोगवी + निषाद्—

मद्रनाभं (गधे के सवार)

आयोगवी + चण्डाल पुल्कस (मुर्दे के कपड़े पहनते और गधे हाथी का मांस खाते हैं'।

निषादी + वैदेह = क्षुद्र, अंध्र (जंगली पशुहंता)

,, + चर्मकार कारावर

,, + चण्डाल पाण्डुसौपाक (बाँस की डलिया बनाने वाले)।

वैदेही + निषाद = आहिण्डक

वैदे ही+चण्डाल=सौपाक (चण्डाल कर्म)

निषादी+सौपाक अन्तेवसायी (श्मशान वासी) इन्हें चण्डाल तक अछूत मानते हैं।

ये सब जातियाँ चौराहों, श्मशानों, पहाड़ों या पेड़ों के नीचे रहती हैं, लोहे के गहने पहनती हैं।

यह हुआ वर्णसंकरों का वर्णन। जन्म के कारण ही जातियाँ किस प्रकार विभाजित होती थीं यह स्पष्ट होता है। जातियों के जन्म से उन्हें कैसे काम मिलते थे, समाज में उनकी क्या प्रतिष्ठा होती थी।

साथ ही संपत्ति का बँटवारा भी जन्म पर आधारित होता था। कठिन बंधन अभी से बंध गये थे। अन्तेवसायी को तो चण्डाल तक अछूत मानते थे। छूआछूत तो प्रारंभ हो ही चुकी थी। पहले यज्ञों में शूद्र खाना परोसते थे।

और इस सबका उत्तरदायी राजा था।

राजाओं को नरक अवश्य देखना पड़ता है। (स्वर्गारोहणपर्व ३.११) यह एक महत्वपूर्ण कथन है। राजा की हिंसा ठीक है, सब ठीक है, वही उसका धर्म है। फिर भी नरक उसे देखना ही पड़ता है।

उपनिषदों में यह ब्राह्मक्षत्र संघर्ष अधिक स्पष्ट होता है। उपनिषदों में पुराकाल कहकर जो वर्णित किया गया है, वह इसी समय का है। भाषा लौकिक परवर्त्ती उपनिषदों में है। पुराने उपनिषदों की भाषा प्रायः पाणिनि से ही पुरानी समझी गई है। महाभारत के कुछ बाद जो कथाएँ हुईं उनको ३०० या ४०० बरस बाद भी एकत्र किया गया तो उसे स्पष्ट ही पुराकाल ही कहा।

उपनिषदों की कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जो केवल अध्यात्मवाद को दिखाने, उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये, लिखी गई हैं। इन कहानियों में तत्कालीन समाज का अच्छा चित्रण मिलता है। हम यहाँ उपनिषदों की दार्शनिकता के अत्यंत गहरे जल में जाकर इतिहास के विषय को नहीं छोड़ेंगे।

निश्चय से ऐतिहासिक कथा है कि मोक्ष की कामना करने वाला वाज श्रवस था। उसने दान में सर्वस्व दे दिया। उसका नचिकेता नामक पुत्र भी था।[१] पुरोहितों को दक्षिणा ले जाते देखकर उस समय उस कुमार को श्रद्धा हुई। वह सोचने लगा।[२] पानी पी चुकी, तृण खाई, दूध दे चुकी तथा सामर्थ्यहीन गौओं को देता हुआ, यजमान सुखहीन लोक जाता है।[३] ऐसा सोचकर उसने पिता से कहा—मुझे किसको दोगे? तीसरी बार पूछने पर वाजश्रवस ने कहा—तुझे मृत्यु को देता हूँ।[४]

---

१. कणेपनिषद् १. १.
२. वही १. २.
३. वही १. ३.
४. वही १. ४.

नचिकेता वैवस्वत के पास चला गया। उस समय वह घर पर नहीं था। नचिकेता ने सोचा आदमी धान की तरह पकता है, मरता है, फिर जन्म धारण करता है।

चौथे दिन वैवस्वत ने आकर देखा अतिथि निराहार पड़ा है। इससे स्पष्ट होता है कि यम नामक उस समय कोई गुरु था जो वैवस्वत था।

वैवस्वत ने कहा : तू तीन दिन मेरे घर निरन्न रहा। अत: तीन वर माँग।

मृत्यु के घर पर सदेह जाना, अन्न न खाना भी इस पृथ्वी के ही द्योतक हैं।

नचिकेता के पिता का नाम गौतम वाजश्रवस था। उसने तीन वर माँगे। गौतम वाजश्रवस का दूसरा नाम औद्दालकि आरुणि भी था (१. ११.)।

तीसरा वर माँगते हुए यम से दो वर पाकर, तब नचिकेता ने पूछा :

येयं प्रेते विचिकित्सा
मनुष्येऽस्तीत्येके नायस्तीति चैके।
एतद्वि द्या मनु शिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीय: ।१. २०

आत्मा है ? आत्मा नहीं है ? यह भेद बता।

यम ने कहा :

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म:
अन्य वरं नचिकेतो वृणीष्व
मामोपरोत्सीरति मा सृजनम ।१.२१.

इस विषय में पूर्वकाल में देवों ने भी संशय किया है, इसका जानना सुगम नहीं है, यह विषय सूक्ष्मतम है। नचिकेता ! दूसरा वर माँग।

पर नचिकेता नहीं माना। धन, आजीविका, सौ सौ वर्ष जीने वाले पुत्र-पोते माँग, पशु, हाथी, सोना, घोड़े, भूमि, आयु, राजा बनना माँग, दुर्लभ कामना की पूर्त्ति, स्त्रियाँ, रथ, बाजे माँग, पर मरने के बाद की न पूछ।

पर नचिकेता नहीं माना।

उसने कहा : यह सब नश्वर है। मैं यह सब नहीं चाहता।

१. वेद।

२. तप।

३. यति ब्रह्मचारी।

यह तीन मार्ग मुख्य हैं। सब ब्रह्म ढूंढ़ते हैं। वह पद 'ओम् है।'

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्येत हतम
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।१.१९

आत्मा है, न मरता है, न मारा जा सकता है।

अणोरणीयान महतो महीयानात्माऽस्य
जन्तोर्निहितो गुहायाम्
तमक्रतु: पश्यति वीतशोको
धातु: प्रसादान्महिमानमात्मन: ।३. २०
आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वत:
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति । ३.२१.

इस मनुष्य के हृदय में सूक्ष्म से सूक्ष्मतम और महान् से महान् आत्मा छिपा हुआ है। उस आत्मा की महिमा को धातु प्रसाद से आत्मज्ञानी वीतशोक देखते हैं।

बैण हुआ दूर जाता है। सोता सब ओर भ्रमण करता है। उस मद से आत्मा को मुझसे अन्य कौन जानने में समर्थ है।

वह शरीरों में अशरीर, अस्थिरों में स्थिर है। महान् सर्वशक्तिमान आत्मा को धीरजन जानकर फिर चिंता नहीं करता।

यह आत्मा प्रवचन से नहीं मिल सकता। न बुद्धि, न बहुत शास्त्रपाठ से। जिसे निश्चय स्वीकार करता है उसी से पाया जाता है।

(यह भक्ति संप्रदाय का-सा विचार है। जहाँ बुद्धि नहीं है, वहाँ श्रद्धा है।)

दुराचारी, अशान्त, अस्थिरबुद्धि वह प्रज्ञान से उसे नहीं पा सकता। जिसके समीप ब्रह्म और छत्र दोनों ओदन हैं, मृत्यु जिसका व्यंजन है, उसे कौन जानता है।

आत्मा रथ का स्वामी है। देह रथ है। बुद्धि सारथि, मन लगाम है, इन्द्रिय घोड़े हैं और उनके आगे विशय का मार्ग है। इन्द्रिय मन युक्त आत्मा को बुद्धिमन्त भोक्ता कहते हैं। (३. ३–४)

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत । ३.१४.

उसे जानने के लिये उठो, जागो, श्रेष्ठ जगों को पाकर समझो।

वह उस्तरे की तीक्ष्ण धार लांघने के समान है। ३.१४ वह अँगूठे के बराबर शरीर में रहता है। वह भूत भविष्यत् का ईश है। वह ज्योति की भाँति प्रकाशवान् है। ४. १२-१३.

यथोदकं दुर्गे वृष्ठं पर्वतेषु विधावति।

एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानु विधावति, जैसे पानी पर्वत पर बरसा हुआ पर्वत पर सब ओर दौड़ता है, ऐसे ही धर्मों को पृथक् भाव से देखता हुआ मनुष्य इन कर्मों के पीछे दौड़ता रहता है। (४. १४.)

अजन्मा आत्मा पुरधाम है, इसमें ११ द्वार हैं। आत्मा पुर को अधिकार में लाकर शोक नहीं करता। उससे छूटकर मुक्त हो जाता है। यह आत्मा वही है। (५. १.)

आत्मा देह के भीतर का हंस है। (५. २.)

एक सनातन ब्रह्म है। दूसरा मरकर जन्म लेता है। आत्मा होता है। (५. ६.)

यह विचार गीता में भी है कि सनातन पीपल ऊपर जड़, नीचे शाखा है, कठ में

६.१ में है। पहले हम विचार कर आये हैं कि यह आर्येतर विचार है।

इस ब्रह्म के भय से अग्नि जलती है, सूर्य्य उदय होता है, इन्द्र, वायु, मृत्यु दौड़ते हैं। जो इसे नहीं जानता वह अनेक जन्म लेता है।

भगवान (ब्रह्म) स्वप्न जैसा पितृलोक में दीखता है।

,, ,, जलबिम्ब ,, गंधर्व ,, ,,

,, ,, छायाप्रकाश ,, ब्रह्म ,, ,,

आत्मा इन्द्रिय, मन से प्रबल है। बुद्धि से परे शरीर रहित है।

वह जाना नहीं जा सकता। (६. १२)

भरद्वाज का पुत्र सुकेश, शिवि का पुत्र सत्यकाम, गर्गगोत्री सौर्य्यायिणि अश्वलायनपुत्र कौसल्य, भृगु पुत्र वैदर्भि कत का पौत्र कबंधी, हाथ में समिधा लेकर पिप्पलाद के पास ज्ञान लेने गये। (प्रश्नोपनिषद् १. १.) इस प्रकार ज्ञान के प्रार्थी दूर-दूर तक यात्रा किया करते थे। उपनिषदकालीन कुछ कथाओं को हम ऐतिहासिक प्रकाश के लिये देखते हैं।

शालावान् का पुत्र शिलक, चिकितायन का पुत्र दाल्भ्य, जीवल का पुत्र प्रवाहण उद्गीथ में कुशल थे। प्रवाहण राजा था, क्षत्रिय था। छांदोग्योपनिषद् १. ८२ प्रवाहण ने ब्राह्मणों को उपदेश दिया। १.९२

चक्र का पोता उषस्ति गरीब हो गया।

अपनी भार्या को लेकर मकड़ी से नष्ट कुरुदेश में एक हाथियों के ग्राम में जा बसा। भूख से व्याकुल उसने उड़द खाते हुए एक हाथीवान् से भिक्षा माँगी। हाथीवान् ने कहा: इस समय जो उड़द मेरे वस्त्र में हैं, (जूठे) इनके अतिरिक्त मेरे पास नहीं हैं।

उषस्ति ने कहा: ला मुझे यही दे दे।

हाथीवान ने दे दिये। फिर कहा—लो पानी पियो।

उषस्ति ने कहा: जल जूठा है, उच्छिष्ट है।

हाथीवान् ने कहा: उड़द जूठे नहीं हैं?

उषस्ति ने कहा: उड़द के बिना मैं जीता कैसे? जल तो बहुत है। (खाने में छआछूत उस समय भी थी।)

बचे हुए उड़द भार्या के लिये रख ले आया। उसके आने के पहले ही भार्या भिक्षा पाकर खा चुकी थी। उसने उड़द रख दिये।

सबेरे उषस्ति उठा तो स्त्री से बोला: पास का राजा ऋत्विक है। कुछ खाने को हो तो जाकर धन लाऊँ।

स्त्री ने उड़द दे दिये। उषस्ति खाकर महायज्ञ में गया। स्तोताओं के साथ बैठ गया। उसने प्रस्तोता से कहा: देवता को जाने बिना स्तुति करेगा तो तेरा सिर गिर जायेगा। यही उद्गाता और प्रतिहर्त्ता से कहा।

वे डरकर अपनी-अपनी जगह छोड़कर हट गये। मौन होकर बैठ गये।

(छांदोग्योपनिषद् १.१०.)

यजमान ने उषस्ति से पूछा। उषस्ति ने कहा मैं यज्ञ कराता हूँ। तू जितना धन इन्हें दे, उतना ही मुझे भी दे। राजा मान गया।

उसने स्तोता को प्राण, उद्गाता को आदित्य तथा प्रतिहर्त्ता को अन्न बताया। (१. ११.)

महिदास ऐतरेय ११६ वर्ष जिया। (छां. ३. १६७.)

जानश्रुति पौत्रायन राजा बहुत दाता, बहुत अन्न पकाने वाला था। उसने कई धर्मशालाएँ बनवाई थीं। (छां. ४. १. १.) उसके लिये ब्रह्मज्ञानी की खोज में उसका सारथि समुग्वा रैक्व के पास गया जो गाड़ी के नीचे छाया में बैठा दाद खुजा रहा था (४. २. ८.) जानश्रुति ६०० गौ, रत्नमाला, खच्चरों का रथ, भेंट लेकर चला। पहुँचा। रैक्व ने कहा—हे शूद्र (राजा शूद्र था) तू ही रख।

तब राजा ने १,००० गौ और पुत्री लेकर गया।

रैक्व ने स्त्री का मुँह प्रेम से चूमा। ग्राम, वन और वस्तु ली। वे वन रैक्वपर्ण प्रसिद्ध हुए। रैक्व ने राजा को उपदेश दिया। (छा. ४. २)

शौनक कापेय और अभिप्रतारी काक्षसेनि को जब भृत्य भोजन परोस रहे थे, एक ब्रह्मचारी ने आकर कहा—भिक्षा दो।

परंतु वे चुप रहे। ब्रह्मचारी ने कहा—जिसके लिये यह अन्न पकाया गया है उसे ही नहीं दिया गया।

तब उन्होंने भिक्षा दी। (छां. ४. ३.)

जबाला का पुत्र सत्यकाम जाबाल था। उसने कहा—माता! मैं ब्रह्मचर्य्य धारण करुँगा। तू मुझे मेरा गोत्र बता।

माँ ने कहा—मैं दासी (परिचारिणी) हूँ। अनेक स्थानों पर मैंने यौवन में काम किया है। पता नहीं तू किसका पुत्र है।

सत्यकाम गौतम हरिद्रुमान पुत्र हारिद्रुमत के पास जाकर बोला—मैं भगवान् के समीप ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करके रहूँगा। आप आज्ञा दें।

गौतम ने कहा—तू किस गौत्र का है?

सत्यकाम ने माता की बात दुहरा दी।

गौतम ने कहा—अब्राह्मण, आइमनी यह बात नहीं कह सकता। इस कारण तू ब्राह्मण है। समिधा ला। उपनयन कराऊँ। सत्य से तू नहीं डिगा।

गुरु ने चार गायें दीं। सत्यकाम उन्हें हज़ार बनाने बन में गया। (छां ४. ५.)

ब्रह्मज्ञानी होकर सत्यकाम आचार्यकुल में प्राप्त हुआ (छां. ४. ९.)

कामलायन उपकोसल, सत्यकाम जाबाल के पास १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य धारण करके रहा। गुरु ने उसको नहीं छोड़ा।

सत्यकाम से उसकी स्त्री ने कहा—यह ब्रह्मचारी तप कर चुका है। इसने भली प्रकार अग्नियों को सेवन किया है। तुझे अग्नियाँ शाप न दें इसलिये इसे अनुमति दे, उपदेश दे।

परंतु वह उससे कुछ कहे बिना ही स्थानांतर को चला गया।

उपकोसल ने मानस व्याधि से अनशन धारण कर लिया।

आचार्यपत्नी ने कहा—हे ब्रह्मचारी अन्न खा। खाता क्यों नहीं है?

उसने कहा: कामना की मुझे व्याधि है। इस कारण नहीं खाऊँगा।

तब गार्हपत्य, दक्षिण, आहवनीय आदि अग्नियों ने उसे उपदेश दिया।

उस समय गुरु आ निकले। उन्होंने पुकारा—हे उपकोसल! तुझे किसने उपदेश दिया? तेरे मुख पर ब्रह्मज्ञानी का प्रकाश है?

'अग्नियों ने।'

'क्या बताया?'

उसने दुहराया।

गुरु ने कहा—'यही है।' फिर और शिक्षा दी।

(छां. ४,—१०. ११. १२. १३. १४.)

गौतम आरुणेय श्वेतकेतु पञ्चाल देश की समिति में आया। उससे प्रवाहण जैबलि राजा ने पूछा: हे कुमार! क्या तुझे तेरे पिता ने शिक्षा दी है?

राजा: प्रजाएँ मरकर परलोक जाती हैं, फिर जन्म लेती हैं? जानता है?

श्वेतकेतु: नहीं।

श्वेतकेतु ने पिता से जाकर कहा: राजन्य बंधु ने पाँच प्रश्न पूछे। मैं एक का भी उत्तर न दे सका।

पिता ने कहा—मैं स्वयं नहीं जानता चल उसी से सीखें।

गौतम आरुणि तब राजा के पास गया। राजा ने पूजा की। प्रातःकाल गौतम सभागत राजा के पास आया।

राजा ने कहा: धन का वर माँग।

गौतम: वह मानुष धन तेरा ही हो। मुझे वह विद्या दे जो मेरे पुत्र से पूछा था।

राजा सुनकर दुखी हो गया। उसने कहा: चिरकाल तक व्रत धारण करके यहाँ रह।

वह रहा। तब प्रवाहण ने कहा: हे गौतम! वह विद्या सुन। पर पूर्वकाल में, तुझसे पहले यह विद्या ब्राह्मणों को प्राप्त न थी। उससे सारे देशों में क्षत्रियों का ही इस पर अधिकार था।

फिर राजा ने उपदेश दिया।

(छां. ५. ३.)

उपमन्यु पुत्र प्राचीनशाल, पौलुषि सत्ययज्ञ, भाल्लवेय इन्द्रद्युम्न, शार्कराक्ष्य जन

तथा आश्वतराश्वि बुडिल, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने उद्दालक के पास गये। उद्दालक ने उन्हें कैकेय अश्वपति के पास भेज दिया। अश्वपति राजा ने उनकी अलग-अलग पूजा की, और कहा : मेरे देश में चोर, कृपण, मदिरापायी, अग्निहोत्र रहित, अपढ़, व्यभिचारी नहीं हैं। मैं यज्ञ करने वाला हूँ। आप उसमें ऋत्विज बनिये जितना एक ऋत्विज को धन मैं दूँगा उतना ही आपको भी दूँगा। आप यहीं बसिये।

उन्होंने कहा : हमें दक्षिणा नहीं, ज्ञान दो।

उसने कल प्रातःकाल बुलाया। वे समिधा हाथ में लेकर अगले दिन सबेरे उसके पास गये। उसने उनको बिना उपनयन किये ही उपदेश दिया।

सत्ययज्ञ पौलुषि—आदित्यवर्ण आत्मा ; इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय वैयाघ्रपाद—वायु; जन-आकाश, आश्वातराश्वि बुडिल—अप; उद्दालक आरुणि—पृथ्वी; —देवता की आराधना करते थे।

अश्वपति ने ब्रह्म का उपदेश दिया।

(छां. ५. ११—२४)

आरुणि ने पुत्र श्वेतकेतु को कुल-परम्परा के अनुसार १२ वर्ष आचार्य के पास भेजा। २४ बरस का, पढ़-पढ़ाकर, वह पण्डिताभिमानी होकर लौटा।

पिता ने उसे ब्रह्मज्ञान दिया।

(छां. ६. १०)

पिता ने कहा—यहाँ समीप से एक न्यग्रोध फल ला।

श्वेतकेतु ने लाकर कहा—यह फल हैं।

'इसे तोड़ दे।'

'तोड़ दिया।'

'इसमें क्या देखता है ?'

'सूक्ष्म-से ये दाने।'

'इनमें से एक दाने को तोड़।'

'तोड़ा।'

'अब क्या देखता है ?'

'कुछ भी नहीं देखता हूँ।'

'जिस ही अत्यंत सूक्ष्म कारण को तू नहीं देखता, सो सूक्ष्म कारण का ही यह ऐसा महान् न्यग्रोधवृक्ष खड़ा है।

(छां. ६. १२)

आरुणि ने कहा : यह नमक पानी में रखकर सबेरे मेरे पास लाना।

वह लाया। पिता ने कहा—'ले आया ?'

'हाँ।'

'कहां है ?'

उसने खोजा, पर नहीं मिला ।

पिता ने कहा : 'आचमन कर ।'

उसने किया ।

पिता ने पूछा : 'कैसा है ?'

'नमकीन है ।'

'अब अलग-अलग तरफ से आचमन कर, और कह स्वाद कैसा है ?'

'निरंतर नमकीन है पिता ।'

'निश्चय वह लवण जल में ही है । ऐसे ही ब्रह्म भी है ।'

(छां. ६. १३)

गांधार देश से एक आदमी को आँख बाँधकर दूर छोड़ दो । वह चिल्लाता फिरे—मुझे दिशा बताओ ।

तब कोई बताये, और वह ग्राम-ग्राम पूछता गांधार पहुँचे, ऐसे ही गुरु भी शिष्य को पहुँचाता है । (छां. ६. १४.)

ब्रह्म का कितना सुंदर उदाहरण दिया गया है । श्वेतकेतु का वर्णन हुआ है । स्पष्ट ही यह श्वेतकेतु दूसरा था । पुराणकार इसको पुराने श्वेतकेतु से मिलाकर गड़बड़ कर गये हैं । जिस समय यह श्वेतकेतु दिखाया गया है, उस समय समाज में दाय भाग और विवाह के ऊपर धर्मशास्त्र में विधियाँ बन चुकी थीं, समाज कहीं से कहीं आ चुका था ।

क्षत्रिय ब्रह्म पर यहाँ खूब उपदेश देते हुए मिलते हैं ।

गर्गगोत्रोत्पन्न दृप्तबालाकि का काशी के राजा अजातशत्रु से ब्रह्म ज्ञान पर वार्त्तालाप हुआ । अजातशत्रु ने कहा—सब जनक जनक पुकारते हुए मिथिला भागे जाते हैं । ब्रह्म चर्चा में दक्षिणा देने को मैं भी समुद्यत हूँ ।

अजातशत्रु सूर्य, चंद्र, विद्युत, आकाश, वायु, अग्नि, जल, शब्द ब्रह्म सबको जानता था ।

गार्ग्य : हृदय की शक्ति ब्रह्म है ।

अजात : मैं जानता हूँ ।

गार्ग्य चुप हो गया ।

अजात : बस इतना ही ब्रह्म विचार है ?

गार्ग्य : हाँ, इतना ही ।

अजात : और भी है ।

'तो मैं तुम्हारा शिष्य हो जाऊँ ।'

'यह विपरीत है कि ब्राह्मण क्षत्रिय के पास ब्रह्म विचार सीखने आये । पर मैं तुझे बताऊँगा ।'

अजातशत्रु गार्ग्य को हाथ पकड़कर एक सोये हुए आदमी के पास ले गया और उसे अनेक नाम से पुकारा। पर वह न जागा। तब उसे छूकर जगाया। वहउठ कर खड़ा हो गया।

अजातशत्रु ने कहा : आत्मा अपने में लीन था। स्वप्न में आत्मा अपने में ही लीला करता है।

उपासक के दोनों कान गोतम भरद्वाज हैं। दक्षिण गोतम है, वाम भरद्वाज। दक्षिण नयन विश्वामित्र, वाम जमदग्नि, दक्षिण नासिका वसिष्ठ, वाम कश्यप ? वाणी अत्रि है। जो इन सात देहस्थ ऋषियों को जानता है वह सब भोजनों का भोक्ता हो जाता है।

(बृहदारण्यकोपनिषद् २ अ० १–२ ब्राह्मण)

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा : मैं स्वधाम, गृह से संन्यास लेकर जा रहा हूँ। इसलिये तेरा इस कात्यायनी से निर्णय कर दूँ और तेरा संपत्ति का भाग तुझे दिलवा दूँ।

मैत्रेयी : यदि सारी धनपूर्ण पृथ्वी मेरी हो जाये, तो मैं कैसे उससे मुक्त हो सकूँगी ?

याज्ञवल्क्य ने कहा : धन से जीवन वैसा होगा जैसा औरों का है। मोक्ष नहीं मिलेगा।

'तब मैं धन का क्या करूँगी ? मोक्ष का उपाय कह ?'

'आ तुझे बताऊँ।'

याज्ञवल्क्य ने उसे उपदेश दिया। (बृहदारण्यक. २ अ० ४. ब्रा.)

अथर्वण गोत्रोत्पन्न दध्यङ ने अश्वियों को मधुविद्या का उपदेश दिया था।

(बृहदारण्यक. २ अ० ५. ब्रा. १६)

वंश का वर्णन दिया गया है। एक दूसरे से क्रमशः इस प्रकार यह विद्या चली :—

१. गौपवन
२. पौतिमाष्य
३. गौपवन
४. पौतिमाष्य
५. गौपवन
६. कौशिक
७. कौण्डिल्य
८. शाण्डिल्य
९. कौशिक
१०. गौतम
११. गौतम

यह वंश-परम्परा अजीब है। इसमें नामों की बहुत गड़बड़ है। केवल निम्नलिखित नाम ही पता चलते हैं।

१. गौपवन

२. पौतिमाष्य
३. कौशिक
४. कौण्डिन्य
५. शाण्डिल्य
६. गौतम
७. आग्निवेश्य
८. अनभिम्लात
९. आनभिम्लात
१०. सैतव
११. प्राचीनयोग्य
१२. पाराशर्य
१३. भारद्वाज
१४. बैजवापायन
१५. कौशिकायनि
१६. घृतकौशिक
१७. पाराशर्यायण
१८. जातूकर्ण्य
१९. असुरायणयास्क
२०. त्रैवणि
२१. औपजन्धनि
२२. आसुरि
२३. आत्रेय
२४. माण्टि
२५. वात्स्य
२६. कैशोर्यकाप्य
२७. कुमारहारित
२८. गालव
२९. बिदर्भीकौण्डिन्य
३०. वत्सनपात्‌बाभ्रव
३१. पथासौभर
३२. अयास्यआंगिरस
३३. आभूतित्वाष्ट्र
३४. विश्वरूपत्वाष्ट्र

३५. अश्विवद्वय
३६. दधीचि आथर्वण
३७. अथर्ववा दैव
३८. मृत्यु प्राध्वंसन
३९. प्रध्वंसन
४०. एकर्षि
४१. विप्रचित्ति
४२. व्यष्टि
४३. सनारू
४४. सनातन
४५. सनग
४६. परमेष्ठी
४७. ब्रह्म स्वयंभू
४८. ब्रह्म (आदिगुरु)

इस तालिका में प्रत्येक व्यक्ति अपने आप से ही यह विद्या सीखता है ? संभव है इतने लोगों में जो विद्या गिनाई गई है उसका कुछ महत्व रहा होगा।

(बृहदारण्यक. २ अ. ६ ब्राह्मण)

वैदेह जनक ने बहुत दक्षिणावाले यज्ञ से यज्ञ किया। उस यज्ञ में कुरु और पञ्चाल के ब्राह्मण आये। तब वैदेह जनक ने सबसे बड़े ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण की परख करने को कुछ गायें रोक लीं और एक-एक गाय के दोनों सींगों के साथ दस-दस पाद, दस-दस सुवर्णमुद्राएँ बँधवाईं।

जनक ने कहा : आप में से जो अतिशय ब्रह्मवित् है वह ये गौएँ अपने स्थान को ले जायें।

यह सुनकर ब्राह्मण चुप रहे।

याज्ञवल्क्य ने अपने ही ब्रह्मचारी से कहा––सौम्य सामश्रवा ! ये गौएँ ले चल।

वह गाएँ ले चला। तब ब्राह्मण क्रुद्ध होकर बाले––कौन अपने को हम में से अतिशय ब्रह्मवित कहे।

उस वैदेह जनक का नाम अश्वल था। उसने याज्ञवल्क्य से कहा : क्या तू निश्चय ही ऐसा ब्रह्मवित् है ?

उसने कहा––हाँ।

होता अश्वल ने नमस्कार करके फिर उससे प्रश्न पूछे। जब अश्वल को उत्तर मिल गये तब जारत्कारव आर्त्तभाग ने प्रश्न किये। उससे याज्ञवल्क्य ने कहा : जब प्रकृति के सब तत्त्वों में शरीर मिल जाता है, तब पुरुष कैसे जन्म लेता है. यह प्रश्न, हम दोनों ही

एकान्त में जाकर इसका उत्तर जानेंगे। इसका रहस्य हम दोनों जनसमूहों में नहीं समझ सकेंगे। जब उसे भी उत्तर मिल गये तब लाह्यायनि भुज्यु ने पूछना शुरू किया। उसने कहा: एक बार हम अनेक विद्यार्थी, मद्रप्रांतों में अध्ययनार्थ व्रतचरण करते हुए पर्य्यटन कर रहे थे। विचरते हुए हम पतंचल के घरों में जा पहुँचे। उस पतंचल की कन्या गंधर्व गृहीता थी। हमने गंधर्व से पूछा: तू कौन है? उसने कहा मैं गोत्र से आंगिरस, सुधन्वा हूँ। उससे जब लोकों के अंत हम पूछ रहे थे तो हमने उससे कहा——बताइये परिक्षित कहाँ होंगे? वही मैं तुमसे पूछता हूँ, हे याज्ञवल्क्य! परिक्षित कहाँ होंगे?

याज्ञवल्क्य ने बताया: वे वहाँ चले गये जहाँ अश्वमेध याजी जाते हैं।

'वे कहां जाते हैं?' सूर्य्य का चक्र देवरथ है। एक अहोरात्र का नाम देवरथाह्नय है।

याज्ञवल्क्य ने कहा: यह लोक बत्तीस देवरथाह्नय है। उसके चारों ओर दुगुनी पृथ्वी है, फिर दुगुना समुद्र है। फिर पृथ्वी और समुद्र के बीच उस्तरे की धार से भी पतला आकाश है। इन्द्र ने सुपर्ण होकर उनको वहाँ वायु के प्रति समर्पित कर दिया। वायु उन्हें धारण कर वहाँ ले गया जहाँ अश्वमेधयाजी रहते हैं।

भुज्यु लाह्यायानि चुप हो गया।

तब चाक्रायण उषस्त ने पूछा वह भी उत्तर पाकर मौन हो गया।

तब कुषीतक पुत्र कहोल ने पूछा। वह भी चुप हो गया क्योंकि उसे ठीक उत्तर मिल गया।

तदनंतर वाचक्नवी गार्गी ने पूछा।

वा० गा० जो सब पार्थिव जल में ओतप्रोत है, तो जल किसमें आतप्रोत है?

या० वायु में।

'वायु किसमें?'

'अंतरिक्ष लोकों में।'

'वह किसमें?'

'गंधर्वलोकों में।'

'वह किस में?'

'आदित्यलोक में।'

'वह किस में?'

'चंद्रलोक में।'

'वह किस में?'

'नक्षत्रलोक में।'

'वह किस में?'

'देवलोकों में।'

'वह किस में?'

'इन्द्रलोक में ।'

'वह किस में ?'

'प्रजापति लोक में ।'

वह किस में ?'

'ब्रह्मलोक में ।'

'वह किस में ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा : गार्गी ! न अति पूछ । अति पूछने से तेरा सिर न गिर पड़े । तेरी बुद्धि न भ्रम में पड़ जाये । निश्चय तू अनति पूछने योग्य देवता को पूछ रही है, तू बहुत न पूछ ।

तब वाचक्नवी गार्गी चुप हो गई ।

तब उद्दालक आरूणि ने कहा––एक बार हम विद्यार्थी लोग पतंचल काप्य के घर मद्रप्रान्त में पहुँचे । वहाँ हम यज्ञ पढ़ते थे । उस पतंचल काप्य की भार्या गंधर्वगृहीता थी । हमने पूछा-तू कौन है ? वह बोला आथर्वण कबन्ध हूँ । उसने काप्य से, हम से, सब से पूछा वह सूत्र क्या है ? जिससे लोक-परलोक सर्वभूत संग्रथित हैं ।

हमने कहा कि हम नहीं जानते । अब हे याज्ञवल्क्य तू बता । यदि नहीं बताता और गौएँ ले जाएगा तो तेरा सिर गिर पड़ेगा ।

याज्ञवल्क्य ने कहा : जानता हूँ ।

'बता ।'

'वह वायु है ।'

'अंतर्यामी का वर्णन कर ।'

उसने वर्णन किया । तब वाचक्नवी गार्गी ने कहा : पूज्यब्राह्मणो ! अब मैं याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न पूछूँगी । यदि यह उत्तर देगा तो तुम सबसे बढ़कर यह ब्रह्मज्ञानी है ।

उन्होंने कहा––गार्गी ! पूछ ।

उसने कहा : जैसे काशी का या वैदेह का उग्रपुत्र ज्यारहित धनुष ज्या मुक्त करके शत्रुओं को जीतने वाले नोंक वाले दो तीर हाथ में पकड़कर शत्रु के सम्मुख खड़ा हो, ऐसे ही दो प्रश्न लेकर मैं तेरे सामने खड़ी होती हूँ । तू उत्तर दे ।

याज्ञवल्क्य ने कहा––गार्गी ! पूछ ।

'द्युलोक से ऊपर, पृथ्वी से नीचे, द्युलोक पृथ्वी के मध्य, भूत, वर्त्तमान और, भविष्यत् जो कुछ है वह किसमें ओतप्रोत है ?'

'आकाश में ।'

'तुझे नमस्कार हो । दूसरा प्रश्न सुन ।'

'गार्गी कह ।'

'आकाश किसमें है ?'

'वह अक्षर में। वह अस्थूल, अनणु, अह्रस्व, अदीर्घ, न लाल, न चिकना, छाया-रहित, अंधकारहीन, अवायु, आकाशरहित, असंग, रसरहित, गंध नेत्र--श्रोत्र-वाणी, मन, अग्नि भाव, प्राण, मुख, परिमाण-रहित, अन्तर-रहित बाहर-रहित है। वह कुछ नहीं खाता। उसकी ही आज्ञा में सब कुछ नियमित हैं। जो उसे न जानकर मरता है वह दीन है। जो जानकर आराधना कर मरता है वह ब्राह्मण है।

अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर संतुष्ट हुई गार्गी ने कहा--हे पूजनीय ब्राह्मणो! यदि नमस्कार करने से इससे तुम छूट जाओ, तो इसी को बहुत मानो। तुम में से इस ब्रह्मवेत्ता को कोई भी नहीं जीत सकेगा। तत्पश्चात् बचक्नु की पुत्री मौन हो गई।

तब फिर शाकल्य विदग्ध ने पूछा--'हे याज्ञवल्क्य! कितने देव हैं?'

'तीन और तीन सौ। तीन और तीन सहस्र।'

'ठीक है। कितने देव हैं?'

'३ और ३०।'

'ठीक है। कितने देव हैं?'

'छः।'

फिर वही पूछा।

'तीन।'

फिर वही पूछा।

'दो।'

फिर वही।

'अध्मर्द्ध है।'

फिर वही।

'एक है।'

तब फिर पूछा, 'वे तीन और ३००, ३ और ३,००० कौन हैं?'

याज्ञवल्क्य ने देवों को बताया।

विदग्ध : 'इन्द्र कौन है? प्रजापति कौन है?'

या० : 'बादल जो गरजता है वह इन्द्र है। यज्ञ प्रजापति है।'

'कौन गरजता है?'

'बिजली।'

'यज्ञ कौन है?'

'यज्ञ पशु है।'

'एकदेव कौन है?'

'ब्रह्म है।'

विदग्ध प्रश्न पूछता चला गया। तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर देकर कहा--और पूछ।

'जल का देवता कौन है ?'

'वरुण है। और पूछ।'

'रेतस घर है, उत्पत्ति है, हृदय है, हृदय लोक है, मन ज्योति है, वह क्या है ?'

'संतान है शाकल्य ! और पूछ।'

'कौन उसका देवता है ?'

'प्रजापति ! हे शाकल्य ! निश्चय इन ब्राह्मणों ने तुझे अंगारावक्षयण बना दिया है।

शाकल्य ने कहा—'हे याज्ञवल्क्य ! यह जो कुरु पञ्चाल के ब्राह्मणों के प्रति तूने यह निरादरसूचक वचन कहा, यह क्या ब्रह्म को जानते हुए ?'

'हे विदग्ध ! ब्रह्मवेत्ता का नमस्कार। देवसहित, प्रतिष्ठासहित दिशाओं को जानता है।'

'बता ?'

'पूछ।'

पहले पूर्व का वर्णन हुआ। फिर विदग्ध ने पूछा : 'दक्षिण में कौन देवता है ?'

'यम।'

'वह किस में प्रतिष्ठित है ?'

'यज्ञ में।'

'यज्ञ किस में ?'

'दक्षिणा में।'

'वह किस में ?'

'श्रद्धा में।'

'वह किस में ?'

'हृदय में।'

'ठीक है।'

अंत में शाकल्य हार गया। तब याज्ञवल्क्य ने कहा : 'हे पूज्य ब्राह्मणो ! और पूछें यदि चाहें।'

किसी ने भी साहस नहीं किया।

(बृहदारण्यकोपनिषद् ३ अ० १-९ ब्राह्मण)।

एक बार वैदेह जनक बैठा था वहाँ, याज्ञवल्क्य आ गया। उसने पूछा—'याज्ञवल्क्य ? पशु चाहता है अथवा सूक्ष्म सिद्धान्त ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा : 'दोनों ही, सम्राट्। तुझे जो कहा वह सुनूँ।'

जनक : 'मुझे जित्वा शैलिनि ने बताया कि वाणी ब्रह्म है।'

'उसका स्थान और प्रतिष्ठा भी बताई ?'

'नहीं। वह तुम बताओ।'

'शक्ति और आकाश ।'

'मैं तुझे हाथी वृषभ सहस्र गाएँ देता हूँ ।'

'मेरा पिता मानता था अधूरा उपदेश देकर दक्षिणा न ले ।

'मुझे शौल्वायन उदङ्क ने कहा—'प्राण ही ब्रह्म है ।'

'स्थान प्रतिष्ठा बताई ?'

'नहीं, तू कह ।'

'पवन और आकाश ।'

'मैं तुझे हाथी, बैल, गाय दूँगा ।'

'अभी नहीं ।'

'मुझे वार्ष्ण बर्कु ने कहा—आँख ही ब्रह्म है ।

'स्थान प्रतिष्ठा ?'

'नहीं । कह ।'

'देखना, आकाश' ।

'मुझे भारद्वाज गर्दभीपीत ने कहा श्रोत्र ही ब्रह्म है ।

'श्रोत्र स्थान है, आकाश प्रतिष्ठा है ।

'सत्यकाम जाबाल ने कहा—मन ही ब्रह्म है ।

'मन स्थान है, आकाश प्रतिष्ठा है ।'

'विदग्ध शाकल्य ने कहा—हृदय ही ब्रह्म है ।'

'हृदय स्थान है, आकाश प्रतिष्ठा है ।'

इतने मतांतरों को देने वाले लोगों का नाम सुनकर याज्ञवल्क्य हर जगह कहता है—उनका उपदेश माता, पिता, आचार्य जैसा है —

मातृ मान्पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात्तथा—

(बृहदारण्यकोपनिषद ४ अ० १. ब्रा.)

याज्ञवल्क्य की मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी और कात्यायनी स्त्रीप्रज्ञा, दो स्त्रियाँ थीं ।

(बृहदारण्यक ४. ५. १-२.)

याज्ञवल्क्य इस समय की प्रबुद्ध मेधा है । जनक, मिथिलापुरी का राजा था । महाभारत में कई जगह उल्लेख है कि मिथिला के राजा जनक ने कहा था कि यदि समृद्ध और पूर्ण मेरी इस मिथिला नगरी में आग लग जाये और सब कुछ भस्म हो जाये, तब भी मुझे कुछ शोक नहीं होगा । महाभारत में अश्मा जनक संवाद स्यूमरश्मि जनक संवाद आदि आते हैं । सब में ब्रह्म ज्ञान की ही बात की गई है । ब्रह्म धीरे-धीरे आकाश से भी परे हो गया है ।

वह ब्रह्म जो पहले सहस्रपाद था, निराकार होकर वह अब अपाद है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्ति वेद्य न च तस्यास्ति
वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम् ।
श्वेताश्वतरोपनिषद ३. १९.
३. २० में वह वीतशोक है ।

यो देवानामधिपो
यास्मिंल्लोका अधिश्रिताः
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
(४.१३)

जो देवों का अधिपति है, जिसमें सब लोक आश्रित हैं, जो द्विपद, चतुष्पदों का ईश, उस देव की भक्ति करें ।

उपनिषदों में सृष्टि का क्रम दिया है। अलग-अलग स्थानों से लेकर एकत्र करने पर उसका एक चित्र उपस्थित होता है जो दर्शन की पृष्ठभूमि प्रगट करता है —

तैत्तिरीयोपनिषद् ७. १

अव्यक्त जगत
|
ईश्वर इच्छा से व्यक्त
|
वह प्रगटा-स्वयंभू, सुकृत ।
एतरेयोपनिषद् (१—१—४)
वह 'आतमा' ज्वलंतरूप । अकम्प अज्ञात ।
|
इच्छा से लोक रचे ।
|

अम्भस्	मरीची,	मर,	जल,
आकाश में	अंतरिक्ष में	पृथ्वी	जल

फिर इच्छा से रचा विराट पुरुष

जैसे अण्डा भेदन हो {
फिर मनुष्यादि के से नासिकाएँ
फिर वाणी, देवता. अग्नि, चक्षु,
कान, त्वचा, प्राण, हृदय, मन,
चन्द्रमा, वायु, नाभि, मलत्याग,
जननेंद्रिय ।
} बने

(२. १—५) ये सब विराट में गिरे, विराट में भूख-प्यास जगी।
वे सृष्टा से बोले—हमारा घर बताइये

वह गाय लाया । पर वह काफ़ी न थी । तब घोड़ा, पर अस्वीकृत । तब पुरुष देह स्वीकार किया । वे बोले—यह सुकृत है ।

(३. १—२) उसने लोकपालों के लिये अन्न रचा ।

अन्न की उपनिषद में बहुत महिमा गाई है । यह एक घोर वास्तविकता थी, जिसे कोई त्याग न कर सका । तब ही अन्न को ब्रह्म कहा गया । अन्न के बिना मनुष्य सब कुछ भूल जाता है ।

बृहदारण्यक. १. ४. ।

पहले ब्राह्मण था । उसने, एक होने से बढ़ न सका, तो, क्षत्रिय रचा । ११.

ब्राह्मण फिर भी समर्थ नहीं हुआ । तब वृद्धि के लिये वैश्य बनाया । १२ .

फिर भी ब्राह्मण वर्ण समर्थ न हुआ । तब उसने शूद्र बनाया ।

पूषणमियं वै पूषेयं हीदं सर्व पुष्यति यदिदं किंच ।।१३.

शूद्र पूषण है । (पोषण करने वाला) पृथ्वी पूषा है । जो कुछ यह है सबको पोषण करती है । वैसा ही शूद्र है ।

ब्राह्मण फिर भी समर्थ न हुआ । तब उसने धर्म रचा । धर्म और सत्य एक हैं । १४.

शूद्र की उपनिषद् में प्रशंसा की गई है । इन अनेक कथाओं से अनेक बातें प्रगट होती हैं ।

स्त्री को संपत्ति के अधिकार मिलने लगे थे । दान, यज्ञ, होते थे । क्षत्रिय गुरु होने लगे, प्रवाहण जैबलि पुनर्जन्म पर भाषण देता था । गार्गी स्त्री होकर ब्रह्मवादिनी थी । पौत्रायण शूद्र भी ब्रह्म पर उपदेश पाने लगा था ।

निरुक्तकार यास्क से भी पहले धर्मशास्त्र पर विवाद प्रारंभ हो चुके थे । गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब का काल ६००—३०० ई० पू० है । इन्होंने मनु[1], औपजंघनि, कात्य, काश्यप, गौतम, मौद्गल्य और हारित को उद्धृत किया है । एक, कण्व, कौत्स इत्यादि का भी नाम आता है ।[2] यह सब हमारे युग के ही हैं । मनु का समय संभवतः पुराना है । यह वैवस्वत नहीं,स्वायम्भुव मनु था । यास्क से भी पहले स्मृतियाँ थीं । उनमें मनु आचार्य था ।[3] प्राचेतस मनु का भी उल्लेख है ।[4] महाभारत में स्वायम्भुव और प्राचेतस मनु अलग-अलग माने गये हैं । पहला धर्मशास्त्र और दूसरा अर्थशास्त्र प्रणेता था ।[5] चौथी शतीई० पू० से बहुत पहले मनु का धर्म शास्त्र था ।[6]

---

१. हिधशा १ पृ० ८.
२. वही पृ० ९.
३. वहो पृ० १३६.
४. वहो पृ० १३६.
५. वहो पृ० १३९.
६. वहो पृ० १५५.

हम यहाँ संक्षेप में कलियुग की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करते हैं।

यह भारतीय दर्शन का युग है। भागवत संप्रदाय के अतिरिक्त, योग, पूर्व मीमांसा उत्तर मीमांसा, सांख्य का प्रारंभ हुआ। न्याय और वैशेषिक भी प्रारंभ हुए। यहाँ इन पर अधिक नहीं लिखा जायेगा।

महावीर से पहले के अनेक जैन तीर्थंकर प्रायः इसी युग में हुए। जैन धर्म का रूप महावीर काल में स्थिर हुआ, अतः उसे अगले अध्याय में देखना ठीक होगा।

इस समय अनेक प्रकार के मतमतांतर फैल गये जिनका उल्लेख हो चुका है। विशेष घटनाएँ भी ऊपर देखी जा चुकी हैं। इस समय भी शैव तथा आर्येतर उपासनाएँ प्रचलित थीं। विभिन्न जातियाँ थीं जिनका उल्लेख अगले अध्याय में करना ठीक होगा।

इस समय का सबसे बड़ा महत्त्व है—गणतंत्रों का उत्थान और राजवंशों को समाप्त करके ब्राह्मण धर्म को समाप्त करने की चेष्टा करना तथा आर्य अनार्य का परस्पर मिलना। बुद्ध के समय में अनेक गण थे। राजवंश फिर उठने लगे थे। इसकी ऐतिहासिक व्याख्या वहीं की जायेगी यहाँ केवल कुछ ही बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

केवल बादरी नामक एक अनार्य हुए जिन्होंने शूद्रों को भी वैदिक यज्ञ में सम्मिलित होने की आज्ञा दी।[1] १००० ई. पू. तक जो वर्ण-जातियाँ थीं या धंधे थे उनकी पी. वी. काने ने सूची बनाई है, उसको हम यहाँ उदघृत करते हैं। इसका आधार वाजसनेयि संहिता, तैत्तिरीयसंहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, काठक संहिता (१७. १३) अथर्ववेद, ताण्ड्य ब्राह्मण (३.४) और एतरेय ब्राह्मण, छांदोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद हैं। पृ० ४९-५० खं. २. भा. १.

१. अजापाल, २. अन्ध, ३. अमस्ताप, ४. अयोगू या आयोगू, ५. अविपाल, ६. आंद, ७. इशुकार, ८. उग्र, ९. कण्टककार या कण्टकीकारी, १०. कर्मार ११. कारि, १२. कितव, १३. किरात, १४. किनाश, १५. कुलाल या कौलाल, १६. केवर्त्त, १७. कोशकारी, १८. क्षेत्र, १९. गोपाल, २०. चर्मन्म, २१. चाण्डाल, २२. जम्भक, २३. ज्याकार, २४. तक्षण, २५. दास, २६. धनुष्कार या धन्वाकार या धनवक्त्र, २७. धैवर, २८. निषाद या नैषाद, २९. पुंश्चलु, ३०. पुन्जिष्ट या पौन्जिष्ट, ३१. पुण्ड्र, ३२. पुलिंद, ३३. पौल्कस, ३४. बैन्द, ३५. भिषक, ३६. भीमल, ३७. मणिकार, ३८. मागध, ३९. मारगार, ४०. मूलिब, ४१. मृगयु, ४२. मैनाल, ४३. राजमितृ, ४४. रज्जुसर्ग या रज्जुसर्ज ४५. रथकार, ४६. राजपुत्र, ४७. रेभ, ४८. वंशनर्त्ती, ४९. वप (नाई), ५०. वाणिज, ५१. वासहपलपूली (धोबिन), ५२. विदालकारी या विदलकारी, ५३. व्रात्य, ५४. शबर, ५५. शाबल्य, ५६. शैलूष, ५७. श्वानिन् या श्वानित, ५८. संगृहीत, ५९. सुराकार, ६०. सूत, ६१. सेलग, ६२. हिरण्यकार।

---

१. हिधशा २ खं. भा. १. पृ० ३६.

कुछ अन्य जातियाँ यह हैं जो ५०० ई० पू० में मिलती हैं : (पृ० ६९ से १०० तक वही) (यह जातियाँ अधिकांश पुरानी ही हैं)

१. अन्त्य, २. अन्त्यज. ३. अंतावसायी या अत्यावसायी, ४. अभिषिक्त, ५. अम्बष्ठ, ६. अमस्कार, ७. अवरीट, ८. अगिर, ९. आपीत, १०. आभीर, ११. आयोगव. १२. आवन्त्य, १३. आश्विक, १४. आहिण्डिक, १५. उद्बंधक, १६. उपकृष्ट, १७. ओड्र, १८. कटकार, १९. करण, २०. कर्मकार, २१. कर्मार, २२. कांस्यकार, २३. काकवच, २४. काम्बोज, २५. कायस्थ (अधिक प्राचीन नहीं), २६. कारावर, २७. कारुष, २८. किरात, २९. कुक्कुट, ३०. कुण्ड, ३१. कुकुण्ड, ३२. कुंभकार, ३३. कुलिक, ३४. कुशीलव, ३५. कृत, ३६. कोलिक (अंत्यज), ३७. क्षत्र, ३८. खनक, ३९. खस, ४०. गुहक, ४१. गोज या गोद, ४२. गोप, ४३. गोलक, ४४. चक्री, ४५. चर्मकार, ४६. चाक्रिक, ४७. चीन, ४८. चञ्चु, ४९ चूचुक, ५०. चैलनिर्णेजक, ५१. जालोपजीविन, ५२. झल्ल, ५३. डोम्ब, ५४. तक्षण, ५५. तंतुवाय, ५६. ताम्बूलिक, ५७. ताम्रोपजीविन्, ५८. तुन्नवाय, ५९. तैलिक, ६०. दरद, ६१. दास (मछुए), ६२. दिवाकीर्त्य, ६३. दोषमन्त, ६४. द्रविड़, ६५. दिग्वण, ६६. धीवर, ६७. ध्वजी, ६८. नट, ६९.नर्त्तक, ७०. नापित, ७१. निच्छिवि, ७२.नैषद (चातुर्वर्ण्य के अतिरिक्त), ७३. पह्लव, ७४.पाण्डुसौपाक, ७५. पारद, ६७. पारशव, ७७. पिंगल, ७८. पौण्ड्रक, ७९. पुलिंद, ८०. पुल्कस, ८१. पुष्कर, ८२. पुष्पध ८३. बन्दी, ८४. बर्बर, ८५. बाह्य, ८६. बुरुड, ८७. भट, ८८. भिल्ल, ८९. भूप (वैश्य + क्षत्रिया =), ९०. भूर्जकण्टक, ९१. भृज्जकण्ठ, ९२. भोज, ९३. मग्दु ९४. मत्स्यबंधक, ९५. मल्ल, ९६. माराविक, ९७. मतंग, ९८. मार्गव, ९९. मालाकार, मालिक, १००. माहिष्य, १०१. मूर्धावसिक्त, १०२. मृतप, १०३. मेद, १०४. मैत्र, १०५. मैत्रेयक, १०६. म्लेच्छ, १०७. यवन (पुरानी जाति है), १०८. रंगावतारी १०९. रजक, ११०. रञ्जक १११. रथकार, ११२. रामक, ११३. लुब्धक, ११४. लेखक, ११५. लोहकार ११६. वन्दी, ११७. वराट, ११८. वरुड, ११९. वाटधान, १२०. विजन्मन् १२१. वेण या वैण, १२२. वेणुक, १२३. वेलव, १२४. वैदेहक, १२५. व्याध, १२६. व्रात्य, १२७. शक (परवर्ती), १२८. शबर, १२९. शालिक, १३०. शूलिक, १३२. शैख, १३२. शैलूष, १३३. शौण्डिक, १३४. श्वपच या श्वपाक, १३५. सात्वत्, १३६. सुधन्वाचार्य, १३७. सुवर्ण, १३८. सुवर्णकार, १३९. सूचक, १४०. सूचिक, १४१. सूत, १४२. सूनिक या सौनिक, १४३. सैरिन्ध्र, १४४. सोपाक, १४५. सद्वहन्त्रन् इत्यादि ।

शूद्र की परिस्थिति हम ऊपर देख चुके हैं। जन्म मृत्यु पर जब ब्राह्मण को १२ दिन का सूतक लगता था, शूद्र को एक महीने का। (हिधशा २. १. पृ० १६०.) छूआछूत ने जातियों पर इस समय भी प्रभाव डाल दिया था (२. १. ४ अ.)।

युग और कल्प का ज्ञान इस समय खूब बढ़ चला था। ४०० ई० पू० में तो यह विचार बहुत बढ़ गया था।[1]

---

१. हिधशा ३. ८९०.

'मेगास्थनीज़ द्वारा वर्णित प्राचीन भारत पृ० ११५ पर यह उद्धरण है—(वैकस) उससे सिकंदर महान तक ६,४५१ वर्ष ३ मास गिनाये जाते हैं। इस बीच में १५३ राजाओं ने राज्य किया।'

यह कार्न ने हिधशा भा. ३. पृ० ९०१ पर उद्धृत किया है। प्लिनी ने १५४ राजा बताये हैं। पार्जिटर की राजवंश तालिका यहाँ बहुत भ्रामक है क्योंकि उसने कलियुग की तिथि में काफी गलती की है। मैक्रिंडल द्वारा अनूदित पूरी शती ईसवी की ऐरियन की इन्डिका पृ० २०३, में उद्धरण है :—डॉयोनिसस से सैन्ड्रोकोटस तक, भारतीय १५३ राजा गिनते हैं और ६,०४२वर्ष बताते हैं। इस बीच में तीन बार गणतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न किया गया—एक ३०० वर्ष को, एक १२० वर्ष को। भारतीय डामोनिसस को हेराक्लीज़ से १५ पीढ़ी पुराना बताते हैं और उसके अतिरिक्त भारत के विरुद्ध किसी ने आक्रमण नहीं किया।'

यह उद्धरण प्रगट करता है कि ४०० ई० पू० भारतीय अपने देश के 'राज्य' को ६,००० वर्ष पुराना समझते थे।

इस उद्धरण से एक बात और प्रगट होती है। यह केवल परम्परा की मुँह से मुँह चली किंवदंती है। डॉयोनिसस कौन था यह स्पष्ट नहीं है। पर विद्वान हेराक्लीज़=हरि कृष्ण; और सैन्ड्रोकोटस=चन्द्रगुप्त समझते हैं।

इस परम्परा से केवल इतना ज्ञान होता है कि इस काल में तीनबार व्यापक गणतंत्र की स्थापना करने का प्रयत्न हुआ किंतु वह असफल हो गया। इस युग के अंत में हमारे सामने गण और राज्य दोनों हैं।

यही मुख्य कारण है कि यह इतिहास बिल्कुल अंधकार में है। गण में प्रथम तो किसी व्यक्ति के नाम पर इतिहास नहीं लिखा जा सकता जैसे राज्यों में; और दूसरे यह ब्राह्मण विरोधी थे। जनमेजय (कुरुवंश) को ब्राह्मणों ने अपना विरोधी जानकर नष्ट कर दिया था (हिधशा भाग ३. पृ० ५२.) विदेह कराल, दाण्डक्य भोज, तालजंघ, ऐल, अजबिंदु सौवीर, भी नष्ट कर दिये गये।

ब्राह्मण स्रोत लिच्छवि और मल्ल गणों का साक्षी नहीं है। यह बौद्ध जैन स्रोत से पता चलता है।

ब्राह्मण अपने विरोधी को स्वीकार ही नहीं करता है। इसीलिये इस युग में बहुत कम राजाओं का ज़िक्र मिलता है जिन्हें पार्जिटर ने इकट्ठा किया है।

इस समय तक शूद्र और दास पहले से अधिक निकट आ चुके हैं। शूद्र संपत्ति पाने योग्य हुआ है। व्यापार बढ़ चला है और वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण विरोध कर रहे हैं, राज्यों के स्थान पर गण उठे हैं। इसी समय परिचय में तक्षशिला विश्वविद्यालय प्रारंभ हुआ जो चाणक्य के समय में विश्वविख्यात हो चुका था। शिक्षा का रूप भी धन के महत्व के साथ धीरे धीरे बदल गया था।

इस युग की चरमावस्था अगले गण—नास्तिक युग में बिल्कुल मुखर हो जाती है। अतएव अब उसी को देखना अत्यंत आवश्यक है।

जैन बुद्ध काल
द्रविड़ परिवार
किरात परिवार
आग्नेय परिवार
हब्शी परिवार
आर्य परिवार
अन्य जातियाँ
मंगोल परिवार
समुद्र यात्रा मार्ग

१०
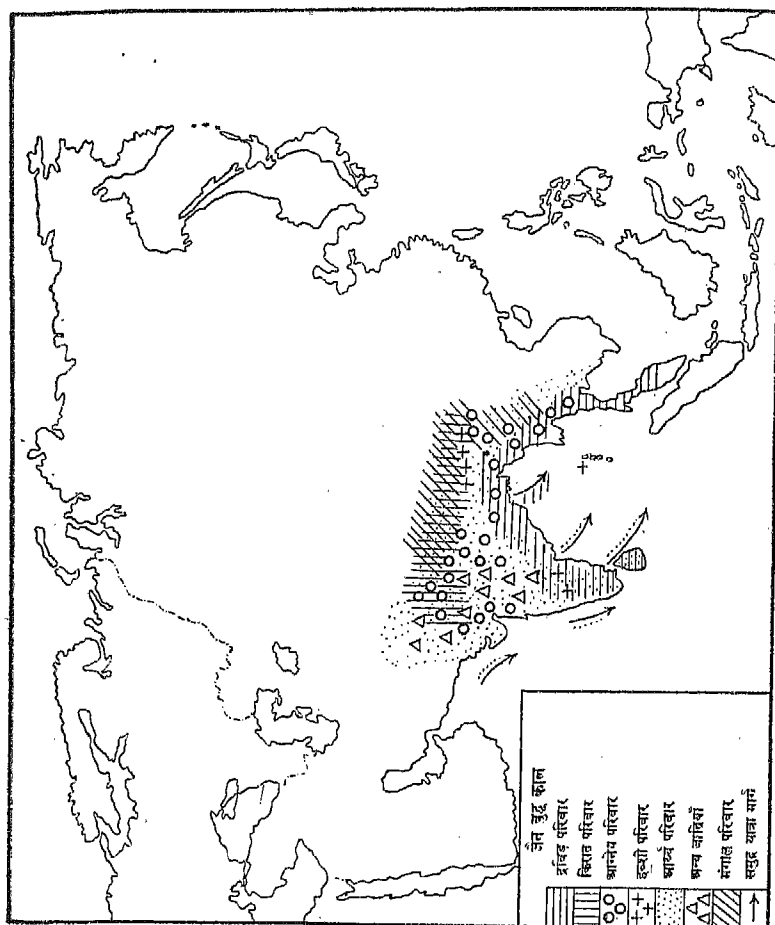
गण-नास्तिक-युग

बुद्धकाल से मौर्यों तक

इतिहास लिखते समय पहले से किसी प्रकार की धारणा, भावना या सिद्धांत बना लेना सत्य की हत्या करलेना है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अमुक देश में ऐसा हुआ अतः यहाँ भी वही हुआ। इतिहास में समानताएँ मिलती हैं, पर देश-देश के अनुसार प्रत्येक में कुछ अपनी ही विशेषताएँ होती हैं।

कलियुग का चरमोत्कर्ष ही गण-नास्तिक-युग है। यह समय गौतमबुद्ध और महावीर का काल है। इसे हमने चंद्रगुप्त मौर्य, चाणक्य और सिकंदर तक माना है। इसका निम्न-लिखित कारण है :

यह महाजनपद युग है। कलियुग के अंत में यहाँ जनपद खड़े हो गये इनमें गणों का काफी प्रभुत्व रहा। दूसरी ओर साम्राज्य बनाने का कार्य था। गण राजकुलों के हाथ में थे जिनमें दासप्रथा तीव्र रूप से विद्यमान थी। ब्राह्मणों के विरुद्ध क्षत्रिय वैश्यों ने मिलकर विद्रोह किया। क्षत्रिय साम्राज्य बनाने में लगे, वैश्यों का दूर-दूर तक व्यापार चलता था। आर्थिक दृष्टि से वैश्य अब उठ खड़ा हुआ था। उसका दबाना बहुत कठिन था। शूद्र महाभारत के बाद ही उठ खड़ा हुआ था। यहाँ दास भी स्वतंत्र हो चुका है। तभी मैंने यहीं से मध्यकाल माना है।

मध्यकाल लोग दो प्रकार से मानते हैं। एक मत है कि मध्यकाल तब से मानना चाहिये जब समाज में गतिरोध छा जाये और कोई नयापन न रहे। ऐसा भारत में तब हुआ जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया। यह ठीक है कि जो स्वतंत्रबुद्धि वराहमिहिर आदि में मिलती है वह मुसलमान काल में नहीं मिलती। सिवाय कबीर के सब ही लोग ऐसे थे जो प्रचीन के प्रमाण देकर बात करते थे। अपनी बात कह सकने की अकेले जैसे उनमें हिम्मत ही नहीं थी। मगर मेरा मत दूसरा है।

द्रविड़ युग के पहले के समाज के बारे में हम बहुत कम जानते हैं। अतः द्रविड़ युग से देखना उचित होगा।

द्रविड़ युग में दो सभ्यता के केन्द्र हमें मालूम हैं। उत्तर की किरात परिवार की जातियां और मोहन-जो-दड़ो आदि के केन्द्र। सभ्यता, आर्थिक परिस्थिति, दर्शन, धर्म इत्यादि में इनमें काफी एकत्व और काफी भेद था। इनमें विवाह, स्त्री के पुरुष से संबंध, मातृसत्ता पर आधारित थे।

गण-नास्तिक-युग पर अनेक विद्वानों ने काफी लिखा है. अतः मैं कुछ विशेष बातों पर ही दृष्टिपात करना ठीक समझता हूँ।

मध्यकाल कब प्रारंभ हुआ? मध्यकाल तब प्रारंभ हुआ जब दास प्रथा नहीं रही। और दलित ने सिर उठाया। प्रमाण है चाणक्य।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ३.१३. यह महत्वपूर्ण तथ्य है—

१. जो व्यक्ति अपने को दो बार रेहन रखेगा, यदि किसी अपराध का भागी होगा, तो वह जीवन भर दास रहेगा।

२. दास से मुर्दा उठवाना, मूत्र इत्यादि साफ करवाना, झूंठन खाने को देना, उसे नंगा रखना, मारना, गाली देना, दासी की इज्ज़त लेना—ऐसे काम हैं, जिनके होने पर दास और दासी तुरंत आज़ाद हो जाते हैं।

३. दासी पर बलात्कार करना, या करने में सहायता देना जुर्म है और ऐसा करने पर दास को खरीद के दाम देकर, मालिक उसे आज़ाद करेगा, और उससे दुगने दाम राज्य को देगा।

४. दास का पुत्र आर्य हो सकता है।

५. दास अपने मालिक की हानि न करके जो कमायेगा वह उसकी अपनी संपत्ति होगी।

६. दास पैतृक संपत्ति का अधिकारी होगा।

७. गुलामी के मोल चुकाने पर दास फिर आर्य हो सकता है।

८. दासी के बच्चा होने पर बच्चा और माँ स्वतंत्र हो जाते हैं।

अब इन तथ्यों को ध्यान से समझना चाहिये। द्रविड़ युग में मिस्र से मिलती जुलती दासप्रथा थी। देव युग के अंत में आर्य आये। वे यद्यपि इन पुरानी जातियों की तुलना में कम सभ्य थे, पर संगठित थे और दर्शन उनका कहीं अधिक स्वस्थ था। वे घोड़े और लोहे के बल पर जीते। राष्ट्रीयता का ध्यान नहीं होने से (विकास नहीं होने से) वे एक-एक जाति करके आर्यों से हारे। मध्य बर्बर युग के आर्य शीघ्र उत्तर बर्बर काल में आये और तब तक वे यहाँ की प्रमुख शक्तियों से टक्कर नहीं ले सके। राम के समय में राक्षस जाति हारी। पहले दास और शूद्र में भेद नहीं था। फिर शूद्र आर्यों के समाज में पहले से ऊंचा स्थान पा गये। यद्यपि न वे संपत्ति रख सकते थे, न उनका कोई देवता था, वे दासों की भाँति खरीद-बेच के समान नहीं थे।

त्रेता के बाद महाभारत में शूद्र के अधिकार और बढ़े। दासप्रथा थी। यह दास शूद्रों से अलग थे।

महाभारत के बाद के समय में शूद्र के अतिरिक्त दास भी उठे और परिणामतः हमने देखा कौटिल्य के समय में 'आर्यत्व' एक 'नागरिकता' के समान हो गया। पहले जो जातिवाचक था, वह कुछ 'अधिकारों का' वाचक' हो गया।

यह 'अधिकारों का वाचक' स्वरूप इतिहास में एक बड़े भारी परिवर्तन को दिखाता है। परंतु यह नहीं समझना चाहिये कि इससे फिर जाति उठ गई। यही तो भारतीय इतिहास की पहेली है। बहुत प्रारंभ से ही जाति और वर्ग दोनों थे। पहले जाति वर्ग से ही बनी। बाद में और अब तक इस प्रथा के विरुद्ध विरोध होता रहा है परंतु वर्गों ने जाति बदलकर भी इतनी सफलता नहीं पाई कि जाति प्रथा समाप्त हो जाती। इसका कारण था कि जाति का आधार यदि एक ओर वर्ण थे तो दूसरी ओर जातियाँ थीं जिनमें विभिन्न रक्त था, अपने अलग-अलग आचार-व्यवहार, दर्शन इत्यादि थे।

इतिहास की तिथियों का जहाँ तक प्रश्न है भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी विभिन्न तिथियाँ हैं। इनमें परम्परा का ही मुख्य आधार है। बात पुरानी पड़ने पर उसे और भी प्राचीन बना दिया जाता था। प्राचीनता की दुहाई भी जातियों का भ्रामक रूप रखने में बहुत सहायक हुई है।

यहाँ कुछ प्राचीन तिथियों को गिनाया जाता है जिससे इस विषय पर प्रकाश पड़ता है :—

सृष्टि संवत्सर	१,९७,२९,४९,०४७
पारसी	१,८९,९१५
कलि	५,०४९
युधिष्ठिर	४,३८९
मूसा	३,५२०
यूनानी	२,७१४
बुद्ध	२,४९१
वीर	२,४७४
विक्रम	२,००४
ईसा	१,९४८
शालिवाहन	१,८६९
हिजरी	१,३६७
बंगाली	१,३५५
चीन	९,६०,०२,४४७
मिस्र	२७,६०१
ईरान	५,९५२
यहूदी	५,७०८
इब्राहीम	३,८६८
रूम	२,७००

अस्तु। इस युग में ब्रह्मा का जोर था।[1] ब्रह्मा की उपासना का ब्राह्मणों में जोर बढ़ गया था। अथर्ववेद को बौद्धकाल में भी वह मर्यादा प्राप्त नहीं हुई थी जो 'त्रिवेद' को थी।[2] इसका कारण था कि चौथे वेद में अनार्य प्रभाव था और इसे बने अधिक दिन नहीं हुए थे। महाभारत के आदिपर्व (१.६४–७०) में तीन ही वेद गिनाये गये हैं। अथर्व का उल्लेख नहीं है।

ऊपर इस समय के जनपदों का उल्लेख किया जा चुका है। शाक्यों में बुद्ध का जन्म हुआ था। शाक्य शब्द शक से निकला है? ऐसा भी कुछ लोगों का विचार है।

कोलिय जाति के विषय में प्रिजुलस्की का मत है कि सभवत: कोलिय एक कोल ऋषि तथा शाक्य कन्या के वंशज थे (महावस्तु[3] पृ० ३५३–५५ के आधार पर) दूसरी कथा के अनुसार सुभूति शाक्य ने एक कोलिय स्त्री से विवाह किया था। प्रिजुलस्की का अनुमान है कि शाक्य उत्तर एशियाई मैदानों से आये और शाक्यों और कोलियों के जो संबंध हुए वे ही संभवत: कोल भाषा से अन्य भाषाओं को मिला देने की जड़ हैं। जिनके कारण आधुनिक मुण्डा भाषा का विकास हुआ।[4] भाषा वैज्ञानिकों के लिये यह विषय विचारणीय है।

उस समय दक्षिण में भी आर्य थे। परवर्त्ती काल के पल्लव अपने को द्रोण और अश्वत्थामा का, भारद्वाज गोत्रीय, वंशज कहते थे।[5]

प्राचीन स्थान तीर्थ बन चुके थे। बौद्धकाल में भी बाहुका, अविकक्क, सुंदरिका, बाहुमती, सरस्वती, प्रयाग तथा गया में तीर्थस्नान किया जाता था।[6] जातकों में बौद्धकाल के बीस प्रमुख नगरों का उल्लेख है: वाराणसी, सावत्थी, वेसाली, मिथिला, आलवी, कोसाम्भी, उज्जेनी, तक्कसिला, चम्पा, सागल, सुंसमारगिर, राजगह, कपिलवत्थु, साकेत, इन्दपट्ट उक्कटठ, पाटलिपुत्रक, जेत्तुत्तर, संकस्स तथा कुसी नारा।[7]

धीरे धीरे 'आर्यावर्त्त' का नाम बढ़ता जा रहा था। पतञ्जलि के समय में 'आर्यावर्त्त' खूब फैला हुआ ज्ञान था। हिमालय, परियात्र, सिंधु-सौवीर और काम्पिली के मध्य का देश आर्यावर्त्त अर्थात् पवित्र देश कहलाता था। क्योंकि चाणक्य के समय में यह विचार पूर्णरूप से विकसित था, इसका आधार हमें इसी युग में मानना होगा, यही युग था जब छोट-छोटे गणों की समाप्ति हो रही थी। बौधायन धर्मसूत्र १. १. ३१ में उल्लेख है कि

---

१. भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ० ८३.
२. ए स्टडी इन हिन्दू सोशल पोलिटी पृ० ७५.
३. इंहिक्वा २. १९२६ पृ० ७२८.
४. जग्रेइंसो ४. १९३७ पृ० ४८.
५. जबिःरिसो १९. १९३३ भाग १–२ पटना पृ० १८२.
६. मज्झिमनिकाय, वत्थुसुत्तन्त (१।१।७) पृ० २६.
७. पोलिटिकिल हिस्ट्री आफ़ एंशेंट इंडिया पृ० १६०.

अवंती, अंग, मगध, सुराष्ट्र, दक्षिणापथ, उपावृत, सिंधु और सौवीर देश मिश्र हैं। शुद्ध आर्य नहीं हैं। जो अरट्टक, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, अङ्ग, बङ्ग, कलिंग और प्रानून जाता है उसे सर्वपृष्ठ यज्ञ करना पड़ता है और कलिंग जाने का प्रायश्चित्त वैश्वानर अग्नि को बलि देना है।

जहाँ प्राचीन वैदिक धर्म है वह भारतवर्ष है। यह इसी युग के अंत में प्रचलित धारणा है क्योंकि तभी यवन (सिकंदर) आदि ने हमले किये और अनार्य जातियों ने प्रवेश अधिक प्रारंभ कर दिया, जिनके अपने अनार्य धर्म थे।

उपनिषदों के बाद से ४०० ई०पू० का समय मनुष्य इतिहास में महान है। न केवल भारत वरन् इस समय प्रत्येक देश में बौद्धिक विकास हो रहा था। यूनान में दार्शनिक विवेचन, फ़ारस में ज़रतुष्ट्र तथा चीन में कनफ्यूशियस आदि अपने-अपने महान आदर्श उपस्थित कर रहे थे। भारत में जैन धर्म, बुद्ध धर्म और आजीविक हुए तथा अन्य भी अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक, दार्शनिक सिद्धांत उठे।[1] इस युग में अभाव—जीवन के प्रति उपेक्षा का भाव—अधिक बढ़ गया था जिसके विरुद्ध आगे चलकर प्रतिक्रिया हुई।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक वृहस्पति का उल्लेख है जिसने बार्हस्पत्य मत प्रतिपादित किया। यह लोगों में त्रयी के विरुद्ध भाव फैलाते थे अर्थात् वेदों को नहीं मानते थे।

कृष्ण ने जो राज्य को व्यक्ति से ऊपर उठाने की चेष्टा की थी वह इस युग के अंत में सामंतवाद की स्थापना के साथ पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापित हुई। किंतु इसके साथ ही राज्य बढ़ाने की चेष्टा तो जारी रही, कूटनीति भी, राजनीति के साथ आवश्यक मान ली गई। जिस युग को हम बुद्ध युग कहते हैं, ध्यान रहे उस समय बुद्ध की इतनी महत्ता नहीं थी, जितनी परवर्ती काल में हुई। पहले की भाँति अब राजाओं पर पूजा का अंकुश नहीं था। जहाँ एक ओर दासप्रथा उठी, दूसरी ओर राजाओं का निरंकुश शासन प्रारंभ हुआ।

इस युग में कोई सर्वेसर्वा राजा नहीं था, जो सार्वभौम कहला सकता हो। समय आ रहा था कि चंद्रगुप्त मौर्य का उदय हो, किंतु वह अभी नहीं था।

उस समय निम्नलिखित राज्यवंश थे जिनका महत्व था :—

१. मगध का राज्य। राजगृह इसकी राजधानी थी। बाद में पाटलिपुत्र बनी। बौद्ध और जैन स्रोतों से ज्ञात होता है कि पहले बिंबसार ने राज्य किया। बाद में अजातशत्रु ने।

निस्संदेह यह अजातशत्रु परवर्त्ती है। उपनिषदों वाला नहीं है।

२. उत्तर कोसल, इसकी राजधानी सावत्थी (श्रावस्ती) थी। पसेनदी (प्रसेनजित) के बाद विड़ूढभ राजा हुआ।

३. कोसल के दक्षिण में वंश या वत्स राज्य था, जिसकी राजधानी जमुनातीर पर कोसांबी थी। उदेन, परंतप पुत्र (उदयन) राजा था।

---

१. कौटिल्य. कलकत्ता. १९२७ पृ० २२.

४. उसके दक्षिण की ओर अवंती का राज्य था, जिसकी राजधानी उज्जैनी (उज्जयिनी) थी। यहाँ पज्जोत (प्रद्योत) राजा था।

इन सब राजवंशों में पारस्परिक वैवाहिक संबंध होते थे। और युद्ध भी। प्रसेनजित की बहिन, कोसल देवी, मगध के शासक बिम्बि सार की पत्नी थी। मिथिला की वैदेही, बिम्बिसार की दूसरी स्त्री से अजातशत्रु का जन्म हुआ था। उसने बिम्बिसार को मरवा डाला। कोसल देवी दुःख से मर गई। प्रसेनजित ने कोसलदेवी को दिये काशी के राज्य को, छीन लिया। उसने काशी की आय पहले दे रखी थी। अब नाराज़ होकर बंद कर दी। अजातशत्रु ने मामा के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। चौथी बार प्रसेनजित ने उसे पकड़ लिया और तब तक नहीं छोड़ा जब तक उसने काशी लेने का प्रयत्न ही नहीं छोड़ दिया। इस पर प्रसन्न होकर प्रसेनजित ने न केवल काशी का राज्य दे दिया वरन अपनी पुत्री वाजिरा भी उसे ब्याह दी। इसके तीन वर्ष बाद विडूडक ने अपने पिता प्रसेनजित् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जो उस समय शाक्य देशीय उळम्ब में था। प्रसेनजित् राजगह अजातशत्रु से मदद मांगने भागा, परंतु राह में मर गया। अजातशत्रु और उसका साला विडूडक क्रमशः वैशाली के वज्जि और शाक्य गणों से निरंतर युद्ध करते रहे।

कोशांबी के उदयन की तीन पत्नियों में से एक वासुलदत्ता थी जो अवंती की राजकुमारी थी। इनका विवाह बड़ी कठिनाई से हुआ था। प्रद्योत बड़े क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति था।

अन्य राजाओं में अवंतीपुत्र, शूरसेनों का राजा, एलैया इत्यादि का भी उल्लेख हुआ है, पर ये विशेष महत्वपूर्ण नहीं थे।

शाक्य देश में जिन प्राचीन नगरों का उल्लेख हुआ है वे ये हैं: चातुमा, सामगाम, खोमदुस्स, सिलावती, मेतलुप, उलुम्प, सक्कर और देवदह।[1] लुम्बिनी में बुद्ध का जन्म हुआ था। कपिलवस्तु मुख्य राजधानी थी। बुद्ध की माता कोलिय थी। बुद्धघोष ने लिखा है कि बुद्ध के पिता की ओर से ८,००० कुटुंब संबंधी थे, और उतने ही माता की ओर से। इससे जनसंख्या का पता चलता है। शाक्य देश काफी बड़ा रहा होगा।[2]

बुद्ध के समय में ये १६ राज्य थे:—

१. अंगा, २. मगधा, ३. काशी, ४. कोसला, ५. वज्जी, ६. मल्ला, ७. चेती, ८. वंसा, ९. कुरू, १०. पञ्चाला, ११. मच्छा, १२. शूरसेना, १३. अस्सका, १४. अवन्ती, १५. गंधारा, १६. कंबोजा।[3]

कपिलवत्थु के संथागार में आम काम होते थे। जो सभापति हुआ करता था, उसको

---

१. बुधिस्ट इंडिया १९१७ पृ० १८.

२. वही पृ० १८.

३. वही पृ० २३.

राजा कहते थे। तभी चाणक्य ने 'राजशब्दोपजीविनः' का प्रयोग किया है कि राजा शब्द के उपजीवी वे वास्तव में राजा नहीं हैं।

शाक्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित छोटे-छोटे राज्य या जातियाँ थीं—[१]

१. भग्ग, संसुमार पर्वत स्थान
२. बुलि, अल्लकप्प ,,
३. कारनाम, केसपुत ,,
४. कोलिय, रामगाम ,,
५. मल्ल, कुसीनारा ,,
६. मल्ल, पावा ,,
७. मोरिय, पिप्फलीवन ,,
८. विदेह, मिथिला ,, } =वज्जि
९. लिच्छवि, वेशाली ,, }

बुद्ध के समय में मगध और कोसल का युद्ध हुआ। लिच्छवि गण मगध की ओर हो गया। कोसलों के इन राजाओं का उल्लेख है—वन्क, दब्बसेन, कंस, बुद्ध से पहले थे। इन्होंने काशी पर कई बार हमले किये थे।[२]

गंधारा की राजधानी तक्षशिला थी जिसमें इस समय विश्वविद्यालय प्रसिद्ध था। बुद्धकाल में गंधारा के राजा पुक्कुसाति ने मगधराज बिम्बिसार को पत्र और राजदूत भेजा था।

कम्बोजा की राजधानी द्वारका थी।

७वीं ईसवी पूर्व, अयोज्झा, वाराणसी, चम्पा, कम्पिल्ल, कोसंबी, मधुरा, (मथुरा) मिथिला, राजगह, रोरुक, साकेत, सागल (स्यालकोट), साबत्थी, उज्जेनी, वेसाली मुख्य नगर थे।

गांव सीधे सादे थे। वहाँ बहुत धनी नहीं रहते थे। गांव के बाहर ही बुराइयाँ बसती थीं। चरागाह पर किसी का व्यक्तिगत कब्ज़ा नहीं होता था। कभी-कभी अकाल पड़ जाते थे (बुधिस्ट इंडिया पृ० ४८–४९)। गांवों में दूसरे के लिये धन लेकर, तनख्वाह पर काम करना हतक की बात समझी जाती थी। गांव वाले अपने मुखिया के आधीन स्वतंत्र रहते थे। केवल राजा को कर देते थे। (वही पृ० ५१)

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गांवों में से दासप्रथा धीरे-धीरे टूटने लगी थी, जो आगे चलकर नगरों में भी टूटने को विवश हुई।

भारतीय शुंगकालीन कला तथा स्थापत्य का संबंध समसामयिक फ़ारसीकला से नहीं मिलता। बल्कि ८०० ई० पू० के बैबोलोनिया, तथा अन्य पश्चिमी एशियाई (हिताइत

१. बुधिस्ट इंडिया पृ० २२.
२. वही पृ० २५.

आदि) की शैली से अधिक साम्य रखता है ।[१]

शुंगकाल के बाद भारतीय स्थापत्य तथा चित्रकला पर यक्षों का गहरा प्रभाव पड़ा है। नागों का भी प्रभाव मिलता है। पवाया और भेलसा की यक्षी मूर्त्तियाँ 'सयोनि' अंकित हैं।[२] यक्ष में 'योनि' का इतना मुखर महत्व उनके जीवन के अनुरूप है क्योंकि ऊपर उनके यौन स्वतंत्र समाज का वर्णन किया जा चुका है। उसे यहाँ फिर दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

आलवक यक्ष की कथा से प्रगट होता है कि यक्ष बौद्धमत के विरोधी थ।[३] बौद्धों के अनुसार यक्ष कच्चा मांस खाते थे।[४] वे बौद्धों की हत्या करते थे।[५] सब तरह से भयानक माने जाने पर भी, ब्राह्मणों के साहित्य में यक्ष को इतना बुरा नहीं कहा गया है। यक्ष बुद्ध के समय में अपना 'वैराग्य-विरोधी-मत' मानते थे।

यक्षों के समाज में स्त्री से घृणा करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। यक्षों में जादू आदि का प्रचलन था। मुर्गे की बलि दी जाती थी। वे मदिरा पीते थे, आदि ऊपर कहा जा चुका है।

लंका में यक्ष नगर का नाम सिरीसावत्थु था।[६] महावंश के अनुसार वे हिमालय वासी हैं। कुछ लंका में रहते थे।[७] अयकूटजातक में कथा है कि बौद्धों की अहिंसा से चिढ़कर यक्ष बहुत क्रुद्ध हुए और बुद्ध (बोधिसत्व) की हत्या करने के लिये आदमी को उनके पास हिमालय भेजा, जिसे शक्क (बुद्ध) ने डरा दिया।[८] राज तरंगिणी में यक्षों के काश्मीर में रहनें के विवरण हैं।[९]

वज्रपाणि यक्ष का बौद्धों में वर्णन है। वह आकाश में खड़ा था ताकि बोधिसत्व के विरोधी के सिर के सात टुकड़े कर दे।[१०] और भी कुछ प्राचीन जातियाँ अभी अवशिष्ट थीं। इसका उल्लेख मिलता है। गौतम ने (दीघनिकाय, अंबट्ठसुत्त पृ० ३६) अम्बट्ठ से कहा था कि पिशाचों को पहले कृष्ण कहते थ।

---

१. यक्ष २ पृ० १८.
२. विक्रम स्मृतिग्रंथ के चित्र दर्शनीय हैं।
३. भारतीय संस्कृति और अहिंसा पृ० ७६.
४. द वाइल्ड ट्राइब्स आफ़ एन्शेन्ट इंडिया पृ० १२८.
५. वही पृ० १२९.
६. वही पृ० १३०.
७. वही पृ० १३१.
८. वही पृ० १३१.
९. वही पृ० १३२.
१०. मज्झिम निकाय, चूलसच्चक (१।४।५) पृ० १४०.

भूतों और यक्षों से मनुष्य की रक्षा होनी आवश्यक थी। यक्ष लोग भगवान के प्रवचन से अप्रसन्न रहते थे तभी भगवान ने आटानाटिय रक्षा कही थी।[1]

यक्ष आलवक का राज्य अनार्य देश था। (गौतम के समय में) यह गंगा तीर पर बसा छोटा-सा राज्य था।[2]

मल्लों में दो भेद थे। उत्तरी मल्ल पाटलिपुत्र के दक्षिण में शबरों के साथ रहते थे मल्ल कुशीनारा में भी रहते थे। बेडर शबरों से मिलते-जुलते थे। तेलगु भूप्रदेश में रहते थे।[3]

सप्तकुलाचलों के वर्णन से जातियों का आवास स्पष्ट होता है।

कुलाचल	जाति
महेन्द्र	कलिंग
मलय	पांड्य
सह्य	अपरांत
शुक्तिमत	भल्लाट
ऋक्ष	माहिष्मति के वासी
विंध्य	आटव्य
पारिपात्र अथवा पारियात्र	निषाद [4].

चंद्रगुप्त और पर्वतेश्वर की सेना में शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक, वह्लीक तथा अन्य श्रेणिनका अधिनायक चाणक्य था। उसने इन्हें कुसुमपुर के चारों ओर नियुक्त किया था।[5] अटवीराज्य महत्वपूर्ण माने जाते थे।

४८० ई० पू० जब फ़ारस के राजा जरज़ीस यूनान पर ४९ करद जातियों को साथ लेकर आक्रमण किया तब गांधार (भारतीय) भी उसके साथ थे।[6] शकों तथा पल्लवों में निकट संबंध था।[7]

ईसा से पहले की शतियों में चीन से भारत का संबंध था।[8] चीन के यूनान नामक स्थान का माल भारतीय व्यापारी आसाम से लाकर, मध्य एशिया तक ले जाते थे।[9] इंडो-

१. दीघनिकाय पृ० २७७ आटानटिय सुत्र ३। ९.
२. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ एन्शेन्ट इंडिया पृ० १६०.
३. द वाइल्ड ट्राइब्स इन ऐन्शेन्ट इंडिया पृ० ६५–६६.
४ जडिले २८. कलकत्ता १९३५ पृ० १२.
५. द वाइल्ड ट्राइब्स इन ऐन्शेन्ट इंडिया पृ० ३४.
६. ऐन्शेन्ट इंडिया रैटसन पृ० ८६.
७. वही पृ० १४४.
८. इंडो आर्यन एण्ड हिंदी पृ० ७२–७३.
९. वही।

चीन में नहात्रंग का पवित्र स्थान द्वापर काल का समझा जाता था।[१] स्याम का दूसरा नाम द्वारावती था। इसमें भारत से जाकर शैवमत फैल चुका था।[२]

दक्षिण के तमिल जहाज बनाते थे। वहाँ अवंती, मालव, मगध, मराडम के कारीगर जाया करते थे (मणिमेकलाई सर्ग १९. ११. १०७) लंका और तमिलों में युद्ध हो जाता था। एक बार तमिलों ने कावेरिपट्नम बनाने के लिये १२,००० लंका के नागरिकों को बंदी बनाया और पकड़ लाये (द० बिगिनिंग्स आफ़ साउथ इंडियन हिस्ट्री पृ० ३५५)

बौद्ध महावंश में ७. ६८. न पुलिंदों को लंका विजेता विजय और यक्ख राजकुमारी कुवण्णा की संतान माना। बौद्ध उन्हें नीच कुल, म्लेच्छ कहते थे और उन्हें महाव्युत्पत्ति (१८८. १५) में चांडाल, मातंग, शबर, पुक्कस, डोम्ब के साथ प्रत्यंत जनपद में रखा गया है।[३]

उदयन कथा में, बृहत्कथा के लेखक ने बताया है कि पुलिंग कौशाम्बी के राजा के मित्र थे, जो वासवदत्ता के प्रेममें पड़ गया था। उनकी राजधानी कौसांबी और उज्जयिनी के मार्ग पर विंध्य में थी। उनका राजा एक क्रूरमन देवी काउपासक था, नरबलि देता था, और लूटता था।[४]

कलिंग द्रविड़ देश था। वहाँ के ओड्र लोग अपनी भाषा बोलते थे।[५] उत्तर भारत बाहरी दुनिया से पृथ्वी मार्ग से संबंध रखता था। दक्षिण भारत समुद्रों से। कार्नेलियस नेपोस ने कहा है कि क्यू मेरोसल सेलर ने सुइवी के राजा के भिजवाये कुछ भारतीयों को अपने यहाँ देखा, जो व्यापारी थे। और तूफ़ान में बहकर जर्मनी पहुँच गये थे।[६]

पैरिप्लस ने निम्नलिखित स्थानों का वर्णन किया है—कमर (कखेरिपट्नम)
पोडुक (पाडवई या पण्डिचेरी ?)
सोत्र मा (तमिळ शोपट्टनम् या किलेबंदी वाला बंदरगाह;
दमिरिका (तमिल देश)[७]
इलम (लंका)
कालकम (बर्मा में)[८]

---

१. इंहिक्वा २. १९२६. पृ० ६७४.
२. वही पृ० ६७८.
३. प्रि-आर्यन एण्ड प्रि-द्रविडियन पृ० ८८.
४. वही पृ० ८८.
५. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ़ बंगाली लैंग्वेज पृ० ७४.
६. द बिगिनिंग्स आफ़ साउथ इंडियन हिस्ट्री पृ० ११३.
७. वही पृ० १२३.
८. वही पृ० १२६.

जैनस्रोत में—चंपा की समुद्रयात्राएँ तथा व्यापार, अश्व विक्रय, कालीयदीव में घोड़े बेचना, स्वर्गरत्न का स्थान होना, कम्बोज के घोड़े, पुण्ड्र की काली गायें, भेरण्ड की ईख, महाहिमवन्त का गोशीश चन्दन, पारसौल का फ़ारस का शंख, फोफल चंदन, अगरु, मंजिट्ठा इत्यादि भेजना, उल्लिखित हैं।[1]

दमिल स्त्रियाँ दासियाँ बनाकर लाई जाती थीं।[2] बर्बर देश भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा से अरब सागर तक फैला हुआ था। वहाँ से बर्बर स्त्रियाँ दासी बनाकर लाई जाती थीं।[3]

द्रविड़ों के हाथ से समुद्र व्यापार आर्यों के हाथ में आ गया। और चीन, मिस्र तथा पूर्वी जगत् से भारत का संबंध नये सिरे से होने लगा।

इस समय भारतीय दूर-दूर तक फैलने लगे। कुवेर का मत यवद्वीप में है।[4] जावा में दालंग खेल अब भी दिखाये जाते हैं जो यमपट्टक के पर्याय्य हैं।[5] गणेश की जापान में उपासन होती थी मंदिरों में मदिरा निषिद्ध होने पर भी गणेश को भेंट की जाती थी।[6]

चंद्रगुप्त मौर्य के समय तक दक्षिण भारत स्वतंत्र तथा। अशोक को वह पैतृक संपत्ति के रूप में मिला था। अर्थात् बिंदुसार ने उसे जीता था।[7] दक्षिण के लोग सशक्त ही रहे। अशोक न उनसे वैसी ही संधि की थी जैसी उसने ग्रीकों से की थी।[8]

बुद्ध से पहले ही भारत में पुराण बनने लगे थे। आज हमें उनका असली स्वरूप नहीं मिलता परंतु इसके आधार मिलते हैं कि तब भी पुराण थे।

१८ पुराणों में १० शिव के हैं, ४ ब्रह्मा के, २ देवी तथा २ विष्णु के हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र ४०० ई० पू० के पास का है। उसमें पुराण का उल्लेख है : पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदारहणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतिहासः (अधि १. अ. ५ प्रकरण २)

पुराण का उल्लेख अथर्ववेद में भी है।[9] पहले पुराणों में स्मृति संबंधी विषय नहीं होता था।[10] पाञ्चरात्र संप्रदाय संबंधी वायुपुराण बहुत पुराना है।[11] महाभारत का

१. लाइफ़ इन ऐन्शेंट इंडिया पृ० ११५.
२. वही पृ० २७९.
३. वही पृ० ३५८—५९.
४. यक्ष २. पृ० ५.
५. इंहिक्वा ५. १९२९ पृ० १८५—८७.
६. यक्ष २ पृ० ४.
७. द बिगिनिंग्स आफ साउथ इंडियन हिस्ट्री पृ० ८५.
८. वही पृ० ३५१.
९. न्यूइंए २. १९३९ अगस्त प० ३०२—३.
१०. स्टडीज़ इन पुराणिक रेकार्ड्स पृ० ५.
११. वही पृ० १९.

नारायणीयभाग पाञ्चरात्र का बहुत पुराना लेख है ।[1]

पाञ्चरात्र पहले एकेश्वरवाद था । भागवत या पाञ्चरात्र का प्रतिष्ठाता कृष्ण वासुदेव था, जो बहिरंग प्रदेशवासी यादव जाति के सात्वतों में से था । कृष्ण ईसापूर्व चौथी में भारत में ईश्वर माना जाता था । पाञ्चरात्र और सांख्य मिलने पर कृष्ण वासुदेव संप्रदाय में नारायण संप्रदाय मिल गया । ईसा की तीसरी शती पहले यह संप्रदाय मध्यदेश के ब्राह्मणधर्म के संसर्ग में आया । ब्राह्मण और भागवत बौद्ध विरोधी थे । पाञ्चरात्र ब्राह्मण अब्राह्मण हो गया । वासुदेव धीरे-धीरे विष्णु से मिला । वैसे ही कृष्ण भी जो वासुदेव का नाम था विष्णु से मिल चला । धीरे-धीरे व्यूह और अवतार के सिद्धांत चले । अंत में पाञ्चरात्र वैष्णव हो गया । श्री या लक्ष्मी संप्रदाय उठा । पर व्यूह, विभव, अंतर्यामिन्, अज इत्यादि का विकास स्वीकृत हो गया ।[2]

राजपूताना के घोषुण्डी लेख से प्रगट होता है कि संकर्षण वासुदेव की पूजा २०० ई०पू० में भारत में होती थी ।[3] वृष्णि वासुदेव पूजा करते थ ।[4] राजा उपरिचर इसको अच्छा मानता था और चित्रशिखण्डिन् इसका आरंभ करने वाले थे ।[5] उपरिचर के यज्ञ में पशुबलि नहीं हुई थी ।[6] वासुदेव कृष्ण की पूजा मौर्य्यकाल में थी, पर बहुत पहले प्रारंभ हुई होगी ।[7] कृष्ण गोत्र नाम था । उस समय पुरोहित का गोत्र ही क्षत्रिय का भी गोत्र होता था ।[8] ४००ई०पू० की भगवद्गीता में व्यूहों का वर्णन नहीं है ।[9] गीता में उपनिषद के ब्रह्म का प्रभाव है । अक्षर ब्रह्म का वर्णन है ।[10] बौद्ध काल से पहले उठनेवाले दार्शनिक मतांतर का एक रूप गीता है ।[11] उपनिषद में जो उपासना थी, प्राचीनकाल म,सतत ध्यान के रूप में भक्ति उससे मिलती-जुलती मानी जाती थी ।[12] सब उपासना 'एक' को पहुँचती है । निम्न जातियों पर भागवत संप्रदाय' कृष्ण वासुदेव मत का प्रभाव पड़ा ।[13] बौद्ध घट

१. स्टडीज इन द पुराणिक रेकार्डस पृ० १९८.
२. इंहिक्वा ४. १९३३ पृ० ६४५–४६.
३. वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स पृ० ३.
४. वही पृ० ४.
५. वही पृ० ५.
६. वही पृ० ६.
७. वही पृ० ९.
८. वही पृ० १२.
९. वही पृ० १३.
१०. वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स ृ० २७.
११. वही ृ० २८.
१२. वही पृ० २९.
१३. वही पृ० ३०.

जातक में अंधकवेणु के नाम से वासुदेव के उपासक का उल्लेख है। संभव है यह अंधकवेणु, अंधक और वृष्णि को मिलाकर कहा गया है।[1]

राम ईसा से पहले ही अवतार थे पर उनका संप्रदाय उस समय नहीं था।[2]

भागवत् पुराण में अवतारों में सनत्कुमार, नारद (सात्वत मत के जन्मदाता), कपिल (जिसने सांख्य आसुरी को सिखाया), दत्तात्रेय, ऋषभ (जैन) तथा धन्वतरि का नाम है।[3] शिव भी भागवत कहे जाते थे।[4]

इन संप्रदायों के अतिरिक्त जो प्राचीन मत थे वे भी अपने बिना माँजे स्वरूप में जीवित थे।

लौकिक संस्कृत का उदय हुआ और जनभाषा का स्थान पाली ने ग्रहण किया।

जातियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान को हट जाती थीं। 'भारतवर्ष में जाति भेद' नामक पुस्तक में क्षितिमोहन सेन ने प्रदर्शित किया है (पृ० १२०) कि अभी तक भारत में नागों और सुपर्णों के वंशज अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग नाम से जीवित हैं।

इस समय वर्णसंकर बढ़ रहे थे। जातियों में असवर्ण विवाह होता था। 'रोटी, बेटी' का संबंध ही धीरे-धीरे जाति का आधार बनता जा रहा था। शाम शास्त्री का मत है कि सूत्र युग अर्थात पहले अध्याय के काल के अंत में, पाणिनि आदि के समय में सभी जाति के लोगों के हाथ का अन्न ग्रहण किया जाता था। (भारतवर्ष में जातिभेद पृ० १२५) गौतम धर्म सूत्र (२ । ४२) के अनुसार पतित और अभिशप्त को छोड़ कर सबके घर ब्रह्मचारी अन्न ग्रहण कर सकता था। (वही पृ० १२६.)

शूद्र तपस्वी भी होने लगे थे। मार्कण्डेय पुराण में ऐसी कथा का उल्लेख है (वही पृ० ९३) शबर जाति का संबंध भी बढ़ रहा था। स्कंद पुराण के आवन्त्यखंड में भक्त शबर की कथा है। (वही पृ० ९३.)

लिंग पूजा को प्रारंभ में आर्यों ने घृणा की दृष्टि से देखा था। किंतु परवर्त्ती काल में उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया और शिव बाद में बड़े देवताओं में मान लिये गये। (वही पृ० ६४–६५) आचार्य क्षितिमोहन का मत है कि मुनि पत्नियाँ जो शिव के प्रति अधिक आसक्त बताई गई हैं, उसका कारण है कि वे आर्येतर थीं। अतः अपने पितृकुल के देवता को नहीं भूल सकीं। (वही पृ० ६७.)

भृगुगण खूब निष्ठावान् ब्राह्मण थे। इन्होंने लिंगधारी शिव को शाप दिया था, विष्णु के वक्ष पर ठोकर मारी थी। वैष्णव धर्म प्राचीनतर वैदिक के उस पदाघात से लांछि-

---

१. वैष्णविज़्म, शैविज़्म एण्ड माइनर रिलीजस, सिस्टम्स पृ० ३८

२. वही पृ० ४७.

३. वही पृ० ४२.

४. वही पृ० १०८.

होकर हमारे देश में प्रतिष्ठित हुआ (वही पृ० ६९)। विष्णु पहले सूर्य्य था, बाद में उसे वासुदेव पूजा के साथ मिलने पर दूसरा रूप मिला।

अनार्य देवी देवताओं के पुरोहित शूद्र या अनार्य थे। धीरे-धीरे उनका स्थान परवर्त्ती काल में ब्राह्मणों ने ले लिया। (वही पृ० ७१)

आर्य विवाह में सिंदूर का प्रचार अनार्यों ने ही किया था (वही पृ० ७७)। यह वस्तुत: नागों की वस्तु है।

प्राचीनतम जातियों के वंशजों में अब भी केरल में पशुपूजा होती है। एक वर्गीकरण में मछली, छिपकली, कौआ और कांतर आती है। दूसरे में बड़े उपास्य हैं—गाय, बैल, काला नाग, हाथी, चीता[1]। केरल में पत्थर-पूजा भी है। आर्य पूर्व चिह्नों में स्वयं की वेदी है।

आत्मा तथा देवपूजा के तीन रूप हैं :—

देवी-देवता उपासना केवल पहाड़ी कबीलों जातियों में चलती है। गंधर्व, यक्ष, किन्नर, उपासना के समान यह लोग मलवाली अर्थात् मल्लन्, मुनि, परकुट्टी, तिकुट्टी इत्यादि की पूजा करते हैं। पर्वत, वन, वृक्ष, नदी की भी पूजा चलती है। काली, भद्रकाली, बीरभद्रन्, भगवती, अय्यप्पन, वेट्टक्करन, शास्ता इत्यादि उपास्य हैं।

दूसरे उपास्य हैं भूत, प्रेत, राक्षस इत्यादि।

तीसरे उपास्य पितर हैं, जिनकी दुर्घटनाओं में मृत्यु हो गई और मृतक संस्कार उचित रूप से नहीं हो सका।[2]

द्रविड़ रीति-रिवाज उपासना हिंदू ढंग से मिल गई और द्रविड़ मंदिर बन गये। अब उन्हें अलग-अलग करके पहचानना कठिन काम है। समस्त देवियाँ एक देवी बन गईं और शिवपत्नी कहलाईं, कुछ विष्णु की तथा और भी कम ब्रह्मा की कहीं गईं। कोई विशेष रिवाज या कोई विशेष किंवदंती ही अवशिष्ट होकर इसका अंदाज देती है कि एक समय इन पद्धतियों में कुछ द्राविड़ था। जहाँ पुजारी नीचि जाति का हो वहाँ यह स्पष्ट रहता है। इसी प्रकार वे सब पुरुष देवता जो पहले ग्रामीणों को भयभीत किया करते थे धीरे-धीरे शिव के पुत्र हो गये, कुछ ही उनमें दयालु बन सके जो वैष्णवमत से सान्निध्य स्थापित कर सके। पहाड़ी देवी-देवता भी अपने को किसी न किसी हिंदू देवी-देवता से संबंधित बताते हैं। इस प्रकार वृक्ष, पशु तथा आत्माओं की उपासना, शैव, वैष्णव तथा भगवती पूजा से एकदम मिल कर आपस में घुलमिल गई हैं।[3]

विनायक, फल्गुचंडी, श्यश्भनाक्षी तथा मंगला की गया क्षेत्र में उपासना होती थी।[4]

---

१. इंहिक्वा १५. १९४३. पृ० ५२३.
२. वही पृ० ५२७.
३. इंहिक्वा १५. १९४३. पृ० ५३९.
४. गया एण्ड बुद्ध गया पृ० २१.

प्रारंभ में चट्टानों, गिरिश्रृंगों की पूजा थी, केवल प्रकृति पूजा। दूसरी मंज़िल में लिंग आदि की पूजा चली। तीसरे रूप में मूर्त्ति पूजा आई, देवी-देवता आ गये।[१]

स्त्री पूजा भारत में चल रही थी। उसके केन्द्र अलग-अलग स्थानों में थे।

बौद्धों की तारा का पार्वत्य प्रदेश (तिब्बत) में जन्म हुआ।[२] नागार्जुन ने भोट (तिब्बत) में एकजटा की उपासना को फिर से जाग्रत किया था। एकजटा तारा भगवती का दूसरा नाम था।[३]

तिब्बत से तांत्रिक साधना भारत में दूसरी ही सदी में आ गई। तारा मत भारत और दक्षिण द्वीपों में फैल गया।[४]

हरिवंश का वर्णन है कि मुर्गों, बकरों, भेड़ों, चीतों, शेरों से घिरी नारायणी, जो दुर्गा का दूसरा नाम है, घंटा निनाद में शबर, बर्बर, पुलिंद, इत्यादि की उपास्य थी। यह जातियां विंध्य में रहती थीं।[५]

चण्डिका को सब देवताओं ने उपहार दिये। कुबेर ने उसे शराब का प्याला भेंट में दिया था।[६]

शबर चण्डिका दुर्गा की उपासना करते थे।[७] बलि देते थे।[८]

९७३ ई० में गंग राजा सत्य वाक्य कोंगुणि वर्मा धर्म महाराज ने किरातों का नाश किया था।[९]

दंड नाथ पुणिस, विष्णुवर्धन बिट्टि देव होयसल नरेश का प्रसिद्ध सेनापति था। उसने किरात राज्य को अपना अनुचर बना लिया था। हराकर शक्ति छीन ली थी।[१०]

किंतु कुछ जातियाँ ऐसी थीं जो आर्यों में मिल गई थीं। यह नाग थे। आगे चलकर भारशिव नागों ने अश्वमेध किये पर 'एकराट' नहीं बने। गणों के समान उन्होंने राज्यों को स्वतंत्रता दी।[११] यह भी शिव शिवलिंग रखते थे, परम शैव थे।[१२]

---

१. गया एण्ड बुद्ध गया पृ० ५९.
२. द वाइल्ड ट्राइब्स इन इंडियन हिस्ट्री पृ० २६.
३. वही पृ० २७.
४. वही पृ० २७-२८.
५. वही पृ० २९.
६. वही पृ० ३०.
७. वही पृ० ४७.
८. वही पृ० ४८.
९. द वाइल्ड ट्राइब्स आफ़ एन्शेन्ट इंडिया पृ० ३६.
१०. वही पृ० ३७.
११. जबि ओरिसो १९. भाग १-२. पृ० ५२.
१२. विक्रम स्मृति ग्रंथ पृ० ६८८.

इस युग के अंत तक भारत के उत्तर का नाम आर्य्यावर्त्त पड़ गया।[1] इसी युग में स्त्री को व्यक्तिगत संपत्ति रखने का अधिकार मिला।[2]

महावीर के समय में अनेक प्रकार के तपस्वी हुआ करते थे।

शरीर को अनेक प्रकार से कष्ट दिया जाना और उसे तपस् कहना इस समय बहुत प्रचलित था।

महावीर के ११ गण थे। इद्र भुई, अग्निभुई, वानभुई, नियत्त, सुहम्म, मण्डिय, मोन्ययुत्त, कंप्रिय, अयलभाया, मेइरुन, पभास। जमाली महावीर का भांजा तथा जामाता था।[3]

इस समय मद्र, मालव, शाल्व, उशीनर, बाह्लीक, त्रिगर्त्त (आयुध जीवी संघ), यौधेय (आयुधजीवी संघ), केकय, आभीर, शिवि, दरद, कारुष, कुलट, कुलिंद, बर्बर, अर्जुनायन, प्रार्जुन, अम्बष्ठ, निषाद, निषध, काशी, योन, कलिंग, अन्ध्र, शबर, मूतिब, पुलिंद, ज्ञातृक (इन्हीं में महावीर जन्मे), पुण्ड्र, किरात, भोज, आदि जातियाँ भी थीं। शूद्र नामक जाति भारत के उत्तर-पश्चिम में महत्त्वपूर्ण थी। यह सिकंदर को मिली थी अर्थात् इस युग के अंत में शूद्रों का वर्णन आभीरों के साथ भी हुआ है।

इस युग के विषय में अनेक ऐतिहासज्ञ लिख चुके हैं। संक्षेप में हम इतना ही कहते हैं कि अजातशत्रु के बाद अर्थात् शैशुनाग वंश की छठी पीढ़ी के बाद (५२७ ई० पू० के लगभग) इतिहास में अंधेरा-सा है। ४१३ ई० पू० में इसी वंश के राजा को उतारकर महा पद्मनन्द ने एक नये राजवंश की मगध में स्थापना की। इसकी माँ शूद्रा तथा पिता शैशुनाग राजा ही था। इसे ही शूद्र कहा गया है। इस वंश में नौ नन्द कहे गये हैं। इन्होंने मगध का प्रभाव बढ़ाया और रुपया भी खजाने में खूब जमा किया। सिकंदर के जमाने में इस राजा के पास २ लाख पैदल, २,०००० घुड़सवार, ४,००० या ३,००० हाथी, और २,००० रथ कहे जाते थे।

यह इतिहास हम बेनीप्रसाद की हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता १९३१ से उदधृत करते हैं।

ई० पू० पांचवीं सदी में ईरान के शाहंशाह ने सिंध के पश्चिम का भारतीय भाग जीता और अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस समय भी करद राजा हिंदू ही रहे।

इसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य घटनास्थल पर आ गया।

---

१. ऋग्वेदिक कल्चर ऑफ़ द प्रि-हिस्टारिक इन्डस १ पृ० १५.

२. असुर इंडिया पृ० १२९.

३. लाइफ़ इन ऐन्शेन्ट इंडिया पृ० २५.

*प्राचीन आर्य कुल गण, जहाँ सब अपनी रक्षा के लिये शस्त्र रखते थे। इन आर्यों में अभी वर्णव्यवस्था पुरानी रीति पर ही थी।

इस युग का सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति, जिसने समाज में एक नयी वस्तु उपस्थित की, गौतम बुद्ध था ।

सिद्धार्थ गौतम का जन्म शाक्य वंश में ४६३ ई० पू० हुआ । उसका पिता शुद्धोदन शाक्यों के प्रजातंत्र की गणसंस्था के अनेक राजाओं में से एक था । यह विरक्त हो गया और पहले आलार कालाम के पास गया । कालाम ने कुछ योग की विधियाँ बताई । उनसे सिद्धार्थ तृप्त नहीं हुआ । तब वह उद्धक रामपुत्र (उद्रक रामपुत्र) के पास गया । उसने भी योग सिखाया । तब ऊबकर सिद्धार्थ ने ६ वर्ष तक बोध गया के पास योग और अनशन की भीषण तपस्या की ।

बुद्ध इसमें काला पड़कर सूख गया । फिर वह दाल-भात खाने लगा । उस समय बुद्ध के पास पांच भिक्षु रहते थे । खाते देखकर वे उदासीन हो चले गये । २९ साल की उम्र में (५३४ ई० पू०) बुद्ध ने घर छोड़ा । ३६ साल की उम्र में वे बुद्ध हुए । फिर ४५ वर्ष अपने धर्म का उपदेश देकर ४८३ ई० पू० में ८२ वर्ष की आयु में कुसीनारा में, अधिक मांस खा जाने के अजीर्ण से, अंत में निर्वाण प्राप्त कर लिया ।

यह है बुद्ध का संक्षिप्त जीवन जिसमें किसी प्रकार की अलौकिकता नहीं जोड़ी गई है कि उनकी माँ को सुपना हुआ और वे बुद्ध बने । यह कथाएँ बाद की जोड़ी गई हैं ।

बुद्ध और महावीर के उपदेशों पर विचार करने के पहले तत्कालीन गणों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है । यह उद्धरण ट्राएं से लिये गये हैं ।

ज्ञातृक, नाथ या नय भी कहलाते थे । वे क्षत्रिय थे । वैशाली (बसीह) कुण्ड ग्राम और नगरहार कोल्लग और वाणिज्यग्राम में रहते थे । वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वाणिया या वाणिज्या रहते थे । नायों में पार्श्वनाथ के अनुयायी थे । उन्हीं में महावीर भी हुआ । यह गण क्षत्रियों के हाथ में था । सभापति राजा कहलाता था और उसका एक वायसराय और एक सेनापति होता था । क्षत्रिय नायों के सिद्धार्थ का विवाह लिच्छविकन्या तृषला से हुआ था जो चेटक की बहिन थी । यही महावीर के माता-पिता थे । वह सिद्धार्थ राजा नहीं था । महावीर का प्रधान शिष्य आनंद था (पृ० २४३-४४) ।

शाक्यों का नाम गौतम बुद्ध के कारण प्रसिद्ध है । शाक्य अपने को क्षत्रिय कहते थे । उन्होंने बुद्ध की मृत्यु पर उसके अवशेष मांगे थे । शाक्य अपना स्रोत राजा ओक्काक से ढूँढ़ते हैं । ओक्काक अर्थात् इक्ष्वाकु । उस के चार बेटे और पांच बेटियाँ थी । इन्हीं का परस्पर विवाह हुआ । बड़ी बेटी छोड़कर । जहाँ कपिल ऋषि उन्हें मिले वहाँ उन्होंने कपिल वस्तु बनाया । उन्हीं का वंश शाक्य कहलाया । भाई-बहिन के विवाह का वर्णन यहाँ है । पहले इक्ष्वाकु ऋषभ का उल्लेख हुआ है, जिसन यह प्रथा रोकी थी ।

यम और यमी के काल से ही भाई-बहिन का विवाह वर्जित था । पर यह हो सकता है क्योंकि यह शाक्य ब्राह्मण प्रभाव से बाहर थे । ब्राह्मणों ने गणों का कोई विशेष उल्लेख नहीं किया । यह गण वे आर्य थे जो वेद को कोई महत्त्व नहीं देते थे । बौद्धों में ब्राह्मणों का

उल्लेख नहीं है कि ब्राह्मण कितने प्रभावशाली थे। संप्रदायवाद के कारण यह झगड़े हुए। ठीक यही है कि दोनों स्रोतों को मिलाकर देखा जाये। यह गण रक्त शुद्धि पर विशेष जोर देते थे क्योंकि इन्हें रंग का अभिमान था। आर्य आर्य एक से थे, परंतु इनके व्यवहार अनार्यों से अच्छे न थे। उन्हें यह दास बनाकर रखते थे।

जिन पांच राजकुमारों ने कपिलवस्तु बसाया उनके नाम थे—ओपुर, निपुर, करण्डक, उल्कामुख और हस्तिकशिरस्। ओपुर कपिलवस्तु का चुना हुआ राजा था।

शाक्य गौतम गोत्र के क्षत्रिय थे। लिच्छवि और मल्ल वशिष्ठ गोत्री थे। क्षत्रिय का गोत्र उसके पुरोहित का गोत्र हुआ करता था।

कपिलवस्तु के चारों ओर सात प्राचीर थे। यहाँ राजा विढ्ढभ ने शाक्य बालकों का भीषण संहार किया था।

शाक्य बड़े अभिमानी थे। वे सिद्धार्थ को भी नहीं मानते थे क्योंकि सिद्धार्थ आयु में छोटे थे। बाद में उनके चमत्कारों को देख उन्होंने उनमें श्रद्धा प्रगट की। चावल की खेती और जानवर यही उनकी संपत्ति थी। चावल के खेतों के चारों ओर गांव बस जाते थे और जानवरों पर किसानों का समान अधिकार होता था। एक पति एक पत्नि का ही इनमें सिद्धान्त था। शाक्य बाहर वालों को अपनी कन्या नहीं देते थे। बुद्ध के पिता शुद्धोदन की दो स्त्रियाँ थीं। यह गण ने उसे विशेष रियायत दी थी क्योंकि उसने पहाड़ी पांडव कबीला जाति को दबाया था। बुद्ध को तो राजकुमार होने पर भी यशोधरा के पिता को अपने शिल्प दिखाकर प्रसन्न करना पड़ा था, तब यशोधरा मिली थी। रक्त गर्व के कारण जाति छोटी थी, उसमें बहुविवाह करना असंभव था। इस एक पत्नीव्रत, एक पतिव्रत के आधार में धार्मिक मूल्य नहीं, वरन् रक्त गर्व था। यह रक्त गर्व उच्चकुलीन गणराज्य सत्ता का आधार था।

रक्त गर्व शाक्यों में इतना अधिक था कि जब राजा प्रसेनजित् ने शाक्य कन्या विवाह के लिये मांगी तो सभा जुड़ी। उन्होंने कहा—हम कोसल के आधीन हैं। यदि कन्या न देंगे तो राजा क्रुद्ध होगा। तब महानाम ने कहा—मेरी एक वासभ खत्तिया नाम की लड़की है षोडशी है। पर माता का नाम मुण्डा है, वह दासी है। सब तैयार हो गये।

महानाम ने अपनी लड़की के साथ एक कौर से अधिक नहीं खाया। लड़की ठाठ-बाट से भेज दी गई।

स्त्रियाँ शाक्यों में काफी स्वतन्त्र थीं। वे भिक्षुणी हो जाती थीं। थेरी बन जाती थीं। तिस्सा, अभिरूप नन्दा और मित्ता हो गई थीं।

शाक्यों का एक शिल्प विद्यालय भी था जहाँ काम सिखाया जाता था। बुद्ध के प्रभाव से कई शाक्य भिक्षु हो गये। कपिलवस्तु में संथागार जुड़ता था। वहाँ पृथ्वी पर आसन बिछाये युवक और वृद्ध शाक्य बैठते थे। लगभग ५०० बैठते थे। शाक्यों का एक नया संथागार बुद्ध काल में बना था। बुद्ध तक निकटस्थ महावन के निग्रोधाराम में रहते थे।

वहाँ बुद्ध, आनंद और मोग्गल्लान ने उपदेश दिये ।

कोलिय और लिच्छवि गण शाक्यों से निकट घना संबंध रखते थे ।

कोसल और शाक्यों में परस्पर युद्ध होते रहते थे । कोसल का राजकुमार विडूढभ जब युवक हुआ तब उसे मालूम हुआ कि उसके पिता पसेन्दी को वासभखत्तिया दासी पुत्री इन शाक्यों ने ब्याह दी थी तो शाक्यों से बदला लेने को उसने पहले बाप की गद्दी अपने सेनापति दीर्घकारायण की सहायता से हथिया ली । बाप को कोसल राजधानी श्रावस्ती से भगा दिया जो मगध की राजधानी राजगृह की ओर चला गया । नगर द्वार बंद हो चुका था । वह थका हुआ वहीं मर गया । गद्दी पर चढ़कर विडूढभ ने शाक्यों पर हमला किया । उनकी राजधानी जीत ली और कत्लेआम मचा दिया । फिर शाक्यों की ५०० कन्याओं को वह अपने अंत:पुर के लिये पकड़ लाया । लड़कियों ने कहा कि वे कभी आत्मसमर्पण नहीं करेंगी । तब क्रोध से विडूढभ ने उन सबको मारने की आज्ञा दे दी । उसके अफसरों ने लड़कियों के हाथ-पाँव काटकर उन्हें खाई में फेंक दिया । उन्होंने बुद्ध को याद किया । तब बुद्ध ने भिक्षु उपदेश देने भेजा । उपदेश पाकर वे मर गईं ।

विडूढभ भी एक बाढ़ में मर गया ।

विडूढभ गणनाशक सामंत था । कुल गर्व, राहइस डेविड्स के मतानुसार, एक बहाना बनाया गया था ।

मल्ल पूर्वी भारत का शक्तिमान गण था । भीम ने मल्लों को प्राचीन काल में जीता था । मल्ल कुसीनारा और पावा में बँट गये थे । मनु ने मल्लों को क्षत्रियों और व्रात्य क्षत्रिय की संतान माना है । ये अपने को राजा कहते थे । इनका संघ था । मल्ल योद्धा थे । कुश्ती के शौक़ीन थे । कुशीनारा के एक राजा का बंधुल नामक पुत्र तक्षशिला पढ़ने गया था । वहाँ कोसल का पसेनदी और वैशाली के लिच्छवि राजकुमार महालि साथ पढ़ते थे । मल्ल दार्शनिक चिंतनों में लगे रहते थे । लिच्छवियों की भाँति मल्ल, बौद्ध-जैन धर्मों के पहले, चैत्य पूजक थे । मकुट बंधन उनका एक चैत्य था । जैन धर्म के अनुयायी कई मल्ल थे । पावा में महावीर की मृत्यु हुई थी । नातपुत्र के अनुयायी यहाँ निगंठों से चिढ़ते थे । बुद्ध ने महावीर की मृत्यु का संवाद पावा में ही सुना था । बुद्ध के भी यहाँ कई अनुयायी थे । कुशीनारा के मल्लों के बीच बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था । वे पावा से चले गये थे । मल्लों ने बुद्ध का संस्कार वैसा किया जैसा चक्रवर्ती राजा का किया जाता था । दाहकर्म करके अपने संथागार में उसके अस्थि अवशेष रख लिये, उसके चारों ओर भाले और तीर कमानों की बाड़ लगा दी ।

पावा के मल्लों ने भी अस्थि मांगीं । उन्होंने दिया । दोनों मल्लों ने स्तूप बनाये । मल्ल लिच्छवि लड़े थे, पर वैसे वे मित्र थे ।

अजातशत्रु ने मल्लों को जीतकर मगध के राज्य में मिला लिया ।

बुलि, कोलिय, मोरिय, भग्ग और कालामों ने भी बुद्ध के अवशेष लिये । चंद्रगुप्त

मौर्य मोरिय वंश का बताया जाता है ।

लिच्छवि गण सबसे सशक्त था। कौटिल्य ने लिच्छवि को वज्जि, मल्ल, मद्र, कुकुर, कुरु, पंचाल और राजशब्दोपजीवियों के साथ गिनाया है। लिच्छवि क्षत्रिय थे। आर्य थे। उन्होंने भी बुद्ध की अस्थि मांगने को अन्य गणों की भाँति कुशीनारा के मल्लों के पास दूत भेजा था—तथागत भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। हम तथागत के अस्थ्यावशेष पाने के योग्य हैं ।

क्षत्रिय होने पर ध्यान देना यहाँ आवश्यक है। आगे क्षत्रियों पर विवेचना करके हम देखेंगे कि इन गणों का मूल आधार क्षत्रिय स्वार्थ था।

लिच्छवियों ने बुद्ध के लिये स्तूप बनाया था। इन्होंने महावीर की मृत्यु पर भी दीपक जलाये थे ।

रामायण के अनुसार वैशाली, इक्ष्वाकुपुत्र विशाल ने बसाई थी। विष्णु पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु वंश के त्रिबिन्दु ने बसाई थी। जो हो, प्रगट होता है कि यह ऐक्ष्वाकु ही थे ।

शाक्यों और लिच्छवियों में मित्रता थी। लिच्छवि भी परम्परा में भाई-बहिन की संतान थे ।

चंद्रगुप्त मौर्य के समय में भी लिच्छवियों का बड़ा मान था। मनु ने इन्हें व्रात्य क्षत्रिय कहा है। यह लोग वेद को नहीं मानते थे। यह 'अक्रता': थे। महावीर और बुद्ध का इनसे संबंध था ।

यह लोग मुर्दे को जानवरों के खा डालने के लिये टांग देते थे। यह प्रथा 'उद्धिता:' थी। इन सब बातों से पता चलता है कि यह वे आर्य थे जो हैहयों से पहले आये थे। पूर्वजों ने इक्ष्वाकु वंश बढ़ाया। इनमें ब्राह्मणवाद का इतना अधिक जोर नहीं हुआ था। पश्चिम में भी योद्धागण थे। वे भी इन्हीं की भाँति अब्राह्मण धर्म के बिखरे हुए प्राचीन परिपाटी के आर्य थे। यह कहना कि सब आर्यों का विकास एक-सा क्यों नहीं हुआ कोई कारण नहीं है। सब एक साथ नहीं आये, फिर सबके गोत्र और कुल भेद थे। सब में कौमियत का भाव भी नहीं था। इनमें रक्त शुद्धि का बहुत ध्यान था। यह अनार्यों को अपने से नहीं मिलने देते थे ।

वैशाली इनका प्रसिद्ध नगर था। वैशाली में बुद्ध के १०० बरस बाद एक संगीति हुई थी। सत्तसतिक में ७०० भिक्षु एकत्र हुए थे। भिक्षु सुख की ओर बढ़े रहे थे, उसे रोकने का प्रयत्न था। इस नगर का बाह्य प्राकार २० मील के वर्ग क्षेत्र में था।

लिच्छवियों पर अपना प्रभाव जताने को अजातशत्रु बुद्ध के साथ गये और राजगृह से गंगा तक का पथ उसने सुगंधित करा दिया। छिड़काव करा के फूल बिछवा दिये। तब अभन्तर वैशालिक तथा बाहिर वैशालिक आये। उनके कपड़ों का सौंदर्य और वैभव देखकर बुद्ध तक प्रभावित हुए। लिच्छवियों ने गंगा से वैशाली तक की सड़क जो सजाई तो वह

अजातशत्रु की सजावट से बढ़कर निकली। बुद्ध के लिच्छवि भूमि पर पाँव रखते ही सारी बीमारियाँ दूर हो गईं।

उन्होंने वन में कूटागारसाला बुद्ध के रहने के लिये बनवाई थी। भिक्षु भी वहाँ रहते थे। एक दिन बुद्ध चापाल चैत्य गये। तब लिच्छवियों ने चापाल चैत्य भी बुद्ध और भिक्षुओं को दे दिया। सप्ताम्र चैत्य, बहुपुत्र चैत्य, गौतम-चैत्य, कपिनह्य चैत्य, मर्कटहृदन्तीर-चैत्य भी बुद्ध को दे दिये। आम्रपाली, नगर सुंदरी वेश्या थी। उसने अपना विराट आम्र-कुंज दे दिया। बालिका ने बालिकाछवि दे दी। बुद्ध ने यहाँ कई उपदेश दिये।

लिच्छवि वज्जि संघ में थे। वज्जि--लिच्छवि, वैदेह, तीरभुक्त इत्यादि थे। ये आठ कुल थे-- आठ कुल। ये सब बड़े एक-से रहते थे। लिच्छवि सुंदर थे। चमकीले कपड़े पहनते थे। एक बार लिच्छवि नील, पीत, लोहित और ओदात वस्त्र पहनकर बुद्ध के स्वागत के लिये गये।

एक बार बुद्ध महावनस्थ कूटागारशाला में थे तब ५०० सुसज्जित लिच्छवि उनके पास बैठे थे।

लिच्छवियों का महावस्तु में उल्लेख है: 'नीले घोड़े, नीले रथ, नीले उष्णीश, नीले छाते, नीली छड़ी, नीले वस्त्र, नीले आभूषण, नीली लगाम, नीले कोड़े, नीली तलवार, नीले हीरे (कोई रत्न, संभवत: नीलम), नीले जूते पहने, लिच्छवि युवक . . . . .'।

संभवत: भिन्न कुलों का भिन्न रंग था।

ये लोग इतना वैभव होते हुए भी सुस्त नहीं थे। बड़े मेहनती थे। बुद्ध ने कहा--हे भिक्खओ! लिच्छवि लकड़ी के तकिये लगाकर कठिन जीवन बिताते हैं। ये अप्पमत्ता हैं। आतापिन हैं। वैदेहीपुत्र अजातशत्रु, मगधराज, इनमें कोई कमी नहीं पा सकता। यदि लिच्छवि सुस्त पड़ गये और नर्म बिस्तरों पर सोने लगे तो यह हार जायेंगे।

लिच्छवि चान्द्रमान से ८, १४ और १५वें दिन शिकार करके गोश्त खाते थे। हाथी लड़ाते थे। शिकारी कुत्ते पालते थे। लिच्छवि युवक अपनी उद्दंडता के लिये प्रसिद्ध थे, राह चलती औरतों को छेड़ते थे, पर बुद्ध के सामने सम्मान से सिर झुकाते थे। संभवत: यह अत्युक्ति है।

बुद्ध ने लिच्छवियों की इन्द्र के स्वर्ग से तुलना की है।

लिच्छवि तक्षशिला तक पढ़ने जाते थे। महालि जब शिल्प सीखकर आया तो उसने ५०० लिच्छवि युवकों को शिल्प सिखाकर तैयार कर दिया। वे कला-साहित्य में भी अत्यन्त रुचि रखते थे। विवाह आपस में ही करते थे। व्यभिचार के लिये कड़ा दंड था। स्त्रियाँ भिक्षुणी हो सकती थीं। स्त्री की पवित्रता का लिच्छवियों में बड़ा मान था। वहाँ अपहरण नहीं होता था। अनेक उत्सव मनाये जाते थे। तब सार्वजनिक आनन्द होता था।

इनमें दार्शनिक और धार्मिक रुझान काफी थी। वज्जि (?) प्रदेश वही था जहाँ प्राचीन

काल में सम्राट् जनक और याज्ञवल्क्य के शुक्ल यजुर्वेद पर विवेचन होते थे। बाद में गण बन गया था। यहाँ यक्ख (यक्ष) शारनवाद की उपासना भी प्रचलित थी। वैदिक देवता इन्द्र, प्रजापति या ब्रह्मा की भी पूजा प्रचलित थी। वैदिक देवताओं के अतिरिक्त भी अन्य देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। चैत्य विशेषतया वृक्ष पूजा थी। बौद्धपूर्वा उपासना थी। संभवतः यह यक्षों का प्रभाव अवशिष्ट था। यही भूभाग यक्षों का क्षेत्र भी था।

बुद्ध और महावीर को लेकर यहाँ काफी विवाद हुआ करते थे।

पुराण कस्सप यहाँ का एक विचारक था। महालि ने बुद्ध से उसके विषय में कहा था—पुराण कस्सप का कथन है कि जीव बिना कारण क्लेश पाते हैं। बुद्ध ने इस तर्क को काटा था।

बुद्ध ने यहाँ सीहा, जेन्ती, वासेट्ठी और अम्बापाली को भिक्षुणी बनाया था।

राज्य की शक्ति नागरिकों में निहित थी। कुलों में नागरिकता थी, बाहर, सब वर्णों को नहीं थी। यह एक संघ था, गण। वैशाली के सब नागरिक अपने को राजा ही समझते थे। राजा का अर्थ क्षत्रिय से लिया जाता था। पर उपराजा और सेनापति भी थे।

अपने एके के कारण यह संघ अजेय थे। बुद्ध ने कहा था, आनंद, जब तक वज्जि अपनी सभा जोड़ते रहेंगे तब तक अजातशत्रु इन्हें नहीं जीत सकेगा। जहाँ सभा जुड़ती थी वह जगह संथागार थी। यहाँ राजनीति और दर्शन दोनों पर विवाद होते थे। बुद्ध ने अपने धर्म संघ के लिये इन्हीं संघों का आदर्श लिया था। इस संघ में शलाका बाँटकर राय ली जाती थी (वोट)।

बुद्धकाल में विदेह लिच्छवि से मिला था। ब्राह्मण साहित्य में विदेह का वर्णन है, लिच्छवि का नहीं है। महाभारत में मल्लों का उल्लेख है, लिच्छवि का नहीं है। लिच्छवि महाभारत युद्ध के बाद के लोग थे। यह गण तभी उठा था।

अजातशत्रु लिच्छवियों के विरुद्ध था। उसने वज्जियों से बचने को पाटलिगाम[1] में एक किला बनवाया। उसने अंत में लिच्छवियों को पराजित कर दिया। कहा जाता है कि गंगा के पास एक छोटा बन्दरगाह था। वहाँ एक पहाड़ के नीचे कोई रत्नों की खान थी जिसमें आधी लिच्छवि और आधी अजातशत्रु की थी। एक बार अजातशत्रु देर में पहुँचा। तब तक लिच्छवि उसका हिस्सा भी ढो ले गये। अजातशत्रु उनकी शक्ति से उस समय तो दबकर चुप रह गया। अजातशत्रु ने अपने मंत्री वस्सकार से राय ली। वस्सकार ने जाहिरा अजातशत्रु से लड़ाई की और जाकर लिच्छवियों में बस गया। वज्जियों ने उसे आदर से वही पद अपने यहाँ दिया। धीरे-धीरे उसने पहले तो अपना प्रभाव जमाया फिर गण में फूट डालना प्रारम्भ किया। तब अजातशत्रु ने हमला किया और लिच्छवियों को जीत लिया। लिच्छवियों का उल्लेख ४०० ई० स० तक हुआ है। उस समय भी लिच्छवि

१. यही आगे चल कर पाटलिपुत्र बना। बुद्ध के समय में यह एक गांव था। इसे नगर बनने में २०० बरस लगे।

(गुप्तकाल के प्रारंभ में) सशक्त थे। संभवत: लिच्छवि गण बाद में साम्राज्य बन गया। यह फ़्लीट का मत है। इन्हीं लिच्छवियों में से एक राज्य कुल ने नेपाल में 'सूर्य्य वंशी' राज्य बनाया। लिच्छवि जब गण छोड़कर राज्य बने तब गुप्त उन्हीं में के थे, वे गुप्त नाम से प्रसिद्ध हुए। यह परवर्त्ती इतिहास इसलिये इंगित किया गया है कि जल्दी या देर, अंततोगत्वा सब गण धीरे-धीरे राज्यों में बदल गये। और गणों का एका, सौंदर्य, सब जो दासप्रथा, कुलगर्व पर टिके थे, वे सामंतवाद में बदले और सामंतवाद का आधार ब्राह्मण धर्म ही प्रारम्भ में साबित हुआ ? इस पर विवेचन करेंगे।

राहुल सांकृत्यायन ने 'बौद्धदर्शन १९४४ प्रयाग' में (पृ० ४४-४६) बुद्ध के पहले की सामाजिक परिस्थिति पर प्रकाश डाला है। बड़े कोष्टक मेरे हैं।

बुद्ध के जन्म की दो-तीन पीढ़ी पहले ही कोसल ने काशी जनपद को हड़प कर लिया था। बुद्ध के समय में ही बिंबिसार ने अंग को भी मगध में मिला लिया और उस समय विंध्य में होती मगध की सीमा अवन्ती (उज्जैन) के राज्य से मिलती थी। वत्स (=कौशाम्बी, इलाहाबाद) का राज भी उस वक्त के सभ्य भारत के बड़े शासकों में था। कोसल, वत्स, मगध, अवंती के अतिरिक्त लिच्छवियों (वैशाली) का प्रजातंत्र पांचवीं महान् शक्ति थी। आर्य प्रदेशों को विजय करते एक एक जन (=कबीले) के रूप में बसे थे। आर्यों की यह नई बस्तियाँ पहिले से बसे लोगों और स्वयं दूसरे आर्य जनों के खूनी संघर्षों के साथ मजबूत हुई थीं। कितनी ही सदियों तक राजतंत्र या प्रजातंत्र के रूप में यह जन चले आये। [यहाँ राहुल जी को ध्यान देना चाहिये कि कई प्रजातंत्र प्राचीन राज्यतंत्र को समाप्त करके उठे थे। इन दोनों में ही दासप्रथा थी] उपनिषद्काल में भी यह जन दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि जनतंत्र के रूप में नहीं, बल्कि अधिकतर सामंत तंत्र के रूप में। [यहां सामंततंत्र का आरंभ हुआ था] बुद्ध के समय जनों की सीमाबंदियाँ टूट रही थीं, और काशी-कोसल अंग की भाँति अनेक जनपद मिलकर एक राज्य मगध बन रहे थे। व्यापारी वर्ग ने व्यापारिक क्षेत्र में इन सीमाओं को तोड़ना शुरू किया। एक नहीं अनेक राज्यों से व्यापारिक संबंध के कारण उनका स्वार्थ उन्हें मजबूर कर रहा था कि वह छोटे-छोटे स्वतंत्र जनतंत्रों की जगह एक बड़ा राज्य क़ायम होने में मदद करें। मगध के धनंजय सेठ (विशाखा के पिता) को साकेत (=अयोध्या) में बड़ी कोठी कायम करते हम अन्यत्र (अर्थात् मानव समाज राहुलकृत पृ० १३६-३८.) देख चुके हैं। जिस वक्त व्यापारी ने अपने व्यापार द्वारा, राजा अपनी सेना द्वारा जनपदों की सीमा तोड़ने में लगे हुए थे। उस वक्त जो भी दर्शन या धार्मिक विचार उसमें सहायता देते, उनका अधिक प्रचार होना जरूरी था। [यह एक विशेष बात है जिसका विवेचन करना आवश्यक होगा] बौद्ध धर्म ने इस काम को सफलता के साथ किया, चाहे जान-बूझकर थैली और राज के हाथ में बिककर ऐसा न भी हुआ हो। [यह राहुल जी का बौद्ध दृष्टिकोण है। ब्राह्मण धर्म की बात करते समय भी यदि वे इसी सहिष्णुता से काम लेते !]

बुद्ध के निर्वाण के तीन वर्ष बाद (४८० ई० पू०) अजातशत्रु (मगध) ने लिच्छवि प्रजातंत्र को खतम [नहीं, करद बनाया] कर दिया, और अपने समय में ही उसने अपने राज्य की सीमा कोसी से यमुना तक पहुँचा दी, उत्तर-दक्षिण में उसकी सीमा विन्ध्य और हिमालय थे। जनपदों, जातियों, वर्णों की सीमाओं को न मानने वाली बुद्ध की शिक्षा, यद्यपि इस बात में अपने समकालीन दूसरे छः तीर्थंकरों के समान ही थी, किंतु उनके साथ इसके दार्शनिक विचार बुद्धिवादियों को ज्यादा आकर्षक मालूम होते थे—पिछले दार्शनिक प्रवाह का चरम रूप होने से उसे श्रेष्ठ होना ही चाहिये था। उस समय के प्रतिभाशाली ब्राह्मणों और क्षत्रिय विचारकों का भारी भाग बुद्ध के [महावीर के नहीं ?] दर्शन से प्रभावित था। इन आदर्शवादी भिक्षुओं का त्याग और सादा जीवन भी कम आकर्षक न था [यहाँ जैनों का भी वर्णन करना चाहिये] इस प्रकार बुद्ध के समय और उसके बाद बौद्ध धर्म युग धर्म—जनपद-एकीकरण में सबसे अधिक सहायक बना। बिंबिसार के वंश के बाद नंदों का राज्यवंश आया, उसने अपनी सीमा को और बढ़ाया और पच्छिम में सतलज तक पहुँच गया। पिछले राजवंश के बौद्ध होने के कारण उसके उत्तराधिकारी नंदवंश का धार्मिक तौर से बौद्ध संघ के साथ उतना घनिष्ठ संबध चाहे न भी रहा हो। किंतु राज्य के भीतर जबर्दस्ती शामिल किये जाते जनपदों में जनपद के व्यक्तित्व के भाव को हटाकर एकता का जो काम बौद्ध कर रहे थे, उसके महत्व को वह भी नहीं भूल सकते थे—मगध में बुद्ध के जीवन में उनका धर्म बहुत अधिक जनप्रिय हो चुका था, और वहाँ का राजधर्म भी हो ही चुका था। इस प्रकार मगध-राज के शासन और प्रभाव के विस्तार के साथ उसके बौद्ध धर्म का विस्तार होना ही था। नंदों के अंतिम समय में सिकन्दर का पंजाब पर हमला हुआ, यद्यपि यूनानियों का उस वक्त का शासन बिल्कुल अस्थायी था, तो भी उसके कारण भारत में यूनानी सिपाही, व्यापारी, शिल्पी लाखों की संख्या में बसने लगे थे। इन अभिमानी 'म्लेच्छ' जातियों को भारतीय बनाने में सब से आगे बढ़े थे बौद्ध। यवन मिनान्दर और शक कनिष्क जैसे प्रतापी राजाओं का बौद्ध होना आकस्मिक घटना नहीं है। बल्कि वह यह बतलाता है कि जनपद और जनपद, आर्य और म्लेच्छ के बीच के भेद को मिटाने में बौद्ध धर्म ने खूब हाथ बँटाया था।

यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि मौर्य काल (हमारे आलोच्य काल) तक बौद्ध धर्म विशेषतया मगध में ही था।

बुद्ध ने दुःख, सत्य, दुःखहेतु, दुःख विनाश और दुःख विनाश का मार्ग, ४ आर्य सत्य प्रतिपादित किये। वे ईश्वर, आत्मा को नहीं मानते थे। उपनिषद् में ब्रह्म सबसे ऊपर उठा। कर्म रहा। आत्मा रही। सांख्य में ब्रह्म असिद्ध हुआ। उसका कर्तृत्व प्रकृति पुरुष ने ले लिया, बाकी सब ज्यों का त्यों रहा। जैन दर्शन ने ईश्वर के रूप को अस्वीकार कर दिया। प्रकृति और आत्मा रहे। बुद्ध ने आत्मा को भी अस्वीकार कर दिया। बौद्ध धर्म के प्रचारकों

को ध्यान में रखना चाहिये कि बुद्ध दर्शन इतिहास की शृंखला में हुआ था। जब शंकर ने इतिहास को लौटाया तब उसका ब्रह्म बौद्धों के शून्य जैसा ही था, किंतु ईश्वर की बिचली संज्ञा के द्वारा उसने ईश्वर को कर्तृत्व दिया था, तभी शंकर को प्रच्छन्न बौद्ध कहा गया था।

बुद्ध का दर्शन अपने समय की महान घटनाओं में से था। यहाँ अब देखें—

१. बुद्ध क्षत्रिय थे।

२. महावीर क्षत्रिय थे।

३. दोनों ब्रह्मवाद के विरोधी थे।

४. गणों के वासी थे।

५. गणों में दर्शन की भूख थी, वेद ब्राह्मण का पूरा आधिपत्य न था, परंतु ब्राह्मण-वाद और वैदिक उपासना का सर्वथा लोप नहीं हुआ था।

६. गणों में कुलों का आधिपत्य था।

७. नागरिकता कुलों में सीमित थी।

८. दासप्रथा थी।

९. गण एके से रहते थे, लड़ना नहीं चाहते थे। अहिंसा चाहते थे। स्वार्थ रक्षा के लिये।

१०. राज्यतंत्र राज्यसीमा बढ़ाने को लड़ते थे। क्योंकि सामंत बढ़ रहा था।

११. गण में निरंकुशता नहीं थी। राज्यतंत्र में थी।

१२. गण में दासप्रथा, रक्त गर्व था, राज्यतंत्र में यह सब टूट रहा था। यही प्रगति थी।

१३. गण में बुद्ध, महावीर ने मनुष्य-समानता का उपदेश दिया। जातिवर्ण भेद के विरुद्ध उपदेश दिया। यह रक्तगर्व के विरुद्ध उपदेश थे।

१४. युद्ध में राज्यतंत्र सीमा बढ़ाते थे, व्यापारियों को सहूलियत होती थी। व्यापारी युद्ध भी चाहते थे और अहिंसा भी। व्यापारी बुद्ध, महावीर के अनुयायी थे। केवल इसलिये कि दास विद्रोह न करें, न ब्राह्मण उन्हें दबा सकें।

१५. क्षत्रिय वैश्य गणों में ब्राह्मण विरोधी थे।

१६. ब्राह्मण दासप्रथा को तोड़कर बौद्धों से आगे बढ़ रहा था। अब वह 'आर्य' की दृढ़ता में लगा था। उसने देशी विदेशी प्रारंभ कर दिये थे। बौद्ध सब को एक कहता था।

यह है उस युग का वह द्वन्द्वात्मक चित्र जिसे समझना कठिन है। बौद्ध जनपद तोड़ने में सहायता देते थे, यद्यपि बुद्ध जनपदों के प्रशंसक थे, राज्यतंत्र को अच्छा नहीं समझते थ। तभी अपने धर्म का आदर्श उन्होंने संघ बनाया था। बौद्ध धर्म बुद्ध के बाद, समय बदल जाने के साथ, बदल गया और जिन क्षत्रियों न ब्राह्मण विरोध में नया दर्शन निकाला, जिसमें वे रक्त गर्व के आधार को नहीं छोड़ना चाहते थे, अब

मजबूर होकर म्लेच्छों तक को उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह बुद्ध और महावीर का प्रभाव था।

बुद्ध भौतिकवाद के विरुद्ध थे। व ब्रह्मचर्य और समाधि मानते थे। आत्मा है या नहीं इसको वे स्वयं समझा नहीं सकते थे। बाद में नागसेन के समय तक इस दर्शन को पुष्ट कर लिया गया था। किन्तु बुद्ध का दर्शन सर्वज्ञता को नहीं मानता था। यह एक प्रगति थी। परन्तु कर्मवाद का विचार, पुनर्जन्म बौद्ध धर्म के वे पीछे हटाने वाले सिद्धान्त हैं जो एक तरीके से दासप्रथा, कुल राज्यों के मददगार हो गये। अतः यह कहना कि बौद्ध क्षत्रिय तत्कालीन समाज-व्यवस्था में दलितों का साथी था ग़लत है। वह क्षत्रियों और वैश्यों का, आर्यों का, ब्राह्मणों से एक ओर, और अनार्यों से दूसरी ओर विद्रोह था। इसे ऊपर समझाया जा चुका है।

राहुल ने परम्परा यों दी है।

ब्राह्मण—पुरोहित—वर्गशोषक।

क्षत्रिय ने जोड़ा—

ब्रह्मवाद, पुनर्जन्म

'(फिर हुआ लोकायत सिद्धांत का प्रारंभ)

फिर बुद्ध (क्षणिकवाद)

परलोक माना।

बौ. द. राहुल पृ० ४०—समाज में आर्थिक विषमता को अक्षुण्ण रखते ही बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था, जातीय ऊँच-नीच के भाव को हटाना चाहा था, जिससे वास्तविक विषमता तो नहीं हटी, किंतु निम्नवर्ग का सद्भाव जरूर बौद्ध धर्म की ओर बढ़ गया। वर्ग दृष्टि से देखने पर बौद्ध धर्म शासक वर्ग के एजेंट की मध्यस्थता जैसा था, वर्ग के मौलिक स्वार्थ को हटाये बिना वह अपने को न्याय-पक्षपाती दिखलाना चाहता था।

बौ. द. पृ० ४२–४३. (बुद्ध को) दुःख की सचाई को हृदयंगम करने के लिये यही तीन (वृद्ध, बीमार, मृत) दर्शन नहीं थे, इससे बढ़कर मानव की दासता और दरिद्रता ने उन्हें दुःख की सच्चाई को साबित करने में मदद दी होगी। यद्यपि उसका ज़िक्र हमें नहीं मिलता (पहले ही कुल स्वार्थ, क्षत्रिय विद्रोह पर प्रकाश डाल चुके हैं) इसका कारण स्पष्ट है—बुद्ध ने दरिद्रता और दासता को उठाना अपने प्रोग्राम का अंग नहीं बनाया था। आरम्भिक दिनों में, जान पड़ता है, दरिद्रता दासता की भीषणता को कुछ हल्का करने की प्रवृत्ति बौद्ध संघ में थी। कर्ज़ देने वाले उस समय संपत्ति न होने पर शरीर तक खरीद लेने का अधिकार रखते थे, इसलिये कितने ही कर्ज़दार त्राण पाने के लिये भिक्षुक बन जाते थे। लेकिन जब महाजनों के विरोधी हो जाने का खतरा सामने आया तो बुद्ध ने घोषित किया—

'ऋणी को प्रव्रज्या (संन्यास) नहीं देनी चाहिये।'

पर जुर्माने का भागी होता था। यदि बच्चे के रक्त संबंधी नहीं होने वाले पकड़े गये तो उन्हें मौत तक की सज़ा मिलती थी।

'उदरदास वर्जमाप्राप्त व्यवहारं आर्यप्राणं शूद्रं विक्रयाधानं नयतस्स्वजनस्य द्वादशपणो दण्डः। वैश्यं द्विगुणः। क्षत्रियं त्रिगुणः। ब्राह्मणं चतुर्गुणः। परजनस्य पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः। क्रेतृ श्रोतृणांच।'

कौटिल्य ने दासप्रथा को केवल म्लेच्छ प्रथा बताया :

म्लेच्छानामदोषः प्रजामाधातुं विक्रेतुं वा।

आर्यों में यह स्वीकार नहीं किया जा सकता था।

न त्वेवार्यस्य दासभावः।

उसके अनुसार शूद्र भी आर्य था। ध्यान रहे बौद्धमत के प्रचारक भी गणसंघ में दासप्रथा के विरोध के कारण दब गये थे। ब्राह्मण चाणक्य ने उसका विरोध सफलता से किया। नई परिस्थिति में ब्राह्मण ने यह सहूलियत दी थी।

बच्चों को बेचकर दास बनाना रोका गया। जो बिक ही जाते थे उन्हें बिका हुआ नहीं माना जाता था। स्वतंत्र समझा जाता था।

'आत्मविक्रमिणः प्रजामार्यां विद्यात्।'

दासों को यह सहूलियतें दी गईं :—

१. जो अपनी कीमत चुका दे वह फिर आर्य बन जाता था। जो दास की दी हुई कीमत को देखकर भी उसे दासत्व से नहीं छोड़ता था, उसे राज्य की ओर से दण्ड दिया जाता था:—

'दासमनुरूपेण निष्क्रयेण आर्यमकुर्वतो द्वादशपणो दण्डः।'

२. यदि मालिक दास या दासी को गंदे काम में लगाये, नंगा रखे, या दासी पर बलात्कार करे तो दास और दासी अपने आप स्वतंत्र हो जाते थे।

'प्रेतविन्मूत्रोच्छिष्ठेग्राहिणामाहितस्य नग्नस्तापनं दण्डप्रेषणं प्रतिक्रमणं च स्त्रीणां मूल्यनाशकरम्।'

३. कोई व्यक्ति भयानक जुर्म या जुर्माना न देने पर, दास बनाया जाये, वह रुपया चुका देने या दासत्व की अवधि पूरी कर देने पर छोड़ दिया जाता था।

'दण्डप्रणीतः कर्मणा दण्डमुपनयेत्।'

४. युद्ध में पकड़ा हुआ, दास बनाया गया, यदि अपनी कीमत का आधा धन दे देते तो वह स्वतंत्र हो जाता था।

'आर्यप्राणो ध्वजाहृतः कर्मकालानुरूपेण मूल्यार्धेन वा विमुच्येत।'

(यह प्रथा राज्य की आमदनी का जरिया बन गई थी)।

५. यदि दासी मालिक की रखैल हो और माँ बन जाये तो बालक और माता दोनों स्वतंत्र हो जाते थे।

'स्वामिनस्तस्यां दास्यां जातं समातृकम–दास विद्यात् ।

६. दास संपत्ति रख सकता था। पैतृक संपत्ति पा सकता था। अपने धन के लिये अपने रिश्तेदारों को उत्तराधिकारी बना सकता था। अगर मालिक के काम में गड़बड़ी न हो, तो वह दूसरी जगह अपने लिये कमा सकता था (अर्थात् वह अब मालिक का २४ घंटे का दास नहीं था) उस धन से वह अपने को स्वतंत्र कर सकता था:--

आत्माधिगतं स्वामिकर्माविरुद्ध लभेत्, विक्त्यं च दायं। मूल्येन चार्यत्वं गच्छेत्।

दासप्रथा धन से छूटने लगी। धन मनुष्य के ऊपर आ गया। अब व्यापार बढ़ने के कारण मनुष्य को दास बनाने में पहले जैसा लाभ भी नहीं था। पैसा दो। जाओ। पैसे से नौकर आ जायेगा। दूसरे दासों में इतनी चेतना फैल चुकी थी कि वे पहले जैसे नहीं रहे थे।

दास पर अत्याचार नहीं हो सकता था। गंदे काम में उसे नहीं लगाया जा सकता था ? विदेश नहीं भेजा जा सकता था, दासी पर बलात्कार वर्जित था। आठ साल से कम बच्चे से कड़ी मशक्कत नहीं ली जा सकती थी।

'धात्रीमाहितिकां वाकामां चाधिगच्छतः पूर्वः साहसदण्डः दासमूनाष्टवर्ष विवन्धुमकामं नीचे कर्माणि विदेशे दासीं वा सगर्भामप्रतिविहितगर्भभर्म्यरायां विक्रयाधानं नयतः पूर्वः साहसदण्डः इत्यादि।'

इस प्रकार भारत में यूनानियों को स्पार्टा वाली दासप्रथा भी नहीं मिली, जहाँ विदेशी को ही दास बनाया जाता था।

नौकरों और दासों को छुट्टी मिला करती थी।

औरतों और विधवाओं को, जो घर के बाहर नहीं आती-जातीं थीं, नौकरानियाँ कारखानों से माल लेकर दे आती थीं, जहाँ वे चीजें बनाती थीं। यह छोटे-छोटे उद्योगधंधे थे। यहाँ भी कमकर के लिये नियम कड़े नहीं थे:--

'याश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा न्यंगा कन्यका वाडत्मानं बिभृयस्ताः स्वदासीभिरनुसार्य सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः। स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्यूषसि भाण्ड वेतन विनिमयं कारयेत्।

राज दास, बूढ़ी वेश्याएँ, बंदीकृत अपराधियों से खेतों और कारखानों में काम लिया जाता था, जो राज के थे। इन पर कुछ अधिक कड़ाई की जाती थी। ग्रामभृतक गाँव के नौकर होते थे और उनकी परिस्थिति गुलामों और आज़ादों के बीच की-सी होती थी।

कमकर की सालाना आय ५०० पणों और २००० पणों के बीच में इधर-उधर उतर-चढ़ जाती थी।

कलियुग के प्रारंभ में जो शूद्र उठे थे, वह बुद्ध तक प्रायः स्वतंत्र हो चुके थे। संपत्ति के अधिकारी हो गये थे। अब दास भी गण-नास्तिक युग में धीरे-धीरे मुक्त हो चले। आर्यत्व जो अभी तक जाति विशेष का पर्याय था, वह अब स्वतंत्र नागरिक का पर्याय हो गया। जो भी भारतीय हो वह आर्य कहलाया। यह एक महान परिवर्त्तन हो गया था।

इस युग का नक्शा इस प्रकार है—

परवर्त्ती विकास

अब यहाँ इतिहास की तालिका बनाई जाती है:—
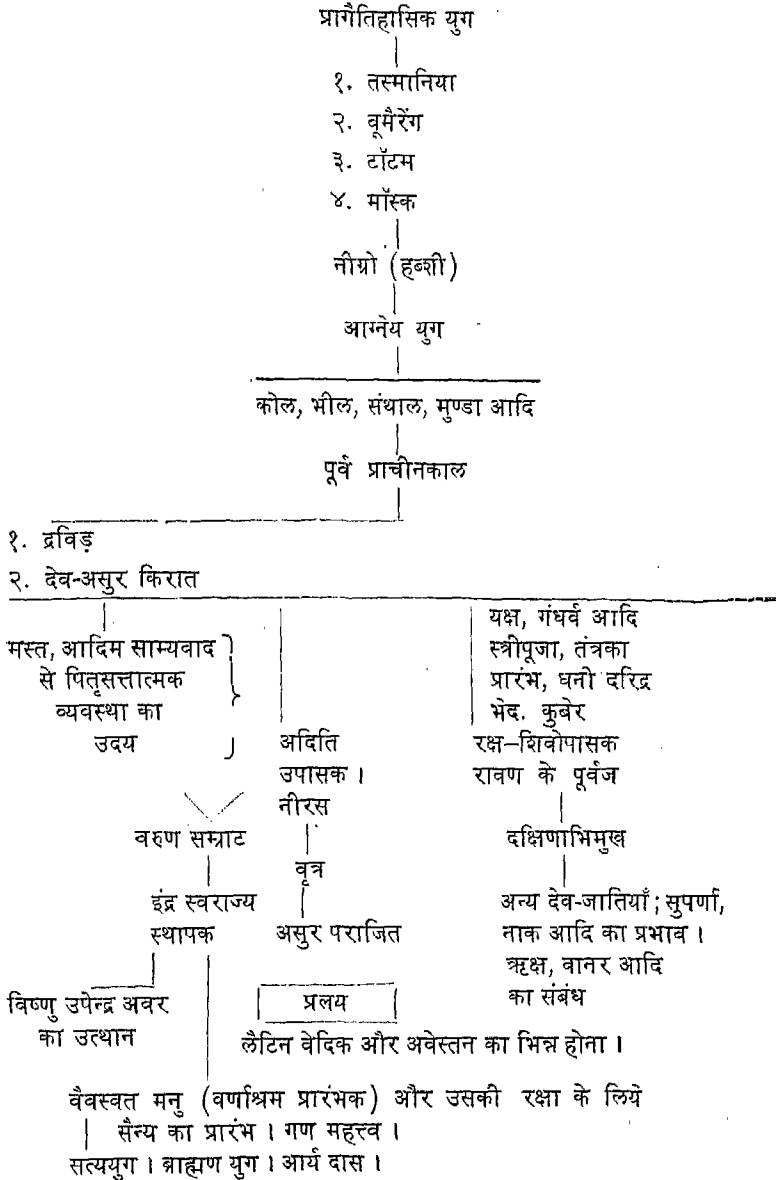
|
त्रेतायुग—क्षत्रिय युग। हैहय प्रहार। अनार्यों पर आर्य जय। संबंध। आर्य, दास
| शूद्र।
द्वापर युग
| आर्य गण, तथा निरंकुश राज्य युद्ध। आर्य शक्ति ह्रास। अनार्य प्रभाव की
| वृद्धि। कृष्ण द्वारा गणों के स्थान पर 'राज्य सर्वोच्च' का प्रतिपादन। नागों
| का उत्थान।
कलियुग
| आर्य, अनार्य-भेद लुप्त। यक्ष शक्ति ह्रास।
| चातुर्वर्ण्य टूटने लगा। राजकुल गणों का दासप्रथा रखने का अंतिम प्रयत्न।
| उपनिषद् काल। पुनर्जन्मवाद में उच्च वर्ग के स्वार्थ की रक्षा।
कपिल
| गण-नास्तिक युग
| पाणिनि का समय। लौकिक संस्कृत का विकास।
बुद्ध }
महावीर }
दासप्रथा का ह्रास।
सामंतवाद का उदय।

सम्मिश्रण

आर्य सामाजिक व्यवस्था के भीतर — नास्तिकवाद, आस्तिकवाद

आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर — नास्तिकवाद, आस्तिकवाद

भारतीय संस्कृति की अनेक धाराओं का संक्षिप्त रेखाचित्र

प्रभाव

	आर्य	यक्ष	आर्येतर
	आनंदवाद	विलासवाद	दुःखवाद
१. दार्शनिकता			
२. शक्तिपूजा.	पुरुष पराक्रम रूप में मुख्य	स्त्री रूप में मुख्य	पुरुष, नीरस, भव, रूप में मुख्य
३. योग और तप	..	शायद	निश्चय
४. प्रकृति-उपासना	मस्ती, सरलता, स्वाभाविकता,	उद्दीपन, वासना,	रहस्य, भूत, भय,
५. अंधविश्वास	अज्ञान का भय.	जादू, टोना, सिद्धि	रहस्यमय भय, तंत्र का आदि रूप

सबका सम्मिश्रण (रहस्य की खोज में)

आर्य सामाजिक अवस्था में			आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर	
आस्तविकवाद		नास्तिकवाद	आस्तिकवाद	नास्तिकवाद
सगुण तथा निर्गुण		वात्य तथा अनात्य भौतिकवाद	भौतिक तथा अभौतिक आत्मवाद	आत्म तथा अनात्म भौतिकवाद
वेद, उपनिषद,	बीच में	बौद्ध	व्रात्य अघोर	विलास आनंद
शैव, वैष्णव	सांख्य	जैन	कालामुख, कापालिक	लोकायत
अनेक भेद		अनेक भेद	अनेक भेद	अनेक भेद

सब पर तंत्र, शाक्त मत, योग, विलासवाद का दर्शन की आड़ में प्रभुत्व छा जाना

आर्य सामाजिक व्यवस्था में स्थित संप्रदाय	बौद्ध : वज्रयान, कालचक्र यान.	आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर स्थित संप्रदाय
दक्षिण से ब्राह्मण दार्शनिकता का पुनरुत्थान	गोरक्षनाथ; दक्षिण से भक्तिवाद का उदय	प्रारंभिक इस्लाम की छाया

यक्षवादः समाज जीर्णता की ओर

यक्षवाद की नये स्वरूपों में पुनरावृत्ति : रीतिकाल : समाज जीर्णता की ओर

कुछ विद्वानों ने इतिहास के निम्नलिखित विभाजन को देखा है :—

१. प्रागैतिहासिक काल
    १. आग्नेययुग
२. पूर्व प्राचीनकाल
    १. द्रविड़युग
    २. देवयुग
३. मध्य प्राचीनकाल
    १. सत्ययुग
    २. त्रेतायुग
    ३. द्वापरयुग
४. उत्तर प्राचीनकाल
    १. कलियुग
    २. गण-नास्तिकयुग

आधुनिक इतिहासकार गण-नास्तिकयुग से प्रारंभ कर के ६०० ई० तक प्राचीन काल कहते हैं। उनका विचार है कि मध्यकाल ६०० ई० के बाद प्रारंभ होता है। मध्यकाल उनके अनुसार से इस प्रकार है : समाज में गतिरोध हो गया और कोई नवीन विचारधारा अपनाने की शक्ति नहीं रही, न कहीं विचार स्वातंत्र्य ही रहा। सुंदर कविता, कलाकृति इत्यादि या तो विदेशी रहे, या पुराने को दुहराया गया। वराहमिहिर जैसा ज्योतिषी, अजंता, एलोरा जैसे भव्य शिल्प स्थापत्य के नमूने फिर नहीं मिले। ऐसे विद्वानों को यह याद रखना चाहिये कि भारत में शिल्प का एक उदाहरण नहीं है। विभिन्न जातियों ने विभिन्न समय में विभिन्न रचनाएँ की हैं जो इस भूमि पर होने के कारण अन्ततः इसी भूमि की हो गई हैं। विचार स्वातंत्र्य का जहाँ तक प्रश्न है यह भी अधिक ठीक नहीं।

उत्तर मध्यकाल में भी ब्राह्मण वेद देखता था, पूर्व मध्य में भी। अनेक जातियाँ यहाँ आकर खो गईं। उत्तर मध्यकाल में अनेक वेद वाह्य जातियाँ वेद को स्वीकार कर उठीं। पूर्व मध्य में विदेशी आक्रमण हुए, पर भारतीय ही अधिक सशक्त रहे। उत्तर मध्य में विदेशी आक्रमण हुए, परंतु विदेशी ही सशक्त रहे।

पूर्व मध्यकाल में ब्राह्मण और क्षत्रियों का संघर्ष था दूसरी ओर वेद विरोधी थे। उत्तर मध्य में ब्राह्मण और इस्लाम का संघर्ष था, दूसरी ओर निम्न जातियाँ उठ रही थीं। इतिहास अपने को हूबहू नहीं उतार देता, उत्तर मध्य में राजनैतिक परिस्थिति सामाजिक परिस्थिति बदल जाने के कारण उतनी प्रतिभा विकसित नहीं हुई जितनी पूर्वमध्य में। इसका कारण था समाज अब मध्यकाल के उत्तर भाग में था अर्थात् पूर्वमध्य से अधिक गल चुका था।

मेरा आधार सामंतीय युग से है। दासप्रथा का अंत और भूमिबद्ध किसान प्रथा से

ही इतिहास का आधार बदला। पूर्व मध्यकाल में सामंतवाद अपने प्रगतिशील रूप में था, उत्तर मध्य में अपने ह्रासकालीन रूप में। अतः स्वतः ही गतिरोध अधिक दिखाई देता है।

चंद्रगुप्त मौर्य के साथ हमने प्राचीनकाल को समाप्त कर दिया है। एक बात याद रखने की है कि जो गतिरोध उत्तर मध्य में था उसी का एक रूप ब्राह्मण समाज को पहले ही दीखा था। यही उसने कलि की संज्ञा देकर सबको बताया। पूरा पूर्वमध्यकाल कलि-युग ही है। अतः यह भ्रम दूर हो जाना चाहिये। कुछ तो केवल इसलिये कि राजाओं की वंशावली ही इतिहास मानी जाती थी, और सांस्कृतिक पक्ष पर ज़ोर नहीं दिया जाता था; दूसरे तथ्यों की कमी थी; तीसरे विदेशी दृष्टिकोण को लाभ था कि यह भारत का इतिहास हिंदू, मुस्लिम काल में विभाजित करते, अभी तक हिंदूकाल को प्राचीनकाल का गौरव और मुस्लिमकाल को मध्यकाल का अँधेरा कह दिया जाता था। आर्य भी तो विदेशी थे ? उनके आने पर जो आर्येतर जातियों की शक्ति सीधी और सशक्त नहीं रही, सब कुछ आर्यमय हो गया, क्या इन विदेशियों की शक्ति के कारण हमें यह कहना ठीक होगा कि मध्यकाल वहीं से प्रारंभ हो गया ? आर्य अनार्य बरसों बाद पूर्णतया मिल सके। ब्राह्मण तो सबके सिर पर ही बैठा रहा। क्या इसी से कि मुसलमान अलग रहे, हम उन्हें उस काल वाला ब्राह्मण कह सकते हैं ? फिर कहा जा सकता है कि ब्राह्मण तो इसे अपना देश मानते थे। वे अरब से स्फूर्ति ग्रहण नहीं करते थे। यह भी हज़ारों साल बाद की बात है। महाभारत तक में उत्तर में देवभूमि है, दक्षिण-पूर्व में म्लेच्छ रहते हैं। जितनी घृणा मनुष्य मनुष्य में ब्राह्मण ने फैलाई थी उतनी ही मुसलमान फैला सके। उन्हें भारत में किनकी शक्ति मिली ? वेदवाक्यों की। 'आर्यावर्त्त' की भावना कितनी परवर्त्ती है इसे याद रखना चाहिये। यदि इतिहास उस गति से चलता, मशीनें और अंग्रेज नहीं आते तो इस्लाम भी हिंदू धर्म का भाग हो जाता। इस्लाम के अनुयायी व्यापारी थे, धर्म का एक ठोस रूप—मजहब लिये थे—अर्थात् सामाजिक धर्म लिये थे। आर्यों का धर्म व्यक्तिगत हो चला था। जब आर्य आये थे वे ख़ानाबदोश थे।

इस तुलना को आगे बढ़ाना व्यर्थ है, भारत में वर्ग, तथा जातियाँ दोनों का संघर्ष रहा है। जातियों, वर्णों, वर्णाश्रम जातियों, कबीला जातियों की भीड़ ने वर्गसंघर्ष को बहुत धीमा बना दिया, किंतु बावजूद उसके भी लंबे कालक्रम से वर्ग-संघर्ष भी धीरे-धीरे चलता रहा। उसका रूप वर्ग-संघर्ष के रूप में कभी मुखर नहीं हुआ क्योंकि प्राचीन काल में जहाँ जहाँ जातिगत युद्धों के प्रत्यक्ष रूप ने उसे ग्रस लिया, वैसे ही मध्यकाल में उसे वर्णाश्रम जातियों के परस्पर युद्ध ने ढंक दिया।

इस संघर्ष का द्वन्द्व रूप हम अंग्रेज़ी साम्राज्य के काल में देख चुके हैं। उसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

प्राचीन जातियुद्ध, और मध्यकालीन वर्णाश्रम जातियुद्ध, दोनों ही वास्तव में वर्ग-संघर्ष के ही प्रच्छन्न रूप थे इसको मैं अपनी 'महामाई: भारतीय चिंतन' तथा 'गोरख

नाथ: भारतीय मध्ययुग के संधिकाल का मनन' नामक पुस्तकों में दिखा चुका हूँ।

भारतीय पूर्वमध्यकाल मौर्यों से हर्ष तक रहा। इस समय का इतिहास बहुत लिखा जा चुका है। अब एक सांस्कृतिक दृष्टिपात करना इतिहास के विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है। दूसरा पक्ष उत्तर मध्यकाल है, हिंदी साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि है। यह भी महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय विचारधारा निरंतर द्वन्द्वों का प्रतिनिधित्व करती है। उसको समझ लेना इतना सरल नहीं है। तभी 'हिंदू' की सफल परिभाषा देने में श्रेष्ठ विद्वान् जब असफल रहे तब उन्होंने यही कहा—जो इस भूमि को अपना समझता है, यहाँ रहता है, वही हिंदू है। भारतीय इतिहास पृष्ठों के जाल में आ जाये, यह कठिन है। यह तो वैवस्वत् मनु की मछली है जो निरंतर बढ़ती चली जाती है।

भारतीय प्राचीनकाल का विकास भारतीय मध्ययुग के उदय के साथ हुआ। संक्षेप में हम यहाँ मध्यकाल की विशेषताओं का मनन उपस्थित करते हैं।

भारतीय प्राचीन युग का अंत यवन सिकंदर के आक्रमण के समय हुआ। बुद्ध के समय में ही ऐसे निरंकुश सामंत हो गये थे जैसे अजातशत्रु और उदयन। अजातशत्रु का तो लिच्छवियों से कुछ खानों के पीछे झगड़ा हुआ था। विद्वान हर्ष के समय में प्राचीनकाल को समाप्त करते हैं। यह ठीक नहीं है क्योंकि मध्यकाल को वहीं से प्रारंभ करना चाहिये जहाँ से सामंतवाद का उदय होता है। सामंतवाद का उदय दासप्रथा की समाप्ति पर भूमिबद्ध किसान अर्थात् सर्फ़प्रथा से प्रारंभ से होता है। भारत में कोई भी व्यवस्था एक ही समय सब स्थानों पर नहीं बदल जाती। न अब बदली है। अब भी सामंतीय अवशेष भारत में मौजूद हैं। यहाँ मुख्य धारा को लिया गया है। प्राचीन काल में इस भेद में एक और सहायक था—जातीय स्तरों का भेद; सांस्कृतिक और भौगोलिक बंधनों के कारण एक धारा में बाधक है।

चाणक्य के समय में जो प्रथा बदली उसको हम दिखा चुके हैं।

सामंतवाद जैसे संसार में एक प्रगति का रूप बनकर आया था, वह भारत में भी आया। उसने भारतीय गणगोत्र व्यवस्था को तोड़ा, और दासप्रथा को समाप्त किया। कला के नये दृष्टिकोण उपस्थित किये। वाल्मीकि रामायण का रूप लिखा गया और उसमें नये सामंत ने भाग्य को चुनौती देकर एक नया आदर्श उपस्थित किया। चाणक्य ने विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के लिये राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधा, और इस प्रकार उसने भारतीय संस्कृति के एक धुँधले स्वप्न को साकार किया जिसे सबसे पहले युधिष्ठिर के चक्रवर्त्तित्व में कृष्ण ने देखा था। कृष्ण ने दासों को शूद्रों को जो समान अधिकार परमात्मा के सामने देने का यत्न किया था वह चाणक्य के समय में पूरा हो गया।

भारत के ब्राह्मण ने ही यह काम पूरा किया। ब्राह्मण वर्ग वास्तव में बहुत चतुर

रहा है । जब अधिकार जाने की बात आती है तब ब्राह्मण ने अपने कुछ अधिकार खोकर सत्ता को अपने हाथ से खो जाने दिया है । दयानंद का आर्य समाज भी ऐसा ही एक आंदोलन था । जो चाणक्य ब्राह्मण वर्ग का प्रतीक था उसने सामंतवाद की इस परिपत्ति में वृषल चन्द्रगुप्त मौर्य को क्षत्रिय मानकर, क्योंकि शास्त्र की व्यवस्था देना तो उसी के हाथ में था, बौद्धों और जैन व्यापारियों के विद्रोह स्वरूप शूद्र राज्यों को समाप्त कर दिया और फिर से ब्राह्मण क्षत्रिय एकता को स्थापित किया । ब्राह्मण और क्षत्रियों में राज्य के लिये बराबर लड़ाई फिर भी होती ही रही जो हर्षवर्द्धन तक चली ।

इस युग का इतिहास प्राय: लिखा जा चुका है अत: हम यहाँ कुछ ही बातें लिखेंगे ।

राक्षस, यक्ष, गंधर्व इत्यादि जातियाँ इस समय भारत में इतनी क्षीण हो चुकी थीं कि उनकी उपस्थिति का कोई परिचय नहीं मिलता । टॉटेम और टैबू जातियों की कोई महत्त्वपूर्ण उपस्थिति नहीं है । हम दिखा चुके हैं कि यक्षों में मातृसत्तात्मक व्यवस्था प्राचीनकाल में थी । उनमें स्वतंत्र भोग पद्धति थी । राक्षसों के उदय के साथ पुरुष सत्ता स्थापित हुई । इतिहास में देखा गया है कि पहले पुरुष स्त्री को माता समझकर रहस्य समझता था और उसकी पूजा करता था । किंतु जब उसे ज्ञात हुआ कि वह ही बीज बोता है, उस पर से स्त्री की महत्ता हट गई । लिंगपूजा का उदय हुआ । इस युग में लिंगपूजा-आर्यों में भी घुस गई थी । स्त्रीपूजा का रूप नेपाल, भूटान, आसाम में था, क्योंकि कालांतर में वह वहीं से आया, यह आगे के प्रकरणों में प्रगट होगा ।

पहले तो नाग, राक्षस, इत्यादि जातियाँ थीं, उनमें से जो आर्य जातियों के समकक्ष सभ्य थीं वे आर्यों में महाभारत युद्ध के बाद ऐसे घुलमिल गईं कि जो पुरोहित वर्ग था, वह ब्राह्मणों में मिल गया; जो योद्धा वर्ग था, वह क्षत्रियों में; जो वैश्य वर्ग था, वह वैश्यों में; और शूद्र शूद्रों में । बहुधा यह समस्त जातियाँ वर्णव्यवस्था में प्रविष्ट तो हुईं फिर भी अलग अलग जातियों के रूप में और इस प्रकार वर्णव्यवस्था में जो आंतरिक जातीय उपभेद मिलता है, यहीं इसका मूल है । उपभेद बहुत बढ़ गये । ब्राह्मण का आधिपत्य बढ़ गया ।

जो लोग ब्राह्मण समाज की व्यवस्था के विरोधी थे वे वेद वाह्य शैव उपासन और बौद्ध प्रभाव में हो गये ।

प्राचीन जातियाँ अनेक थीं, काम्बोज, गांधार, कुरु, पाञ्चाल, शौरसेन, चेदि, मद्र, मालव, शाल्व, उशीवर इत्यादि जो भौगोलिक नाम थे । अनेक अनार्य---आभीर, दरद, कारुष, कुलट, कुलिन्द, बर्बर, मुरुण्ड, निषाद, लम्पान, योन, दमिल, शबर, मूतिब, पुलिन्द, कुन्तल, नासिक्य, अश्मक, मूलक, चोल, केरल, चेर, पुण्ड्र, काक इत्यादि थे । यह जातियाँ भी काम्बोज इत्यादि की भाँति स्थान परिवर्त्तन करती रहती थीं । योनवे ग्रीक थे जो सिकंदर से बहुत पहले उत्तर भारत में आ बसे थे । इसके अतिरिक्त इस युग में हूण, शक, पह्लव आदि अनेक जातियों ने आक्रमण किया और वे भारत में ही बस गईं । उनकी सांस्कृतिक

तथा सामाजिक परिस्थिति ऐसी न थी जो अपने को अलग करके रखतीं। उसने भारतीय जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। पर वे सब जातियाँ भारतीय जीवन में ही घुलमिल गईं। जाट और राजपूत जातियों का उदय हुआ जो लड़ाकू जातियाँ थीं। जाट, गूजर आदि के भीतरी नियमों को ब्राह्मण ने चुपचाप स्वीकार कर लिया। बदले में इन जातियों ने ब्राह्मण को गुरु मान लिया, समझौता हो गया।

कनकसेन के साथ प्राचीन मरुधन्व, राजपूताने में बहुत सी जातियाँ घुस आईं और भारतीय मध्ययुग के आदिकाल के मध्य में बसी यह जातियाँ, उत्तर मध्यकाल में एक सशक्त सांस्कृतिक केन्द्र बन गईं जिसने इस्लाम से टक्कर ली।

बौद्धमत का विकास हुआ। शाक्य, कोलिय, बुलिय, लिच्छवियों ने बौद्धमत को अपनी गण-व्यवस्था की दार्शनिकता के रूप में स्वीकार किया था। क्योंकि बुद्ध गण-व्यवस्था को मानते थे। किंतु बुद्ध दास, ऋषि और स्त्री को भी स्वतंत्रता दिलाना चाहते थे। गणों के सामंतों और सेठों ने इसे स्वीकार नहीं किया था। सामंत प्रसेनजित् ने भी सैनिक परिव्रज्या के समय बुद्ध का विरोध किया था कि यह सैनिकों को भिक्षु नहीं बना सकते। बुद्ध जातिप्रथा के विरोधी थे, ब्राह्मणों के विरोधी थे।

ब्राह्मण क्षत्रिय विजयी हुए। उन्होंने जहाँ दासप्रथा के टूटने को स्वीकार किया, गण अपने आभिजात्य के गर्व में उनसे लड़े, नष्ट हो गये। बुद्ध धर्म नई परिस्थिति में रूप बदलने लगा। आगे यह विषय विस्तार से देखेंगे।

मौर्यकाल में यवन रहे। अशोक ने बौद्धधर्म का प्रचार किया क्योंकि अब दासप्रथा के टूटने के बाद साम्राज्य-लिप्सा बहुत बढ़ गई थी। रक्तपात का उस पर प्रभाव पड़ा। इस समय दक्षिण भारत से घना संबंध हो गया।

ब्राह्मण बहुत प्राचीनकाल में ही दक्षिण में गये थे। दक्षिण की कुछ पुरोहित जातियाँ, ब्राह्मणों में मिल गईं और उन्होंने ब्राह्मण भाषा को सीखा। उसी का प्रभाव वहाँ की भाषाओं पर पड़ा। मौर्यों के बाद कुशान आये। ये बौद्ध हुए। परवर्त्ती ब्राह्मण धर्मानुसार हो गये। इस युग से समुद्र व्यापार और बढ़ा और आर्य बाहरी देशों में उपनिवेश स्थापित करने लगे।

शुंग तथा गुप्तों के बाद, पुष्यभूति वंश आया। और उसके बाद भारत में चक्रवर्त्तित्व लुप्त हो गया।

गुप्त साम्राज्य में जहाँ एक ओर संस्कृत (लौकिक अभूतपूर्व वृद्धि हुई, दूसरी ओर पुराण रचे गये, जो ब्राह्मणों का प्रयास जनता में अंधविश्वास पैदा कर धन कमाने का था, बौद्ध और जैन भी पीछे नहीं रहे, एक और बात हुई कि हिंदी रीतिकाल की पृष्ठ-भूमि संस्कृत रीतिकाल का उदय हुआ। यह दरबारी कविता थी, शृंगार प्रधान।

भारत की महान् कलाकृतियाँ जो अब तक अवशिष्ट हैं, वे इसी भारतीय मध्ययुग के पूर्वकाल की रचनाएँ हैं।

सामंतवाद की प्रगति अब नष्ट हो रही थी। महाभारत काल के बाद गणयुग में

ब्राह्मण वर्ग ने विजय प्राप्त की थी अपनी व्यवस्था को लचकीला बनाकर। वह परम्परा अब नष्ट होने लगी। अब ब्राह्मण इस नई व्यवस्था को रूढ़ियों और नियमों में जटिल करने लगा।

पाणिनि के समय में जो लौकिक संस्कृत के सूत्र बने थे, उस काल से बराबर भाषाओं का विकास होता रहा था। अब लौकिक उच्च वर्गों की भाषा रह गई थी, और नई-नई भाषाओं का अपभ्रंश रूप उपस्थित था।

इस समय मध्यकाल का संधियुग उपस्थित हुआ जिस पर आगे विस्तार से विवेचन किया गया है।

मध्ययुग का संधिकाल इस्लाम के आगमन के साथ समाप्त हुआ और अंग्रेज़ों के आने तक चला। धर्मशास्त्र जटिल हो गये। गज़नी, ग़ौरी, गुलाम, खिलजी और तुगलकों तक मुसलमान शासक भारत में जमे नहीं थे। वे ब्राह्मणवाद को चुनौती देते रहे। खिलजी खास तौर पर राजपूतों और ब्राह्मणों के विरुद्ध था। मुगल अकबर ने यहाँ के ब्राह्मणों और राजपूतों से समझौता किया। इस्लाम अपना धार्मिक विरोध भूल गया, क्योंकि राज करना था। ब्राह्मण समाजविरोधी संप्रदाय इस्लाम में मिल गये, और अपनी समानांतर संस्कृति के साथ इस्लाम के शासक ब्राह्मण से समानांतर बने रहे, और अपनी अल्पसंख्या को बचाये रखने को ईरान और तुर्की से प्रेरणा लेते रहे। दारा ने इस्लाम को संस्कृत भाषा का चोगा पहनाने का यत्न किया, वह इस्लाम के कट्टर मुल्ला नहीं सह सके। औरंगजेब का उदय हुआ। हिंदू उच्चवर्ग इसे न सह सके। पहले महाराणा प्रताप जैसे सामंत ने किसी भी कीमत पर इस्लाम के सामने सिर नहीं झुकाया था। अब अनेक जातियाँ इस्लाम के विरुद्ध उठ खड़ी हुईं। सिख, जाट, मराठा इत्यादि। यही समय था जब यूरोपीय व्यापारी भारत में आये।

भारतीय मध्ययुग का उत्तरकाल मुस्लिम शासकों का युग है। कुछ सांस्कृतिक हेरफेर हुए, परंतु उत्पादन के साधन नहीं बदले।

अनेक पुराने देवी-देवता, तारा, कुरुकुल्ला, जम्भल आदि खो गये। तंत्रों का प्रभाव भक्तों ने नष्ट कर दिया। यह यक्षोपासना पद्धति का प्रभाव था। भक्त दो तरह के थे। एक वे संत जो नीच जातियों से उठे थे, शूद्र-दलित वर्गों की पुकार थे, दूसरे जो उच्च जातियों से आये थे। तुलसीदास ब्राह्मणवाद के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने ब्राह्मणों का मार्ग इतना प्रशस्त किया कि फिर प्रायः धर्मशास्त्रों की रचना बंद हो गई और दरबारों में रीतिकाल छूट निकला।

भारतीय मध्ययुग का उत्तर काल सामंतकाल के ह्रास का युग था।

बौद्ध मत का भारत में नाश होकर दृष्टिगोचर न होना संसार के इतिहास में कोई बड़ी आश्चर्यजनक घटना नहीं होनी चाहिये। यदि संसार के इतिहास और बौद्धमत के इतिहास को निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो उसके अनेक

कारण दिखाई देते हैं। संसार के अनेक देशों में उनके प्राचीन धर्म न मिलकर दूसरे ही धर्म दिखाई देते हैं। भारत में बौद्ध धर्म को हिन्दू संस्कृति आत्मसात् कर गई, जो इसके क्षेत्र में नहीं आ सके वे मुसलमानों के आने पर इस्लाम में सिमट गये। भूल हो सकती है यदि यह याद नहीं रखा गया कि (१) बौद्धमत तत्कालीन परिस्थिति में कहाँ से कहाँ आ गया था (२) कि हिन्दू धर्म की कोई परिभाषा नहीं की जा सकती और वह अपने वास्तविक स्वरूप में भिन्न मतों का एक विराट समुद्र है।

विल्सन तथा कोलब्रुक द्वारा प्रेरित, रेवरण्ड विल्किन्स के इस कथन का कि बौद्धमत का नाश ब्राह्मणों ने बौद्धों की हत्या द्वारा पूर्ण किया, टी. डब्ल्यू. राइस डेविड्स ने अपनी बुधिस्ट इंडिया में खंडन करते हुए लिखा है--हमें बौद्धमत के ह्रास के लिये कहीं अन्य ही खोज करनी चाहिये, और मेरा विचार, व्यक्तिगत रूप से, यह है कि कुछ अंश तक इसका उत्तरदायित्व इसके भीतर हो जाने वाले परिवर्त्तनों पर है, तो कुछ सीमा तक लोगों के मानसिक स्तर में आये परिवर्त्तनों को भी है। और दोनों ही बातों में आक्रमणकारिणी उत्तर-पश्चिमी विदेशी जातियों का प्रभाव पड़ा है, यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भारत में शक तथा कुशान, तातारों ने पश्चिमी प्रान्तों की विजय के उपरांत, अपनी पुरानी पूजा तथा विश्वासों का त्याग कर दिया और अपनी प्रजा (भारतवासी) के मुख्य तथा प्रधान धर्म बौद्धमत को स्वीकार कर लिया। किन्तु इस स्वीकृति के फलस्वरूप, अपने मानसिक स्तर के आवश्यकीय संबंध से परिवर्तन होने लगा, जिसे कुछ लोग ह्रास कहेंगे।

वास्तव में ह्रास न होकर यह एक परिवर्तन कहा जाय तो सत्य का अधिक सान्निध्य होगा। नाश केवल बुद्ध के नाम का हुआ। यहाँ हमें इस पर विचार करना चाहिये। राइस डेविड्स ने लिखा है कि जब बौद्धमत उठा तब भारत में कोई चक्रवर्त्ती राजा नहीं था। बौद्धमत के ह्रास के समय भी, राइहस डेविड्स के कथन में जोड़ा जा सकता है, भारत में कोई चक्रवर्ती राजा नहीं था। सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत भारतवर्ष खंड-खंड हो चुका था। उस समय अनेक सामंतों ने अपने-अपने छोटे राज्य स्थापित कर लिये थे। विशाल साम्राज्यों का युग समाप्त हो चुका था। दार्शनिकों के स्वरूप में भेद हो चुका था। पारभौतिक विषयों की चर्चा करने वालों के स्थान पर जीवन में अपने विश्वासों का प्रचार करने वाले रंगमंच पर आ गये थे। अब मानव शताब्दियों के अनंतर जब आर्य और आर्येतरों का भेद विशाल जन समुद्र में लहर की भाँति खो गया था, जब राजनैतिक शक्तियों का तीव्र स्वरूप एक विशाल निस्तब्धता बनकर अनेक वर्षों के विस्तृत पथ पर संध्या का धूमिल अंधकार-सा छा गया था, जब परम्परा ने ऊर्ज्जस्वित गरिमा को डस लिया था, सम्मिश्रणपूर्ण का फल ऊपर आ गया। यह नहीं कि भारत के विशाल और महान् देश में अब समस्त दीपक बुझ चुके थे, और अब केवल निराशा ही निराशाशेष थी। अदृष्ट के हाथों वास्तव में भारत उस समय यदि एक ओर जर्जर होता चला आ रहा था, तो दूसरी ओर उसमें भविष्य में आने वाले इस्लाम की भयानक और नवीन चोट को झेलकर शताब्दियाँ बिता जाने की

क्षमता भी उत्पन्न होती जा रही थी।

बौद्धमत वास्तव में चारित्रिक संगठन था और संघ शक्ति के आत्म-विश्वास ने धर्म के सांधिक रूप को जन्म दिया जो पहले के धर्मों से बाह्यरूप में कुछ भिन्न था। इसने एक भेद को प्रगटरूप से विशेष स्पष्ट किया—बुद्धि के सम्मुख कोई भी प्राचीन सिद्धान्त सदा के लिए स्थिर नहीं है। परम्परा के विश्वास को जो किसी रहस्य के तर्क में अविद्यमान के प्रति नतशिर श्रद्धारूप में उपस्थित थे, बुद्ध ने उन्हें ऐसे त्याग देने का उपदेश दिया था जैसे तीर पर आकर बुद्धिमान को अपनी नौका छोड़ देनी चाहिये। परस्पर विषमता होते हुए भी सांख्य और बौद्ध दर्शन में ईश्वर पर अनास्था, वैदिक कर्मकांड को गौण समझना, दु:ख की सत्ता को दोनों का महत्वपूर्ण स्वीकार करना, जगत् को परिणामशील और परिवर्तनशील मानना, अहिंसा की मान्यता तथा आर्य सत्यों के विषय में भी साम्य का होना, काफी समानता का प्रतीक था। पं० बलदेव उपाध्याय ने अपने बौद्ध दर्शन में कहा है कि बौद्ध दर्शन उपनिषद् में ज्ञान मार्ग का एकांगी विकास था। मतों का विभेद विशेष भय का कारण नहीं होता यदि आचार और समाजिक जीवन से उसका आधार रूप से विरोध न हो। योगाभ्यास तथा बौद्धमत की मिलती-जुलती शब्दावली अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी।

वास्तव में बौद्धमत के विषय में यह धारणा एक भूल स्वरूप होगी कि बौद्धमत और दर्शन भारत के बाहर की उपज है जो भारत में आकर फैल गई। धर्मभूमि भारत का धर्म सदा से उसके जीवन का नित्य-प्रतिदिन का आचार-व्यवहार रहा है। कीथ के भी अनुसार बौद्ध दर्शन के पीछे उपनिषदों का दर्शन है और उसके पीछे ही पुनः पुनर्जन्म और कर्म का विश्वास उदित हो जाता है। ओल्डेनबर्ग पुसिन तथा वेडेल का मत इसकी मात्र पुष्टि ही करता है।[1] पुनर्जन्म और कर्म यद्यपि ब्राह्मणवाद के बिल्कुल समान हो ऐसा नहीं होते हुए भी, चारित्रिक गठन और पाप-पुण्य की परम्परा के कारण—निकट से देखने पर बौद्ध और ब्राह्मण दोनों मतों में पारस्परिक सादृश्य है। उपनिषदों में पहिली बार जन्म और कर्म आपस में बाँध दिये गये हैं। प्रवाहण जैबलि ही इस मत की आर्यों में प्रतिष्ठा स्थापित करने वाले माने जा सकते हैं।[2] इस नवीन सामंजस्य का श्रेय वास्तव में आर्य बुद्धि की उपज ही प्रतीत होती है। यह भी कुछ अंश तक सत्य है कि पशुओं के शरीर में मृत्यु के बाद आत्मा विश्राम करती है ऐसा भी विश्वास रखने वाली आर्येतर जातियों का हाथ इस विचार में रहा होगा क्योंकि न केवल आर्य और आर्येतर निकट रहते थे वरन् उनमें परस्पर रक्त का भी काफी मात्रा में सम्मिश्रण हुआ था। गौतम बुद्ध में जैन और सांख्य दार्शनिकों की भाँति ब्रह्म की सत्ता को न केवल अस्वीकार कर दिया, वरन् वह

---

१. फर्कुहार—एन आउट लाइन आफ़ दि रिलीजस लिटरेचर आफ़ इण्डिया. अध्याय २.

२. छांदोग्य उपनिषद् (५।३) में जीवल के पुत्र प्रवाहण की कथा के आधार पर। राहुल ने इस विषय पर अनेक स्थानों में लिखा है।

और आगे बढ़ गये । सांख्य में आत्मा को वास्तविक जीवन से पहिले ही कर्ता के रूप में हटा लिया था । बुद्ध ने अगला क़दम रखा । उन्होंने आत्मा की सत्ता को ही अस्वीकृत कर दिया । जैन मत को देखते हुए बुद्ध के अनुसार साधारण ढंग के तप को स्वीकार किया गया किन्तु आत्मयातना का विरोध । सांख्य, बौद्ध, जैन---मतों में वेदान्त से एक बात समान थी कि सबने पूजा को अपने सम्मुख लक्ष्य नहीं बनाया ।

हिन्दू अवतारवाद के सिद्धान्त में बौद्धों ने अनेक परिवर्तन करके उसे स्वीकार कर लिया । प्रेत शब्द बना रहा । प्रेत का अर्थ शरीर को छोड़कर कर्मकांड तक भटकने वाली वस्तु से न होकर प्राणी की 'गति' के लिये रखा गया जिनका पुनर्जन्म संभव है । इसके लिये नरक, पशु जन्म, प्रेत रूप, मनुष्य जन्म, देवता रूप उल्लिखित हैं । प्रथम तीन दण्ड की अवस्थायें हैं । यह भावना निःसंदेह भय का प्रतीक थी जो हमें यद्यपि उस काल के विश्वास और धारणा के रूप में मिलती है, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से खींचकर पीछे की ओर ले जाती है, जहाँ धर्म में भय की आस्था अधिक थी । आधुनिक अथवा यूरोपीय दृष्टिकोण से मतलब लगाने के पूर्व, यह स्मरण रखना है कि यह धर्म की क्रान्ति उन्हीं परिस्थितियों में उत्पन्न हुई थी जिन में आस्थाओं की लड़ाई अपनी व्यावहारिक लड़ाई में आर्येतर विश्वासों को पूर्णतया छोड़ नहीं सकी थी ।

किन्तु धीरे-धीरे बुद्ध मत में अनेक परिवर्त्तन आ गये । बौद्ध मत का अनुयायी भी हिन्दू समाज का प्राणी था । सामाजिक और आर्थिक निर्माण ब्राह्मणकृत था । बौद्ध उसी में रहता था । इसी कारण धीरे-धीरे उस पर ब्राह्मण धर्म का प्रभाव पड़ने लगा । बौद्ध मत की सांघिक शक्ति की यह एक पराजय थी । बुद्ध मत बिहारों और मठों के बाहर जातिभेद में विभाजित था ।

जातक के दूरे निदान में उल्लेख है कि पहले के बुद्ध प्रायः ब्राह्मण, राजा, असंख्य धन वाले तथा वेद पारंगत हुए थे ।[१] यही एक उदाहरण नहीं है । अपितु अविदूरे निदान में बोधिसत्व का जन्म से पूर्व का यह विचार, परवर्ती बौद्ध मस्तिष्क की भावना बनकर ब्राह्मण निर्मित समाज के सम्मुख, अपनी पराजय को मुखर कर देता है---तब कुल का विचार करते हुए---बुद्ध, वैश्य या शूद्र कुल में उत्पन्न नहीं होते । लोकमान्य क्षत्रिय या ब्राह्मण इन्हीं दो कुलों में जन्म लेते हैं । आजकल क्षत्रिय कुल लोकमान्य है । उसी में जन्म लूंगा . . . . . शुद्धोधन मेरा पिता होगा . . . . [२] उक्त मत पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी के इस मत को और पीछे की ओर खींच ले जाता है जहाँ वे कहते हैं कि इस्लाम के आगमन से इस्लामेतर मत इकट्ठे होकर एक होने लगे । उक्त उद्धरण से यह विचार पुष्ट होता है कि बुद्धमत बुद्धि के ऊपर आश्रित होकर भी कुछ अंश तक एक पारभौतिक कार्य व्यापार था जिसका स्वरूप धीरे-धीरे अपने में संकुचित होता चला गया । संघरूप का वास्तविक

१. जातक, आनंदकौसल्यायन.
२. " " " पृ० ६५.

आधार अपने असली स्वरूप में व्यक्ति के निर्वाण की लालसा थी। इसका अंतर्द्वन्द्व बोधिसत्व[१] और प्रार्थी के दो स्वरूप हैं। जिसके कारण विरोधों का सामंजस्य करने वाला यदि एक ओर अक्षुण्ण बना रहा तो दूसरी ओर बौद्धमत में विरोधों का असामंजस्य ब्राह्मणमत को छोड़कर कहीं दूर बढ़ गया, न बौद्ध सिद्धान्त समाज की ऊँच-नीच की व्यवस्था को हटा सका, न दासत्व प्रथा को ही अपने प्रभाव से दूर कर सका। ऋणी फिर भी ऋणग्रस्त रहकर भार से दबे रहे और न स्त्री की मर्यादा जो मनु छोड़ गये थे अथवा ब्राह्मण धर्मशास्त्र ने नियत कर दी थी वही कुछ क्षुरित हो सकी। राज्य धर्म बनकर बौद्ध धर्म अपने ही आधारों की जड़ काटकर उच्च वर्गों के हाथ में खेलने लगा। ईसा की लगभग दूसरी ही शताब्दी में तथागत गुह्यक[२] नामक ग्रंथ मिलता है। गुह्य समाज तंत्र में शक्ति तत्त्व अपने साथ सब प्रकार के योगाभ्यासों को लेकर दृष्टिगोचर होता है। गुह्य समाज में बौद्धों की उस महत्त्वपूर्ण संगीतिका वर्णन है जिसमें भेद पड़ गये। एक ओर बुद्ध बोधिसत्व तथा भिक्षुओं के साथ हैं, दूसरी ओर तथागतों के साथ। बुद्ध काल के तब तक के समस्त आचार और नियमों को गुह्य समाज ने ठुकरा दिया। इसने समस्त सामाजिक नियमों के उल्लंघन की भी आज्ञा दे दी।[३]

यक्ष प्रभाव जो शायद अनेक बार अपने को सब पर हावी कर देने के प्रयत्न में था अंततोगत्वा सफल हो गया। स्त्री का 'योनि महत्व' से आर्य तथा आर्येतर जातियों के समस्त धर्म, दर्शन और उनके आचार-व्यवहार पर इस प्रभुत्व से छा जाना भारतीय संस्कृति के प्रत्येक अन्वेषक जिज्ञासु के लिये विस्मय का अभूत कारण है।[४] यूरोपीय विद्वान् इसे घणित कहकर मुख मोड़ लेते हैं किन्तु सत्य को उसी के दृष्टिकोण से देखना ही वस्तु को समझने के लिये अत्यंत आवश्यक है। ऐसी भाषा का प्रयोग आज वस्तुतः अक्षम्य है। किंतु इस विषय को हम आगे देखेंगे तो ज्ञात होगा कि मध्य युग के पूर्वकाल की इस देन का परवर्त्ती युग में कैसा प्रचलन तथा विरोध किया गया। प्रश्न उठता है कि क्या यह एक आकस्मिक

---

१. बोधिसत्त्व ने अपने लिये निर्वाण इसलिये अस्वीकार कर दिया था क्योंकि वह प्राणिमात्र के दुःख का अंत न था। तथापि—त्वं वज्रवाच सकलस्य हितानुकंपी। लोकार्थ कार्य करणे सद संप्रवृतः॥ गुह्य समाज तंत्र सर्व तथागत समय सम्बर वज्राधिष्ठान पटलः १७: १४६. ४७.

२. गुह्यक का अर्थ यक्ष है (गुह्यकस्तं ययाचे—मेघदूत.) तथागत गुह्यक के समय के विषय में मतभेद है॥ ६०० ई० फर्कुहार ५०० ई० (बलदेव उपाध्याय)।

३. प्राणिनश्च त्वया घात्या वक्तव्यंच मृषा वचः। अदत्तंच त्वया ग्राह्यं सेवनं योषितामपि। पृ० १२०।

४. परवर्त्ती प्राणतोषिणी—योनिश्च जनिका माता, लिंगश्च जनकः पिता (पृ० १०७०) भगस्य स्मरणे पुण्यं भगस्य दर्शने तथा (पृ० १०८०)।

घटना थी। क्या यह विदेशी से (चीन इत्यादि) संबंध का परिणाम था।[1] चीनी प्रभाव जपा के लाल पुष्प से किंवदंती के रूप में ज्ञात है। यह भारत में नेपाल मार्ग से लाया गया। जपा का लाल पुष्प शाक्त उपासना में प्रचलित वस्तु था।[2] चीन और भारत का प्राचीन संबंध इस समय भी बौद्धमत के समान धर्मी होने के कारण बराबर चल रहा था। गणेश तक का स्वागत वहाँ इसी वज्रयानी परम्परा से किया गया जैसा कि भारत की अन्य वज्रयानी पीठिकाओं में। यहाँ एक बात विचारणीय है। इलियट में इस पर प्रकाश डाला है। भारत में पुरुष अकर्मक है, शक्ति सकर्मक है। चीन ने यांग (पुरुष) सकर्मक है, यिन (स्त्री) अकर्मक। क्या शक्तिपूजा चीन से आई हुई स्वीकार की जा सकती है ?

उत्तर अर्थात तिब्बत और नेपाल। भूतस्थान से लौटने के कारण ही शायद बाद में जब शाक्त मत बुरा समझा जाने लगा था चीनागम कहकर अपने को बचाने का प्रयत्न किया जाने लगा था।[3] किन्तु वज्रयान का उदय यदि सिर्फ़ विदेशी होता तो वह केवल बौद्धमत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकता था, जिसका कि विदेशियों से धार्मिक आदान-प्रदान था। ब्राह्मण धर्म शैव हो अथवा वैष्णव उस पर उसका एकदम शताब्दियों के लिये प्रभुत्व छा जाना तनिक संदेह की ओर आंदोलित करता है। हर्ष जैसे सहिष्णु सम्राट इसे स्वीकार कर सकते थे (यद्यपि यह भी असंभव-सा ही है) परन्तु ह्वेन्सांग की हत्या का प्रयत्न करने वाले सामंत अर्जुन[4] तथा उसके समय के ब्राह्मण ऐसा करते, इससे संदेह की वृद्धि ही होती है। अतः अनुमान इस धारणा की ओर पुष्टतर होता है कि किसी वस्तु का बीज था जो समय पाकर उच्छृंखलता से फूटकर ऐसा छा गया कि उसके अंधकार में न केवल बौद्ध वरन् हिन्दू धर्म भी ढक गया। यह स्वयं एक आश्चर्य का विषय है कि बुद्ध का सम्यक् विचार और सम्यक् क्रिया का सम्यक् सम्मिलन इस परिणाम पर जाकर पहुँचा जहाँ आदि और अंत का कोई भी सिद्धान्त जाकर नहीं मिलता। राहुलजी का विचार है कि वाममार्ग में ब्राह्मण, स्मृतिकार से पीछा छुड़ाने के लिये, मद्य पीने के लिये, खड़े थे, क्योंकि मांस, मीन, ब्रह्मचर्य से मुक्ति तो इन्हें प्राप्त ही थी। 'एक से अधिक भली' वाली नीति से स्त्रियों के विषय में सोच लिया गया।[5] किन्तु इसमें एक बात विचारणीय है। क्या इतिहास वास्तव में इतना सरल है। क्या बहु विवाह ब्राह्मण धर्म में नहीं था जिसे राहुल जी ने स्वयं स्वीकार किया है। यदि यह परिवर्तन इतिहास की अज्ञात गति के अंग न होते तो ब्राह्मण इसे अपनी

१. परवर्त्तीकाल में चीनागम का स्पष्ट विवरण मिलता है। जान वुडरौफ़, शक्ति एण्ड शाक्त में इस पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

२. जपापुष्प—देवी के योनि—चिह्न का प्रतीक—माना जाता है।

३. देखिये—गणेश—संपूर्णानंद। चीन मार्ग पर आगे विस्तार से विचार किया गया है।

४. डा० बेनीप्रसाद। हिन्दुस्थान की पुरानी सभ्यता।

५. हिन्दी काव्यधारा, भूमिका।

रक्षा के लिये अस्वीकार कर चुका होता। बौद्धों का और भी पहले नाश कर चुका होता, जैसा कि दक्षिण से उठ ब्राह्मण दार्शनिकता को अंततोगत्वा करना ही पड़ा। नहीं, जिस छाया ने आकर ग्रसा था वह स्वयं रहस्य का भय दिखाती हुई आई थी। शायद यह भूलने का विषय नहीं है कि ब्रह्मचर्य की शक्ति की स्वीकृति आर्य्येतरों से लेकर ब्राह्मण ने की थी जिसे बुद्धमत ने इस ढंग से ले जाकर विकृत भर कर दिया था। हो सकता है ब्राह्मण को यह देन अपने से पहले वालों से मिली हो।[१] विशेष उल्लेखनीय यह है कि ब्राह्मण धर्माश्रित तथा ब्राह्मण धर्म-बाह्य दोनों ही मतों पर वामाचार ने सफल आक्रमण किया और विजयी हो गया। भारतीय संस्कृति बुद्धमत की उपज नहीं। वरन बौद्धमत भारतीय संस्कृति की उपज है। वामाचार उच्छृंखल समाज-व्यवस्था में स्वाभाविक ही है। व्यक्ति के एकांगी धर्म पर इसका अधिकार जम सकता है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी शक्ति, जातियों के उत्थान-पतन में, उसकी जीवन के प्रति निराशा रखकर उसमें आनंद लाने के प्रयत्न में बनी रही है। ज्ञान और अंधविश्वास दोनों ही रहस्य की ओर देखते रहे जिसके कारण उच्च दार्शनिक विचारों के नाम पर व्यवहार में अत्यंत निम्न कोटि के काम होते रहे हैं और भयानक विरोधाभास बना रहा है।

इस विरोध का स्पष्टरूप तंत्र म मिलता है। पं० बलदेव उपाध्याय ने बौ. द. में लिखा है कि तंत्र शब्द की व्युत्पत्ति तन धातु (विस्तार) तनु विस्तारे—वह शास्त्र जिससे विस्तार किया जाय—से हुई है। शैव सिद्धान्त के 'कायिक आगम' में उन शास्त्रों को तंत्र कहा गया है जो तंत्र और मंत्र से युक्त अनेक अर्थों का विस्तार करते हों। इस प्रकार तंत्र का व्यापक अर्थ शास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान, विज्ञान आदि है। इसलिये शंकराचार्य ने सांख्य को तंत्र के नाम से अभिहित किया है। महाभारत में भी न्याय, धर्म तथा योगशास्त्रों के लिये तंत्र का प्रयोग किया गया है। देवता के स्वरूप, गुण, कर्म, आदि का जिसमें चिंतन किया गया हो, तद्विषयक मंत्रों का उद्धार किया गया हो, उन मंत्रों को यंत्र में संयोजित कर देवता का ध्यान तथा उपासना के पांचों अंग—पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र, व्यवस्थितरूप से दिखलाये गये हों, उन ग्रंथों को तंत्र कहते हैं।

तंत्र पर पेन ने अपनी पुस्तक 'शाक्ताज आफ़ बंगाल' में अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होंने दिखाया है कि तंत्र की प्राचीनता मोअन-जो-दड़ो, तथा प्राचीन हिब्रू काल की-सी लगती है। लिंगपूजा का पुरुष-प्रभुत्व-स्वरूप तंत्रों में प्रारंभ में प्रचलित था। मेरे विचार में शिव और काम का युद्ध किसी मतांतर का संघर्ष प्रतीत होता है। जिसमें काम भस्म होने पर भी अनंग होकर अंत में बचा ही रह जाता है। क्योंकि यह प्राकृतिक ही है। समाधिस्थ शंकर प्रत्येक मनुष्य का व्यावहारिक जीवन नहीं हो सकता। गौरी जो पहिले काम की स्त्री थी, आगे के इतिहास में शिव की पत्नी बन गई।[२] गौरी की तपस्या से शिव पराजित हो

१. शिव का समाधिरूप, विकारनाश का परिचायक।
२. हजारीप्रसाद द्विवेदी। हिन्दी साहित्य की भूमिका।

गये। यह कवित्व का उदाहरण अपने सुन्दर रूप में भले ही आर्य बुद्धि का परिणाम हो, किन्तु हो सकता है यह शक्तिपूजा की प्रारंभिक विजय का ही चिह्न रहा हो। तंत्र में स्त्री पूजा का यह रूप[1] वास्तव में अत्यंत प्राचीन काल से ही रहा है। तांत्रिक उपासना को भारतीय ही समझना चाहिये। पुसिन का मत है कि बौद्ध तंत्रवाद केवल बौद्ध आड़ और रूप में बौद्ध हिन्दुत्व अथवा शैव तंत्र ही है। बौद्धकाल से अनेक तंत्र प्राचीनतर ही हैं। दिनेश चंद्रसेन का मत है कि यदि तंत्र द्रविड़ अथवा मंगोलियन या आर्येतर जातियों की वस्तु है तो भी भारतीय आर्यों ने, शाक्त मत जब स्वीकृत किया जाने लगा, तब उसे मांजकर ऊँचा और आध्यात्मिक रूप दिया। संस्कृत में इसके शब्द बनाये और इसकी पूजा का आर्य ढंग बना लिया।

ढंग आर्य बना या नहीं यह विवादास्पद है। एक मत यह भी है कि बौद्धमत के आदर से यह आर्येतर तथा समाज बाह्य जातियों के व्यवहार (तंत्र) उच्च वर्गों में ले लिये गये। पेन ने इस मत की पुष्टि में एक उद्धरण भी दिया है—अनेक बस्तियों में पहिले दुर्गा की पूजा अछूत करते हैं, बाद में ब्राह्मण।

जयद्रथ यामल के अनुसार देवी को तेली से पूजा कराना प्रिय है। योग के विषय में प्रायः सभी विद्वानों का यही मत है कि आर्यों से भी बहुत पहिले यह भारत में था और इसका काफी महत्व माना जाता था। मोअन-जो-दड़ो से लेकर आज तक इसका कोई न कोई स्वरूप सदैव ही विद्यमान रहा है। कोई भी मत, किसी भी युग में योग के किसी न किसी स्वरूप से सदैव प्रभावित रहा है। पातंजल योगदर्शन में चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है। तब द्रष्टा स्वरूप में ही स्थान होता है। निरोध से भिन्न जो व्युत्थान आदि वृत्तियाँ हैं उन्हीं के रूप भाव में पुरुष अपने को मानता है। पातंजल योगसूत्र बौद्धमत के परवर्त्ती-काल के माने जाते हैं। पातंजल का योगसांख्य पर भी दृष्टिपात करता है। इसके अतिरिक्त भी घेरण्ड संहिता, हठ योग प्रदीपिका इत्यादि योग के प्रसिद्ध ग्रंथ ह। परतत्व-वैशारदी में वाचस्पति मिश्र ने हिरण्यगर्भ द्वारा उपदिष्ट शास्त्र का ही पतंजलि को पुनः प्रतिपादन करने वाला बताया है। इसीलिये योगी याज्ञवल्क्य ने हिरण्यगर्भ को ही इस शास्त्र का आदि उपदेष्टा कहा है।[2] योग के साथ शरीर की अनेक क्रियाओं का संबंध है। योग को सामाजिकता के दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह नितांत व्यक्ति के सुख की एकांगी वस्तु है जो देश और काल से अपने को अलग कर लेती है। कोई भी दर्शन जो योग पर आश्रित है वह समय को काटकर स्थिरता की ओर अग्रसर होता है क्योंकि परमार्थ की प्राप्ति के साधक को संसार से उपेक्षा होती है। वह सब सत्ता को व्यर्थ और हीन समझने लगता है। यह व्यक्ति की शक्ति है, किन्तु समाज की निर्बलता। फिर भी समाज व्यक्तियों का समूह होने के कारण वह समाज की शक्ति भी सिद्ध हो सकता है।

---

१. बलदेव उपाध्याय, बौद्धदर्शन।

२. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ संप्रदाय।

परंतु जन समाज से अलग हो जाने के कारण उसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

योग अपनी निम्न अवस्था में चमत्कार दिखलाने की क्षमता है। उससे ऊँची अवस्था में सांसारिक सिद्धि प्राप्त करने का साधन। योग समाधि को कहते हैं। और समाधि सारी भमियों में (अवस्था रूप में) चित्त का धर्म है। उपनिषदों में योग से ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त करने का काम लिया गया है। कठोपनिषद में इसका उल्लेख है। अथर्ववेद में विद्वानों का कथन है, दुःखवाद से मुक्ति के लिये जिस साधना को अपनाया गया उसी का नाम योग है। योग, तप, मनन तथा श्रमणत्व से भिन्न है। योग किसी एक प्रकार की पूर्ण शांति या मिलन का वह स्थितप्रज्ञ स्वरूप है जिसे भारत में भिन्न मतों ने अपने-अपने दर्शन के अनुसार उसी की सिद्धि के लिये, कालांतर में ठीक करके अपना लिया है और अपनी आसानी के लिये अथवा सिद्धि के लिये, यदि एक ओर राजयोग में इसका कठिनतम स्वरूप दिखाया गया है जो निर्विवाद उच्चतम अवस्था मानी गई है तो दूसरी ओर निम्न कोटि के अंधविश्वासों की पूर्ति के लिये किये गये कृत्यों के लिये भी यही नाम प्रयुक्त किया गया है। शाक्त मत में योग की रहस्य-भावना और चमत्कारवाद का काफी हाथ दिखाई देता है। हिं.. हुंग. आदि की झलक अथर्ववेद से ही मिलती है। ओल्डेनबर्ग तथा गार्बे का मत है कि प्राचीन उपनिषदों में प्राप्त रहस्य-भावना जब आत्मा की शांति की, स्थिरता की ओर अग्रसर हुई तो योग प्रचलित हुआ जो जादू और वशीकरण से पैदा हुआ था। गुह्य समाज पतंजलि की योग प्रणाली से निकट संबंधित है, अथवा तांत्रिक उपासना का योग पर ही निर्भर स्वरूप है। भस्म रमाने वाली प्राचीन दुःखवादी आर्येतर साधना यदि कभी शुष्क, पुरुष रूप शिव की लिंगरूप से उपासना करती थी तो आर्यों ने उसे दार्शनिकता का स्वरूप दे-लेकर स्वीकार कर लिया था। प्रारंभ में योग समाज-बाह्यों के लिये भी खुला हुआ था। यह तंत्रों से उसका संबंध प्रगट करता है। जे. डब्ल्यू. हेवर ने आर्य धर्म के अब्राह्मण स्वरूप तथा व्रात्यों पर अनुसंधान करते हुए उल्लेख किया है कि व्रात्यों के अनेक बलिकर्म, महाव्रत आदि तंत्रों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। शबर, बर्बर और पुलिंदों में हरिवंश के अनुसार दुर्गा की उपासना होती थी। पेन ने इसे म्यूर का उद्धरण देकर समझाया है। वज्रयान के नैरात्म्य-वाद—सर्वभाव विगतस्कंध धात्वा यतन ग्राह्य ग्राहकविवर्जितं धर्म नैरात्म्य समतया स्वचित्त-माधनुत्पन्नं शून्य का भावं (पृ० १२) में भी अनुत्पन्न धर्म में न भाव था न भावना, योग से ही आकाश-पद मिल सकता था।

आकाश की ओर देखना गौतम ने अस्वीकार कर दिया था। ये संसार के दुःखवाद से प्रभावित हुए थे। आध्यात्मिक तथा आकाशी खोज को उन्होंने व्यर्थ कहकर छोड़ दिया था। स्वयं निर्वाण भी किसी स्वर्ग की पहुँच नहीं, वरन् प्राणी का बंधन से मुक्त हो जाना था। किन्तु आकाशपदत्व तो अभी दूर था, उस तक पहुँचने के लिये बुद्धमत ने किस पथ से काम निकाला यह विचारणीय है।

पुसिन का मत है कि बौद्ध धर्म में स्पष्टतया कभी भी बहुदेववादी उपासना

(polytheistic paganism) की मुख्य धारणाओं का विरोध और निन्दा नहीं की गई थी। यह एक आंशिक सत्य हो सकता है क्योंकि बुद्धमत का वास्तविक स्वरूप यदि किसी रूप में निर्बल था तो वह वच्छगोत्त की कथा में, जहाँ वच्छगोत्त के आत्मा की सत्ता पर प्रश्न करने पर बुद्ध चुप हो जाते हैं। आत्मा के प्रश्न को वह स्वयं ठीक से समझाने में असमर्थ हो गये थे।[1] इसके अतिरिक्त अपने अन्य उपदेश बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में दिये थे। बुद्ध की तपश्चर्या में यक्षों के विघ्न डालने का उल्लेख है। किन्तु बुद्ध ने यक्षों को अपदेवता के रूप में स्वीकार कर लिया था। इति बुत्तक में उन्होंने भिक्षुओं को, ब्राह्मणों को, सहायता देने की, आज्ञा दी थी। तथा ब्राह्मणों को सहायता देने वाला भी कहा था।[2] श्री राम चंद्र दीक्षितार ने कहा है कि पूर्वजन्म के कर्मों का पाप-पुण्य वाला सिद्धान्त भी ब्राह्मण धर्म पर आश्रित था। इसका कारण पूर्वोक्त है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में वेवर ने 'बुद्ध' और 'श्रमण' शब्दों का वैदिक तथा वेदांत मत के पूज्य ऋषियों के प्रति प्रयोग बताया है। भारतीय संस्कृति में यह प्रमाणित है कि किसी भी प्रबल नेता ने जब पुनर्जागरण की प्रतिष्ठा स्थापित की है तब-तब ब्रह्मचर्य पर उसने विशेष बल दिया है। हीनयान बौद्धमत के प्रारंभिक स्वरूप की रक्षा में रत संप्रदाय था। इसमें जीवन की वही कठिनतायें अंगीकृत थीं जो बौद्ध-काल में प्रतिपादित की गई थीं। निर्वाण प्राप्ति आसान काम नहीं था। उसके लिये आर्य सत्यों की आवश्यकता थी।

वास्तव में बुद्धमत गणों के समय में प्रारंभ हुआ था। बुद्ध स्वयं गणों के पक्षपाती थे। समय बीतने के साथ भारत साम्राज्यों और सामंतों के हाथ में विभाजित होने लगा था। परिस्थिति बदल चुकी थी। बुद्ध के अनुयायियों ने परवर्त्तीकाल में दर्शन को खब बढ़ाया परंतु बुद्ध की भाँति वे चुनौती देने वाली परिस्थिति में नहीं थे। उस समय उत्तर-पश्चिम से बर्बर जातियों के हमले हो रहे थे। ह्वेनसांग ने तो भग्न विहारों का वर्णन किया है, जो दक्षिण में नष्ट कर दिये थे। मगध लहलहा रहा था। उत्तर में सीमाप्रान्त, पंजाब और काश्मीर में हूणों ने बौद्ध विहारों की अपार धनराशि को (४७०–५३० ई०) लूट लिया था। बुद्ध धर्म यहाँ बहुत कुछ नष्ट हो गया। राजतरंगिणी में छठी शती में विवाह कर लेने वाले भिक्षुओं का वर्णन है। बौद्ध धर्म जो एक ओर ब्राह्मण विरोध से सदैव खतरे में था आयतर प्रभावों के लिये खुलने लगा था। राजनैतिक रूप से जितना अन्याय विदेशियों ने अंततोगत्वा बौद्धों के साथ किया उतना शायद अन्यों के साथ नहीं।[3]

१. स्वयं राहुल जी ने राधाकृष्णन् पर इस विषय पर कुछ प्रहार किये हैं किन्तु मालुक्य पुत्त की घटना पढ़कर भी कुछ स्पष्ट नहीं कर पाये हैं। मेरे विचार में यदि बौद्धमत यही साफ कर देता तो शायद वह बिलकुल ही परिवर्तित होकर नष्ट नहीं हो जाता। बौ. द.

२. सुत्तपिटक, भिक्षुओ! तुम ब्राह्मण को सत्कर्म बताकर सहायता देते हो। वे तुम्हें अन्न, वस्त्र, औषधि पिंडपात देकर . . . . .

३. कुछ ही विदेशी उनके व्यवहार और परमार्थ को समझ पाये, बाकी तो विरोध

महायानियों ने सत्य को दो भागों में विभाजित किया---संवृत्ति सत्य व परमार्थ सत्य। एक व्यवहार का सत्य था दूसरा उससे ऊँचा। एक अन्य धर्म के आचार्यों को उत्तर देना था। जबकि प्रथम जन समाज के नित्य-प्रतिदिन के व्यवहार को सुगम करके प्रत्येक बात समझाने का प्रयत्न, एक अनात्म, नैरात्म्य था। दूसरा (शायद) हिन्दू धर्म का प्रभाव था। व्यवहार में देखा जाय तो उसे यों कहना ठीक होगा। चोरी की गई, किन्तु उसमें विश्वास नहीं किया गया। ध्येय चोरी का नहीं वरन किसी हीन को कुछ दान देने की आवश्यकता थी जिसके बिना अपना दातृत्व ही ख़तरे में पड़ गया था। प्रायः भारत के उच्च वर्गों के हाथ में खेलने वाले सभी धर्मों ने सामंजस्य का यह पथ पकड़ा, परंतु बौद्धमत चोरी करते हुए पकड़ा गया, इसलिये महाकाल ने उसे इतिहास के कटघरे में खड़ा करके बंद कर दिया। अन्य धर्मा-वलंबियों ने बहुत दिनों तक उसके नागसेनों और असंगों की कटु आलोचना सुनकर सिर झुका लिया था। अब उनकी बारी आ गई थी। अपने अनात्म का महायान ने सांसारिक अर्थ लगाया।[1] वस्तु के स्वभाव की स्वीकृति 'होता है' के दृष्टिकोण से नहीं मिल सकती थी क्योंकि यह आर्य सत्यों को झुंठा देना था।

हीनयान में कहीं भी स्त्री का शक्ति रूप में महत्त्व दिखाई नहीं पड़ता। स्लेटर के मतानुसार शायद सांख्य का कोई विशेष प्रभाव पड़ा था क्योंकि सांख्य के द्वैतभाव ने तंत्रों को बहुत प्रचलित कर दिया था। हीनयान अपने सिद्धान्तों से अपने अनुयायियों की मनः-संतुष्टि करने में असमर्थ सिद्ध हो रहा था। नये-नये विचार तथा भावनायें बौद्धमत की बढ़ती संख्या में बढ़ते जा रहे थे। सबसे विचारपूर्ण तथ्य बौद्धमत के चारों ओर के वाता-वरण तथा परिस्थिति का है। बहुत संभव है कि हीनयान अपने मौलिक रूप में अर्हत स्वरूप के लिये ही प्रयुक्त किया गया था। जिसका अर्थ व्यक्ति का निर्वाण मात्र था। वह बोधिस-त्व के विरोध में था जिसका अर्थ था अनेक व्यक्तियों की मुक्ति। कथन अंशतः मान्य है। बौद्धमत का आधार तो बहुजन हिताय की पुकार थी। बोधिसत्व की कल्पना भारत के बाहर की बताई जाती है। क्योंकि सब तरह के तथ्य देने पर भी अमिताभ और उसके बोधिसत्वरूप का गौतम के उपदेश से अद्भुत विरोध है। कैसी भी विदेशी झलक इसमें हो किन्तु हिन्दू अवतारवाद में जन कल्याण की भावना थी और गौतम ने स्वयं पर-दुःख-निवारणार्थ उपदेश दिया था। इलियट परमार्थिकता को ज़ोरोष्ट्रियन प्रभाव मानते हैं बुद्ध-मूर्ति-पूजा यूनानी प्रभाव था। व्यर्थ विवाद न करके देखा जाय कि क्या महायान की उन्नति के लिये बौद्धमत ने जगह नहीं छोड़ दी थी। महायान में[2] सुखावती का वर्णन प्रारंभ

से बौखलाकर लूटपाट में लगे रहे। इख़्त्यारउद्दीन मोहम्मद ने २०० से अधिक सैनिकों से बिहार की राजधानी को जीत लिया था, बौद्ध उस समय परमार्थ सत्य में लगे सत्य की रक्षा न कर सके।

१. इलियट, वाल्यूम २.

२. 'अमिताभ' नाम का भारत से अधिक महत्त्व चीन और जापान की ओर रहा

हो गया। यह स्वर्ग की कल्पना थी। अमिताभ उस स्वर्ग में है। वहाँ उन्हीं का राज्य है सब सुखों का वहाँ वैभव है। जो सत्कर्म करता हुआ, संघर्षमय, श्रद्धा से प्रार्थना करता है, अमिताभ का नाम लेता है वह उसी पश्चिमीय (अन्तिम) स्वर्ग में उत्पन्न होगा और अनंत सुखों को प्राप्त करेगा। यह माध्यमक दर्शन एक शून्यवाद को जन्म दे रहा था। सौतांत्रिक मत ने यह विचार दिया कि कोई सत्य सत्ता नहीं है। सब दिखता है। है कुछ नहीं, नया बोधिसत्व इस मत का सत्य नहीं देख पाता, किन्तु बुद्धत्व के पथ पर वह इसे समझ लेगा। क्योंकि समस्त बुद्धों के ज्ञान का यही सार है। पुसिन का कथन है कि धीरे-धीरे हिन्दू अवतारवाद का स्वरूप मुखर प्रतिच्छायित होने लगा। बोधिसत्व को विज्ञानवादियों ने अमर रूपसंभोग काया तथा पृथ्वी पर रूप धरने को निर्माण काया दे दी। बुद्धत्व की चमत्कार भरी शक्तियाँ चकाचौंध करने लगी थीं। बुद्ध एक से अनेक होते चले गये और बोधिसत्व ने पृथ्वी पर रहना छोड़ दिया था। उनके चारों ओर एक अद्‌भुत आलोक फैल चुका था। सबसे ऊपर अवलोकितेश्वर की उपासना थी, बिलकुल ब्राह्मणों के-से आचार-व्यवहार, बुद्ध, अनात्मवादी, क्षणिकवादी, शून्य तथा दुखवादी के स्थान पर अब बुद्ध, भगवान, अमर, शाश्वत, साकार मूर्त्ति रूप तथा मंगलदायक विभा में पूजे जा रहे थे। यह शंकर की दार्शनिकता को "प्रच्छन्न बौद्धमत' कहने वालों का "मुखर ब्राह्मण रूप" था।

बोधि प्राप्त करने के लिये, महायान में, बोधिसत्व का पद आवश्यक हो गया। योगाचार अपनी समस्त भूमियों के साथ प्रचारित हुआ। बुद्धिवादी, विज्ञानवादी, धारणी और जादू के विरुद्ध चिल्लाते ही रह गये। किन्तु उनके अनुयायी स्वयं उनके हाथ में बद्ध नहीं रह सके। बेतुल्लवादियों ने यह बिलकुल स्पष्ट रूप से कह दिया कि बुद्ध कभी लोक में आये ही नहीं। तथागत गुह्यक में यही बात दुहराई गई है।

तथापि बौद्ध उच्चविचारक, सामाजिक व्यवस्था तथा भिक्षु संघ के हित को देखता हुआ कुछ भी कर सकने में असमर्थ था। वरन् वह स्वयं खिंचा चला जा रहा था। विनय-पिटक पर विचार करते हुए लार्ड चालमर का कहना है कि शायद बुद्ध ही से भिक्षुओं का नगरों में रहकर भिक्षा पर रहना प्रारम्भ हुआ था।[१] संघ बनाकर रहने के लिये एक विशेष प्रकार की आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता भी थी, जो उस समय अनुपस्थित थी। बुद्ध जैसे महान् व्यक्तित्व के समय में वह चल गई। किन्तु बाद में उसका निभा ले जाना सचमुच एक कठिन वस्तु थी। धन विहारों में इकट्ठा होता चला जा रहा था। इसके लिये उपासक

है। भारत में तथागत का अधिक महत्त्व माना जाता था। संभव है यह या तो विदेशी विचार का प्रभाव है या परवर्त्ती कल्पना का प्रसाद हो। इलियट का मत मिलता-जुलता है।

१. उनका त्याग व्यक्तिगत था। विहारों में सीमित, केवल उच्च वर्ग की अवकाश-प्रियता ही उस ओर आकर्षित हो सकती थी। जनसमाज पर क्या प्रभाव था?

के मस्तिष्क से उसकी श्रद्धा की अधिक आवश्यकता थी। इतिहास के कार्य-कारण को देखते हुए यही सिद्ध होता है कि "लोलुप और कीर्तिगायक ब्राह्मणों ने पीढ़ी-पर-पीढ़ी केवल चाटुकारिता पर बिताई थी।" उन्होंने समाज में त्याग और सहिष्णुता के काम नहीं दिखाये, तो वे बौद्ध विहार भी न्यूनांश में ही दिखा सके। "संसार में साफ दिखाई देने वाले कारणों को हटाने में असमर्थ समय उन्होंने 'अर्थात् स्वयं बुद्ध में' उसकी अलौकिक व्याख्या कर डाली"।[१]

मठों और विहारों में घुसकर भिक्षु-समाज के प्रति प्रायः उदासीन ही-से थे। धीरे-धीरे उनमें संयम की कमी होती गई। वेद बाह्य अथवा ब्राह्मण धर्म बाह्य अन्य कुछ मत ऐसे भी थे जिनमें सिद्धि का चमत्कार रंग दिखा रहा था। उनकी ओर आकर्षित जनसमाज को स्वयं चमत्कार की आवश्यकता थी। अभौतिक अनात्मवाद अब की बार वेद बाह्य भौतिकवाद और आत्मवाद की ओर खिंच चला किन्तु मुख से अपनी ही कहता रहा।

तभी महायान में एकाभिप्रायेण (खास मतलब से) मैथुन की भी आज्ञा दे दी गई।[२]

आर्यों के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य में यक्षों का अखंड विलास बिखरा पड़ा है।[३] यहाँ तक कि कालिदास के समय में काम पूजा तथा यक्षों का काफी उल्लेख मिलता है। यद्यपि उस काल तक सब गत युग की ऐतिहासिक रूप से भुलाई हुई-सी बात सामने आती है। मथुरा की मदिरा पीती यक्ष मूर्त्ति बोधिसत्व के उस रूप की बराबरा याद दिला देती है जिसे देखकर एक किंवदंती के अनुसार स्वयं वसिष्ठ चमत्कृत हो गये थे। स्टारबक का कहना है कि भारत में आर्य पहिले की तुलना में एक शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे और कृषि उनके जीवन में अपना स्थान बना गई। स्त्री स्वरूप की पूजा उनमें घर करने लगी और दुर्गा इत्यादि के रूप में बहुत ऊँचा और दृढ़ रूप पकड़ गई। काली, सरस्वती, शक्ति इसका प्रतीक है। स्त्री की पूजा विशेषकर प्राचीन काल में खेतिहर जातियों में उन्नत हुई थी, जिसमें स्त्री और भूमि की समानता का महत्त्व समझ में आने लगा था। पुरुष का बीज स्वरूप जो समाज में पुरुष को स्वामित्व दिलाने वाला हो गया। स्त्री के इस रूप की उपासना में यदि एक ओर भय और शक्ति के रहस्य की पूजा में रत था, तो दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था में असाम्य के असामंजस्य को दूर करने का प्रयत्न था। समाज में मातृ-सत्तात्मक-व्यवस्था में ऐसे दर्शन का सामाजिक व्यवस्था से ही उत्पन्न हो जाना, इतिहासज्ञों ने स्वयं प्रमाणित किया है। इलियट इत्यादि इस मत को मूल्य देते हैं कि सीता के भूमिजा होने में शायद किसी खेती करने वाली जाति की भूमि संबंधी देवी का संबंध है जो कालांतर में राम की पत्नी के साथ जोड़ दी गई। कुछ विद्वान पथरीली भूमि को सजीव बना देने में अहल्या की कहानी को भी तनिक श्रेय देते हैं। भारत में आर्येतर

१. राहुल. बौ. द. पृ० ४३.

२. बलदेव उपाध्याय . बौ. द. २

३. यक्षी मूर्तियों में प्रायः प्रत्येक में पूर्ण नग्नता का प्रत्यक्षीकरण है। 'सयोनि'। इसका कारण क्या हो सकता है?

जातियों में, स्वयं कुछ अंश तक आर्यों में भी, मातृ-सत्तात्मक-व्यवस्था का पाया जाना कोई बहुत विस्मयकारिणी बात नहीं कहला सकती। दक्षिण तथा उत्तर की पहाड़ी जातियों का अध्ययन इस विषय में अत्यंत रोचक है। और सबसे अधिक प्रमाण यही है कि वज्रयान और वामाचार के यही पीठ थे जिनसे चलकर उक्त मत दूर-दूर तक फैल गये।[1] ब्राह्मण-सूत्रों में रुद्राणी का काफी महत्त्व बढ़ चुका है और अन्य देवियों से उसकी महत्ता कहीं अधिक प्रदर्शित की गई है। देवताओं के साथ-साथ ही देवियों की बढ़ती होती गई। पेन के अनुसार स्त्री का मातृत्व, यौवन अवस्था और कौमार्य, तीनों ही स्त्री-रूप-पूजा में आधार रहे हैं। यह शक्ति की उपासना प्रारम्भिक आर्यों के उषा आदि गीत से अपने मानसिक स्तर में भिन्न है। स्त्री के इस शक्ति रूप में पहिले यदि भय की छाया अधिक दिखाई देती है तो धीरे-धीरे उसके यौवन रूप का प्रभाव मुखर होता जाता है। दुर्गा अपने एक रूप में जब कृष्ण के संबंध में उल्लिखित है तब वह कुमारी है। किन्तु कालांतर में जब वह 'उमा' नाम से शिव से संबंधित है तब वह कुमारी नहीं रहती।

शक्ति की भय रूप में होने वाली उपासना पर स्त्री रूप की उपासना का प्रभाव बढ़ा और वह कालांतर में हिलमिलकर एक हो गये। आर्यों ने शक्ति की जिस पुरुष रूप में उपासना की थी वह उनकी सामाजिकता में लग गई। आर्येतर में भय रूप का पुरुष तत्त्व जिसे दुःखवाद न नीरस बना दिया था वह अब पास आने लगा और आनंद का भौतिक रूप उसे उद्वेलित कर उठा, शक्ति की महत्ता में दर्शन के सोपान पर चढ़कर स्वर्ग के भी पार तक अपना जयघोष किया।

अब एक नया युग प्रारम्भ हो गया था। अब शिव में कामदेव को भस्म करने की सामर्थ्य नहीं रह गई थी। शिव अपने रूप में मात्र शव बनकर पड़ा था। शक्ति ऊपर बैठ कर "विपरीत" से अपने "इ" से जीवन दे रही थी। उसके शिवत्व को सार्थक कर रही थी।[2] आगे चलकर शिव मानसिक शिव हो गये।[3] शिव शक्ति और परिणाम प्रकृति तीनों का चक्र चल पड़ा। आर्थर एवेलान ने शाक्तमतोत्पन्न तंत्रों के विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है। सर्वशक्तिमान, सृष्टि तथा प्रलय, देवताओं की उत्पत्ति तथा पूजा, स्वर्ग, नरक, लोक, देवता, स्त्री, पुरुष, शरीरस्थित चक्र, शास्त्र तथा धर्म, आश्रम, देवता-मूर्त्ति, निर्माण, मंत्र, यंत्र, मुद्रा, साधना, पूजा, उपासना (आंतरिक या बाह्य) पंचतत्त्व उपासना तीर्थस्थान, पुरश्चरण, जप व्रत, षटकर्म साधना, जादू, ध्यान, योग, राजाधर्म,

१. श्रीपर्वत को ही तिब्बती संप्रदाय ने भी वज्रयान का चक्रप्रवर्तन किया है। मगध के नालंदा और ओदंतपुरी से अभ्युदय संबद्ध है। कामाख्या, पूर्णगिरि तथा उडियान श्रीहट्ट वज्रयान पीठ हैं।

२. विपरीत रतिं कृत्वा महाशून्यं विधायच ३०। शक्ति संगम तंत्र।

३. येतास्मिन्नैव कालेतु स्वबिंबं पश्यति शिवा। तदंबिंबं तु भवेन्माया तत्र मानसिकं शिवम् ॥३०॥ शक्ति संगम तंत्र वो। १ काली खंड।

विज्ञान, वृक्ष, घर, कुंआ इत्यादि इन सबका विभेद अथवा वर्णन, उपासना अथवा निर्धारण सब ही तंत्रों का विषय था।[1]

यह एक विराट प्रयत्न था, जो सब कुछ अपने भीतर निर्धारित कर लेना चाहता था। महानिर्वाण तंत्र आदि परवर्त्ती तंत्र ग्रन्थों से ऐसा भासित होता है कि यह वह प्रयत्न था जो वेद को स्वीकार करके भी अपने आपको सबसे ऊँचा मानता था। बौद्ध धर्म, महायान के बाद की अवस्था––मंत्रयान से सरलता से इस ओर जा सकती थी। और वज्रयान तक वास्तव में यही सच हो गया। जनता असली बौद्धमत अथवा माध्यमिक और योगाचार वाले महायान के सिद्धान्तों से भी संतुष्ट नहीं थी,। वह कुछ और चाहती थी, कोई ठोस और सरल तरीका जिससे उसे सहज ही निर्वाण प्राप्त हो जाय। जीवन-काल ही उसके लिए पर्याप्त हो, बुद्धत्व मिले। अर्थात् उसकी इच्छा थी कि एक ऐसा जादूइ तरीका हाथ आ जाय कि महानिर्वाण तुरंत हाथ आ लगे। गुह्य समाज ने लोगों की इस तृष्णा की पूर्ति की। युगों का संयम-स्फटिक खंडखंड होकर सूर्यमणि की भाँति पिघल चला। पतंजलि के योगशास्त्र से मिलती-जुलती बातें आ घुसीं। यहाँ उपाय ४ प्रकार से बताये गये––सेवा, उपसाधना, साधना तथा महासाधना। सेवा के दो भेद हुए––सामान्य और उत्तम सेवा। सामान्य के ४ वज्र––शून्यता, बीज, बिंब, न्यास हुए।[2] इसमें आगे योग, प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अणुस्मृति और समाधि के साथ उत्तम सेवा के लिये स्वीकृत था। पांचध्यानी बुद्धों के माध्यम से पांच इच्छित वस्तुओं का भाव ध्यान कहलाया। यह ध्यान भी पांच प्रकार का था। वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता। प्राणायाम श्वास को आधीन रखता था। श्वास पंचभूत अथवा तत्वों की प्रकृति है। नासिका की नोंक पर वह वज्र रूप में अवस्थित है।

तथागत गुह्यक में तंत्र का प्रारंभ हठयोग की समाप्ति पर प्रारंभ होता है। गगनोपम समझने का प्रारंभ हो गया था (निरभ्रमगगनसन्निभम् अथवा प्रकृतिप्रभास्वरा धर्मा सुवि-शुद्धानग) सम (पृष्ठ १३) कुंडलिनी जगाई जाने लगी। साथ ही 'योनि स्वभावतः प्रज्ञा उपायोभाव लक्षणम् (पृष्ठ १५३) भी दृष्टिगोचर होता है: वज्रयान, वासना, युगनद्धा-वस्था का अखंड तांडव बन गया। कामशास्त्र के विस्तृत विवरण-भरे तंत्र प्रचारित हुए। जादू, अभोज्य भोजन सब ठीक समझे गये। यहाँ तक कि कापालिकों का-सा जीवन भी दृष्टिगोचर होता है। डा. बी. भट्टाचार्य का भी मत है कि वज्रयान में जो मंजुश्री मूल कल्प है वह पुराणों (हिन्दुओं) की बौद्धों को देन है। संभोग में ही महासुख केन्द्रित हो चला। देवी-देवताओं की भरमार हो चली। यह बुद्धमत के निर्वाण के महासुख की कल्पना अब

---

१. प्रिन्सिपल्स आफ़ तंत्र, भूमिका।

२. वज्र चतुष्कोण सामान्यं उत्तमं ज्ञान व्रतेन च प्रथमे शून्यता बोधिं द्वितीयं बीज संहृतं। तृतीयं बिंब निश्पत्तिश्चतुर्थन्यासनक्षरं एभिवज्रं चतुष्कोण सेवा सामान्य साधनं। तथागत गुह्यक।

शायद अपना ठोस रूप स्त्री सहवास में जैसे बहुत दिन बाद पा गई थी। प्रारंभकाल से ही चली आती मुद्राओं और समाधियों ने अपना प्रभाव अब दिखाना प्रारंभ किया। लगभग ७०० ई० सन् में चीनी में अनूदित महावैरोचन अभिसंधि में बुद्ध समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त हो गये। वज्रबोधि तथा उसके शिष्य अमोघवज्र जिन्होंने चीन में तंत्र पहुँचाये, उन्होंने अपने मत को वज्रशेखर का नाम दिया। भाव तथा दार्शनिक पक्ष में, न मंत्र जापो, न तपो, न होमो, न मांडलेयं, नच मंडलंच ? [1]स मंत्र जाप: स तप: स होम: तन्मांडलेयं, तन्मंडलंच, जैसे शून्यवाद की अपरिमित गरिमा गाई जा रही थी, प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि में शून्यता की स्वीकृति भी नहीं मानी गई क्योंकि शून्यता की चरम अनुमति ही प्रज्ञा थी। प्रज्ञा और उपाय ही महासुख थे, यही मांगलिक स्वरूप समन्तभद्र था।

प्राचीन प्रत्यंगिरा धारणी का प्राबल्य हुआ। धारणी की शक्ति पुनरावृत्ति से प्राप्त होने लगी। खानपान की छूट हो गई। गम्य-अगम्य से मुक्त अब योगी समाहित किया जाने लगा।[2] अत: स्पष्ट है कि बुद्धकाल में प्राचीन अवशिष्ट अंधविश्वास जब जादू-टोने के रूप में परिवर्त्तित हुआ तब आर्येतर जातियों का प्राचीन तंत्र उसमें यक्षवाद का योनि महत्त्व लेकर घुस आया।[3] तंत्र और स्त्री-शक्ति-पूजन का तुलनात्मक रूप में जैनों का कुछ कम प्रभावित करता प्रसार भारत के प्रचलित अन्य मुख्य धर्मों पर छा गया। उपासक स्वयं अपने को उपास्य समझने लगा। नृत्य, संगीत, वाद्य, पुष्प, हार, चमर इत्यादि सबको प्रयुक्त करने का स्वातंत्र्य दे दिया गया।[4] और ज्ञान सिद्धि में इन्द्रभूति में—

शुष्क लोहितमांसचं बोधिचित्त विमिश्रतम
महोदकं समायुक्तं भक्षयेत तत्ववित् सदा ।।२।।

और स्त्रियों के विषय में चांडाल कुल संभूता डोंबिकाँ वा विशेषत:। ८३। की भी आज्ञा दे दी। कुरुकुला और महाकाल के अतिरिक्त जंभल की पूजा का भी महत्वपूर्ण स्थान हो गया। जंभल धन का देवता है, वह प्रसन्न बैठा है। उसके एक हाथ में न्योला है।[5] खड्ग, अञ्जन, पादलेप, अंतरधान, रसरसायन, खेचर, भूचर, पातालनामक सिद्धियों के लिये घोर श्रम हो रहा था।

समस्त संसार के धर्मों में अपने आप में इतना प्रबल विरोध शायद ही किसी अन्य

---

१. अद्वय वज्र संग्रह पृ० ३५

२. भक्ष्याभक्ष्य विनिर्मुक्त: पेयापेयविवर्जित: गम्यागम्यविनिर्मुक्तो भवेदयोगी समाहित: ।।१८ ।।

३. स्त्रियं सर्वकुलोत्पन्नाम् पूजयेद् वज्रधारिणीम् ।। ८०।। ज्ञान सिद्धि, इन्द्रभति, प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि ।

४. प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि ।

५ साधनमाला जिल्द २ पृष्ठ ५७३ – ७४

धर्म में मिले, जहाँ शून्य और वज्र का एक ही दृष्टिकोण से मतलब लगाकर उसकी चरमावस्था का रूप माँस और रक्त में भिगो दिया गया। वज्रयान में यदि एक ओर घोर आस्तिकता है तो दूसरी ओर घोर नास्तिकता। एक ओर ठोस रति से संभोग-सुख तो दूसरी ओर आकाश में महाशून्य की-सी निरवलंब दाहभरी तृष्णा, एक महान् शांति की अपेक्षा। इसमें एक ओर व्रात्यों की-सी विभीषिका थी, तो दूसरी ओर विश्वकल्याण की भावना। एक ओर व्यक्ति का अत्यंत दुःखवाद सबको क्षणिक समझता था, तो दूसरी ओर प्रारंभिक आर्यों की-सी मस्त रहने वाली सरलता थी। यही तो सहज अथवा शृंगारमय बौद्धमत ही बंगाल में लगभग नवीं या दसवीं शताब्दी में सहज नाम से पुकारा जाता था। बौद्धमत में सहजानंद का भाव संभोग-सुख से उत्पन्न होने वाला महासुख है जो दूसरी तरह से वज्र और पद्म के मिलन द्वारा समझाया गया है। (बौद्धगान ओ दोहा) बौद्धों में परवर्त्तीकाल से इस संप्रदाय में सरहपा आदि अनेक सिद्धों की बानियाँ मिलती हैं। अवधूती अवस्था में द्वैतभाव रहता है। चांडाली में द्वैत अद्वैत में समा जाता है और बंगाली अथवा ढोंबी में शुद्ध अद्वैतवाद रहता है। १३९९ ई० सन् में सहजिया धर्म को ही उज्ज्वल धर्म कहा गया। बौद्धों के अनीश्वरवाद की परितुष्टि परिवर्तित परिस्थितियों में यों संतुष्ट हो गई कि मनुष्य को ईश्वर से भी ऊपर समझ लिया गया। सहजवादियों ने कुछ परिवर्तन करके तंत्र के नाड़ी चक्रनिरूपण को ले लिया। अपने व्यवहार में सहजियों का कथन था कि दक्षिणाचार के स्थान पर वाममार्ग को ही अपनाना श्रेष्ठ है। दक्षिणाचार इसलिये त्याज्य था क्योंकि वह वेदबाह्य नहीं था। तंत्रों की 'स्त्री' शक्ति सहजियों में मंजरी या सखी बन गई क्योंकि प्रेम ही सहजियों का आधार है। प्रेम ही की शक्ति को सर्वोपरि तथा सर्वशक्तिमान स्वीकार किया गया है।

सहजिया संप्रदाय में शून्य, सहज, संभोग, सम्मिलन, गगनोपम भाव तथा महासुख ही घूम-फिरकर चलता रहा इसका एक प्रकार का क्रमागत विकास होता रहा। नृत्य, संगीत, संघवाद परिवर्त्तित रूप में उतर आया। प्रेम की ओर ले जाने में करुणा का बहुत बड़ा हाथ था। शक्ति का भय हट गया। अब मनुष्य शताब्दियों के उस भय को त्याग देना चाहता था। राजनैतिक परिस्थितियाँ भी बदल गई थीं। मेरे करुण स्वभाव उठ, वज्रधर महासुख की इच्छा करता है, 'त्रिभुवन जल रहा है', कोई नहीं दिखता। बोधि वज्रधर की महासुख से आराधना कर, क्या शून्य समाधि लगा रखी है ?[१] परवर्त्ती साहित्य में प्राप्त प्रेम की प्रबल वाणी यहीं मिल जाती है। यही अनन्यता ही आगे चलकर प्रेम में परिवर्तित हो गई।

जैन आदि बौद्ध और वैष्णवों का प्रभाव पड़ने पर कापालिकों ने अपनी यौन साधनाओं का अत्यंत घृणित रूप छोड़ दिया और जिन्होंने ऐसा करते हुए लोकायतों,

१. डाकार्णव एन. एन. चौधरी. पृ० १३५। उठहु करुण सभावु महु कामसि महसुह वजधरु (पृ० १३५) तिहुयण डहइ न दिस्सइ कोहू। (पृ० १२५) आराहिअ महसुहि बोहि वज्जहरोइ के सुण समाहिअ अच्छसि तम्म (पृ० १२३)

कपालधारियों के क्षणिक सुख का अवलंबन त्याग दिया वे ही आगे चलकर सहजिया नाम से पुकारे जाने लगे। उन्होंने प्रेम के सामने काम की बलि दे दी। यही शायद दक्षिणाचारियों के मत प्रवर्तक हुए।[2]

भिन्न मतों के लोगों ने 'सहजभाव का' भिन्न रूप से अर्थ लगाया है। सहज महासुख आनंद सभी का लक्ष्य हो गया। चैतन्य का परवर्त्तीकाल में बंगाल में इतना सफल हो जाना शायद इसी पृष्ठभूमि के कारण हो सका। व्यक्ति में प्रेम की भावना इतनी बढ़ गई कि व्यक्ति अपने भीतर ही पूर्णत्व का प्रयत्न करने लगा। अपने भीतर यह पूर्णत्व प्राप्त करने का विचार भारतीय संस्कृति की सदैव से ही भूख रही है। मनुष्य ईश्वर से अपनी सामर्थ्य में कहीं अधिक है। सहज में अपने समय में उत्तर-पूर्व और दक्षिण के निर्गुण और सगुण भक्ति मार्ग में प्रायः वही महत्त्व दिखाया जो गोरक्ष से पहिले सभी संप्रदायों में योग ने दिखाया था। सहज के किसी न किसी पूर्ववर्त्ती या परवर्त्ती रूप ने हिन्दू मतों को शाक्त उपासना से निकालकर जीवित रहने की शक्ति दी।

सहज में पाषंड खंडन किया, मंत्रों और देवताओं को व्यर्थ कह दिया। नंत्रण तंत्रण धेयण धारण सव्व विरे बढ़ विषयभ कारण असभल चित्तं झाणे खरडह सह अच्छन्तम, अप्पण झगडह। (सरहपा)

जहाँ मन और पवन का संचरण नहीं, जहाँ रवि-शशि प्रवेश नहीं करते हैं हे मूढ वहाँ चित्त को विश्राम दे, यह सरह का उपदेश है। इसमें निर्गुण की मस्ती है, कोई वासना की ग्लानि नहीं है। यह वह सहज था जिसने भारत के धर्मों को सूफी संप्रदाय के प्रेम के निकट खींचा, किन्तु उसमें उसे खोने नहीं दिया, वरन् बुद्धि तत्त्वों में यदि यह वेदांत के निकट आ गया तो हृदय तत्त्व में प्रेम के पास। परवर्त्ती संत तथा भक्त मत में बुद्धमत की अच्छाइयाँ इसी रास्ते से घुस चलीं। एक दिन काम को शिव के तप, योग और पौरुष ने भस्म कर दिया था, किन्तु अनंग से वह पराजित होकर डूब गया। सहज उसे उबार लाया, किन्तु अब वह नीरस पवित्र नहीं, प्रेममय हो गया था। काम को नष्ट नहीं किया गया उस पर विजय की गई। 'परकीया' की भावना फिर भी बनी रही। शिव के स्थान पर अब उनका स्थान दूसरे साकार रूप कृष्ण ने ले लिया था।

हिन्दू धर्म के सबसे शक्तिमान परमेश्वर महादेव के जीवन-काल का इतिहास वास्तव में भारतवर्ष के सांस्कृतिक विकास का इतिहास है।

शैव संप्रदाय कितना प्राचीन तथा विस्तृत है इस पर विचार करने में स्वयं अनेक ग्रन्थों का निर्माण हो सकता है। यहाँ एक बात पर ध्यान देना विशेषतया आवश्यक है। शैवमत के विषय में सर्वसाधारण विचार है कि आर्येतर धर्म होने के कारण यह ही समस्त अंधविश्वासों का मूल है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि आर्यों में स्वयं अंधविश्वास

२. दक्षिणारंजन शास्त्री, ओरियन्टल कांफ्रेन्स ६. १९३०.

नहीं थे। दक्षयज्ञ में शिव की कथा शिव के विषय में तत्कालीन आर्य बुद्धि को दिखाती है। शिव के उस रूप में महायोगी का वेश प्रगट होता है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि ब्राह्मण शैवों से मिलकर जल से अपने को पवित्र करते थे। उपनिषद्काल में शिव के प्रति आर्य-रुचि बढ़ चली थी। धीरे-धीरे ब्राह्मण शिवयोगिन के रूप में समाज में स्वीकृत होने लगे। मुनिभक्त से भिन्न थे। वे वनों में विचार चिंतन में लीन निरंतर अभ्यासों में रत रहते थे। शिव भी उनके आराध्य थे। परवर्त्ती साहित्य में शिव के लिये ही कपाली शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में रुद्र-वर्णन में रुद्र के हाथ में 'विषस्यपात्र' है। मुनि और व्रात्य का भेद यह प्रतीत होता है कि जब मुनि अन्य देवों की भी उपासना कर सकते थे, व्रात्य केवल शिव के उपासक थे। ऐसे शैव उपासकों ने स्मृति को अस्वीकार कर दिया, वेदों को ठुकरा दिया और समाज से वे तिरस्कृत हो गये। वे विषदायी, झूंठे और व्यभिचार गर्भपातक, शराबी इत्यादि के रूप में भी प्रसिद्ध थे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रत्येक जाति के मनुष्य शिव के उपासक हो सकते थे।

श्रीकांत ने शिव कहने वाले चांडाल के साथ भी खाने-पीने की आज्ञा दी है।

शिवलिंग के विषय में कुछ का मत है कि चिह्न ही लिंग का अर्थ है। इसके लिये लिंग पुराण के---विग्रहे जगतं लिंगं, आलिंगादभवत स्वयं इत्यादि का उद्धरण दिया जाता है। किन्तु जातियों का प्राचीन विश्वास विशेषकर खेतिहर सामाजिक व्यवस्था में संभावित भावना का बहिष्कार परवर्त्ती ब्रह्मचर्य से प्रभावित साहित्य से करना एकदम अंतिम निर्णय नहीं हो सकता। शालिग्राम को शूद्र नहीं छू सकते किन्तु लिंग उनके लिये अस्पृश्य नहीं है। उपनिषद्काल के अनंतर भी, शिव के दो रूप होने पर भी, शक्ति का उनके साथ इतना महान संसर्ग नहीं मिलता जो परवर्त्ती काल में आर्यों का रुद्र देवता कैसे एक दिन अनार्यों के महादेव का अंगमात्र रह गया और महादेवशिव बन आर्यों की त्रिभूर्ति में जा बैठा तथा शक्ति के साथ मिलकर कैसे वासना में डूब गया, यह समझ लेने का अर्थ है। शैव संप्रदायान्तर्गत समस्त धाराओं की झलक प्राप्त कर लेने के समान है। क्योंकि समय-भेद के साथ इन्हीं अनेक स्वरूपों ने अपने को आगे करने का बारंबार प्रयत्न किया है। शैव सिद्धान्त के मुख्य मत यह हैं--काश्मीर, दक्षिण तथा वीर। सहस्रों मीलों का फासला होते हुए भी उत्तर और दक्षिण के शैव मत में कोई आधारभूत भेद नहीं है। भेद की इतनी कम मात्रा है कि उसे देखकर विस्मय ही हो जाता है। त्रिक् संप्रदाय का प्रारंभ नवीं शताब्दी से काश्मीर में माना जाता है। किन्तु शिवशासन अथवा शिवागम काश्मीर में बहुत पहिले से था। शिव शास्त्रों के तीन भेद हैं। अभेदः अद्वैतः भेद, भेदाभेद, परा पश्यंती वैखरी तीन अवस्था हैं। शिव के पांच मुख हैं। वैखरी के द्वारा ही वे चित्त, आनंद, इच्छा, ज्ञान, क्रिया को प्रकट करने के लिये इस प्रकार अभिहित हैं। ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, अघोर, वाम। पहिले चौंसठ शैव संप्रदाय मध्यमा वाक के रूप में दिखे फिर वैखरी बन गूँजे, जो परा, पश्यंती रूप रहे। कलियुग आने पर अनेक ग़ायब हो गये। श्रीकंठ के रूप में शिव ने दया से मनुष्योद्धार

के लिये दुर्वासा को संसार में ज्ञान फैलाने के लिये इस शास्त्र का प्रचार करने भेजा। दुर्वासा ने---मनस से प्रत्येक त्र्यंबक, अमर्दक तथा श्रीनाथ उत्पन्न किये जिन्हें अभेद, भेद और भेदाभेद का काम दिया गया। द्वैत तत्त्व को रोकने के लिये शुद्ध अद्वैतवाद--पशवागम पढ़ाया गया। त्रिक संप्रदाय के साहित्य के तीन अंग हैं। जो शिव ने पार्वती को सुनाया वह आगम शास्त्र; स्पंद शास्त्र, वसुगुप्त या शिष्य कल्लट, प्रत्यभिज्ञ शास्त्र-सिद्ध सोमानंद। संक्षेप में यही इतिहास है। आत्मा-मात्र अनुभूति की-सी एक अपरिवर्तनशील वास्तविकता है। यह अनुभव के माध्यम से परिवर्तित नहीं हो सकती। शिव सर्वव्यापी अनुभूति के परे हैं। शक्ति, चित्त, आनन्द शक्ति, परमशिव की इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और त्रिया-शक्ति है। शक्ति ही के कारण सृष्टि और प्रलय होते हैं। पांच तत्व, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच तन्मात्रा, पांच ज्ञानेन्द्रिय या बुद्धिन्द्रिय, अंतःकरण तथा प्रकृति और पुरुष स्वीकृत हैं। इस शैव सिद्धान्त मत में प्रकृति अनुभूति है। पुरुष अनुभूति का सीमित व्यक्तित्व है।

काल, नियति, राग, विद्या, कला बंधन हैं। सद्विद्या, शुद्ध विद्या, ऐश्वर या ईश्वर-तत्त्व, सदास्थ या सदाशिवतत्व, शक्तितत्त्व, शिवतत्व व्यापक और उद्देश्य कर्म हैं।

शिव, शक्ति---'निषेद व्यापाररूपा' से सृष्टि के हेतु में सहायता लेते हैं। जीव माया और कंचुकों में फँसा है। जब परमशिव निद्रागत होते हैं तो 'इदं सर्व' की अनुभूति धुँधली पड़ जाती है, जिसमें पहले वह स्वयं सोये हुए थे। यह इदं सर्व तव शून्यता प्रतीत होने लगता है। बौद्ध शून्यता को वास्तविकता मानते हैं। यहाँ उससे भेद है। परम तथा उच्च दृष्टिकोण से प्राप्त शिवतत्त्व ही है। क्योंकि शक्ति नाना रूप उसी से उत्पन्न करतीं है। वही उसकी भीतरी शक्ति है। निम्नतर अवस्था में अहंकार ही दृश्य जगत् का प्राण है। निम्नतम तत्त्व अपने में उच्चतम लिये हैं। ऐसे ही विपरीत होने पर भी होता है।

दक्षिण शैव सिद्धांत वेदों के समान प्राचीन माना जाता है। नारायण ऐयर का कहना है कि अपने सामाजिक स्वरूप में शैव मत का वेदवाह्य स्वरूप दक्षिण से ब्राह्मणों के कर्म-कांड की हत्याओं के घृणा करने के फलस्वरूप हुआ। शैव धर्मानुयायियों के प्रभाव के कारण ही वह दूर हो सका। दक्षिण का शैव मत अपने दार्शनिक स्वरूप में वेदांत का शंकर द्वारा पुनःप्रतिपादित स्वरूप है जो प्रायः सर्वविदित है। सच्चिदानंद ब्रह्मजीव पर दया करके उसे पाशों से मुक्त करना चाहता है। जीव माया से घिरा हुआ है। सृष्टि का कारण चित् और शक्ति है। प्रकृति और पुरुष एक दूसरे से संबद्ध हैं। पूर्ण स्वतंत्र नहीं। जो दिखता है वह माया है, अतः वह सत्य नहीं। सत्य ब्रह्म है। समस्त ब्रह्मांड ब्रह्म ही है। माया की झिलमिलाती चादर में से ब्रह्म दिखाई पड़ता है। वस्तु जड़ और चेतन दोनों का सम्मिलन है। विश्वानुभव के परे की परिस्थिति में दृष्टिकोण यह नहीं रहता। इस प्रकार पूर्ण सत्य अपने अपरिवर्तनशील स्वरूप में ही ब्रह्म है। वह अभेद है, अद्वैत है, जो दिखता है वह उसके कारण ही सत्य-सा दिखाई देता है। जीव और ब्रह्मा का मिलन तभी संभव हो सकता है जब प्रथम अविद्या और द्वितीय से माया दूर हो जाय। वेदांत विशेषतः

श्रुतिप्रधान शास्त्र है. युक्तिप्रधान नहीं।[१]

इनके अतिरिक्त भी शैव संप्रदायों के अनेक भेद हैं। पाशुपतमत—बार्थ के अनुसार-नव वैष्णव संप्रदाय के पाञ्चरात्र का शैव संप्रदाय में एक समानांतर है।[२] शिव=पशुओं के पति से पाशुपत शब्द बना है। शुक्ल यजुर्वेद और अथर्ववेद में पशुपति का रुद्र से घना संबंध रहा है। ड्यूसन के अनुसार ओं पवित्र अक्षर है। भस्म रमाना पाशुपत धर्म है। ओं का योग से ध्यान भी व्यवहृत हुआ है। पाशुपत शैवमत अपने अनेक रूपों में रहा है। पाशुपत शैव, लकुलीश पाशुपत, कापालिक, व्रात्य, नाथ, गोरखनाथी, रसेश्वर आदि।

वीरशैव मत यद्यपि दक्षिण में १२वीं शताब्दी के लगभग प्रचलित हुआ, किन्तु लगता है कि इसकी पूववर्त्ती प्रतिच्छाया ईसा की कुछ ही शताब्दियों बाद अपने मुखर रूप में प्रतिष्ठापित थी,जैसा कि लिंगपूजा के इतिहास का भारत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्रायः सहस्रों वर्ष पहिले ऋग्वेद से ही ज्ञात होता है। अब वीरशैव अपने को पाशुपत न कहकर माहेश्वर कहते हैं। पाशुपत के शिवावतारों का खंडन करते हैं और अपनी भिन्न कहानियाँ प्रकट करते हैं। यह नया मत अपने से प्राचीन चले आते सिद्धांतों को नया रूप नया व्यवहार देने में सशक्तरूप से सफल हुआ। इसमें सम्मिश्रित अनेक व्यक्ति प्राचीन ही थे।

आगम वीर शैवों का उल्लेख स्मृतिकारों ने भी किया है। वे वेद के कर्मकांड में विश्वास नहीं करते। पाशुपत मत में शिव कारण-पति है, पशु परिणाम है। योग ही अभ्यास है, विधि आवश्यकता है दुःखांत में मुक्ति है। भस्म लगाना, विकृतहास्य, लंगड़ाकर चलना इत्यादि स्वीकृत है क्योंकि भक्त के लिये बेसुध हो जाना आवश्यक है। पशुपतिसूत्र अथवा पाशुपत सूत्र का जिक्र आता है, किन्तु यह अभी तक अप्राप्य ही है।

कापालिकों में चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ, योग तथा मरघटवास माँस, मद्य का प्रचलन था।

रसेश्वर मत का परवर्त्ती स्वरूप ही सोना बनाने वालों की अद्भुत प्रयत्नशीलता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसके विषय में लिखा है। पारा शिव का वीर्य है और अभ्रक पार्वती का रज। इन दोनों के मिश्रण को यंत्र विशेष से ऊर्द्ध्वपासित करने से शरीर को अमर बनाने वाला रस तैयार होता है। किसी प्राचीन ग्रंथ का एक श्लोक सर्व दर्शन संग्रह में उद्धृत है कि पारद (पारा) संसार सागर को पार कर देता है। रसेश्वर सिद्धांत में राजा सोमेश्वर, गोविन्द भगवत्पादाचार्य, गोविंद नायक, चर्व हि कपिल व्यालि कापालि, कन्दलायतन तथा अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियों का इस रस-सिद्धि से जीवमुक्त सिद्ध होना बताया गया है। कहा गया है कि इस संप्रदाय का मत आदिनाथ महादेव का उपदिष्ट है

१. वुडरोफ़, दी वर्ल्ड एज़ पावर।

२. पाञ्चरात्र कुछ अंश तक वेदमूलक हो गया, परन्तु वेदबाह्य ही माना गया। उ० बी० द०,

और आदिनाथ, चंद्रसेन, नित्यानंद, गोरक्षनाथ, कपालि, भालुकि, माण्डव्य आदि योगियों ने योग बल से इसकी स्थापना की थी।

प्राण सांगली में रससिद्धि पर नानक और अन्य सिद्धों की बहुत बातचीत हुई है।[1] मिलता-जुलता ही रसायन का भी बहुत बड़ा विवेचन किया गया है। आयुर्वेद में अभी तक नाथों और सिद्धों की रसवादी पुस्तकें मिलती हैं।

सिद्धि का भौतिक रूप प्राचीन काल से इसी रूप में समझा जाता रहा है कि कुछ चमत्कार अथवा अपरूप की फल-प्राप्ति हो। यह संप्रदाय भी विभिन्न दर्शनों के साथ बदलता रहा है। यह जैन, बौद्ध, वेदवाह्य, वेदग्राह्य सभी में था। कबीर जैसी आत्मा ने इसे भौतिक और नश्वर समझकर त्याग दिया है। इस रससिद्धि का प्रारंभ शायद वेदवाह्य रहने वाले प्राचीन आर्येतरों या यक्षों से ही समझना चाहिये क्योंकि आर्यों ने अपनी औषधियों के रहस्य को मिटाने का प्रयत्न किया जो इसकी रहस्य-भावना पर नहीं चल सका।

दत्तात्रेय निःसंदेह एक महान् नेता था (जिसे इतिहास ने भुला दिया) क्योंकि दत्तात्रेय हिन्दुओं के २४ अवतारों में से एक है। दत्तात्रेय का गोरक्ष से युद्ध तथा वादविवाद उल्लिखित हुआ है, जिसका अर्थ यही निकाला जा सकता है कि उस काल तक इनका प्रभाव तथा अनुयायी दोनों ही समाज में अवशिष्ट थे। कबीर ने कालांतर में दत्तात्रेय के विषय में अनेक बार बात की है। जिससे प्रगट होता है कि उनके समय में भी चर्चा चल रही थी। दत्तात्रेय का २४ अवतारों में होना यह प्रमाणित नहीं करता कि यह एक प्राचीन मान्यता थी। अधिक से अधिक इसे परवर्त्ती कल्पना कह सकते हैं। किंवदंती के अनुसार दत्तात्रेय पशुप्रेमी और त्रिशूलधारक हैं। इससे यह भी आभास लगता है कि शैव सिद्धान्त से शायद आपका किसी रूप में कोई संबंध रहा हो। क्रुक ने अपनी पाप्यूलर रिलीजन एण्ड फोकलोर आफ़ नार्दर्न इण्डिया में लिखा है कि गोर बाबा जो पहिले अनार्य जातियों का एक पिशाच जैसा नीच देवता था आगे चलकर गौरेश्वर नाम से शिव का रूप बनकर दिखाई देता था। ऐसे ही खंडोबा या खंडेराव हैं जिसका कुत्तों से संबंध है। कुत्तों से तो दत्तात्रेय का भी संबंध माना जाता है।

जो आपके विषय में आपके दर्शन का आभास देता है। निम्नलिखित है:—

त्रिपुर संप्रदाय का प्रारंभ दत्तात्रेय से ही माना जाता है। त्रिपुरा रहस्य के ज्ञानखंड की भूमिका में गोपीनाथ कविराज ने इस प्रकार लिखा है। परशुराम ने दत्तात्रेय से त्रिपुर सुन्दरी के गुणगान तथा माहात्म्य सुनकर उसकी उपासना के विषय में जानने की इच्छा प्रगट की। परशुराम के शिष्य सुमेध ने संहिता और सूत्र दोनों का एकीकरण किया। परशुराम और दत्तात्रेय में संलाप हुआ। वही त्रिपुरा रहस्य है। परमसत्यपूर्ण स्वतंत्र है। उसका संकल्प

---

१. प्राण सांगली से उदाहरण के लिये—तां बाबे आखिया नाथ जी कोई अंमित गुटका समसिद्ध आखोता समे सिद्ध बोले—ते गोरखनाथ कहिया तपाजी त्रिफला सिरसाही ४५ लैणा इत्यादि।

बंधनहीन है। संकल्प चैतन्य के समान है, जो या तो चैतन्य में निहित है या प्रगट। यही विमर्श या क्रिया है। और चैतन्य का विकल्प से मुक्त रहना है और जड़ से आधार रूप से से भिन्नत्व है।

वेदान्त का मायावाद इस आधार पर त्रिपुर संप्रदाय अस्वीकृत करता है कि वह विवर्तवाद को ठीक नहीं समझता। आभास को मानता है। यत्र सर्वं जगदिदं दर्पण प्रतिबिंबवत् उत्पन्नं च स्थितं लीनं सर्वेषाम् भासते सदा। जो भासित होता है वह भास के रूप में सत्य है, असत्य नहीं है। यदेव जगदाकारं भासते विदितात्मनाम् यद्योगिनां निर्विकल्पं विभात्यात्मनि केवलाम। यतोनतेषाम सहजसमाधिप्राप्तिरातिहि यावद्विनर्शन परा स्तावत्ते पूर्ण रूपिण :॥३१३।[1] यथा क्रीडन कुमारेण प्रौढस्तद्वेष वर्जितः, एकमेव जगत्क्रीडातत्पोपरोनिर्मलाशयः। ५४।२९। जिस माध्यम से यह 'भास' प्रभासित है उसके बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं। माध्यम का अस्तित्त्व ही उसका अस्तित्व है। शुद्ध आत्मा माया से घिरकर ही पुरुष रूप दीखता है और उस पर ५ बंधन लगते हैं।

शिव और विष्णु संसार पर दृष्टिपात करने के दो दृष्टिकोण हैं। किन्तु शैवमत में मुख्य धारा दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक अधिक है। भावमय कम। दक्षिण भारत में यह बात पूर्णतया लागू नहीं होती।[2] यहाँ वैष्णव धर्म पर विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। दक्षिण के पुनरुत्थान में उसका इतना ही स्थान है जितना कि शंकराचार्य का। भक्ति की धारा ने योग की नीरसता के बाद भारत को रसप्लावित किया था। इसका विशुद्ध स्वरूप था। किन्तु वैष्णव भी शक्तिमत प्राबल्य के युग में शैवों की भांति तंत्रों और मंत्रों में डूब गये थे। श्रौत विधि से दूर रहने वाले स्मार्त शिव और विष्णु की एक-सी उपासना करते हैं। शारदा तिलक तंत्र में विष्णु ही बैकुंठ है जो कुण्ठा के परे हैं। शिव 'वश' धातु से बना है जिसका अर्थ वश में करना है। द्वैतवादी वैष्णव पुराण पुरुष के ज्ञान को ही योग कहते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद मत्सर को पराजित करने के लिये अष्टांग योग का समर्थन किया गया है। वैष्णव को शाक्त होकर वेदवाह्य होना ग्राह्य नहीं था।[3]

वेदांती जीवात्मा को पारभौतिक सत्व नहीं मानते और इसमें वे बौद्धों से बहुत निकट प्रतीत होते हैं। गौड पाद और शंकर का दर्शन महायान के इतने निकटतम है कि उन्हें प्रछन्न बौद्ध कहा गया।[4] शंकर ने ब्राह्मण धर्म की पुनर्स्थापना की जिसके कारण दर्शन धर्म का अनुयायी हो गया। यह भी कहा जाता है कि शंकराचार्य ने शाक्त मत में दक्षिणाचार प्रचलित किया।

---

१. त्रिपुरा रहस्य ज्ञान (खंड)। ३१२०।

२. इलियट जिल्द २, ५वां खंड। ३. मांसभक्षी द्विजोयस्तु वेदवाह्यो तथा स्मृतः परवर्ती शक्ति संगम तंत्र, ३७, ९वां पटल। ४. राहुल : दर्शन दिग्दर्शन।

यामाकामीसोजेन जैसे जापानी विचारकों का मत है कि शंकर बौद्धमतावलंबियों को इसलिये परास्त करने में समर्थ हो गये, क्योंकि किसी दीर्घ द्रष्टा अध्ययन पंडित बौद्ध से उनकी मुलाकात नहीं हुई। बात कुछ अविचारणीय-सी लगती है। शंकराचार्य भारतीय संस्कृति के इतिहास की एक महान् घटना का सूत्रपात करने वाले मेधावी थे जिन्होंने बुद्धि से बुद्धि को पराजित किया। धर्म का चक्रमात्र यदि दार्शनिकता का ही चक्र होता तो शायद उससे इतना भेद नहीं पड़ता। भारत में धर्म का जीवन से अत्यंत सांस्कृतिक तथा घनिष्ठ संबंध रहा है। ईसा की छठी से ग्यारहवीं शताब्दी तक के अंधकार में जब भारत का इतिहास जिज्ञासु का पथ रुद्ध करने लगता है तक शंकराचार्य की ही छवि उस पाश को काटती हुई हमें दिखाई देती है। शंकर का दृष्टिकोण दार्शनिक था और उनमें उपनिषदों की प्राचीन दार्शनिकता अपने नवीन स्वरूप में उठ खड़ी हुई थी। उन्होंने उच्च वर्गों में भीषण हलचल मचा दी। ब्राह्मण धर्म पुनः जाग्रत हो गया। बुद्ध धर्म ने वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध जो पुकार उठाई थी उसे वह जब अपने उच्च आदर्शों में रहकर निभा सकने में असमर्थ हो गया तब उसने अनजाने ही इस भूमि पर पलने वाले प्राचीन आर्येतर विश्वासों का सहारा लिया। वेद ग्राह्य और वेद बाह्य दोनों ही संप्रदायों की भीड़ अपनी पारस्परिक विषमता और असामंजस्य से व्याकुल हो रही थी, उस समय यक्ष-प्रभाव प्रबल हो गया। यह ठीक तरह से समझना होगा कि आर्यों के आने पर इस भूमि पर दो विचारधारायें बह रही थीं। यही आज प्रमुख थीं इसका प्राचीन साहित्य से आभास मिलता है। कालांतर में आर्यों का आनंदवाद, दुःखवाद और विलासवाद से हिलमिल गया। उसके साथ ही योग, रसेश्वर मत आदि प्रायः सभी में पाये जाने लगे। आनंदवाद के प्राबल्यवाद में प्रारंभ में विलास-वाद को सामाजिक बंधनों में बाँध दिया। समाज मातृसत्तात्मक के स्थान पर अब पितृ-सत्तात्मक हो गया था। बाद में आर्य सामाजिक व्यवस्था में तथा बाहर भी अनेक संप्रदाय और मत बनने-बिगड़ने लगे। धर्म और दर्शन का चक्र उन्हीं मूल आधारों पर विभिन्न रूप धरे घूम रहा था। प्रत्येक देवता में अनेक-अनेक स्वरूप और मत धीरे-धीरे निहित हो गये। जब जिसका मौका लगता वही मत किसी अवस्था में बाहर आ जाता। इन मतों का आधार अपने सूक्ष्मतम रूप में अनेक भेदों पर निर्मित था, जो इस देश में रहने वाली अनेक जातियों के कारण था। यक्षवाद का प्रारंभिक स्वरूप यदि आर्येतरों की अनेक रहस्य भावनाओं से मिलकर एक न हो जाता तो शायद उसकी इतनी विजय न होती।

मध्य युग की यह वेला विराट जन समुद्र के विश्वासों के घोर मिश्रण का फलस्वरूप हो गया, क्योंकि जातियाँ आर्य, नाग आदि के रूप को भूल चुकी थीं। वर्णाश्रम की छाया में पलता हुआ जाति भेद विकृत होकर रह गया था। बौद्धों के विप्लव ने इसे सहायता दी थी। इस प्रकार आर्यों के उच्चादर्श तथा आर्येतरों के उच्च आदर्शों को युगों से अवरूद्ध यक्षवाद के सामने घुटने टेककर एक भयानक मूल्य चुकाना पड़ा। शाक्त मत का प्राबल्य प्राचीनता की रट को एक ऐसा धक्का था जिसे कोई भी सहन नहीं कर सका। ब्रह्म अज्ञात

था, अव्यक्त था। शिव शांत शव की भाँति सो रहा था। ब्राह्मणवाद के लिये ख़तरा पैदा हो गया था कि कहीं वह धर्म के स्थान पर मात्र दर्शन बनकर न रह जाय। उस समय प्राचीन विश्वास ऊपर उठ आये और मनुष्यों में शक्ति के प्रति राग उत्पन्न हो गया। इसमें यह जोड़ देना आवश्यक होगा कि प्राचीन विश्वासों में से एक अंग ऊपर उठ आया और उसने अपना प्राबल्य स्थापित कर दिया क्योंकि प्राचीन विश्वासों की एक के स्थान पर शायद अनेक धारायें भारत में विद्यमान थीं।

शैव, वैष्णव और बौद्धमत भारत भूमि पर तथा इधर-उधर भी फैलकर न केवल अपने आप में वरन् एक दूसरे से भी अजीब तरह से उलझ चुके थे। सब था। सब के प्रति विद्वेष और असहिष्णुता रहते हुए भी एक दूसरे के प्रति एक विशेष प्रकार की सहिष्णुता थी। जैसे गहन वन का प्रत्येक वृक्ष अपनी शाखाओं को दूर-दूर तक फैलाने का प्रयत्न करता है किन्तु एक दूसरे की जडों को नष्ट नहीं करता। आर्य, यक्ष तथा आर्येतर जातियों की उच्च दार्शनिकता तथा निम्न कोटि के अंधविश्वास परस्पर हिल-मिलकर एक हो गये थे। इसी उलझे हुए स्वरूप को देखकर इन्हें अलग-अलग करने का प्रयत्न करने वाले पराजित से इसे गाली देने[1] के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाते। सहस्रों वर्षों से आकाश में नक्षत्र देखने वाली भारत की महान धरती विदेशियों के चरणों से आक्रांत होकर भी रहस्यों से भरी पड़ी थी। हम यहाँ उसकी अच्छाई और बुराई का विवेचन नहीं कर सकते। इस रहस्य की प्रवृत्ति में कुछ था अवश्य, जिससे विदेशी अंततोगत्वा पराजित हो जाते थे। कुछ विद्वानों का कथन है कि विदेशियों को बौद्धों ने स्वीकृत किया और धन दिलाया, जिससे ब्राह्मण भी उसी परम्परा पर चल पड़े। यह हो सकता है क्योंकि राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण ब्राह्मण धर्म में ही था जो विदेशी का स्वाभाविक ही विरोध करता, बौद्धमत की स्वीकृति कहाँ तक धार्मिक थी और कहाँ तक राज्याश्रय प्राप्त करने की—राजनैतिक थी, यह भी स्वयं एक विवादास्पद विषय है। विदेशियों को छोड़कर भारतीय स्वीकृति को देखना भी अरुचिकर नहीं होगा।[2]

अत: ऊपर स्पष्ट हो चुका है कि योग और तंत्र ही के कारण वामाचार, बल की तरह जो पहिले पृथ्वी पर धीरे-धीरे चल रहा था। समय पाकर एकदम प्रत्येक वृक्ष पर चढ़

१. ब्रिग्स ने इसे एक चमत्कृत जिज्ञासु विदेशी के रूप में देखा है, पं० हजारी प्रसाद ने इस ओर इंगित किया है। वुडराफ़ की श्रद्धा धर्म-विश्वास-सा बनकर एकांगी हो गई है। डा० मोहन सिंह ने इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला। पेन ने इसे सचमुच गाली दी है और बात में सार होते हुए भी वे विषय के साथ न्याय नहीं कर सके हैं।

२. राहुल. बौ. द. राज्य के भीतर ज़बर्दस्ती शामिल किये जाते जनपदों में जनपद के व्यक्तित्व के भाव को हटाकर एकता का जो काम बौद्ध कर रहे थे उसके महत्व को वह (नंदवंश) भी नहीं भुला सकते थे पृष्ठ ४५। क्या यह एकता ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने कामनवेल्थ के नाम पर भारत में नहीं की थी ?

गया। कुछ धर्मों को उसने ऐसा ढक लिया कि वे एकदम खो गये। और कुछ ऐसे भी रहे जिनका काफी या थोड़ा भाग बाहर ही बचा रहा। जिससे वह अपने आपको नष्ट होने से बचा गये। प्रत्येक धर्म का शाक्त आधार होते हुए भी दार्शनिक पक्ष फिर भी एक दूसरे के निकट नहीं आया। वामाचार ने जैसे सबके आवरण फाड़ने का प्रयत्न किया, किन्तु न वह इसमें ही सफल हो सका न उसने अपने प्रभाव रहने तक दूसरे को ही सफल होने दिया। दार्शनिकता की कमी नहीं पड़ी थी। अनुभूति हो या तर्क, विश्वासवाद हो या न्यायवाद, आस्तिकता अथवा शून्यवाद, शक्ति की भुजा ने एक बार उठकर जैसे सबको रोक दिया। यह कहना ठीक होगा कि मध्ययुग के इस संधिकाल में भारत में ऐसी भयानक उथल-पुथल हो रही थी कि बहुत से धर्म डूबते-उतराते, बनते-बिगड़ते अपना स्वरूप ही बदलते चले जा रहे थे।

शक्ति की प्रेरणा तथा विस्तार की पृष्ठभूमि वह युग था जहाँ परिस्थिति की एक नीरस समानता हो गई थी। समाज जैसा कि हम देखेंगे एकरस चला जा रहा था। उत्तर के होने वाले आक्रमण अब बंद हो गये थे। और जो थे भी वे ऐसे नहीं कि एकदम सब कुछ आकर भस्मीभूत करके द्वार-द्वार उड़ा देते। इस काल के प्रति जो शाक्तमार्गी को मोह रहा आया था, परवर्त्ती कालस्पष्ट दिखाई देता है जहाँ पुरश्चरण स्थान के चुनाव के संबंध में लिखा है :

सुदेशे धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे,[1]

तथा—

म्लेच्छ दुष्ट मृगव्यालशंकातंक विवर्जिते
सुदेशे धार्मिके राष्ट्रे सुभिक्षे निरुपद्रवे।[2]

किन्तु फिर भी—

शून्यालये शिवाकार्णभुवि तुष्यन्ति वामगाः[3]

और—

म्लेच्छाः पाखण्डिनी धूर्त्ता राजानः सचिवादय।[4]

---

१. योगिनी तंत्र
सुदेश, धार्मिक, सुभिक्षा प्राप्त होनेवाले साधनोंयुक्त तथा निरुपद्रव देश।

२. म्लेच्छ, दुष्ट, मृग, व्याल (सर्प), की शंका तथा आतंक से मुक्त।

३. मेरुतन्त्र.
शून्यगृह में, स्यारों से पूर्ण स्थान में वामपंथी प्रसन्न होता है।

४. मेरुतन्त्र
म्लेच्छ, पाखंडी, धूर्त, राजा, सचिवादि युवतियाँ जहाँ नहीं जाते वहाँ सिद्धि समीप होती है।
युवती का अर्थ संभवतः यहाँ उस स्त्री से है जो शक्ति नहीं है।

युवत्यश्च न वर्तन्ते तत्र सिद्धरदूरता:

यह तो एक स्वयंसिद्ध सत्य-सा बन गया लगता है कि—

राजानः सचिवा राजपुरुषाः प्रभवोजनाः
चरन्ति येन मार्गेण न वसेत तत्र तववित् ।[1]

यहाँ एक महत्वपूर्ण बात को जान लेना आवश्यक है ।

देवताभेद से पुरश्चरण के स्थान-भेद भी बताये जाते हैं :

महागणपति क्षेत्रं मायूरं नर्मदा तटम ।
महाश्मानं मायूरं गणेशमनुसिद्धिदम् ।।
प्रभासं कुरुक्षेत्रं पुष्करं भृगुपर्वतंम् ।
यमुनायास्तटं काशीदिनेशमनुसिद्धिदम् ।
अयोध्या मथुरा माया काशी बदरिकाश्रमः ।
गया च गण्डकीतीरं द्वारिका विष्णुसिद्धिदा ।
केदारस्त्र्यंबकं काशी कांच्यवन्त्यां वनानिच ।
गंगातीरं वैद्यनाथो रामेशः शिवसिद्धिकृत ।
ज्वालामुखी प्रयागश्च कामिनी मालिकापदम् ।
सरस्वत्यास्तथा तीरं शक्तिमंत्रस्य सिद्धिकृत् ।
तीरं च कमलेश्वर्या मेखला यक्षपर्वतः ।
अंगबंगकलिंगश्च क्षुद्रदैवतसिद्धिदाः ।
कामरूपं च नेपालं हिंगला विन्ध्यवासिनी ।
जालंधरं पूर्णगिरिर्त्रामिमार्गेण सिद्धिदाः ।।[2]

---

१. यामल

राजा, सचिव, राजपुरुष, प्रभावशाली व्यक्ति जिस राह जाते हैं वहाँ तत्ववित् कभी न ठहरे ।

२. मेरुतन्त्र

महागणपतिक्षेत्र, मायूर नर्मदा तट, महाश्मानं मायूर—यह स्थान गणेश-सिद्धि-दायक ह ।

प्रभास, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, भृगुपर्वत, यमुना तट, काशी—सूर्यसिद्धि-स्थान । अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, बदरिकाश्रम, गया, गंडकी तीर, द्वारिका—विष्णुसिद्धि-धाम ।

केदार, त्र्यम्बक, काशी, कांची, अवन्ती, जंगल, गंगा तीर, वैद्यनाथ, रामेश इत्यादि शिवसिद्धि के स्थान ।

ज्वालामुखी, प्रयाग, कामिनी, मालिकापद, सरस्वती तीर—शक्तिमंत्र सिद्धि-योग्य स्थान ।

सूची बढ़ती चली जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति की मंत्र साधना वाम-मार्ग से अलग होती थी।

इस प्रकार गोरक्ष का युग भारतीय संस्कृति में अपना एक विशेष प्रसार प्रदर्शित करता है। यह ऊपर देखा जा चुका है कि उस समय की सामान्य परिस्थिति का व्यक्तीकरण उसके एकरस होने में निहित था। किन्तु वह युग इससे भी बड़े कारण से अलग निकालकर देखना पड़ा है। बौद्धमत के विषय में ऊपर कहा जा चुका है कि उसका पतन छोटे-छोटे राज्यों के युग में ही हुआ। यहाँ इसमें यह जोड़ देना आवश्यक होगा कि छोटे राज्यों के समय में उत्पन्न बौद्ध धर्म पारभौतिक था तथा गणों पर समुद्भूत था, इस समय बौद्धमत में वह दोनों बातें शेष नहीं थीं। चन्द्रगुप्त मौर्य के युग से हर्ष तक बार-बार अधिकांश ब्राह्मण छाया में ही चक्रवर्त्तित्व के प्रबल खडगों ने अपना पराक्रम दिखाया था। अतिराष्ट्रीयता में रंजित इतिहासज्ञ सदैव ही इसे स्वर्ण युग कहते रहे हैं। किन्तु हमारे आलोच्यकाल के रूप में वह अपने पीछे कैसा हाहाकार छोड़ गया था, उसमें कितनी शक्ति थी वह तब देखा जायगा जब इस्लाम के प्राथमिक प्रहारों के विषय में विचार होगा। हर्ष और इस्लाम के बीच का यह युग भारतीय इतिहास में प्रायः अन्धकारमय युग ही समझा जाता था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि गोरक्षनाथ जैसे प्रबल चरित्र को अभी तक इतिहास में कोई महत्त्व नहीं दिया गया है। इलियट ने शक्ति तथा वाममार्ग का प्रचार केवल उच्च वर्गों में बताया है कि जनसाधारण पर इनका विशेष प्रभाव नहीं था, किन्तु संपूर्ण जुलाहा जाति का इतिहास[1] भी सम्भवतः इसके गहरे प्रभाव को प्रगट करने में असमर्थ है क्योंकि इसका प्रभाव किसी न किसी रूप में सदैव ही भारतीय संस्कृति में मौजूद बना रहा है। केवल राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के भेद के कारण ही यह धारा खंड-खंड होकर इतनी निर्बल हो गई थी कि आगे चलकर इसे ढूँढ़ना भी कठिन दिखाई देने लगा। ऊपर किन कारणों से इस धारा का प्रभाव अधिक से अधिक तीव्र तथा वेगमय होता चला गया था यह देखा जा चुका है। अतः इस युग की अपनी एक विशेषता थी जो इसे अपने से पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती युग से अलग कर देती है। इसी लिये गोरक्ष के युग को भारती मध्ययुग के सन्धिकाल रूप में मानना कोई असंगत बात नहीं है। इसके दोनों ओर वही

कमलेश्वरी तीर, यक्षपर्वतमेखला, अंग बंग कलिंग, यह सब क्षुद्र दैवत की सिद्धि के स्थान।

कामरूप, नेपाल, हिंगुला, विन्ध्यवासिनी, जालंधर, पूर्णगिरि—यह वाम मार्ग के सिद्धि-स्थान।

इसमें भिन्न मतों के भिन्न स्थान और मतों के प्रभाव क्षेत्र से यह अंदाज लगता है कि तत्कालीन समाज में परस्पर कितने भेद थे।

१. नाथ सम्प्रदाय।

सामन्तकालीन साम्राज्यों का युग है, भेद हिन्दू और मुसलमान शासकों का है और दोनों ही समय में ब्राह्मणों का प्राधान्य दिखाई देता है।

जिस प्रकार इससे पहले के युग में हमें ब्राह्मण धर्म की टक्कर में बौद्ध धर्म तथा विदेशियों के आक्रमण दिखाई देते हैं, उसी प्रकार इस युग के बाद के समय में मुसलमानों के आक्रमण तथा इस्लाम की टक्कर दिखाई देती है। विषय के बाहर जाकर कहा जा सकता है कि जब से ब्राह्मण निर्मित समाज अथवा आर्यसामाजिक व्यवस्था ने राष्ट्रीयता का अनुभव किया कि भारतवर्ष उन्हीं का है तभी से हमारा दीर्घ मध्यकाल प्रारम्भ होता है। यह इंग्लैंड का छोटा-सा इतिहास नहीं जो प्रायः गोरक्षनाथ के युग से ही प्रारम्भ होता है। इस मध्य युग के सन्धिकाल के खंड राज्यों में जब शाक्त मतों के भीम दंष्ट्रों में समस्त धर्म चले गये थे, जब बौद्ध मत की जड़ों पर पुनरुत्थान का प्रतीक वैष्णव धर्म तथा स्थाणु अमर शैव मत, प्रहार कर रहे थे उस समय की नीरव और उबा देने वाली शान्ति को अन्त में आकर मध्ययुग के उत्तर काल का प्रारम्भ करने वाले इस्लाम ने खंड-खंड कर दिया और भारतवर्ष को एकदम ऐसी नई समस्याओं का सामना करने को विवश होना पड़ा जिसके हलके आघात उसे बहुत दिनों तक लगते रहे, किन्तु अपनी मोह निद्रा से वह चैतन्य नहीं हो सका। प्रस्तुत विषय की आगे सविस्तार आलोचना आवश्यक होगी।

धर्म को अलग करके भारतवर्ष की राजनीति और समाज को नहीं देखा जा सकता। ईसा की उन्नीसवीं या कहा जा सकता है कुछ अंश तक बीसवीं शताब्दी में भी उन्नायक प्रवृत्तियों ने जब अपने आपको मुखर करने का प्रयत्न किया है तब उसे धर्म का आश्रय लेने की आवश्यकता सदैव प्रतीत हुई है। यहाँ धर्म की परिभाषा करने का परिश्रम करना व्यर्थ होगा क्योंकि इस विषय पर काफी लिखा जा चुका है और पूर्व और पश्चिम में धर्म की भावना में क्या विशेष भेद रहा है यह भी प्रगट किया जा चुका है। इत्यलं कि भारत का सांस्कृतिक रूप धर्म के आवरण में पला है। और उसकी स्मृति का मापदण्ड है। विभिन्न विचारधाराओं का संघट्ट ही जब आज विस्मयबोधक एकत्व का विधान बन गया है तब उसको अलग-अलग सूत्रों में खंडित कर देना वास्तव में एक कठिन बात ही है।

तदापि राजनीति का विशेष रूप इस प्रकार रहा है कि जब राजा विशेष या जाति विशेष ने अपना प्रभुत्व जमाया है तब उसका किसी न किसी रूप में धर्म पर भी प्रभाव पड़ता है, या कहा जा सकता है कि धर्म ने अपना स्वरूप बलात् या स्वयं ही राजनैतिक परिस्थिति बदलने पर बदल दिया है, या इसमें उसके असमर्थ हो जाने पर दूसरे धर्म ने उसका स्थान ले लिया है जिसमें प्राचीन भग्नावशेष के अनेक छायाबिम्ब नये स्वरूप में आ गये हैं। पाशुपत धर्म जो प्रायः दसवीं शताब्दी में समाप्त हो गया कौन कह सकता है लकुलीशों पर उसका सीधा प्रभाव नहीं पड़ा था। हठात् क्यों एक उपासना बंद हो गई यह भी एक खोज का विषय है।

तब राजनीति राज्य का नियमन मात्र थी और धर्म और समाज जो सब पर प्रभाव

डालकर उसका किसी न किसी रूप में नियन्त्रण रखते थे, स्वयं उसका नियन्त्रण भी उन्हें स्वीकार करना ही पड़ता था। ऊपर राज संस्था से शावत मतावलम्बियों की दूर रहने की प्रवृत्ति को लक्ष्य किया जा चुका है। सम्भवतः ऐसी उक्तियों का कारण राजा का अन्य धर्मा होना इंगित करता है।

भारतवर्ष का धार्मिक संघटन उस समय की आर्थिक व्यवस्था को ग्रसे हुए था। तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था पर विचार करने के पहिले उस समय के मुख्य राज्यवंशों पर दृष्टिपात करना अधिक स्पृहणीय है।

हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरान्त लाटा, पाञ्चाल, आर्जुनायन, यादव, मालव, कोसल, वत्स, शक, आर्नत, विदेह, कुरु, मत्स्य, चेदि इत्यादि लुप्त हो गये। अब बंगाल का पाल वंश, सुदूर दक्षिण में राष्ट्रकूट वंश, तथा गुर्जर प्रतिहार वंश मुख्य हो गये। चालुक्य वंश के खंडहरों पर राष्ट्रकूट वंश खड़ा हुआ था। इनके अतिरिक्त मालव, परिहार, तोमर, पंवार, सोलंकी, गहरवार, चौहान, चंदेल (कालिन्जर) तथा कल्चुरी (त्रिपुरी) के राजवंश उस समय अपना प्रभुत्व बटोर लेने में काफी समर्थ होकर उठ खड़े हुए थे। यहाँ उनकी परस्पर लड़ाइयों के ऐतिहासिक तथ्य न देखकर इतना ही कह देना काफी होगा कि युद्ध के अतिरिक्त यदि उन्हें कोई काम था तो वह अपना व्यक्तिगत विलास, मानापमान का दम्भ राजवंशों में एड़ी चोटी तक घुसा रहता था। प्रजा का मोल वास्तव में दासों से अधिक नहीं था क्योंकि शासन पर कोई अंकुश रखने वाला नहीं था। ग्रामपंचायतों की स्वतंत्रता को भी सामन्तों ने अपने लाभ के लिये स्वीकार किया था। इसमें यह जोड़ देना आवश्यक है कि इस स्वीकृति के पीछे उन साधनों की कमी थी, जो जब वैज्ञानिक अन्वेषणों वाले साम्राज्यवाद के हाथ में दूर हो गईं तो उन्होंने उसे भी अस्वीकार कर दिया। राहुलजी के वर्णन से पता लगता है कि जनता को कभी भी खाने को नहीं मिलता था। यह ठीक नहीं है क्योंकि कैसा भी दरिद्र होने पर भी ग्राम अपने आपकी सहायता के लिये काफी था। इसे ग्राम पर विचार करते समय देखना उचित होगा।

राजाओं का अधिकांश समय परस्पर युद्ध करते हुए व्यतीत हो जाता था। स्त्री, भूमि, यश के लिये नित्य-प्रति के ये संघर्ष ऐसे निरर्थक लगने लगे थे कि तुलसीदास जैसे महान् सांस्कृतिक, समाज के प्रति जागरूक नेता ने भी ऊबकर निम्नवर्ग के मुख से कहलवा दिया था कि कोई भी राजा हो जावे हमें क्या हानि है। हम तो चेरी छोड़कर रानी नहीं हो जायेंगे।[1] वीर काव्य में यही आंतरिक धुन थी जिसने राष्ट्र के उस झंडे के काठ को खा लिया जिस पर गौरव की पताका फहरा रही थी। राजाओं के लिये अपना शौर्य तथा पराक्रम दिखाने की इसलिये आवश्यकता थी कि जीवन में किसी न किसी काम की आवश्यकता थी। प्रजा को अपने अधिकार में रखने के लिये उसे आतंक दिखाना अत्यन्त आवश्यक था। व्यक्तिगत शौर्य का यह प्रचलन वास्तव में उस समाज-व्यवस्था का ही फल

१. कैकयी-मंथरा संवाद—रामचरितमानस।

था जिसमें तपे हुए क्षत्रिय मर्यादा के लिये प्राणों की बाजी लगा देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे । मगध, पाटलिपुत्र गया, वैशाली, काशीनगर, रामग्राम, कपिलवस्तु तथा श्रावस्ती की जगह कन्नौज, ग्वालियर, दिल्ली, अनहिलवाडा, अजमेर और गौड़ ने ले ली थी। बौद्ध हो या जैन कोई भी अहिंसात्मक धर्म उस खड्ग के प्रसार को नहीं रोक सका जिसके पीछे गीता के उस कर्मवाद की पृष्ठभूमि थी कि जीते तो धरा मिली, मरे तो स्वर्ग। राहुल ने अपने लेखों में इस विषय को विशेष रूप से स्पष्ट किया है। इस महत्त्वपूर्ण परिस्थिति को समझे बिना यह समझना निस्सन्देह कठिन है कि क्यों भर्तृहरि, गोपीचन्द तथा अन्यान्य राजा भी अपनी परिस्थितियों से विरक्त होकर सारा राजकाज छोड़ बैठे थे और इसके बाद ही प्रजा ने, जन सामान्य ने उन्हें श्रद्धा से अपनी स्मृति में पीढ़ी-दर-पीढ़ी सहेज लिया ।

इस गृहयुद्ध की शक्ति सेना थी, जो सदैव से ही राजसत्ता के हाथ का एक सबल शस्त्र रही है। यह जनता का वह भाग था जो इसलिये पाला जाता था कि वह राज्य में सुव्यवस्था रखे, सत्ताधारियों की सत्ता की रक्षा करे। इसलिये इसको समाज में भी सम्मानित स्थान प्राप्त था। गृहयुद्ध में यदि कोई असली लाभ उठाता था तो वह यही वर्ग था, जिसे प्राणों के मोल पर लूट मिलती थी। यह वर्ग धीरे-धीरे राष्ट्रभक्त या धर्मभक्त के स्थान पर भारत में स्वामिभक्त होता चला जा रहा था। इसका भी एक कारण था। गृहयुद्ध में कोई सांस्कृतिक संघर्ष न होकर वास्तव में व्यक्तिगत मानापमान का संघर्ष हुआ करता था। योगी और तापस, भिक्षुक या गृहस्थ पर कोई रोक न थी। एक स्थान से दूसरी जगह जाने में कोई बाधा न थी। महाभारत में ही हमें इसका प्रमाण मिल जाता है। यह एक बहुत बड़ा सत्य था कि स्थानीय सामन्त तभी अच्छा समझा जाता था जब वह अपने को प्रजा के हित का जिम्मेदार अनुभव करता था। आज की राजनीतिक परिस्थिति में बैठकर राहुल जी की भाँति इसको एक दम ही निकृष्ट साबित नहीं किया जा सकता, क्योंकि उन शताब्दियों के सामन्त के सामने अपनी व्यवस्था के सुधार के अतिरिक्त और कोई भी माध्यम या साधन शेष नहीं था ।

किन्तु प्रजा का इससे विशेष संबंध नहीं था। यह एक मशीन की-सी प्रवृत्ति परिचालित परिस्थिति थी जिसमें व्यक्ति को अत्यन्त अवकाश होते हुए भी कोई साधन नहीं था। जन्म और कुल[१] ही जब मनुष्य के उद्धार के केन्द्र थे तब व्यक्ति के लक्ष्य का किसी प्रकार की सिद्धि या चमत्कार प्राप्त करके ऊपर उठने की लालसा में डूब जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिये। इस युग में ही नहीं, प्राचीन काल से ही व्यक्तिगत साधना की यह तृष्णा जो भारत में अविच्छिन्न भाव से चली आती है दिखाई देती है। वह क्या गौतम के युग में कम थी, या तदनन्तर होने वाले सिद्धों के युग में अभावजन्य हो

१. नीच जाति के लोग जिनकी किसी वर्ण में गिनती नहीं होती थी उनके लिये, गर्भ, प्रसूति की अवधि निश्चित नहीं थी--अलबेरूनी की भारत यात्रा, भाग ३ ।

गई थी, जो एक बार भी उसे महत्वपूर्णता से अलग कर दिया जा सकता है। प्रजा जाति-परम्परा में अवरुद्ध हो गई थी और उसमें मूच्छित प्राण आकंठ चीत्कार करता था किन्तु जैसे स्वप्न में चिल्लाते हुए मनुष्य के मुख से शब्द नहीं निकलता और अवरुद्ध हो जाता है उसी प्रकार भारतीय समाज में भी वह स्वर सुनाई नहीं देता था। पुराणकार का सृजन अपना अन्त उस प्रलय में तिरोहित किये हुए था जिसमें समस्त संसार ब्रह्माण्ड सृष्टि को उदरस्थ करके भगवान विष्णु शेष-शैया पर अनन्त निद्रा में मग्न थे। उसमें कोई खण्डन नहीं कर पाता था। संस्कृति की यह निद्रा भारत का वास्तविक जीवन बन गई थी। गौतम ने जिस परिवर्तन के अमर सत्य को पहचाना था, क्या वही गतिशील होकर चल सका। लौटकर आया कहाँ जहाँ शाश्वत जड़ीभूत स्थिरता का पाषाण आकाश चूमने का प्रयत्न कर रहा था। और उसी के आंशिक क्रमागति विकास में शंकर ने इस समस्त दृष्टिगोचर को माया कहकर इसकी इतनी भयानक उपेक्षा करने की जो हुँकार सुनाई थी वही क्या, भारतीय साधना के पथ का मूल मन्त्र, किसी न किसी स्वरूप में दिखाई नहीं देता।

एक ओर यदि यह सामन्तवादी स्वार्थों की रक्षा बनता था तो दूसरी ओर यह उस समाज की एक वास्तविक चेतना थी जो उस पर छा गई, और वह भी इस प्रकार कि भारतीय इतिहास स्वयं इतना गतिरुद्ध हो गया कि फिर न उसके व्यापारी बाहर जाने का साहस करते थे न उसमें पोतों में बैठकर व्यापार करने की ही शक्ति रह गई थी। यही वह युग था जिसमें जातिभेद के कारण भारत की जितनी भी विस्तृत भूमि थी वह सिमटने लगी थी। और यही वह कारण था जिसके कारण हिन्दुओं में से ऐतिहासिक दृष्टिकोण का तत्त्व बिलकुल नष्ट हो चुका था। यदि कहीं राजाओं की प्रशस्ति मिल जाती है तो कहीं टीकाकारों में कोई सूची विशेष, जिस समाज में आना, जाना, एक निरवधि, कल्याणहीन परम्परा थी, जहाँ स्वयं हजारों साल पहिले के गौतम तक अपने प्राचीन को देखकर चमत्कृत हो सकते थे, वहाँ उन निरर्थ राजाओं की सूची तैयार करके समाज को क्या मिलता, जिनका बनना-बिगड़ना राजा से अधिक उस संस्कृति के हाथ में था जो सामन्तवाद के व्यक्तिवादी शासन के ऊपर जम गई थी और सबको एकता के सूत्र में बाँधे हुई थी।

स्वयं अलबेरूनी ने खेद[1] से कहा है: 'दुर्भाग्य से हिन्दू लोग बातों के ऐतिहासिक क्रम पर बहुत कम ध्यान देते हैं। अपने राजाओं की कालक्रमानुगत परम्परा के वर्णन में वे बड़े असावधान हैं। जब उन्हें जानकारी के लिये जोर दिया जाये और न जानने के कारण वे कुछ बता न सकें तब वे सदा कहानियाँ सुनाने लग जाते हैं।'

यह एक विदेशी का विचार है जो उस संस्कृति का प्रतिनिधि था जिसका कल भी अभी तक आँखों से दूर नहीं हो सका था। क्योंकि भारत में राजवंशों से परे भी जीवन की एक शून्य सत्तात्मक सत्ता समझी जाती थी, समाज में यह भयानक दरिद्रता थी कि उसका

१. अलबेरूनी की भारत यात्रा।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण नहीं था और इसी कारण युगों तक भारतीय समाज अपनी ही परिधि में हाथ-पाँव पटकता रहा। उसे उससे बाहर निकलने की न तो कोई राह सूझी और न वह निकल ही सका।

इस परिस्थिति में हिन्दू जनता के लिये आश्चर्य की कोई परिभाषा नहीं रही थी। आत्मचिंतन का अधिकांश भाग लुप्त हो चुका था और जीवन का मंथर प्रवाह अपनी एकरसता से खिंचा चला जा रहा था, जिससे पराजित व्यक्ति यह समझना भूल चुका था कि वह भी कुछ कर-धर सकने में समर्थ है। वह केवल एक विराट समुद्र का एक ऐसा निःशक्त बिन्दु है जिसका कोई विशेष मूल्य नहीं है।

इस परिस्थिति में ही योगी समाज का महत्त्व है जो आज दिखाई नहीं देता। इसे आगे विस्तारपूर्वक देखना आवश्यक होगा। यहाँ इतना कह देना काफी है कि इस सबकी आन्तरिक अवस्था में एक स्वभावजन्य असंतोष था जो मानव-समाज में होना उसके एकमात्र जीवन का चिह्न है।[1] यदि निर्वाण और मुक्ति इसका परिष्कृत रूप है तो अखण्ड विलास की भावना इसका विकृत स्वरूप।

नगर अधिक बड़े नहीं होते थे। इसके लिये यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अकबर के समय में आगरा संसार का सबसे बड़ा शहर था जिसकी जनसंख्या उस समय लगभग ५ लाख मनुष्य के थी। वीर-काव्यों तथा यात्रा के वर्णनों में नगर की थोड़ी-बहुत झलक दिखाई देती है। नगर विशेषकर राजा के या सामन्त के रहने का स्थान था जहाँ कभी-कभी सैन्य नियन्त्रण हो जाता था। यह नगर ही जब जीत लिया जाता था, अधिकांश में राज्य भी विजित हो जाता था। यहीं बड़े-बड़े पंडित आकर एकत्रित हुआ करते थे। किन्तु विशेष बात यह है कि संस्कृति तथा ज्ञान इन नगरों में संकुचित बद्ध या सीमित नहीं था। शंकर स्वयं एक ग्राम के निवासी थे। संस्कृति, मठों, विहारों, मंदिरों में पलती थी किन्तु वह अपने सर्वसाधारण रूप में बाहर दूर-दूर तक फैली हुई थी। बौद्ध धर्म के नाश का, आधुनिक बौद्ध लेखक, एकमात्र कारण यह बताते हैं कि मुसलमानों ने उसको नष्ट कर दिया और क्योंकि बौद्ध धर्म केवल मठों, विहारों में शेष रह गया था अतः वह नष्ट हो गया। नगर अपने सौन्दर्य में भले ही अप्रतिम हो, राजनीतिक दुरभिसंधियों से आक्रान्त हो, गणिकाओं के लिये प्रख्यात हो किन्तु उसके बनकर बिगड़ने के साथ संस्कृति का अन्त न था। वेश्यावृत्ति को राजा पालते थे। उन्हें आर्थिक लाभ होता था।

विकेन्द्रीकरण भारतीय समाज की मूल चेतना है जिसके बल पर अनेक आक्रमणकारियों के आने पर भी वह अभी तक मिट नहीं सका।

ऊपर कहा जा चुका है कि ग्राम अपने पैरों पर खड़ा हो सकता था। ग्राम की परिस्थिति तब बिगड़ती थी जब युद्ध की भयानकता उसके सिर पर से गुजरती थी अन्यथा उस का शान्त जीवन घिसटता चला जाता था। सामन्तों के शोषक करों से भी प्रजा आर्त रहती

१. देखिए गोपीचंद कथा। यो० सं० आ०।

थी किन्तु अकाल के अतिरिक्त उसे अधिकांश अपने अन्न की इतनी कमी नहीं पड़ती थी जिसका किसी किसी विद्वान ने आवेश में अतिरंजित वर्णन कर दिया है। बुद्धकाल की प्रजा के रहन-सहन से इस काल की प्रजा के रहन-सहन में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था क्योंकि उत्पादन के साधन और माध्यम प्रायः वही थे।[1] शुद्धोधन जैसे राजा जैसे तब अपने पुत्रों के मन-बहलाव के लिये राजप्रासाद तथा सुंदरियों को इकटठा करते थे वही प्रायः आज भी हो रहा था। प्राचीन गणों को नष्ट करने वाले साम्राज्यों को बुरा कहने के पहले उन गणों को अपनी निर्बलता को देख लेना अधिक उचित होगा। गणों के वीर वास्तव में एक सत्ताधारी की निरंकुशता के स्थान पर कुछ अधिक सत्ताधारियों की निरंकुशता के बल पर भयानक विरोधाभास बनाये खड़े थे। यही उस काल तथा हमारे आलोच्य काल के ग्राम का ढांचा था। ग्राम का गणतंत्र अर्थात् पंचायत केवल अन्न क्षेत्र के रूप में माध्यम के रूप में क्रय-विक्रय की वस्तुओं के रूप में समर्थ था अन्यथा वह अपने आपसी विरोधों में इतना अधिक चकनाचूर था कि उसका सामञ्जस्य तत्कालीन समाज-व्यवस्था में रह-कर मनुष्य के लिये—उस व्यक्ति के लिये जो आत्म-सम्मान का अनुभव कर सकता था, प्रायः असंभव ही था। प्रजा को राजनैतिक अधिकार नहीं थे। उसके लिये कुल और जन्म तथा जाति का बंधन धर्म ने खड़ा किया था। धर्म को राजनैतिक व्यवस्था ने सम्बल दिया था, सेना की सहायता से एक विशेष आर्थिक व्यवस्था को स्थापित रख के, जिसका आधार या केन्द्र या अपनापन सामन्तवादी व्यवस्था का स्वरूप था। यही कारण था कि जनसमाज ब्राह्मण को श्रद्धा की दृष्टि से देखता था क्योंकि ब्राह्मण की दार्शनिकता और व्यावहारिकता उसी का पालन करती थी, करने को कहती थी जिसका उसने निर्माण किया था। जिज्ञासु के लिये यह अनुसंधान का विषय है कि ब्राह्मणकृत सामाजिकता कहाँ तक आर्यपूर्व सामाजिकता की ऋणी है। हमारे आलोच्य काल में बौद्ध और जैन धर्म स्वीकार करनेवाले राजा, सामन्तवाद का जहाँ तक संबंध था ब्राह्मण व्यवस्था को स्वीकार करते थे, उन्होंने भिक्षु तथा अर्हत जैसे ब्राह्मणों को पैदा कर लिया था, किन्तु वैसे वे समान थे और क्या न थे! इस विरोधाभास ने प्रजा को शताब्दियों तक उस प्रकार नीचे कुचला जैसे जनता के नेता बातों में नेतृत्व करके व्यवहार में शत्रु से धन पाकर उसको ही नीचे दबाते रहे।

ग्राम का यह स्थविर रूप सामन्त को ही भा सकता था क्योंकि कार्यहीनता में वह मस्त रहता था। उसके लिये समस्या थी कि समय कसे व्यतीत किया जाय और उसे इसका भी उत्तर मिल चुका था—काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्—जिस प्रकार दरिद्र और शोषित प्रजा में सब कुछ होने पर भी योगी, भिक्षु तथा ब्राह्मण को अपने दान पर पाल सकने की सामर्थ्य थी, उसी प्रकार सामन्त में भी अपने अत्याचारों के बावजूद सौन्दर्य के इस पक्ष को पालने की अयन्त लालायित आतुरता थी।

धर्मशास्त्र पर अब रचनाये अधिक वेग से लिखी जाने लगी थीं। अन्धुक भट्ट

---

१. राइस् ड़ेविड्स की बुद्धिस्ट इंडिया और अपभ्रंश कवियों की रचनायें।

(१०३०-१०५० ई०) एक मेधावी लेखक था। असहाय ने ७००-७५० ई० में नारद स्मृति तथा गौतम धर्मसूत्र पर भाष्य और सम्भवतः मनुस्मृति की भी टीका लिखी थी। ११०० ई० में कर्क ने आपस्तम्ब गृह्यसूत्र तथा पारस्कर गृह्यसूत्र तथा कात्यायन के स्नान सूत्र और श्राद्धकल्प सूत्र की टीका लिखी थी। इनके अतिरिक्त आश्वालय गृह्यकारिका के लेखक कुमार स्वामिन् (११०० ई०), जितेन्द्रिय (१०००-१०५० ई०), कान्तुपुत्र जयन्त (८वीं शताब्दी का अन्त), दीक्षित १०५०-११०० ई०, रत्नकरंडिका के लेखक द्रोण (११०० ई०) आश्वालय गृह्य भाष्यकार देवस्वामिन (१०००-१०५० ई०), विज्ञानेश्वर शिष्य नारायण, जिन्होंने व्यवहार शिरोमणि लिखी (११००), विज्ञानेश्वर के अनुयायी वाद (दि) भयंकरः (१०८०-११३० ई०) शम्भु, शंखधर, सोमदेव, इत्यादि थे, जो ब्राह्मण धर्म के नियमों को निकाल-निकालकर मांज-मांजकर उपस्थित हो रहे थे। बल्कि यों कहा जाय कि इस्लाम के युग में संस्कृत लेखन एकदम टीकाओं में जो सीमित रह गया उसका अब नये ढंग से पुरानी परम्परा पर प्रचलन कर रहे थे।[1]

क्षितिमोहन सेन ने अपनी भारतवर्ष में जातिभेद नामक पुस्तक में तत्कालीन समाज की जाति-व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है। सामन्त, को इस 'जाति' से लाभ था वह भी इसे क़ायम रखता था।

संस्कृति की चेतना कला में निहित होती है जो अपने समय के बाद भी जीवित रहती है। कला का ही एक ऐसा क्षेत्र था जिस पर सामन्त अधिक से अधिक हावी रहने का प्रयत्न करता था। जनसमाज की कला का यदि वह इतनी सतर्कता से नियन्त्रण नहीं करता तो यह उसके अधिकार में ऐसे दबकर कैसे रह सकती थी।

कला सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो रही थी। स्वयं कवियों को इसकी कचोट अज्ञात हो गई थी, क्योंकि शताब्दियों से यही होता चला आ रहा था। सम्भवतः गणों में कविता का कोई और स्वातंत्र्यप्रिय स्वरूप रहा हो किन्तु खेद है आज उनमें से किसी का भी अवशेष प्राप्त नहीं है। संगीत, नृत्य, नाटक, कविता, स्थापत्य सब ही राजाओं की सहायता से फलते-फूलते थे। वह समय इन विषयों में किसी भी क्षेत्र में अपने आपको न्यून नहीं कहला सकता। जब कि उस समय के दक्षिण और पश्चिम के विराट मंदिरों को देखकर आज भी विस्मय होता है। किन्तु कलाकार की चेतना रुद्ध थी। उसकी उड़ान आसमान की ओर होती थी। उसका दायरा संकुचित था। संस्कृत काव्य अब महलों में था, या पुराणों में, उसमें जनता के जीवन का कोई चित्रण नहीं था।[2] संस्कृत समझना उच्च वर्गों के हाथ की बात थी। इसलिये उसकी मनस्तुष्टि का माध्यम भी उसी भूमि पर चल सकता था जो एक विशेष प्रकार से निर्मित थी।[3]

१. पी० बी० काने हि० आ० ध० शा० वाल्यूम १

२. हिं० का० धा० राहुल।

३. वही—भूमिका।

भारत के सामाजिक जीवन में इस समय जैनों का भी काफी महत्व था। प्रबन्ध चिंतामणि में जैन दृष्टिकोण से लिखे हुए इतिहास से इस विषय पर काफी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त भी जैन सदैव ही ब्राह्मण धर्म की उपेक्षा करते थे और उन्हें नीचा दिखाने का प्रयत्न करते थे। उनका मुख्य केन्द्र पश्चिम और दक्षिण की ओर था। जैनों का योग संप्रदाय से भी संबंध था। यह इससे प्रगट होता है कि गोरक्षनाथ के प्रभाव की वेगमय बाढ़ से दो नाथ जैन संप्रदाय के भीतर मिलते हैं।[१] हजारी प्रसाद ने इस विषय को अपने नाथ संप्रदाय में सविस्तार उल्लिखित किया है। किन्तु जिस प्रकार ब्राह्मण और बौद्ध अपने समाज की परिस्थिति का हल निकालने में असमर्थ हो गये थे उसी प्रकार जैन भी निःशक्त दिखाई देते थे। उनके विशाल मंदिरों में लगने वाला धन भी प्रजा से ही खिच कर आता था और ईश्वर की असिद्धि से पहले जिन्होंने उसके अभावत्व पर अधिक ज़ोर दिया था, अब उसके अस्तित्व को अस्वीकार करने से वे हिचकने लगे थे। उनमें भी तन्त्र, मन्त्र तथा जातिभेद के विचार वेग से घुसते चले आ रहे थे। कहना ठीक होगा कि जैन धर्म जो क्षत्रिय विद्रोह के नास्तिक स्वरूप को लेकर प्रारंभ हुआ था अपने ह्रासप्राय युग में केवल यह गिनने लगा था कि बस राजा हमारा धर्म मान ले और इस प्रकार काम चलता रहेगा। और उसने बुद्धिमत्ता से चुपचाप अपने से प्रबल ब्राह्मणवाद की व्यवस्था को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। जैनों में एक विशेषता सदैव रही कि उन्होंने विदेशी की सहायता से ब्राह्मण स्वदेशीय को नष्ट करने के कुचक्र नहीं किये, जैसे सांस्कृतिक एकता में विश्वास और विदेशी की बर्बरता में उन्हें सदैव अविश्वास बना रहा। बौद्ध संयम का परिणाम ही वज्रयान का असंयम बताया जाता है। जैन संप्रदाय के कष्ट, तप और संयम के सामने बौद्ध संयम कितना रह जाता है, कोई भी इसे देखकर समझ सकता है।

ऊपर की इस भयानकता का खंडन अब नीचे से प्रारम्भ होता हुआ दीखता है। यदि समाज विषम था तो श्मशान में समता थी। मृत्यु के पक्ष से ही जीवन को बार-बार मनीषियों ने भारत में जगाने का प्रयत्न किया है। योगि संप्रदाय का आविर्भाव जिस शांत मनस्विता का प्रतीक बनकर उठा वह श्मशान की-सी नीरवता थी। श्मशान का अधिकारी समाज का नियमन करने लगा। यह एक विद्रोह की पुकार थी।

किन्तु श्मशान में धीरे-धीरे शाक्त मत और विलास घुस गये, तो दूसरी ओर रसायनिक क्रियाओं का अद्‌भुत प्रसार हुआ।

> श्मशानं समुपागत्य बलिपूजा समाचरेत्।
> पूर्वोक्तं मंडपं कृत्वा ततो दद्यात् बलिं निशि ॥
> भैरवं पूजयित्वाऽऽदौ ततो देवीं समर्चयेत।
> व्याघ्राजिनोऽपविष्टः सन् मुक्तकेशो जपेत्सुधीः।

४. इन जैनों में शाक्त योग का नाडी चक्र स्वीकृत था। स्त्री नहीं आई थी।

सहस्रदशकं देवि निर्भयो वीर सत्तमः ।
ततो नरकपालस्थां बलिं दधात् सुरादिकम ॥[1]

तथा—अथवा विजने रम्ये अस्थिशैयासनेनरः ।
उभयास्तंमनुंजप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरोभवेत ॥
निजेक्रोडे बिल्वमूले शवमारोप्य यत्नतः ।
नृसिंह मुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकयानरः ।
सहस्रं तत्र जप्त्वा तु सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥[2]

और साथ ही स्त्री का महत्त्व भी प्रगट होता है :

अथाष्ट कन्यकावक्ष्ये देवीरूप धरायतः ।[3]
ब्राह्मणी क्षत्रियावैश्याशूद्रा च कुलभूषणा ।
वेश्यानापितकन्याच रजकी योगिनी तथा ।
और, दत्वातत्र समासीनां नानालंकारभूषणैः ।[4]
भूषयित्वाऽनुलेपंचगन्धमाल्यं निवेदयेत ॥
तां तां शक्ति समावाह्य मूर्ध्नितासाम् समानयेत् ।[5]

फिर प्रार्थना प्रारम्भ होती है—

माहेशिवरदे देवि परमानन्द रूपिणि ।[6]
कौमारि सर्वविघ्नेशि कुमारक्रीडनेऽवरे ॥

---

१. मुंडमाला तंत्र—श्मशान में जाकर बलिपूजा करें। पूर्वोक्त विधि से मंडप बनाकर रात को बलि दे। आदि में भैरव की पूजा करके देवी की तदनंतर अर्चना करें। व्याघ्रचर्म पर बैठकर, मुक्तकेश, अच्छी बुद्धि वाला व्यक्ति, जप करे। दस हज़ार के लगभग जप करके वह वीरसत्तम निर्भय हो तब नरकपातस्थ सुरा आदि की बलि दे।

२. काली तंत्र—अथवा विजन रम्य में, अस्थिशैया के आसन पर पुरुष, गोधूलि में जप करने से सर्वसिद्धीश्वर होता है। अपनी गोद में, बेल के पेड़ की जड़ में, यत्न से शव को रखकर, नृसिंह मुद्रा से देखकर पुरुष मातृकाओं का जप करे। हज़ार जप लेने से सर्व-सिद्धीश्वर हो जाता है।

३. अब देवी का रूप धरने वाली आठ कन्याओं को कहता है—ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, वेश्या, नायिन, रजकी और योगिनी।

४. बैठी हुई को नानालंकार भूषण देकर सज्जित कर, अनुलेपन कर गंध माल्य इत्यादि चढ़ाये।

५. उन-उन शक्तियों का उसके शीश पर आवाहन करे।

६. माहेशि, वरदे, देवि, परमानंदरूपिणी, कुमारी सर्वविघ्नेश्वरी, बच्चों से खेलने की चाह रखन वाली, चामुण्डा, मुण्डमाला, सज्जित, विघ्ननाशिनी, पितृमातृमय, इनसे भी परे, एक में अनेक, हे विश्व रूप देवि तुझे नमस्कार। कृपा कर मेरे विघ्नों को

चामुण्डे मुण्डमालासृकचर्चिते विध्ननाशिनि ।
पितृमातमये देवि पितृमातृवहिस्कृते ।
एके बहुतरे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तुते
कृपया हरविघ्नं मे मंत्रसिद्धि प्रयच्छ मे

फिर—

अन्या यदिन गच्छन्ति निजकन्या निजानुजा
अग्रजा मातुलानी वा जननी तत्सपत्निका
वयस्या ज्ञातिजावाऽपि निःपतिर्वा सभर्तृका
पूर्वाभावे परा पूज्या यदंशा योषितो यतः
एका चेद्युवति तत्र पूजिता वा विलोकिता
सर्वा एव तदा देव्यः पूजिताः कुलभैरव ।[1]

और— रात्रौ मांसासवैर्देवीं पूजयित्वा विधानतः
ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो रमन्क्लेदयुतोऽपिवा ।[2]

विस्तार से इसका वर्णन न देकर यह समझ लेना काफी है कि यह सिद्धि साधना अपने बाह्य पक्ष में एक अति की ओर इंगित करती है। इसका दार्शनिक स्वरूप हमें आगे देखने को मिलेगा किन्तु इसका सामाजिक स्वरूप यह था और इसका परिणाम कोई बहुत शुभ नहीं था :

वास्तव में इसकी दार्शनिकता अद्भुत ऊँचाई पर थी जिसकी क्रिया तन्त्र-मन्त्र तथा इन अजीब लगने वाले कार्यों में फँस चुकी थी। परवर्ती सहज मार्गी इसके बाह्य पक्ष में और सब कुछ छोड़कर स्त्री मार्ग को पकड़े हुए थे। नाथ संप्रदाय का प्रारंभिक स्वरूप भी इससे अधिक दूर न था। गोरक्ष ने इसे किस प्रकार परिवर्तित किया यह एक आश्चर्य का विषय है।

किन्तु श्मशान की इस साधना की समान धर्माधिकार की प्रवाहिणि घोषणा जर्जर समाज व्यवस्था में अपना प्रभाव दिखाने लगी थी। यदि यह व्यक्ति का घोर विद्रोह था कि वह संसार छोड़कर श्मशान में संसार को फिर प्राप्त करके विजयी के स्वरूप में लौटना चाहता था, तो भी तो इसकी प्रतिक्रिया होना आवश्यक थी और वह हुई।

हर, मुझे मंत्रसिद्धि दे।

१. और कोई न जाय तो निज कन्या, छोटी बहन, बड़ी बहिन, मामी, माँ, सौतेली माँ, वयस्या, कुटुम्बिनी, विधवा, सधवा, एक के न होने पर दूसरी की पूजा करनी चाहिये क्योंकि स्त्रियाँ उसी के अंश की हैं। एक भी स्त्री की पूजा या अवलोकन सभी की पूजा और अवलोकन के समान है।

२. तब रात में मांस-आसव के विधान से देवी की पूजा करके नग्न स्त्रियों में क्लेदन होते हुए भी रमण करे।

किन्तु साधारण जनसमूह जो अपने जीवन को एक धारा के बीच में मिलाकर जीता चला जा रहा था उसके सामने एक नया रहस्य आ गया था जो आर्येतर प्राचीन विश्वासों से अधिक सामीप्य पा रहा था। प्रजा में भय और श्रद्धा की मात्रा ही इस प्रकार के कार्यों से बढ़ती जाती थी।

यद्यपि इब्नबतूता के विवरण अधिकांश में बिलकुल सत्य नहीं माने जा सकते तथापि उनसे कुछ अनुमान हो सकता है कि जनता में कैसे विश्वास घर कर लिया करते थे। यहाँ कुछ उद्धृत किये जाते हैं--

कुछ लोगों ने कहा कि योगी बाघ का रूप धरकर आते हैं। कोई-कोई तो कई मास पर्यन्त बिना कुछ खाये-पिये बैठे ही रह जाते हैं और कोई धरती के भीतर गड्ढे में बैठकर ऊपर से चुनाई कराकर वायु के लिये केवल एक रन्ध्र छोड़ देते हैं। कोई-कोई कहते हैं वे वर्ष भर ऐसे ही रह सकते हैं।

नंजौर : मंगलौर : नामक स्थान में मुझे ऐसा मुसलमान दिखाई दिया जो इन्हीं योगियों का शिष्य था। यह व्यक्ति एक ऊँचे स्थान पर ढोल के भीतर बैठा हुआ था। पच्चीस दिन पर्यन्त तो हमने भी इसको निराहार व निर्जल ही बैठे देखा और फिर हम चले आये।

कुछ कहते हैं कि एक तरह की गोली रोज खा जाने पर इन्हें फिर भूख नहीं लगती। ये लोग अप्रकाश्य घटनाओं की भी सूचना देते हैं। सम्राट् भी अत्यन्त आदर-सत्कार कर इनको सदा अपने पास बिठाता है। कोई-कोई योगी केवल शाकाहार करता है। कोई-कोई मांस भी खाते हैं पर ऐसे कम हैं। प्रकाश्य रूप से तो यह प्रतीत होता है कि तपस्या द्वारा चित्त को वश में कर लेने के कारण संसार के ऐश्वर्य से इनका कुछ भी संबंध नहीं रहता। इनमें कोई-कोई तो ऐसे हैं कि यदि वे एक बार भी किसी की ओर दृष्टिपात कर लें तो उस व्यक्ति की तुरन्त मृत्यु हो जाये। सर्वसाधारण के विचारानुसार इस प्रकार के दृष्टिपात के द्वारा मृत पुरुषों के वक्षःस्थल चीरने पर हृदय का नामोनिशान तक नहीं मिलेगा। कारण यह बताया जाता है कि दृष्टिपात करने वाले मनुष्य इन पुरुषों के हृदय खा जाते हैं। इस प्रकार का कार्य स्त्रियाँ ही अधिक करती हैं। और इनको कफ़्फ़ार (जिनकी हड्डियाँ चलते समय बोलती हों) अर्थात् डायन कहते हैं।

मैं राजधानी म ही था कि एक दिन सम्राट् ने मुझे बुला भेजा। सूचना पाते ही मैं उनकी सेवा में जा पहुँचा। सम्राट् उस समय एकान्त में था और केवल विशेष अमीर ही उनकी सेवा में उपस्थित थे। कुछ योगी भी वहाँ बैठे हुए थे। जिस प्रकार लोग बहुधा अपनी बगल नोंच डालते हैं ठीक उसी प्रकार अपने सिर के बालों को राख द्वारा नोंच डालने के कारण यह योगी भी अपने सिर तथा समस्त शरीर को रजाई से ढके रहते हैं।[1] सम्राट ने योगियों से कहा कि वे मुझे कुछ दिखायें। योगी 'बहुत अच्छा' कह कर पद्मासन लगाकर बैठ

१. योगी सम्प्रदाय में ऊपर कन्थडि का उल्लेख किया जा चुका है। सम्भवतः इब्नबतूता का अभिप्राय उसी से है।

गया। वह धीरे-धीरे धरातल से ऊपर की ओर उठने लगा और हमारे ऊपर अधर में हो गया। इसके उपरान्त एक दूसरे योगी ने अपनी खडाऊँ उठाकर क्रोध से पृथ्वी पर बार-बार पटकी वह वायुमण्डल में उड़कर अधर में बैठे योगी की गर्दन पर बार-बार लगने लगी। योगी धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। वायुमण्डल में जाने वाला व्यक्ति खडाऊँ बजाने वाले का शिष्य था। मैं मूर्च्छित हो गया।

अलबेरूनी का वर्णन अधिक प्रामाणिक है। उसने भी इन चमत्कारवादियों के विषय में विस्मय से लिखा है—

रसायन में चतुर व्याडि नामक व्यक्ति ने दरिद्रता से अपनी पुस्तकें नष्ट कर दीं। एक वेश्या ने नदी में उसके बहाये पन्नों को इकट्ठा करके उसे धन दिया। व्याडि ने कार्य प्रारंभ किया। ऐसी पुस्तकें पहेलियों के रूप में लिखी हुई हैं। व्याडि में रक्तामलक (तेल और नर रक्त) को लाल अमलक समझा। प्रयोग का असर नहीं हुआ। अब वह विविध औषधियाँ पकाने लगा, परन्तु अग्नि-शिखा उसके शिर से छू गई, मस्तक जल गया। इसलिये उसने अपने सिर पर बहुत-सा तेल डालकर मला। एक दिन वह किसी काम के लिये भट्टी के पास से उठकर जाने लगा। ठीक उसके सिर से ऊपर छत में एक मेख बाहर को निकलती हुई थी उसका सिर उसमें लगा और रक्त बहने लगा। पीड़ा होने के कारण वह नीचे की ओर देखने लगा। इस से तेल के साथ मिले हुए रक्त से कुछ बिन्दु उसके सिर के ऊपरी भाग से देगची में गिर पड़े, पर उसने उन्हें गिरते हुए नहीं देखा। फिर जब देगची पक चुकी तो उसने सिर और उसकी स्त्री ने क्वाथ की परीक्षा करने के लिये उसे अपने शरीरों पर मल लिया। मलते ही वे उड़ने लगे। विक्रमादित्य इस घटना को सुनकर अपने प्रासाद से बाहर निकला और अपनी आँखों से उन्हें देखने चोक में गया। तब व्याडि ने आवाज़ दी—मुँह खोल, ताकि मैं उसमें थूक सकूँ। राजा ने घृणा से मुँह नहीं खोला। इसलिये थूक दरवाजे के पास गिरा और उसके गिरते ही डेवढ़ी सोने से भर गई। सोना बनाने के लिये मूर्ख हिन्दू राजाओं के लोभ की सीमा नहीं। यदि उनमें से किसी को इच्छा हो और लोग परामर्श दें तो वह कुछ छोटे-छोटे सुन्दर बालकों का भी वध करके आग में फेंक देगा।

प्रबंध चिंतामणि भारतीय की लिखी रचना है उसकी भी कथाएँ अधिक भेद नहीं रखतीं।

नागार्जुन सिद्ध था। वह गगनगामिनी विद्या का अभ्यास करने श्रीपाद लिप्ताचार्य के पास गया, जो आकाश में उड़ जाता था। निरभिमान होकर नागार्जुन उनकी शिष्य-भाव से सेवा करने लगा। गुरु ने पादलेप किया और वे जब अष्टापद आदि तीर्थों को नमस्कार करके वापिस आये तो नागार्जुन ने उनके चरण धोकर रस पी लिया और उसी के रस, वर्ण, गंध की परीक्षा करके उसमें से १०७ औषधियों का पता चला लिया। दूसरे दिन अकेले में उड़ा, किन्तु मुरगे की भाँति थोड़ी दूर उड़ता और फिर पटक खा जाता। इससे वह जगह-जगह घायल हो गया। गुरु ने आकर उससे पूछा—जब उसने बताया तो बड़े

प्रसन्न हुए और कहा---साठी चावल के पानी में उन औषधियों को मिलाकर पादलेप करने से मनुष्य उड़ने लगता है।

एक सिद्ध पुरुष ने वल्लभी नगरी में एक चरवाहे से पूछा--क्या तुमने कभी कोई ऐसी थोहर (पौधा जिसे तोड़ने पर दूध निकले) देखी है जिसमें से दूध के स्थान पर लहू निकले। कुछ पैसे पाकर चरवाहे ने ऐसा पौधा दिखा दिया। सिद्ध ने उस पौधे में आग लगा दी और परीक्षा के लिये चरवाहे का कुत्ता उस अग्नि में फेंक दिया चरवाहे ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सिद्ध को फेंक दिया। परिणाम में चरवाहे ने देखा कि सिद्ध और कुत्ता दोनों सोने के हो गये थे।

इस प्रकार की कथाएं इंगित करती हैं कि जनता में एक विशेष प्रकार का अन्ध-विश्वास अवश्य था। इसे स्वीकार कर लेना कोई कठिन काम नहीं है। यह उड़ान पौराणिक ब्राह्मणों की उड़ान से किसी भी हालत में कम नहीं है। दोनों में कितना नीर है, कितना क्षीर है, इसका निश्चय आज प्रायः असम्भव-सा दिखाई देता है। किन्तु प्रत्येक विश्वास का कोई न कोई परोक्ष या अपरोक्ष आधार अवश्य होता है। ऊपर की कथाएँ निस्संदेह ही ब्राह्मण स्रोतों से आने वाली नहीं हैं। अतः इनमें वर्ग स्वार्थ का अन्वेषण करना भारी भूल होगी। सिद्ध युग के कुछ व्यक्ति एक चमत्कारपूर्ण जीवन अवश्य व्यतीत करते थे जिसको सब लोग उस समय भी समझ सकने में असमर्थ थे। गोरक्षनाथ का जीवन लिखते समय ऐसी अनेक अद्भुत कथाओं से साक्षात्कार करना होगा। नाथ संप्रदाय का सामाजिक पक्ष इन कथाओं में न्यून नहीं निकलेगा।

चमत्कार का यह युग अपने पीछे एक अत्यन्त प्राचीन पृष्ठभूमि लिये था। प्रायः भारत के प्रत्येक धर्मनेता के साथ ऐसी चमत्कार की दंतकथाएँ जुड़ी हुई हैं। यह मानव स्वभाव का दोष है। विदेशों में भी इसकी कमी नहीं है। कहानियों के जोड़े जाने के अनेक कारण हो सकते हैं। मुख्य तो अपना और अपने मत का अधिक से अधिक महत्त्व प्रतिपादन करना ही है। तब हमारे आलोच्य काल में इस प्रवृत्ति ने इतना अधिक बल क्यों ग्रहण किया? इसका कारण तत्कालीन समाज की अभिरुचि कही जा सकती है, जिसका दूसरा अर्थ जनसमाज का निम्न स्तरों में अशिक्षित होना प्रतीत होता है। किन्तु जुलाहा जाति अशिक्षित रही होगी, यह विद्वान लोग स्वीकार करने को तत्पर नहीं हैं। ब्राह्मणों से मुठभेड़ ही इसका वास्तविक कारण जान पड़ता है। परवर्त्तीकाल में योगी सम्प्रदाय पर भी वर्णाश्रम धर्म की आवश्यकता का वैसे ही प्रभाव पड़ने लगा था जैसा कि परवर्त्ती बौद्धों में।[1]

तब यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य सामाजिक व्यवस्था में रहने वाले सम्प्रदायों पर सामाजिक व्यवस्था के बाहर रहनेवालों का उत्तरोत्तर प्रभाव बढ़ता जा रहा था। शाक्त मतान्तरभूत समस्त सम्प्रदाय अधिकांश ब्राह्मण के ऊपर हावी होने लगे थे। ब्राह्मण की, उन्होंने एक ऊँचे स्तर से चढ़कर, जड़ें काटने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया था। वे उसके

१. गोपीचन्द ने अपनी बहिन से कहा---यदि योगी का वेश छोड़ दूँ तो संसार में वर्णसंकरता के दोष से लिप्त हो सकता हूँ। योगिसंप्रदाया विष्कृति।

प्रभुत्व को नहीं मानते थे। परवर्त्तीकाल में जब शैवों ने वेदोक्त जीवन को स्वीकार कर लिया था तब भी उन्होंने उसे निकृष्ट साधना का ही नाम दिया था, इसके एक से अधिक उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं। यह एक भीषण विद्रोह था। अति की मात्रा का यह विद्रोह स्वयं यह भूल गया था कि वह किस स्थान पर खड़ा होकर अपना भाषण दे रहा है। विभिन्न मतों के दार्शनिक तथा सामाजिक पक्षों पर विचार करते समय यह पक्ष अपने आप सामने आ जायेगा। यहाँ उस मुख्य धारा का निरूपण ही काफी होगा जो न केवल सामाजिक रूप में वरन् आध्यात्मिक और दार्शनिक आधारों पर ब्राह्मण निर्मित समाज का बहिष्कार करने में लगी हुई थी। गोरक्षनाथ के पूर्ववर्ती युग की यह एक विशेषता है। इस धारा के परिणामस्वरूप जब समाज अस्त-व्यस्त होने लगा था उस समय इस्लाम का प्रादुर्भाव हुआ। गोरक्षनाथ का प्रभाव, उस समय एक अत्यन्त प्रभावोत्पादक शक्ति है जो समन्वय और विद्रोह का एक अद्भुत सामंजस्य बनकर हमारे सामने आता है।

ब्राह्मणविद्रोह का उचित कार्य अपने साथ यदि एक नई सामाजिक व्यवस्था लाने में समर्थ होता तो उसकी अवश्य विजय हो गई होती। वरन् उस समय सुनाई देता है—

परवित्तानि हारयेत्

कामयेत परदारान् वै मृषावादमुदीरयेत।[1]

दार्शनिक अर्थों में इसका कुछ भी अर्थ लगाया जा सके किन्तु सामाजिक प्रभाव में इसका परिणाम अनुचित ही लगाया जाता था। आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर रहने वालों की यह एक विकृति मात्र थी जिसका आधार सदा की भाँति इस समय भी व्यक्ति ही था। ब्राह्मण घबरा गया था। चमत्कारवाद ने उसको अभिभूत कर लिया था। ऊपर उल्लेख हो चुका है कि वह स्वयं इन्हीं उपादानों को अपने भीतर आत्मसात् करके वस्तु-स्थिति का सामंजस्य करने के भीम प्रयत्न में लगा हुआ था। वैष्णव तंत्रों में यह बात प्रगट हो जाती है। भारत की समाज-व्यवस्था ब्राह्मण धर्म पर आश्रित थी, क्योंकि यह सामंती आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर थी और ब्राह्मण धर्म सामंती धर्म अधिक था। इस समय उसे धक्का लग रहा था। इतिहास के विद्यार्थी ने विस्मय से देखा होगा कि ब्राह्मण धर्म जो अपने आप में इतना संकुचित है वह वास्तव में अनेक रूपों में बहुत ही लचीला था क्योंकि उसने अपनी श्रेष्ठता के अतिरिक्त और कुछ भी लोगों से नहीं मांगा था। गुप्तों के युग से उठते ब्राह्मण धर्म ने अपनी परिस्थिति को काफी मजबूत कर लिया था। उन्होंने सीथियन, हूण, शक, गौड तथा भिल्लों को दीक्षित करके उनको राजपूत पद देकर उनकी बर्बरता को यह उच्च आसन देकर जीत लिया था। किन्तु इस समय वह लचक भी खतरे में पड़ गई थी।[2] इस समय सामंजस्य का कोई प्रश्न दिखाई नहीं देता था। आर्येतर देवताओं का भयस्वरूप शक्ति की सहायता से सबसे ऊपर आ चुका था और कहीं भी मुक्ति

१. ज्ञानसिद्धि १:१४।

२. वैदिकं कर्म संत्यज्य सुरतेषु सदा जपेत (प्राणतोषिणा)।

नहीं दिखाई देती थी। परवर्ती भागवत धर्म में सामंजस्य का प्रयत्न अत्यन्त मुखर दिखाई, देता है—

सर्वभूतेषु यः ,पश्येत् भगवतभावमात्मनः
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः

तथा—- गृहत्वा उपन्द्रियैरर्थान योन द्वेष्टि न हृष्यति.
विष्णोर्मायामिदं पश्येत् सर्वभागवतोत्तमः

और—- प्राकृत भागवत का लक्षण बताया गया :
आचार्यमिव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते
न तदभक्तेषु चाऽन्युषः सभक्तः प्राकृतः स्मृतः

किन्तु यह इस्लाम के प्रभाव के बाद का स्वरूप है।[1] उस समय ब्राह्मण धर्म में इतना अधिक सम्मिश्रिण हो गया प्रतीत होता है कि कुछ ही व्यक्ति उसकी पवित्रता के अभिमान को पूर्ण कर पा रहे थे। परिस्थिति धीरे-धीरे ऐसी होती जा रही थी जैसे हीनयानियों के महायान की उत्तरोत्तर वृद्धि के युग में होने लगी थी। भेद इतना था कि जातियों पर ब्राह्मणों का अधिक प्रभाव था इसलिये सामाजिक व्यवस्था के टूटने में समय लगना आवश्यक था। मठों और विहारों की-सी बात तो थी नहीं, कि छिपाचोरी सब कुछ हो जाता। यहाँ प्रत्यक्ष परिणाम का प्रश्न था। यदि विवाह अन्तर्जातीय होता तो अन्तर्जातीय संस्था का यह नया प्राणी खड़ा हो जाता। यदि वह ब्राह्मण को श्रेष्ठ स्वीकार कर लेता तो वह भी इस विराट् जनसमुद्र की लहर स्वीकार कर लिया जाता, अन्यथा उसे ढकेलकर बाहर करने का प्रयत्न किया जाता किन्तु वह जाता कहाँ। यहीं बना रह जाता।

धर्म को ऊपर राजनीति से अलग करके नहीं देखा गया है। इसका कारण धर्म के पीछे की सामाजिक चेतना है। भारत में धर्म यदि मात्र दार्शनिक चिंतन है तो वह अधिक प्रभावित नहीं कर पाता। किन्तु यदि वह सम्प्रदाय बनकर उतरता है तो लोग उसमें चले जाते ह। षडदर्शन का प्रभाव केवल उच्च वर्गों में ही सीमित रह गया किन्तु बौद्ध और जन सम्प्रदाय अपना प्रभाव जमाने में समर्थ हो गये।

बौद्ध धर्म के विषय में काफी विवेचन किया जा चुका है। वह क्षत्रिय विद्रोह था। यही जैन धर्म के विषय में ठीक है। ब्राह्मण धर्म भी अपने एक स्वार्थ के अनुकूल अपनी दार्शनिकता का गठन किये हुए था। शाक्त मतों में यक्ष प्रभाव का प्राबल्य उस समय इसीलिये हुआ कि अधिकांश सामन्तों को काम की काफी कमी पड़ गई थी। देश का संकट यदि आने वाला था तो वह उन से अभी काफी दूर था। संसार को असार मानने की प्रवृत्ति

---

१. जो सब जीवों को अपने में ही देखता है वही भागवतोत्तम है। इद्रियों से ग्रहण करके भी जो द्वेष-हर्ष से परे सबको विष्णु मायामय समझता है वही भागवतोत्तम है। आचार्य को हरि के स्थान पर पूजने वाले के समान सब नहीं होते। वह प्राकृत भक्त कहलाता है।

न उनसे यह तो कहलवाया था कि सब व्यर्थ है किन्तु उन्होंने त्याग नहीं किया था। ऊपर पश्चिम के प्रान्तों में यह वाम मार्ग जो खूब फैल रहा था ? उसके पीछे बौद्ध मत का ह्रास प्रायः शक्तिहीन स्वरूप था जो यदि एक ओर संसार के ऐश्वर्य से चकित होना भूल चुका था तो दूसरी ओर स्त्री के शरीर की चरम आसक्ति में अपने आप को खो चुका था। यह आशा-वाद नहीं कहा जा सकता। निराशावाद का प्रारम्भ विदेशी के आक्रमण का स्वरूप था। किन्तु यह आशावाद भी किसी ध्येय प्राप्ति का न होकर वास्तव में एक तीव्र व्यक्तिवाद का प्रतीक था। जो सामन्तकाल की एक अपनी देन थी।

इस व्यक्तिवाद की पृष्ठभूमि समाज में एक प्रकार की स्थिरता है जिसमें भय के स्थान पर शान्ति रहती है। परस्पर सामन्तों का युद्ध जनता को गरीब बनाने वाला अवश्य था, किन्तु वह एकदम संस्कृति विनाशक नहीं था। चन्द्रगुप्त से लेकर हर्ष तक एक ओर तथा मुसलमानों के आने से लेकर उनके जमने तक विदेशियों के आक्रमण का स्वरूप देखने पर यह भेद स्पष्ट प्रगट हो जाता है।

व्यक्ति ही जीवन का यदि केन्द्र है तो वह विकेन्द्रीकरण की एक चरमावस्था है, जो कभी भी सामाजिक रूप से अपनी रक्षा नहीं कर सकती। संस्कृति समाज को खींचकर एक करने का प्रयत्न करती थी किन्तु आर्थिक व्यवस्था उसमें अडंगा डालकर रोकती थी। असामंजस्य की यह विडम्बना खंडित रूप में यदि शक्ति भी थी तो घोर निर्बलता भी। वह हार सकती थी, किन्तु मिट नहीं सकती थी। यह विकेन्द्रीकरण भागवत अर्थात वैष्णव धर्म ने अपने प्रारंभिक और उत्तरकालीन स्वरूप से मिटा देना चाहा, किन्तु वह इसमें इस लिये पूर्णरूपेण सफल नहीं हो सका क्योंकि अनेक विरोधी थे। यह विरोधी भी अन्ततोगत्वा इसी सामाजिक व्यवस्था में घुले हुए थे। शैव मत के दो रूपों का विस्तार से मनन करते समय यह भेद स्पष्ट हो जावेगा।

उस समय जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, दक्षिण से ब्राह्मणवाद का पुनर्जागरण प्रारंभिक इस्लाम तथा वाम मार्ग अपने-अपने प्रयत्न में लगे हुए थे। इनके अतिरिक्त जातियों के एक दूसरे से घुल-मिल जाने से एक दूसरे के देवताओं का भी मिलन हो रहा था और नई-नई विचारधाराओं की सृष्टि हो रही थी। शैव मत अपने आर्य सामाजिक व्यवस्था के भीतर और बाहर दोनों स्वरूपों में अवस्थित था, किन्तु जब धीरे-धीरे बीच की कड़ी टूटती जा रही थी। ब्राह्मणवाद का विरोधी बाहर रहने वाला सम्प्रदाय यदि एक ओर इससे समन्वय करता जा रहा था, तो दूसरी ओर वह अपने भीतर अशैव तत्त्वों को एकत्रित करके आत्मसात करता चला जा रहा था। इसी में उसके अनेक स्वरूप हो गये थे। वह एक ओर बौद्ध शून्यवाद को ग्रस रहा था, तो दूसरी ओर ब्राह्मण वेदान्त से सामीप्य स्थापित कर रहा था जो अपने बाह्य स्वरूप में एकेश्वरवाद के कारण नवीन आने वाले इस्लाम के भी निकट था। दक्षिण से उठते भक्तिमार्ग ने शैव संप्रदाय में एक नया पहलू प्रारंभ कर दिया था जो भागवत धर्म के भक्तिसम्प्रदाय से बहुत ही निकट था। जैन धर्मानुयायियों का सामना करने वाला शंकर

का वेदान्त इस समय तक उत्तर भारत में अपनी दुन्दुभि बजा चुका था। जिसके प्रकाण्ड पांडित्य को न केवल जैन वरन बौद्ध भी झेल सकने में असमर्थ हो गये थे। अगले अध्याय में इनकी दार्शनिक भूमियों पर विस्तार से विवेचन किया जायेगा।

यद्यपि राजनीतिक पक्ष में राजा परस्पर युद्धग्रस्त थे और एक दूसरे की भूमि छीन लेना ही उनके जीवन का मुख्य आधार हो रहा था। उस समय अर्थात, मध्ययुग के संधिकाल में भारत का विराट जनसमूह एक भीषण उथल-पुथल में ग्रस्त था। गोरक्ष के जीवन से पूर्व, स्वयं उनके जीवनकाल में तथा उनकी मृत्यु के बाद भारत का स्वरूप अत्यन्त द्रुत गति से अपना स्वरूप बदलने में व्यस्त था। बहुदेववाद में खंडित समाज में अनेक-अनेक मेधावी सम्प्रदायाचार्य उत्पन्न हो रहे थे और ऐसे प्रयत्न में लगे हुए थे जैसे उन पर एक भीषण आपत्ति आने वाली थी।

गाँवों में जनता नित्य-प्रति के सामन्तवादी भार से कुचली पड़ी थी। नगर विलास के केन्द्र हो रहे थे जहाँ भीषण सेनाओं की पगध्वनि प्रतिध्वनित हुआ करती थी। सुधारकों की भीड़ से आक्रान्त भारत उस समय एक ऐसी अवस्था में खोया हुआ था कि उसे हर प्रकार से अपने को संगठित करने की पड़ी हुई थी।

ब्राह्मणों द्वारा निर्मित मनुष्य और मनुष्य के बीच की खाई अत्यन्त गहरी हो गई थी। उच्च जातियों के भयानक दमन से जनसमाज चिल्ला रहा था। पौराणिक धर्म ब्राह्मणों की बपौती हो चला था। संधिकाल में भारत के मनस्वियों ने इसी जनसमाज पर अपनी दृष्टि गड़ा रखी थी। सारे के सारे प्रयत्न यही थे कि किसी भी भाँति इस विराट जनसमाज को भी मनुष्य का दर्जा दिया जाये। इसी प्रकार उसकी भी मुक्ति की जाये। बौद्धों की करुणा इसमें असफल हो चुकी थी। वह ह्रास की ओर चलता मत अब इतना समर्थ नहीं रह गया था। वह स्वयं अपने लिये मुक्ति का मार्ग खोजने में रत था। वास्तव में इस समय शैव तथा वैष्णव धर्म ही प्रबल हो रहे थे।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि उस समय का भारत अनेक द्वंद्वात्मक भावनाओं का ऐसा संघटट हो रहा था जिसका कोई भी सुलझा हुआ स्वरूप दिखाई नहीं देता था। एक ओर ब्राह्मणवाद था तो दूसरी ओर बौद्ध और जैन थे। तीसरी ओर चुनौती देता वाम म र्ग तथा योगमार्ग था। और जनता इन सबके हाथों में विभक्त होकर सहस्रों जातियों, मतों, विश्वासों तथा आधारों में पड़ी विभाजित हो गई थी।

इन दोनों विभिन्न मतों में परस्पर साम्प्रदायिक संघर्ष भी हो जाया करते थे। हीन-यानियों ने बौद्ध गया में आठवीं शताब्दी में महायानियों के हेरूक की चाँदी की मूर्त्ति, को विहार में घुसकर नष्ट कर दिया था। दक्षिण भारत में यह संघर्ष अधिक उग्र थे। यदि एक ओर यह असंयमप्रधान संघर्ष थे तो दूसरी ओर बुद्धि के बल पर पूर्ण संयमप्रधान। यह संभवतः भारत के इतिहास का ही गौरवपूर्ण पृष्ठ है जहाँ धर्म-परिवर्तन जोर जबर्दस्ती से नहीं होकर अधिकांश बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति या जाति की इच्छा से हो जाया करते

थे। बुद्धि की बुद्धि से रगड़ होकर आग निकलती थी। दिग्विजय करने वाले धर्म की दिग्विजय करने वालों के सामने अपने सिर झुका देते थे और यह मानसिक स्तर का युद्ध शंकर के समय में कितना प्रभावशाली था यहाँ उसे दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है।[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक विशेष प्रकार की आर्थिक व्यवस्था जो उत्पादन के नये साधनों की हीनता में स्थिर हो गई थी उस पर निर्मित समाज-व्यवस्था ऐसी धर्म-व्यवस्था में जकड़ गई थी जिसका यदि सामाजिक रूप असाम्य और घृणा पर स्थापित था जो व्यक्ति रूप अत्यन्त दुरूह और रहस्यमय हो चला था। दोनों एक दूसरे पर आश्रित थे क्योंकि यह पृष्ठभूमि इस भूमि में रहने वालों को एक विराट और अत्यन्त प्राचीन सम्मिश्रण से प्राप्त हो चुकी थी।

सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि शून्य भी अभावात्मकता से धनात्मकता की ओर प्रवृत्त हो रहा था [2] और नास्तिकता के स्थान को एक नई आस्तिकता ग्रहण करती चली जा रही थी जो कोई नई बात बनकर नहीं वरन पुराने बीजों का प्रतिफलित स्वरूप बनकर अग्रसर हो रही थी।

दक्षिण का नव हिन्दुत्व जिस वेग से अग्रसर हो रहा था उसका कारण अत्यन्त रोचक है। इतिहास का यह वह पृष्ठ है जिसने नाथ संप्रदाय के गोरक्ष के परवर्ती स्वरूप को अत्यन्त प्रभावित किया।

ऊपर तालिका में पूर्ववर्ती (गोरक्ष के) प्रभाव हम देख चुके हैं। अच्छा होगा कि एक बार उसके साथ दी हुई तालिका को यहाँ मिलकर देख लिया जाय क्योंकि परवर्ती भारत के मुख्य प्रभावों का यहाँ रेखाचित्र खींचा गया है।

वैष्णव धर्म भक्ति पथ पर था। शैव धर्म दक्षिण से दार्शनिकता तथा भक्ति दोनों के साथ बढ़ रहा था। जैन धर्म अपने को साफ करने में लगा हुआ था। उस समय उत्तर में नाथ संप्रदाय अपने संगठन में एक बहुत बड़ी परम्परा को समेट लेने में व्यस्त था। आखिर सब के दृष्टिकोण में जाने या अनजाने एकदम इतना परिवर्तन आ कैसे गया था।

इसका एकमात्र उत्तर है, इस्लाम भारत में घुसा आ रहा था। नाथ संप्रदाय पर लिखने वाले विद्वानों में से किसी ने इस पक्ष पर ज़ोर देकर नहीं लिखा है। इंगित अवश्य किया है। इस्लाम ने न केवल अपने प्रारंभिक स्वरूप से प्रभाव डाला वरन् बहुत से संप्रदायों का बाह्यस्वरूप एकदम उसके कारण बदल गया।

संधिकाल की, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक हलचलों का केन्द्रीभूत कारण इस्लाम का आगमन था। जो आज तक भारत से बिलकुल अलग था।

हजारीप्रसाद ने इसे यों व्यक्त किया है—मुसलमानों के आगमन के साथ ही हिन्दू धर्म प्रधानतः आचार प्रवण हो गया। तीर्थव्रत, उपवास और होमाचार की परम्परा ही उसका लक्ष्य हो गई। इस समय पूर्व और उत्तर में नाथपंथी संप्रदाय प्रधान थे। ये लोग

१. शंकर दिग्विजय के आधार पर।

२. ना. सं.

शास्त्रीय स्मार्त मत को नहीं मानते थे और प्रधानत्रयी अर्थात् उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता पर आधृत किसी दार्शनिक मतवाद के भी कायल नहीं थे जनता इनकी ओर खिंची हुई थी। इनकी सिद्धियों का प्रभाव था। ये गुणातीत शिव या निर्गुण के उपासक थे। बेघरबारी शिष्य भी थे। आचारभ्रष्ट भी आ घुसे थे।[1]

महान् था वह व्यक्ति जिसने मनुष्य को दासत्व के बंधन से मुक्त करने के लिए मृत्यु को चुनौती दी थी, जिसने स्त्री को उसकी मर्यादा का ध्यान कराया था, जिसने बर्बरता के मरु में समता का पौधा उगाया था, जिसने अशिक्षितों और अंधकार में पड़े हुओं को पहाड़ों से उतरकर नई ज्योति दी थी, जिसने मनुष्य और मनुष्य के बीच एक ऐसा अटट भाईचारा स्थापित किया था जिसकी ताकत को झेल जाने की किसी में शक्ति नहीं थी, उसका नाम मुहम्मद था। उसने स्वयं कहा कि वह पैगंबर था और इसके होते हुए भी उसके अनुयायियों ने उसको अन्य धर्माओं की भाँति ईश्वर बनाकर उसकी पूजा नहीं की। वह जीवन के उन उच्च स्तरों को खोलने बैठा था जिसमें आसमान की उड़ान थी, किन्तु जिसने धरती पर रहने वालों के माध्यम से 'उसे' पहचाना और पूर्व और पश्चिम जगत् के बीच एक ऐसा महान् नाद उठा कि सारे संसार ने चकित होकर उस शब्द को सुना, ऐसा जिसकी कल्पना उन्होंने भले ही की थी किन्तु ऐसा साकार रूप उनमें से कोई भी नहीं देख सका था। वह इस्लाम का प्रारंभिक स्वरूप था जिसमें उन ७२ वीरों की ज्वलंत कथा देदीप्यमान थी जिन्हें कुफ़्फ़ारों ने पानी के लिये तड़पा-तड़पाकर कत्ल किया था। यही ७२ अब ७२,००० होकर ७२,०००,०० होने में लगे हुए थे।

७वीं शताब्दी के प्रारंभ में इस्लाम के प्रादुर्भाव ने इस्लाम के पहले से चलते अरब जातियों के संगठन-कार्य को एक अद्भुत स्फूर्ति दी। मुस्लिम व्यापारी फारसी-समुद्र-व्यापार के साथ भारत में आने लगे। वे भारत के अतिरिक्त कूलम मलयद्वीप, पूर्वी द्वीपसमूह और चीन की ओर भी हवा से बहते जहाज़ों पर बैठकर चल निकले। ६३६ ई० सन् में खलीफ़ा उमर के युग में, जब उस्मान सकीफ़ी बहरन और उमन का गवर्नर था, पहली बार मुस्लिम बेड़ा भारतीय समुद्र में दिखाई दिया। खलीफ़ा ने इसके लिए डाँट बताई, किन्तु कुछ दिन बाद यह यात्रायें फिर चालू हो गई। मुसलमान भारत के दक्षिणी तीर तथा लंका में बस गये। ७वीं शताब्दी के अन्त में वे मलाबार तीर पर उतरे। ८वीं सदी में अरब बेड़े ने भड़ौंच और काठियावाड़ के तीर पर हमला किया। वहाँ की एक कब्र पर लिखा है—अली इब्न, उदथोरमान.........१६६ हिजरी में मरा....................

मलाबार में मुसलमानों का यात्री रूप में स्वागत किया गया, उन्हें सहूलियतें दी गईं, भूमि खरीदने की स्वतंत्रता तथा अपने धर्म-पालन करने की आज्ञा भी दे दी गई। मुसलमान घर से निकले हुए ईसाई और पारसियों की भाँति नहीं आए थे। ९वीं सदी के समय तक वे

१. विक्रम की छठी से १५वीं शती तक की धर्म-साधना। नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५०, अंक १ : २

मलाबार के तीर पर फैल गये और न केवल उन्होंने जनता को अपने अद्भुत विश्वासों से वरन् अपने उत्साह तथा धार्मिक कट्टरता से भी चौकन्ना कर दिया था। इस समय अंतिम चेरमान पेरूमल राजा (मलाबार) ने इस्लाम मजहब स्वीकार कर लिया क्योंकि दक्षिण एक उथल-पुथल में डूबा हुआ था।

किन्तु दक्षिण-पश्चिम के आगमन से भी पूर्व भारत और इस्लाम का संसर्ग उत्तर-पश्चिम से प्रारंभ हो चुका था। व्यापारी दक्षिण की ओर से आने को अधिक प्रवृत्त था, किन्तु उत्तर से आने वाला रहस्य का जिज्ञासु था। भारत और फ़ारस में उस समय राजनैतिक बंधन अवश्य थे, किन्तु परस्पर कितना अधिक संबंध था यह बताना एक कठिन काम है। इस्लाम की पृष्ठभूमि खड्ग के बल पर प्रारंभ हुई थी। उसने देखते-देखते जब मरुभूमि पर अपना हरियाली का प्रतीक, नवजीवन से ओतप्रोत हरा झंडा आकाश में लहराया तब 'दीन-दीन' की पुकार ने यदि पश्चिम में स्पेन तक जाकर सागर में अपनी तलवार धोई तो पूर्व में ईराक, ईरान को पददलित कर दिया।

आकेमेनियम राजवंश के समय में भारत और ईरानी साथ-साथ रहते थे। कनिष्क के अनन्तर हुविष्क सम्राट हुआ था। वे बुद्ध थे, उनके अनन्तर एक नितांत ब्राह्मणधर्म का अनुयायी वासुदेव शासक हुआ। कुशान सम्राट विदेशी माने जाते थे। ४थी शताब्दी

अध्याय के शेष पृष्ठ निम्नलिखित रचनाओं के आधार पर लिखे गये हैं :

१. ताराचंद : इन्फ्लुएन्स आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर।
२. मोहनसिंह : कबीर एन्ड द भक्ति मूवमेण्ट वाल्यूम १।
३. ब्रिग्स : गोरखनाथ एण्ड द कनफटा योगीज।
४. दर्शन दिग्दर्शन : राहुल।
५. एम. एन. राय : द हिस्टारिकल रोल आफ़ इस्लाम।
६. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका।
७. भारतव में जातिभेद।
८. राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्यधारा।
९. मोहनसिंह : गोरख एण्ड मिडिविअल हिन्दू मिस्टिसिज़्म।
१०. रेवेरेन्ड अहमदशाह तथा रेवेरेन्ड डब्लू. आर्मरोड : हिन्दी रिलीजस पोएट्री।
११. बैजनाथ सिंह : लेटर्स फ्राम ए सूफी टीचर।
१२. फर्कुहार : एन आउटलाइन आफ़ द रिलीजस लिटरेचर आफ़ इंडिया।
१३. क्षितिमोहन सेन : मिडिविअल मिस्टिज्म आफ़ इंडिया।
१४. आर. ए. निकलसन : द मिस्टिज़्म आफ़ इस्लाम।
१५. चार्ल्स इलियट : हिन्दुइज़्म एण्ड बुद्धिज़्म वाल्यूम २ और ३।
१६. रिपोर्ट ओरिएन्टल कान्फ़रेन्स २ कलकत्ता एम. ए. शास्त्री का लेख।
१७. एनसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम।

में ईरान में बौद्ध प्रभाव में आ गये लोगों को जोरोस्ट्रियन शासन-सत्ता ने स्वयं दण्ड दिया था।

यह स्मरण रखने का विषय है कि पाणिनि पठान जाति का व्यक्ति था और भारतीय आर्य संस्कृति पहले-पहल ईरान गांधार, वाह्लीक उद्यान और स्वात में ही फली-फूली थी। बौद्धों का वहाँ बहुत काल तक अपना प्रभाव रहा। कुछ विद्वानों का मत है कि वहां आने वाली नई-नई जातियाँ के विश्वासों के कारण बौद्ध मत में ह्रास के चिह्न प्रकट होने लगे, जिनमें आनन्द और भोग का बहुत बड़ा हाथ था। यह एक आंशिक सत्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता था। ऊपर यक्ष प्रभाव का भारतीय विचारधारा का ही एक अंग होना प्रमाणित किया जा चुका है।

भारत के उत्तर में सेसेनियन टाइप के सिक्कों से समय नियत होता है वह लगभग ६२७ ई० सदी के निकट का है।[1]

डा० ताराचंद ने उत्तर से आते मुसलमानों के योद्धा स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया है :—

मुस्लिम विजय के पूर्व का भारत मेसिडोनिया के सशक्त होकर उठने के पूर्व के यूनान के समान था। दोनों ही जगह राजनैतिक संगठन में असमर्थता थी, पर विज्ञान, साहित्य तथा कला की खोज में दोनों लगे हुए थे। यदि मेसिडिनियन अर्ध हेलेनाइज़्ड ग्रीक था तो विजयी तुर्क अहिन्दू राजपूत के समान था।

उत्तर से आते फ़कीरों ने भारत में इस्लाम के लिये एक दूसरी जगह तैयार की थी जिसका अपने समय में बड़ा महत्त्व था। वे मनुष्य की भाँति बातें करते थे। हिन्दुओं को समझने का प्रयत्न करते थे, वे स्वयं अपनी ही जाति के विजयी स्वरूप द्वारा स्वीकृत नहीं किये गये। उनका आगे चलकर प्रभाव नहीं पड़ा (यद्यपि उनके चमत्कारवाद से बाद का इस्लाम उनकी वैसी ही श्रद्धा करने लगा था जैसी सिद्ध योगियों का ब्राह्मण समाज) फिर भी उनके मिलन से परस्पर का एक ऐसा आदानप्रदान हुआ जिसका परवर्ती युग में स्पष्ट प्रभाव मिलता है।

इस समय उत्तर के हिन्दू शाहीय राजवंशों से मुसलमानों का युद्ध हो रहा था। यह शाही वंश या तो शैव थे या बौद्ध। इसकी प्रक्रिया का प्रारंभ आवश्यक था।

सूफी संप्रदाय का फ़ना निर्वाण की भाँति अभावात्मक न होकर ईश्वर का निरंतर होने वाला सान्निध्य है। इस्लाम की भावना या इच्छा ही क्या कुछ सीमा तक एक रहस्यवाद से भरी प्रवृत्ति स्वीकार नहीं की जा सकती?

एक ओर यह आकाश की चोट भारत से बजकर इस्लाम के गगन में गूँज रही थी, दूसरी ओर इस्लाम की पगध्वनि फ़कीरों के नंगे पाँवों की चाप या सेनाओं की भीषण प्रतिध्वनि करती हुई भारत की ओर अग्रसर हो रही थी। अद्भुत द्वन्द्व था यह। बिस्तम का बायज़ीद पुकार उठा था—मैं एक देवता से दूसरे के समीप गया। वे मेरे भीतर से पुकार

१. श्री वासुदेव का सिक्का—नागरी और पहलवी भाषा में लिखा है।

उठे ! "अरे तू तो मैं हूँ।"

इस्लाम का प्रभाव भारतवर्ष में दो रूप से पड़ा है। एक प्रारंभिक इस्लाम, दूसरा विजयी इस्लाम। गोरक्ष से पूर्व इस्लाम के प्रारंभिक प्रभाव का युग है जिसमें परवर्ती इस्लाम के बीज रहते हुए भी सहिष्णुता का बहुत बड़ा हाथ था--परवर्ती इस्लाम का प्रभाव विस्तारपूर्वक देखने का हमें सुयोग प्राप्त नहीं होगा क्योंकि वह इस्लाम के विजयी स्वरूप से संबद्ध है और हमारे आलोच्य काल से बाहर है। यहाँ उसका वही स्वरूप हमारे सामने आ सकेगा जिसने मध्यकाल के संधिकाल को तीन खंडों में सरलता से विभाजित कर दिया।

गोरक्ष से पूर्व इस्लाम भारत के परिचय में संलग्न है। एक नवागंतुक और अपनी शक्ति के संगठन में मग्न है। गोरक्षनाथ के जीवनकाल अथवा कहना सरल होगा, नवम शती में वह भारत में घुसने का प्रयत्न कर रहा है और सांस्कृतिक आदान-प्रदान हो रहा है। परिस्थिति बहुत ढुलमुल है। अभी इस्लाम से घृणा भारतीय में पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं हुई है। वह उसे समझ नहीं पाया है। केवल एक उपेक्षा से उसे देख रहा है या अपने से हीन समझता है। तीसरी परिस्थिति अर्थात् गोरक्षनाथ की परवर्त्ती शताब्दियों में वह उसके विरुद्ध अपने को संघटित करने में लगा हुआ है और आपस की शक्ति को तोल रहा है तथा कल विजयी होकर आने वाले इस्लाम के लिये जगह छोड़ता जा रहा है, तो उससे बचने का भी प्रयत्न करता हुआ चुनौती-सा देता जा रहा है। इस युग के बाद विजयी इस्लाम के आने पर यदि बहुत से भारतीय इस्लाम ग्रहण करते हैं तो उनसे बहुत अधिक नहीं भी करते। दोनों पक्षों की रूपरेखा नियत हो रही है। इसी पक्ष में सीमाप्रान्त, काश्मीर तथा गांधार और उद्यान आदि भारत के भू प्रान्त इस्लाम के विजयी झंडे के नीचे चले जाते हैं। ११०० ई० के बाद समस्त भारत के सामने इस्लाम का खड्ग उठता है और वह युग संधिकाल के बाद का होने से हमारे आलोच्य काल के बाहर हो जाता है तब इस्लाम के विजयी और सहिष्णु स्वरूप प्रायः साथ ही साथ आते हैं। किन्तु संधि युग में उसके हाथ में राजनैतिक प्रभुत्व न होने के कारण उसका सहिष्णु स्वरूप अधिक सामने आता है। किसी भी धर्म के प्रसार में यदि तत्कालीन सांस्कृतिक और दार्शनिक व्यवस्थाओं का निरूपण आवश्यक होता है तो साथ ही सामाजिक और आर्थिक विचारधाराओं का देखना भी। इस्लाम एक नई सामाजिक व्यवस्था लाया था किन्तु उसकी आर्थिक व्यवस्था अपनी कोई विशेष नहीं थी। वह मरुस्थल का चिंतन था जहाँ एकता अत्यंत सरल थी।

मुसलमानों से संसर्ग होने से पूर्व भी अरब का भारत की पश्चिमी सीमा (समुद्र तीर) से मिलना-जुलना हुआ करता था। फ़ारस की खाड़ी और बगदाद इत्यादि इसी क्षेत्र में थे। अरब में उस समय बहुदेववाद था। ईरान के शाह नौशेरवान के दरबार में ५३२ ई० सन में ही नियोप्लेटोनिस्टों का आश्रय प्राप्त करना उल्लिखित है। सूफीमत में यदि नियोप्लेटोनिस्टिक प्रभाव मिल जाता है तो इसमें अधिक आश्चर्य नहीं होना चाहिये। स्मरण रखने

की विशेष बात यह है कि नियोप्लेटोनिस्ट्स पर स्वयं भारतीय विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा था।

इस्लाम के दो स्वरूप मुखर रहे हैं। एक क्रांतिकारी, दूसरा साम्राज्य की असहिष्णुता-भरा स्वरूप। प्रथम खलीफ़ाओं ने बगदाद में उन यूनानी दार्शनिकों को छठी शताब्दी में शरण दी जिन्हें यूनान छोड़कर भागने पर और कहीं भी रहना कठिन हो गया था। उन्होंने विनष्ट रोम साम्राज्य में जगह-जगह अपने आदमी भेजे कि वे रोमन और यूनानी दार्शनिकों की रचनाओं को एकत्र करें। विद्वानों के प्रति खलीफ़ा अलमोनन के शब्दों को अरब इतिहासज्ञ अबुल फरागियस ने उल्लिखित किया है कि वे भगवान के चुने हुए व्यक्ति हैं। वे उसके प्रधान और लाभदायक सेवक हैं। संसार उनके बिना अंधकार में डूब जायगा। अब्बासियों ने न केवल वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ाया वरन वे स्वयं उसमें भाग लेते थे।

मुहम्मद बिन कासिम ने ७१२ ई० में सिन्ध को जीत लिया। इसमें उसे जाटों तथा अन्य ब्राह्मण विरोधी खेतिहर जातियों ने सहायता दी और फिर उसने ब्राह्मणों की सहायता लेकर उन्हें विश्वासपात्र बनाकर देश में शान्ति फैलाने का कार्य प्रारंभ किया। उसने उन्हें अपने मन्दिरों की मरम्मत करने की आज्ञा दे दी। उसने उन्हें अपना धर्म वैसे ही मानते रहने की भी स्वतंत्रता प्रदान की। लगान वसूल करके उनके हाथों पर रख दिया और स्थानीय शासन को पूर्ववत चलाने के नियमों का पालन करने की स्वीकृति दे दी।

हैवेल ने उन जातियों की परिस्थिति और मुक्ति के अनुभव का वर्णन किया है जो इस्लाम के आश्रय में चली गईं।

प्रश्न है कि इस्लाम का विरोध क्यों किया गया? एक मत है कि भारत इस्लाम के सामने इसलिए पददलित हो गया क्योंकि ब्राह्मणवाद ने बौद्ध क्रांति का नाश करके अपनी सत्ता का पुनः प्रतिपादन, प्रदर्शन, कर लिया था। समाज उनसे असंतुष्ट था, इसी से इस्लाम जीत गया। इन्हीं विद्वान लेखक ने आगे इस्लाम का विरोधी केवल ब्राह्मणों को बताया है। किन्तु इलियट ने दिखाया है कि उड़ीसा में अन्त तक बौद्ध मुगलों से लड़ते रहे। इस्लाम भारत की सभी अछूत जातियों को क्यों नहीं जीत गया? अपने में उसने आत्मसात क्यों नहीं कर लिया?

इसका उत्तर हमारे आलोच्यकाल का इतिहास है। ब्राह्मणवाद ने भारत में अत्यंत गर्हित प्रथाओं का निर्माण किया और उन्हें स्थापित रखा, किन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि यदि भारत में आये विदेशियों में कोई ऐसा था जिसने शताब्दियों के असली भारतीयों से संसर्ग होने के बाद भी पूर्णरूपेण मिलजुलकर (विदेशी बनकर नहीं) अपनापन शेष था, तो वह ब्राह्मणवाद में ही। बौद्धमत हार गया। ब्राह्मण स्वदेशीय बनकर विदेशियों को आत्मसात् करता हुआ भी जीवित था। यह कहना एक भूल होगी कि भारत इस्लाम से नहीं लड़ा। इस्लाम राजनैतिक रूप से जीतकर भी कभी भी भारतीय संस्कृति को सांस्कृतिक पराजय नहीं दे सका। जो बौद्ध तथा आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर के प्राणी थे वे ही

उसके नये सामाजिक विधान को देखकर उसमें सम्मिलित हो सके। इसमें नाथ संप्रदाय के पुराने शाक्त उपादानांतर्गत परवर्त्ती सम्प्रदाय भी जाकर घुलमिल गये। इस्लाम का फैलना तलवार का जोर था। वे बौद्धों की भाँति प्रेम से धर्म फैलाने नहीं निकले थे। वे शंकर की भाँति प्रकांड पांडित्य के बल पर विजयी नहीं हुए थे। वह मरुभूमि की अनेक जातियों का संघटन था जिसने पूर्व और पश्चिम को धराशायी कर दिया था। इससे पहिले हूण यही कर चुके थे। किन्तु इस्लाम को अपनी बराबरी और भाईचारे का बुलंद नारा आगे बढ़ाना था। महान् थी यह भाईचारे की क्रान्ति, एकेश्वरवाद की प्रमुख गरिमा। किन्तु वह नया सामाजिक विधान असहिष्णु था। जातिप्रथा के विरुद्ध विद्रोह का भाव भारत में आर्यों के प्रारंभिक काल में भी व्रात्य रूप में था। मध्यकाल में भी शैव और बौद्ध रूप में पल रहा था। इस्लाम का नारा प्रारंभिक बुद्ध वचन या जैन वाक्य से कुछ ही अधिक था। इतिहास का विद्यार्थी बता सकता है कि भारत में वास्तव में सांस्कृतिक रूप से इस्लाम जीता या ब्राह्मण (वास्तव में दोनों ही स्थिर-से हो गये) निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि बुद्धमत का प्रादु-र्भाव जिस प्रकार क्षत्रियों का ब्राह्मण सत्ता के विरुद्ध विद्रोह था, उसी प्रकार, अनेक दूसरी जातियों का व्यापार को बढ़ाने का प्रयत्न इस्लाम था। पहिला निरीश्वरवाद.था दूसरा एकेश्वरवाद पहिले की परिस्थिति में कुछ मान्य सामंती विरोधों को काटना था, दूसरे की परिस्थिति में आपस की लूट रोककर एका करना था, दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष में भारत के बिखरे हुए धर्मों में व्याप्त दार्शनिकता। समानता की प्रवृत्ति का एकत्री-करण-सा ही यह नवागुंतक इस्लाम था जिसके आने पर समस्त भारतीय सहिष्णुप्राय संप्रदायों ने अपने-अपने उसी के समानांतर तथ्य खोजकर उन्हें आगे कर दिया और आने वाले नये सामाजिक विधान को अपने सामने शताब्दियों की रोक दिखाई देने लगी।

इत्यलम कि इस्लाम का पक्ष क्या था। राय का यह कथन उचित ही जान पड़ता है कि भारत में आने के पूर्व ही इस्लाम का अधिकांश क्रांतिकारी स्वरूप समाप्त हो चका था। यह समय बारहवीं शती के लगभग है। उससे पूर्व इसका क्रान्तिकारी स्वरूप था, जिसका दर्शन ऊपर किया जा चुका है। आक्रमण करते हुए समय में भी हमारे आलोच्यकाल में यही प्रधान धारा थी। इस्लाम के क्रोड में जाने वाले संप्रदाय अधिकांश यक्ष-प्रभाव से विकृत शाक्त संप्रदाय थे। इन शक्तियों को ब्राह्मण ने स्वयं गिरकर भी अपने से नीचा ही माना था। दक्षिण की आदिक्कल जाति का अर्थ दास्य या सेवक है। कहा जाता है कि वह असल में ब्राह्मण थे और उनके भद्रकाली के मंदिर में जाकर उपासना करने से तथा पुजारी बनन से उनका पद नीचे गिरा दिया गया। उन्होंने मदिरा और मांस से पूजा करके उसे स्वयं भी खाया।[1] भद्रकाली की पूजा नाथसंप्रदाय में भी बाद में घुस आई थी।[2] स्वयं गोरक्ष का

१. कोचीन ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स : केरल विशेष माहात्म्य पृ० ४६; पृ० १२४ एल. के. अनंत कृष्ण ऐयर. लुज़ाक एण्ड कंपनी।

२. ना. सं.

काली से युद्ध बताया जाता है।[1] यदि भारतीय इतिहास के इस यक्ष-प्रभाव को अच्छी तरह से समझ लिया जाय तो भारी भूल होने की संभावना कुछ कम हो जाती है।

बहुदेववाद के विषय में पैगंबर ने कहा था कि वह मेरे अनुयायियों ने अँधेरी रात में काले पत्थर पर चलने वाली चींटी से भी अधिक अदृश्य है। उसके अतिरिक्त और किसी से सहायता की आशा करना, किसी अन्य से आशा या भय करना, यह सब बहुदेववाद के ही समानांतर है। मनुष्य तब चारित्रिक ऊँचाई को प्राप्त होता है जब वह स्वयं ख़ुदा से है, उसके द्वारा है और सिर्फ़ ख़ुदा के लिये है। बंदे के लिये ख़ुदा के सामने की उपस्थिति के अतिरिक्त और कहीं शांति नहीं है। उसकी उपस्थिति के सान्निध्य के अतिरिक्त सब कुछ मृत्यु है।

नूरी से जब पूछा गया "ख़ुदा का सबूत क्या है" उसने उत्तर दिया "स्वयंख़ुदा" तब प्रश्न-कर्त्ता ने पूछा—"दिमाग की क्या आवश्यकता है" ? नूरी ने कहा "वह व्यर्थ है, वह अपनी जैसी असफलता के अतिरिक्त और कहीं नहीं पहुँचाता। बुद्धि रूप, सत्य या घटना के अतिरिक्त तत्त्व को नहीं देख सकती और वह भी समय और अंतराल के बंधनों में ही रख-कर, अतः दैवी ज्ञान की प्राप्ति इस्लाम के अतिरिक्त नहीं हो सकती।"

यह विचार इस्लाम के शुद्ध रूप नहीं लगते। इस्लाम की सहिष्णुता के शक्तिशाली स्वरुप का प्रतीक सूफीमत था।

विद्वानों का मत है कि सूफीमत पारसियों के अवेस्ता से निकला हुआ प्रतीत होता है। आत्मा स्वतंत्र समझी जाती है और अवेस्ता इसका प्रतिपादन करता है। सद्विचार रखने वाला मनुष्य अपने विश्वासों का आधार बनाने के लिये स्वतंत्र है। दुष्कर्म के सघन अंधकार से निकल आने पर वह मुक्त हो जाता है और परमात्मा अर्थात् सत में उसका लय हो जाता है।

[2]जब ईश्वर मनुष्य से प्रेम करता है तब वह उससे उसकी दौलत, पत्नी और बच्चे छीन लेता है ताकि वह अभाव की ओर अग्रसर हो और उसके अतिरिक्त किसी का भी ध्यान न करे। यदि मनुष्य शांति से इन दुःखों का वहन करता है तो उससे भगवान प्रसन्न होता है। 'मुहब्बत' शब्द की व्युत्पत्ति 'हिब्बा' शब्द से है जिसका अर्थ बीज है। बीज जीवन का कीट है और उसी में पेड़ छिपा है। बीज मिट्टी में रखा जाता है, वहाँ छिपा पड़ा रहता है और वहां उसे धूप और वर्षा, गर्मी और सर्दी मिलते हैं बिना (प्रगट) परिवर्तन के। समय आने पर वह फूट निकलता है। फलता फूलता है। भक्ति ही प्रेम की पूर्णता है।

भक्ति बुद्धि से परे है।

मैं भक्ति हूँ, इस लोक और उस लोक से परे हूँ। मैं बिना तीर-कमान के दुनिया को हराये हुए हूँ। प्रत्येक अणु में मैं सूर्य की भाँति दीप्त हूँ, किन्तु मेरी दीप्ति के कारण मैं नहीं

१. यो. सं. आ.

२. शेख़ यहिया के पुत्र शेख़ शफ़उद्दीन के पत्र से।

दिखता। मैं हर कान में सुनाई देता हूँ। प्रत्येक जीभ पर बोलता हूँ किन्तु आश्चर्य है कि मैं जिह्वाहीन और श्रुतिहीन हूँ। समस्त ब्रह्माण्ड निश्चय ही मेरा पंथ है। मैं उसके अंदर प्राप्त नहीं हो सकता।

अपनेपन के भाव से छुटकारा पा ले और भक्ति में मन लगा दें। जब तू इतना कर चुकेगा तो समझ ले तेरा काम पूरा हो गया (जीवन के) समुद्र की नाव भक्ति है। नाविक स्वय ईश्वर कृपा है, करुणा है।

नरक में भी तू उसे खोजना नहीं छोड़ेगा। फ़रिश्ते से कहना, मेरे व्यक्तित्व की व्यर्थता को दण्ड देकर निकाल दे। मैं अपने पक्ष में खोज के पथ पर पड़ा हूँ।

वे मुझे दोनों दुनिया दान दे रहे हैं पर तेरे बिना मुझे कुछ नहीं भाता, सूफीमत की दो परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक पूर्ववर्त्ती दूसरी उसकी उत्तरकालीन। दूसरी अवस्था में हिन्दू प्रभाव स्पष्ट ही सशक्त दिखाई देता है किन्तु अपनी पहिली अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि उस पर छाप नहीं पड़ी थी। ९२२ ई० सन् में अलहिजाज़ नामक सूफी को 'अनलहक' कहने के अपराध में प्राणदण्ड दिया गया था। उसके विषय में प्रगटरूप से उल्लिखित है कि वह जादू सीखने के लिये भारतवर्ष में आया था। कई अन्य सूफ़ियों ने ऐसी ही यात्रायें की थीं। यदि वे स्वयं भारत में नहीं आये थे तो भी वे ऐसे स्थानों में अवश्य घूमे थे जहाँ भारतीय प्रभाव था। उत्तर-पश्चिमीय प्रान्तों में महायान का ही ज़ोर था। बुहलर को उद्धृत करते हुए इलियट ने लिखा है कि ८०० ई० सन् से १११० ई० तक पाल वंश की छाया में तथा दक्षिण में भी कुछ स्थानों पर बौद्ध विहारों को राज्याश्रय प्राप्त था, धन मिलता था। यह प्रायः तांत्रिक पीठ थे। नेपाल का महायान यद्यपि ब्राह्मण स्त्रोत से जन्मा था, वह परवर्त्ती काल में बुद्ध, विष्णु और शिव को एक-से पदों पर आसीन करने में निरत था। कृष्ण को बुद्ध से मिलाने का प्रयत्न हो रहा था, किन्तु उत्तर-पश्चिम के महा-यान ने शैवमत से सामीप्य तीव्रता से स्थापित किया था। दार्शनिक रूप में नहीं, बाह्य आचार के रूप में। यह बाह्य आचार शाक्त उपासना से एक-सा लगने लगा था। तारानाथ ने स्वात और उद्यान के तांत्रिक पीठों से आते-जाते तांत्रिकों का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग ने जो वर्णन किया है उससे भी यह ज्ञात होता है कि उक्त स्थानों में महायान का ज़ोर था और वहाँ जादू और तंत्र का प्रमुख महत्व माना जाता था। काश्मीर में भी जादू और सिद्धि का सशक्त स्वरूप था। परवर्त्ती ब्राह्मणों में भी अर्द्धनारीश्वर-शिवोपासना शक्ति तत्त्व का प्रदर्शन करती है।

फरीदुद्दीन अत्तार भारत और तुर्किस्तान में घूमा था। जलालुद्दीन-अर-रूमी बलख़ में पैदा हुआ था जो एक समय बौद्धों का केन्द्र था। सादी बलख गया था। वह गजनी, पंजाब, गुजरात भी गया था और इसने हिन्दू मंदिरों को भी देखा था। इस सबसे यह प्रगट होता है कि मुहम्मद से पूर्व ही बौद्ध तथा हिन्दू प्रभाव तुर्किस्तान इत्यादि में पहुँच गये थे और नियोप्लेटोनिस्ट तथा मैनिकियन्स से उनका संसग हो चुका था। इस्लाम

की तलवार की तीव्रता ने इसे एकदम दबा दिया, किन्तु छूट मिलते ही यह स्वतन्त्र उठ खड़ी हुई और सूफ़ियों के भारत-भ्रमण से यह फिर शक्ति एकत्रित करने में समर्थ दिखाई देने लगी। कब्वाल इसकी अंतिम प्रतिध्वनि है। इसमें शब्दों और अक्षरों को चमत्कारी शक्ति का प्रदान किया गया। सृष्टि का आरंभ और अंत परमात्मा की इच्छा-शक्ति पर ही निर्भर स्वीकार किया गया। अरब से आने वाला इस्लाम दक्षिण में आकर बसा था जिसमें धार्मिक उग्रता ही महत्त्वपूर्ण थी। फ़ारस से आने वाला इस्लाम उत्तर की ओर से आया था। फ़ारस ही सूफी मत का विशेष केन्द्र था। यह सूफी संप्रदाय अपने भीतर भक्ति रहस्य और प्रेम के बीज लिये हुए था। अतः यह कहना कि दक्षिण के भारतीय भक्ति संप्रदाय पर इस्लाम की छाया या प्रभाव पड़ा था कुछ अत्युक्ति प्रतीत होती है। इस्लाम से भी पूर्व दक्षिण में ईसाई आ चुके थे, जिनका प्रभाव पड़ रहा था। दक्षिण भारत ईसाइयों से नहीं चौंका था। वह इस्लाम से चौकन्ना हो गया था। इस्लाम में ईश्वर का भय रूप अधिक था। जबकि ईसाई धर्म में भक्ति और प्रेम की मात्रा अधिक थी। रामानुज तथा दक्षिण के शैव भक्तों की पृष्ठभूमि में ईसाई धर्म की सहायता मान लेने में कोई अनौचित्य नहीं लगता। शैव संप्रदाय में तो एकत्व तथा समानता पुराने विश्वास थे किन्तु क्या एक विदेशी प्रभाव के कारण इतनी आत्मविह्वल तथा परिपक्व दशा का प्रदर्शन करने वाला भक्ति संप्रदाय दक्षिण से उठ सकता था। रामानुज की भक्ति भी एक दार्शनिक सिद्धान्त के बल पर खड़ी हुई थी।

यह कहना सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है कि इस भक्ति संप्रदाय का उदय यदि भागवत से माना जायगा तो वह सत्य से दूर ले जायगा। भागवत जैसी परिपक्व रचना के पीछे कुछ शताब्दियों की भावना का होना आवश्यक है। आभीरों के कृष्ण तथा राधा की भावना गुप्तकाल में ही मुखर हो चुकी थी। जिसने भक्ति संप्रदाय के बीच का पहला अंकुर फूटता हुआ प्रदर्शित कर दिया है। देवता वासुदेव का उल्लेख तो जातक काल में भी मान लिया गया है। विष्णु के प्रारम्भिक स्वरूपों से उसके स्वरूप परिवर्तन का अध्ययन संभव है, इस पर कुछ अधिक प्रकाश डाल सकें। अतः यह स्पष्ट है कि दक्षिण में इस्लाम का रूप भक्ति का अधिक नहीं होकर भाईचारे का ही अधिक संभव प्रतीत होता है। ईसाई प्रभाव तथा शैव और वैष्णव मत के भीतर भक्ति के बीज ही फूट निकले जिनमें सुधारवाद का प्रभाव इस्लाम का प्रगट होता है। इलियट का मत है कि रामानुज और मध्वाचार्य से भी पूर्व इस्लाम का प्रभाव भारत में प्रगट हो गया था। वे सूफी प्रभाव को इसके लिये उत्तरदायी ठहराते हैं कि प्रेम और गुरु का महत्त्व इसी का परिणाम था। मेरा विचार है कि डा० ताराचन्द के ईसाई प्रभाव को अस्वीकार करने पर भी ईसाई धर्म ही इसके लिये उत्तरदायी था। पूर्णरूप से नहीं, आंशिक रूप से। क्योंकि भागवत धर्म का उदय कहीं प्राचीन था। यह वह धारा थी जो ब्राह्मण तथा बाहर से आई आभीर आदि जातियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई थी। गुरु का महत्त्व भारतीय संस्कृति में यदि सरहपा (७६० ई०) में हो सकता है तो क्या तब भी वह इस्लाम का प्रभाव है। डा० ताराचन्द यदि इस ओर

ध्यान देते तो ऐसा संभवतः कभी न लिखते। लिंगायत और शैव संप्रदायों में यह मुखर हो उठा। यह सत्य है कि प्रायः असहिष्णुता और भक्तिवाद में यह संप्रदाय इस्लाम के अत्यंत निकट थे। किन्तु क्या इस समय तक शैव संप्रदाय की पृष्ठभूमि में कोई ऐसी वस्तु थी जो लिंगायत स्वरूप में बिल्कुल नई थी! छुआछूत न मानना, एकेश्वरवाद, ब्रह्मचर्य सभी बातें शैव धर्म की अपनी थीं। इसका एक दृश्य रूप यह भी है कि यदि लिंगायत इस्लाम के इतने प्रभाव में आते तो क्या उससे कोई भी सामीप्य स्थापित करने का प्रयत्न न करते। यह बात अन्यों के विषयों में नहीं कही जा सकती। लिंगायतों के विषय में ही इसका उल्लेख हो सकता है क्योंकि यह मत ब्राह्मण स्वीकृति की चिंता नहीं करता था। अधिक से अधिक यह कहना उचित दिखाई देता है कि शैव मत का एक स्वरूप प्रारम्भ से ही जो उग्र और 'असहिष्णु' बना रहा उसने कभी ब्राह्मण मत का प्राधान्य स्वीकार नहीं किया और इस लिये उसका इस्लाम से प्रभाव साम्य दिखाई देता है।

इस समय जबकि ब्राह्मण, जैन इत्यादि ने इस्लाम को प्रारम्भ से ही चौंककर देखा है फकीरों के रहस्यान्वेषण पर एक ही संप्रदाय ने प्रभाव डाला वह योगी मत था। सूफी को शाक्त उपासना नहीं वरन् एक शुद्ध योग मत मिला जिसे चमत्कृत होकर उसने स्वीकार कर लिया। इस्लाम ने जो फ़ारस की प्राचीन संस्कृति को बदलकर मिटा देना चाहा वह तो असंभव था ही। प्राचीन रहस्य के स्वरों को यहाँ एक टक्कर की रहस्य-भावना मिली। सूफ़ियों ने शंकर के अद्वैत वेदांत, गोरक्ष के योग मार्ग का परिष्कृत रूप तथा रामानुज की भक्तिधारा सबको पी लिया। और फिर उन्होंने कट्टर इस्लाम के अत्याचार भी सहे।

अद्भुत है यह कथा जहाँ सब उलझा हुआ-सा दिखाई देता है। कितनी घृणा और कितनी श्रद्धा लेकर आया था—यह इस्लाम और इसके आने पर क्या-क्या नहीं हुआ? बहुत ही रोचक है यह वृत्त। इस्लाम ने उत्तर मार्ग से फकीर के रूप में आकर भारत में सामाजिक एकता का, भाईचारे का, एक द्वार खोला था, किन्तु योग मार्ग ने व्यक्ति के, सूफी के, दस द्वारों को खोलने के लिये हाथ बढ़ाया था। स्पष्ट ही है कि व्यक्ति पक्ष अपने सामने सामाजिक पक्ष पाकर अपने प्रयत्न में अधिक सफल नहीं हो सका। राजनैतिक परिस्थिति बदल चुकी थी। अब बिखरी भारत की जातियाँ 'हिन्दू' कहलाने लगी थीं। संघटन की ओर बढ़ रही थीं।

अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि इस्लाम का बाह्य रूप से परिवर्तन में उत्तरदायित्व था। उथल-पुथल के उस युग में उठता ब्राह्मणवाद एक ओर ज्ञान मार्ग दूसरी ओर भक्तिमार्ग को पकड़ रहा था। ह्रास प्रायः बौद्धमत शाक्त उपासना के माध्यम से यदि एक ओर शैव धर्म की ओर अग्रसर था तो दूसरा रूप कहीं भी जगह नहीं कर पा रहा था। यह शैव मत ब्राह्मण ग्राह्य नहीं था। सारांश में यह उस युग की प्रबल विचारधारायें थीं जिन्हें इतिहासज्ञों ने स्वीकार किया है। किन्तु हाकिनी, डाकिनी, हठयोग, शाक्त उपासना, वाममार्ग, ब्राह्मण विरोध शैवों और बुद्धों के असामाजिक स्वरूप और उच्च दार्श-

निकता इत्यादि के पक्ष में एक विराट परिवर्तन का उत्तरदायित्व किसका था, यह प्रश्न सरलता से नहीं सुलझ पाता।

ह्रास प्राय: बौद्ध अवशेष को ऐसे दो भागों में किसने बाँट दिया कि एक भाग यदि ब्राह्मणकृत सामाजिक व्यवस्था का अंग हो गया तो दूसरा मुसलमान।

मुस्लिम शासन के बाद अंग्रेजी शासन भारत में प्रारम्भ हुआ।
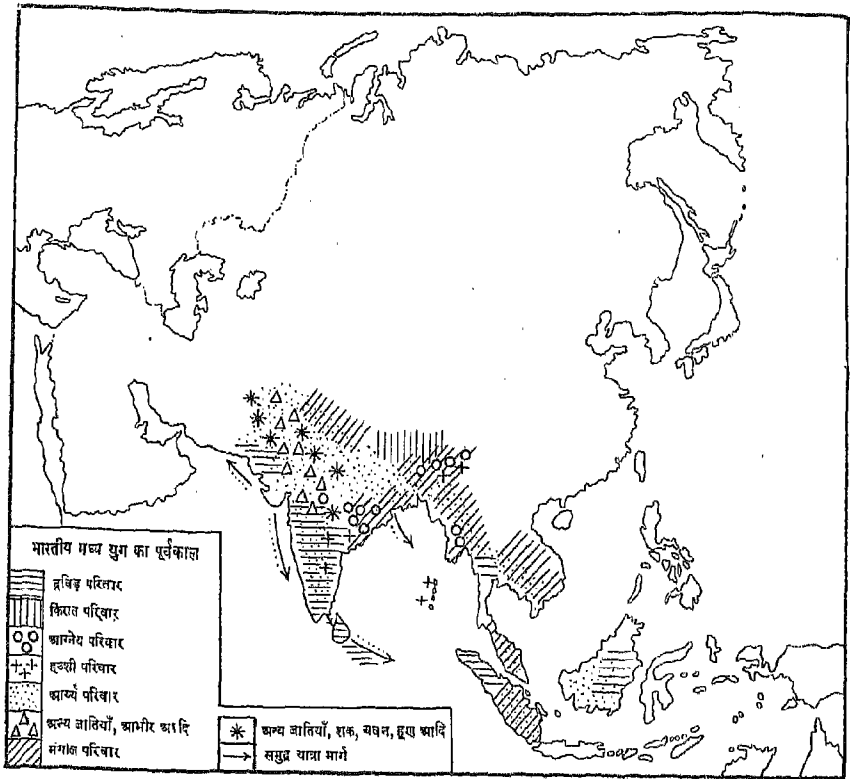
उपसंहार

परवर्त्ती इतिहास का अति संक्षिप्त रेखाचित्र यह है:

(पूर्व-मध्य काल)

विदेशियों को निकालने के लिये चाणक्य ने यहाँ के गणों का प्रायः सर्वनाश कर दिया और फिर ब्राह्मण धर्म की स्थापना करके चक्रवर्त्ती सम्राट को अधिष्ठापित किया। सामंतवाद ही शेष रह गया। यही मध्यकाल की विशेषता कही गई है। इस युग की वंशावलियों को गिनाना हमारा अभिप्राय नहीं है। इस युग को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। सर्वप्रथम चंद्रगुप्त मौर्य से लेकर हर्षवर्द्धन तक। इस प्रकार यह पूर्व मध्यकाल लगभग ६०० ई० सन् को समाप्त होता है। यह भारतीय इतिहास में चक्रवर्त्ती सम्राटों का युग है। कभी ब्राह्मण-शक्ति का ह्रास होता है, कभी उन्नति। इसके द्वन्द्व में क्षत्रियबल है। बौद्ध धर्म ब्राह्मणों से खूब टक्कर लेने लगा है। समुद्रपथ से भी वह दूर-दूर तक फैल रहा है। दक्षिण भारतीयों ने जो उपनिवेश सुदूरपूर्वीय द्वीपों में बनाये थे उनमें आर्य तो पहुँच चुके थे। अब वहाँ बौद्ध धर्म भी फैल चला। चीन से संबंध बढ़ गया। हिमालय प्रांतस्थ जातियों से संबंध अधिक होने लगा। इस समय शक, कुशान, हूण इत्यादि अनेक जातियों का आक्रमण हुआ। प्राचीन आभीर जाति की पैनेलूयन समाज-व्यवस्था तथा भागवत धर्म ने आर्य संबंधों में वैष्णव संप्रदाय का रूप स्थिर किया जिसको आर्यों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उधर नास्तिक चारवाक ने लोकायतों की शक्ति खड़ी कर दी। बौद्ध धर्म हिमालय की जातियों तथा पश्चिमोत्तर द्वार से आई जातियों के प्रभाव में अपना स्वरूप बदलने लगा। इस समय अनेक नई जातियों को बौद्धों और ब्राह्मणों ने अपने भारतीय समाज में स्वीकृत कर लिया। जैनों का प्राबल्य बढ़ता जा रहा था। इस समय दक्षिण से राजनैतिक शक्तियों ने सबल शीश उठा दिया। सामंतों और साम्राज्यों का एक ही न्यायाधिकार था कि वे विदेशियों से रक्षा करते थे। उत्तर कुरू और उत्तर सुमेरू तथा कुमेरु तक विजय करने की लालसा ने आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य को न केवल एक धार्मिक, सांस्कृतिक सूत्र में बाँध रखा, वरन् राजनैतिक रूप से भी यह शक्ति बनी रही। ब्राह्मण और क्षत्रियों के पुराणों ने, महाभारत, रामायण, गीता आदि ने सुस्थिर रूप ग्रहण किये। बौद्धों ने ब्राह्मणों को उखाड़ने के लिये अनेक प्रयत्नों से श्रम किया किंतु वे असफल रहे।

हिमालय की जातियों से संबंध होने के कारण इस समय भारतीय इतिहास में एक ऐसा अद्भुत दृश्य दिखाई देता है, जिसे आज तक इतिहासकारों ने कोई महत्त्व नहीं दिया।

(संधि युग)

६०० ई० सन से ११०० ई० सन् का समय प्रायः शांति का युग है। इस समय कोई विशेष आक्रमणकारी नहीं दिखाई देता। समस्त भूप्रदेश छोटे-छोटे सामंतों के हाथ में बँट गया। इस युग में यक्ष-प्रभाव पूरे वेग से हिमालय की ओर से पड़ा और आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर स्थित योग तथा उपासना ने अपने आस्तिक और नास्तिक रूप से उसका हाथ पकड़ लिया और समस्त आर्य-चिंतन को उसने ऐसा मोड़ दिया। सौर, गाणपत्य, चीनाचार, वैष्णव, शैव,योग, तप, जैन, बौद्ध इत्यादि सब ही वज्रयान के आधारों से आहत हो गए और इसी पृथ्वी की प्राचीन महामाई, स्त्री-शक्ति अब के वेग से लौटकर आई और बाहर से आई जातियों के सम्मिश्रण से जो उसे बल मिला, वह ब्राह्मण समाज को खोदने लगी। प्राचीन आर्येतर धर्मों के प्रभाव से वह व्यक्तिवाद की ओर अग्रसर होने लगी, और यक्ष-प्रभाव ने समस्त चिंतन को 'युगनद्धावस्था' में बाँध दिया। जर्जर सामंतवादी ढांचा चरमराने लगा और निम्न जातियों की उच्छृंखलता बढ़ चली। उस समय भारतीय इतिहास में दो महान् व्यक्ति दिखाई देते हैं। एक शंकराचार्य जिसने ब्राह्मणवाद की पुनः-स्थापना की और बौद्धमत के चिंतन का सार खींच लिया तथा सामंतवाद की घोर उपेक्षा, सांसारिकता की घोर उपेक्षा करके, उसको पनपने के लिये छोड़ दिया; दूसरा गोरखनाथ जिसने आर्येतर धर्मों से यक्षवाद को फटककर फिर से सबका परिमार्जन किया और ब्राह्मणवाद का विरोध करते हुए भी अनजाने ही उसे अधिक शक्ति दे दी। ब्राह्मणों ने राजपूत जातियों को स्वीकृत किया और अपने लिये अनुयायी बना लिया। ब्राह्मणवाद एकदम संकुचित होने लगा; भारतीय समाज की गतिशीलता नष्ट हो गई।

इसे हम भारतीय इतिहास में मध्ययुग का संधिकाल कह सकते हैं। यह निम्न जातियों तथा ब्राह्मण विरोधी दलों का एक प्रचण्ड विकंपन था। यही सिद्ध-सामंत-नाथ युग है।

(उत्तर मध्यकाल)

इस समय इस्लाम का वेग से प्रसार हो रहा था। उत्तर में ईरान, दक्षिण में समुद्री व्यापार, सब भारतीयता से छूटकर अरब प्रभाव के हाथ में चला गया। इस युग को मुस्लिम शासन युग कहना ही ठीक है। यह हमारे भारतीय मध्ययुग का उत्तरकाल है। उत्पादन के साधनों में कोई परिवर्तन नहीं आया। युद्ध-प्रणाली में अवश्य परिवर्तन आ गया। सामंतीय फूट से इस्लाम विजयी हुआ। सिंध, उत्तर-पश्चिमी पंजाब, काश्मीर, बंगाल, आसाम में जन-समूहों का मत-परिवर्तन हुआ। यह लोग बौद्ध प्रभाव में थे, या उन आर्येतर विश्वासों को लिये थे जो ब्राह्मण समाज के विरुद्ध था। ब्राह्मण प्रभाव में आई राजपूत जातियों ने घोर संघर्ष किया। महाराणा प्रताप ने प्राण दे दिए, किंतु इस्लाम भी क्रान्ति करने नहीं आया था, शासन करने आया था। निम्न जातियों ने जातिभेद का बंधन तोड़ने का घोर प्रयत्न किया क्योंकि इन वंशीय (Dynastic) युद्धों से चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम

निम्न जातियाँ मनुष्यत्व तक का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकी थीं। शासन करने के लिए मुसलमान शासकों ने यहाँ के उच्चवर्गीय सत्ताधारियों से समझौता कर लिया और अपमान की उस घूँट को चुपचाप पी गए जिसमें उन्हें अछूत ही रखा गया। संतकालीन विद्रोह अपनी एकांत व्यक्तिवादी साधना के कारण रहस्य की उस खोज में कीमियागरी में मिल गया जिसने सामाजिकता को छोड़ दिया। उच्च वर्गों ने अपने नियम और कड़े कर दिए। ज़रा भी ढील न दी। अन्यथा मुसलमानों का बराबरी का नारा उनकी जड़ें खोद देता। तुलसी दास प्रतिक्रिया बनकर आए। उन्होंने उच्चवर्गों का नेतृत्व किया। योगि परम्परा फेंक दी गई जिसने समानता का प्रयत्न किया। ब्राह्मण दृष्टिकोण से यह भाष्य युग है। कहीं कुछ प्राचीन लुप्त न हो जाय, यह मोह जकड़ने लगा। जिस भारत-भूमि में हज़ार वर्ष तक अवतार हुए वह अब हज़ार वर्ष के लिये भक्तभूमि बन गई। जिस मगध ने हज़ार वर्ष आर्य विरोध किया, गणों को जीवित रखा, वह हज़ार वर्ष साम्राज्यों का केन्द्र रहा। पर अब वह एक हज़ार वर्ष तक मुगलों की सराय-मात्र बनकर पड़ा था। खिलजी, गुलाम, तुगलक, लोदी, मुगल, सब एक-एक कर गुज़र गए। यदि मुसलमान अपना अलग अस्तित्व न रखते तो वे यहाँ लुप्त हो जाते। उनका शासन नहीं रहता। दोनों धर्मों के उच्चवर्गों ने अपने-अपने जनसमाज को कठिन बन्धनों में जकड़कर प्राचीनता के मोह की ओर लौटाया। अन्यथा उनके स्वार्थ बचना असंभव था। इस समय यूरोप से अनेक व्यापारी आए। भारत में जाट, सिख, मराठा, राजपूत आदि जातियों ने उठकर मुगल साम्राज्य को तोड़ दिया और भारत परस्पर लड़ते सामंतों के हाथ निर्बल हो गया। उच्च समाज पर विलासिता और जनसमाज पर दरिद्रता छा गई। विदेशी व्यापारियों ने, जो मसाले ढूँढ़ने आए थे, यहाँ साम्राज्य बनाना प्रारंभ किया।

यहाँ हमारे भारतीय मध्ययुग के उत्तर काल का अंत हुआ। ११०० ई० से १८५७ ई० तक इस युग ने भारत को दो दलों में बाँट दिया—हिन्दू और मुसलमान। दूसरी ओर हिंदू समाज अपने आपसी विरोधों के कारण भीतर ही भीतर रूढ़ियों की मार खाकर जर्जर हो गया था। उसकी शक्ति नष्ट हो चुकी थी। विदेशी व्यापारियों का खेल बहुत कम लोग समझ सके थे।

(आधुनिक काल)

१८५७ ई० से भारतीय इतिहास का आधुनिक काल प्रारम्भ होता है क्योंकि यहाँ अभी तक केवल जातीय या धार्मिक परिवर्त्तन होता था, क्योंकि केवल व्यापार के संतुलन में फर्क आता था (Difference in the balance of Trade) वहाँ हठात् उत्पादन के साधनों में परिवर्त्तन आ गया। आर्य जब से लोहा लाये तब से अब तक कोई भेद नहीं आया था। अब मशीनों ने जीवन को बदल दिया। इसमें दो विरोध उत्पन्न हुए।

(अंग्रेज़ी शासन युग)

(१) पूंजीवाद ने सामंती ढांचा तोड़ दिया, अपने लाभ के लिये और वह इतिहास को आगे बढ़ा ले गया, उन्नति की ओर।

(२) किन्तु विदेशी जाति के लोगों का शासन होने से उन्होंने यहाँ के विरोध को दाबा, यहाँ के सामंतों से समझौता करके, अपने लाभ के लिये और इससे गति रुक गई, अवनति की ओर।

शासन के लिए अंग्रेज़ों ने, जाति-भेद, धर्म-भेद को खूब उकसाया।

शीघ्र ही भारतीयों में पुनर्जागरण हुआ। भारतीय पूंजीवाद उठने लगा। आंदोलन चलने लगे। इस समय हमें भारतीय चिंतन के तीन रूप मुखर होते हुए दिखाई देते हैं। एक, रवि ठाकुर का राज कवित्व, भक्ति प्रवणता और सरसता। दूसरा, योगी अरविन्द का राजयोग और व्यक्तिवाद। तीसरा, गांधी का कर्मवाद, ईश्वरवाद, और अहिंसा।

निस्संदेह गांधी का भारतीय इतिहास में अमर स्थान है। यह संतकालीन परम्परा का पश्चिमीय जागरूक स्वरूप था जो साम्राज्य को तुच्छ समझता था, किन्तु जिसमें समाज की बुराइयों के प्रति क्षोभ होते हुए भी वर्गहीन समाज का कल्पनाचित्र भी न था। सामाजिकता का महान् पक्ष होते हुए भी व्यक्ति का चरमोन्नति का प्रयत्न मशीन की उन्नति को संदेह से देखता था, और इससे विरोधाभास होना आवश्यक था।

संसार में समाजवाद की दुंदुभी बजने लगी थी। रूस के नये समाज से संसार के दलितवर्ग प्रभावित थे। इस प्रकार दूसरे संसारव्यापी युद्ध के पश्चात् भारत का पूंजीवाद काफी सशक्त हो गया और अंग्रेज़ों ने इस देश को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभाजित कर दिया। और सत्ता देकर चले गए।

(पूंजीवादी युग)

सन् १९४७ से हमारा पूंजीवादी युग प्रारम्भ होता है। अंग्रेज शासक रूप से चला गया, किंतु आर्थिक शक्ति बनी रही तथा पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में जनता धर्मानुसार बँटने लगी और पंजाब में वह भीषण नर-संहार हुआ जिसकी तुलना के लिए इतिहास में घटनाओं का मिलना कठिन है। उसी समय उग्र प्राचीनतावाद के हिंदू स्वरूप ने गांधी की हत्या की, क्योंकि जिस प्रकार ब्राह्मणवाद संतकालीन सामाजिक समानता को सह सकने में असमर्थ था, आज पूंजीवाद भी उसी दार्शनिकता को चाहता है जो प्राचीन कर्मवाद को लाकर स्थापित कर सके। इस प्रकार हमारा आधुनिक काल दो भागों में विभाजित हो सकता है—

(१) अंग्रेज़ी शासन युग—पूंजीवाद का उदय तथा विस्तार। स्वातंत्र्य-संग्राम। सन् १८५७ ई० से १९४७ ई० तक।

(२) भारतीय पूंजीवादी युग—१९४७ ई० · · · · ·।

परिशिष्ट १

शबर

ग्वालियर के दक्षिण-पश्चिम, नारवार तथा दक्षिण राजपूताना में सूरी जाति शाबर जाति की वंशज है। शबर, सौर, सुइर, शबरुल इत्यादि नामों से शबर जाति अब दमोह, सागर, सिंहभूमि, उड़ीसा, छोटा नागपुर, गंजम, विज़गापट्टम के जंगली इलाकों में रहती है।[1] गाजीपुर और संभलपुर की रत्नों की खानों के पास एक समय शबर रहते थे।[2]

पर्ण शबर अब पान कहलाते हैं। वे निम्न जाति के माने जाते ह। उड़ीसा और पूर्वी सरकारों में रहते हैं। मध्यप्रांत के चांदा जिले में इनकी औरतें कपड़े नहीं पहनतीं, कमर में रस्सी बाँध कर आगे-पीछे पत्ते लटका लेती हैं। उड़ीसा तथा कोल प्रांतों के बारे में भी यही कहा जाता है।[3]

---

१. द वाइल्ड ट्राइब्स आफ़ एन्शेन्ट इंडिया पृ० ४२.

२. वही पृ० ४२.

३. वही प० ४३.

परिशिष्ट २

यक्ष

किरात दक्षिण हिमालय में अब किराति या किरान्ती कहलाते ह। नेपाल की ददु-कोसी और करकी नामक नदियों के बीच किरात देश है। अब खंभू, लिंबू और याखा (यक्ष!) जातियाँ इन्हीं में परिगणित होती हैं। दनौर, हयु, यामि जातियाँ भी किरान्ती बनती हैं यद्यपि खंभू, लिंबू और याखा अपने को ऊँचा समझकर इससे इन्कार करते हैं।[1]

संभवतः याखा जैसा ही प्राचीनकाल में भी कोई एक शब्द रहा हो, जिसका संस्कृत रूप यक्ष बनकर उपस्थित है।

---

[1] द वाइल्ड ट्राइब्स आफ एन्शेंट इंडिया पृ० २२.

परिशिष्ट ३

जुलाई १९४९ ई० की जनवाणी में प्रभाकर माचवे का 'भारतीय संस्कृति पर सुमेरियन संस्कृति का प्रभाव' नामक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें जो इतिहास का काल-विभाजन है वह प्रायः हमारे काल-विभाजन से साम्य रखता है। माचवे जी ने भारतीय इतिहास को एक संक्षिप्त दृष्टि से देखा है। मूलतः उनके हमारे दृष्टिकोण में कुछ साम्य है जो उनके लेख से प्रगट होता है। हमने अपने इतिहास में भारत पर अधिक महत्त्व दिया है। अतः उनका लेख यहाँ उद्धृत करते हैं। कुछ बातें इस लेख में महत्त्वपूर्ण हैं जो परस्पर के सामंजस्य और समानता को प्रगट करती हैं।

दजला और फ़रात नदियों के बीच का जो प्रदेश आज मेसोपोटामिया नाम से विख्यात है, वह एक समय बहुत बड़ी सभ्यता का केन्द्र था। रिख् नामक जर्मन, लार्ड नामक अंग्रेज़ और बोत्ता नामक फ्रांसीसी भूगर्भशास्त्रज्ञ तथा पुरातत्त्व-संशोधकों ने इस प्रदेश की ईंटों पर अंकित चित्र-लिपि से जो पता लगाया है उसके अनुसार ईसा पूर्व ४००० से ३००० तक इस प्रदेश में खाल्डिया जाति का एक बहुत बलाढ्य साम्राज्य था। बाबिलोन नगर के हम्मुरब्बी ने एक नीति-नियमों की 'स्मृति' बनायी थी (२१०० ईसा पूर्व)। इस जाति की सभ्यता का भारत की आदिम सभ्यता से बहुत साम्य है। वेदों में १०५ स्थान-पर 'असुर' शब्द का प्रयोग आया है जिसमें ९५ स्थानों में वह जातिवाचक और अच्छे अर्थों में है। ईशावास्योपनिषद् में 'असुर्या' नामक प्रदेश का भी उल्लेख है। असीरिया या सिरिआ का ही यह एकरूप है।

किंग् नामक लेखक ने 'बाबिलोन् का धर्म और पुराण' नामक ग्रंथ में सुमेरी या असुर लोगों के धार्मिक मतों का वर्णन किया है—'उनके देवता विशेष रूप, सगुण, मानव-देहधारी और प्राकृत हैं, परंतु दिखायी नहीं देते, केवल सपनों में आते हैं। केवल देह-दृष्टि से नहीं, परंतु स्वभाव से भी वे मनुष्यों के समान हैं। वे इस संसार में आकर युद्ध, प्रेम आदि मानवोचित व्यवहार करते हैं। उनमें अगाध, रहस्यमय शक्ति है। सूर्य, चंद्र, वायु, पर्जन्य सब के वे अधिष्ठाता हैं। विश्व के तीन भाग हैं—स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल। स्वर्ग का राजा अनु, पृथ्वी का बेल और पाताल का इआ। इस त्रिमूर्ति के बाद सिन् (चाँद), शम्शू (सूर्य), रमान् (वरुण), मर्डुक (इंद्र) आदि देवताओं का माहात्म्य है। मर्डुक का सबसे बड़ा काम है तैमात का वध। तैमात सात सिरों वाला साँप है; इसने विश्व में जल और प्रकाश को अवरुद्ध कर दिया था। सृष्टि के आरंभ में सारी दुनियाँ जलमय थी और तमावृत थी। मर्डुक-नब ने अप्सु-तैमात का नाश किया। फिर पृथ्वी को अंडार्ध आकार मिला। पृथ्वी के ऊपर स्वर्ग था वह भी अंडार्ध की भाँति। सबेरे रोज शम्श (सूर्य)

उदयाचल पर अपना दर्शन स्वर्गीय जल में से ऊपर उठकर दुनियाँ को देते हैं। संध्या समय पश्चिम के दरवाजे से वे अंतर्धान हो जाते हैं। सूर्य के साथ उनकी पत्नी 'ऐ' है। पाताल और स्वर्ग में सात-सात लोक हैं। देवी इश्तार जब अपने चंडी रूप में होती है तो उसे अनुनितु कहते हैं; वत्सल रूप में नना कहा जाता है। वह आदिमाता है। इन सुमेरियों का एक महापुराण है जिसका नाम है गिल्गिमेश जो उसका नायक है। इसका लड़का उरुआस्व (हर्यश्वः) है जिसने राजवंश आरंभ किया। इसकी साहस-कथाएँ बहुत कुछ हरक्यूलिस से मिलती-जुलती हैं।'

सुमेरी लोगों के अक्षरों के लिये चिह्न जो प्रयुक्त हैं उनमें गाय और बैल के चित्र बहुत अधिक हैं। उसी प्रकार मत्स्याकृतियाँ भी बहुत हैं। हमारे मत्स्यावतार के समान 'सुखा'—उड़ती हुई मछली उनके एक देवता का नाम है। सुमेरिया और बाबिलोन में फल-ज्योतिष को बहुत महत्व दिया जाता था। वहाँ के राजा ३८०० ईसा पूर्व तारों का वेध लेकर कुंडली द्वारा ज्योतिष बतलाने वालों को बहुत इनाम देते थे। इनकी मास-गणना चांद्र थी। प्रति सप्ताह के अंतिम दिन को 'सब्बाथ' कहा जाता था। लोकमान्य तिलक ने वैदिक संस्कृत में सुमेरी भाषा के कितने ही शब्द कैसे आ गये हैं, यह सप्रमाण सिद्ध किया है। यथा, तैमात, अप्सु, सिनीवाली, अलिगी, विलिगी, उरुगूल आदि। न० चिं० केलकर के तिलक चरित्र में पृ० ६२९ पर लोकमान्य तिलक द्वारा वसंत संपात के गणित द्वारा वेदकाल निर्णय ४५०० ईसा पूर्व निश्चित किया गया है। यह वसंत संपात सुमेरी साहित्य में दंत-कथा के रूप में वर्णित है। गिल्गिमेश अपना सुनहला मेंढा स्वर्ग से लौटाने जाता है। तब उसे वह मेंढा एक स्त्री के पास बैठे पुरुष के पास मिला; बाद में राह में एक भयानक बैल मिला जिसे वह मारता है। यह मिथुन और वृषभ राशि का प्रतीक-उल्लेख है। १९०८ में तुर्की के पूरब में कमेडेशिया के उत्खनन से तथा १९२६ में हरप्पा-मोहेंजोदारो के उत्खननों से इस भारतीय सुमेरी संस्कृति-साम्य पर विशेष प्रकाश प्राप्त हुआ; तांबे के हथियार, रंगीन मणि, औजारों को धार देने वाले पत्थर, वास्तु तथा विभिन्न कलाओं की साधन-सामग्री दोनों स्थानों में एक-सी मिली है। एल० ए० वैडेल् ने अपने 'इंडो-सुमेरियन सील्स डिसाइफर्ड' ग्रंथ में दोनों लिपियों तथा शिलालेखों में भी साम्य दिखाया है। यथा, सुमेरी भाषा में 'गु' शब्द गौ तथा बैल दोनों के लिये एक-सा प्रयुक्त होता है; 'बसति' का अर्थ बस्ती या गाँव है। राजाओं और ऋषियों के नाम भी एक-से हैं, जैसे सगर, सुषेण, तक्ष, भृगु, सविता आदि। वैडेल अंत में कहते हैं कि—It must also be gratifying to the modern Hindus to find that the Vedic and Epic tradition which their ancestors preserved and transmitted down through the centuries, and in which they have steadfastly believed is now substantially proved true and has become a chief means of identifying the Aryan and

Sumerian traditions. यह कहना कठिन है कि सुमेरी संस्कृति की एक शाखा के रूप में भारतीय वैदिक संस्कृति बढ़ी, परंतु दोनों में समानता बहुत है यह इंद्र तथा मर्डुक की कथाओं के साम्य से स्पष्ट लक्षित होगा।

सुमेरी-कथा इस प्रकार है—"मर्डुक इआ नामक पृथ्वी देवता का पुत्र था। मर्डुक ने फिर पृथ्वी, उस पर वनस्पति, चतुष्पाद, सरीसृप और मनुष्यों को जन्म दिया। परंतु मर्डुक जन्म से पूर्व न स्वर्ग का पता था न पृथ्वी का। सर्वत्र अँधेरा और अराजक राज करता था। उस तमसावृत जल संसार में तैमात नामक महाभयानक सर्पराज राज करता था जिसकी लंबाई ५० कस्बू थी (कस्बू=दो कोस के करीब) और चौड़ाई एक कस्बू। वह क्रोध से पानी में अपनी पूँछ पटक रहा था। सब लोग इस सर्प से भयजात थे। खुद अनुदेव तैमात के आगे नहीं जा सकते थे और नुदिम्मद देव भी डर से भाग गये। तब सब देवता शोकमग्न हो गये और कहने लगे—'हे मर्डुक, तू हमें बचा! हम तुम्हें सारी दुनियाँ का साम्राज्य देते हैं। सब देवताओं का तू राजा है।' तब मर्डुक धनुष-बाण, भाला और वज्र लेकर लड़ने के लिए तैयार हो गया। मर्डुक अपने सर्वोत्तम रथ पर आरूढ़ हुआ, जिसमें चार अश्व जुते थे। उसने अपने साथ में सात वायु ले लिये। ऐसी तैयारी के साथ जब मर्डुक चला तो उसे तैमात और अप्सु पृथ्वी के नीचे के प्रलयकालीन जल में दिखायी दिये। दोनों शत्रु आमने-सामने आते ही तैमात ने क्रोध से गर्जना की, मानों उसे कोई भूत सवार हो। उसने अपना मंत्र इंद्र पर फेंका और आखिर उसे युद्ध में मर्डुक ने अपने साथ के वायु तैमात के मुँह में भर दिये जिससे तैमात तंग हो गया और अपने वज्र से मर्डुक ने तैमात का पेट विदीर्ण कर डाला और उसका शरीर फेंक कर वह उस पर जा खड़ा हुआ। तैमात के शरीर के पिछले हिस्से पर खड़े रहकर अपनी गदा से उसने तैमात का सिर तोड़ा। फिर एक मछली की भाँति उसे चीरकर, उसमें जो पानी अवरुद्ध था उसे मुक्त किया। उसके साथ ही साथ उसने प्रकाश को भी मुक्त कर दिया। तत्पश्चात् मर्डुक ने पुनः सारी सृष्टि की प्राणप्रतिष्ठापना की। उसने स्वर्ग, पृथ्वी, देवताओं के स्थान, सूर्य, चंद्र, ग्रह गोल बनाये। सूर्य के लिए दो दरवाजे भी बनाये। इस प्रकार तैमात को मारकर मर्डुक के सब कुछ स्थिरप्राय बनाने से सब देवताओं ने उसकी स्तुति की। देवों की स्तुति से संतुष्ट होकर मर्डुक भक्तों को आशीर्वाद देता है कि—'देवताओं के लिए सदा हृदय में शुद्ध भाव रखो। रोज सवेरे उठकर उनकी स्तुति किया करो। जो देवताओं से डरते हैं, उन्हें दीर्घायु प्राप्त होती है'"।

अब इसकी तुलना वैदिक कथा से कीजिए—"उमा पितराभह्यत्र जायत द्यावापृथिवी। समानो वां जनिता भ्रातरा युवम्॥ इंद्रः जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। इंद्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पती रसनोदरिक्षम्। गिरीरजां अपः स्वर्यृ षत्वता। तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रे। अप्रकेतं सलिलं सर्वदा इदम्॥ कस्मिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपः। यत्र देवा समगच्छन्त विश्वे॥ वृत्रस्यनिण्यं विचरन्ति आपः दीर्घं तमः आशयदिंद्रशत्रुः॥ समप्सुजित् इंद्र सत्यते। अहिं यद अपो वव्रिवांसम् जघान। अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन। अभिप्रदर्द्रुजनयो॥ एवा-

त्वामिंद्र वज्रिन् विश्वे देवास सुहवास ऊमाः । महामुने रोदसी वृद्धभृष्वं निरेकपि दृणते वृत्रहत्ये ।।"· · · आदि आदि । इंद्रवृत्र की लड़ाई में न केवल अहि का वर्णन एक-सा है, इंद्र को 'अप्सु-जित' भी कहा गया है ; परंतु रथ का वर्णन, वज्र का वर्णन आदि कई बातें एक-सी हैं । सहस्रधार वज्र से वृत्र का सिर तोड़ना, इंद्र के साथ मरुत्सखा का रहना । इंद्र ने वृत्र को मारकर अवरुद्ध जलप्रवाह मुक्त किये और वे इस तरह बह निकले ज्यों बछड़े अपने रस्सों से छूटकर गौओं की ओर भागते हैं (वाश्रा इव धेनवः स्यंदमानाः) सूर्य, उषा, शुक्रतारा, छः दिशाओं की इंद्र द्वारा उत्पत्ति तथा अन्त में देवताओं द्वारा स्तुति भी करीब-करीब ज्यों की त्यों है ।"

अब इस तैमात-वृत्र साम्य पर विचार करें । यास्क ने निरुक्त में वृत्र की परिभाषा यों दी है---नैरुक्तानुसार वृत्र मेघ है, ऐतिहासिक इसे 'असुर' मानते हैं, मंत्र ब्राह्मण के अनुसार वह एक महासर्प है, आकाशस्थ जल और विद्युल्लता का समन्वय-सा इस रूपक द्वारा वर्णित है । लोकमान्य तिलक ने अपने 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज़' में 'कैप्टिव वाटर्स' प्रकरण में इसकी चर्चा की है । उनके मत से यह उत्तर ध्रुव प्रदेश के भौगोलिक चमत्कार छः मासे दिन और छः मासी रात का वर्णन है । महाभारत में इस वृत्र-हनन को बहुत महत्त्व देकर कहा गया है कि 'इंद्रो वृत्रवधेनैव महेंन्द्रःसमपद्यत्' ।

इस कथा के समान ही सुमेरी लोगों का आदिकाव्य 'गिल्गिमेश' (रचनाकाल ईसा पूर्व ४००० वर्ष) बहुत कुछ रामायण से मिलता-जुलता है । गिल्गिमेश की कथा में यों है---सुमरिया देश में हरेक शहर में एक रात को पहरेदारों को एक बच्चा पड़ा हुआ मिला । उसे उन्होंने उठाकर फेंक दिया । एक गरुड़ ने उसे उठा लिया और बड़ा किया । वही गिल्गिमेश परम वीर बना । उसने हरेक शहर का प्रतिशोध लिया । तीन बरस तक यह शहर बंद कर के जलाया गया, उस पर अत्याचार किये । इस पर हरेक पर गिल्गिमेश राज करने लगा । प्रजा उससे दुखित होकर स्वर्ग के देवताओं से मुक्ति की याचना करने लगी । अरुरु देवता ने प्रसन्न होकर गिल्गिमेश का प्रतिद्वंद्वी निर्माण करने का अभिवचन दिया । हाथ धोकर उसके पास जो ईंट का टुकड़ा था उसे तोड़ कर फेंक दिया । उसमें से इआ-बनी नामक विचित्र पुरुष जन्मा । मस्तक और कमर तक वह मनुष्य था, नीचे का भाग पशु के समान था । गिल्गिमेश को पता लगते ही उसने अपने शिकारी सैदु को उसे पकड़ने भेजा । हारकर, भीतिग्रस्त होकर वह लौट आया । उसने उस इआ-बनी को पकड़ने के जितने उपाय किये सब व्यर्थ रहे ! अंत में इश्तर देवी के मंदिर के पास तक एक योगिनी उखात नाम की रहती थी । उसे सैदु जंगल में ले गया । विवस्त्र होकर वह इआ-बनी जहाँ पानी पीने आता, वहाँ नहाने लगी । इआ-बनी प्रसन्न हो गया । छः दिन और रात उसने स्त्री धर्म से उसे प्रमुदित किया और उसे गिल्गिमेश के राजमहल में वह ले आई । यह कथा भाग वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के दशम सर्ग में वर्णित पुंजकामेष्ठियज्ञ प्रसंग में ऋष्यशृंग-कथा जैसा है ।

इआ-बनी गिल्गिमेश की राजधानी में आने पर पहले तो बाहुयुद्ध करने की उसकी इच्छा थी, परन्तु दोनों को आकाशवाणी ने रोक दिया। अतः वे मित्र बन गये। गिल्गिमेश तथा यह अर्ध-नर इआ-बनी खाँ बाबा नामक एक भयानक राक्षस से युद्ध करने गये। उसे जीतकर लौटे और जब सुन्दर वस्त्र पहनकर गिल्गिमेश दरबार में पहुँचा तो इश्तर उस पर मोहित हो गई। गिल्गिमेश उससे शादी करने को राज़ी नहीं था। इस पर रूठकर इश्तर ऊपर अपने पिता अनुदेव के पास पहुँची। पिता भी यह विवाह चाहते नहीं थे। बहुतेरा लड़की को समझाया। वह नहीं मानी, तब एक बड़ा-सा वृषभ गिल्गिमेश पर चढ़ाई करने भेज दिया। उसे भी इआ-बनी ने हरा दिया। इआ-बनी उस बैल के सींग काटकर लाया और शम्शू या सूर्यदेव को अर्पित किया। विजयोत्सव को मित्रों को बड़ा भोज दिया। इश्तर देवी जल-भुनकर रह गयी। उसने इआ-बनी को मार डाला। एक युद्ध में वह जख्मी हुआ, बारह दिन तक बीमार रहा, अंततः मर गया। गिल्गिमेश प्रिय मित्र के विरह से बहुत व्याकुल हो गया। वह भी सोचने लगा कि कहीं मैं न मर जाऊँ। अतः अपने पितर पीर नापिश्तिमं को बुलाकर उसने मृत्यु से कैसे बचें यह पूछने का इरादा कर वह चला। पर्वत की भयानक गुफा से उसकी राह थी, बहुत से सिंह वहाँ मिले। सिन् या चन्द्र की मदद से बचकर वह आगे चला तो पर्वत में एक सुरंग मिली जिसके मुँह पर एक भयानक बिच्छू था। उससे पार जाकर मृत्युसरिता 'सबितु थी' इसे पार करे तब पीर नापिश्तम् के पास पहुँचे! इस नदी ने कहा––यह भाग यम-नचिकेता संवाद जैसा है––अभी से अमरता की खोज न कर। परंतु वह नहीं माना। अंततः आराद-इआ नामक यक्ष नौका ले आया और उसमें बैठकर वह मृत्यु सरिता पार कर सुख प्रदेश में जा पहुँचा। वहाँ उसके पितर मिल गये। इत्यादि.. इत्यादि। यह रोचक कथाभाग आगे चलकर रामायण के युद्धकांड के १२८वें सर्ग से बहुत कुछ समानता रखता है।

गिल्गिमेश काव्य के अन्त में पीर नापिश्तोम् महाप्रलय की कथा सुनाते हैं जो शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय के पहिले ब्राह्मण में वर्णित मनु की जलप्रलय वाली कथा से बहुत साम्य रखती है। इसका विस्तृत वर्णन दो वर्ष पूर्व 'आगामी कल' मासिक पत्र में 'कामायनी' संबंधी मैंने जो लेखमाला लिखी थी उसमें कर चुका हूँ। जलप्रलय की सुमेरी और भारतीय कथा में बहुत ही अधिक साम्य है। अंतर है तो केवल इतना-सा कि वहाँ इआ देवता नापिश्तोम् को बाढ़ की सूचना देती है, यहाँ महामत्स्य! वहाँ अंत में उत्पन्न नारी पीर नापिश्तोम् की पत्नी है, यहाँ मनु की दुहिता मात्र। परंतु इआ देवता भी मत्स्याकृति ही थी।

सुमेरी और भारतीय युग तथा काल-गणना भी एक-सी है। हमारे कृत-त्रेता-द्वापर कलि के समान उनके भी युग हैं। उनके राशिचक्र में तीन चन्द्रग्रह हैं, हमारे सत्ताईस। उनका विभाजन बारह राशि-स्थानों में किया गया है। उनका वर्षारंभ उत्तरायण से होता है। उनमें दस संख्या को 'पुर' कहते हैं। छः पुर साठ। सुमेरी भाषा में साठ को सास् कहते थे। सास्×पुर=नेर ···इत्यादि गणनानुसार उनका युग ४,३२,००० वर्ष का होता है।

हमारा युग भी ठीक उतने ही वर्षों का माना गया है। ब्राउन कहते हैं कि––'बाबिलोनियन और भारतीय कालगणना-पद्धति बिलकुल एक ही मल से निकली जान पड़ती है। दोनों का आधारभूत सिद्धांत एक ही है।' भारतीय तथा सुमेरी राशियों के नाम-वर्णन में बहुत साम्य है––

भारतीय	सुमेरी
मेष	दूत
वृषभ	स्वर्गीय बैल
मिथुन	जुड़वां बच्चे
कर्क	केंकड़ा
सिंह	भयानक शिकारी कुत्ता
कन्या	हाथ में शस्यवालि लिये स्त्री
तुला	तराज
वृश्चिक	तममय बिच्छू
धेनु	अर्धाश्व अर्धनर
मकर	अर्धमत्स्य-अर्ध-बकरी
कुंभ	कुंभधारक पुरुष
मीन	नहर में दो मछली

सुमेरी ज्योतिष में ग्रहों के रंग यों निश्चित किये गये थे––सूर्य––सुनहला; चंद्र––रुपहला; मंगल––लाल; बुध––नीला; गुरु––नारंगी; शुक्र––पीत; शनि––श्याम। बृहज्जातकमें ऐसे ही रंग दिये गये हैं :––

रक्तश्यामो भास्करो गौर इंदुः ।
नात्युच्यांगो रक्तगौरश्च वक्रः ॥
दूर्वाश्यामोज्ञो गुरुगौरिगाजः ।
शाभः शुक्रो भास्करिः कृष्ण देहः ॥

भारतीय और सुमेरी देवपरम्परा भी एक-सी है। हमारा वरुण उनकी इआ या बेल के समान है। सूर्य और शम्शू का वर्णन एक-सा है––वह स्थिरचर का आत्मा, सबका प्राणदाता, सबका प्रहरी और निरीक्षक, नियम से चलने वाला और आकाश, पृथ्वी, जल से परे की शक्ति है! सुमेरी भाषा में भी सूर्य को 'मित्र' कहते हैं। उनकी इश्तर देवी हमारी उषा जैसी है। हमारे इंद्र की इंद्राणी हैं, वैसे सुमेरी मर्डुक की पत्नी है रसर्पनिता। जैसे सूर्य की सूर्या वैसे शम्शू की 'ऐ'। यम की यमी वैसे नेरगाल की लाज। 'ह्यु' देव हमारे गरुड़पक्षी के समान है। महाभारत के सुपर्ण गरुड़ की कथा से इसका बड़ा साम्य है। देवी-देवताओं के समान यक्ष-किन्नर-भत-प्रेत-पिशाच भी भारतीय-सुमेरी कथाओं में बहुत कुछ एक-से

हैं। मरी हुई सद्यकाता का पिशाच बहुत भयानक माना जाता है। उल्लू अशुभ शब्दकारी पक्षी है। सुमेरी और भारतीय मृत्युत्तर स्थिति की कल्पना भी एक-सी है।

भारतीय सुमेरी मुखाकृतियों का शिल्प तथा चित्रकला की सहायता से अध्ययन करने पर दोनों में बहुत कुछ समानता प्राप्त हुई है। श्वेतवर्णीय आर्य पुरुषों की ऊँचाई, नासाकृति तथा केश-प्रकारों को देखते हुए दोनों जातियों में कोई वैधर्म्य नहीं दिखाई देता। दोनों के आचार-विचार, वेश-पद्धति न्याय-नीति-नियम, कलाज्ञान, आख्यायिका, वंश-परम्परा आदि में इतनी समानता देखने पर हमें अंततः केवल विद्वान् इतिहास-संशोधकों द्वारा निर्णीत निम्नलिखित काल-गणना ध्यान में रखनी चाहिए। यह अंततः प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कह पाना कठिन है कि भारतीय संस्कृति पर सुमेरियों का प्रभाव पड़ा या एक ही समय दोनों संस्कृतियाँ एक-सी पनपीं। फिर भी यदि आर्यवंश के मानव उत्तरी ध्रुव से, एशिया माइनर होते हुए नीचे भारत में उतरे तो अवश्य दजला-फ़रात प्रदेश वाली संस्कृति वे अपने साथ ले आये थे। आज गांधारपारस्य-संस्कृति से जितना तिरस्कार हिंदू व्यक्त करते हैं वह ऐतिहासिक दृष्टि से अनावश्यक सिद्ध हो जाता है, जबकि मूलतः संस्कृति में साम्य अत्यधिक था। यह ऐतिहासिक कालखंड स्थूलतः यों है :—

सुमेरी

१. सुमेरियन साहित्यकाल (ईसा पूर्व ६०००-३०००)
२. बाबिलोनियन साम्राज्यकाल (ई० पू० ३०००-१७५०)
३. ॲसीरियन प्रभुत्वकाल (ई० पू० १७५०-७००)
४. पारस्य साम्राज्यकाल (ई० पू० ७०० से आगे)

भारतीय

१. ऋग्वेद पूर्वकाल तथा ऋग्वेद काल (ई० पू० ६०००-३०००)
२. यजुर्वेद काल तथा ब्राह्मण ग्रंथ काल (ई० पू० ३०००-१५००)
३. उपनिषत्काल तथा वेदांग काल (ई० पू० १५००-७००)
४. शिशुनागवंशपश्चात् ऐतिह्य काल (ई० पू० ७०० से आगे)

इस लेख में सांस्कृतिक साम्य दिखाया गया है। हमने अपने प्रारंभिक अध्यायों में इसको स्पष्ट किया है। सुमेरी काल विभाजन तुलनीय है। इसे माचवेजी ने स्पष्ट किया है।

---

*इस लेख के लिखने में श्री दाजी नागेश आप्टे की मराठी पुस्तक 'हिंदी-सुमेरी-संस्कृति' की बहुत सी सहायता ली गयी है उसी प्रकार कुछ अंग्रेज़ी पुस्तकों की भी, यथा L. W. King : Babylonian Religion and Mythology और L. A. Wadel : Indo-Sumerian seals deciphered और George-Smith : Gilgimesh.। लेखक इन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता है।

कुछ आधार ग्रन्थ तथा संक्षिप्त संकेत

(शेष का यथास्थान उल्लेख है)

१. अगस्त्य इन तमिल लैण्ड : के. एन. शिवराज पिल्लइ, मद्रास

२. असुर इंडिया : अनंत प्रसाद बनर्जी शास्त्री, पटना; १९२६।

३. अथर्ववेद।

४. अनाल्स आफ़ द भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट।

५. आर्यावर्त्तिक होम एण्ड कैडल आफ़ सप्तसिंधु : एन. बी. पावजी।

६. इंडियन थीइज़्म : निकल मैकनिकल।

इए ७. इन्डियन एन्टिक्वेरी।

इहिक्वा८. इंडियन हिस्टौरिकल क्वार्टर्ली।

इक९. इन्डियन कल्चर।

१०. इन्डो-आर्यन एण्ड हिंदी: सुनीति कुमार चटर्जी; गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी; प्रथम संस्करण; अहमदाबाद १९४२।

११. इन्फ्लुऐन्स आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर : ताराचंद, प्रयाग।

१२. इंट्रोडक्शन टु द पान्चरात्र एण्ड द अहिबुध्न्यसंहिता : एफ. ओटो श्रेडर; आडयार लाइब्रेरी मद्रास एस. १९१६।

१३. इंडियन मिथ एण्ड लिजेण्ड डौनेल्ड : ओ. मैकन्जी लंदन।

१४. ईशोपनिषद।

१५. एनसाइक्लोपीडिया आफ़ रिलीजन एण्ड एथिक्स।

१६. ए ब्रीफ़ हिस्ट्री आफ़ सिविलिज़ेशन : जो. एस. होमलैंड।

१७. ए शौर्ट हिस्टी आफ़ कल्चर : जैकलिन्डसे।

१८. एन आउट लाइन आफ़ द रिलीजस लिटरेचर आफ़ इंडिया : जे. एन. फर्कुहार ऑक्सफोर्ड १९२०।

१९. एन्शेन्ट इंडियन हिस्टौरिकल ट्रेडीशन : एफ. ई. पार्जिटर; ऑक्सफोर्ड १९२२।

२०. ए शौर्ट हिस्ट्री आफ़ द इंडियन पीपुल : ए. सी. मुकर्जी; कलकत्ता १९०४।

२१. ए स्टडी इन हिंदू सोशल पौलिटी : चंद्र चक्रवर्ती; कलकत्ता १९२३।

२२. एन्शेन्ट इंडिया: रैप्सन; लंदन।

२३. ए शार्ट हिस्ट्री आफ़ मिडिवल इंडिया : ईश्वरीप्रसाद प्रयाग; १९३९।

२४. एपिक मायथॉलाजी : ई. वॉशबर्न हॉपकिन्स; ३ बैन्ड; १ हैफ्ट बी. स्ट्रैस्बर्ग; १९१५।

२५. एकादशोपनिषत्संग्रह : सत्यानंद; लाहौर संवत १९२७।

२६. ओल्ड एण्ड न्यू टस्टेमैन्ट्स बायबिल।

२६. ओरिजिन एण्ड स्प्रैड आफ़ द तमिल्स: रामचंद्र दीक्षितार; अड्यार मद्रास.।

२८. ओरीजिन एण्ड अर्ली हिस्ट्री आफ़: शैविज्म आफ़ साउथ इंडिया : सी. वी.

नारायण ऐयर।

२९. ऋग्वेद संहिता।

३०. ऋग्वेदिक इंडिया : १—एस. सी. दास; कलकत्ता १९२१।

३१. कल्याण (पत्रिका) शिवांक, गोरखपुर।

३२. कल्याण—उपनिषदांक।

३३. कल्याण-संक्षिप्त पद्मपुराण।

३४. कठोपनिषद्।

३५. कथा सरित्सागर।

३६. कल्चरल हैरिटेज आफ़ इंडिया—१।

३७. कादम्बरी : बाणभट्ट।

३८. कुमायूं का इतिहास : बद्रीदत्त पाण्डे; अल्मोड़ा, यू. पी. १९३७।

३९. केनोपनिषद।

४०. केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इंडिया भा. १ एन्शेन्ट इंडिया: सं. ई. जे. रैप्सन केम्ब्रिज; १९२२।

४१. क्रोनौलॉजी आफ़ एन्शेन्ट इंडिया : डा०सीतानाथ, प्रधान; कलकत्ता यनिवर्सिटी १९२७।

४२. कौटिल्य : नारायण चंद्र बंदोपाध्याय, कलकत्ता १९२७।

४३. गणेश : संपूर्णानंद, काशी विद्यापीठ, काशी।

४४. गया एण्ड बुद्ध गया, इंडियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट पब्लिकेशन्स। इंडियन हिस्ट्री सीरीज—११. भाग—१. पु. १. बनी माधव बरूआ। दूसरा संस्करण, कलकत्ता १९२४।

४५. गोरखनाथ : रांगेय राघव

४६. घेरण्डसंहिता, सेक्रेड बुक आफ़ द हिंदूज प्रयाग, १९४५।

४७. छांदोग्योपनिषद्।

४८. जनवाणी (पत्रिका)।

जएसोबं ४९. जर्नल आफ़ द एशियाटिक सोसायटी आफ़ बंगाल।

जराएसो ५०. ,, ,, ,, रायल ,, ,, ,, ,, ,, ।

जाबिउरिसो ५१. ,, ,, ,, बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी।

जडिले ५२. ,, ,, ,, डिपार्टमेण्ट आफ़ लेटर्स।

जकेआरइ ५३. ,, ,, ,, के. आर. काम ओरियन्टल इंस्टीट्यूट।

जग्रेइंसो ५४. ,, ,, ,, ग्रेटर इंडिया सोसायटी।

जआंहिरिसो ५५. ,, ,, ,, आंध्र हिस्टौरिकल रिसर्च सोसायटी।

जअओसो ५६. ,, ,, ,, अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी।

जहैआसो ५७. ,, ,, ,, हैदराबाद आर्कियोलौजिकल सोसायटी।

५८. जातक १. २ : भदंत आनंद कौसल्यायन; हिंदी साहित्य सम्मेलन; प्रयाग।
५९. जैनधर्म : कैलाशचन्द्र शास्त्री; भा. दि. जैन संघ मथुरा; २४२४ जैन संवत्।
६०. तथागतगुह्यक–गुह्यसमाज; ५३. गायकवाद ओ. रि. इं. बड़ौदा।
६१. दर्शनानंद उपनिषद् समुच्चय।
६२. द साइनो इंडियन जर्नल, शांतिनिकेतन।
६३. द ओरिजिन एण्ड डैवलपमैण्ट आफ़ द बंगाली लेंग्वेज भा. १ : सुनीतिकुमार चटर्जी कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस; १९२६।
६४. द ऋग्वेद–ए हिस्ट्री शोइंग हाउ द फीनिशियन्स हैड देयर अर्लीयस्ट होम इन इंडिया : राजेश्वर गुप्त; चटगांव; १९०४।
६५. द वाइल्ड ट्राइब्स इन इंडियन हिस्ट्री : डा० बी.ए. सालेतर लाहौर; १९३५।
६६. द बिगिनिंग्स आफ़ साउथ इंडियन हिस्ट्री : एस. कृष्णस्वामी आयंगर, मद्रास; १९१८।
६७. द रिलीजन आफ़ द वेदाज़ : मॉरिस ब्लूमफील्ड; न्यूयार्क; १९०८।
६८. द मोहनजोदडो एण्ड द इन्डस सिविलिजेशन्स १. २. ३.
६९. द डायनैस्टीज़ आफ़ द कलि एज (द पुराण टैक्सट्स आफ़) : एफ़ ई पार्जिटर; औक्सफोर्ड १९१३
७०. द ऋग्वेदिक कल्चर आफ़ द प्रिहिस्टौरिक इन्डस. भा.१. (१९४६ ई.) भा. २. (१९४४ ई.) : स्वामी शंकरानंद; रामकृष्ण वेदांतमठ, कलकत्ता।
७१. द डान आफ़ हिस्ट्री : मायर्स।
७२. दशकुमारचरित् : दण्डी।
७३. द ओरिजन आफ़ द फैमिली।
प्राइवेट प्रौपर्टी एण्ड द स्टेट : एफ. एन्गाल्स; फॉरन लेंग्वेज पब्लिशिंग हाउस, मास्को; १९४८।
७४. द वैशैषिक एफौरिज़म्स आफ़ कणाद : अनु० आर्चीनाल्ड एडवर्ड गफ़, बनारस; लंदन. १८७३।
७५. दीघनिकाय (सुत्तपिटक का) : अनु० रा० सांकृत्यायन जगदीशकाश्यप. महाबोधि सभा. सारनाथ; १८३६ ई०।
७६. न्यू इंडियन एन्टिक्वेरी।
७७. नया समाज (पत्रिका) कलकत्ता।
७८. नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
ना.सं. ७९. नाथसंप्रदाय
ट्रा.एं.इं.८०. ट्राइब्स इन ऐन्शेन्ट इंडिया विमलचरण लॉ बी. ओ. सी. संख्या ४; प्रथम संस्करण; पूना; १९४३।
८१. डेट्स इन एन्शेन्ट इंडियन हिस्ट्री; १९३६; सोमायुजुलू
८२. प्रतीक (पत्रिका) इलाहाबाद।

८३. प्रश्नोपनिषद् ।
८४. पातंजलयोग प्रदीप ।
८५. पारिजात (पत्रिका), पटना ।
८६. पुरश्चर्ण्यार्णव १. २. ३. खेलाडीलाल एण्ड संस, काशी ।
८७. पुरातत्त्व निबंधावली: राहुल सांकृत्यायन; इंडियन प्रेस; प्रयाग ।
८८. पोलिटीकल हिस्ट्री आफ़ एन्शेन्ट इंडिया; चतुर्थ संस्करण : हेमचंद्र राय चौधरी; १९३८; कलकत्ता ।
८९. प्रबंधचिंतामणि मेरुतुंगाचार्य : अनु० ह. प्र. द्विवेदी; १९४०; कलकत्ता ।
प्रिआयर्न ९०. प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविडियन इन इंडिया। सं० पी. सी. बागची; कलकत्ता; १९२९ ।
पञ्चानन ९१. प्रि हिस्टौरिक इंडिया; द्वितीय संस्करण, पञ्चानन मित्र, कलकत्ता. १९२७
९२. प्रि हिस्टौरिक एन्टिक्विटीज आफ़ द आर्यन पीपुल्सओ श्रेडर; अने. एफ. बी. जेवन्स लंदन : १८९०.
९३. प्री हिस्टौरिक एण्ड ऐन्शेन्ट हिंदू सिविलाइज़ेशन: एस. आर.बनर्जी ।
प्रो.औ.कौ. ९३. प्रोसीडिंग्ज़ आफ़ द आल इंडिया ओरियन्टल कांफ्रेंस ।
९४. बृहदारण्यक उपनिषद ।
९५. बुद्धचर्य्या: रा० सांकृत्यायन; प्रथम संस्करण; काशी ।
९६. बुधिस्ट इंडिया राइह्स डेविड्स; लंदन १९१७ ।
९७. बौद्ध दर्शन: बलदेव उपाध्याय, बनारस; १९४६ ।
९८. बौद्ध दर्शन: राहुल सां० किताब महल, इलाहाबाद ।
९९. भगवद्गीता ।
१००. भारतीय प्राचीन लिपिमाला; द्वितीय सं०; रा. बा. पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा । वि. सं. १९७५ (१९१८ ई.) अजमेर ।
१०१. भारतीय संस्कृति और अहिंसा : धर्मानंद कोसांबी; अनु० पं० विश्वनाथ, दामोदर शोलापुरकर; हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई; १९४८ ।
१०२. भारतवर्ष में जातिभेद : क्षितिमोहन सेन ।
१०३. भारतीय दर्शन : बलदेव उपाध्याय, बनारस; १९४५ ।
१०४. भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका : रांगेय राघव ।
१०५. मज्झिम निकाय. (सुत्तपिटक का) अनु० रा० सांकृत्यायन, सारनाथ; १९३३ ।
१०६. महाभारत ।
१०७. महाभारत परिशिष्टांक; इंडियन प्रेस, प्रयाग (हिंदी); १९३६. ।
१०८. महाभारत इं. प्रे. प्रयाग; १९३६ (हिंदी) ।
१०९. मत्स्यपुराण ।
११०. महामाई : भारतीय चिंतन : रांगेय राघव.

१११. मुण्डकोपनिषद् ।

११२. यक्ष : एस. एन. सी० भाग ८०. सं. ६ भा. १, २ आनंद कुमार स्वामी; वाशिंगटन; १९२८।

११३. यजुर्वेद ।

११४. यजुर्वेद भाषा भाष्य १. दयानंद. वि. १९६२ ।

यो.सं.आ.११५. योगि संप्रदायाविष्कृति : योगी चन्द्रनाथ

११६. रघुवंशम् : कालिदास ।

११७. रामायण : वाल्मीकि ।

११८. रामचरितमानस : तुलसीदास ।

११९. रामायण (अध्यात्म रामायण) ।

१२०. रिवीलिंग इंडियाज पास्ट : सं० सर जॉनकमिंग द इंडिया सोसायटी, लंदन, १९३९ ।

१२१. लाइफ़ इन ऐन्शेन्ट इंडिया ऐज डिपेक्टेड इन द जैन कैनन्स : जगदीश चं० जैन; बंबई, १९४७ ।

१२२. लिंगपुराण ।

१२३. विक्रम स्मृति ग्रंथ, ग्वालियर सं. २००१ वि ।

१२४. वेदिक इन्डैक्स : कीथ एण्ड मैक्डौनल; भाग १,२. लंदन आइ.टी.सी. १'

१२५. वैष्णविज़्म शैविज़्म, एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स : सर. आर.जी. भाण्डारकर ३. बैन्ड ६. हैफ्ट स्ट्रैस्बर्ग १९१३ ।

१२६. शिवसंहिता ।

१२७. शिवपुराण ।

१२८. स्टडीज इन द पुराणिक रेकार्डस औन हिंदू राइट्स एण्ड कस्टम्स आ. हाजरा. बुलेटिन. नं. २०. ढाका—यूनिवर्सिटी; १९४० ।

१२९. सर्वदर्शन संग्रह मध्वाचार्य्य ।

१३०. सूर्य्य आइकोनोग्राफ़िकल स्टडी आफ़ द इंडियन सन गौड : डी. पी. पाण्डे लीडन. फर्नइंस्टीट्यूट ।

१३१. श्रीमद्भागवतपुराण ।

१३२. हिंदी काव्यधारा : रा० सांकृत्यायन, किताब महल; प्रयाग

१३३. हिस्ट्री आफ़ बंगाल : सं. आर. सी. मजूमदार; १९४३ ।

१३४. हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनीप्रसाद ।

१३५. हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ़ द वर्ल्ड मैस्परो ।

१३६. हिस्ट्री आफ़ द हीब्रूज़ : ओट्ले ।

१३७. हिंदूइज़्म एण्ड बुधिज़्म; भा. १. २. ३. चार्ल्स इलियट, लंदन; १९२१

हि.ध.शा.१३८. हिस्ट्री आफ़ धर्मशास्त्र १. २. ३. बी. ओरि इं. : पी. बी. काने, पूना १९३० ।

१३९. हिंदू [illegible]